नम्र निवेदन

श्रीमद्भागवत भारतीय वाङ्मयका मुकुटमणि है। वैष्णवोंका तो यह सर्वस्व ही है। भारतवर्षमें जितने भी वैष्णव-सम्प्रदाय प्रचलित हैं, उन सभीमें श्रीमद्भागवतका वेदोंके समान आदर है। कई आचार्योंने तो प्रस्थानत्रयीके अन्तर्गत उपनिषदों और ब्रह्मसूत्रोंके साथ इसीको तीसरा प्रस्थान माना है। इसे वेद-महोदधिका अमृत कहें तो कोई अत्युक्ति न होगी—'वेदोपनिषदां साराज्जाता भागवती कथा।' बल्कि पद्मपुराणान्तर्गत श्रीमद्भागवत-माहात्म्यमें स्वयं सनकादि परमर्षियोंने प्रणव, गायत्री-मन्त्र, वेदत्रयी, श्रीमद्भागवत और भगवान् पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण—इनका तत्त्वतः अभेद बतलाया है। इसे भगवान् श्रीकृष्णका साक्षात् वाङ्मय स्वरूप माना गया है। भगवान्‌के कलावतार श्रीवेदव्यासजी-जैसे अद्वितीय महापुरुषको जिसकी रचनासे ही शान्ति मिली, उस श्रीमद्भागवतकी महिमा कहाँतक कही जाय। इसमें प्रेम, भक्ति, ज्ञान, विज्ञान, वैराग्य आदि कूट-कूटकर भरे हैं। इसका एक-एक श्लोक मन्त्रवत् माना जाता है। इसीसे इसका धर्मप्राण जनतामें इतना आदर है।

उसमें भी दशम स्कन्ध तो उसका हृदयस्थानीय है। उसमें भागवतके परम प्रतिपाद्य श्रीकृष्णकी—जिनका उल्लेख इसी ग्रन्थमें 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' कहकर हुआ है—मधुरातिमधुर लीलाओंका परम मनोहर ढंगसे वर्णन हुआ है। कहते हैं—महान् योगी परमहंसशिरोमणि श्रीशुकमुनिका—जो इस भागवत-ग्रन्थके वक्ता हैं तथा जो जन्मसे ही भगवान्‌के निर्गुण-स्वरूपमें परिनिष्ठित थे एवं प्रपञ्चसे सर्वथा अलग रहकर वनमें विचरा करते थे—इसी दशम स्कन्धके कतिपय श्लोकोंको सुनकर श्रीमद्भागवतकी ओर आकर्षण हुआ था और फिर उन्होंने अपने पिता श्रीवेदव्यासजीसे इस सम्पूर्ण ग्रन्थका अध्ययन किया था। भगवान्‌के चरित्र ही ऐसे हैं कि बड़े-बड़े योगीन्द्र-मुनीन्द्रोंका मन बरबस उनकी ओर खिंच जाता है। इसीलिये भगवान् श्रीकृष्णका एक नाम है—'आत्मारामगणाकर्षी।' 'कृष्ण' का अर्थ ही है—आकर्षण करनेवाला। श्रीकृष्णके कुछ अनन्य उपासक श्रीकृष्णलीलाके अतिरिक्त और कुछ भी पढ़ना-सुनना नहीं चाहते। ऐसे लोगोंकी सुविधाके लिये—विशेषतः उन लोगोंके लिये जो संस्कृतसे सर्वथा अपरिचित हैं—केवल दशम स्कन्धका यह भाषानुवाद अलग पुस्तक-रूपमें 'श्रीप्रेम-सुधा-सागर' के नामसे पाठकोंकी सेवामें प्रस्तुत है। श्रीभगवान्‌की मधुर लीलाओंके रसास्वादनके लिये तथा लीला-रहस्यको समझनेके लिये स्थान-स्थानपर नयी-नयी टिप्पणियाँ भी दी गयी हैं, जिससे ग्रन्थकी उपादेयता विशेष बढ़ गयी है।

कहना न होगा कि दशम स्कन्धका यह अनुवाद श्रीमद्भागवतके सटीक संस्करणसे ही लिया गया है—जो दो खण्डोंमें प्रकाशित है। जो लोग किसी कारणवश पूरे ग्रन्थको नहीं खरीदना चाहते और केवल श्रीकृष्णलीला-चिन्तनके ही अनुरागी हैं, उनके लिये यह ग्रन्थ विशेष उपयोगी होगा। असलमें उन्हींका जीवन धन्य है, जो दिन-रात भगवान्‌की मधुर लीलाओंके ही अनुशीलन एवं चिन्तनमें लगे रहते हैं।

विनीत—

हनुमानप्रसाद पोद्दार

श्रीहरिः

विषय-सूची

चित्र-सूची

श्रीश्यामाश्यामकी झाँकी

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीमद्भागवतमहापुराण

दशम स्कन्ध

(पूर्वार्ध)

पहला अध्याय

भगवान्‌के द्वारा पृथ्वीको आश्वासन, वसुदेव-देवकीका विवाह और कंसके द्वारा देवकीके छः पुत्रोंकी हत्या

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन् ! आपने चन्द्रवंश और सूर्यवंशके विस्तार तथा दोनों वंशोंके राजाओंका अत्यन्त अद्भुत चरित्र वर्णन किया। भगवान्‌के परम प्रेमी मुनिवर ! आपने स्वभावसे ही धर्मप्रेमी यदुवंशका भी विशद वर्णन किया। अब कृपा करके उसी वंशमें अपने अंश श्रीबलरामजीके साथ अवतीर्ण हुए भगवान् श्रीकृष्णके परम पवित्र चरित्र भी हमें सुनाइये ॥ १-२ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण समस्त प्राणियोंके जीवनदाता एवं सर्वात्मा हैं। उन्होंने यदुवंशमें अवतार लेकर जो-जो लीलाएँ कीं, उनका विस्तारसे हमलोगोंको श्रवण कराइये ॥ ३ ॥ जिनकी तृष्णाकी प्यास सर्वदाके लिये बुझ चुकी है, वे जीवन्मुक्त महापुरुष जिसका पूर्ण प्रेमसे अतृप्त रहकर गान किया करते हैं, मुमुक्षुजनोंके लिये जो भवरोगका रामबाण औषध है तथा विषयी लोगोंके लिये भी उनके कान और मनको परम आह्लाद देनेवाला है, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके ऐसे सुन्दर सुखद, रसीले, गुणानुवादसे पशुघाती अथवा आत्मघाती मनुष्यके अतिरिक्त और ऐसा कौन है जो विमुख हो जाय, उससे प्रीति न करे ? ॥ ४ ॥ (श्रीकृष्ण तो मेरे कुलदेव ही हैं।) जब कुरुक्षेत्रमें महाभारत युद्ध हो रहा था और देवताओंको भी जीत लेनेवाले भीष्मपितामह आदि अतिरथियोंसे मेरे दादा पाण्डवोंका युद्ध हो रहा था, उस समय कौरवोंकी सेना उनके लिये अपार समुद्रके समान थी—जिसमें भीष्म आदि वीर बड़े-बड़े मच्छोंको भी निगल जानेवाले तिमिङ्गिल मच्छोंकी भाँति भय उत्पन्न कर रहे थे। परन्तु मेरे स्वनाम-धन्य पितामह भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी नौकाका आश्रय लेकर उस समुद्रको अनायास ही पार कर गये—ठीक वैसे ही जैसे कोई मार्गमें चलता हुआ स्वभावसे ही बछड़ेके खुरका गड्ढा पार कर जाय ॥ ५ ॥ महाराज ! मेरा यह शरीर—जो आपके सामने है तथा जो कौरव और पाण्डव दोनों ही वंशोंका एकमात्र सहारा था—अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे जल चुका था। उस समय मेरी माता जब भगवान्‌की शरणमें गयी, तब उन्होंने हाथमें चक्र लेकर मेरी माताके गर्भमें प्रवेश किया और मेरी रक्षा की ॥ ६ ॥ (केवल मेरी ही बात नहीं;) वे समस्त शरीरधारियोंके भीतर आत्मारूपसे रहकर अमृतत्वका दान कर रहे हैं और बाहर कालरूपसे रहकर मृत्युका *। मनुष्यके रूपमें प्रतीत होना, यह तो उनकी एक लीला है। आप उन्हींकी ऐश्वर्य और माधुर्यसे परिपूर्ण लीलाओंका वर्णन कीजिये ॥ ७ ॥

* समस्त देहधारियोंके अन्तःकरणमें अन्तर्यामीरूपसे स्थित भगवान् उनके जीवनके कारण हैं तथा बाहर कालरूपसे स्थित हुए वे ही उनका नाश करते हैं। अतः जो आत्मज्ञानीजन अन्तर्दृष्टिद्वारा उन अन्तर्यामीकी उपासना करते हैं, वे मोक्षरूप अमरपद पाते हैं और जो विषयपरायण अज्ञानी पुरुष बाह्यदृष्टिसे विषयचिन्तनमें ही लगे रहते हैं, वे जन्म-मरणरूप मृत्युके भागी होते हैं।

भगवन् ! आपने अभी बतलाया था कि बलरामजी रोहिणीके पुत्र थे । इसके बाद देवकीके पुत्रोंमें भी आपने उनकी गणना की । दूसरा शरीर धारण किये बिना दो माताओंका पुत्र होना कैसे सम्भव है ? ॥ ८ ॥ असुरोंको मुक्ति देनेवाले और भक्तोंको प्रेम वितरण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण [illegible] वात्सल्य-स्नेहसे भरे हुए पिताका घर छोड़कर ब्रजमें क्यों चले गये ? यदुवंशशिरोमणि भक्तवत्सल प्रभुने नन्द आदि गोप-बन्धुओंके साथ कहाँ-कहाँ निवास किया ? ॥ ९ ॥ ब्रह्मा और शङ्करका भी शासन करनेवाले प्रभुने ब्रजमे तथा मधुपुरीमें रहकर कौन-कौन-सी लीलाएँ कीं ? और महाराज ! उन्होंने अपनी माँके भाई मामा कंसको अपने हाथों क्यों मार डाला ? वह मामा होनेके कारण उनके द्वारा मारे जाने योग्य तो नहीं था ॥ १० ॥ मनुष्याकार सच्चिदानन्दमय विग्रह प्रकट करके द्वारकापुरीमे यदुवंशियोंके साथ उन्होंने कितने वर्षोंतक निवास किया ? और उन सर्वशक्तिमान् प्रभुकी पत्नियाँ कितनी थीं ? ॥ ११ ॥ मुने ! मैंने श्रीकृष्णकी जितनी लीलाएँ पूछी हैं और जो नहीं पूछी हैं, वे सब आप मुझे विस्तारसे सुनाइये; क्योंकि आप सब कुछ जानते हैं और मैं बड़ी श्रद्धाके साथ उन्हें सुनना चाहता हूँ ॥ १२ ॥ भगवन् ! अन्नकी तो बात ही क्या, मैंने जलका भी परित्याग कर दिया है । फिर भी वह असह्य भूख-प्यास (जिसके कारण मैंने मुनिके गलेमे मृत सर्प डालनेका अन्याय किया था) मुझे तनिक भी नहीं सता रही है; क्योंकि मैं आपके मुखकमलसे झरती हुई भगवान्की सुधामयी लीला-कथाका पान कर रहा हूँ ॥ १३ ॥

सूतजी कहते हैं—शौनकजी ! भगवान्के प्रेमियोंमें अग्रगण्य एवं सर्वज्ञ श्रीशुकदेवजी महाराजने परीक्षित्का ऐसा समीचीन प्रश्न सुनकर (जो संतोंकी सभामे भगवान्की लीलाके वर्णनका हेतु हुआ करता है) उनका अभिनन्दन किया और भगवान् श्रीकृष्णकी उन लीलाओंका वर्णन प्रारम्भ किया, जो समस्त कलिमलोंको सदाके लिये धो डालती हैं ॥ १४ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—भगवान्के लीला-रसके रसिक राजर्षे ! तुमने जो कुछ निश्चय किया है, वह बहुत ही सुन्दर और आदरणीय है; क्योंकि सबके हृदयाराध्य श्रीकृष्णकी लीला-कथा श्रवण करनेमें तुम्हें सहज एवं सुदृढ़ प्रीति प्राप्त हो गयी है ॥ १५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णकी कथाके सम्बन्धमे प्रश्न करनेसे ही वक्ता, प्रश्नकर्ता और श्रोता तीनों ही पवित्र हो जाते हैं—जैसे गङ्गाजीका जल या भगवान् शालग्रामका चरणामृत सभीको पवित्र कर देता है ॥ १६ ॥

परीक्षित् ! उस समय लाखों दैत्योंके दलने घमंडी राजाओंका रूप धारण कर अपने भारी भारसे पृथ्वीको आक्रान्त कर रक्खा था । उससे त्राण पानेके लिये वह ब्रह्माजीकी शरणमे गयी ॥ १७ ॥ पृथ्वीने उस समय गौका रूप धारण कर रक्खा था । उसके नेत्रोंसे आँसू बह-बहकर मुँहपर आ रहे थे । उसका मन तो खिन्न था ही, शरीर भी बहुत कृश हो गया था । वह बड़े करुण स्वरसे रँभा रही थी । ब्रह्माजीके पास जाकर उसने उन्हे अपनी पूरी कष्ट-कहानी सुनायी ॥ १८ ॥ ब्रह्माजीने बड़ी सहानुभूतिके साथ उसकी दुःख-गाथा सुनी । उसके बाद वे भगवान् शङ्कर, स्वर्गके अन्यान्य प्रमुख देवता तथा गौके रूपमें आयी हुई पृथ्वीको अपने साथ लेकर क्षीरसागरके तटपर गये ॥ १९ ॥ भगवान् देवताओंके भी आराध्यदेव है । वे अपने भक्तोंकी समस्त अभिलाषाएँ पूर्ण करते और उनके समस्त क्लेशोंको नष्ट कर देते हैं । वे ही जगत्के एकमात्र स्वामी हैं । क्षीरसागरके तटपर पहुँचकर ब्रह्मा आदि देवताओंने 'पुरुषसूक्त' के द्वारा उन्हीं परम पुरुष सर्वान्तर्यामी प्रभुकी स्तुति की । स्तुति करते-करते ब्रह्माजी समाधिस्थ हो गये ॥ २० ॥ उन्होंने समाधि-अवस्थामें आकाशवाणी सुनी । इसके बाद जगत्के निर्माणकर्ता ब्रह्माजीने देवताओंसे कहा—'देवताओ ! मैंने भगवान्की वाणी सुनी है । तुमलोग भी उसे मेरे द्वारा अभी सुन लो और फिर वैसा ही करो । उसके पालनमें विलम्ब नहीं होना चाहिये ॥ २१ ॥ भगवान्को पृथ्वीके कष्टका पहलेसे ही पता है । वे ईश्वरोंके भी ईश्वर हैं अतः अपनी कालशक्तिके द्वारा पृथ्वीका भार हरण करते हुए वे जबतक पृथ्वीपर लीला करें, तबतक तुमलोग भी अपने-अपने अंशोंके साथ यदुकुलमें जन्म लेकर उनकी लीलामें

सहयोग दो ॥ २२ ॥ वसुदेवजीके घर स्वयं पुरुषोत्तम भगवान् प्रकट होंगे। उनकी और उनकी प्रियतमा (श्रीराधा)की सेवाके लिये देवाङ्गनाएँ जन्म ग्रहण करें।२३। स्वयंप्रकाश भगवान् शेष भी, जो भगवान्‌की कला होनेके कारण अनन्त हैं (अनन्तका अंश भी अनन्त ही होता है) और जिनके सहस्र मुख हैं, भगवान्‌के प्रिय कार्य करनेके लिये उनसे पहले ही उनके बड़े भाईके रूपमें अवतार ग्रहण करेंगे ॥ २४ ॥ भगवान्‌की वह ऐश्वर्य-शालिनी योगमाया भी, जिसने सारे जगत्‌को मोहित कर रक्खा है, उनकी आज्ञासे उनकी लीलाके कार्य सम्पन्न करनेके लिये अंशरूपसे अवतार ग्रहण करेगी' ॥ २५ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! प्रजापतियोंके स्वामी भगवान् ब्रह्माजीने देवताओंको इस प्रकार आज्ञा दी और पृथ्वीको समझा-बुझाकर ढाढ़स बँधाया। इसके बाद वे अपने परम धामको चले गये ॥ २६ ॥ प्राचीन कालमे यदुवंशी राजा थे शूरसेन। वे मथुरापुरीमें रहकर माथुरमण्डल और शूरसेनमण्डलका राज्यशासन करते थे ॥ २७॥ उसी समयसे मथुरा ही समस्त यदुवंशी नरपतियों-की राजधानी हो गयी थी। भगवान् श्रीहरि सर्वदा वहाँ विराजमान रहते हैं ॥ २८ ॥ एक बार मथुरामें शूरके पुत्र वसुदेवजी विवाह करके अपनी नवविवाहिता पत्नी देवकीके साथ घर जानेके लिये रथपर सवार हुए ॥२९॥ उग्रसेनका लडका था कस। उसने अपनी चचेरी बहिन देवकीको प्रसन्न करनेके लिये उसके रथके घोड़ोंकी रास पकड़ ली। वह स्वयं ही रथ हाँकने लगा, यद्यपि उसके साथ सैकड़ों सोनेके बने हुए रथ चल रहे थे ॥ ३० ॥ देवकीके पिता थे देवक। अपनी पुत्रीपर उनका बड़ा प्रेम था। कन्याको विदा करते समय उन्होंने उसे सोनेके हारोंसे अलङ्कृत चार सौ हाथी, पंद्रह हजार घोडे, अठारह सौ रथ तथा सुन्दर-सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे विभूषित दो सौ सुकुमारी दासियाँ दहेजमे दी ॥ ३१-३२ ॥ विदाई-के समय वर-वधूके मङ्गलके लिये एक ही साथ शङ्ख, तुरही, मृदङ्ग और दुन्दुभियाँ बजने लगीं ॥ ३३ ॥ मार्गमें जिस समय घोड़ोंकी रास पकड़कर कंस रथ हाँक रहा था, उस समय आकाशवाणीने उसे सम्बोधन करके कहा—'अरे मूर्ख! जिसको तू रथमें बैठाकर लिये जा रहा है, उसकी आठवें गर्भकी सन्तान तुझे मार डालेगी'॥३४॥ कंस बड़ा पापी था। उसकी दुष्टताकी सीमा नहीं थी। वह भोजवंशका कलङ्क ही था। आकाशवाणी सुनते ही उसने तलवार खींच ली और अपनी बहिनकी चोटी पकड़कर उसे मारनेके लिये तैयार हो गया ॥ ३५ ॥ वह अत्यन्त क्रूर तो था ही, पाप-कर्म करते-करते निर्लज्ज भी हो गया था। उसका यह काम देखकर महात्मा वसुदेवजी उसको शान्त करते हुए बोले—॥ ३६ ॥

वसुदेवजीने कहा—राजकुमार ! आप भोजवंशके होनहार वंशधर तथा अपने कुलकी कीर्ति बढ़ानेवाले हैं। बड़े-बडे शूरवीर आपके गुणोंकी सराहना करते हैं। इधर यह एक तो स्त्री, दूसरे आपकी बहिन और तीसरे यह विवाहका शुभ अवसर ! ऐसी स्थितिमें आप इसे कैसे मार सकते हैं ? ॥ ३७ ॥ वीरवर ! जो जन्म लेते हैं, उनके शरीरके साथ ही मृत्यु भी उत्पन्न होती है। आज हो या सौ वर्षके बाद—जो प्राणी है, उसकी मृत्यु होगी ही ॥ ३८ ॥ जब शरीरका अन्त हो जाता है, तब जीव अपने कर्मके अनुसार दूसरे शरीरको ग्रहण करके अपने पहले शरीरको छोड़ देता है। उसे विवश होकर ऐसा करना पड़ता है ॥ ३९ ॥ जैसे चलते समय मनुष्य एक पैर जमाकर ही दूसरा पैर उठाता है और जैसे जोंक किसी अगले तिनकेको पकड़ लेती है, तब पहलेके पकडे हुए तिनकेको छोड़ती है—वैसे जीव भी अपने कर्मके अनुसार किसी शरीरको प्राप्त करनेके बाद ही इस शरीरको छोड़ता है ॥ ४० ॥ जैसे कोई पुरुष जाग्रत्-अवस्थामें राजाके ऐश्वर्यको देखकर और इन्द्रादिके ऐश्वर्यको सुनकर उसकी अभिलाषा करने लगता है और उसका चिन्तन करते-करते उन्हीं बातोंमें घुल-मिलकर एक हो जाता है तथा स्वप्नमें अपनेको राजा या इन्द्रके रूपमें अनुभव करने लगता है, साथ ही अपने दरिद्रा-वस्थाके शरीरको भूल जाता है। कभी-कभी तो जाग्रत्-अवस्थामें ही मन-ही-मन उन बातोंका चिन्तन करते-करते तन्मय हो जाता है और उसे स्थूल शरीरकी सुधि नहीं रहती। वैसे ही जीव कर्मकृत कामना और कामनाकृत कर्मके वश होकर दूसरे शरीरको प्राप्त हो जाता है और अपने पहले शरीरको भूल जाता है ॥ ४१ ॥ जीवका

मन अनेक विकारोंका पुञ्ज है । देहान्तके समय वह अनेक जन्मोंके सञ्चित और प्रारब्ध कर्मोंकी वासनाओंके अधीन होकर मायाके द्वारा रचे हुए अनेक पाञ्चभौतिक शरीरोंमेंसे जिस किसी शरीरके चिन्तनमें तल्लीन हो जाता है और मान बैठता है कि यह मैं हूँ, उसे वही शरीर ग्रहण करके जन्म लेना पड़ता है ॥ ४२ ॥ जैसे सूर्य-चन्द्रमा आदि चमकीली वस्तुएँ जलसे भरे हुए घड़ोंमें या तेल आदि तरल पदार्थोंमें प्रतिबिम्बित होती हैं और हवाके झोंकेसे उनके जल आदिके हिलने-डोलनेपर उनमें प्रतिबिम्बित वस्तुएँ भी चञ्चल जान पड़ती हैं—वैसे ही जीव अपने स्वरूपके अज्ञानद्वारा रचे हुए शरीरोंमें राग करके उन्हें अपना आप मान बैठता है और मोहवश उनके आने-जानेको अपना आना-जाना मानने लगता है ॥ ४३ ॥ इसलिये जो अपना कल्याण चाहता है, उसे किसीसे द्रोह नहीं करना चाहिये; क्योंकि जीव कर्मके अधीन हो गया है और जो किसीसे भी द्रोह करेगा, उसको इस जीवनमें शत्रुसे और जीवनके बाद परलोकसे भयभीत होना ही पड़ेगा ॥ ४४ ॥ कंस ! यह आपकी छोटी बहिन अभी बच्ची और बहुत दीन है । यह तो आपकी कन्याके समान है । इसपर, अभी-अभी इसका विवाह हुआ है, विवाहके मङ्गलचिह्न भी इसके शरीरपरसे नहीं उतारे हैं । ऐसी दशामें आप-जैसे दीनवत्सल पुरुष-को इस बेचारीका वध करना उचित नहीं है ॥ ४५ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! इस प्रकार वसुदेवजीने प्रशंसा आदि सामनीति और भय आदि भेद-नीतिसे कंसको बहुत समझाया । परन्तु वह क्रूर तो राक्षसोंका अनुयायी हो रहा था; इसलिये उसने अपने घोर सङ्कल्पको नहीं छोड़ा ॥ ४६ ॥ वसुदेवजीने कंस-का विकट हठ देखकर यह विचार किया कि किसी प्रकार यह समय तो टाल ही देना चाहिये । तब वे इस निश्चयपर पहुँचे ॥ ४७ ॥ 'बुद्धिमान् पुरुषको, जहाँतक उसकी बुद्धि और बल साथ दें, मृत्युको टालनेका प्रयत्न करना चाहिये । प्रयत्न करनेपर भी वह न टल सके, तो फिर प्रयत्न करनेवालेका कोई दोष नहीं रहता ॥ ४८ ॥ इसलिये इस मृत्युरूप कंसको अपने पुत्र दे देनेकी प्रतिज्ञा करके मैं इस दीन देवकीको बचा लूँ । यदि मेरे लड़के होंगे और तबतक यह कंस स्वयं नहीं मर जायगा, तब क्या होगा ? ॥ ४९ ॥ सम्भव है, उल्टा ही हो । मेरा लड़का ही इसे मार डाले ! क्योंकि विधाताके विधानका पार पाना बहुत कठिन है । मृत्यु सामने आकर भी टल जाती है और टली हुई भी लौट आती है ॥ ५० ॥ जिस समय वनमें आग लगती है, उस समय कौन-सी लकड़ी जले और कौन-सी न जले, दूरकी जल जाय और पासकी बच रहे—इन सब बातोंमें अदृष्टके सिवा और कोई कारण नहीं होता । वैसे ही किस प्राणीका कौन-सा शरीर बना रहेगा और किस हेतुसे कौन-सा शरीर नष्ट हो जायगा—इस बातका पता लगा लेना बहुत ही कठिन है' ॥ ५१ ॥ अपनी बुद्धिके अनुसार ऐसा निश्चय करके वसुदेवजीने बहुत सम्मानके साथ पापी कंसकी बड़ी प्रशंसा की ॥ ५२ ॥ परीक्षित् ! कंस बड़ा क्रूर और निर्लज्ज था; अतः ऐसा करते समय वसुदेवजी-के मनमें बड़ी पीड़ा भी हो रही थी । फिर भी उन्होंने ऊपरसे अपने मुख-कमलको प्रफुल्लित करके हँसते हुए कहा—॥ ५३ ॥

वसुदेवजीने कहा—सौम्य ! आपको देवकीसे तो कोई भय है नहीं, जैसा कि आकाशवाणीने कहा है । भय है पुत्रोंसे, सो इसके पुत्र मैं आपको लाकर सौंप दूँगा ॥ ५४ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! कंस जानता था कि वसुदेवजीके वचन झूठे नहीं होते और इन्होंने जो कुछ कहा है, वह युक्तिसंगत भी है । इसलिये उसने अपनी बहिन देवकीको मारनेका विचार छोड़ दिया । इससे वसुदेवजी बहुत प्रसन्न हुए और उसकी प्रशंसा करके अपने घर चले आये ॥ ५५ ॥ देवकी बड़ी सती-साध्वी थी । सारे देवता उसके शरीरमें निवास करते थे । समय आनेपर देवकीके गर्भसे प्रतिवर्ष एक-एक करके आठ पुत्र तथा एक कन्या उत्पन्न हुई ॥ ५६ ॥ पहले पुत्रका नाम था कीर्तिमान् । वसुदेवजीने उसे लाकर कंसको दे दिया । ऐसा करते समय उन्हें कष्ट तो अवश्य हुआ, परन्तु उससे भी बड़ा कष्ट उन्हें इस बातका था कि कहीं मेरे वचन झूठे न हो जायँ ॥ ५७ ॥ परीक्षित् ! सत्यसन्ध पुरुष बड़े-से-बड़ा कष्ट भी सह लेते हैं, ज्ञानियों-

को किसी बातकी अपेक्षा नहीं होती, नीच पुरुष बुरे-से-बुरा काम भी कर सकते हैं और जो जितेन्द्रिय हैं—जिन्होंने भगवान्‌को हृदयमें धारण कर रक्खा है, वे सब कुछ त्याग सकते है ॥ ५८ ॥ जब कंसने देखा कि वसुदेवजीका अपने पुत्रके जीवन और मृत्युमें समान भाव है एवं वे सत्यमें पूर्ण निष्ठावान् भी हैं, तब वह बहुत प्रसन्न हुआ और उनसे हँसकर बोला ॥ ५९ ॥ वसुदेवजी ! आप इस नन्हे-से सुकुमार बालकको ले जाइये। इससे मुझे कोई भय नहीं है। क्योंकि आकाशवाणीने तो ऐसा कहा था कि देवकीके आठवें गर्भसे उत्पन्न सन्तानके द्वारा मेरी मृत्यु होगी ॥ ६० ॥ वसुदेवजीने कहा—'ठीक है' और उस बालकको लेकर वे लौट आये। परन्तु उन्हें मालूम था कि कंस बड़ा दुष्ट है और उसका मन उसके हाथमें नहीं है। वह किसी क्षण बदल सकता है। इसलिये उन्होंने उसकी बातपर विश्वास नहीं किया ॥ ६१ ॥

परीक्षित् ! इधर भगवान् नारद कंसके पास आये और उससे बोले कि 'कंस ! व्रजमें रहनेवाले नन्द आदि गोप, उनकी स्त्रियाँ, वसुदेव आदि वृष्णिवंशी यादव, देवकी आदि यदुवंशकी स्त्रियाँ और नन्द, वसुदेव, दोनोंके सजातीय बन्धु-बान्धव और सगे-सम्बन्धी—सब-के-सब देवता हैं; जो इस समय तुम्हारी सेवा कर रहे हैं, वे भी देवता ही हैं।' उन्होंने यह भी बतलाया कि 'दैत्योंके कारण पृथ्वीका भार बढ़ गया है, इसलिये देवताओंकी ओरसे अब उनके वधकी तैयारी की जा रही है' ॥ ६२—६४ ॥ जब देवर्षि नारद इतना कहकर चले गये, तब कंसको यह निश्चय हो गया कि यदुवंशी देवता हैं और देवकीके गर्भसे विष्णुभगवान् ही मुझे मारनेके लिये पैदा होनेवाले हैं। इसलिये उसने देवकी और वसुदेवको हथकड़ी-बेड़ीसे जकड़कर कैदमें डाल दिया और उन दोनोंसे जो-जो पुत्र होते गये, उन्हें वह मारता गया। उसे हर बार यह शंका बनी रहती कि कहीं विष्णु ही उस बालकके रूपमें न आ गया हो ॥ ६५-६६ ॥ परीक्षित् ! पृथ्वीमें यह बात प्रायः देखी जाती है कि अपने प्राणोंका ही पोषण करनेवाले लोभी राजा अपने स्वार्थके लिये माता-पिता, भाई बन्धु और अपने अत्यन्त हितैषी इष्ट-मित्रोंकी भी हत्या कर डालते हैं ॥ ६७ ॥ कंस जानता था कि मैं पहले कालनेमि असुर था और विष्णुने मुझे मार डाला था। इससे उसने यदुवंशियोंसे घोर विरोध ठान लिया ॥ ६८ ॥ कंस बड़ा बलवान् था। उसने यदु, भोज और अन्धक-वंशके अधिनायक अपने पिता उग्रसेनको कैद कर लिया और शूरसेन-देशका राज्य वह स्वयं करने लगा ॥ ६९ ॥

दूसरा अध्याय

भगवान्‌का गर्भ-प्रवेश और देवताओंद्वारा गर्भ-स्तुति

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! कंस एक तो स्वयं बड़ा बली था और दूसरे, मगधनरेश जरासन्धकी उसे बहुत बड़ी सहायता प्राप्त थी। तीसरे, उसके साथी थे—प्रलम्बासुर, बकासुर, चाणूर, तृणावर्त, अघासुर, मुष्टिक, अरिष्टासुर, द्विविद, पूतना, केशी और धेनुक। तथा बाणासुर और भौमासुर आदि बहुत-से दैत्य राजा उसके सहायक थे। इनको साथ लेकर वह यदुवंशियोंको नष्ट करने लगा ॥ १-२ ॥ वे लोग भयभीत होकर कुरु, पञ्चाल, केकय, शाल्व, विदर्भ, निषध, विदेह और कोसल आदि देशोंमें जा बसे ॥ ३ ॥ कुछ लोग ऊपर-ऊपरसे उसके मनके अनुसार काम करते हुए उसकी सेवामें लगे रहे। जब कंसने एक-एक करके देवकीके छः बालक मार डाले, तब देवकीके सातवें गर्भमें भगवान्‌के अंशस्वरूप श्रीशेषजी*—जिन्हें अनन्त भी कहते हैं—पधारे। आनन्दस्वरूप शेषजीके गर्भमें आनेके कारण देवकीको स्वाभाविक ही हर्ष हुआ। परन्तु कंस शायद इसे भी मार डाले, इस भयसे उनका शोक भी बढ़ गया ॥ ४-५ ॥

* शेष भगवान्‌ने विचार किया कि 'रामावतारमें मैं छोटा भाई बना, इसीसे मुझे बड़े भाईकी आज्ञा माननी पड़ी और वन जानेसे मैं उन्हें रोक नहीं सका। श्रीकृष्णावतारमें मैं बड़ा भाई बनकर भगवान्‌की अच्छी सेवा कर सकूँगा।' इसलिये वे श्रीकृष्णसे पहले ही गर्भमें आ गये।

विश्वात्मा भगवान्‌ने देखा कि मुझे ही अपना स्वामी और सर्वस्व माननेवाले यदुवंशी कंसके द्वारा बहुत ही सताये जा रहे हैं। तब उन्होंने अपनी योगमायाको यह आदेश दिया—॥ ६ ॥ 'देवि! कल्याणी! तुम व्रजमें जाओ। वह प्रदेश ग्वालों और गौओंसे सुशोभित है। वहाँ नन्दबाबाके गोकुलमें वसुदेवकी पत्नी रोहिणी निवास करती हैं। उनकी और भी पत्नियाँ कंससे डरकर गुप्त स्थानोंमें रह रही हैं॥ ७ ॥ इस समय मेरा वह अंश जिसे शेष कहते हैं, देवकीके उदरमें गर्भरूपसे स्थित है। उसे वहाँसे निकालकर तुम रोहिणीके पेटमें रख दो॥ ८ ॥ कल्याणी! अब मैं अपने समस्त ज्ञान, बल आदि अंशोंके साथ देवकीका पुत्र बनूँगा और तुम नन्दबाबाकी पत्नी यशोदाके गर्भसे जन्म लेना॥ ९ ॥ तुम लोगोंको मुँहमाँगे वरदान देनेमें समर्थ होओगी। मनुष्य तुम्हें अपनी समस्त अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाली जानकर धूप-दीप, नैवेद्य एवं अन्य प्रकारकी सामग्रियोंसे तुम्हारी पूजा करेंगे॥ १० ॥ पृथ्वीमें लोग तुम्हारे लिये बहुत-से स्थान बनायेंगे और दुर्गा, भद्रकाली, विजया, वैष्णवी, कुमुदा, चण्डिका, कृष्णा, माधवी, कन्या, माया, नारायणी, ईशानी, शारदा और अम्बिका आदि बहुत-से नामोंसे पुकारेंगे॥ ११-१२ ॥ देवकीके गर्भमेंसे खींचे जानेके कारण शेषजीको लोग संसारमें 'संकर्षण' कहेंगे, लोकरञ्जन करनेके कारण 'राम' कहेंगे और बलवानोंमें श्रेष्ठ होनेके कारण 'बलभद्र' भी कहेंगे'॥ १३ ॥

जब भगवान्‌ने इस प्रकार आदेश दिया, तब योगमायाने 'जो आज्ञा'—ऐसा कहकर उनकी बात शिरोधार्य की और उनकी परिक्रमा करके वे पृथ्वीलोकमें चली आयीं तथा भगवान्‌ने जैसा कहा था, वैसे ही किया॥ १४ ॥ जब योगमायाने देवकीका गर्भ ले जाकर रोहिणीके उदरमें रख दिया, तब पुरवासी बड़े दुःखके साथ आपसमें कहने लगे—'हाय! बेचारी देवकीका यह गर्भ तो नष्ट ही हो गया'॥ १५ ॥

भगवान् भक्तोंको अभय करनेवाले हैं। वे सर्वत्र सब रूपमें हैं, उन्हें कहीं आना-जाना नहीं है। इसलिये वे वसुदेवजीके मनमें अपनी समस्त कलाओंके साथ प्रकट हो गये॥ १६ ॥ उसमें विद्यमान रहनेपर भी अपनेको अव्यक्तसे व्यक्त कर दिया। भगवान्‌की ज्योतिको धारण करनेके कारण वसुदेवजी सूर्यके समान तेजस्वी हो गये, उन्हें देखकर लोगोंकी आँखें चौंधिया जातीं। कोई भी अपने बल, वाणी या प्रभावसे उन्हें दबा नहीं सकता था॥ १७ ॥ भगवान्‌के उस ज्योतिर्मय अंशको, जो जगत्‌का परम मङ्गल करनेवाला है, वसुदेवजीके द्वारा आधान किये जानेपर देवी देवकीने ग्रहण किया। जैसे पूर्वदिशा चन्द्रदेवको धारण करती है, वैसे ही शुद्ध सत्त्वसे सम्पन्न देवी देवकीने विशुद्ध मनसे सर्वात्मा एवं आत्मस्वरूप भगवान्‌को धारण किया॥ १८ ॥ भगवान् सारे जगत्‌के निवासस्थान हैं। देवकी उनका भी निवासस्थान बन गयी। परन्तु घड़े आदिके भीतर बंद किये हुए दीपकका और अपनी विद्या दूसरेको न देनेवाले ज्ञानखलकी श्रेष्ठ विद्याका प्रकाश जैसे चारों ओर नहीं फैलता, वैसे ही कंसके कारागारमें बंद देवकीकी भी उतनी शोभा नहीं हुई॥ १९ ॥ देवकीके गर्भमें भगवान् विराजमान हो गये थे। उसके मुखपर पवित्र मुसकान थी और उसके शरीरकी कान्तिसे बंदीगृह जगमगाने लगा था। जब कंसने उसे देखा, तब वह मन-ही-मन कहने लगा—'अबकी बार मेरे प्राणोंके ग्राहक विष्णुने इसके गर्भमें अवश्य ही प्रवेश किया है; क्योंकि इसके पहले देवकी कभी ऐसी न थी॥ २० ॥ अब इस विषयमें शीघ्र-से-शीघ्र मुझे क्या करना चाहिये? देवकीको मारना तो ठीक न होगा, क्योंकि वीर पुरुष स्वार्थवश अपने पराक्रमको कलङ्कित नहीं करते। एक तो यह स्त्री है, दूसरे बहिन और तीसरे गर्भवती है। इसको मारनेसे तो तत्काल ही मेरी कीर्ति, लक्ष्मी और आयु नष्ट हो जायगी॥ २१ ॥ वह मनुष्य तो जीवित रहनेपर भी मरा हुआ ही है, जो अत्यन्त क्रूरताका व्यवहार करता है। उसकी मृत्युके बाद लोग उसे गाली देते हैं। इतना ही नहीं, वह देहाभिमानियोंके योग्य घोर नरकमें भी अवश्य-अवश्य जाता है॥ २२ ॥ यद्यपि कंस देवकीको मार सकता था, किन्तु स्वयं ही वह इस

अत्यन्त क्रूरताके विचारसे निवृत्त हो गया* । अब भगवान्‌के प्रति दृढ़ वैरका भाव मनमें गाँठकर उनके जन्मकी प्रतीक्षा करने लगा ॥ २३ ॥ वह उठते-बैठते, खाते-पीते, सोते-जागते और चलते-फिरते—सर्वदा ही श्रीकृष्णके चिन्तनमें लगा रहता । जहाँ उसकी आँख पड़ती, जहाँ कुछ खड़का होता, वहीं उसे श्रीकृष्ण दीख जाते । इस प्रकार उसे सारा जगत् ही श्रीकृष्णमय दीखने लगा ॥ २४ ॥

परीक्षित् ! भगवान् शङ्कर और ब्रह्माजी कंसके कैदखानेमें आये । उनके साथ अपने अनुचरोंके सहित समस्त देवता और नारदादि ऋषि भी थे । वे लोग सुमधुर वचनोंसे सबकी अभिलाषा पूर्ण करनेवाले श्रीहरिकी इस प्रकार स्तुति करने लगे ॥ २५ ॥ 'प्रभो ! आप सत्यसङ्कल्प हैं । सत्य ही आपकी प्राप्तिका श्रेष्ठ साधन है । सृष्टिके पूर्व, प्रलयके पश्चात् और संसारकी स्थितिके समय—इन असत्य अवस्थाओंमें भी आप सत्य हैं । पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—इन पाँच दृश्यमान सत्योंके आप ही कारण हैं । और उनमें अन्तर्यामीरूपसे विराजमान भी हैं । आप इस दृश्यमान जगत्‌के परमार्थस्वरूप हैं । आप ही मधुर वाणी और समदर्शनके प्रवर्तक हैं । भगवन् ! आप तो बस, सत्यस्वरूप ही हैं । हम सब आपकी शरणमें आये हैं ॥ २६ ॥ यह संसार क्या है, एक सनातन वृक्ष । इस वृक्षका आश्रय है—एक प्रकृति । इसके दो फल हैं—सुख और दुःख; तीन जड़ें हैं—सत्त्व, रज और तम, चार रस हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष । इसके जाननेके पाँच प्रकार हैं—श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना और नासिका । इसके छः स्वभाव हैं—पैदा होना, रहना, बढ़ना, बदलना, घटना और नष्ट हो जाना । इस वृक्षकी छाल हैं सात धातुएँ—रस, रुधिर, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र । आठ शाखाएँ हैं—पाँच महाभूत, मन, बुद्धि और अहङ्कार । इसमें मुख आदि नवों द्वार खोड़र हैं । प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनञ्जय—ये दस प्राण ही इसके दस पत्ते हैं । इस संसाररूप वृक्षपर दो पक्षी हैं—जीव और ईश्वर ॥ २७ ॥ इस संसाररूप वृक्षकी उत्पत्तिके आधार एकमात्र आप ही हैं । आपमें ही इसका प्रलय होता है और आपके ही अनुग्रहसे इसकी रक्षा भी होती है । जिनका चित्त आपकी मायासे आवृत हो रहा है, इस सत्यको समझनेकी शक्ति खो बैठा है—वे ही उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करनेवाले ब्रह्मादि देवताओंको अनेक देखते हैं । तत्त्वज्ञानी पुरुष तो सबके रूपमें केवल आपका ही दर्शन करते हैं ॥ २८ ॥ आप ज्ञानस्वरूप आत्मा हैं । चराचर जगत्‌के कल्याणके लिये ही अनेकों रूप धारण करते हैं । आपके वे रूप विशुद्ध अप्राकृत सत्त्वमय होते हैं और संत पुरुषोंको बहुत सुख देते हैं । साथ ही दुष्टोंको उनकी दुष्टताका दण्ड भी देते हैं । उनके लिये अमङ्गलमय भी होते हैं ॥ २९ ॥ कमलके समान कोमल अनुग्रहभरे नेत्रोंवाले प्रभो ! कुछ विरले लोग ही आपके समस्त पदार्थों और प्राणियोंके आश्रयस्वरूप रूपमें पूर्ण एकाग्रतासे अपना चित्त लगा पाते हैं और आपके चरणकमलरूपी जहाजका आश्रय लेकर इस संसारसागरको बछड़ेके खुरके गड्ढेके समान अनायास ही पार कर जाते हैं । क्यों न हो, अबतकके संतोंने इसी जहाजसे संसारसागरको पार जो किया है ॥ ३० ॥ परम प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आपके भक्तजन सारे जगत्‌के निष्कपट प्रेमी, सच्चे हितैषी होते हैं । वे स्वयं तो इस भयङ्कर और कष्टसे पार करनेयोग्य संसारसागरको पार कर ही जाते हैं, किन्तु औरोंके कल्याणके लिये भी वे यहाँ आपके चरण-कमलोंकी नौका स्थापित कर जाते हैं । वास्तवमें सत्पुरुषोंपर आपकी महान् कृपा है । उनके लिये आप अनुग्रहस्वरूप ही हैं ॥ ३१ ॥ कमलनयन ! जो लोग आपके चरणकमलोंकी शरण नहीं लेते तथा आपके प्रति भक्तिभावसे रहित होनेके कारण जिनकी बुद्धि भी शुद्ध नहीं है, वे अपनेको झूठ-मूठ मुक्त मानते हैं । वास्तवमें तो वे बद्ध ही हैं । वे यदि बड़ी तपस्या और

* जो कंस विवाहके मङ्गलचिह्नोंको धारण की हुई देवकीका गला काटनेके उद्योगसे न हिचका, वही आज इतना सद्विचारवान् हो गया, इसका क्या कारण है ? अवश्य ही आज वह जिस देवकीको देख रहा है, उसके अन्तरङ्गमें—गर्भमें श्रीभगवान् हैं । जिसके भीतर भगवान् हैं, उसके दर्शनसे सद्बुद्धिका उदय होना कोई आश्चर्य नहीं है ।

साधनाका कष्ट उठाकर किसी प्रकार ऊँचे-से-ऊँचे पदपर भी पहुँच जायँ, तो भी वहाँसे नीचे गिर जाते हैं ॥३२॥ परन्तु भगवन् ! जो आपके अपने निज जन हैं, जिन्होंने आपके चरणोंमें अपनी सच्ची प्रीति जोड़ रक्खी है, वे कभी उन ज्ञानाभिमानियोंकी भाँति अपने साधन-मार्गसे गिरते नहीं। प्रभो ! वे बड़े-बड़े विघ्न डालनेवालोंकी सेनाके सरदारोंके सिरपर पैर रखकर निर्भय विचरते हैं, कोई भी विघ्न उनके मार्गमें रुकावट नहीं डाल सकते; क्योंकि उनके रक्षक आप जो हैं ॥ ३३ ॥ आप संसारकी स्थितिके लिये समस्त देहधारियोंको परम कल्याण प्रदान करनेवाला विशुद्ध सत्त्वमय, सच्चिदानन्दमय परम दिव्य मङ्गल-विग्रह प्रकट करते हैं। उस रूपके प्रकट होनेसे ही आपके भक्त वेद, कर्मकाण्ड, अष्टाङ्गयोग, तपस्या और समाधिके द्वारा आपकी आराधना करते हैं। बिना किसी आश्रयके वे किसकी आराधना करेंगे ? ॥ ३४ ॥ प्रभो ! आप सबके विधाता हैं। यदि आपका यह विशुद्ध सत्त्वमय निज स्वरूप न हो, तो अज्ञान और उसके द्वारा होनेवाले भेदभावको नष्ट करनेवाला अपरोक्ष ज्ञान ही किसीको न हो। जगत्में दीखनेवाले तीनों गुण आपके हैं और आपके द्वारा ही प्रकाशित होते हैं, यह सत्य है। परन्तु इन गुणोंकी प्रकाशक वृत्तियोंसे आपके स्वरूपका केवल अनुमान ही होता है, वास्तविक स्वरूपका साक्षात्कार नहीं होता। (आपके स्वरूपका साक्षात्कार तो आपके इस विशुद्ध सत्त्वमय स्वरूपकी सेवा करनेपर आपकी कृपासे ही होता है) ॥ ३५ ॥ भगवन् ! मन और वेद-वाणीके द्वारा केवल आपके स्वरूपका अनुमानमात्र होता है। क्योंकि आप उनके द्वारा दृश्य नहीं; उनके साक्षी हैं। इसलिये आपके गुण, जन्म और कर्म आदिके द्वारा आपके नाम और रूपका निरूपण नहीं किया जा सकता। फिर भी प्रभो ! आपके भक्तजन उपासना आदि क्रियायोगोंके द्वारा आपका साक्षात्कार तो करते ही हैं ॥ ३६ ॥ जो पुरुष आपके मङ्गलमय नामों और रूपोंका श्रवण, कीर्तन, स्मरण और ध्यान करता है और आपके चरणकमलोंकी सेवामें ही अपना चित्त लगाये रहता है—उसे फिर जन्म-मृत्युरूप संसारके चक्रमें नहीं आना पड़ता ॥ ३७ ॥ सम्पूर्ण दुःखोंके हरनेवाले भगवन् ! आप सर्वेश्वर हैं। यह पृथ्वी तो आपका चरणकमल ही है। आपके अवतारसे इसका भार दूर हो गया। धन्य है ! प्रभो ! हमारे लिये यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि हमलोग आपके सुन्दर-सुन्दर चिह्नोंसे युक्त चरणकमलोंके द्वारा विभूषित पृथ्वीको देखेंगे और स्वर्गलोकको भी आपकी कृपासे कृतार्थ देखेंगे ॥ ३८ ॥ प्रभो ! आप अजन्मा हैं। यदि आपके जन्मके कारणके सम्बन्धमें हम कोई तर्कना करें, तो यही कह सकते हैं कि यह आपका एक लीला-विनोद है। ऐसा कहनेका कारण यह है कि आप तो द्वैतके लेशसे रहित सर्वाधिष्ठानस्वरूप हैं और इस जगत्की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय अज्ञानके द्वारा आपमें आरोपित हैं ॥ ३९ ॥ प्रभो ! आपने जैसे अनेकों बार मत्स्य, हयग्रीव, कच्छप, नृसिंह, वराह, हंस, राम, परशुराम और वामन अवतार धारण करके हमलोगोंकी और तीनों लोकोंकी रक्षा की है—वैसे ही आप इस बार भी पृथ्वीका भार हरण कीजिये। यदुनन्दन ! हम आपके चरणोंमें वन्दना करते हैं' ॥ ४० ॥ [देवकीजीको सम्बोधित करके] 'माताजी ! यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि आपकी कोखमें हम सबका कल्याण करनेके लिये स्वयं भगवान् पुरुषोत्तम अपने ज्ञान, बल आदि अंशोंके साथ पधारे हैं। अब आप कंससे तनिक भी मत डरिये। अब तो वह कुछ ही दिनोंका मेहमान है। आपका पुत्र यदुवंशकी रक्षा करेगा' ॥ ४१ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! ब्रह्मादि देवताओंने इस प्रकार भगवान्की स्तुति की। उनका रूप 'यह है' इस प्रकार निश्चितरूपसे तो कहा नहीं जा सकता, सब अपनी-अपनी मतिके अनुसार उसका निरूपण करते हैं। इसके बाद ब्रह्मा और शङ्करजीको आगे करके देवगण स्वर्गमें चले गये ॥ ४२ ॥

तीसरा अध्याय

भगवान् श्रीकृष्णका प्राकट्य

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! अब समस्त शुभ गुणोंसे युक्त बहुत सुहावना समय आया । रोहिणी नक्षत्र था । आकाशके सभी नक्षत्र, ग्रह और तारे शान्त—सौम्य हो रहे थे* ॥१॥ दिशाएँ स्वच्छ—प्रसन्न थीं । निर्मल आकाशमें तारे जगमगा रहे थे । पृथ्वीके बड़े-बड़े नगर, छोटे-छोटे गाँव, अहीरोंकी बस्तियाँ और हीरे आदिकी खानें मङ्गल-

* जैसे अन्तःकरण शुद्ध होनेपर उसमें भगवान्‌का आविर्भाव होता है, श्रीकृष्णावतारके अवसरपर भी ठीक उसी प्रकारका समष्टिकी शुद्धिका वर्णन किया गया है । इसमें काल, दिशा, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन और आत्मा—इन नौ द्रव्योंका अलग-अलग नामोल्लेख करके साधकके लिये एक अत्यन्त उपयोगी साधन-पद्धतिकी ओर संकेत किया गया है ।

काल—

भगवान् कालसे परे हैं । शास्त्रों और सत्पुरुषोंके द्वारा ऐसा निरूपण सुनकर काल मानो क्रुद्ध हो गया था और रुद्ररूप धारण करके सबको निगल रहा था । आज जब उसे मालूम हुआ कि स्वयं परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण मेरे अंदर अवतीर्ण हो रहे हैं, तब वह आनन्दसे भर गया और समस्त सद्‌गुणोंको धारणकर तथा सुहावना बनकर प्रकट हो गया ।

दिशा—

१. प्राचीन शास्त्रोंमें दिशाओंको देवी माना गया है । उनके एक-एक स्वामी भी होते हैं—जैसे प्राचीके इन्द्र, प्रतीचीके वरुण आदि । कंसके राज्य-कालमें ये देवता पराधीन—कैदी हो गये थे । अब भगवान् श्रीकृष्णके अवतारसे देवताओंकी गणनाके अनुसार ग्यारह-बारह दिनोंमें ही उन्हें छुटकारा मिल जायगा, इसलिये अपने पतियोंके सङ्गम-सौभाग्यका अनुसंधान करके देवियाँ प्रसन्न हो गयीं । जो देव एवं दिशाके परिच्छेदसे रहित हैं, वे ही प्रभु भारत देशके व्रज-प्रदेशमें आ रहे हैं, यह अपूर्व आनन्दोत्सव भी दिशाओंकी प्रसन्नताका हेतु है ।

२. संस्कृत-साहित्यमें दिशाओंका एक नाम 'आशा' भी है । दिशाओंकी प्रसन्नताका एक अर्थ यह भी है कि अब सत्पुरुषोंकी आशा-अभिलाषा पूर्ण होगी ।

३. विराट् पुरुषके अवयव-संस्थानका वर्णन करते समय दिशाओंको उनका कान बताया गया है । श्रीकृष्णके अवतारके अवसरपर दिशाएँ मानो यह सोचकर प्रसन्न हो गयीं कि प्रभु असुर-अघासुरोंके उपद्रवसे दुखी प्राणियोंकी प्रार्थना सुननेके लिये सतत सावधान हैं ।

पृथ्वी—

१. पुराणोंमें भगवान्‌की दो पत्नियोंका उल्लेख मिलता है—एक श्रीदेवी और दूसरी भूदेवी । ये दोनों चल-सम्पत्ति और अचल-सम्पत्तिकी स्वामिनी हैं । इनके पति हैं—भगवान्, जीव नहीं । जिस समय श्रीदेवीके निवासस्थान वैकुण्ठसे उतरकर भगवान् भूदेवीके निवासस्थान पृथ्वीपर आने लगे, तब जैसे परदेशसे पतिके आगमनका समाचार सुनकर पत्नी सज-धजकर अगवानी करनेके लिये निकलती है, वैसे पृथ्वीका मङ्गलमयी होना, मङ्गलचिह्नोंको धारण करना स्वाभाविक ही है ।

२. भगवान्‌के श्रीचरण मेरे वक्षःस्थलपर पड़ेंगे, अपने सौभाग्यका ऐसा अनुसन्धान करके पृथ्वी आनन्दित हो गयी ।

३. वामन ब्रह्मचारी थे । परशुरामजीने ब्राह्मणोंको दान दे दिया । श्रीरामचन्द्रने मेरी पुत्री जानकीसे विवाह कर लिया । इसलिये उन अवतारोंमें मैं भगवान्‌से जो सुख नहीं प्राप्त कर सकी, वही श्रीकृष्णसे प्राप्त करूँगी । यह सोचकर पृथ्वी मङ्गलमयी हो गयी ।

४. अपने पुत्र मङ्गलको गोदमें लेकर पतिदेवका स्वागत करने चली ।

जल (नदियाँ)—

१. नदियोंने विचार किया कि रामावतारमें सेतु-बन्धके बहाने हमारे पिता पर्वतोंको हमारी ससुराल समुद्रमें पहुँचाकर इन्होंने हमें मायकेका सुख दिया था । अब इनके शुभागमनके अवसरपर हमें भी प्रसन्न होकर इनका स्वागत करना चाहिये ।

भय हो रही थीं ॥ २ ॥ नदियोंका जल निर्मल हो गया था। रात्रिके समय भी सरोवरोमे कमल खिल रहे थे। वनमें वृक्षोंकी पंक्तियाँ रंग-बिरंगे पुष्पोंके गुच्छोंसे लद गयी थीं। कहीं पक्षी चहक रहे थे, तो कहीं भौंरे गुनगुना रहे थे ॥ ३ ॥ उस समय परम पवित्र और शीतल-मन्द-सुगन्ध वायु अपने स्पर्शसे लोगोंको सुखदान करती हुई बह रही थी। ब्राह्मणोंके अग्निहोत्रकी कभी न बुझनेवाली अग्नियाँ जो कंसके अत्याचारसे बुझ गयी थीं, वे इस समय अपने-आप जल उठीं ॥ ४ ॥

संत पुरुष पहलेसे ही चाहते थे कि असुरोंकी बढ़ती न

२. नदियाँ सब गङ्गाजीसे कहती थीं—'तुमने हमारे पिता पर्वत देखे हैं, अपने पिता भगवान् विष्णुके दर्शन कराओ।' गङ्गाजीने सुनी-अनसुनी कर दी। अब वे इसलिये प्रसन्न हो गयीं कि हम स्वयं देख लेंगी।

३. यद्यपि भगवान् समुद्रमें नित्य निवास करते हैं, फिर भी ससुराल होनेके कारण वे उन्हें वहाँ देख नहीं पातीं। अब उन्हें पूर्णरूपसे देख सकेंगी, इसलिये वे निर्मल हो गयीं।

४. निर्मल हृदयको भगवान् मिलते हैं, इसलिये वे निर्मल हो गयीं।

५. नदियोंको जो सौभाग्य किसी भी अवतारमें नहीं मिला, वह कृष्णावतारमें मिला। श्रीकृष्णकी चतुर्थ पटरानी हैं—श्रीकालिन्दीजी। अवतार लेते ही यमुनाजीके तटपर जाना, ग्वालबाल एवं गोपियोंके साथ जल-क्रीडा करना, उन्हें अपनी पटरानी बनाना—इन सब बातोंको सोचकर नदियाँ आनन्दसे भर गयीं।

ह्रद—

कालिय-दमन करके कालिय-दहका शोधन, ग्वालबालों और अक्रूरको ब्रह्म-ह्रदमें ही अपने स्वरूपके दर्शन आदि स्व-सम्बन्धी लीलाओंका अनुसन्धान करके ह्रदोंने कमलके बहाने अपने प्रफुल्लित हृदयको ही श्रीकृष्णके प्रति अर्पित कर दिया। उन्होंने कहा कि 'प्रभो! भले ही हमे लोग जड समझा करें, आप हमें कभी स्वीकार करेंगे, इस भावी सौभाग्यके अनुसन्धानसे हम सहृदय हो रहे हैं।'

अग्नि—

१. इस अवतारमें श्रीकृष्णने व्योमासुर, तृणावर्त, कालियके दमनसे आकाश, वायु और जलकी शुद्धि की है। मृद्-भक्षणसे पृथ्वीकी और अग्निपानसे अग्निकी। भगवान् श्रीकृष्णने दो बार अग्निको अपने मुँहमे धारण किया। इस भावी सुखका अनुसन्धान करके ही अग्निदेव शान्त होकर प्रज्वलित होने लगे।

२. देवताओंके लिये यज्ञ-भाग आदि बंद हो जानेके कारण अग्निदेव भी भूखे ही थे। अब श्रीकृष्णावतारसे अपने भोजन मिलनेकी आशासे अग्निदेव प्रसन्न होकर प्रज्वलित हो उठे।

वायु—

१. उदारशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्णके जन्मके अवसरपर वायुने सुख लुटाना प्रारम्भ किया; क्योंकि समान शीलसे ही मैत्री होती है। जैसे स्वामीके सामने सेवक, प्रजा अपने गुण प्रकट करके उसे प्रसन्न करती है, वैसे ही वायु भगवान्के सामने अपने गुण प्रकट करने लगे।

२. आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्रके मुखारविन्दपर जब श्रमजनित स्वेदबिन्दु आ जायँगे, तब मैं ही शीतल-मन्द-सुगन्ध गतिसे उसे सुखाऊँगा—यह सोचकर पहलेसे ही वायु सेवाका अभ्यास करने लगा।

३. यदि मनुष्यको प्रभु-चरणारविन्दके दर्शनकी लालसा हो तो उसे विश्वकी सेवा ही करनी चाहिये, मानो यह उपदेश करता हुआ वायु सबकी सेवा करने लगा।

४. रामावतारमे मेरे पुत्र हनुमान्ने भगवान्की सेवा की, इससे मैं कृतार्थ ही हूँ; परन्तु इस अवतारमें, मुझे स्वयं ही सेवा कर लेनी चाहिये। इस विचारसे वायु लोगोंको सुख पहुँचाने लगा।

५. सम्पूर्ण विश्वके प्राण वायुने सम्पूर्ण विश्वकी ओरसे भगवान्के स्वागत-समारोहमें प्रतिनिधित्व किया।

आकाश—

१. आकाशकी एकता, आधारता, विशालता और समताकी उपमा तो सदासे ही भगवान्के साथ दी जाती रही, परन्तु अब उसकी झूठी नीलिमा भी भगवान्के अङ्गसे उपमा देनेसे चरितार्थ हो जायगी, इसलिये आकाशने मानो आनन्दोत्सव मनानेके लिये नीले चँदोवेमें हीरोंके समान तारोंकी झालरें लटका ली हैं।

होने पाये। अब उनका मन सहसा प्रसन्नतासे भर गया। जिस समय भगवान्‌के आविर्भावका अवसर आया, स्वर्गमें देवताओंकी दुन्दुभियाँ अपने-आप बज उठीं ॥ ५ ॥ किन्नर और गन्धर्व मधुर स्वरमें गाने लगे तथा सिद्ध और चारण भगवान्‌के मङ्गलमय गुणोंकी स्तुति करने लगे। विद्याधरियाँ अप्सराओंके साथ नाचने लगीं ॥ ६ ॥ बड़े-बड़े देवता और ऋषि-मुनि आनन्दसे भरकर पुष्पोंकी वर्षा करने लगे* । जलसे भरे हुए बादल समुद्रके पास जाकर धीरे-धीरे गर्जना करने लगे† ॥ ७ ॥ जन्म-मृत्युके चक्रसे छुड़ानेवाले जनार्दनके अवतारका समय था

२. स्वामीके शुभागमनके अवसरपर जैसे सेवक स्वच्छ वेष-भूषा धारण करते हैं और शान्त हो जाते हैं, इसी प्रकार आकाशके सब नक्षत्र, ग्रह, तारे शान्त एवं निर्मल हो गये। वक्रता, अतिचार और युद्ध छोड़कर श्रीकृष्णका स्वागत करने लगे।

नक्षत्र—

मैं देवकीके गर्भसे जन्म ले रहा हूँ तो रोहिणीके सन्तोषके लिये कम-से-कम रोहिणी नक्षत्रमें जन्म तो लेना ही चाहिये। अथवा चन्द्रवंशमें जन्म ले रहा हूँ, तो चन्द्रमाकी सबसे प्यारी पत्नी रोहिणीमें ही जन्म लेना उचित है। यह सोचकर भगवान्‌ने रोहिणी नक्षत्रमें जन्म लिया।

मन—

१. योगी मनका निरोध करते हैं, मुमुक्षु निर्विषय करते हैं और जिज्ञासु बाध करते हैं। तत्त्वज्ञोंने तो मनका सत्यानाश ही कर दिया। भगवान्‌के अवतारका समय जानकर उसने सोचा कि अब तो मैं अपनी पत्नी—इन्द्रियाँ और विषय—बाल-बच्चे सबके साथ ही भगवान्‌के साथ खेलूँगा। निरोध और बाधसे पिण्ड छूटा। इसीसे मन प्रसन्न हो गया।

२. निर्मलको ही भगवान् मिलते हैं, इसलिये मन निर्मल हो गया।

३. वैसे शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धका परित्याग कर देनेपर भगवान् मिलते हैं। अब तो स्वयं भगवान् ही वह सब बनकर आ रहे हैं। लौकिक आनन्द भी प्रभुमें मिलेगा। यह सोचकर मन प्रसन्न हो गया।

४. वसुदेवके मनमें निवास करके ये ही भगवान् प्रकट हो रहे हैं। वह हमारी ही जातिका है, यह सोचकर मन प्रसन्न हो गया।

५. सुमन (देवता और शुद्ध मन) को सुख देनेके लिये ही भगवान्‌का अवतार हो रहा है। यह जानकर सुमन प्रसन्न हो गये।

६. संतोंमें, स्वर्गमें और उपवनमें सुमन (शुद्ध मन, देवता और पुष्प) आनन्दित हो गये। क्यों न हो माधव (विष्णु और वसन्त) का आगमन जो हो रहा है।

भाद्रमास—

भद्र अर्थात् कल्याणका देनेवाला है। कृष्णपक्ष स्वयं कृष्णसे सम्बद्ध है। अष्टमी तिथि पक्षके बीचोंबीच सन्धि-स्थलपर पड़ती है। रात्रि योगीजनोंको प्रिय है। निशीथ यतियोंका सन्ध्याकाल और रात्रिके दो भागोंकी सन्धि है। उस समय श्रीकृष्णके आविर्भावका अर्थ है—अज्ञानके घोर अन्धकारमें दिव्य प्रकाश। निशानाथ चन्द्रके वंशमें जन्म लेना है, तो निशाके मध्यभागमें अवतीर्ण होना उचित भी है। अष्टमीके चन्द्रोदयका समय भी वही है। यदि वसुदेवजी मेरा जातकर्म नहीं कर सकते तो हमारे वंशके आदिपुरुष चन्द्रमा समुद्रस्नान करके अपने कर-किरणोंसे अमृतका वितरण करें।

* ऋषि, मुनि और देवता जब अपने सुमनकी वर्षा करनेके लिये मथुराकी ओर दौड़े, तब उनका आनन्द भी पीछे छूट गया और उनके पीछे-पीछे दौड़ने लगा। उन्होंने अपने निरोध और बाधसम्बन्धी सारे विचार त्याग कर मनको श्रीकृष्णकी ओर जानेके लिये मुक्त कर दिया, उनपर न्यौछावर कर दिया।

† १. मेघ समुद्रके पास जाकर मन्द-मन्द गर्जना करते हुए कहते—जलनिधे! यह तुम्हारे उपदेश (पास आने) का फल है कि हमारे पास जल-ही-जल हो गया। अब ऐसा कुछ उपदेश करो कि जैसे तुम्हारे भीतर भगवान् रहते हैं, वैसे हमारे भीतर भी रहें।

२. बादल समुद्रके पास जाते और कहते कि समुद्र! तुम्हारे हृदयमें भगवान् रहते हैं, हमें भी उनका दर्शन-प्यार प्राप्त करवा दो। समुद्र उन्हें थोड़ा-सा जल देकर कह देता—अपनी उत्ताल तरङ्गोंसे ढकेल देता—जाओ

निशीथ! चारों ओर अन्धकारका साम्राज्य था। उसी समय सबके हृदयमें विराजमान भगवान् विष्णु देवरूपिणी देवकीके गर्भसे प्रकट हुए, जैसे पूर्व दिशामें सोलहों कलाओंसे पूर्ण चन्द्रमाका उदय हो गया हो ॥ ८॥

वसुदेवजीने देखा, उनके सामने एक अद्भुत बालक है। उसके नेत्र कमलके समान कोमल और विशाल हैं। चार सुन्दर हाथोंमें शङ्ख, गदा, चक्र और कमल लिये हुए हैं। वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न—अत्यन्त सुन्दर सुवर्णमयी रेखा है। गलेमें कौस्तुभमणि झिलमिला रही है। वर्षाकालीन मेघके समान परम सुन्दर श्यामल शरीर-पर मनोहर पीताम्बर फहरा रहा है। बहुमूल्य वैदूर्यमणि-के किरीट और कुण्डलकी कान्तिसे सुन्दर-सुन्दर घुँघराले बाल सूर्यकी किरणोंके समान चमक रहे हैं। कमरमें चमचमाती करधनीकी लड़ियाँ लटक रही हैं। बाँहोंमें बाजूबंद और कलाइयोंमें कङ्कण शोभायमान हो रहे हैं। इन सब आभूषणोंसे सुशोभित बालकके अङ्ग-अङ्गसे अनोखी छटा छिटक रही है ॥ ९-१० ॥ जब वसुदेवजीने देखा कि मेरे पुत्रके रूपमें तो स्वयं भगवान् ही आये हैं, तब पहले तो उन्हें असीम आश्चर्य हुआ; फिर आनन्दसे उनकी आँखें खिल उठीं। उनका रोम-रोम परमानन्दमें मग्न हो गया। श्रीकृष्णका जन्मोत्सव मनानेकी उतावलीमें उन्होंने उसी समय ब्राह्मणोंके लिये दस हजार गायोंका सङ्कल्प कर दिया॥ ११ ॥ परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण अपनी अङ्गकान्तिसे सूतिकागृहको जगमग कर रहे थे। जब वसुदेवजीको यह निश्चय हो गया कि ये तो परम पुरुष परमात्मा ही हैं, तब भगवान्‌का प्रभाव जान लेनेसे उनका सारा भय जाता रहा। अपनी बुद्धि स्थिर करके उन्होंने भगवान्‌के चरणोंमें अपना सिर झुका दिया और फिर हाथ जोड़कर वे उनकी स्तुति करने लगे—॥१२॥

वसुदेवजीने कहा—मैं समझ गया कि आप प्रकृति-से अतीत साक्षात् पुरुषोत्तम हैं। आपका स्वरूप है केवल अनुभव और केवल आनन्द। आप समस्त बुद्धियोंके एकमात्र साक्षी हैं॥ १३ ॥ आप ही सर्गके आदिमें अपनी प्रकृतिसे इस त्रिगुणमय जगत्‌की सृष्टि करते हैं। फिर उसमें प्रविष्ट न होनेपर भी आप प्रविष्टके समान जान पड़ते हैं॥ १४ ॥ जैसे जबतक महत्तत्त्व आदि कारण-तत्त्व पृथक्-पृथक् रहते हैं, तबतक उनकी शक्ति भी पृथक्-पृथक् होती है; जब वे इन्द्रियादि सोलह विकारोंके साथ मिलते हैं, तभी इस ब्रह्माण्डकी रचना करते हैं और इसे उत्पन्न करके इसीमें अनुप्रविष्ट-से जान पड़ते हैं; परन्तु सच्ची बात तो यह है कि वे किसी भी पदार्थमें प्रवेश नहीं करते। ऐसा होनेका कारण यह है कि उनसे बनी हुई जो भी वस्तु है, उसमें वे पहलेसे ही विद्यमान रहते हैं॥ १५-१६ ॥ ठीक वैसे ही बुद्धिके द्वारा केवल गुणोंके लक्षणोंका ही अनुमान किया जाता है और इन्द्रियोंके द्वारा केवल गुणमय विषयोंका ही ग्रहण होता है। यद्यपि आप उनमें रहते हैं, फिर भी उन गुणोंके ग्रहणसे आपका ग्रहण नहीं होता। इसका कारण यह है कि आप सब कुछ हैं, सबके अन्तर्यामी हैं और परमार्थ सत्य, आत्मस्वरूप हैं। गुणोंका आवरण आपको ढक नहीं सकता। इसलिये आपमें न बाहर है न भीतर। फिर आप किसमें प्रवेश करेंगे? (इसलिये प्रवेश न करनेपर भी आप प्रवेश किये हुएके समान दीखते हैं) ॥ १७ ॥ जो अपने इन दृश्य गुणोंको अपनेसे पृथक् मानकर सत्य समझता है, वही अज्ञानी है। क्योंकि विचार करनेपर ये देह-गेह आदि पदार्थ वाग्विलास-के सिवा और कुछ नहीं सिद्ध होते। विचारके द्वारा जिस वस्तुका अस्तित्व सिद्ध नहीं होता, बल्कि जो बाधित हो जाती है, उसको सत्य माननेवाला पुरुष बुद्धिमान् कैसे हो सकता है? ॥ १८ ॥ प्रभो! कहते हैं कि आप स्वयं समस्त क्रियाओं, गुणों और विकारोंसे रहित हैं। फिर भी इस जगत्‌की सृष्टि, स्थिति और प्रलय आपसे ही होते हैं। यह बात परम ऐश्वर्यशाली परब्रह्म परमात्मा आपके लिये असंगत नहीं है। क्योंकि तीनों

अभी विश्वकी सेवा करके अन्तःकरण शुद्ध करो, तब भगवान्‌के दर्शन होंगे। स्वयं भगवान् मेघश्याम बनकर समुद्रसे बाहर व्रजमें आ रहे हैं। हम धूपमें उनपर छाया करेंगे, अपनी फुहियाँ बरसाकर जीवन न्यौछावर करेंगे और उनकी बाँसुरीके स्वरपर ताल देंगे। अपने इस सौभाग्यका अनुसन्धान करके बादल समुद्रके पास पहुँचे और मन्द-मन्द गर्जना करने लगे। मन्द-मन्द इसलिये कि यह ध्वनि प्यारे श्रीकृष्णके कानोंतक न पहुँच जाय।

अद्भुत बालक

गुणोंके आश्रय आप ही हैं, इसलिये उन गुणोंके कार्य आदिका आपमें ही आरोप किया जाता है ॥ १९ ॥ आप ही तीनों लोकोंकी रक्षा करनेके लिये अपनी मायासे सत्त्वमय शुक्लवर्ण (पोषणकारी विष्णुरूप) धारण करते हैं, उत्पत्तिके लिये रजःप्रधान रक्तवर्ण (सृजनकारी ब्रह्मारूप) और प्रलयके समय तमोगुणप्रधान कृष्णवर्ण (संहारकारी रुद्ररूप) स्वीकार करते हैं ॥ २० ॥ प्रभो ! आप सर्वशक्तिमान् और सबके स्वामी हैं । इस संसारकी रक्षाके लिये ही आपने मेरे घर अवतार लिया है । आजकल कोटि-कोटि असुर सेनापतियोंने राजाका नाम धारण कर रक्खा है और अपने अधीन बड़ी-बड़ी सेनाएँ कर रक्खी हैं । आप उन सबका संहार करेंगे ॥ २१ ॥ देवताओंके भी आराध्यदेव प्रभो ! यह कंस बड़ा दुष्ट है । इसे जब मालूम हुआ कि आपका अवतार हमारे घर होनेवाला है, तब उसने आपके भयसे आपके बड़े भाइयों-को मार डाला । अभी उसके दूत आपके अवतारका समाचार उसे सुनायेंगे और वह अभी-अभी हाथमें शस्त्र लेकर दौड़ा आयेगा ॥ २२ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! इधर देवकीने देखा कि मेरे पुत्रमें तो पुरुषोत्तम भगवान्‌के सभी लक्षण मौजूद हैं । पहले तो उन्हें कंससे कुछ भय मालूम हुआ, परन्तु फिर वे बड़े पवित्र भावसे मुसकराती हुई स्तुति करने लगीं ॥ २३ ॥

माता देवकीने कहा—प्रभो ! वेदोंने आपके जिस रूपको अव्यक्त और सबका कारण बतलाया है, जो ब्रह्म, ज्योतिःस्वरूप, समस्त गुणोंसे रहित और विकारहीन है, जिसे विशेषणरहित—अनिर्वचनीय, निष्क्रिय एवं केवल विशुद्ध सत्ताके रूपमें कहा गया है—वही बुद्धि आदिके प्रकाशक विष्णु आप स्वयं हैं ॥ २४ ॥ जिस समय ब्रह्माकी पूरी आयु—दो परार्ध समाप्त हो जाते हैं, कालशक्तिके प्रभावसे सारे लोक नष्ट हो जाते हैं, पञ्च महाभूत अहङ्कारमें, अहङ्कार महत्तत्त्वमें और महत्तत्त्व प्रकृति-में लीन हो जाता है—उस समय एकमात्र आप ही शेष रह जाते हैं । इसीसे आपका एक नाम 'शेष' भी है ॥ २५ ॥ प्रकृतिके एकमात्र सहायक प्रभो ! निमेषसे लेकर वर्ष-पर्यन्त अनेक विभागोंमें विभक्त जो काल है, जिसकी चेष्टासे यह सम्पूर्ण विश्व सचेष्ट हो रहा है और जिसकी कोई सीमा नहीं है, वह आपकी लीलामात्र है । आप सर्वशक्तिमान् और परम कल्याणके आश्रय हैं । मैं आपकी शरण लेती हूँ ॥ २६ ॥ प्रभो ! यह जीव मृत्युग्रस्त हो रहा है । यह मृत्युरूप कराल व्यालसे भयभीत होकर सम्पूर्ण लोक-लोकान्तरोंमें भटकता रहा है; परन्तु इसे कभी कहीं भी ऐसा स्थान न मिल सका, जहाँ यह निर्भय होकर रहे । आज बड़े भाग्यसे इसे आपके चरणारविन्दोंकी शरण मिल गयी । अतः अब यह स्वस्थ होकर सुखकी नींद सो रहा है । औरोंकी तो बात ही क्या, स्वयं मृत्यु भी इससे भयभीत होकर भाग गयी है ॥ २७ ॥ प्रभो ! आप हैं भक्तभयहारी । और हमलोग इस दुष्ट कंससे बहुत ही भयभीत हैं । अतः आप हमारी रक्षा कीजिये । आपका यह चतुर्भुज दिव्य-रूप ध्यानकी वस्तु है । इसे केवल मांस-मज्जामय शरीर-पर ही दृष्टि रखनेवाले देहाभिमानी पुरुषोंके सामने प्रकट मत कीजिये ॥ २८ ॥ मधुसूदन ! इस पापी कंसको यह बात मालूम न हो कि आपका जन्म मेरे गर्भसे हुआ है । मेरा धैर्य टूट रहा है । आपके लिये मैं कंससे बहुत डर रही हूँ ॥ २९ ॥ विश्वात्मन् ! आपका यह रूप अलौकिक है । आप शङ्ख, चक्र, गदा और कमलकी शोभासे युक्त अपना यह चतुर्भुजरूप छिपा लीजिये ॥ ३० ॥ प्रलयके समय आप इस सम्पूर्ण विश्वको अपने शरीरमें वैसे ही स्वाभाविक रूपसे धारण करते हैं, जैसे कोई मनुष्य अपने शरीरमें रहनेवाले छिद्ररूप आकाशको । वही परम पुरुष परमात्मा आप मेरे गर्भवासी हुए, यह आपकी अद्भुत मनुष्य-लीला नहीं तो और क्या है ? ॥ ३१ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—देवि ! स्वायम्भुव मन्वन्तरमें जब तुम्हारा पहला जन्म हुआ था, उस समय तुम्हारा नाम था पृश्नि और ये वसुदेव सुतपा नामके प्रजापति थे । तुम दोनोंके हृदय बड़े ही शुद्ध थे ॥ ३२ ॥ जब ब्रह्माजीने तुम दोनोंको सन्तान उत्पन्न करनेकी आज्ञा दी, तब तुमलोगोंने इन्द्रियोंका दमन करके उत्कृष्ट तपस्या की ॥ ३३ ॥ तुम दोनोंने वर्षा, वायु, घाम, शीत, उष्ण आदि कालके विभिन्न गुणोंका सहन किया और प्राणा-यामके द्वारा अपने मनके मल धो डाले ॥ ३४ ॥ तुम दोनों कभी सूखे पत्ते खा लेते और कभी हवा पीकर ही

रह जावे। तुम्हारा चित्त बड़ा शान्त था। इस प्रकार तुमलोगोंने मुझसे अभीष्ट वस्तु प्राप्त करनेकी इच्छासे मेरी आराधना की ॥ ३५ ॥ मुझमें चित्त लगाकर ऐसा परम दुष्कर और घोर तप करते-करते देवताओंके बारह हजार वर्ष बीत गये ॥ ३६ ॥ पुण्यमयी देवि! उस समय मैं तुम दोनोंपर प्रसन्न हुआ। क्योंकि तुम दोनोंने तपस्या, श्रद्धा और प्रेममयी भक्तिसे अपने हृदयमें नित्य-निरन्तर मेरी भावना की थी। उस समय तुम दोनोंकी अभिलाषा पूर्ण करनेके लिये वर देनेवालोंका राजा मैं इसी रूपसे तुम्हारे सामने प्रकट हुआ। जब मैंने कहा कि 'तुम्हारी जो इच्छा हो, मुझसे माँग लो,' तब तुम दोनोंने मेरे-जैसा पुत्र माँगा ॥ ३७-३८ ॥ उस समयतक विषय-भोगोंसे तुमलोगोंका कोई सम्बन्ध नहीं हुआ था। तुम्हारे कोई सन्तान भी न थी। इसलिये मेरी मायासे मोहित होकर तुम दोनोंने मुझसे मोक्ष नहीं माँगा ॥ ३९ ॥ तुम्हें मेरे-जैसा पुत्र होनेका वर प्राप्त हो गया और मैं वहाँसे चला गया। अब सफलमनोरथ होकर तुमलोग विषयोंका भोग करने लगे ॥ ४० ॥ मैंने देखा कि संसारमें शील, स्वभाव, उदारता तथा अन्य गुणोंमें मेरे-जैसा दूसरा कोई नहीं है; इसलिये मैं ही तुम दोनोंका पुत्र हुआ और उस समय मैं 'पृश्निगर्भ'के नामसे विख्यात हुआ ॥ ४१ ॥ फिर दूसरे जन्ममें तुम हुईं अदिति और वसुदेव हुए कश्यप। उस समय भी मैं तुम्हारा पुत्र हुआ। मेरा नाम था 'उपेन्द्र'। शरीर छोटा होनेके कारण लोग मुझे 'वामन' भी कहते थे ॥ ४२ ॥ सती देवकी! तुम्हारे इस तीसरे जन्ममें भी मैं उसी रूपसे फिर तुम्हारा पुत्र हुआ हूँ*। मेरी वाणी सर्वदा सत्य होती है ॥ ४३ ॥ मैंने तुम्हें अपना यह रूप इसलिये दिखला दिया है कि तुम्हें मेरे पूर्व अवतारोंका स्मरण हो जाय। यदि मैं ऐसा नहीं करता, तो केवल मनुष्य-शरीरसे मेरे अवतारकी पहचान नहीं हो पाती ॥ ४४ ॥ तुम दोनों मेरे प्रति पुत्रभाव तथा निरन्तर ब्रह्मभाव रखना। इस प्रकार वात्सल्य-स्नेह और चिन्तनके द्वारा तुम्हें मेरे परम पदकी प्राप्ति होगी॥४५॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—भगवान् इतना कहकर चुप हो गये। अब उन्होंने अपनी योगमायासे पिता-माताके देखते-देखते तुरंत एक साधारण शिशुका रूप धारण कर लिया ॥ ४६ ॥ तब वसुदेवजीने भगवान्‌की प्रेरणासे अपने पुत्रको लेकर सूतिकागृहसे बाहर निकलनेकी इच्छा की। उसी समय नन्दपत्नी यशोदाके गर्भसे उस योगमायाका जन्म हुआ, जो भगवान्‌की शक्ति होनेके कारण उनके समान ही जन्म-रहित है ॥ ४७ ॥ उसी योगमायाने द्वारपाल और पुरवासियोंकी समस्त इन्द्रिय-वृत्तियोंकी चेतना हर ली, वे सब-के-सब अचेत होकर सो गये। बंदीगृहके सभी दरवाजे बंद थे। उनमें बड़े-बड़े किवाड़, लोहेकी जंजीरें और ताले जड़े हुए थे। उनके बाहर जाना बड़ा ही कठिन था; परन्तु वसुदेवजी भगवान् श्रीकृष्णको गोदमें लेकर ज्यों ही उनके निकट पहुँचे, त्यों ही वे सब दरवाजे आप-से-आप खुल गये †। ठीक वैसे ही, जैसे सूर्योदय होते ही अन्धकार दूर हो जाता है। उस समय बादल धीरे-धीरे गरजकर जलकी फुहारें छोड़ रहे थे। इसलिये शेषजी अपने फनोंसे जलको रोकते हुए भगवान्‌के पीछे-पीछे चलने लगे ‡॥ ४८-४९॥ उन दिनों बार-बार वर्षा होती रहती थी, इससे यमुनाजी

* भगवान् श्रीकृष्णने विचार किया कि मैंने इनको वर तो यह दे दिया कि मेरे सदृश पुत्र होगा, परन्तु इसको मैं पूरा नहीं कर सकता। क्योंकि वैसा कोई है ही नहीं। किसीको कोई वस्तु देनेकी प्रतिज्ञा करके पूरी न कर सके तो उसके समान तिगुनी वस्तु देनी चाहिये। मेरे सदृश पदार्थके समान मैं हूँ। अतएव मैं अपनेको तीन बार इनका पुत्र बनाऊँगा।

† जिनके नाम-श्रवणमात्रसे असख्य जन्मार्जित प्रारब्ध-बन्धन ध्वस्त हो जाते हैं, वे ही प्रभु जिसकी गोदमें आ गये, उसकी हथकड़ी-बेड़ी खुल जाय, इसमें क्या आश्चर्य है?

‡ बलरामजीने विचार किया कि मैं बड़ा भाई बना तो क्या, सेवा ही मेरा मुख्य धर्म है। इसलिये वे अपने शेष रूपसे श्रीकृष्णके छत्र बनकर जलका निवारण करते हुए चले। उन्होने सोचा कि यदि मेरे रहते मेरे स्वामीको वर्षासे कष्ट पहुँचा तो मुझे धिक्कार है। इसलिये उन्होंने अपना सिर आगे कर दिया। अथवा उन्होंने यह सोचा कि ये विष्णुपद (आकाश) वासी मेघ परोपकारके लिये अधःपतित होना स्वीकार कर लेते हैं, इसलिये बलिके समान सिरसे बन्दनीय हैं।

बहुत बढ़ गयी थीं* । उनका प्रवाह गहरा और तेज हो गया था । तरल तरङ्गोंके कारण जलपर फेन-ही-फेन हो रहा था । सैकड़ों भयानक भँवर पड़ रहे थे । जैसे सीतापति भगवान् श्रीरामजीको समुद्रने मार्ग दे दिया था, वैसे ही यमुनाजीने भगवान्‌को मार्ग दे दिया† ॥५०॥ वसुदेवजीने नन्दबाबाके गोकुलमें जाकर देखा कि सब-के-सब गोप नींदसे अचेत पड़े हुए हैं । उन्होंने अपने पुत्रको यशोदाजीकी शय्यापर सुला दिया और उनकी नवजात कन्या लेकर वे बंदीगृहमें लौट आये ॥ ५१ ॥ जेलमें पहुँचकर वसुदेवजीने उस कन्याको देवकीकी शय्यापर सुला दिया और अपने पैरोंमें बेड़ियाँ डाल लीं तथा पहलेकी तरह वे बंदीगृहमें बंद हो गये ॥ ५२ ॥ उधर नन्दपत्नी यशोदाजीको इतना तो मालूम हुआ कि कोई सन्तान हुई है, परन्तु वे यह न जान सकीं कि पुत्र है या पुत्री । क्योंकि एक तो उन्हें बड़ा परिश्रम हुआ था और दूसरे योगमायाने उन्हें अचेत कर दिया था‡ ॥ ५३ ॥

चौथा अध्याय

कंसके हाथसे छूटकर योगमायाका आकाशमें जाकर भविष्यवाणी करना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जब वसुदेवजी लौट आये, तब नगरके बाहरी और भीतरी सब दरवाजे अपने आप ही पहलेकी तरह बंद हो गये । इसके बाद नवजात शिशुके रोनेकी ध्वनि सुनकर द्वारपालोंकी नींद

---

* १. श्रीकृष्ण शिशुको अपनी ओर आते देखकर यमुनाजीने विचार किया—अहा ! जिनके चरणोंकी धूलि सत्पुरुषोंके मानस-ध्यानका विषय है, वे ही आज मेरे तटपर आ रहे हैं । वे आनन्द और प्रेमसे भर गयीं, आँखोंसे इतने आँसू निकले कि बाढ़ आ गयी ।

२. मुझे यमराजकी बहिन समझकर श्रीकृष्ण अपनी आँख न फेर लें, इसलिये वे अपने विशाल जीवनका प्रदर्शन करने लगीं ।

३. ये गोपालनके लिये गोकुलमें जा रहे हैं, ये सहस्र-सहस्र लहरियाँ गौएँ ही तो हैं । ये उन्हींके समान इनका भी पालन करें ।

४. एक कालियनाग तो मुझमें पहलेसे ही हैं, यह दूसरे शेषनाग आ रहे हैं । अब मेरी क्या गति होगी—यह सोचकर यमुनाजी अपने थपेड़ोंसे उनका निवारण करनेके लिये बढ़ गयीं ।

† १. एकाएक यमुनाजीके मनमें विचार आया कि मेरे अगाध जलको देखकर कहीं श्रीकृष्ण यह न सोच लें कि मैं इसमें खेलूँगा कैसे, इसलिये वे तुरंत कहीं कण्ठभर, कहीं नाभिभर और कहीं घुटनोंतक जलवाली हो गयीं ।

२. जैसे दुखी मनुष्य दयालु पुरुषके सामने अपना मन खोलकर रख देता है, वैसे ही कालियनागसे त्रस्त अपने हृदयका दुःख निवेदन कर देनेके लिये यमुनाजीने भी अपना दिल खोलकर श्रीकृष्णके सामने रख दिया ।

३. मेरी नीरसता देखकर श्रीकृष्ण कहीं जलक्रीडा करना और पटरानी बनाना अस्वीकार न कर दें, इसलिये वे उच्छृङ्खलता छोड़कर बड़ी विनयसे अपने हृदयकी सङ्कोचपूर्ण रसरीति प्रकट करने लगीं ।

४. जब इन्होंने सूर्यवंशमें रामावतार ग्रहण किया, तब मार्ग न देनेपर चन्द्रमाके पिता समुद्रको बाँध दिया था । अब ये चन्द्रवंशमें प्रकट हुए हैं और मैं सूर्यकी पुत्री हूँ । यदि मैं इन्हें मार्ग न दूँगी तो ये मुझे भी बाँध देंगे । इस डरसे मानो यमुनाजी दो मार्गोंमें बँट गयीं ।

५. सत्पुरुष कहते हैं कि हृदयमें भगवान्‌के आ जानेपर अलौकिक सुख होता है । मानो उसीका उपभोग करनेके लिये यमुनाजीने भगवान्‌को अपने भीतर ले लिया ।

६. मेरा नाम कृष्णा, मेरा जल कृष्ण, मेरे बाहर श्रीकृष्ण हैं । फिर मेरे हृदयमें ही उनकी स्फूर्ति क्यों न हो ?—ऐसा सोचकर मार्ग देनेके बहाने यमुनाजीने श्रीकृष्णको अपने हृदयमें ले लिया ।

‡ भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रसङ्गमें यह प्रकट किया कि जो मुझे प्रेमपूर्वक अपने हृदयमें धारण करता है, उसके बन्धन खुल जाते हैं, जेलसे छुटकारा मिल जाता है, बड़े-बड़े फाटक टूट जाते हैं, पहरेदारोंका पता नहीं चलता, भव-नदीका जल सूख जाता है, गोकुल (इन्द्रिय-समुदाय) की वृत्तियाँ लुप्त हो जाती हैं और माया हाथमें आ जाती है ।

टूटी ॥ १ ॥ वे तुरंत भोजराज कंसके पास गये और देवकीको सन्तान होनेकी बात कही। कंस तो बड़ी आकुलता और घबराहटके साथ इसी बातकी प्रतीक्षा कर रहा था ॥ २ ॥ द्वारपालोंकी बात सुनते ही वह झटपट पलँगसे उठ खड़ा हुआ और बड़ी शीघ्रतासे सूतिकागृहकी ओर झपटा। इस बार तो मेरे कालका ही जन्म हुआ है, यह सोचकर वह विह्वल हो रहा था और यही कारण है कि उसे इस बातका भी ध्यान न रहा कि उसके बाल बिखरे हुए हैं। रास्तेमें कई जगह वह लड़खड़ाकर गिरते-गिरते बचा ॥ ३ ॥ बंदीगृहमें पहुँचनेपर सती देवकीने बड़े दुःख और करुणाके साथ अपने भाई कंससे कहा—'मेरे हितैषी भाई! यह कन्या तो तुम्हारी पुत्रवधूके समान है। स्त्रीजातिकी है; तुम्हें स्त्रीकी हत्या कदापि नहीं करनी चाहिये ॥ ४ ॥ भैया! तुमने दैववश मेरे बहुत-से अग्निके समान तेजस्वी बालक मार डाले। अब केवल यही एक कन्या बची है, इसे तो मुझे दे दो ॥ ५ ॥ अवश्य ही मैं तुम्हारी छोटी बहिन हूँ। मेरे बहुत-से बच्चे मर गये हैं, इसलिये मैं अत्यन्त दीन हूँ। मेरे प्यारे और समर्थ भाई! तुम मुझ मन्दभागिनीको यह अन्तिम सन्तान अवश्य दे दो' ॥ ६ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! कन्याको अपनी गोदमें छिपाकर देवकीजीने अत्यन्त दीनताके साथ रोते-रोते याचना की। परन्तु कंस बड़ा दुष्ट था। उसने देवकीजीको झिड़ककर उनके हाथसे वह कन्या छीन ली ॥ ७ ॥ अपनी उस नन्ही-सी नवजात भानजीके पैर पकड़कर कंसने उसे बड़े जोरसे एक चट्टानपर दे मारा। स्वार्थने उसके हृदयसे सौहार्दको समूल उखाड़ फेंका था ॥ ८ ॥ परन्तु श्रीकृष्णकी वह छोटी बहिन साधारण कन्या तो थी नहीं, देवी थी; उसके हाथसे छूटकर तुरंत आकाशमें चली गयी और अपने बड़े-बड़े आठ हाथोंमें आयुध लिये हुए दीख पड़ी ॥ ९ ॥ वह दिव्य माला, वस्त्र, चन्दन और मणिमय आभूषणोंसे विभूषित थी। उसके हाथोंमें धनुष, त्रिशूल, बाण, ढाल, तलवार, शङ्ख, चक्र और गदा—ये आठ आयुध थे ॥ १० ॥ सिद्ध, चारण, गन्धर्व, अप्सरा, किन्नर और नागगण बहुत-सी भेंटकी सामग्री समर्पित करके उसकी स्तुति कर रहे थे। उस समय देवीने कंससे यह कहा—॥ ११ ॥ 'रे मूर्ख! मुझे मारनेसे तुझे क्या मिलेगा? तेरे पूर्वजन्मका शत्रु तुझे मारनेके लिये किसी स्थानपर पैदा हो चुका है। अब तू व्यर्थ निर्दोष बालकोंकी हत्या न किया कर' ॥ १२ ॥ कंससे इस प्रकार कहकर भगवती योगमाया वहाँसे अन्तर्धान हो गयीं और पृथ्वीके अनेक स्थानोंमें विभिन्न नामोंसे प्रसिद्ध हुईं ॥ १३ ॥

देवीकी यह बात सुनकर कंसको असीम आश्चर्य हुआ। उसने उसी समय देवकी और वसुदेवको कैदसे छोड़ दिया और बड़ी नम्रतासे उनसे कहा— ॥ १४ ॥ 'मेरी प्यारी बहिन और बहनोईजी! हाय-हाय, मैं बड़ा पापी हूँ। राक्षस जैसे अपने ही बच्चोंको मार डालता है, वैसे ही मैंने तुम्हारे बहुत-से लड़के मार डाले। इस बातका मुझे बड़ा खेद है* ॥ १५ ॥ मैं इतना दुष्ट हूँ कि करुणाका तो मुझमें लेश भी नहीं है। मैंने अपने भाई-बन्धु और हितैषियोंतकका त्याग कर दिया। पता नहीं, अब मुझे किस नरकमें जाना पड़ेगा। वास्तवमें तो मैं ब्रह्मघातीके समान जीवित होनेपर भी मुर्दा ही हूँ ॥ १६ ॥ केवल मनुष्य ही झूठ नहीं बोलते, विधाता भी झूठ बोलते हैं। उसीपर विश्वास करके मैंने अपनी बहिनके बच्चे मार डाले। ओह! मैं कितना पापी हूँ ॥ १७ ॥ तुम दोनों महात्मा हो। अपने पुत्रोंके लिये शोक मत करो। उन्हें तो अपने कर्मका ही फल मिला है। सभी प्राणी प्रारब्धके अधीन हैं। इसीसे वे सदा-सर्वदा एक साथ नहीं रह सकते ॥ १८ ॥ जैसे मिट्टीके बने हुए पदार्थ बनते और बिगड़ते रहते हैं, परन्तु मिट्टीमें कोई अदल-बदल नहीं होती—वैसे ही शरीरका तो बनना बिगड़ना होता ही रहता है; परन्तु

* जिनके गर्भमें भगवान्‌ने निवास किया, जिन्हें भगवान्‌के दर्शन हुए, उन देवकी-वसुदेवके दर्शनका ही यह फल है कि कंसके हृदयमें विनय, विचार, उदारता आदि सद्गुणोंका उदय हो गया। परन्तु जबतक वह उनके सामने रहा तभीतक ये सद्गुण रहे। दुष्ट मन्त्रियोंके बीचमें जाते ही वह फिर ज्यों-का-त्यों हो गया।

आत्मापर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता ॥ १९ ॥ जो लोग इस तत्त्वको नहीं जानते, वे इस अनात्मा शरीरको ही आत्मा मान बैठते हैं । यही उलटी बुद्धि अथवा अज्ञान है । इसीके कारण जन्म और मृत्यु होते हैं । और जबतक यह अज्ञान नहीं मिटता, तबतक सुख-दुःखरूप संसारसे छुटकारा नहीं मिलता ॥ २० ॥ मेरी प्यारी बहिन ! यद्यपि मैंने तुम्हारे पुत्रोंको मार डाला है, फिर भी तुम उनके लिये शोक न करो । क्योंकि सभी प्राणियोंको विवश होकर अपने कर्मोंका फल भोगना पड़ता है ॥ २१ ॥ अपने स्वरूपको न जाननेके कारण जीव जबतक यह मानता रहता है कि 'मैं मारनेवाला हूँ या मारा जाता हूँ', तबतक शरीरके जन्म और मृत्युका अभिमान करनेवाला वह अज्ञानी बाध्य और बाधक भावको प्राप्त होता है । अर्थात् वह दूसरोंको दुःख देता है और स्वयं दुःख भोगता है ॥ २२ ॥ मेरी यह दुष्टता तुम दोनों क्षमा करो; क्योंकि तुम बड़े ही साधुस्वभाव और दीनोंके रक्षक हो ।' ऐसा कहकर कंसने अपनी बहिन देवकी और वसुदेवजीके चरण पकड़ लिये । उसकी आँखोंसे आँसू बह-बहकर मुँहतक आ रहे थे ॥ २३ ॥ इसके बाद उसने योगमायाके वचनोंपर विश्वास करके देवकी और वसुदेवको कैदसे छोड़ दिया और वह तरह-तरहसे उनके प्रति अपना प्रेम प्रकट करने लगा ॥ २४ ॥ जब देवकीजीने देखा कि भाई कंसको पश्चात्ताप हो रहा है, तब उन्होंने उसे क्षमा कर दिया । वे उसके पहले अपराधोंको भूल गयीं और वसुदेवजीने हँसकर कंससे कहा—॥ २५ ॥ 'मनस्वी कंस ! आप जो कहते हैं, वह ठीक वैसा ही है । जीव अज्ञानके कारण ही शरीर आदिको 'मैं' मान बैठते है । इसीसे अपने-परायेका भेद हो जाता है ॥ २६ ॥ और यह भेददृष्टि हो जानेपर तो वे शोक, हर्ष, भय, द्वेष, लोभ, मोह और मदसे अन्धे हो जाते हैं । फिर तो उन्हें इस बातका पता ही नहीं रहता कि सबके प्रेरक भगवान् ही एक भावसे दूसरे भावका, एक वस्तुसे दूसरी वस्तुका नाश करा रहे हैं' ॥ २७ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जब वसुदेव और देवकीने इस प्रकार प्रसन्न होकर निष्कपटभावसे कंसके साथ बातचीत की, तब उनसे अनुमति लेकर वह अपने महलमें चला गया ॥ २८ ॥ वह रात्रि बीत जानेपर कंसने अपने मन्त्रियोंको बुलाया और योगमायाने जो कुछ कहा था, वह सब उन्हें कह सुनाया ॥ २९ ॥ कंसके मन्त्री पूर्णतया नीतिनिपुण नहीं थे । दैत्य होनेके कारण स्वभावसे ही वे देवताओंके प्रति शत्रुताका भाव रखते थे । अपने स्वामी कंसकी बात सुनकर वे देवताओंपर और भी चिढ़ गये और कंससे कहने लगे—॥ ३० ॥ 'भोजराज ! यदि ऐसी बात है तो हम आज ही बड़े-बड़े नगरोंमें, छोटे-छोटे गाँवोंमें, अहीरोंकी बस्तियोंमें और दूसरे स्थानोंमें जितने बच्चे हुए हैं, वे चाहे दस दिनसे अधिकके हों या कमके, सबको आज ही मार डालेंगे ॥ ३१ ॥ समरभीरु देवगण युद्धोद्योग करके ही क्या करेंगे ? वे तो आपके धनुषकी टङ्कार सुनकर ही सदा-सर्वदा घबराये रहते हैं ॥ ३२ ॥ जिस समय युद्धभूमिमें आप चोट-पर-चोट करने लगते हैं, बाण-वर्षासे घायल होकर अपने प्राणोंकी रक्षाके लिये समराङ्गण छोड़कर देवतालोग पलायन-परायण होकर इधर-उधर भाग जाते हैं ॥ ३३ ॥ कुछ देवता तो अपने अस्त्र-शस्त्र जमीनपर डाल देते हैं और हाथ जोड़कर आपके सामने अपनी दीनता प्रकट करने लगते हैं । कोई-कोई अपनी चोटीके बाल तथा कच्छ खोलकर आपकी शरणमें आकर कहते हैं कि—'हम भयभीत हैं, हमारी रक्षा कीजिये' ॥ ३४ ॥ आप उन शत्रुओंको नहीं मारते जो शस्त्र-अस्त्र भूल गये हों, जिनका रथ टूट गया हो, जो डर गये हों, जो लोग युद्ध छोड़कर अन्यमनस्क हो गये हों, जिनका धनुष टूट गया हो या जिन्होंने युद्धसे अपना मुँह मोड़ लिया हो—उन्हें भी आप नहीं मारते ॥ ३५ ॥ देवता तो बस वहीं वीर बनते हैं, जहाँ कोई लड़ाई-झगड़ा न हो । रणभूमिके बाहर वे बड़ी-बड़ी डींग हाँकते हैं । उनसे तथा एकान्तवासी विष्णु, वनवासी शङ्कर, अल्पवीर्य इन्द्र और तपस्वी ब्रह्मासे भी हमें क्या भय हो सकता है ॥ ३६ ॥ फिर भी देवताओंकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये—ऐसी हमारी राय है । क्योंकि हैं तो वे शत्रु ही । इसलिये उनकी जड़ उखाड़ फेंकनेके लिये आप हम-जैसे विश्वासपात्र सेवकोंको नियुक्त कर दीजिये ॥ ३७ ॥ जब मनुष्यके शरीरमें रोग हो जाता है और उसकी चिकित्सा नहीं की जाती—उपेक्षा कर दी जाती है,

तब रोग अपनी जड़ जमा लेता है और फिर वह असाध्य हो जाता है। अथवा जैसे इन्द्रियोंकी उपेक्षा कर देनेपर उनका दमन असम्भव हो जाता है, वैसे ही यदि पहले शत्रुकी उपेक्षा कर दी जाय और वह अपना पाँव जमा ले, तो फिर उसको हराना कठिन हो जाता है ॥३८॥ देवताओंकी जड़ है विष्णु और वह वहाँ रहता है, जहाँ सनातनधर्म है। सनातनधर्मकी जड़ हैं—वेद, गौ, ब्राह्मण, तपस्या और वे यज्ञ, जिनमें दक्षिणा दी जाती है ॥ ३९ ॥ इसलिये भोजराज ! हमलोग वेदवादी ब्राह्मण, तपस्वी, याज्ञिक और यज्ञके लिये घी आदि हविष्य पदार्थ देनेवाली गायोंका पूर्णरूपसे नाश कर डालेंगे ॥ ४० ॥ ब्राह्मण, गौ, वेद, तपस्या, सत्य, इन्द्रियदमन, मनोनिग्रह, श्रद्धा, दया, तितिक्षा और यज्ञ विष्णुके शरीर हैं ॥ ४१ ॥ वह विष्णु ही सारे देवताओं-का स्वामी तथा असुरोंका प्रधान द्वेषी है। परन्तु वह किसी गुफामें छिपा रहता है। महादेव, ब्रह्मा और सारे देवताओंकी जड़ वही है। उसको मार डालनेका उपाय यह है कि ऋषियोंको मार डाला जाय' ॥ ४२ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! एक तो कंस-की बुद्धि स्वयं ही बिगड़ी हुई थी; फिर उसे मन्त्री ऐसे मिले थे, जो उससे भी बढ़कर दुष्ट थे। इस प्रकार उनसे सलाह करके कालके फंदेमें फँसे हुए असुर कंसने यही ठीक समझा कि ब्राह्मणोंको ही मार डाला जाय॥४३॥ उसने हिंसाप्रेमी राक्षसोंको संतपुरुषोंकी हिंसा करनेका आदेश दे दिया। वे इच्छानुसार रूप धारण कर सकते थे। जब वे इधर-उधर चले गये, तब कंसने अपने महलमें प्रवेश किया ॥ ४४ ॥ उन असुरोंकी प्रकृति थी रजोगुणी। तमोगुणके कारण उनका चित्त उचित और अनुचितके विवेकसे रहित हो गया था। उनके सिरपर मौत नाच रही थी। यही कारण है कि उन्होंने संतोंसे द्वेष किया ॥ ४५ ॥ परीक्षित् ! जो लोग महान् संत पुरुषोंका अनादर करते हैं, उनका वह कुकर्म उनकी आयु, लक्ष्मी, कीर्ति, धर्म, लोक-परलोक, विषय-भोग और सब-के-सब कल्याणके साधनोंको नष्ट कर देता है ॥ ४६ ॥

पाँचवाँ अध्याय

गोकुलमें भगवान्‌का जन्ममहोत्सव

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! नन्दबाबा बड़े मनस्वी और उदार थे। पुत्रका जन्म होनेपर तो उनका हृदय विलक्षण आनन्दसे भर गया। उन्होंने स्नान किया और पवित्र होकर सुन्दर-सुन्दर वस्त्राभूषण धारण किये। फिर वेदज्ञ ब्राह्मणोंको बुलवाकर स्वस्तिवाचन और अपने पुत्रका जातकर्म-संस्कार करवाया। साथ ही देवता और पितरोंकी विधिपूर्वक पूजा भी करवायी ॥ १-२ ॥ उन्होंने ब्राह्मणोंको वस्त्र और आभूषणोंसे सुसज्जित दो लाख गौएँ दान कीं। रत्नों और सुनहले वस्त्रोंसे ढके हुए तिलके सात पहाड़ दान किये ॥ ३ ॥ (संस्कारोंसे ही गर्भशुद्धि होती है—यह प्रदर्शित करनेके लिये अनेक दृष्टान्तोंका उल्लेख करते हैं—) समयसे (नूतन जल, अशुद्ध भूमि आदि), स्नानसे (शरीर आदि), प्रक्षालनसे (वस्त्रादि), संस्कारोंसे (गर्भादि),तपस्यासे (इन्द्रियादि), यज्ञसे (ब्राह्मणादि), दानसे (धन-धान्यादि) और सन्तोषसे (मन आदि) द्रव्य शुद्ध होते हैं। परन्तु आत्माकी शुद्धि तो आत्मज्ञानसे ही होती है ॥ ४ ॥ उस समय ब्राह्मण, सूत[1], मागध[2] और बंदीजन[3] मङ्गलमय आशीर्वाद देने तथा स्तुति करने लगे। गायक गाने लगे। भेरी और दुन्दुभियाँ बार-बार बजने लगीं ॥ ५ ॥ व्रजमण्डलके सभी घरोंके द्वार, आँगन और भीतरी भाग झाड़-बुहार दिये गये; उनमें सुगन्धित जलका छिड़काव किया गया; उन्हें चित्र-विचित्र ध्वजा-पताका, पुष्पोंकी मालाओं, रंग-बिरंगे वस्त्र और पल्लवोंकी बन्दनवारोंसे सजाया गया ॥ ६ ॥ गाय, बैल और बछड़ोंके अङ्गोंमें हल्दी-तेलका लेप कर दिया गया और उन्हें गेरू आदि रंगीन धातुएँ, मोरपंख, फूलोंके हार, तरह-तरहके सुन्दर वस्त्र और सोनेकी जंजीरोंसे सजा दिया गया ॥ ७ ॥ परीक्षित् ! सभी ग्वाल बहुमूल्य वस्त्र, गहने, अँगरखे और पगड़ियोंसे सुसज्जित होकर और अपने हाथोंमें भेंटकी बहुत-सी सामग्रियाँ ले-लेकर नन्दबाबाके घर आये ॥ ८ ॥

यशोदाजीके पुत्र हुआ है, यह सुनकर गोपियोंको

१. पौराणिक। २. वंशका वर्णन करनेवाले। ३. समयानुसार उक्तियोंसे स्तुति करनेवाले भाट। जैसा कि कहा है—
'सूताः पौराणिकाः प्रोक्ता मागधा वंशशंसकाः। बन्दिनस्त्वमलप्रज्ञाः प्रस्तावसदृशोक्तयः ॥'

भी बड़ा आनन्द हुआ । उन्होंने सुन्दर-सुन्दर वस्त्र, आभूषण और अञ्जन आदिसे अपना शृङ्गार किया ॥ ९ ॥ गोपियोंके मुखकमल बड़े ही सुन्दर जान पड़ते थे । उनपर लगी हुई कुंकुम ऐसी लगती मानो कमलकी केशर हो । उनके नितम्ब बड़े-बड़े थे । वे भेंटकी सामग्री ले-लेकर जल्दी-जल्दी यशोदाजीके पास चलीं । उस समय उनके पयोधर हिल रहे थे ॥ १० ॥ गोपियोंके कानोंमें चमकती हुई मणियोंके कुण्डल झिलमिला रहे थे । गलेमें सोनेके हार (हैकल या हुमेल) जगमगा रहे थे । वे बड़े सुन्दर-सुन्दर रंग-बिरंगे वस्त्र पहने हुए थीं । मार्गमें उनकी चोटियोंमें गुँथे हुए फूल बरसते जा रहे थे । हाथोंमें जड़ाऊ कंगन अलग ही चमक रहे थे । उनके कानोंके कुण्डल, पयोधर और हार हिलते जाते थे । इस प्रकार नन्दबाबाके घर जाते समय उनकी शोभा बड़ी अनूठी जान पड़ती थी ॥ ११ ॥ नन्दबाबाके घर जाकर वे नवजात शिशुको आशीर्वाद देतीं 'यह चिरजीवी हो, भगवन् ! इसकी रक्षा करो ।' और लोगोंपर हल्दी-तेलसे मिला हुआ पानी छिड़क देतीं तथा ऊँचे स्वरसे मङ्गल-गान करती थीं ॥ १२ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण समस्त जगत्के एकमात्र स्वामी हैं । उनके ऐश्वर्य, माधुर्य, वात्सल्य—सभी अनन्त हैं । वे जब नन्दबाबाके व्रजमें प्रकट हुए, उस समय उनके जन्मका महान् उत्सव मनाया गया । उसमें बड़े-बड़े विचित्र और मङ्गलमय बाजे बजाये जाने लगे ॥ १३ ॥ आनन्दसे मतवाले होकर गोपगण एक दूसरेपर दही, दूध, घी और पानी उड़ेलने लगे । एक-दूसरेके मुँहसे मक्खन मलने लगे और मक्खन फेंक-फेंककर आनन्दोत्सव मनाने लगे ॥ १४ ॥ नन्दबाबा स्वभावसे ही परम उदार और मनस्वी थे । उन्होंने गोपोंको बहुत-से वस्त्र, आभूषण और गौएँ दीं । सूत-मागध-वंदीजनों, नृत्य, वाद्य आदि विद्याओंसे अपना जीवन-निर्वाह करनेवालों तथा दूसरे गुणीजनोंको भी नन्दबाबाने प्रसन्नतापूर्वक उनकी मुँहमाँगी वस्तुएँ देकर उनका यथोचित सत्कार किया । यह सब करनेमें उनका उद्देश्य यही था कि इन कर्मोंसे भगवान् विष्णु प्रसन्न हों और मेरे इस नव-जात शिशुका मङ्गल हो ॥ १५-१६ ॥ नन्दबाबाके अभिनन्दन करनेपर परम सौभाग्यवती रोहिणीजी दिव्य वस्त्र, माला और गलेके भाँति-भाँतिके गहनोंसे सुसज्जित होकर गृहस्वामिनीकी भाँति आने-जानेवाली स्त्रियोंका सत्कार करती हुई विचर रही थीं ॥ १७ ॥ परीक्षित् ! उसी दिनसे नन्दबाबाके व्रजमें सब प्रकारकी ऋद्धि-सिद्धियाँ अठखेलियाँ करने लगीं और भगवान् श्रीकृष्णके निवास तथा अपने स्वाभाविक गुणोंके कारण वह लक्ष्मी-जीका क्रीडास्थल बन गया ॥ १८ ॥

परीक्षित् ! कुछ दिनोंके बाद नन्दबाबाने गोकुलकी रक्षाका भार तो दूसरे गोपोंको सौंप दिया और वे स्वयं कंसका वार्षिक कर चुकानेके लिये मथुरा चले गये ॥ १९ ॥ जब वसुदेवजीको यह मालूम हुआ कि हमारे भाई नन्दजी मथुरामें आये हैं और राजा कंसको उसका कर भी दे चुके हैं, तब वे जहाँ नन्दबाबा ठहरे हुए थे, वहाँ गये ॥ २० ॥ वसुदेवजीको देखते ही नन्दजी सहसा उठकर खड़े हो गये मानो मृतक शरीरमें प्राण आ गया हो । उन्होंने बड़े प्रेमसे अपने प्रियतम वसुदेवजीको दोनों हाथोंसे पकड़कर हृदयसे लगा लिया । नन्दबाबा उस समय प्रेमसे विह्वल हो रहे थे ॥ २१ ॥ परीक्षित् ! नन्दबाबाने वसुदेवजीका बड़ा स्वागत-सत्कार किया । वे आदरपूर्वक आरामसे बैठ गये । उस समय उनका चित्त अपने पुत्रोंमें लग रहा था । वे नन्दबाबासे कुशल-मङ्गल पूछकर कहने लगे ॥ २२ ॥

[वसुदेवजीने कहा—] 'भाई ! तुम्हारी अवस्था ढल चली थी और अबतक तुम्हें कोई सन्तान नहीं हुई थी । यहाँतक कि अब तुम्हें सन्तानकी कोई आशा भी न थी । यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि अब तुम्हे सन्तान प्राप्त हो गयी ॥ २३ ॥ यह भी बड़े आनन्दका विषय है कि आज हमलोगोंका मिलना हो गया । अपने प्रेमियोंका मिलना भी बड़ा दुर्लभ है । इस संसारका चक्र ही ऐसा है । इसे तो एक प्रकारका पुनर्जन्म ही समझना चाहिये ॥ २४ ॥ जैसे नदीके प्रबल प्रवाहमें बहते हुए बेड़े और तिनके सदा एक साथ नहीं रह सकते, वैसे ही सगे-सम्बन्धी और प्रेमियोंका भी एक स्थानपर रहना सम्भव नहीं है—यद्यपि वह सबको प्रिय लगता है । क्योंकि सबके प्रारब्धकर्म अलग-अलग होते हैं ॥ २५ ॥ आजकल तुम जिस महावनमें अपने

भाई-बन्धु और स्वजनोंके साथ रहते हो, उसमें जल, घास और लता-पत्रादि तो भरे-पूरे हैं न ? वह वन पशुओंके लिये अनुकूल और सब प्रकारके रोगोंसे तो बचा है ? ॥ २६ ॥ भाई ! मेरा लड़का अपनी मा (रोहिणी) के साथ तुम्हारे व्रजमें रहता है । उसका लालन-पालन तुम और यशोदा करते हो, इसलिये वह तो तुम्हींको अपने पिता-माता मानता होगा । वह अच्छी तरह है न ? ॥ २७ ॥ मनुष्यके लिये वे ही धर्म, अर्थ और काम शास्त्रविहित हैं, जिनसे उसके स्वजनोंको सुख मिले । जिनसे केवल अपनेको ही सुख मिलता है; किन्तु अपने स्वजनोंको दुःख मिलता है, वे धर्म, अर्थ और काम हितकारी नहीं हैं' ॥ २८ ॥

नन्दबाबाने कहा—भाई वसुदेव ! कंसने देवकीके गर्भसे उत्पन्न तुम्हारे कई पुत्र मार डाले । अन्तमें एक सबसे छोटी कन्या बच रही थी, वह भी स्वर्ग सिधार गयी ॥ २९ ॥ इसमें सन्देह नहीं कि प्राणियोंका सुख-दुःख भाग्यपर ही अवलम्बित है । भाग्य ही प्राणी-का एकमात्र आश्रय है । जो जान लेता है कि जीवनके सुख-दुःखका कारण भाग्य ही है, वह उनके प्राप्त होनेपर मोहित नहीं होता ॥ ३० ॥

वसुदेवने कहा—भाई ! तुमने राजा कंसको उसका सालाना कर चुका दिया । हम दोनों मिल भी चुके । अब तुम्हें यहाँ अधिक दिन नहीं ठहरना चाहिये; क्योंकि आजकल गोकुलमें बड़े-बड़े उत्पात हो रहे हैं ॥ ३१ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जब वसुदेव-जीने इस प्रकार कहा, तब नन्द आदि गोपोंने उनसे अनुमति ले, बैलोंसे जुते हुए छकड़ोंपर सवार होकर गोकुलकी यात्रा की ॥ ३२ ॥

छठा अध्याय

पूतना-उद्धार

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! नन्दबाबा जब मथुरासे चले, तब रास्तेमें विचार करने लगे कि वसुदेवजीका कथन झूठा नहीं हो सकता । इससे उनके मनमें उत्पात होनेकी आशङ्का हो गयी । तब उन्होंने मन-ही-मन 'भगवान् ही शरण हैं, वे ही रक्षा करेंगे' ऐसा निश्चय किया ॥ १ ॥ पूतना नामकी एक बड़ी क्रूर राक्षसी थी । उसका एक ही काम था—बच्चोंको मारना । कंसकी आज्ञासे वह नगर, ग्राम और अहीरोंकी बस्तियोंमें बच्चोंको मारनेके लिये घूमा करती थी ॥ २ ॥ जहाँके लोग अपने प्रतिदिनके कामोंमें राक्षसोंके भयको दूर भगानेवाले भक्तवत्सल भगवान्‌के नाम, गुण और लीलाओंका श्रवण, कीर्तन और स्मरण नहीं करते—वहीं ऐसी राक्षसियोंका बल चलता है ॥ ३ ॥ वह पूतना आकाशमार्गसे चल सकती थी और अपनी इच्छाके अनुसार रूप भी बना लेती थी । एक दिन नन्दबाबाके गोकुलके पास आकर उसने मायासे अपनेको एक सुन्दरी युवती बना लिया और गोकुलके भीतर घुस गयी ॥ ४ ॥ उसने बड़ा सुन्दर रूप बनाया था । उसकी चोटियोंमें बेलेके फूल गुँथे हुए थे । सुन्दर वस्त्र पहने हुए थी । जब उसके कर्णफूल हिलते थे, तब उनकी चमकसे मुखकी ओर लटकी हुई अलकें और भी शोभायमान हो जाती थीं । उसके नितम्ब और कुच-कलश ऊँचे-ऊँचे थे और कमर पतली थी ॥ ५ ॥ वह अपनी मधुर मुसकान और कटाक्षपूर्ण चितवनसे व्रजवासियोंका चित्त चुरा रही थी । उस रूपवती रमणीको हाथमें कमल लेकर आते देख गोपियाँ ऐसी उत्प्रेक्षा करने लगीं, मानो स्वयं लक्ष्मीजी अपने पतिका दर्शन करनेके लिये आ रही हैं ॥ ६ ॥

पूतना बालकोंके लिये ग्रहके समान थी । वह इधर-उधर बालकोंको ढूँढ़ती हुई अनायास ही नन्दबाबाके घरमें घुस गयी । वहाँ उसने देखा कि बालक श्रीकृष्ण शय्यापर सोये हुए हैं । परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्ण दुष्टोंके काल हैं । परन्तु जैसे आग राखकी ढेरीमें अपने-को छिपाये हुए हो, वैसे ही उस समय उन्होंने अपने प्रचण्ड तेजको छिपा रक्खा था ॥ ७ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण चर-अचर सभी प्राणियोंके आत्मा हैं । इसलिये उन्होंने

उसी क्षण जान लिया कि यह बच्चोंको मार डालनेवाला पूतना-ग्रह है और अपने नेत्र बंद कर लिये।* जैसे कोई पुरुष भ्रमवश सोये हुए साँपको रस्सी समझकर उठा ले, वैसे ही अपने कालरूप भगवान् श्रीकृष्णको पूतनाने अपनी गोदमें उठा लिया ॥ ८ ॥ मखमली म्यानके भीतर छिपी हुई तीखी धारवाली तलवारके समान पूतनाका हृदय तो बड़ा कुटिल था, किन्तु ऊपरसे वह बहुत मधुर और सुन्दर व्यवहार कर रही थी। देखनेमें वह एक भद्र महिलाके समान जान पड़ती थी। इसलिये रोहिणी और यशोदाजीने उसे घरके भीतर आयी

---

* पूतनाको देखकर भगवान् श्रीकृष्णने अपने नेत्र बंद कर लिये, इसपर भक्त कवियों और टीकाकारोंने अनेकों प्रकारकी उत्प्रेक्षाएँ की हैं, जिनमें कुछ ये हैं—

१. श्रीमद्वल्लभाचार्यने सुबोधिनीमें कहा है—अविद्या ही पूतना है। भगवान् श्रीकृष्णने सोचा कि मेरी दृष्टिके सामने अविद्या टिक नहीं सकती, फिर लीला कैसे होगी, इसलिये नेत्र बंद कर लिये।

२. यह पूतना बालघातिनी है 'पूतानपि नयति'। यह पवित्र बालकोंको भी ले जाती है। ऐसा जघन्य कृत्य करनेवालीका मुँह नहीं देखना चाहिये, इसलिये नेत्र बंद कर लिये।

३. इस जन्ममें तो इसने कुछ साधन किया नहीं है। सम्भव है मुझसे मिलनेके लिये पूर्वजन्ममें कुछ किया हो। मानो पूतनाके पूर्व-पूर्व जन्मोंके साधन देखनेके लिये ही श्रीकृष्णने नेत्र बंद कर लिये।

४. भगवान्ने अपने मनमें विचार किया कि मैंने पापिनीका दूध कभी नहीं पिया है। अब जैसे लोग आँख बंद करके चिरायतेका काढ़ा पी जाते हैं, वैसे ही इसका दूध भी पी जाऊँ। इसलिये नेत्र बंद कर लिये।

५. भगवान्के उदरमें निवास करनेवाले असंख्य कोटि ब्रह्माण्डोंके जीव यह जानकर घबरा गये कि श्यामसुन्दर पूतनाके स्तनमें लगा हलाहल विष पीने जा रहे हैं। अतः उन्हें समझानेके लिये ही श्रीकृष्णने नेत्र बंद किये।

६. श्रीकृष्णशिशुने विचार किया कि मैं गोकुलमें यह सोचकर आया था कि माखन-मिश्री खाऊँगा सो छठीके दिन ही विष पीनेका अवसर आ गया। इसलिये आँख बंद करके मानो शङ्करजीका ध्यान किया कि आप आकर अपना अभ्यस्त विष-पान कीजिये, मैं दूध पीऊँगा।

७. श्रीकृष्णके नेत्रोंने विचार किया कि परम स्वतन्त्र ईश्वर इस दुष्टाको अच्छी-बुरी चाहे जो गति दे दें, परन्तु हम दोनों इसे चन्द्रमार्ग अथवा सूर्यमार्ग दोनोंमेंसे एक भी नहीं देंगे। इसलिये उन्होंने अपने द्वार बंद कर लिये।

८. नेत्रोंने सोचा पूतनाके नेत्र हैं तो हमारी जातिके; परन्तु ये इस क्रूर राक्षसीकी शोभा बढ़ा रहे हैं। इसलिये अपने होनेपर भी ये दर्शनके योग्य नहीं हैं। इसलिये उन्होंने अपनेको पलकोंसे ढक लिया।

९. श्रीकृष्णके नेत्रोंमें स्थित धर्मात्मा निमिने उस दुष्टाको देखना उचित न समझकर नेत्र बंद कर लिये।

१०. श्रीकृष्णके नेत्र राज-हंस हैं। उन्हें बकी पूतनाके दर्शन करनेकी कोई उत्कण्ठा नहीं थी। इसलिये नेत्र बंद कर लिये।

११. श्रीकृष्णने विचार किया कि बाहरसे तो इसने माताका-सा रूप धारण कर रक्खा है, परन्तु हृदयमें अत्यन्त क्रूरता भरे हुए हैं। ऐसी स्त्रीका मुँह न देखना ही उचित है। इसलिये नेत्र बंद कर लिये।

१२. उन्होंने सोचा कि मुझे निडर देखकर कहीं यह ऐसा न समझ जाय कि इसके ऊपर मेरा प्रभाव नहीं चला और फिर कहीं लौट न जाय। इसलिये नेत्र बंद कर लिये

१३. बाल-लीलाके प्रारम्भमें पहले-पहल स्त्रीसे ही मुठभेड़ हो गयी, इस विचारसे विरक्तिपूर्वक नेत्र बंद कर लिये।

१४. श्रीकृष्णके मनमें यह बात आयी कि करुणा-दृष्टिसे देखूँगा तो इसे मारूँगा कैसे, और उग्र दृष्टिसे देखूँगा तो यह अभी भस्म हो जायगी। लीलाकी सिद्धिके लिये नेत्र बंद कर लेना ही उत्तम है। इसलिये नेत्र बंद कर लिये।

१५. यह धात्रीका वेष धारण करके आयी है, मारना उचित नहीं है। परन्तु यह और ग्वालबालोंको मारेगी। इसलिये इसका यह वेष देखे बिना ही मार डालना चाहिये। इसलिये नेत्र बंद कर लिये।

१६. बड़े-से-बड़ा अनिष्ट योगसे निवृत्त हो जाता है। उन्होंने नेत्र बंद करके मानो योगदृष्टि सम्पादित की।

१७. पूतना यह निश्चय करके आयी थी कि मैं व्रजके सारे शिशुओंको मार डालूँगी, परन्तु भक्तरक्षापरायण भगवान्की कृपासे व्रजका एक भी शिशु उसे दिखायी नहीं दिया और बालकोंको खोजती हुई वह लीलाशक्तिकी

देखकर भी उसकी सौन्दर्यप्रभासे हतप्रतिभ-सी होकर कोई रोक-टोक नहीं की, चुपचाप खड़ी-खड़ी देखती रहीं ॥ ९ ॥ इधर भयानक राक्षसी पूतनाने बालक श्रीकृष्णको अपनी गोदमें लेकर उनके मुँहमें अपना स्तन दे दिया, जिसमें बड़ा भयङ्कर और किसी प्रकार भी पच न सकनेवाला विष लगा हुआ था। भगवान्‌ने क्रोधको अपना साथी बनाया और दोनों हाथोंसे उसके स्तनोंको जोरसे दबाकर उसके प्राणोंके साथ उसका दूध पीने लगे (वे उसका दूध पीने लगे और उनका साथी क्रोध प्राण पीने लगा!)* ॥ १० ॥ अब तो पूतनाके प्राणोंके आश्रयभूत सभी मर्मस्थान फटने लगे। वह पुकारने लगी—'अरे छोड़ दे, छोड़ दे, अब बस कर!' वह बार-बार अपने हाथ और पैर पटक-पटककर रोने लगी। उसके नेत्र उलट गये। उसका सारा शरीर पसीनेसे लथपथ हो गया ॥ ११ ॥ उसकी चिल्लाहटका वेग बड़ा भयङ्कर था। उसके प्रभावसे पहाड़ोंके साथ पृथ्वी और ग्रहोंके साथ अन्तरिक्ष डगमगा उठा। सातों पाताल और दिशाएँ गूँज उठीं। बहुत-से लोग वज्रपातकी आशङ्कासे पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ १२ ॥ परीक्षित्! इस प्रकार निशाचरी पूतनाके स्तनोंमे इतनी पीडा हुई कि वह अपनेको छिपा न सकी, राक्षसीरूपमें प्रकट हो गयी। उसके शरीरसे प्राण निकल गये, मुँह फट गया, बाल बिखर गये और हाथ-पाँव फैल गये। जैसे इन्द्रके वज्रसे घायल होकर वृत्रासुर गिर पड़ा था, वैसे ही वह बाहर गोष्ठमें आकर गिर पड़ी ॥ १३ ॥

राजेन्द्र! पूतनाके शरीरने गिरते-गिरते भी छः कोसके भीतरके वृक्षोंको कुचल डाला। यह बड़ी ही अद्भुत घटना हुई ॥ १४ ॥ पूतनाका शरीर बड़ा भयानक था, उसका मुँह हलके समान तीखी और भयङ्कर दाढ़ोंसे युक्त था। उसके नथुने पहाड़की गुफाके समान गहरे थे और स्तन पहाड़से गिरी हुई चट्टानोंकी तरह बड़े-बड़े थे। लाल-लाल बाल चारों ओर बिखरे हुए थे ॥ १५ ॥ आँखें अंधे कूएँके समान गहरी; नितम्ब नदीके करारकी तरह भयङ्कर; भुजाएँ, जाँघें और पैर नदीके पुलके समान तथा पेट सूखे हुए सरोवरकी भाँति जान पड़ता था ॥ १६ ॥ पूतनाके उस शरीरको देखकर सब-के-सब ग्वाल और

प्रेरणासे सीधी नन्दालयमें आ पहुँची, तब भगवान्‌ने सोचा कि मेरे भक्तका बुरा करनेकी बात तो दूर रही, जो मेरे भक्तका बुरा सोचता है, उस दुष्टका मैं मुँह नहीं देखता; व्रज-बालक सभी श्रीकृष्णके सखा हैं, परम भक्त हैं, पूतना उनको मारनेका सङ्कल्प करके आयी है, इसलिये उन्होंने नेत्र बंद कर लिये।

१८. पूतना अपनी भीषण आकृतिको छिपाकर राक्षसी मायासे दिव्य रमणी रूप बनाकर आयी है। भगवान्‌की दृष्टि पड़नेपर माया रहेगी नहीं और इसका भयानक रूप प्रकट हो जायगा। उसे सामने देखकर यशोदा मैया डर जायँ और पुत्रकी अनिष्टाशङ्कासे कहीं उनके हठात् प्राण निकल जायँ, इस आशङ्कासे उन्होंने नेत्र बंद कर लिये।

१९. पूतना हिंसापूर्ण हृदयसे आयी है, परन्तु भगवान् उसकी हिंसाके लिये उपयुक्त दण्ड न देकर उसका प्राण-वधमात्र करके परम कल्याण करना चाहते हैं। भगवान् समस्त सद्गुणोंके भण्डार हैं। उनमे धृष्टता आदि दोषोंका लेश भी नहीं है, इसीलिये पूतनाके कल्याणार्थ भी उसका प्राण-वध करनेमें उन्हें लज्जा आती है। इस लज्जासे ही उन्होंने नेत्र बंद कर लिये हैं।

२०. भगवान् जगत्पिता हैं—असुर-राक्षसादि भी उनकी सन्तान ही हैं। पर वे सर्वथा उच्छृङ्खल और उद्दण्ड हो गये हैं, इसलिये उन्हें दण्ड देना आवश्यक है। स्नेहमय माता-पिता जब अपने उच्छृङ्खल पुत्रको दण्ड देते हैं, तब उसके मनमें दुःख होता है। परन्तु वे उसे भय दिखलानेके लिये उसे बाहर प्रकट नहीं करते। इसी प्रकार भगवान् भी जब असुरोंको मारते हैं, तब पिताके नाते उनको भी दुःख होता है; पर दूसरे असुरोंको भय दिखलानेके लिये वे उसे प्रकट नहीं करते। भगवान् अब पूतनाको मारनेवाले हैं, परन्तु उसकी मृत्युकालीन पीडाको अपनी आँखों देखना नहीं चाहते, इसीसे उन्होंने नेत्र बंद कर लिये।

२१. छोटे बालकोंका स्वभाव है कि वे अपनी माके सामने खूब खेलते हैं, पर किसी अपरिचितको देखकर डर जाते हैं और नेत्र मूँद लेते हैं। अपरिचित पूतनाको देखकर इसीलिये बाललीला-विहारी भगवान्‌ने नेत्र बंद कर लिये। यह उनकी बाललीलाका माधुर्य है।

* भगवान् रोषके साथ पूतनाके प्राणोंके सहित स्तन-पान करने लगे, इसका यह अर्थ प्रतीत होता है कि रोष (रोषाधिष्ठातृ देवता रुद्र) ने प्राणोंका पान किया और श्रीकृष्णने स्तनका।

गोपी डर गये। उसकी भयङ्कर चिल्लाहट सुनकर उनके हृदय, कान और सिर तो पहले ही फट-से रहे थे ॥ १७ ॥ जब गोपियोंने देखा कि बालक श्रीकृष्ण उसकी छातीपर निर्भय होकर खेल रहे हैं *, तब वे बड़ी घबराहट और उतावलीके साथ झटपट वहाँ पहुँच गयीं तथा श्रीकृष्णको उठा लिया ॥ १८ ॥ इसके बाद यशोदा और रोहिणी-के साथ गोपियोंने गायकी पूँछ घुमाने आदि उपायोंसे बालक श्रीकृष्णके अङ्गोंकी सब प्रकारसे रक्षा की ॥ १९ ॥ उन्होंने पहले बालक श्रीकृष्णको गोमूत्रसे स्नान कराया, फिर सब अङ्गोंमें गो-रज लगायी और फिर बारहों अङ्गोंमें गोबर लगाकर भगवान्‌के केशव आदि नामोंसे रक्षा की ॥ २० ॥ इसके बाद गोपियोंने आचमन करके 'अज' आदि ग्यारह बीज-मन्त्रोंसे अपने शरीरोंमें अलग-अलग अङ्गन्यास एवं करन्यास किया और फिर बालकके अङ्गों-में बीजन्यास किया ॥ २१ ॥

वे कहने लगीं—'अजन्मा भगवान् तेरे पैरोंकी रक्षा करें, मणिमान् घुटनोंकी, यज्ञपुरुष जाँघोंकी, अच्युत कमरकी, हयग्रीव पेटकी, केशव हृदयकी, ईश वक्ष:स्थल-की, सूर्य कण्ठकी, विष्णु बाँहोंकी, उरुक्रम मुखकी और ईश्वर सिरकी रक्षा करें ॥ २२ ॥ चक्रधर भगवान् रक्षाके लिये तेरे आगे रहें, गदाधारी श्रीहरि पीछे, क्रमशः धनुष और खड्ग धारण करनेवाले भगवान् मधुसूदन और अजन दोनों बगलमें, शङ्खधारी उरुगाय चारों कोनोंमें, उपेन्द्र ऊपर, हल-धर पृथ्वीपर और भगवान् परमपुरुष तेरे सब ओर रक्षाके लिये रहें ॥ २३ ॥ हृषीकेश भगवान् इन्द्रियोंकी और नारायण प्राणोंकी रक्षा करें। श्वेतद्वीपके अधिपति चित्त-की और योगेश्वर मनकी रक्षा करें ॥ २४ ॥ पृश्निगर्भ तेरी बुद्धिकी और परमात्मा भगवान् तेरे अहङ्कारकी रक्षा करें। खेलते समय गोविन्द रक्षा करें, सोते समय माधव रक्षा करें ॥ २५ ॥ चलते समय भगवान् वैकुण्ठ और बैठते समय भगवान् श्रीपति तेरी रक्षा करें। भोजनके समय समस्त ग्रहोंको भयभीत करनेवाले यज्ञभोक्ता भगवान् तेरी रक्षा करें ॥ २६ ॥ डाकिनी, राक्षसी और कूष्माण्डा आदि बालग्रह; भूत, प्रेत, पिशाच, यक्ष, राक्षस और विनायक, कोटरा, रेवती, ज्येष्ठा, पूतना, मातृका आदि; शरीर, प्राण तथा इन्द्रियोंका नाश करनेवाले उन्माद (पागलपन) एवं अपस्मार (मृगी) आदि रोग; स्वप्नमें देखे हुए महान् उत्पात, वृद्धग्रह और बालग्रह आदि—ये सभी अनिष्ट भगवान् विष्णुका नामोच्चारण करनेसे भयभीत होकर नष्ट हो जायँ †' ॥ २७—२९ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! इस प्रकार गोपियोंने प्रेमपाशमें बँधकर भगवान् श्रीकृष्णकी रक्षा की। माता यशोदाने अपने पुत्रको स्तन पिलाया और फिर पालनेपर सुला दिया ॥ ३० ॥ इसी समय नन्दबाबा और उनके साथी गोप मथुरासे गोकुलमें पहुँचे। जब उन्होंने पूतनाका भयङ्कर शरीर देखा, तब वे आश्चर्यचकित हो गये ॥ ३१ ॥ वे कहने लगे—'यह तो बड़े आश्चर्य-की बात है, अवश्य ही वसुदेवके रूपमें किसी ऋषिने जन्म ग्रहण किया है। अथवा सम्भव है वसुदेवजी पूर्व-जन्ममें कोई योगेश्वर रहे हों, क्योंकि उन्होंने जैसा कहा था, वैसा ही उत्पात यहाँ देखनेमें आ रहा है ॥ ३२ ॥ तबतक व्रजवासियोंने कुल्हाड़ीसे पूतनाके शरीरको टुकड़े-टुकड़े कर डाला और गोकुलसे दूर ले जाकर लकड़ियों-पर रखकर जला दिया ॥ ३३ ॥ जब उसका शरीर

* पूतनाके वक्षःस्थलपर क्रीडा करते हुए मानो मन-ही-मन कह रहे थे—

स्तनन्धयस्य स्तन एव जीविका दत्तस्त्वया स स्वयमानने मम।
मया च पीतो म्रियते यदि त्वया किं वा ममागः स्वयमेव कथ्यताम् ॥

'मैं दुधमुँहा शिशु हूँ, स्तनपान ही मेरी जीविका है। तुमने स्वयं अपना स्तन मेरे मुँहमें दे दिया और मैंने पिया। इससे यदि तुम मर जाती हो तो स्वयं तुम्हीं बताओ इसमें मेरा क्या अपराध है।'

राजा बलिकी कन्या थी रत्नमाला। यज्ञशालामें वामन भगवान्‌को देखकर उसके हृदयमें पुत्रस्नेहका भाव उदय हो आया। वह मन-ही-मन अभिलाषा करने लगी कि यदि मुझे ऐसा बालक हो और मैं उसे स्तन पिलाऊँ तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। वामन भगवान्‌ने अपने भक्त बलिकी पुत्रीके इस मनोरथका मन-ही-मन अनुमोदन किया। वही द्वापरमें पूतना हुई और श्रीकृष्णके स्पर्शसे उसकी लालसा पूर्ण हुई।

† इस प्रसङ्गको पढ़कर भावुक भक्त भगवान्‌से कहता है—'भगवन्! जान पड़ता है, आपकी अपेक्षा भी आपके नाम-में शक्ति अधिक है; क्योंकि आप त्रिलोकीकी रक्षा करते हैं और नाम आपकी रक्षा कर रहा है।'

जलने लगा, तब उसमेंसे ऐसा धूआँ निकला, जिसमेंसे अगरकी-सी सुगन्ध आ रही थी। क्यों न हो, भगवान्‌ने जो उसका दूध पी लिया था—जिससे उसके सारे पाप तत्काल ही नष्ट हो गये थे॥ ३४॥ पूतना एक राक्षसी थी। लोगोंके बच्चोंको मार डालना और उनका खून पी जाना—यही उसका काम था। भगवान्‌को भी उसने मार डालनेकी इच्छासे ही स्तन पिलाया था। फिर भी उसे वह परम गति मिली, जो सत्पुरुषोंको मिलती है॥ ३५॥ ऐसी स्थितिमें जो परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णको श्रद्धा और भक्तिसे माताके समान अनुरागपूर्वक अपनी प्रिय-से-प्रिय वस्तु और उनको प्रिय लगनेवाली वस्तु समर्पित करते हैं, उनके सम्बन्धमें तो कहना ही क्या है॥ ३६॥ भगवान्‌के चरणकमल सबके वन्दनीय ब्रह्मा, शङ्कर आदि देवताओंके द्वारा भी वन्दित हैं। वे भक्तों-के हृदयकी पूँजी हैं। उन्हीं चरणोंसे भगवान्‌ने पूतनाका शरीर दबाकर उसका स्तन-पान किया था॥ ३७॥ माना कि वह राक्षसी थी, परन्तु उसे उत्तम-से-उत्तम गति—जो माताको मिलनी चाहिये—प्राप्त हुई। फिर जिनके स्तनका दूध भगवान्‌ने बड़े प्रेमसे पिया, उन गौओं और माताओंकी* तो बात ही क्या है॥ ३८॥ परीक्षित्! देवकीनन्दन भगवान् कैवल्य आदि सब प्रकार-की मुक्ति और सब कुछ देनेवाले हैं। उन्होंने व्रजकी गोपियों और गौओंका वह दूध, जो भगवान्‌के प्रति पुत्र-भाव होनेसे वात्सल्य-स्नेहकी अधिकताके कारण स्वयं ही झरता रहता था, भरपेट पान किया॥ ३९॥ राजन्! वे गौएँ और गोपियाँ, जो नित्य-निरन्तर भगवान् श्रीकृष्ण-को अपने पुत्रके ही रूपमें देखती थीं, फिर जन्म-मृत्यु-रूप संसारके चक्रमें कभी नहीं पड़ सकतीं; क्योंकि यह संसार तो अज्ञानके कारण ही है॥ ४०॥

नन्दबाबाके साथ आनेवाले व्रजवासियोंकी नाकमें जब चिताके धूएँकी सुगन्ध पहुँची, तब 'यह क्या है? कहाँसे ऐसी सुगन्ध आ रही है?' इस प्रकार कहते हुए वे व्रजमें पहुँचे॥ ४१॥ वहाँ गोपोंने उन्हे पूतनाके आनेसे लेकर मरनेतकका सारा वृत्तान्त कह सुनाया। वे लोग पूतनाकी मृत्यु और श्रीकृष्णके कुशलपूर्वक बच जानेकी बात सुनकर बड़े ही आश्चर्यचकित हुए॥ ४२॥ परीक्षित्! उदारशिरोमणि नन्दबाबाने मृत्युके मुखसे बचे हुए अपने लालाको गोदमें उठा लिया और बार-बार उसका सिर सूँघकर मन-ही-मन बहुत आनन्दित हुए॥ ४३॥ यह 'पूतना-मोक्ष' भगवान् श्रीकृष्णकी अद्भुत बाल लीला है। जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक इसका श्रवण करता है, उसे भगवान् श्रीकृष्णके प्रति प्रेम प्राप्त होता है॥ ४४॥

सातवाँ अध्याय

शकट-भञ्जन और तृणावर्त-उद्धार

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—प्रभो! सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीहरि अनेकों अवतार धारण करके बहुत-सी सुन्दर एवं सुननेमें मधुर लीलाएँ करते हैं। वे सभी मेरे हृदयको बहुत प्रिय लगती हैं॥ १॥ उनके श्रवणमात्रसे भगवत्-सम्बन्धी कथासे अरुचि और विविध विषयोंकी तृष्णा भाग जाती है। मनुष्यका अन्तःकरण शीघ्र-से-शीघ्र शुद्ध हो जाता है। भगवान्‌के चरणोंमें भक्ति और उनके भक्तजनों-से प्रेम भी प्राप्त हो जाता है। यदि आप मुझे उनके श्रवणका अधिकारी समझते हों, तो भगवान्‌की उन्हीं मनोहर लीलाओंका वर्णन कीजिये॥ २॥ भगवान् श्रीकृष्णने मनुष्य-लोकमें प्रकट होकर मनुष्य-जातिके स्वभावका अनुसरण करते हुए जो बाललीलाएँ की हैं अवश्य ही वे अत्यन्त अद्भुत हैं, इसलिये आप अब उनकी दूसरी बाल-लीलाओंका भी वर्णन कीजिये॥ ३॥

---

* जब ब्रह्माजी ग्वालबाल और बछड़ोंको हर ले गये, तब भगवान् स्वयं ही बछड़े और ग्वालबाल बन गये। उस समय अपने विभिन्न रूपोंसे उन्होंने अपने साथी अनेकों गोप और वत्सोंकी माताओंका स्तनपान किया। इसीलिये यह बहुवचनका प्रयोग किया गया है।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! एक बार * भगवान् श्रीकृष्णके करवट बदलनेका अभिषेक-उत्सव मनाया जा रहा था। उसी दिन उनका जन्मनक्षत्र भी था। घरमें बहुत-सी स्त्रियोंकी भीड़ लगी हुई थी। गाना बजाना हो रहा था। उन्हीं स्त्रियोंके बीचमें खड़ी हुई सती साध्वी यशोदाजीने अपने पुत्रका अभिषेक किया। उस समय ब्राह्मणलोग मन्त्र पढ़कर आशीर्वाद दे रहे थे॥ ४॥ नन्दरानी यशोदाजीने ब्राह्मणोंका खूब पूजन-सम्मान किया। उन्हे अन्न, वस्त्र, माला, गाय आदि मुँहमाँगी वस्तुएँ दीं। जब यशोदाने उन ब्राह्मणों-द्वारा स्वस्तिवाचन कराकर स्वयं बालकके नहलाने आदिका कार्य सम्पन्न कर लिया, तब यह देखकर कि मेरे लल्लाके नेत्रोंमें नींद आ रही है, अपने पुत्रको धीरेसे शय्यापर सुला दिया॥ ५॥ थोड़ी देरमें श्यामसुन्दरकी आँखें खुलीं, तो वे स्तन-पानके लिये रोने लगे। उस समय मनस्विनी यशोदाजी उत्सवमें आये हुए व्रजवासियोंके स्वागत-सत्कारमें बहुत ही तन्मय हो रही थीं। इसलिये उन्हें श्रीकृष्णका रोना सुनायी नहीं पड़ा। तब श्रीकृष्ण रोते-रोते अपने पाँव उछालने लगे॥ ६॥ शिशु श्रीकृष्ण एक छकड़ेके नीचे सोये हुए थे। उनके पाँव अभी लाल-लाल कोंपलोंके समान बड़े ही कोमल और नन्हे-नन्हे थे। परन्तु वह नन्हा-सा पाँव लगते ही विशाल छकड़ा उलट गया†। उस छकड़ेपर दूध-दही आदि अनेक रसोंसे भरी हुई मटकियाँ और दूसरे बर्तन रक्खे हुए थे। वे सब-के-सब फूट-फाट गये और छकड़ेके पहिये तथा धुरे अस्त-व्यस्त हो गये, उसका जूआ फट गया॥ ७॥ करवट बदलनेके उत्सवमें जितनी भी स्त्रियाँ आयी हुई थीं, वे सब, और यशोदा, रोहिणी, नन्दबाबा और गोपगण—इस विचित्र घटनाको देखकर व्याकुल हो गये। वे आपसमें कहने लगे—'अरे, यह क्या हो गया ? यह छकड़ा अपने-आप कैसे उलट गया !'॥ ८॥ वे इसका कोई कारण निश्चित न कर सके। वहाँ खेलते हुए बालकोंने गोपों और गोपियोंसे कहा कि 'इस कृष्णने ही तो रोते-रोते अपने पाँवकी ठोकरसे इसे उलट दिया है, इसमें कोई सन्देह नहीं'॥ ९॥ परन्तु गोपोंने उसे 'बालकोंकी बात' मानकर उसपर विश्वास नहीं किया। ठीक ही है, वे गोप उस बालकके अनन्त बलको नहीं जानते थे॥ १०॥

यशोदाजीने समझा यह किसी ग्रह आदिका उत्पात है। उन्होंने अपने रोते हुए लाड़ले लालको गोदमें लेकर ब्राह्मणोंसे वेदमन्त्रोंके द्वारा शान्तिपाठ कराया और फिर वे उसे स्तन पिलाने लगीं॥ ११॥ बलवान् गोपोंने छकड़ेको फिर सीधा कर दिया। उसपर पहले-की तरह सारी सामग्री रख दी गयी। ब्राह्मणोंने हवन किया और दही, अक्षत, कुश तथा जलके द्वारा भगवान् और उस छकड़ेकी पूजा की॥ १२॥ जो किसीके गुणोंमें दोष नहीं निकालते, झूठ नहीं बोलते, दम्भ, ईर्ष्या और हिंसा नहीं करते तथा अभिमानसे रहित

* यहाँ कदाचित् (एक बार) से तात्पर्य है तीसरे महीनेके जन्मनक्षत्रयुक्त कालसे। उस समय श्रीकृष्णकी झाँकी-का ऐसा वर्णन मिलता है—

स्निग्धाः पश्यति सेष्मयीति भुजयोर्युग्मं मुहुश्चालयत्यल्पं मधुरं च कूजति परिष्वङ्गाय चाकाङ्क्षति ।
लाभालाभवशादमुष्य लसति क्रन्दत्यपि क्वाप्यसौ पीतस्तन्यतया स्वपित्यपि पुनर्जाग्रन्मुदं यच्छति ॥

'स्नेहसे तर गोपियोंको आँख उठाकर देखते हैं और मुसकराते हैं। दोनों भुजाएँ बार-बार हिलाते हैं। बड़े मधुर स्वर-से थोड़ा-थोड़ा कूजते हैं। गोदमें आनेके लिये ललकते हैं। किसी वस्तुको पाकर उससे खेलने लग जाते हैं और न मिलनेसे क्रन्दन करते हैं। कभी-कभी दूध पीकर सो जाते हैं और फिर जागकर आनन्दित करते हैं।'

† हिरण्याक्षका पुत्र था उत्कच। वह बहुत बलवान् एवं मोटा-तगड़ा था। एक बार यात्रा करते समय उसने लोमश ऋषिके आश्रमके वृक्षोंको कुचल डाला। लोमश ऋषिने क्रोध करके शाप दे दिया—'अरे दुष्ट ! जा, तू देहरहित हो जा।' उसी समय साँपके केंचुलके समान उसका शरीर गिरने लगा। वह धड़ामसे लोमश ऋषिके चरणोंपर गिर पड़ा और प्रार्थना की—'कृपासिन्धो ! मुझपर कृपा कीजिये। मुझे आपके प्रभावका ज्ञान नहीं था। मेरा शरीर लौटा दीजिये।' लोमशजी प्रसन्न हो गये। महात्माओंका शाप भी वर हो जाता है। उन्होंने कहा—'वैवस्वत मन्वन्तरमें श्रीकृष्णके चरण-स्पर्शसे तेरी मुक्ति हो जायगी।' वही असुर छकड़ेमें आकर बैठ गया था और भगवान् श्रीकृष्णके चरणस्पर्शसे मुक्त हो गया।

हैं—उन सत्यशील ब्राह्मणोंका आशीर्वाद कभी विफल नहीं होता ॥ १३ ॥ यह सोचकर नन्दबाबाने बालकको गोदमें उठा लिया और ब्राह्मणोंसे साम, ऋक् और यजुर्वेदके मन्त्रोंद्वारा संस्कृत एवं पवित्र ओषधियोंसे युक्त जलसे अभिषेक कराया ॥ १४ ॥ उन्होंने बड़ी एकाग्रतासे स्वस्त्ययनपाठ और हवन कराकर ब्राह्मणोंको अति उत्तम अन्नका भोजन कराया ॥ १५ ॥ इसके बाद नन्दबाबाने अपने पुत्रकी उन्नति और अभिवृद्धिकी कामनासे ब्राह्मणोंको सर्वगुणसम्पन्न बहुत-सी गौएँ दीं । वे गौएँ वस्त्र, पुष्पमाला और सोनेके हारोंसे सजी हुई थीं । ब्राह्मणोंने उन्हे आशीर्वाद दिया ॥ १६ ॥ यह बात स्पष्ट है कि जो वेदवेत्ता और सदाचारी ब्राह्मण होते हैं, उनका आशीर्वाद कभी निष्फल नहीं होता ॥ १७ ॥

एक दिनकी बात है, सती यशोदाजी अपने प्यारे लल्लाको गोदमें लेकर दुलार रही थीं । सहसा श्रीकृष्ण चट्टानके समान भारी बन गये । वे उनका भार न सह सकीं ॥ १८ ॥ उन्होंने भारसे पीड़ित होकर श्रीकृष्णको पृथ्वीपर बैठा दिया । इस नयी घटनासे वे अत्यन्त चकित हो रही थीं । इसके बाद उन्होंने भगवान् पुरुषोत्तमका स्मरण किया और घरके काममें लग गयीं ॥ १९ ॥

तृणावर्त नामका एक दैत्य था । वह कंसका निजी सेवक था । कंसकी प्रेरणासे ही बवंडरके रूपमें वह गोकुलमें आया और बैठे हुए बालक श्रीकृष्णको उड़ाकर आकाशमें ले गया ॥ २० ॥ उसने ब्रजरजसे सारे गोकुलको ढक दिया और लोगोंकी देखनेकी शक्ति हर ली । उसके अत्यन्त भयङ्कर शब्दसे दसों दिशाएँ काँप उठीं ॥ २१ ॥ सारा ब्रज दो घड़ीतक रज और तमसे ढका रहा । यशोदाजीने अपने पुत्रको जहाँ बैठा दिया था, वहाँ जाकर देखा तो श्रीकृष्ण वहाँ नहीं थे ॥ २२ ॥ उस समय तृणावर्तने बवंडररूपसे इतनी बालू उड़ा रक्खी थी कि सभी लोग अत्यन्त उद्विग्न और बेसुध हो गये थे । उन्हें अपना-पराया कुछ भी नहीं सूझ रहा था ॥ २३ ॥ उस जोरकी आँधी और धूलकी वर्षामें अपने पुत्रका पता न पाकर यशोदाको बड़ा शोक हुआ । वे अपने पुत्रकी याद करके बहुत ही दीन हो गयीं और बछड़ेके मर जानेपर गायकी जो दशा हो जाती है, वही दशा उनकी हो गयी । वे पृथ्वीपर गिर पड़ीं ॥ २४ ॥ बवंडरके शान्त होनेपर जब धूलकी वर्षाका वेग कम हो गया, तब यशोदाजीके रोनेका शब्द सुनकर दूसरी गोपियाँ वहाँ दौड़ आयीं । नन्दनन्दन श्यामसुन्दर श्रीकृष्णको न देखकर उनके हृदयमें भी बड़ा संताप हुआ, आँखोंसे आँसूकी धारा बहने लगी । वे फूट-फूटकर रोने लगीं ॥ २५ ॥

इधर तृणावर्त बवंडररूपसे जब भगवान् श्रीकृष्णको आकाशमें उठा ले गया, तब उनके भारी बोझको न सम्हाल सकनेके कारण उसका वेग शान्त हो गया । वह अधिक चल न सका ॥ २६ ॥ तृणावर्त अपनेसे भी भारी होनेके कारण श्रीकृष्णको नीलगिरिकी चट्टान समझने लगा । उन्होंने उसका गला ऐसा पकड़ा कि वह उस अद्भुत शिशुको अपनेसे अलग नहीं कर सका ॥ २७ ॥ भगवान्‌ने इतने जोरसे उसका गला पकड़ रक्खा था कि वह असुर निश्चेष्ट हो गया । उसकी आँखें बाहर निकल आयीं । बोलती बंद हो गयी । प्राण-पखेरू उड़ गये और बालक श्रीकृष्णके साथ वह ब्रजमें गिर पड़ा* ॥ २८ ॥ वहाँ जो स्त्रियाँ इकट्ठी होकर रो रही थी, उन्होंने देखा कि वह विकराल दैत्य आकाशसे एक चट्टानपर गिर पड़ा और उसका एक-एक अङ्ग चकनाचूर हो गया—ठीक वैसे ही, जैसे भगवान् शङ्करके बाणोंसे आहत हो त्रिपुरासुर गिरकर चूर-चूर हो गया था ॥ २९ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण उसके वक्षःस्थलपर लटक रहे थे । यह देखकर गोपियाँ विस्मित

* पाण्डुदेशमें सहस्राक्ष नामके एक राजा थे । वे नर्मदा-तटपर अपनी रानियोंके साथ विहार कर रहे थे । उधरसे दुर्वासा ऋषि निकले, परन्तु उन्होंने प्रणाम नहीं किया । ऋषिने शाप दिया—'तू राक्षस हो जा ।' जब वह उनके चरणोंपर गिरकर गिड़गिड़ाया, तब दुर्वासाजीने कह दिया—'भगवान् श्रीकृष्णके श्रीविग्रहका स्पर्श होते ही तू मुक्त हो जायगा ।' वही राजा तृणावर्त होकर आया था और श्रीकृष्णका संस्पर्श प्राप्त करके मुक्त हो गया ।

हो गयीं। उन्होंने झटपट वहाँ जाकर श्रीकृष्णको गोदमें ले लिया और लाकर उन्हें माताको दे दिया। बालक मृत्युके मुखसे सकुशल लौट आया। यद्यपि उसे राक्षस आकाशमें उठा ले गया था, फिर भी वह बच गया। इस प्रकार बालक श्रीकृष्णको फिर पाकर यशोदा आदि गोपियों तथा नन्द आदि गोपोंको अत्यन्त आनन्द हुआ ॥३०॥ वे कहने लगे—'अहो! यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है। देखो तो सही, यह कितनी अद्भुत घटना घट गयी! यह बालक राक्षसके द्वारा मृत्युके मुखमें डाल दिया गया था, परन्तु फिर जीता-जागता आ गया और उस हिंसक दुष्टको उसके पाप ही खा गये! सच है, साधुपुरुष अपनी समतासे ही सम्पूर्ण भयोंसे बच जाता है ॥ ३१ ॥ हमने ऐसा कौन-सा तप, भगवान्‌की पूजा, प्याऊ-पौसला, कूआँ-बावली, बाग-बगीचे आदि पूर्त, यज्ञ, दान अथवा जीवोंकी भलाई की थी, जिसके फलसे हमारा यह बालक मरकर भी अपने स्वजनोंको सुखी करनेके लिये फिर लौट आया? अवश्य ही यह बड़े सौभाग्यकी बात है' ॥ ३२ ॥ जब नन्दबाबाने देखा कि महावनमें बहुत-सी अद्भुत घटनाएँ घटित हो रही हैं, तब आश्चर्यचकित होकर उन्होंने वसुदेवजीकी बातका बार-बार समर्थन किया ॥ ३३ ॥

एक दिनकी बात है, यशोदाजी अपने प्यारे शिशुको अपनी गोदमें लेकर बड़े प्रेमसे स्तन-पान करा रही थीं। वे वात्सल्य-स्नेहसे इस प्रकार सराबोर हो रही थीं कि उनके स्तनोंसे अपने-आप ही दूध झरता जा रहा था ॥ ३४ ॥ जब वे प्रायः दूध पी चुके और माता यशोदा उनके रुचिर मुसकानसे युक्त मुखको चूम रही थीं, उसी समय श्रीकृष्णको जँभाई आ गयी और माताने उनके मुखमें यह देखा * ॥ ३५ ॥ उसमें आकाश, अन्तरिक्ष, ज्योतिर्मण्डल, दिशाएँ, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु, समुद्र, द्वीप, पर्वत, नदियाँ, वन और समस्त चराचर प्राणी स्थित हैं ॥ ३६ ॥ परीक्षित्! अपने पुत्रके मुँहमें इस प्रकार सहसा सारा जगत् देखकर मृगशावकनयनी यशोदाजीका शरीर काँप उठा। उन्होंने अपनी बड़ी-बड़ी आँखें बंद कर लीं † । वे अत्यन्त आश्चर्यचकित हो गयीं ॥ ३७ ॥

आठवाँ अध्याय

नामकरण-संस्कार और बाललीला

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! यदुवंशियोंके कुल-पुरोहित थे श्रीगर्गाचार्यजी। वे बड़े तपस्वी थे। वसुदेवजीकी प्रेरणासे वे एक दिन नन्दबाबाके गोकुलमें आये ॥ १ ॥ उन्हें देखकर नन्दबाबाको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे हाथ जोड़कर उठ खड़े हुए। उनके चरणोंमें प्रणाम किया। इसके बाद 'ये स्वयं भगवान् ही हैं'—इस भावसे उनकी पूजा की ॥ २ ॥ जब गर्गाचार्यजी आरामसे बैठ गये और विधिपूर्वक उनका आतिथ्य-सत्कार हो गया, तब नन्दबाबाने बड़ी ही मधुर वाणीसे उनका अभिनन्दन किया और कहा—'भगवन्! आप तो स्वयं पूर्णकाम हैं, फिर मैं आपकी क्या सेवा करूँ? ॥ ३ ॥ आप-जैसे महात्माओंका हमारे-जैसे

---

* स्नेहमयी जननी और स्नेहके सदा भूखे भगवान्! उन्हें दूध पीनेसे तृप्ति ही नहीं होती थी। माके मनमें शङ्का हुई—कहीं अधिक पीनेसे अपच न हो जाय। प्रेम सर्वदा अनिष्टकी आशङ्का उत्पन्न करता है। श्रीकृष्णने अपने मुखमें विश्वरूप दिखाकर कहा—'अरी मैया! तेरा दूध मैं अकेले ही नहीं पीता हूँ। मेरे मुखमें बैठकर सम्पूर्ण विश्व ही इसका पान कर रहा है। तू घबरावे मत'—

स्तन्य कियत् पिबसि भूर्यलमर्भकेति वर्तिष्यमाणवचना जननीं विभाव्य।
विश्वं बिभर्मि पयसोऽस्य न केवलोऽहमस्यादर्दाशि हरिणा किमु विश्वमास्ये ॥

† वात्सल्यमयी यशोदा माता अपने लालाके मुखमें विश्व देखकर डर गयीं, परन्तु वात्सल्य प्रेमरस-भावित हृदय होनेसे उन्हें विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने विचार किया कि यह विश्वका बखेड़ा लालाके मुँहमें कहाँसे आया? हो-न-हो यह मेरी इन निगोड़ी आँखोंकी ही गड़बड़ी है। मानो इसीसे उन्होंने अपने नेत्र बंद कर लिये।

गृहस्थोंके घर आ जाना ही हमारे परम कल्याणका कारण है। हम तो घरोंमें इतने उलझ रहे हैं और इन प्रपञ्चोंमें हमारा चित्त इतना दीन हो रहा है कि हम आपके आश्रमतक जा भी नहीं सकते। हमारे कल्याणके सिवा आपके आगमनका और कोई हेतु नहीं है ॥ ४ ॥ प्रभो! जो बात साधारणतः इन्द्रियोंकी पहुँचके बाहर है अथवा भूत और भविष्यके गर्भमें निहित है, वह भी ज्यौतिष-शास्त्रके द्वारा प्रत्यक्ष जान ली जाती है। आपने उसी ज्यौतिष-शास्त्रकी रचना की है ॥ ५ ॥ आप ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं। इसलिये मेरे इन दोनों बालकोंके नामकरणादि संस्कार आप ही कर दीजिये; क्योंकि ब्राह्मण जन्मसे ही मनुष्यमात्रका गुरु है' ॥ ६ ॥

गर्गाचार्यजीने कहा—नन्दजी! मैं सब जगह यदुवंशियोंके आचार्यके रूपमें प्रसिद्ध हूँ। यदि मैं तुम्हारे पुत्रके संस्कार करूँगा, तो लोग समझेंगे कि यह तो देवकीका पुत्र है ॥ ७ ॥ कंसकी बुद्धि बुरी है, वह पाप ही सोचा करती है। वसुदेवजीके साथ तुम्हारी बड़ी घनिष्ठ मित्रता है। जबसे देवकीकी कन्यासे उसने यह बात सुनी है कि उसको मारनेवाला और कहीं पैदा हो गया है, तबसे वह यही सोचा करता है कि देवकीके आठवें गर्भसे कन्याका जन्म नहीं होना चाहिये। यदि मैं तुम्हारे पुत्रका संस्कार कर दूँ और वह इस बालकको वसुदेवजीका लड़का समझकर मार डाले, तो हमसे बड़ा अन्याय हो जायगा ॥ ८-९ ॥

नन्दबाबाने कहा—आचार्यजी! आप चुपचाप इस एकान्त गोशालामें केवल स्वस्तिवाचन करके इस बालकका द्विजातिसमुचित नामकरण-संस्कारमात्र कर दीजिये। औरोंकी कौन कहे, मेरे सगे-सम्बन्धी भी इस बातको न जानने पावें ॥ १० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—गर्गाचार्यजी तो संस्कार करना चाहते ही थे। जब नन्दबाबाने उनसे इस प्रकार प्रार्थना की, तब उन्होंने एकान्तमें छिपकर गुप्तरूपसे दोनों बालकोंका नामकरण-संस्कार कर दिया ॥ ११ ॥

गर्गाचार्यजीने कहा—'यह रोहिणीका पुत्र है। इसलिये इसका नाम होगा रौहिणेय। यह अपने सगे-सम्बन्धी और मित्रोंको अपने गुणोंसे अत्यन्त आनन्दित करेगा। इसलिये इसका दूसरा नाम होगा 'राम'। इसके बलकी कोई सीमा नहीं है, अतः इसका एक नाम 'बल' भी है। यह यादवोंमें और तुमलोगोंमें कोई भेदभाव नहीं रक्खेगा और लोगोंमें फूट पड़नेपर मेल करावेगा, इसलिये इसका एक नाम 'सङ्कर्षण' भी है ॥ १२ ॥ और यह जो साँवला-साँवला है, यह प्रत्येक युगमें शरीर ग्रहण करता है। पिछले युगोंमें इसने क्रमशः श्वेत, रक्त और पीत—ये तीन विभिन्न रंग स्वीकार किये थे। अबकी यह कृष्णवर्ण हुआ है। इसलिये इसका नाम 'कृष्ण' होगा ॥ १३ ॥ नन्दजी! यह तुम्हारा पुत्र पहले कभी वसुदेवजीके घर भी पैदा हुआ था, इसलिये इस रहस्यको जाननेवाले लोग इसे 'श्रीमान् वासुदेव' भी कहते हैं ॥ १४ ॥ तुम्हारे पुत्रके और भी बहुत-से नाम हैं तथा रूप भी अनेक हैं। इसके जितने गुण हैं और जितने कर्म, उन सबके अनुसार अलग-अलग नाम पड़ जाते हैं। मैं तो उन नामोंको जानता हूँ, परन्तु संसारके साधारण लोग नहीं जानते ॥ १५ ॥ यह तुमलोगोंका परम कल्याण करेगा। समस्त गोप और गौओंको यह बहुत ही आनन्दित करेगा। इसकी सहायतासे तुमलोग बड़ी-बड़ी विपत्तियोंको बड़ी सुगमतासे पार कर लोगे ॥ १६ ॥ व्रजराज! पहले युगकी बात है। एक बार पृथ्वीमें कोई राजा नहीं रह गया था। डाकुओंने चारों ओर लूट-खसोट मचा रक्खी थी। तब तुम्हारे इसी पुत्रने सज्जन पुरुषोंकी रक्षा की और इससे बल पाकर उन लोगोंने लुटेरोंपर विजय प्राप्त की ॥ १७ ॥ जो मनुष्य तुम्हारे इस साँवले-सलोने शिशुसे प्रेम करते हैं, वे बड़े भाग्यवान् हैं। जैसे विष्णुभगवान्‌के करकमलोंकी छत्रछायामें रहनेवाले देवताओंको असुर नहीं जीत सकते, वैसे ही इससे प्रेम करनेवालोंको भीतर या बाहर किसी भी प्रकारके शत्रु नहीं जीत सकते ॥ १८ ॥ नन्दजी! चाहे जिस दृष्टिसे देखें—गुणमें, सम्पत्ति और सौन्दर्यमें, कीर्ति और प्रभावमें तुम्हारा यह बालक साक्षात् भगवान् नारायणके समान है। तुम बड़ी सावधानी और तत्परतासे इसकी रक्षा करो' ॥ १९ ॥ इस प्रकार नन्दबाबाको भलीभाँति समझाकर, आदेश देकर गर्गाचार्यजी अपने

आश्रमको लौट गये। उनकी बात सुनकर नन्दबाबाको बड़ा ही आनन्द हुआ। उन्होंने ऐसा समझा कि मेरी सब आशा-लालसाएँ पूरी हो गयीं, मैं अब कृतकृत्य हूँ ॥ २० ॥

परीक्षित्! कुछ ही दिनोंमें राम और श्याम घुटनों और हाथोंके बल बकैयाँ चल-चलकर गोकुलमें खेलने लगे ॥ २१ ॥ दोनों भाई अपने नन्हे-नन्हे पाँवोंको गोकुलकी कीचड़में घसीटते हुए चलते। उस समय उनके पाँव और कमरके घुँघरू रुनझुन बजने लगते। वह शब्द बड़ा भला मालूम पड़ता। वे दोनों स्वयं वह ध्वनि सुनकर खिल उठते। कभी-कभी वे रास्ते चलते किसी अज्ञात व्यक्तिके पीछे हो लेते। फिर जब देखते कि यह तो कोई दूसरा है, तब झक-से रह जाते और डरकर अपनी माताओं—रोहिणीजी और यशोदाजीके पास लौट आते ॥ २२ ॥ माताएँ यह सब देख-देखकर स्नेहसे भर जातीं। उनके स्तनोंसे दूधकी धारा बहने लगती थी। जब उनके दोनों नन्हे-नन्हे-से शिशु अपने शरीरमे कीचड़का अङ्गराग लगाकर लौटते, तब उनकी सुन्दरता और भी बढ़ जाती थी। माताएँ उन्हें आते ही दोनों हाथोंसे गोदमें लेकर हृदयसे लगा लेतीं और स्तन-पान कराने लगतीं। जब वे दूध पीने लगते और बीच-बीचमें मुसकरा-मुसकराकर अपनी माताओंकी ओर देखने लगते, तब वे उनकी मन्द-मन्द मुसकान, छोटी-छोटी दँतुलियाँ और भोला-भाला मुँह देखकर आनन्दके समुद्रमे डूबने-उतराने लगतीं ॥ २३ ॥ जब राम और श्याम दोनों कुछ और बड़े हुए, तब व्रजमें घरके बाहर ऐसी-ऐसी बाललीलाएँ करने लगे, जिन्हें गोपियाँ देखती ही रह जातीं। जब वे किसी बैठे हुए बछड़ेकी पूँछ पकड़ लेते और बछड़े डरकर इधर-उधर भागते, तब वे दोनों और भी जोरसे पूँछ पकड़ लेते और बछड़े उन्हे घसीटते हुए दौड़ने लगते। गोपियाँ अपने घरका काम-धंधा छोड़कर यही सब देखती रहतीं और हँसते-हँसते लोटपोट होकर परम आनन्दमे मग्न हो जातीं ॥ २४ ॥ कन्हैया और बलदाऊ दोनों ही बड़े चञ्चल और बड़े खिलाड़ी थे। वे कहीं हरिन, गाय आदि सींगवाले पशुओंके पास दौड़ जाते, तो कहीं धधकती हुई आगसे खेलनेके लिये कूद पड़ते। कभी दाँतसे काटनेवाले कुत्तोंके पास पहुँच जाते, तो कभी आँख बचाकर तलवार उठा लेते। कभी कूएँ या गड्ढेके पास जलमे गिरते-गिरते बचते, कभी मोर आदि पक्षियोंके निकट चले जाते और कभी काँटोंकी ओर बढ़ जाते थे। माताएँ उन्हें बहुत बरजतीं, परन्तु उनकी एक न चलती। ऐसी स्थितिमे वे घरका काम-धंधा भी नहीं सम्हाल पातीं। उनका चित्त बच्चोंको भयकी वस्तुओंसे बचानेकी चिन्तासे अत्यन्त चञ्चल रहता था ॥ २५ ॥

राजर्षे! कुछ ही दिनोंमे यशोदा और रोहिणीके लाडले लाल घुटनोंका सहारा लिये बिना अनायास ही खड़े होकर गोकुलमें चलने फिरने लगे* ॥ २६ ॥

---

* जब श्यामसुन्दर घुटनोंका सहारा लिये बिना चलने लगे, तब वे अपने घरमे अनेकों प्रकारकी कौतुकमयी लीला करने लगे—

शून्ये चोरयतः स्वयं निजगृहे हैयङ्गवीनं मणिस्तम्भे स्वप्रतिबिम्बमीक्षितवतस्तेनैव सार्द्धं भिया।
भ्रातर्मा वद मातरं मम समो भागस्तवापीहितो भुङ्क्ष्वेत्यालपतो हरेः कलवचो मात्रा रहः श्रूयते ॥

एक दिन साँवरे-सलोने व्रजराजकुमार श्रीकन्हैयालालजी अपने सूने घरमें स्वयं ही माखन चुरा रहे थे। उनकी दृष्टि मणिके खम्भेमें पड़े हुए अपने प्रतिबिम्बपर पड़ी। अब तो वे डर गये। अपने प्रतिबिम्बसे बोले—'अरे भैया! मेरी मैयासे कहियो मत। तेरा भाग भी मेरे बराबर ही मुझे स्वीकार है; ले, खा। खा ले भैया!' यशोदा माता अपने लालकी तोतली बोली सुन रही थीं।

उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ, वे घरमें भीतर घुस आयीं। माताको देखते ही श्रीकृष्णने अपने प्रतिबिम्बको दिखाकर बात बदल दी—

मातः क एष नवनीतमिदं त्वदीयं लोभेन चोरयितुमद्य गृहं प्रविष्टः।
मद्वारणं न मनुते मयि रोषभाजि रोषं तनोति न हि मे नवनीतलोभः ॥

'मैया! मैया!! यह कौन है? लोभवश तुम्हारा माखन चुरानेके लिये आज घरमें घुस आया है। मैं मना

ये व्रजवासियोंके कन्हैया स्वयं भगवान् हैं, परम सुन्दर और परम मधुर ! अब वे और बलराम अपनी ही उम्रके ग्वालबालोंको अपने साथ लेकर खेलनेके लिये व्रजमें निकल पड़ते और व्रजकी भाग्यवती गोपियोंको निहाल करते हुए तरह-तरहके खेल खेलते ॥ २७ ॥ उनके बचपनकी चञ्चलताएँ बड़ी ही अनोखी होती थीं। गोपियोंको तो वे बड़े ही सुन्दर और मधुर लगतीं। एक दिन सब की-सब इकट्ठी होकर नन्दबाबाके घर

करता हूँ तो मानता नहीं है और मैं क्रोध करता हूँ तो यह भी क्रोध करता है। मैया ! तुम कुछ और मत सोचना। मेरे मनमें माखनका तनिक भी लोभ नहीं है।'

अपने दूध-मुँहे शिशुकी प्रतिमा देखकर मैया वात्सल्य-स्नेहके आनन्दमें मग्न हो गयीं।

× × × × × ×

एक दिन श्यामसुन्दर माताके बाहर जानेपर घरमें ही माखन-चोरी कर रहे थे। इतनेमें ही दैववश यशोदाजी लौट आयीं और अपने लाड़ले लालको न देखकर पुकारने लगीं—

कृष्ण ! क्वासि करोषि किं पितरिति श्रुत्वैव मातुर्वचः साशङ्कं नवनीतचौर्यविरतो विश्रम्य तामब्रवीत्।
मातः कङ्कणपद्मरागमहसा पाणिर्ममातप्यते तेनायं नवनीतभाण्डविवरे विन्यस्य निर्वापितः॥

'कन्हैया ! कन्हैया ! अरे ओ मेरे बाप ! कहाँ है, क्या कर रहा है ?'—माताकी यह बात सुनते ही माखनचोर श्रीकृष्ण डर गये और माखन-चोरीसे अलग हो गये। फिर थोड़ी देर चुप रहकर यशोदाजीसे बोले—'मैया, री मैया ! यह जो तुमने मेरे कङ्कणमें पद्मराग जड़ा दिया है, इसकी लपटसे मेरा हाथ जल रहा था। इसीसे मैंने इसे माखनके मटकेमें डालकर बुझाया था।'

माता यह मधुर-मधुर कन्हैयाकी तोतली बोली सुनकर मुग्ध हो गयीं और 'आओ बेटा !' ऐसा कहकर लालको गोदमें उठा लिया और प्यारसे चूमने लगीं।

× × × × × ×

क्षुण्णाभ्यां करकुड्मलेन विगलद्बाष्पाम्बुदृग्भ्यां रुदन् हुं हुं हूमिति रुद्धकण्ठकुहरादस्पष्टवाग्विभ्रमः।
मात्रासौ नवनीतचौर्यकुतुके प्राग्भर्त्सितः स्वाञ्चलेनामृज्यास्य मुखं तवैतदखिलं वत्सेति कण्ठे कृतः॥

एक दिन माताने माखनचोरी करनेपर श्यामसुन्दरको धमकाया, डाँटा-फटकारा। बस, दोनों नेत्रोंसे आँसुओंकी झड़ी लग गयी। कर-कमलसे आँखें मलने लगे। ऊँ-ऊँ-ऊँ करके रोने लगे। गला रुँध गया। मुँहसे बोला नहीं जाता था। बस, माता यशोदाका धैर्य टूट गया। अपने आँचलसे अपने लाला कन्हैयाका मुँह पोंछा और बड़े प्यारसे गले लगाकर बोलीं—'लाला ! यह सब तुम्हारा ही है, यह चोरी नहीं है।'

एक दिनकी बात है—पूर्णचन्द्रकी चाँदनीसे मणिमय आँगन धुल गया था। यशोदा मैयाके साथ गोपियोंकी गोष्ठी जुड़ रही थी। वहीं खेलते-खेलते कृष्णचन्द्रकी दृष्टि चन्द्रमापर पड़ी। उन्होंने पीछेसे आकर यशोदा मैयाका घूँघट उतार लिया। और अपने कोमल करोंसे उनकी चोटी खोलकर खींचने लगे और बार-बार पीठ थपथपाने लगे। 'मैं लूँगा, मैं लूँगा'—तोतली बोलीसे इतना ही कहते। जब मैयाकी समझमें बात नहीं आयी, तब उसने स्नेहार्द्र दृष्टिसे पास बैठी ग्वालिनोंकी ओर देखा। अब वे विनयसे, प्यारसे फुसलाकर श्रीकृष्णको अपने पास ले आयीं और बोलीं—'लालन ! तुम क्या चाहते हो, दूध ?' श्रीकृष्ण—'ना'। 'क्या बढ़िया दही ?' 'ना'। 'क्या खुरचन ?' 'ना'। 'मलाई ?' 'ना'। 'ताजा माखन ?' 'ना'। ग्वालिनोंने कहा—'बेटा ! रूठो मत, रोओ मत। जो माँगोगे सो देंगी।' श्रीकृष्णने धीरेसे कहा—'घरकी वस्तु नहीं चाहिये' और अँगुली उठाकर चन्द्रमाकी ओर संकेत कर दिया। गोपियाँ बोलीं—'ओ मेरे बाप ! यह कोई माखनका लौंदा थोड़े ही है ? हाय ! हाय ! हम यह कैसे देंगी ? यह तो प्यारा-प्यारा हंस आकाशके सरोवरमें तैर रहा है।' श्रीकृष्णने कहा—'मैं भी तो खेलनेके लिये इस हंसको ही माँग रहा हूँ, शीघ्रता करो। पार जानेके पूर्व ही मुझे ला दो।'

अब और भी मचल गये। धरतीपर पाँव पीट-पीटकर और हाथोंसे गला पकड़-पकड़कर 'दो-दो' कहने लगे और पहलेसे भी अधिक रोने लगे। दूसरी गोपियोंने कहा—'बेटा ! राम-राम ! इन्होंने तुमको बहला दिया है। यह राजहंस नहीं है, यह तो आकाशमें ही रहनेवाला चन्द्रमा है।' श्रीकृष्ण हठ कर बैठे—'मुझे तो यही दो; मेरे मनमें इसके साथ खेलनेकी बड़ी लालसा है। अभी दो, अभी दो।' जब बहुत रोने लगे, तब यशोदा माताने गोदमें उठा लिया और प्यार करके बोलीं—'मेरे प्राण ! न यह राजहंस है और न तो चन्द्रमा। है यह माखन ही, परन्तु तुमको

आयीं और यशोदा माताको सुना-सुनाकर कन्हैयाके करतूत कहने लगी ॥ २८ ॥ 'अरी यशोदा! यह तेरा कान्हा बड़ा नटखट हो गया है। गाय दुहनेका समय न होनेपर भी यह बछड़ोंको खोल देता है और हम डाँटती है, तो ठठा-ठठाकर हँसने लगता है। यह चोरीके बड़े-बड़े उपाय करके हमारे मीठे-मीठे दही-दूध चुरा-चुराकर खा जाता है। केवल अपने ही खाता तो भी एक बात थी, यह तो सारा दही-दूध वानरोंको बाँट देता है और जब वे भी पेट भर जानेपर नहीं खा पाते, तब यह हमारे माटोंको ही फोड डालता है। यदि घरमें कोई वस्तु इसे नहीं मिलती तो यह घर और घरवालोंपर बहुत खीझता है और हमारे बच्चोंको रुलाकर भाग जाता है ॥ २९ ॥ जब हम दही-दूधको छीकोंपर रख देती हैं और इसके छोटे-छोटे हाथ वहाँतक नहीं पहुँच पाते, तब यह बड़े-बड़े उपाय रचता है। कहीं दो-चार पीढ़ोंको एकके ऊपर एक रख देता है। कहीं ऊखलपर चढ़ जाता है तो कहीं ऊखलपर पीढ़ा रख देता है, (कभी-भभी तो अपने किसी साथीके कंधेपर ही चढ़ जाता है।) जब इतनेपर भी काम नहीं चलता, तब यह नीचेसे ही उन बर्तनोंमें छेद कर देता है। इसे इस बातकी पक्की पहचान रहती है कि किस छीकेपर किस बर्तनमें क्या रक्खा है। और ऐसे ढगसे छेद करना जानता है कि किसीको पतातक न चले। जब हम अपनी वस्तुओंको बहुत अँधेरेमें छिपा देती हैं, तब नन्दरानी! तुमने जो इसे बहुत-से मणिमय आभूषण पहना रक्खे हैं, उनके प्रकाशसे अपने-आप ही सब कुछ देख लेता है। इसके शरीरमें भी ऐसी ज्योति है कि जिससे इसे सब कुछ दीख जाता है। यह इतना चालाक है कि कब कौन कहाँ रहता है, इसका पता रखता है और जब हम सब घरके काम-धंधोंमें उलझी रहती हैं, तब यह अपना काम बना लेता है ॥ ३० ॥ ऐसा करके भी ढिठाईकी बातें करता है—उलटे हमे ही चोर बनाता और अपने घरका मालिक बन जाता

देने योग्य नहीं है। देखो, इसमें वह काला-काला विष लगा हुआ है। इससे बढ़िया होनेपर भी इसे कोई नहीं खाता है।' श्रीकृष्णने कहा—'मैया! मैया! इसमें विष कैसे लग गया।' बात बदल गयी। मैयाने गोदमें लेकर मधुर-मधुर स्वरसे कथा सुनाना प्रारम्भ किया। मा-बेटेमें प्रश्नोत्तर होने लगे।

यशोदा—'लाला! एक क्षीर-सागर है।'

श्रीकृष्ण—'मैया! वह कैसा है।'

यशोदा—'बेटा! यह जो तुम दूध देख रहे हो, इसीका एक समुद्र है।'

श्रीकृष्ण—'मैया! कितनी गायोंने दूध दिया होगा जब समुद्र बना होगा।'

यशोदा—'कन्हैया! वह गायका दूध नहीं है।'

श्रीकृष्ण—'अरी मैया! तू मुझे बहला रही है, भला बिना गायके दूध कैसे?'

यशोदा—'वत्स! जिसने गायोंमें दूध बनाया है, वह गायके बिना भी दूध बना सकता है।'

श्रीकृष्ण—'मैया! वह कौन है?'

यशोदा—'वह भगवान् हैं; परन्तु अग (उनके पास कोई जा नहीं सकता। अथवा 'ग' कार रहित) हैं।'

श्रीकृष्ण—'अच्छा ठीक है, आगे कहो।'

यशोदा—'एक बार देवता और दैत्योंमें लड़ाई हुई। असुरोंको मोहित करनेके लिये भगवान्‌ने क्षीरसागरको मथा। मदराचलकी रई बनी। वासुकि नागकी रस्सी। एक ओर देवता लगे, दूसरी ओर दानव।'

श्रीकृष्ण—'जैसे गोपियाँ दही मथती हैं, क्यों मैया?'

यशोदा—'हाँ बेटा! उसीसे कालकूट नामका विष पैदा हुआ।'

श्रीकृष्ण—'मैया! विष तो साँपोंमें होता है, दूधमें कैसे निकला?'

यशोदा—'बेटा! जब शङ्कर भगवान्‌ने वही विष पी लिया, तब उसकी जो फुइयाँ धरतीपर गिर पड़ीं, उन्हे पीकर साँप विषधर हो गये। सो बेटा! भगवान्‌की ही ऐसी कोई लीला है, जिससे दूधमेंसे विष निकला।'

श्रीकृष्ण—'अच्छा मैया! यह तो ठीक है।'

यशोदा—'बेटा! (चन्द्रमाकी ओर दिखाकर) यह मक्खन भी उसीसे निकला है। इसलिये थोड़ा सा विष इसमे भी लग गया। देखो, देखो, इसीको लोग कलङ्क कहते हैं। सो मेरे प्राण! तुम घरका ही मक्खन खाओ।'

है। इतना ही नहीं, यह हमारे लिपे-पुते स्वच्छ घरोंमें मूत्र आदि भी कर देता है। तनिक देखो तो इसकी ओर, वहाँ तो चोरीके अनेकों उपाय करके काम बनाता है और यहाँ मालूम हो रहा है मानो पत्थरकी मूर्ति खड़ी हो! वाह रे भोले-भाले साधु!' इस प्रकार गोपियाँ कहती जातीं और श्रीकृष्णके भीत-चकित नेत्रोंसे युक्त मुखकमलको देखती जातीं। उनकी यह दशा देखकर नन्दरानी यशोदाजी उनके मनका भाव ताड़ लेतीं और उनके हृदयमें स्नेह और आनन्दकी बाढ़ आ जाती। वे इस प्रकार हँसने लगतीं कि अपने लाड़ले कन्हैयाको इस बातका उलाहना भी न दे पातीं, डाँटने-की बाततक नहीं सोच पातीं * ॥ ३१ ॥

कथा सुनते-सुनते श्यामसुन्दरकी आँखोंमें नींद आ गयी और मैयाने उन्हें पलङ्गपर सुला दिया।

* भगवान्‌की लीलापर विचार करते समय यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि भगवान्‌का लीलाधाम, भगवान्‌के लीलापात्र, भगवान्‌का लीलाशरीर और उनकी लीला प्राकृत नहीं होती। भगवान्‌मे देह-देहीका भेद नहीं है। महाभारतमें आया है—

न भूतसंघसंस्थानो देवस्य परमात्मनः। यो वेत्ति भौतिकं देहं कृष्णस्य परमात्मनः॥
स सर्वस्माद् बहिष्कार्यः श्रौतस्मार्तविधानतः। मुखं तस्यावलोक्यापि सचैलः स्नानमाचरेत्॥

'परमात्माका शरीर भूतसमुदायसे बना हुआ नहीं होता। जो मनुष्य श्रीकृष्ण परमात्माके शरीरको भौतिक जानता-मानता है, उसका समस्त श्रौत-स्मार्त कर्मोंसे बहिष्कार कर देना चाहिये अर्थात् उसका किसी भी शास्त्रीय कर्ममें अधिकार नहीं है। यहाँतक कि उसका मुँह देखनेपर भी सचैल (वस्त्रसहित) स्नान करना चाहिये।'

श्रीमद्भागवतमे ही ब्रह्माजीने भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति करते हुए कहा है—

अस्यापि देव वपुषो मदनुग्रहस्य स्वेच्छामयस्य न तु भूतमयस्य कोऽपि॥

'आपने मुझपर कृपा करनेके लिये ही यह स्वेच्छामय सच्चिदानन्दस्वरूप प्रकट किया है, यह पाञ्चभौतिक कदापि नहीं है।'

इससे यह स्पष्ट है कि भगवान्‌का सभी कुछ अप्राकृत होता है। इसी प्रकार यह माखनचोरीकी लीला भी अप्राकृत—दिव्य ही है।

यदि भगवान्‌के नित्य परमधाममे अभिन्नरूपसे नित्य निवास करनेवाली नित्यसिद्धा गोपियोंकी दृष्टिसे न देखकर केवल साधनसिद्धा गोपियोंकी दृष्टिसे देखा जाय तो भी उनकी तपस्या इतनी कठोर थी, उनकी लालसा इतनी अनन्य थी, उनका प्रेम इतना व्यापक था और उनकी लगन इतनी सच्ची थी कि भक्तवाञ्छाकल्पतरु प्रेमरसमय भगवान् उनके इच्छानुसार उन्हें सुख पहुँचानेके लिये माखनचोरीकी लीला करके उनकी इच्छित पूजा ग्रहण करें, चीरहरण करके उनका रहा-सहा व्यवधानका परदा उठा दें और रासलीला करके उनको दिव्य सुख पहुँचायें तो कोई बड़ी बात नहीं है।

भगवान्‌की नित्यसिद्धा चिदानन्दमयी गोपियोंके अतिरिक्त बहुत-सी ऐसी गोपियाँ और थीं, जो अपनी महान् साधनाके फलस्वरूप भगवान्‌की मुक्तजन-वाञ्छित सेवा करनेके लिये गोपियोंके रूपमे अवतीर्ण हुई थीं। उनमेंसे कुछ पूर्वजन्मकी देवकन्याएँ थीं, कुछ श्रुतियाँ थीं, कुछ तपस्वी ऋषि थे और कुछ अन्य भक्तजन। इनकी कथाएँ विभिन्न पुराणोंमे मिलती हैं। श्रुतिरूपा गोपियाँ, जो 'नेति-नेति'के द्वारा निरन्तर परमात्माका वर्णन करते रहनेपर भी उन्हें साक्षात्‌रूपसे प्राप्त नहीं कर सकतीं, गोपियोंके साथ भगवान्‌के दिव्य रसमय विहारकी बात जानकर गोपियोंकी उपासना करती है और अन्तमें स्वयं गोपीरूपमे परिणत होकर भगवान् श्रीकृष्णको साक्षात् अपने प्रियतमरूपसे प्राप्त करती हैं। इनमे मुख्य श्रुतियोंके नाम हैं—उद्गीता, सुगीता, कलगीता, कलकण्ठिका और विपञ्ची आदि।

भगवान्‌के श्रीरामावतारमें उन्हें देखकर मुग्ध होनेवाले—अपने-आपको उनके स्वरूप-सौन्दर्यपर न्यौछावर कर देनेवाले सिद्ध ऋषिगण, जिनकी प्रार्थनासे प्रसन्न होकर भगवान्‌ने उन्हें गोपी होकर प्राप्त करनेका वर दिया था, व्रजमें गोपीरूपसे अवतीर्ण हुए थे। इसके अतिरिक्त मिथिलाकी गोपी, कोसलकी गोपी, अयोध्याकी गोपी—पुलिन्दगोपी, रमावैकुण्ठ श्वेतद्वीप आदिकी गोपियाँ और जालन्धरी गोपी आदि गोपियोंके अनेकों यूथ थे, जिनको बड़ी तपस्या करके भगवान्‌से वरदान पाकर गोपीरूपमें अवतीर्ण होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। पद्मपुराणके पातालखण्डमें बहुत-से ऐसे ऋषियोंका वर्णन है, जिन्होंने बड़ी कठिन तपस्या आदि करके अनेकों कल्पोंके बाद गोपीस्वरूपको प्राप्त किया था। उनमेंसे कुछके नाम निम्नलिखित हैं—

१. एक उग्रतपा नामके ऋषि थे। वे अग्निहोत्री और बड़े दृढ़व्रती थे। उनकी तपस्या अद्भुत थी। उन्होंने पञ्चदशाक्षरमन्त्रका जाप और रासोन्मत्त नवकिशोर श्यामसुन्दर श्रीकृष्णका ध्यान किया था। सौ कल्पोंके बाद वे सुनन्दनामक गोपकी कन्या 'सुनन्दा' हुए।

२. एक सत्यतपा नामके मुनि थे। वे सूखे पत्तोंपर रहकर दशाक्षरमन्त्रका जाप और श्रीराधाजीके दोनों हाथ पकड़कर नाचते हुए श्रीकृष्णका ध्यान करते थे। दस कल्पके बाद वे सुभद्रनामक गोपकी कन्या 'सुभद्रा' हुए।

३. हरिधामा नामके एक ऋषि थे। वे निराहार रहकर 'क्लीं' कामबीजसे युक्त विंशाक्षरी मन्त्रका जाप करते थे और माधवीमण्डपमें कोमल-कोमल पत्तोंकी शय्यापर लेटे हुए युगल-सरकारका ध्यान करते थे। तीन कल्पके पश्चात् वे सारङ्ग-नामक गोपके घर 'रङ्गवेणी' नामसे अवतीर्ण हुए।

४. जाबालि नामके एक ब्रह्मज्ञानी ऋषि थे, उन्होंने एक बार विशाल वनमें विचरते-विचरते एक जगह बहुत बड़ी बावली देखी। उस बावलीके पश्चिम तटपर बड़के नीचे एक तेजस्विनी युवती स्त्री कठोर तपस्या कर रही थी। वह बड़ी सुन्दर थी। चन्द्रमाकी शुभ्र किरणोंके समान उसकी चाँदनी चारों ओर छिटक रही थी। उसका बायाँ हाथ अपनी कमरपर था और दाहिने हाथसे वह ज्ञानमुद्रा धारण किये हुए थी। जाबालिके बड़ी नम्रताके साथ पूछनेपर उस तापसीने बतलाया—

ब्रह्मविद्याहमतुला योगीन्द्रैर्या च मृग्यते। साहं हरिपदाम्भोजकाम्यया सुचिरं तपः॥
ब्रह्मानन्देन पूर्णाहं तेनानन्देन तृप्तधीः। चराम्यस्मिन् वने घोरे ध्यायन्ती पुरुषोत्तमम्॥
तथापि शून्यमात्मानं मन्ये कृष्णरतिं विना॥

'मैं वह ब्रह्मविद्या हूँ, जिसे बड़े-बड़े योगी सदा ढूँढ़ा करते हैं। मैं श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी प्राप्तिके लिये इस घोर वनमें उन पुरुषोत्तमका ध्यान करती हुई दीर्घकालसे तपस्या कर रही हूँ। मैं ब्रह्मानन्दसे परिपूर्ण हूँ और मेरी बुद्धि भी उसी आनन्दसे परितृप्त है। परन्तु श्रीकृष्णका प्रेम मुझे अभी प्राप्त नहीं हुआ, इसलिये मैं अपनेको शून्य देखती हूँ।' ब्रह्मज्ञानी जाबालिने उसके चरणोंपर गिरकर दीक्षा ली और फिर व्रजवीथियोंमें विहरनेवाले भगवान्‌का ध्यान करते हुए वे एक पैरसे खड़े होकर बड़ी कठोर तपस्या करते रहे। नौ कल्पोंके बाद प्रचण्डनामक गोपके घर वे 'चित्रगन्धा'के रूपमें प्रकट हुए।

५. कुशध्वजनामक ब्रह्मर्षिके पुत्र शुचिश्रवा और सुवर्ण देवतत्त्वज्ञ थे। उन्होंने शीर्षासन करके 'ह्रीं' हंस-मन्त्रका जाप करते हुए और सुन्दर कन्दर्प-तुल्य गोकुलवासी दस वर्षकी उम्रके भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान करते हुए घोर तपस्या की। कल्पके बाद वे व्रजमें सुधीरनामक गोपके घर उत्पन्न हुए।

इसी प्रकार और भी बहुत-सी गोपियोंके पूर्वजन्मकी कथाएँ प्राप्त होती हैं, विस्तारभयसे उन सबका उल्लेख यहाँ नहीं किया गया। भगवान्‌के लिये इतनी तपस्या करके इतनी लगनके साथ कल्पोंतक साधना

करके जिन त्यागी भगवत्प्रेमियोंने गोपियोंका तन-मन प्राप्त किया था, उनकी अभिलाषा पूर्ण करनेके लिये, उन्हें आनन्द-दान देनेके लिये यदि भगवान् उनकी मनचाही लीला करते हैं तो इसमें आश्चर्य और अनाचारकी कौन-सी बात है ? रासलीलाके प्रसङ्गमे स्वयं भगवान्ने श्रीगोपियोंसे कहा है—

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः ।
या माभजन् दुर्जरगेहशृङ्खलाः संवृश्च्य तद् वः प्रतियातु साधुना ॥
(१० । ३२ । २२)

'गोपियो ! तुमने लोक और परलोकके सारे बन्धनोंको काटकर मुझसे निष्कपट प्रेम किया है; यदि मैं तुममेंसे प्रत्येकके लिये अलग-अलग अनन्त कालतक जीवन धारण करके तुम्हारे प्रेमका बदला चुकाना चाहूँ तो भी नहीं चुका सकता । मैं तुम्हारा ऋणी हूँ और ऋणी ही रहूँगा । तुम मुझे अपने साधुस्वभावसे ऋणरहित मानकर और भी ऋणी बना दो । यही उत्तम है ।' सर्वलोकमहेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं जिन महाभागा गोपियोंके ऋणी रहना चाहते हैं, उनकी इच्छा, इच्छा होनेसे पूर्व ही भगवान् पूर्ण कर दें—यह तो स्वाभाविक ही है ।

भला विचारिये तो सही श्रीकृष्णगतप्राणा, श्रीकृष्णरसभावितमति गोपियोंके मनकी क्या स्थिति थी । गोपियोंका तन, मन, धन—सभी कुछ प्राणप्रियतम श्रीकृष्णका था । वे संसारमें जीती थीं श्रीकृष्णके लिये, घरमें रहती थीं श्रीकृष्णके लिये और घरके सारे काम करती थीं श्रीकृष्णके लिये । उनकी निर्मल और योगीन्द्रदुर्लभ पवित्र बुद्धिमें श्रीकृष्णके सिवा अपना कुछ था ही नहीं । श्रीकृष्णके लिये ही, श्रीकृष्णको सुख पहुँचानेके लिये ही, श्रीकृष्णकी निज सामग्रीसे ही श्रीकृष्णको पूजकर—श्रीकृष्णको सुखी देखकर वे सुखी होती थीं । प्रातःकाल निद्रा टूटनेके समयसे लेकर रातको सोनेतक वे जो कुछ भी करती थीं, सब श्रीकृष्णकी प्रीतिके लिये ही करती थीं । यहाँतक कि उनकी निद्रा भी श्रीकृष्णमें ही होती थी । स्वप्न और सुषुप्ति—दोनोंमें ही वे श्रीकृष्णकी मधुर और शान्त लीला देखतीं और अनुभव करती थीं । रातको दही जमाते समय श्यामसुन्दरकी माधुरी छबिका ध्यान करती हुई प्रेममयी प्रत्येक गोपी यह अभिलाषा करती थी कि मेरा दही सुन्दर जमे, श्रीकृष्णके लिये उसे बिलोकर मैं बढ़िया-सा और बहुत-सा माखन निकालूँ और उसे उतने ही ऊँचे छीकेपर रक्खूँ, जितनेपर श्रीकृष्णके हाथ आसानीसे पहुँच सकें । फिर मेरे प्राणधन श्रीकृष्ण अपने सखाओंको साथ लेकर हँसते और क्रीडा करते हुए घरमे पदार्पण करें, माखन लूटें और अपने सखाओं और बंदरोंको लुटायें, आनन्दमें मत्त होकर मेरे आँगनमे नाचें और मैं किसी कोनेमें छिपकर इस लीलाको अपनी आँखोंसे देखकर जीवनको सफल करूँ और फिर अचानक ही पकड़कर हृदयसे लगा लूँ । सूरदासजीने गाया है—

मैया री, मोहि माखन भावै । जो मेवा पकवान कहति तू, मोहि नहीं रुचि आवै ॥
ब्रज-जुवती इक पाछैं ठाढ़ी, सुनत स्याम की बात । मन-मन कहति कबहुँ अपनैं घर, देखौं माखन खात ॥
बैठैं जाइ मथनियाँकैं ढिग, मैं तब रहौं छपानी । सूरदास प्रभु अंतरजामी, ग्वालिनि-मन की जानी ॥

एक दिन श्यामसुन्दर कह रहे थे, 'मैया ! मुझे माखन भाता है, तू मेवा-पकवानके लिये कहती है, परन्तु मुझे तो वे रुचते ही नहीं ।' वहीं पीछे एक गोपी खड़ी श्यामसुन्दरकी बात सुन रही थी । उसने मन-ही मन कामना की—'मैं कब इन्हें अपने घर माखन खाते देखूँगी; ये मथानीके पास जाकर बैठेंगे, तब मैं छिप रहूँगी ।' प्रभु तो अन्तर्यामी हैं, गोपीके मनकी जान गये और उसके घर पहुँचे तथा उसके घरका माखन खाकर उसे सुख दिया—'गये स्याम तिहिं ग्वालिनि कैं घर ।'

उसे इतना आनन्द हुआ कि वह फूली न समायी । सूरदासजी गाते हैं—

फूली फिरति ग्वालि मनमैं री । पूछति सखी परस्पर बातैं पायो परयौ कछू कहुँ तैं री ?

पुलकित रोम रोम, गद्गद मुख बानी कहत न आवै। ऐसौ कहा आहि सो सखि री, हम कौं क्यौं न सुनावै॥
तन न्यारा, जिय एक हमारौ, हम तुम एकै रूप। सूरदास कहै ग्वालि सखिनि सौं, देख्यौ रूप अनूप॥

वह खुशीसे छककर फूली-फूली फिरने लगी। आनन्द उसके हृदयमें समा नहीं रहा था। सहेलियोंने पूछा—'अरी, तुझे कहीं कुछ पड़ा धन मिल गया क्या?' वह तो यह सुनकर और भी प्रेमविह्वल हो गयी। उसका रोम-रोम खिल उठा, वह गद्गद हो गयी, मुँहसे बोली नहीं निकली। सखियोंने कहा—'सखि! ऐसी क्या बात है, हमें सुनाती क्यों नहीं? हमारे तो शरीर ही दो हैं, हमारा जी तो एक ही है—हम-तुम दोनों एक ही रूप हैं। भला, हमसे छिपानेकी कौन-सी बात है?' तब उसके मुँहसे इतना ही निकला—'मैंने आज अनूप रूप देखा है।' बस, फिर वाणी रुक गयी और प्रेमके आँसू बहने लगे। सभी गोपियोंकी यही दशा थी।

ब्रज घर-घर प्रगटी यह बात। दधि माखन चोरी करि लै हरि, ग्वाल सखा सँग खात॥
ब्रज-बनिता यह सुनि मन हरषित, सदन हमारैं आवैं। माखन खात अचानक पावैं, भुज भरि उरहिं छुपावैं॥
मनही मन अभिलाष करति सब हृदय धरति यह ध्यान। सूरदास प्रभु कौं घर मैं लै, दैहौं माखन खान॥

चली ब्रज घर-घरनि यह बात। नंद-सुत, सँग सखा लीन्हें, चोरि माखन खात॥
कोउ कहति, मेरे भवन भीतर, अबहिं पैठे धाइ। कोउ कहति मोहिं देखि द्वारैं, उतहिं गए पराइ॥
कोउ कहति, किहिं भाँति हरि कौं, देखौं अपने धाम। हेरि माखन देउँ आछौ, खाइ जितनौ स्याम॥
कोउ कहति, मैं देखि पाऊँ, भरि धरौं अँकवार। कोउ कहति, मैं बाँधि राखौं, को सकै निरवार॥
सूर प्रभु के मिलन कारन, करति बिबिध बिचार। जोरि कर बिधिकौं मनावति पुरुष नंदकुमार॥

रातों गोपियाँ जाग-जागकर प्रातःकाल होनेकी बाट देखतीं। उनका मन श्रीकृष्णमें लगा रहता। प्रातःकाल जल्दी-जल्दी दही मथकर, माखन निकालकर छीकेपर रखतीं; कहीं प्राणधन आकर लौट न जायँ, इसलिये सब काम छोड़कर वे सबसे पहले यही काम करतीं और श्यामसुन्दरकी प्रतीक्षामें व्याकुल होती हुई मन-ही-मन सोचतीं—'हा! आज प्राणप्रियतम क्यों नहीं आये? इतनी देर क्यों हो गयी? क्या आज इस दासीका घर पवित्र न करेंगे? क्या आज मेरे समर्पण किये हुए इस तुच्छ माखनका भोग लगाकर स्वयं सुखी होकर मुझे सुख न देंगे? कहीं यशोदा मैयाने तो उन्हें नहीं रोक लिया? उनके घर तो नौ लाख गौएँ हैं। माखनकी क्या कमी है? मेरे घर तो वे कृपा करके ही आते हैं।' इन्हीं विचारोंमें आँसू बहाती हुई गोपी क्षण-क्षणमें दौड़कर दरवाजेपर जाती, लाज छोड़कर रास्तेकी ओर देखती, सखियोंसे पूछती। एक-एक निमेष उसके लिये युगके समान हो जाता! ऐसी भाग्यवती गोपियोंकी मनःकामना भगवान् उनके घर पधारकर पूर्ण करते।

सूरदासजीने गाया है—

प्रथम करी हरि माखन-चोरी। ग्वालिनि मन इच्छा करि पूरन, आपु भजे ब्रज खोरी॥
मनमें यहै बिचार करत हरि, ब्रज घर-घर सब जाउँ। गोकुल जनम लियौ सुख-कारन, सबकैं माखन खाउँ॥
बालरूप जसुमति मोहि जानै, गोपिनि मिलि सुख भोग। सूरदास प्रभु कहत प्रेम सौं ये मेरे ब्रज लोग॥

अपने निजजन व्रजवासियोंको सुखी करनेके लिये ही तो भगवान् गोकुलमें पधारे थे। माखन तो नन्दबाबाके घरपर कम न था, लाख-लाख गौएँ थीं। वे चाहे जितना खाते-लुटाते। परन्तु वे तो केवल नन्दबाबाके ही नहीं, सभी व्रजवासियोंके अपने थे, सभीको सुख देना चाहते थे। गोपियोंकी लालसा पूरी करनेके लिये ही वे उनके घर जाते और चुरा-चुराकर माखन खाते। यह वास्तवमें चोरी नहीं, यह तो गोपियोंकी पूजा-पद्धतिका भगवान्के द्वारा स्वीकार था। भक्तवत्सल भगवान् भक्तकी पूजा स्वीकार कैसे न करें?

भगवान्की इस दिव्यलीला—माखनचोरीका रहस्य न जाननेके कारण ही कुछ लोग इसे आदर्शके विपरीत बतलाते हैं। उन्हें पहले समझना चाहिये चोरी क्या वस्तु है, वह किसकी होती है और कौन करता है। चोरी उसे कहते हैं जब किसी दूसरेकी कोई चीज, उसकी इच्छाके बिना, उसके अनजानमें और आगे भी

एक दिन बलराम आदि ग्वालबाल श्रीकृष्णके साथ खेल रहे थे। उन लोगोंने मा यशोदाके पास आकर कहा—'मा! कन्हैयाने मिट्टी खायी है' *॥ ३२॥ हितैषिणी यशोदाने श्रीकृष्णका हाथ पकड़ लिया †। उस समय श्रीकृष्णकी आँखें डरके मारे नाच रही थीं ‡। यशोदा मैयाने डाँटकर कहा—॥३३॥ 'क्यों रे नटखट!

वह जान न पाये—ऐसी इच्छा रखकर ले ली जाती है। भगवान् श्रीकृष्ण गोपियोंके घरसे माखन लेते थे उनकी इच्छासे, गोपियोंके अनजानमे नहीं—उनकी जानमें, उनके देखते-देखते और आगे जनानेकी कोई बात ही नहीं—उनके सामने ही दौड़ते हुए निकल जाते थे। दूसरी बात महत्त्वकी यह है कि संसारमें या संसारके बाहर ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो श्रीभगवान्की नहीं है और वे उसकी चोरी करते हैं। गोपियोंका तो सर्वस्व श्रीभगवान्का था ही, सारा जगत् ही उनका है। वे भला, किसकी चोरी कर सकते हैं? हाँ, चोर तो वास्तवमें वे लोग हैं, जो भगवान्की वस्तुको अपनी मानकर ममता-आसक्तिमें फँसे रहते हैं और दण्डके पात्र बनते हैं। उपर्युक्त सभी दृष्टियोंसे यही सिद्ध होता है कि माखनचोरी चोरी न थी, भगवान्की दिव्य लीला थी। असलमें गोपियोंने प्रेमकी अधिकतासे ही भगवान्का प्रेमका नाम 'चोर' रख दिया था, क्योंकि वे उनके चित्तचोर तो थे ही।

जो लोग भगवान् श्रीकृष्णको भगवान् नहीं मानते, यद्यपि उन्हें श्रीमद्भागवतमें वर्णित भगवान्की लीलापर विचार करनेका कोई अधिकार नहीं है, परन्तु उनकी दृष्टिसे भी इस प्रसङ्गमें कोई आपत्तिजनक बात नहीं है। क्योंकि श्रीकृष्ण उस समय लगभग दो-तीन वर्षके बच्चे थे और गोपियाँ अत्यधिक स्नेहके कारण उनके ऐसे-ऐसे मधुर खेल देखना चाहती थीं। आशा है, इससे शंका करनेवालोंको कुछ सन्तोष होगा। —हनुमानप्रसाद पोद्दार

* मृद्-भक्षणके हेतु—

१—भगवान् श्रीकृष्णने विचार किया कि मुझमें शुद्ध सत्त्वगुण ही रहता है और आगे बहुत-से रजोगुणी कर्म करने हैं। उसके लिये थोड़ा-सा 'रज' संग्रह कर लें।

२—संस्कृत-साहित्यमें पृथ्वीका एक नाम 'क्षमा' भी है। श्रीकृष्णने देखा कि ग्वालबाल खुलकर मेरे साथ खेलते हैं; कभी-कभी अपमान भी कर बैठते हैं। उनके साथ क्षमाका धारण करके ही क्रीडा करनी चाहिये, जिससे कोई विघ्न न पड़े।

३. संस्कृत-भाषामें पृथ्वीको 'रसा' भी कहते हैं। श्रीकृष्णने सोचा सब रस तो ले ही चुका हूँ, अब रसा-रसका आस्वादन करूँ।

४. इस अवतारमें पृथ्वीका हित करना है। इसलिये उसका कुछ अंश अपने मुख्य (मुखमें स्थित) द्विजों (दाँतों) को पहले दान कर देना चाहिये।

५. ब्राह्मण शुद्ध सात्त्विक कर्ममें लग रहे हैं, अब उन्हें असुरोंका संहार करनेके लिये कुछ राजस कर्म भी करने चाहिये। यही सूचित करनेके लिये मानो उन्होंने अपने मुखमें स्थित द्विजोंको (दाँतोंको) रजसे युक्त किया।

६. पहले विष भक्षण किया था, मिट्टी खाकर उसकी दवा की।

७. पहले गोपियोंका मक्खन खाया था, उलाहना देनेपर मिट्टी खा ली, जिससे मुँह साफ हो जाय।

८. भगवान् श्रीकृष्णके उदरमें रहनेवाले कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंके जीव व्रज-रज—गोपियोंके चरणोंकी रज—प्राप्त करनेके लिये व्याकुल हो रहे थे। उनकी अभिलाषा पूर्ण करनेके लिये भगवान्ने मिट्टी खायी।

९. भगवान् स्वयं ही अपने भक्तोंकी चरण-रज मुखके द्वारा अपने हृदयमें धारण करते हैं।

१०. छोटे बालक स्वभावसे ही मिट्टी खा लिया करते हैं।

† यशोदाजी जानती थीं कि इस हाथने मिट्टी खानेमें सहायता की है। चोरका सहायक भी चोर ही है। इसलिये उन्होंने हाथ ही पकड़ा।

‡ भगवान्के नेत्रमें सूर्य और चन्द्रमाका निवास है। वे कर्मके साक्षी हैं। उन्होंने सोचा कि पता नहीं श्रीकृष्ण मिट्टी खाना स्वीकार करेंगे कि मुकर जायँगे। अब हमारा कर्तव्य क्या है। इसी भावको सूचित करते हुए दोनों नेत्र चकराने लगे।

तू बहुत ढीठ हो गया है। तूने अकेलेमें छिपकर मिट्टी क्यों खायी? देख तो तेरे दलके तेरे सखा क्या कह रहे हैं। तेरे बडे भैया बलदाऊ भी तो उन्हींकी ओरसे गवाही दे रहे हैं' ॥ ३४ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'मा! मैंने मिट्टी नहीं खायी। ये सब झूठ बक रहे हैं। यदि तुम इन्हींकी बात सच मानती हो तो मेरा मुँह तुम्हारे सामने ही है, तुम अपनी आँखोंसे देख लो ॥ ३५ ॥ यशोदाजीने कहा—'अच्छी बात। यदि ऐसा है, तो मुँह खोल।' माताके ऐसा कहनेपर भगवान् श्रीकृष्णने अपना मुँह खोल दिया *। परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णका ऐश्वर्य अनन्त है। वे केवल लीलाके लिये ही मनुष्यके बालक बने हुए हैं ॥ ३६ ॥ यशोदाजीने देखा कि उनके मुँहमें चर-अचर सम्पूर्ण जगत् विद्यमान है। आकाश (वह शून्य जिसमे किसीकी गति नहीं), दिशाएँ, पहाड़, द्वीप और समुद्रोंके सहित सारी पृथ्वी, बहनेवाली वायु, वैद्युत,अग्नि, चन्द्रमा और तारोंके साथ सम्पूर्ण ज्योतिर्मण्डल, जल, तेज, पवन, वियत् (प्राणियोंके चलने-फिरनेका आकाश), वैकारिक अहङ्कारके कार्य देवता, मन-इन्द्रिय, पञ्चतन्मात्राएँ और तीनों गुण श्रीकृष्णके मुखमें दीख पड़े ॥ ३७-३८ ॥ परीक्षित्! जीव, काल, स्वभाव, कर्म उनकी वासना और शरीर आदिके द्वारा विभिन्न रूपोंमें दीखनेवाला यह सारा विचित्र ससार, सम्पूर्ण व्रज और अपने-आपको भी यशोदाजीने श्रीकृष्णके नन्हे-से खुले हुए मुखमें देखा। वे बड़ी शङ्कामें पड गयीं॥३९॥ वे सोचने लगीं कि 'यह कोई स्वप्न है या भगवान्की माया? कहीं मेरी बुद्धिमें ही तो कोई भ्रम नहीं हो गया है! सम्भव है, मेरे इस बालकमे ही कोई जन्मजात योगसिद्धि हो' ॥ ४० ॥ 'जो चित्त, मन, कर्म और वाणीके द्वारा ठीक-ठीक तथा सुगमतासे अनुमानके विषय नहीं होते, यह सारा विश्व जिनके आश्रित है, जो इसके प्रेरक हैं और जिनकी सत्तासे ही इसकी प्रतीति होती है, जिनका स्वरूप सर्वथा अचिन्त्य है—उन प्रभुको मैं प्रणाम करती हूँ ॥ ४१ ॥ यह मैं हूँ और ये मेरे पति तथा यह मेरा लड़का है, साथ ही मैं व्रजराजकी समस्त सम्पत्तियोंकी स्वामिनी धर्मपत्नी हूँ; ये गोपियाँ, गोप और गोधन मेरे अधीन हैं—जिनकी मायासे मुझे इस प्रकारकी कुमति घेरे हुए है, वे भगवान् ही मेरे एकमात्र आश्रय हैं—मैं उन्हींकी शरणमें हूँ' ॥ ४२ ॥ जब इस प्रकार यशोदा माता श्रीकृष्णका तत्त्व समझ गयी, तब सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापक प्रभुने अपनी पुत्रस्नेहमयी वैष्णवी योगमायाका उनके हृदयमें सचार कर दिया॥४३॥ यशोदाजीको तुरंत वह घटना भूल गयी। उन्होंने अपने दुलारे लालको गोदमे उठा लिया। जैसे पहले उनके हृदयमे प्रेमका समुद्र उमड़ता रहता था, वैसे ही फिर उमड़ने लगा ॥ ४४ ॥ सारे वेद, उपनिषद्, सांख्य, योग और भक्तजन जिनके माहात्म्यका गीत गाते-गाते अघाते नहीं—उन्हीं भगवान्को यशोदाजी अपना पुत्र मानती थीं। ॥ ४५ ॥

राजा परीक्षित्ने पूछा—भगवन्! नन्दबाबाने ऐसा कौन-सा बहुत बड़ा मङ्गलमय साधन किया था? और परमभाग्यवती यशोदाजीने भी ऐसी कौन-सी तपस्या की थी, जिसके कारण स्वयं भगवान्ने अपने श्रीमुखसे उनका स्तन-पान किया ॥ ४६ ॥ भगवान् श्रीकृष्णकी वे बाल-लीलाएँ, जो वे अपने ऐश्वर्य और महत्ता आदिको छिपाकर ग्वालबालोंमें करते हैं, इतनी पवित्र हैं कि उनका श्रवण-कीर्तन करनेवाले लोगोंके भी सारे पाप-ताप शान्त हो जाते हैं। त्रिकालदर्शी ज्ञानी पुरुष आज भी उनका गान करते रहते हैं। वे ही लीलाएँ उनके जन्मदाता माता-पिता देवकी-वसुदेवजीको तो देखनेतकको न मिलीं और नन्द-यशोदा उनका अपार सुख लूट रहे है। इसका क्या कारण है? ॥ ४७ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित्! नन्दबाबा पूर्व-जन्ममें एक श्रेष्ठ वसु थे। उनका नाम था द्रोण और उनकी पत्नीका नाम था धरा। उन्होंने ब्रह्माजीके आदेशों-का पालन करनेकी इच्छासे उनसे कहा— ॥ ४८ ॥

* १—मा! मिट्टी खानेके सम्बन्धमें वे मुझ अकेलेका ही नाम ले रहे हैं। मैंने खायी, तो सबने खायी, देख लो मेरे मुखमें सम्पूर्ण विश्व।

२—श्रीकृष्णने विचार किया कि उस दिन मेरे मुखमें विश्व देखकर माताने अपने नेत्र बंद कर लिये थे। आज भी जब मैं अपना मुँह खोलूँगा, तब यह अपने नेत्र बंद कर लेगी। इस विचारसे मुख खोल दिया।

'भगवन् ! जब हम पृथ्वीपर जन्म लें, तब जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्णमें हमारी अनन्य प्रेममयी भक्ति हो—जिस भक्तिके द्वारा संसारमें लोग अनायास ही दुर्गतियोंको पार कर जाते हैं' ॥४९॥ ब्रह्माजीने कहा—'ऐसा ही होगा ।' वे ही परमयशस्वी भगवन्मय द्रोण व्रजमें पैदा हुए और उनका नाम हुआ नन्द । और वे ही धरा इस जन्ममें यशोदाके नामसे उनकी पत्नी हुईं ॥ ५० ॥ परीक्षित् ! अब इस जन्ममें जन्म-मृत्युके चक्रसे छुडानेवाले भगवान् उनके पुत्र हुए और समस्त गोप-गोपियोंकी अपेक्षा इन पति-पत्नी नन्द और यशोदाजीका उनके प्रति अत्यन्त प्रेम हुआ ॥ ५१ ॥ ब्रह्माजीकी बात सत्य करनेके लिये भगवान् श्रीकृष्ण बलरामजीके साथ व्रजमें रहकर समस्त व्रजवासियोंको अपनी बाल-लीलासे आनन्दित करने लगे ॥ ५२ ॥

नवाँ अध्याय

श्रीकृष्णका ऊखलसे बाँधा जाना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! एक समयकी बात है, नन्दरानी यशोदाजीने घरकी दासियोंको तो दूसरे कामोंमें लगा दिया और स्वयं (अपने लालाको मक्खन खिलानेके लिये) दही मथने लगीं * ॥ १ ॥ मैंने तुमसे अबतक भगवान्‌की जिन-जिन बाल-लीलाओंका वर्णन किया है, दधिमन्थनके समय वे उन सबका स्मरण करतीं और गाती भी जाती थीं † ॥ २ ॥ वे अपने स्थूल कटिभागमें सूतसे बाँधकर रेशमी लहँगा पहने हुए थीं । उनके स्तनोंमेंसे पुत्रस्नेहकी अधिकतासे दूध चूता जा रहा था और वे काँप भी रहे थे । नेती खींचते रहनेसे बाँहें कुछ थक गयी थीं । हाथोंके कंगन और कानोंके कर्णफूल हिल रहे थे । मुँहपर पसीनेकी बूँदें झलक रही थीं । चोटीमें गुँथे हुए मालतीके सुन्दर पुष्प गिरते जा रहे थे । सुन्दर भौंहोंवाली यशोदा इस प्रकार दही मथ रही थीं ‡ ॥ ३ ॥

उसी समय भगवान् श्रीकृष्ण स्तन पीनेके लिये दही

---

* इस प्रसङ्गमें 'एक समय'का तात्पर्य है कार्तिक मास । पुराणोंमें इसे 'दामोदरमास' कहते हैं । इन्द्र-यागके अवसरपर दासियोंका दूसरे कामोंमें लग जाना स्वाभाविक है । 'नियुक्तासु'—इस पदसे ध्वनित होता है कि यशोदा माताने जान-बूझकर दासियोंको दूसरे काममें लगा दिया । 'यशोदा'—नाम उल्लेख करनेका अभिप्राय यह है कि अपने विशुद्ध वात्सल्यप्रेमके व्यवहारसे षडैश्वर्यशाली भगवान्‌को भी प्रेमाधीनता, भक्तवश्यताके कारण अपने भक्तोंके हाथों बँध जानेका 'यश' यही देती हैं । गोपराज नन्दके वात्सल्य-प्रेमके आकर्षणसे सच्चिदानन्द-परमानन्दस्वरूप श्रीभगवान् नन्दनन्दनरूपसे जगत्‌में अवतीर्ण होकर जगत्‌के लोगोंको आनन्द प्रदान करते हैं । जगत्‌को इस अप्राकृत परमानन्दका रसास्वादन करानेमें नन्दबाबा ही कारण हैं । उन नन्दकी गृहिणी होनेसे इन्हें 'नन्दगेहिनी' कहा गया है । साथ ही 'नन्दगेहिनी' और 'स्वयं'—ये दो पद इस बातके सूचक हैं कि दधि-मन्थनकर्म उनके योग्य नहीं है । फिर भी पुत्र-स्नेहकी अधिकतासे यह सोचकर कि मेरे लालाको मेरे हाथका माखन ही भाता है, वे स्वयं ही दधि मथ रही हैं ।

† इस श्लोकमे भक्तके स्वरूपका निरूपण है । शरीरसे दधि-मन्थनरूप सेवाकर्म हो रहा है, हृदयमे स्मरणकी धारा सतत प्रवाहित हो रही है, वाणीमे बाल-चरित्रका संगीत । भक्तके तन, मन, वचन—सब अपने प्यारेकी सेवामें संलग्न हैं, स्नेह अमूर्त पदार्थ है; वह सेवाके रूपमें ही व्यक्त होता है । स्नेहके ही विलासविशेष हैं—नृत्य और संगीत । यशोदा मैयाके जीवनमें इस समय राग और भोग दोनों ही प्रकट हैं ।

‡ कमरमें रेशमी लहँगा डोरीसे कसकर बँधा हुआ है अर्थात् जीवनमें आलस्य, प्रमाद, असावधानी नहीं है । सेवाकर्ममें पूरी तत्परता है । रेशमी लहँगा इसीलिये पहने हैं कि किसी प्रकारकी अपवित्रता रह गयी तो मेरे कन्हैयाको कुछ हो जायगा ।

माताके हृदयका रस-स्नेह—दूध स्तनके मुँह आ लगा है, चुचुआ रहा है । बाहर झाँक रहा है । श्यामसुन्दर आवें, उनकी दृष्टि पहले मुझपर पड़े और वे पहले माखन न खाकर मुझे ही पीवें—यही उसकी लालसा है ।

स्तनके काँपनेका अर्थ यह है कि उसे डर भी है कि कहीं मुझे नहीं पिया तो !

मथती हुई अपनी माताके पास आये। उन्होंने अपनी माताके हृदयमें प्रेम और आनन्दको और भी बढ़ाते हुए दहीकी मथानी पकड़ ली तथा उन्हें मथनेसे रोक दिया* ॥४॥ श्रीकृष्ण माता यशोदाकी गोदमें चढ़ गये। वात्सल्य-स्नेहकी अधिकतासे उनके स्तनोंसे दूध तो स्वयं झर ही रहा था। वे उन्हें पिलाने लगीं और मन्द-मन्द मुसकानसे युक्त उनका मुख देखने लगीं। इतनेमें ही दूसरी ओर अँगीठीपर रक्खे हुए दूधमें उफान आया। उसे देखकर यशोदाजी उन्हें अतृप्त ही छोड़कर जल्दीसे दूध उतारनेके लिये चली गयीं † ॥ ५ ॥ इससे श्रीकृष्णको कुछ क्रोध आ गया। उनके लाल-लाल होठ फड़कने लगे। उन्हें दाँतोंसे दबाकर श्रीकृष्णने पास ही पड़े हुए लोढ़ेसे दहीका मटका फोड़-फाड़ डाला, बनावटी आँसू आँखोंमें भर लिये और दूसरे घरमें जाकर अकेलेमें बासी माखन खाने लगे‡ ॥ ६ ॥

कङ्कण और कुण्डल नाच-नाचकर मैयाको बधाई दे रहे हैं। यशोदा मैयाके हाथोंके कङ्कण इसलिये झकार-ध्वनि कर रहे हैं कि वे आज उन हाथोंमें रहकर धन्य हो रहे हैं कि जो हाथ भगवान्‌की सेवामें लगे हैं। और कुण्डल यशोदा मैयाके मुखसे लीला-गान सुनकर परमानन्दसे हिलते हुए कानोंकी सफलताकी सूचना दे रहे हैं। हाथ वही धन्य हैं, जो भगवान्‌की सेवा करें और कान वे धन्य हैं, जिनमें भगवान्‌के लीला-गुण-गानकी सुधाधारा प्रवेश करती रहे। मुँहपर स्वेद और मालतीके पुष्पोंके नीचे गिरनेका ध्यान माताको नहीं है। वह श्रृंगार और शरीर भूल चुकी हैं। अथवा मालतीके पुष्प स्वय ही चोटियोंसे छूटकर चरणोंमें गिर रहे हैं कि ऐसी वात्सल्यमयी माके चरणोंमें ही रहना सौभाग्य है, हम सिरपर रहनेके अधिकारी नहीं।

* हृदयमें लीलाकी सुखस्मृति, हाथोंसे दधिमन्थन और मुखसे लीलागान—इस प्रकार मन, तन, वचन तीनोंका श्रीकृष्णके साथ एकतान संयोग होते ही श्रीकृष्ण जगकर 'मा-मा' पुकारने लगे। अबतक भगवान् श्रीकृष्ण सोये हुए-से थे। माकी स्नेह-साधनाने उन्हें जगा दिया। वे निर्गुणसे सगुण हुए, अचलसे चल हुए, निष्कामसे सकाम हुए, स्नेहके भूखे-प्यासे माके पास आये। क्या ही सुन्दर नाम है—'स्तन्यकाम'! मन्थन करते समय आये, बैठी-ठालीके पास नहीं।

सर्वत्र भगवान् साधनकी प्रेरणा देते हैं, अपनी ओर आकृष्ट करते हैं; परन्तु मथानी पकड़कर मैयाको रोक लिया। 'मा! अब तेरी साधना पूर्ण हो गयी। पिष्ट-पेषण करनेसे क्या लाभ? अब मैं तेरी साधनाका इससे अधिक भार नहीं सह सकता।' मा प्रेमसे दब गयी—निहाल हो गयी—मेरा लाला मुझे इतना चाहता है।

† मैया मना करती रही—'नेक-सा माखन तो निकाल लेने दे।' 'ऊँ-ऊँ-ऊँ, मैं तो दूध पीऊँगा'—दोनों हाथोंसे मैयाकी कमर पकड़कर एक पाँव घुटनेपर रक्खा और गोदमें चढ़ गये। स्तनका दूध बरस पड़ा। मैया दूध पिलाने लगी, लाला मुसकराने लगे, आँखें मुसकानपर जम गयीं। 'ईक्षती' पदका यह अभिप्राय है कि जब लाला मुँह उठाकर देखेगा और मेरी आँखें उसपर लगी मिलेंगी, तब उसे बड़ा सुख होगा।

सामने पद्मगन्धा गायका दूध गरम हो रहा था। उसने सोचा—'स्नेहमयी मा यशोदाका दूध कभी कम न होगा, श्यामसुन्दरकी प्यास कभी बुझेगी नहीं। उनमें परस्पर होड़ लगी है। मैं बेचारा युग-युगका, जन्म-जन्मका श्यामसुन्दरके होठोंका स्पर्श करनेके लिये व्याकुल तप-तपकर मर रहा हूँ। अब इस जीवनसे क्या लाभ जो श्रीकृष्णके काम न आवे। इससे अच्छा है उनकी आँखोंके सामने आगमें कूद पड़ना।' माके नेत्र पहुँच गये। दयार्द्र माको श्रीकृष्णका भी ध्यान न रहा; उन्हें एक ओर डालकर दौड़ पड़ी। भक्त भगवान्‌को एक ओर रखकर भी दुखियोंकी रक्षा करते हैं। भगवान् अतृप्त ही रह गये। क्या भक्तोंके हृदय-रससे, स्नेहसे उन्हे कभी तृप्ति हो सकती है? उसी दिनसे उनका एक नाम हुआ—'अतृप्त'।

‡ श्रीकृष्णके होठ फड़के। क्रोध होठोंका स्पर्श पाकर कृतार्थ हो गया। लाल-लाल होठ श्वेत-श्वेत दूधकी दँतुलियोंसे दबा दिये गये, मानो सत्त्वगुण रजोगुणपर शासन कर रहा हो, ब्राह्मण क्षत्रियको शिक्षा दे रहा हो। वह क्रोध उतरा दधिमन्थनके मटकेपर। उसमे एक असुर आ बैठा था। दम्भने कहा—काम, क्रोध और अतृप्तिके बाद मेरी बारी है। वह आँसू बनकर आँखोंमें छलक आया। श्रीकृष्ण अपने भक्तजनोंके प्रति अपनी ममताकी धारा उड़ेलनेके लिये क्या-क्या भाव नहीं अपनाते! ये काम, क्रोध, लोभ और दम्भ भी आज ब्रह्म-संस्पर्श प्राप्त करके धन्य हो गये। श्रीकृष्ण घरमें घुसकर बासी माखन गटकने लगे मानो माको दिखा रहे हों कि मैं कितना भूखा हूँ।

प्रेमी भक्तोंके 'पुरुषार्थ' भगवान् नहीं हैं, भगवान्‌की सेवा है। वे भगवान्‌की सेवाके लिये भगवान्‌का भी त्याग

यशोदाजी औंटे हुए दूधको उतारकर* फिर मथनेके घरमें चली आयीं। वहाँ देखती हैं तो दहीका मटका (कमोरा) टुकड़े-टुकड़े हो गया है। वे समझ गयीं कि यह सब मेरे लालाकी ही करतूत है। साथ ही उन्हें वहाँ न देखकर यशोदा माता हँसने लगीं ॥ ७ ॥ इधर-उधर ढूँढनेपर पता चला कि श्रीकृष्ण एक उलटे हुए ऊखलपर खड़े हैं और छींकेपरका माखन ले-लेकर बंदरोंको खूब लुटा रहे हैं। उन्हें यह भी डर है कि कहीं मेरी चोरी खुल न जाय, इसलिये चौकन्ने होकर चारों ओर ताकते जाते हैं। यह देखकर यशोदा रानी पीछेसे धीरे-धीरे उनके पास जा पहुँचीं † ॥ ८ ॥ जब श्रीकृष्णने देखा कि मेरी मा हाथमें छड़ी लिये मेरी ही ओर आ रही है, तब झटसे ओखलीपरसे कूद पड़े और डरे हुएकी भाँति भागे। परीक्षित्! बड़े-बड़े योगी तपस्याके द्वारा अपने मनको अत्यन्त सूक्ष्म और शुद्ध बनाकर भी जिनमें प्रवेश नहीं करा पाते, पानेकी बात तो दूर रही, उन्हीं भगवान्‌के पीछे-पीछे उन्हें पकड़नेके लिये यशोदाजी दौड़ीं ‡ ॥ ९ ॥ जब इस प्रकार माता यशोदा श्रीकृष्णके पीछे दौड़ने लगीं, तब कुछ ही देरमें बड़े-बड़े एवं हिलते हुए नितम्बोंके कारण उनकी चाल धीमी पड़ गयी। वेगसे दौड़नेके कारण चोटीकी गाँठ ढीली पड़ गयी। वे ज्यों-ज्यों आगे बढ़तीं, पीछे-पीछे चोटीमें गुँथे हुए फूल गिरते जाते। इस प्रकार सुन्दरी यशोदा ज्यों-त्यों करके उन्हें पकड़ सकीं § ॥ १० ॥ श्रीकृष्णका हाथ पकड़कर वे उन्हें डराने-धमकाने लगीं। उस समय श्रीकृष्णकी झाँकी बड़ी विलक्षण हो रही थी। अपराध तो किया ही था, इसलिये रुलाई रोकनेपर भी न रुकती थी। हाथोंसे आँखें मल रहे थे, इसलिये मुँहपर काजलकी स्याही फैल गयी थी। पिटनेके भयसे आँखें ऊपरकी ओर उठ गयी थीं, उनसे व्याकुलता सूचित होती थी ×॥ ११ ॥ जब यशोदाजीने देखा कि लल्ला बहुत डर गया है, तब उनके हृदयमें वात्सल्य-

---

कर सकते हैं। मैयाके अपने हाथों दुहा हुआ यह पद्मगन्धा गायोंका दूध श्रीकृष्णके लिये ही गरम हो रहा था। थोड़ी देरके बाद ही उनको पिलाना था। दूध उफन जायगा तो मेरे लाला भूखे रहेंगे—रोयेंगे, इसीलिये माताने उन्हें नीचे उतारकर दूधको सँभाला।

* यशोदा माता दूधके पास पहुँचीं। प्रेमका अद्भुत दृश्य! पुत्रको गोदसे उतारकर उसके पेयके प्रति इतनी प्रीति क्यों? अपनी छातीका दूध तो अपना है, वह कहीं जाता नहीं है। परन्तु यह सहस्रों छटी हुई गायोंके दूधसे पालित पद्मगन्धा गायका दूध फिर कहाँ मिलेगा? वृन्दावनका दूध-अप्राकृत, चिन्मय, प्रेमजगत्‌का दूध—माको आते देखकर शर्मसे दब गया। 'अहो! आगमें कूदनेका सङ्कल्प करके मैंने माके स्नेहानन्दमें कितना बड़ा विघ्न डाला? और मा अपना आनन्द छोड़कर मेरी रक्षाके लिये दौड़ी आ रही है। मुझे धिक्कार है।' दूधका उफनना बंद हो गया और वह तत्काल अपने स्थानपर बैठ गया।

† 'मा! तुम अपनी गोदमें नहीं बैठाओगी तो मैं किसी खलकी गोदमें जा बैठूँगा'—यही सोचकर मानो श्रीकृष्ण उल्टे ऊखलके ऊपर जा बैठे। उदार पुरुष भले ही खलोंकी सगतिमे जा बैठें, परन्तु उसका शील-स्वभाव बदलता नहीं है। ऊखलपर बैठकर भी वे वन्दरोंको माखन बाँटने लगे। सम्भव है रामावतारके प्रति जो कृतज्ञताका भाव उदय हुआ था, उसके कारण अथवा अभी-अभी क्रोध आ गया था, उसका प्रायश्चित्त करनेके लिये!

श्रीकृष्णके नेत्र हैं 'चौर्यविशङ्कित' ध्यान करने योग्य। वैसे तो उनके ललित, कलित, छलित, बलित, चकित आदि अनेकों प्रकारके ध्येय नेत्र हैं, परन्तु ये प्रेमी जनोंके हृदयमें गहरी चोट करते हैं।

‡ भीत होकर भागते हुए भगवान् हैं। अपूर्व झाँकी है! ऐश्वर्यको तो मानो मैयाके वात्सल्य प्रेमपर न्यौछावर करके व्रजके बाहर ही फेंक दिया है! कोई असुर अस्त्र-शस्त्र लेकर आता तो सुदर्शन चक्रका स्मरण करते। मैयाकी छड़ीका निवारण करनेके लिये कोई भी अस्त्र-शस्त्र नहीं! भगवान्‌की यह भयभीत मूर्ति कितनी मधुर है! धन्य है इस भयको!

§ माता यशोदाके शरीर और श्रृंगार दोनों ही विरोधी हो गये—तुम प्यारे कन्हैयाको क्यों खदेड़ रही हो! परन्तु मैयाने पकड़कर ही छोड़ा।

× विश्वके इतिहासमें, भगवान्‌के सम्पूर्ण जीवनमें पहली बार स्वयं विश्वेश्वर भगवान् माके सामने अपराधी बनकर खड़े हुए हैं। मानो अपराधी भी मैं ही हूँ—इस सत्यका प्रत्यक्ष करा दिया। बायें हाथसे दोनों आँखें रगड़-रगड़कर

मैयासे डरे हुए भगवान्

स्नेह उमड़ आया। उन्होंने छड़ी फेंक दी। इसके बाद सोचा कि इसको एक बार रस्सीसे बाँध देना चाहिये (नहीं तो यह कहीं भाग जायगा)। परीक्षित्! सच पूछो तो यशोदा मैयाको अपने बालकके ऐश्वर्यका पता न था * ॥१२॥ जिसमें न बाहर है न भीतर, न आदि है और न अन्त; जो जगत्‌के पहले भी थे, बादमें भी रहेंगे; इस जगत्‌के भीतर तो हैं ही, बाहरी रूपोंमें भी हैं; और तो क्या, जगत्‌के रूपमें भी स्वयं वही हैं; † यही नहीं, जो समस्त इन्द्रियोंसे परे और अव्यक्त हैं—उन्हीं भगवान्‌को मनुष्यका-सा रूप धारण करनेके कारण पुत्र समझकर यशोदारानी रस्सीसे ऊखलमें ठीक वैसे ही बाँध देती हैं, जैसे कोई साधारण सा बालक‡ हो ॥ १३-१४ ॥ जब माता यशोदा अपने ऊधमी और नटखट लड़केको रस्सीसे बाँधने लगीं, तब वह दो अंगुल छोटी पड़ गयी! तब

मानो उनसे कहलाना चाहते हों कि ये किसी कर्मके कर्त्ता नहीं हैं। ऊपर इसलिये देख रहे हैं कि जब माता ही पीटनेके लिये तैयार है, तब मेरी सहायता और कौन कर सकता है? नेत्र भयसे विह्वल हो रहे हैं, ये भले ही कह दें कि मैंने नहीं किया, हम कैसे कहें। फिर तो लीला ही बंद हो जायगी।

माने डाँटा—अरे, अशान्तप्रकृते! वानरबन्धो! मन्थनीस्फोटक! अब तुझे मक्खन कहाँसे मिलेगा? आज मैं तुझे ऐसा बाँधूँगी, ऐसा बाँधूँगी कि न तो तू ग्वालबालोंके साथ खेल ही सकेगा और न माखन-चोरी आदि ऊधम ही मचा सकेगा।

* 'अरी मैया! मोहि मत मार!' माताने कहा—'यदि तुझे पिटनेका इतना डर था तो मटका क्यों फोड़ा?' श्रीकृष्ण—'अरी मैया! मैं अब ऐसा कभी नहीं करूँगा। तू अपने हाथसे छड़ी डाल दे।'

श्रीकृष्णका भोलापन देखकर मैयाका हृदय भर आया, वात्सल्य-स्नेहके समुद्रमें ज्वार आ गया। वे सोचने लगीं—लाला अत्यन्त डर गया है। कहीं छोड़नेपर यह भागकर वनमें चला गया तो कहाँ-कहाँ भटकता फिरेगा, भूखा-प्यासा रहेगा। इसलिये थोड़ी देरतक बाँधकर रख लूँ। दूध-माखन तैयार होनेपर मना लूँगी। यही सोच-विचारकर माताने बाँधनेका निश्चय किया। बाँधनेमें वात्सल्य ही हेतु था।

भगवान्‌के ऐश्वर्यका अज्ञान दो प्रकारका होता है, एक तो साधारण प्राकृत जीवोंको और दूसरा भगवान्‌के नित्य-सिद्ध प्रेमी परिकरको। यशोदा मैया आदि भगवान्‌की स्वरूपभूता चिन्मयी लीलाके अप्राकृत नित्य-सिद्ध परिकर हैं। भगवान्‌के प्रति वात्सल्यभाव, शिशु-प्रेमकी गाढ़ताके कारण ही उनका ऐश्वर्य-ज्ञान अभिभूत हो जाता है; अन्यथा उनमें अज्ञानकी संभावना ही नहीं है। इनकी स्थिति तुरीयावस्था अथवा समाधिका भी अतिक्रमण करके सहज प्रेममें रहती है। वहाँ प्राकृत अज्ञान, मोह, रजोगुण और तमोगुणकी तो बात ही क्या, प्राकृत सत्त्वकी भी गति नहीं है। इसलिये इनका अज्ञान भी भगवान्‌की लीलाकी सिद्धिके लिये उनकी लीलाशक्तिका ही एक चमत्कारविशेष है।

तभीतक हृदयमें जड़ता रहती है, जबतक चेतनका स्फुरण नहीं होता। श्रीकृष्णके हाथमें आ जानेपर यशोदा माताने बाँसकी छड़ी फेंक दी—यह सर्वथा स्वाभाविक है।

मेरी तृप्तिका प्रयत्न छोड़कर छोटी-मोटी वस्तुपर दृष्टि डालना केवल अर्थ-हानिका ही हेतु नहीं है, मुझे भी आँखोंसे ओझल कर देता है। परन्तु सब कुछ छोड़कर मेरे पीछे दौड़ना मेरी प्राप्तिका हेतु है। क्या मैयाके चरितसे इस बातकी शिक्षा नहीं मिलती?

मुझे योगियोंकी भी बुद्धि नहीं पकड़ सकती, परन्तु जो सब ओरसे मुँह मोड़कर मेरी ओर दौड़ता है, मैं उसकी मुट्ठीमें आ जाता हूँ। यही सोचकर भगवान् यशोदाके हाथों पकड़े गये।

† इस श्लोकमें श्रीकृष्णकी ब्रह्मरूपता बतायी गयी है। उपनिषदोंमें जैसे ब्रह्मका वर्णन है—'अपूर्वम् अनपरम् अनन्तरम् अबाह्यम्' इत्यादि। वही बात यहाँ श्रीकृष्णके सम्बन्धमें है। वह सर्वाधिष्ठान, सर्वसाक्षी, सर्वातीत, सर्वान्तर्यामी, सर्वोपादान एवं सर्वरूप ब्रह्म ही यशोदा माताके प्रेमके वश बँधने जा रहा है। बन्धनरूप होनेके कारण उसमें किसी प्रकारकी असङ्गति या अनौचित्य भी नहीं है।

‡ यह फिर कभी ऊखलपर जाकर न बैठे इसके लिये ऊखलसे बाँधना ही उचित है। क्योंकि खलका अधिक सङ्ग होनेपर उससे मनमें उद्वेग हो जाता है।

यह ऊखल भी चोर ही है, क्योंकि इसने कन्हैयाके चोरी करनेमें सहायता की है। दोनोंको बन्धनयोग्य देखकर ही यशोदा माताने दोनोंको बाँधनेका उद्योग किया।

उन्होंने दूसरी रस्सी लाकर उसमें जोड़ी* ॥ १५ ॥ जब वह भी छोटी हो गयी, तब उसके साथ और जोड़ी† । इस प्रकार वे ज्यों-ज्यों रस्सी लातीं और जोड़ती गयीं, त्यों-त्यों जुड़नेपर भी वे सब दो-दो अंगुल छोटी पड़ती गयीं ‡॥ १६ ॥ यशोदा-रानीने घरकी सारी रस्सियाँ जोड़ डालीं, फिर भी वे भगवान् श्रीकृष्णको न बाँध सकीं । उनकी असफलतापर देखनेवाली गोपियाँ मुसकराने लगीं और वे स्वयं भी मुसकराती हुई आश्चर्यचकित हो गयीं § ॥ १७ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि मेरी माका शरीर पसीनेसे लथपथ हो गया है, चोटीमें गुँथी हुई मालाएँ गिर गयी हैं और वे बहुत थक भी गयी हैं; तब कृपा करके वे

* यशोदा माता ज्यों-ज्यों अपने स्नेह, ममता आदि गुणों (सद्गुणों या रस्सियों) से श्रीकृष्णका पेट भरने लगीं, त्यों-त्यों अपनी नित्यमुक्तता, स्वतन्त्रता आदि सद्गुणोंसे भगवान् अपने स्वरूपको प्रकट करने लगे ।

† १. संस्कृत-साहित्यमें 'गुण' शब्दके अनेक अर्थ हैं—सद्गुण, सत्त्व आदि गुण और रस्सी । सत्त्व, रज आदि गुण भी अखिल ब्रह्माण्डनायक त्रिलोकीनाथ भगवान्का स्पर्श नहीं कर सकते । फिर यह छोटा-सा गुण (दो बित्तेकी रस्सी) उन्हें कैसे बाँध सकता है । यही कारण है कि यशोदा माताकी रस्सी पूरी नहीं पडती थी ।

२. संसारके विषय इन्द्रियोंको ही बाँधनेमें समर्थ हैं—विषिण्वन्ति इति विषयाः । वे हृदयमें स्थित अन्तर्यामी और साक्षीको नहीं बाँध सकते । तब गो-बन्धक (इन्द्रियों या गायोंको बाँधनेवाली) रस्सी गो-पति (इन्द्रियों या गायोंके स्वामी) को कैसे बाँध सकती है ?

३. वेदान्तके सिद्धान्तानुसार अध्यस्तमें ही बन्धन होता है, अधिष्ठानमें नहीं । भगवान् श्रीकृष्णका उदर अनन्त-कोटि ब्रह्माण्डोंका अधिष्ठान है । उसमें भला बन्धन कैसे हो सकता है ?

४. भगवान् जिसको अपनी कृपाप्रसादपूर्ण दृष्टिसे देख लेते हैं, वही सर्वदाके लिये बन्धनसे मुक्त हो जाता है । यशोदा माता अपने हाथमें जो रस्सी उठातीं, उसीपर श्रीकृष्णकी दृष्टि पड़ जाती । वह स्वयं मुक्त हो जाती, फिर उसमें गाँठ कैसे लगती ?

५. कोई साधक यदि अपने गुणोंके द्वारा भगवान्को रिझाना चाहे तो नहीं रिझा सकता । मानो यही सूचित करनेके लिये कोई भी गुण (रस्सी) भगवान्के उदरको पूर्ण करनेमें समर्थ नहीं हुआ ।

‡ रस्सी दो अंगुल ही कम क्यों हुई ? इसपर कहते हैं—

१. भगवान्ने सोचा कि जब मैं शुद्धहृदय भक्तजनोंको दर्शन देता हूँ, तब मेरे साथ एकमात्र सत्त्वगुणसे ही सम्बन्धकी स्फूर्ति होती है, रज और तमसे नहीं । इसलिये उन्होंने रस्सीको दो अंगुल कम करके अपना भाव प्रकट किया ।

२. उन्होंने विचार किया कि जहाँ नाम और रूप होते हैं, वहीं बन्धन भी होता है । मुझ परमात्मामें बन्धनकी कल्पना कैसे ? जब कि ये दोनों ही नहीं । दो अंगुलकी कमीका यही रहस्य है ।

३. दो वृक्षोंका उद्धार करना है । यही क्रिया सूचित करनेके लिये रस्सी दो अंगुल कम पड़ गयी ।

४. भगवत्कृपासे द्वैतानुरागी भी मुक्त हो जाता है और असङ्ग भी प्रेमसे बँध जाता है । यही दोनों भाव सूचित करनेके लिये रस्सी दो अंगुल कम हो गयी ।

५. यशोदा माताने छोटी-बडी अनेकों रस्सियाँ अलग-अलग और एक साथ भी भगवान्की कमरमें लगायीं, परन्तु वे पूरी न पड़ीं, क्योंकि भगवान्में छोटे-बड़ेका कोई भेद नहीं है । रस्सियोंने कहा—भगवान्के समान अनन्तता, अनादिता और विभुता हमलोगोंमें नहीं है । इसलिये इनको बाँधनेकी बात बंद करो । अथवा जैसे नदियाँ समुद्रमें समा जाती हैं वैसे ही सारे गुण (सारी रस्सियाँ) अनन्तगुण भगवान्में लीन हो गये, अपना नाम रूप खो बैठे । ये ही दो भाव सूचित करनेके लिये रस्सियोंमें दो अंगुलकी न्यूनता हुई ।

§ वे मन-ही-मन सोचतीं—इसकी कमर मुट्ठीभर की है, फिर भी सैकड़ों हाथ लंबी रस्सीसे यह नहीं बँधता है । कमर तिलमात्र भी मोटी नहीं होती, रस्सी एक अंगुल भी छोटी नहीं होती, फिर भी वह बँधता नहीं । कैसा आश्चर्य है । हर बार दो अंगुलकी ही कमी होती है, न तीनकी, न चारकी, न एककी । यह कैसा अलौकिक चमत्कार है ।

स्वयं ही अपनी माके बन्धनमें बँध गये* ॥ १८ ॥ परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्ण परम स्वतन्त्र हैं। ब्रह्मा, इन्द्र आदिके साथ यह सम्पूर्ण जगत् उनके वशमें है। फिर भी इस प्रकार बँधकर उन्होंने संसारको यह बात दिखला दी कि मैं अपने प्रेमी भक्तोंके वशमें हूँ†॥१९॥ ग्वालिनी यशोदाने मुक्तिदाता मुकुन्दसे जो कुछ अनिर्वचनीय कृपाप्रसाद प्राप्त किया वह प्रसाद ब्रह्मा पुत्र होनेपर भी, शङ्कर आत्मा होनेपर भी और वक्षःस्थलपर विराजमान लक्ष्मी अर्धाङ्गिनी होनेपर भी न पा सके, न पा सके‡ ॥ २० ॥ यह

* १. भगवान् श्रीकृष्णने सोचा कि जब माके हृदयसे द्वैत-भावना दूर नहीं हो रही है, तब मैं व्यर्थ अपनी असङ्गता क्यों प्रकट करूँ। जो मुझे बद्ध समझता है उसके लिये बद्ध होना ही उचित है। इसलिये वे बँध गये।

२. मैं अपने भक्तके छोटे-से गुणको भी पूर्ण कर देता हूँ—यह सोचकर भगवान्ने यशोदा माताके गुण (रस्सी) को अपने बाँधने योग्य बना लिया।

३. यद्यपि मुझमें अनन्त, अचिन्त्य कल्याण-गुण निवास करते हैं, तथापि तबतक वे अधूरे ही रहते हैं, जबतक मेरे भक्त अपने गुणोंकी मुहर उनपर नहीं लगा देते। यही सोचकर यशोदा मैयाके गुणों (वात्सल्य, स्नेह आदि और रज्जु) से अपनेको पूर्णोदर—दामोदर—बना लिया।

४. भगवान् श्रीकृष्ण इतने कोमलहृदय हैं कि अपने भक्तके प्रेमको पुष्ट करनेवाला परिश्रम भी सहन नहीं करते हैं। वे अपने भक्तको परिश्रमसे मुक्त करनेके लिये स्वयं ही बन्धन स्वीकार कर लेते हैं।

५. भगवान्ने अपने मध्यभागमें बन्धन स्वीकार करके यह सूचित किया कि मुझमें तत्त्वदृष्टिसे बन्धन है ही नहीं; क्योंकि जो वस्तु आगे-पीछे, ऊपर-नीचे नहीं होती, केवल बीचमें भासती है, वह झूठी होती है। इसी प्रकार यह बन्धन भी झूठा है।

६. भगवान् किसीकी शक्ति, साधन या सामग्रीसे नहीं बँधते। यशोदाजीके हाथों श्यामसुन्दरको न बँधते देखकर पास-पड़ोसकी ग्वालिनें इकट्ठी हो गयीं और कहने लगीं—यशोदाजी! लालाकी कमर तो मुट्ठीभरकी ही है और छोटी-सी किङ्किणी इसमें रुन-झुन कर रही है। अब यह इतनी रस्सियोंसे नहीं बँधता तो जान पड़ता है कि विधाताने इसके ललाटमें बन्धन लिखा ही नहीं है। इसलिये अब तुम यह उद्योग छोड़ दो।

यशोदा मैयाने कहा—चाहे सन्ध्या हो जाय और गाँवभरकी रस्सी क्यों न इकट्ठी करनी पड़े, पर मैं तो इसे बाँधकर ही छोड़ूँगी। यशोदाजीका यह हठ देखकर भगवान्ने अपना हठ छोड़ दिया; क्योंकि जहाँ भगवान् और भक्तके हठमें विरोध होता है, वहाँ भक्तका ही हठ पूरा होता है। भगवान् बँधते हैं तब, जब भक्तकी थकान देखकर कृपापरवश हो जाते हैं। भक्तके श्रम और भगवान्की कृपाकी कमी ही दो अंगुलकी कमी है। अथवा जब भक्त अहंकार करता है कि मैं भगवान्को बाँध लूँगा, तब वह उनसे एक अंगुल दूर पड़ जाता है और भक्तकी नकल करनेवाले भगवान् भी एक अंगुल दूर हो जाते हैं। जब यशोदा माता थक गयीं, उनका शरीर पसीनेसे लथपथ हो गया, तब भगवान्की सर्वशक्तिचक्रवर्तिनी परम भास्वती भगवती कृपा-शक्तिने भगवान्के हृदयको माखनके समान द्रवित कर दिया और स्वयं प्रकट होकर उसने भगवान्की सत्य-संकल्पितता और विभुताको अन्तर्हित कर दिया। इसीसे भगवान् बँध गये।

† यद्यपि भगवान् स्वयं परमेश्वर हैं, तथापि प्रेम-परवश होकर बँध जाना परम चमत्कारकारी होनेके कारण भगवान्का भूषण ही है, दूषण नहीं।

आत्माराम होनेपर भी भूख लगना, पूर्णकाम होनेपर भी अतृप्त रहना, शुद्ध सत्त्वस्वरूप होनेपर भी क्रोध करना, स्वाराज्य-लक्ष्मीसे युक्त होनेपर भी चोरी करना, महाकाल यम आदिको भय देनेवाले होनेपर भी डरना और भागना, मनसे भी तीव्र गतिवाले होनेपर भी माताके हाथों पकड़ा जाना, आनन्दमय होनेपर भी दुःखी होना, रोना, सर्वव्यापक होनेपर भी बँध जाना—यह सब भगवान्की स्वाभाविक भक्तवश्यता है। जो लोग भगवान्को नहीं जानते हैं, उनके लिये तो इसका कुछ उपयोग नहीं है, परन्तु जो श्रीकृष्णको भगवान्के रूपमें पहचानते हैं, उनके लिये यह अत्यन्त चमत्कारकी वस्तु है और यह देखकर—जानकर उनका हृदय द्रवित हो जाता है, भक्तिप्रेमसे सराबोर हो जाता है। अहो! विश्वेश्वर प्रभु अपने भक्तके हाथों ऊखलमें बँधे हुए हैं!

‡ इस श्लोकमें तीनों नकारोंका अन्वय 'लेभिरे' क्रियाके साथ करना चाहिये। न पा सके, न पा सके, न पा सके।

गोपिकानन्दन भगवान् अनन्यप्रेमी भक्तोंके लिये जितने सुलभ हैं, उतने देहाभिमानी कर्मकाण्डी एवं तपस्वियोंको तथा अपने स्वरूपभूत ज्ञानियोंके लिये भी नहीं हैं* ॥ २१ ॥

इसके बाद नन्दरानी यशोदाजी तो घरके काम-धंधोंमें उलझ गयीं और ऊखलमें बँधे हुए भगवान् श्यामसुन्दरने उन दोनों अर्जुन-वृक्षोंको मुक्ति देनेकी सोची, जो पहले यक्षराज कुबेरके पुत्र थे† ॥ २२ ॥ इनके नाम थे नलकूबर और मणिग्रीव। इनके पास धन, सौन्दर्य और ऐश्वर्यकी पूर्णता थी। इनका घमंड देखकर ही देवर्षि नारदजीने इन्हें शाप दे दिया था और ये वृक्ष हो गये थे‡ ॥ २३ ॥

दसवाँ अध्याय

यमलार्जुनका उद्धार

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन्! आप कृपया यह बतलाइये कि नलकूबर और मणिग्रीवको शाप क्यों मिला। उन्होंने ऐसा कौन-सा निन्दित कर्म किया था, जिसके कारण परम शान्त देवर्षि नारदजीको भी क्रोध आ गया? ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित्! नलकूबर और मणिग्रीव—ये दोनों एक तो धनाध्यक्ष कुबेरके लाड़ले लड़के थे और दूसरे इनकी गिनती हो गयी रुद्रभगवान्‌के अनुचरोंमें। इससे उनका घमंड बढ़ गया। एक दिन वे दोनों मन्दाकिनीके तटपर कैलासके रमणीय उपवनमें वारुणी मदिरा पीकर मदोन्मत्त हो गये थे। नशेके कारण उनकी आँखें घूम रही थीं। बहुत-सी स्त्रियाँ उनके साथ गा-बजा रही थीं और वे पुष्पोंसे लदे हुए वनमें उनके साथ विहार कर रहे थे ॥ २-३ ॥ उस समय गङ्गाजीमें पाँत-के-पाँत कमल खिले हुए थे। वे स्त्रियोंके साथ जलके भीतर घुस गये और जैसे हाथियोंका जोड़ा हथिनियोंके साथ जलक्रीडा कर रहा हो, वैसे ही वे उन युवतियोंके साथ तरह-तरहकी क्रीडा करने लगे ॥ ४ ॥ परीक्षित्! संयोगवश उधरसे परम समर्थ देवर्षि नारदजी आ निकले। उन्होंने उन यक्ष युवकोंको देखा और समझ लिया कि ये इस समय मतवाले हो रहे हैं ॥ ५ ॥ देवर्षि नारदको देखकर वस्त्रहीन अप्सराएँ लजा गयीं। शापके डरसे उन्होंने तो अपने-अपने कपड़े झटपट पहन लिये, परन्तु इन यक्षोंने कपड़े नहीं पहने ॥ ६ ॥ जब देवर्षि नारदजीने देखा कि ये देवताओंके पुत्र होकर श्रीमदसे अंधे और मदिरापान करके उन्मत्त हो रहे हैं, तब उन्होंने उनपर अनुग्रह करनेके लिये शाप देते हुए यह कहा—§ ॥ ७ ॥

---

* ज्ञानी पुरुष भी भक्ति करें तो उन्हें इन सगुण भगवान्‌की प्राप्ति हो सकती है, परन्तु बड़ी कठिनाईसे। ऊखल-बँधे भगवान् सगुण हैं। वे निर्गुण प्रेमीको कैसे मिलेंगे?

† स्वयं बँधकर भी बन्धनमें पड़े हुए यक्षोंकी मुक्तिकी चिन्ता करना, सत्पुरुषके सर्वथा योग्य है।

जब यशोदा माताकी दृष्टि श्रीकृष्णसे हटकर दूसरेपर पड़ती है, तब वे भी किसी दूसरेको देखने लगते हैं और ऐसा ऊधम मचाते हैं कि सबकी दृष्टि उनकी ओर खिंच आये। देखिये, पूतना, शकटासुर, तृणावर्त आदिका प्रसङ्ग।

‡ ये अपने भक्त कुबेरके पुत्र हैं, इसलिये इनका अर्जुन नाम है। ये देवर्षि नारदके द्वारा दृष्टिपूत किये जा चुके हैं, इसलिये भगवान्‌ने उनकी ओर देखा।

जिसे पहले भक्तिकी प्राप्ति हो जाती है, उसपर कृपा करनेके लिये स्वयं बँधकर भी भगवान् जाते हैं।

§ देवर्षि नारदके शाप देनेमें दो हेतु थे—एक तो अनुग्रह—उनके मदका नाश करना और दूसरा अर्थ—श्रीकृष्णप्राप्ति।

ऐसा प्रतीत होता है कि त्रिकालदर्शी देवर्षि नारदने अपनी ज्ञानदृष्टिसे यह जान लिया कि इनपर भगवान्‌का अनुग्रह होनेवाला है। इसीसे उन्हें भगवान्‌का भावी कृपापात्र समझकर ही उनके साथ छेड़-छाड़ की।

नारदजीने कहा—जो लोग अपने प्रिय विषयोंका सेवन करते हैं, उनकी बुद्धिको सबसे बढ़कर नष्ट करनेवाला है श्रीमद—धन-सम्पत्तिका नशा। हिंसा आदि रजोगुणी कर्म और कुलीनता आदिका अभिमान भी उससे बढ़कर वैसा बुद्धि-भ्रंशक नहीं है; क्योंकि श्रीमदके साथ-साथ तो स्त्री, जूआ और मदिरा भी रहती है॥ ८ ॥ ऐश्वर्यमद और श्रीमदसे अंधे होकर अपनी इन्द्रियोंके वशमें रहनेवाले क्रूर पुरुष अपने नाशवान् शरीरको तो अजर-अमर मान बैठते हैं और अपने ही-जैसे शरीरवाले पशुओंकी हत्या करते हैं॥ ९ ॥ जिस शरीरको 'भूदेव' 'नरदेव' 'देव' आदि नामोंसे पुकारते हैं—उसकी अन्तमें क्या गति होगी? उसमें कीड़े पड़ जायँगे, पक्षी खाकर उसे विष्ठा बना देंगे या वह जलकर राखका ढेर बन जायगा। उसी शरीरके लिये प्राणियोंसे द्रोह करनेमें मनुष्य अपना कौन-सा स्वार्थ समझता है? ऐसा करनेसे तो उसे नरककी ही प्राप्ति होगी॥ १० ॥ बतलाओ तो सही, यह शरीर किसकी सम्पत्ति है? अन्न देकर पालनेवालेकी है या गर्भाधान करानेवाले पिताकी? यह शरीर उसे नौ महीने पेटमें रखनेवाली माताका है अथवा माताको भी पैदा करनेवाले नानाका? जो बलवान् पुरुष बलपूर्वक इससे काम करा लेता है, उसका है अथवा दाम देकर खरीद लेनेवालेका? चिताकी जिस धधकती आगमें यह जल जायगा, उसका है अथवा जो कुत्ते-स्यार इसको चीथ-चीथकर खा जानेकी आशा लगाये बैठे हैं, उनका? ॥ ११ ॥ यह शरीर एक साधारण-सी वस्तु है। प्रकृतिसे पैदा होता है और उसीमें समा जाता है। ऐसी स्थितिमें मूर्ख पशुओंके सिवा और ऐसा कौन बुद्धिमान् है जो इसको अपना आत्मा मानकर दूसरोंको कष्ट पहुँचायेगा, उनके प्राण लेगा॥ १२ ॥ जो दुष्ट श्रीमदसे अंधे हो रहे हैं, उनकी आँखोंमें ज्योति डालनेके लिये दरिद्रता ही सबसे बड़ा अंजन है; क्योंकि दरिद्र यह देख सकता है कि दूसरे प्राणी भी मेरे ही-जैसे हैं॥ १३ ॥ जिसके शरीरमें एक बार काँटा गड़ जाता है, वह नहीं चाहता कि किसी भी प्राणीको काँटा गड़नेकी पीड़ा सहनी पड़े; क्योंकि उस पीड़ा और उसके द्वारा होनेवाले विकारोंसे वह समझता है कि दूसरेको भी वैसी ही पीड़ा होती है। परन्तु जिसे कभी काँटा गड़ा ही नहीं, वह उसकी पीड़ाका अनुमान नहीं कर सकता॥ १४ ॥ दरिद्रमें घमंड और हेकड़ी नहीं होती; वह सब तरहके मदोंसे बचा रहता है बल्कि दैववश उसे जो कष्ट उठाना पड़ता है, वह उसके लिये एक बहुत बड़ी तपस्या भी है॥ १५ ॥ जिसे प्रतिदिन भोजनके लिये अन्न जुटाना पड़ता है, भूखसे जिसका शरीर दुबला-पतला हो गया है, उस दरिद्रकी इन्द्रियाँ भी अधिक विषय नहीं भोगना चाहतीं, सूख जाती हैं और फिर वह अपने भोगोंके लिये दूसरे प्राणियोंको सताता नहीं—उनकी हिंसा नहीं करता॥ १६ ॥ यद्यपि साधु पुरुष समदर्शी होते हैं, फिर भी उनका समागम दरिद्रके लिये ही सुलभ है; क्योंकि उसके भोग तो पहलेसे ही छूटे हुए हैं। अब संतोंके सङ्गसे उसकी लालसा-तृष्णा भी मिट जाती है और शीघ्र ही उसका अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है*॥ १७ ॥ जिन महात्माओंके चित्तमें सबके लिये समता है, जो केवल भगवान्‌के चरणारविन्दोंका मकरन्द-रस पीनेके लिये सदा उत्सुक रहते हैं, उन्हें दुर्गुणोंके खजाने अथवा दुराचारियोंकी जीविका चलानेवाले और धनके मदसे मतवाले दुष्टोंकी क्या आवश्यकता है? वे तो उनकी उपेक्षाके ही पात्र हैं†॥ १८ ॥ ये दोनों यक्ष वारुणी मदिराका पान करके मतवाले और श्रीमदसे अंधे हो रहे हैं। अपनी इन्द्रियोंके अधीन रहनेवाले इन स्त्री-लम्पट यक्षोंका अज्ञान-जनित मद मैं चूर-चूर कर दूँगा॥ १९ ॥ देखो तो सही, कितना अनर्थ है कि ये लोकपाल कुबेरके पुत्र होनेपर भी मदोन्मत्त होकर अचेत हो रहे हैं और इनको

* धनी पुरुषमें तीन दोष होते हैं—धन, धनका अभिमान और धनकी तृष्णा। दरिद्र पुरुषमें पहले दो नहीं होते, केवल तीसरा ही दोष रहता है। इसलिये सत्पुरुषोंके सङ्गसे धनकी तृष्णा मिट जानेपर धनियोंकी अपेक्षा उसका शीघ्र कल्याण हो जाता है।

† धन स्वयं एक दोष है। सातवें स्कन्धमें कहा है कि जितनेसे पेट भर जाय, उससे अधिकको अपना माननेवाला चोर है और दण्डका पात्र है—'स स्तेनो दण्डमर्हति।' भगवान् भी कहते हैं—जिसपर मैं अनुग्रह करता हूँ उसका धन छीन लेता हूँ। इसीसे सत्पुरुष प्रायः धनियोंकी उपेक्षा करते हैं।

इस बातका भी पता नहीं है कि हम बिल्कुल नंग-धड़ंग हैं ॥ २० ॥ इसलिये ये दोनों अब वृक्षयोनिमे जानेके योग्य हैं । ऐसा होनेसे इन्हें फिर इस प्रकारका अभिमान न होगा । वृक्षयोनिमे जानेपर भी मेरी कृपासे इन्हें भगवान्‌की स्मृति बनी रहेगी और मेरे अनुग्रहसे देवताओंके सौ वर्ष बीतनेपर इन्हे भगवान् श्रीकृष्णका सान्निध्य प्राप्त होगा; और फिर भगवान्‌के चरणोंमें परम प्रेम प्राप्त करके ये अपने लोकमे चले आयेंगे ॥ २१-२२ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—देवर्षि नारद इस प्रकार कहकर भगवान् नर-नारायणके आश्रमपर चले गये* । नलकूबर और मणिग्रीव—ये दोनों एक ही साथ अर्जुन वृक्ष होकर यमलार्जुन नामसे प्रसिद्ध हुए ॥ २३ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने अपने परम प्रेमी भक्त देवर्षि नारदजीकी बात सत्य करनेके लिये धीरे-धीरे ऊखल घसीटते हुए उस ओर प्रस्थान किया, जिधर यमलार्जुन वृक्ष थे ॥ २४ ॥ भगवान्‌ने सोचा कि 'देवर्षि नारद मेरे अत्यन्त प्यारे हैं और ये दोनों भी मेरे भक्त कुबेरके लड़के हैं । इसलिये महात्मा नारदने जो कुछ कहा है, उसे मैं ठीक उसी रूपमे पूरा करूँगा'† ॥ २५ ॥ यह विचार करके भगवान् श्रीकृष्ण दोनों वृक्षोंके बीचमें घुस गये‡ । वे तो दूसरी ओर निकल गये, परन्तु ऊखल टेढ़ा होकर अटक गया ॥ २६ ॥ दामोदर भगवान् श्रीकृष्णकी कमरमें रस्सी कसी हुई थी । उन्होंने अपने पीछे लुढ़कते हुए ऊखलको ज्यों ही तनिक जोरसे खींचा, त्यों ही पेड़ोंकी सारी जड़ें उखड़ गयीं§ । समस्त बल-विक्रमके केन्द्र भगवान्‌का तनिक-सा जोर लगते ही पेड़ोंके तने, शाखाएँ, छोटी-छोटी डालियाँ और एक-एक पत्ते काँप उठे और वे दोनों बड़े जोरसे तड़तड़ाते हुए पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ २७ ॥ उन दोनों वृक्षोंमेसे अग्निके समान तेजस्वी दो सिद्ध पुरुष निकले । उनके चमचमाते हुए सौन्दर्यसे दिशाएँ दमक उठीं । उन्होंने सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी भगवान् श्रीकृष्णके पास आकर उनके चरणोंमें सिर रखकर प्रणाम किया और हाथ जोड़कर शुद्ध हृदयसे वे उनकी इस प्रकार स्तुति करने लगे—॥ २८ ॥

उन्होंने कहा—सच्चिदानन्दस्वरूप ! सबको अपनी ओर आकर्षित करनेवाले परम योगेश्वर श्रीकृष्ण ! आप प्रकृतिसे अतीत स्वयं पुरुषोत्तम हैं । वेदज्ञ ब्राह्मण यह बात जानते हैं कि यह व्यक्त और अव्यक्त सम्पूर्ण जगत् आपका ही रूप है ॥ २९ ॥ आप ही समस्त प्राणियोंके शरीर, प्राण, अन्तःकरण और इन्द्रियोंके स्वामी हैं । तथा आप ही सर्वशक्तिमान् काल, सर्वव्यापक एव अविनाशी ईश्वर हैं ॥ ३० ॥ आप ही महत्तत्त्व और वह प्रकृति हैं, जो अत्यन्त सूक्ष्म एवं सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुणरूपा है । आप ही समस्त स्थूल और सूक्ष्म शरीरोंके कर्म, भाव, धर्म और सत्ताको जाननेवाले सबके साक्षी परमात्मा हैं ॥ ३१ ॥ वृत्तियोंसे ग्रहण किये जानेवाले प्रकृतिके गुणों और विकारोंके द्वारा आप पकड़में नहीं आ सकते । स्थूल और सूक्ष्म शरीरके आवरणसे ढका हुआ ऐसा कौन-सा पुरुष है, जो आपको जान सके ? क्योंकि आप तो उन शरीरोंके पहले भी एकरस विद्यमान थे ॥ ३२ ॥ समस्त प्रपञ्चके विधाता भगवान् वासुदेवको हम नमस्कार करते हैं । प्रभो ! आपके द्वारा प्रकाशित होनेवाले गुणोंसे ही आपने अपनी महिमा छिपा रक्खी है । परब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्ण ! हम आपको नमस्कार करते हैं ॥ ३३ ॥

* १ शाप-वरदानसे तपस्या क्षीण होती है । नलकूबर-मणिग्रीवको शाप देनेके पश्चात् नर-नारायण-आश्रमकी यात्रा करनेका यह अभिप्राय है कि फिरसे तपःसञ्चय कर लिया जाय ।

२. मैंने यक्षोंपर जो अनुग्रह किया है, वह बिना तपस्याके पूर्ण नहीं हो सकता है, इसलिये ।

३. अपने आराध्यदेव एव गुरुदेव नारायणके सम्मुख अपना कृत्य निवेदन करनेके लिये ।

† भगवान् श्रीकृष्ण अपनी कृपादृष्टिसे उन्हे मुक्त कर सकते थे । परन्तु वृक्षोंके पास जानेका कारण यह है कि देवर्षि नारदने कहा था कि तुम्हें वासुदेवका सान्निध्य प्राप्त होगा ।

‡ वृक्षोंके बीचमें जानेका आशय यह है कि भगवान् जिसके अन्तर्देशमे प्रवेश करते है, उसके जीवनमे क्लेशका लेश भी नहीं रहता । भीतर प्रवेश किये बिना दोनोंका एक साथ उद्धार भी कैसे होता ।

§ जो भगवान्‌के गुण (भक्त-वात्सल्य आदि सद्गुण या रस्सी) से बँधा हुआ है, वह तिर्यक् गति (पशु-पक्षी या टेढ़ी चालवाला) ही क्यों न हो—दूसरोंका उद्धार कर सकता है ।

अपने अनुयायीके द्वारा किया हुआ काम जितना यशस्कर होता है, उतना अपने हाथसे नहीं । मानो यही सोचकर अपने पीछे-पीछे चलनेवाले ऊखलके द्वारा उनका उद्धार करवाया ।

आप प्राकृत शरीरसे रहित हैं। फिर भी जब आप ऐसे पराक्रम प्रकट करते है, जो साधारण शरीरधारियोंके लिये शक्य नहीं हैं और जिनसे बढ़कर तो क्या जिनके समान भी कोई नहीं कर सकता, तब उनके द्वारा उन शरीरोंमें आपके अवतारोंका पता चल जाता है ॥ ३४ ॥ प्रभो! आप वही समस्त लोकोंके अभ्युदय और निः-श्रेयसके लिये इस समय अपनी सम्पूर्ण शक्तियोंसे अवतीर्ण हुए हैं। आप समस्त अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाले हैं ॥ ३५ ॥ परम कल्याण (साध्य) स्वरूप! आपको नमस्कार है। परम मङ्गल (साधन) स्वरूप! आपको नमस्कार है। परम शान्त, सबके हृदयमें विहार करनेवाले यदुवंशशिरोमणि श्रीकृष्णको नमस्कार है ॥ ३६ ॥ अनन्त! हम आपके दासानुदास हैं। आप यह स्वीकार कीजिये। देवर्षि भगवान् नारदके परम अनुग्रहसे ही हम अपराधियोंको आपका दर्शन प्राप्त हुआ है ॥ ३७ ॥ प्रभो! हमारी वाणी आपके मङ्गलमय गुणोंका वर्णन करती रहे। हमारे कान आपकी रसमयी कथामें लगे रहें। हमारे हाथ आपकी सेवामें और मन आपके चरण-कमलों-की स्मृतिमें रम जायँ। यह सम्पूर्ण जगत् आपका निवास-स्थान है। हमारा मस्तक सबके सामने झुका रहे। सत आपके प्रत्यक्ष शरीर हैं। हमारी आँखें उनके दर्शन करती रहें ॥ ३८ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—सौन्दर्य-माधुर्यनिधि गोकुलेश्वर श्रीकृष्णने नलकूबर और मणिग्रीवके इस प्रकार स्तुति करनेपर रस्सीसे ऊखलमें बँधे-बँधे ही हँसते हुए* उनसे कहा—॥ ३९ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—तुमलोग श्रीमदसे अंधे हो रहे थे। मैं पहलेसे ही यह बात जानता था कि परम कारुणिक देवर्षि नारदने शाप देकर तुम्हारा ऐश्वर्य नष्ट कर दिया तथा इस प्रकार तुम्हारे ऊपर कृपा की॥ ४० ॥ जिनकी बुद्धि समदर्शिनी है और हृदय पूर्णरूपसे मेरे प्रति समर्पित है, उन साधु पुरुषोंके दर्शनसे बन्धन होना ठीक वैसे ही सम्भव नहीं है, जैसे सूर्योदय होनेपर मनुष्यके नेत्रोंके सामने अन्धकारका होना ॥ ४१ ॥ इसलिये नलकूबर और मणिग्रीव! तुमलोग मेरे परायण होकर अपने-अपने घर जाओ। तुमलोगोंको संसारचक्रसे छुड़ानेवाले अनन्य भक्तिभावकी, जो तुम्हें अभीष्ट है, प्राप्ति हो गयी है ॥ ४२ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—जब भगवान्‌ने इस प्रकार कहा, तब उन दोनोंने उनकी परिक्रमा की और बार-बार प्रणाम किया। इसके बाद ऊखलमें बँधे हुए सर्वेश्वरकी आज्ञा प्राप्त करके उन लोगोंने उत्तर दिशाकी यात्रा की† ॥ ४३ ॥

ग्यारहवाँ अध्याय

गोकुलसे वृन्दावन जाना तथा वत्सासुर और बकासुरका उद्धार

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! वृक्षोंके गिरनेसे जो भयङ्कर शब्द हुआ था, उसे नन्दबाबा आदि गोपोंने भी सुना। उनके मनमें यह शङ्का हुई कि कहीं बिजली तो नहीं गिरी! सब-के-सब भयभीत होकर वृक्षोंके पास आ गये ॥ १ ॥ वहाँ पहुँचनेपर उन लोगोंने देखा कि दोनों अर्जुनके वृक्ष गिरे हुए है। यद्यपि वृक्ष गिरनेका कारण स्पष्ट था—वहीं उनके सामने ही रस्सीमें बँधा हुआ बालक ऊखल खींच रहा था, परन्तु वे समझ न

* सर्वदा मैं मुक्त रहता हूँ और बद्ध जीव मेरी स्तुति करते हैं। आज मैं बद्ध हूँ और मुक्त जीव मेरी स्तुति कर रहे हैं। यह विपरीत दशा देखकर भगवान्‌को हँसी आ गयी।

† यक्षोंने विचार किया कि जबतक यह स-गुण (रस्सी) में बँधे हुए हैं, तभीतक हमें इनके दर्शन हो रहे हैं। निर्गुणको तो मनसे सोचा भी नहीं जा सकता। इसीसे भगवान्‌के बँधे रहते ही वे चले गये।

स्वस्त्यस्तु उलूखल सर्वदा श्रीकृष्णगुणशाली एव भूयाः।

'ऊखल! तुम्हारा कल्याण हो, तुम सदा श्रीकृष्णके गुणोंसे बँधे ही रहो।'—ऐसा ऊखलको आशीर्वाद देकर यक्ष वहाँसे चले गये।

सके। 'यह किसका काम है, ऐसी आश्चर्यजनक दुर्घटना कैसे घट गयी!' यह सोचकर वे कातर हो गये, उनकी बुद्धि भ्रमित हो गयी॥ २-३॥ वहाँ कुछ बालक खेल रहे थे। उन्होंने कहा—'अरे, इसी कन्हैयाका तो काम है। यह दोनों वृक्षोंके बीचमेंसे होकर निकल रहा था। ऊखल तिरछा हो जानेपर दूसरी ओरसे इसने उसे खींचा और वृक्ष गिर पड़े। हमने तो इनमेंसे निकलते हुए दो पुरुष भी देखे हैं'॥ ४॥ परन्तु गोपोंने बालकोंकी बात नहीं मानी। वे कहने लगे—'एक नन्हा-सा बच्चा इतने बड़े वृक्षोंको उखाड़ डाले, यह कभी सम्भव नहीं है!' किसी-किसीके चित्तमें श्रीकृष्णकी पहलेकी लीलाओंका स्मरण करके सन्देह भी हो आया॥५॥ नन्दबाबाने देखा, उनका प्राणोंसे प्यारा बच्चा रस्सीसे बँधा हुआ ऊखल घसीटता जा रहा है। वे हँसने लगे और जल्दीसे जाकर उन्होंने रस्सीकी गाँठ खोल दी*॥ ६॥

सर्वशक्तिमान् भगवान् कभी-कभी गोपियोंके फुसलानेसे साधारण बालकोंके समान नाचने लगते। कभी भोले-भाले अनजान बालककी तरह गाने लगते। वे उनके हाथकी कठपुतली—उनके सर्वथा अधीन हो गये थे॥७॥ कभी उनकी आज्ञासे पीढ़ा ले आते, तो कभी दुसेरी आदि तौलनेके बटखरे उठा लेते। कभी खड़ाऊँ ले आते, तो कभी अपने प्रेमी भक्तोंको आनन्दित करनेके लिये पहलवानोंकी भाँति ताल ठोंकने लगते॥ ८॥ इस प्रकार सर्वशक्तिमान् भगवान् अपनी बाल-लीलाओंसे व्रजवासियोंको आनन्दित करते और संसारमें जो लोग उनके रहस्यको जाननेवाले हैं, उनको यह दिखलाते कि मैं अपने सेवकोंके वशमें हूँ॥ ९॥

एक दिन कोई फल बेचनेवाली आकर पुकार उठी—'फल, लो फल!' यह सुनते ही समस्त कर्म और उपासनाओंके फल देनेवाले भगवान् अच्युत फल खरीदनेके लिये अपनी छोटी-सी अँजुलीमें अनाज लेकर दौड़ पड़े॥ १०॥ उनकी अँजुलीमेंसे अनाज तो रास्तेमें ही बिखर गया, पर फल बेचनेवालीने उनके दोनों हाथ फलसे भर दिये। इधर भगवान्ने भी उसकी फल रखनेवाली टोकरी रत्नोंसे भर दी॥ ११॥

तदनन्तर एक दिन यमलार्जुन वृक्षको तोड़नेवाले श्रीकृष्ण और बलराम बालकोंके साथ खेलते-खेलते यमुनातटपर चले गये और खेलमें ही रम गये, तब रोहिणीदेवीने उन्हें पुकारा 'ओ कृष्ण! ओ बलराम! जल्दी आओ'॥१२॥ परन्तु रोहिणीके पुकारनेपर भी वे आये नहीं; क्योंकि उनका मन खेलमें लग गया था। जब बुलानेपर भी वे दोनों बालक नहीं आये, तब रोहिणीजीने वात्सल्यस्नेहमयी यशोदाजीको भेजा॥ १३॥ श्रीकृष्ण और बलराम ग्वालबालोंके साथ बहुत देरसे खेल रहे थे, यशोदाजीने जाकर उन्हें पुकारा। उस समय पुत्रके प्रति वात्सल्यस्नेहके कारण उनके स्तनोंमेंसे दूध चुचुआ रहा था॥ १४॥ वे जोर-जोरसे पुकारने लगीं—'मेरे प्यारे कन्हैया! ओ कृष्ण! कमलनयन! श्यामसुन्दर! बेटा! आओ, अपनी माका दूध पी लो। खेलते-खेलते थक गये हो। बेटा! अब बस करो। देखो तो सही, तुम भूखसे दुबले हो रहे हो॥ १५॥ मेरे प्यारे बेटा राम! तुम तो समूचे कुलको आनन्द देनेवाले हो। अपने छोटे भाईको लेकर जल्दीसे आ जाओ तो! देखो, भाई! आज तुमने बहुत सबेरे कलेऊ किया था। अब तो तुम्हें कुछ खाना चाहिये॥१६॥ बेटा बलराम! व्रजराज भोजन करनेके लिये बैठ गये हैं; परन्तु अभीतक तुम्हारी बाट देख रहे हैं। आओ, अब हमें आनन्दित करो। बालको! अब तुमलोग भी अपने-अपने घर जाओ॥ १७॥ बेटा! देखो तो सही, तुम्हारा एक-एक अङ्ग धूलसे लथपथ हो रहा है। आओ, जल्दीसे स्नान कर लो। आज तुम्हारा जन्म-नक्षत्र है। पवित्र होकर ब्राह्मणोंको गोदान करो॥ १८॥ देखो—देखो! तुम्हारे साथियोंको उनकी माताओंने नहला-धुलाकर, मींज-पोंछकर कैसे सुन्दर-सुन्दर गहने पहना दिये हैं। अब तुम भी नहा-धोकर, खा-पीकर, पहन-

* नन्दबाबा इसलिये हँसे कि कन्हैया कहीं यह सोचकर डर न जाय कि जब माने बाँध दिया, तब पिता कहीं आकर पीटने न लगें।

माताने बाँधा और पिताने छोड़ा। भगवान् श्रीकृष्णकी लीलासे यह बात सिद्ध हुई कि उनके स्वरूपमें बन्धन और मुक्तिकी कल्पना करनेवाले दूसरे ही हैं। वे स्वयं न बद्ध हैं, न मुक्त हैं।

ओढ़कर तब खेलना' ॥ १९ ॥ परीक्षित्! माता यशोदाका सम्पूर्ण मन-प्राण प्रेम-बन्धनसे बँधा हुआ था। वे चराचर जगत्के शिरोमणि भगवान्को अपना पुत्र समझतीं और इस प्रकार कहकर एक हाथसे बलराम तथा दूसरे हाथसे श्रीकृष्णको पकड़कर अपने घर ले आयीं। इसके बाद उन्होंने पुत्रके मङ्गलके लिये जो कुछ करना था, वह बड़े प्रेमसे किया ॥ २० ॥

जब नन्दबाबा आदि बड़े-बूढ़े गोपोंने देखा कि महावन-में तो बड़े-बड़े उत्पात होने लगे हैं, तब वे लोग इकट्ठे होकर 'अब व्रजवासियोंको क्या करना चाहिये'—इस विषयपर विचार करने लगे ॥ २१ ॥ उनमेंसे एक गोपका नाम था उपनन्द। वे अवस्थामें तो बड़े थे ही, ज्ञानमें भी बड़े थे। उन्हें इस बातका पता था कि किस समय किस स्थानपर किस वस्तुसे कैसा व्यवहार करना चाहिये। साथ ही वे यह भी चाहते थे कि राम और श्याम सुखी रहें, उनपर कोई विपत्ति न आवे। उन्होंने कहा—॥२२॥ 'भाइयो! अब यहाँ ऐसे बड़े-बड़े उत्पात होने लगे हैं, जो बच्चोंके लिये तो बहुत ही अनिष्टकारी हैं। इसलिये यदि हमलोग गोकुल और गोकुलवासियोंका भला चाहते हैं, तो हमें यहाँसे अपना डेरा-डंडा उठाकर कूच कर देना चाहिये ॥ २३ ॥ देखो, यह सामने बैठा हुआ नन्दरायका लाड़ला सबसे पहले तो बच्चोंके लिये काल-स्वरूपिणी हत्यारी पूतनाके चंगुलसे किसी प्रकार छूटा। इसके बाद भगवान्की दूसरी कृपा यह हुई कि इसके ऊपर उतना बड़ा छकड़ा गिरते-गिरते बचा ॥ २४ ॥ बवंडररूपधारी दैत्यने तो इसे आकाशमें ले जाकर बड़ी भारी विपत्ति (मृत्युके मुख) में ही डाल दिया था, परन्तु वहाँसे जब वह चट्टानपर गिरा, तब भी हमारे कुलके देवेश्वरोंने ही इस बालककी रक्षा की ॥ २५ ॥ यमलार्जुन वृक्षोंके गिरनेके समय उनके बीचमें आकर भी यह या और कोई बालक न मरा। इससे भी यही समझना चाहिये कि भगवान्ने हमारी रक्षा की ॥ २६ ॥ इसलिये जबतक कोई बहुत बड़ा अनिष्टकारी अरिष्ट हमें और हमारे व्रजको नष्ट न कर दे, तबतक ही हमलोग अपने बच्चोंको लेकर अनुचरोंके साथ यहाँसे अन्यत्र चले चलें ॥ २७ ॥ 'वृन्दावन' नामका एक वन है। उसमें छोटे-छोटे और भी बहुत-से नये-नये हरे-भरे वन हैं। वहाँ बड़ा ही पवित्र पर्वत, घास और हरी-भरी लता-वनस्पतियाँ हैं। हमारे पशुओंके लिये तो वह बहुत ही हितकारी है। गोप, गोपी और गायोंके लिये वह केवल सुविधाका ही नहीं, सेवन करनेयोग्य स्थान है ॥ २८ ॥ सो यदि तुम सब लोगोंको यह बात जँचती हो तो आज ही हमलोग वहाँके लिये कूच कर दें। देर न करें, गाड़ी-छकड़े जोतें और पहले गायोंको, जो हमारी एकमात्र सम्पत्ति हैं, वहाँ भेज दें' ॥ २९ ॥

उपनन्दकी बात सुनकर सभी गोपोंने एक स्वरसे कहा—'बहुत ठीक, बहुत ठीक।' इस विषयमें किसीका भी मतभेद न था। सब लोगोंने अपनी झुंड-की-झुंड गायें इकट्ठी कीं और छकड़ोंपर घरकी सब सामग्री लादकर वृन्दावनकी यात्रा की ॥ ३० ॥ परीक्षित्! ग्वालोंने बूढ़ों, बच्चों, स्त्रियों और सब सामग्रियोंको छकड़ोंपर चढ़ा दिया और स्वयं उनके पीछे-पीछे धनुष-बाण लेकर बड़ी साव-धानीसे चलने लगे ॥ ३१ ॥ उन्होंने गौ और बछड़ोंको तो सबसे आगे कर लिया और उनके पीछे-पीछे सींग और तुरही जोर-जोरसे बजाते हुए चले। उनके साथ-ही-साथ पुरोहितलोग भी चल रहे थे ॥ ३२ ॥ गोपियाँ अपने-अपने वक्षःस्थलपर नयी केसर लगाकर, सुन्दर-सुन्दर वस्त्र पहनकर, गलेमें सोनेके हार धारण किये हुए रथोंपर सवार थीं और बड़े आनन्दसे भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंके गीत गाती जाती थीं ॥ ३३ ॥ यशोदारानी और रोहिणीजी भी वैसे ही सज-धजकर अपने-अपने प्यारे पुत्र श्रीकृष्ण तथा बलरामके साथ एक छकड़ेपर शोभायमान हो रही थीं। वे अपने दोनों बालकोंकी तोतली बोली सुन-सुनकर भी अघाती न थीं, और-और सुनना चाहती थीं ॥ ३४ ॥ वृन्दावन बड़ा ही सुन्दर वन है। चाहे कोई भी ऋतु हो, वहाँ सुख-ही-सुख है। उसमें प्रवेश करके ग्वालोंने अपने छकड़ोंको अर्द्धचन्द्राकार मण्डल बाँधकर खड़ा कर दिया और अपने गोधनके रहने योग्य स्थान बना लिया ॥ ३५ ॥ परीक्षित्! वृन्दावनका हरा-भरा वन, अत्यन्त मनोहर गोवर्धन पर्वत और यमुना नदीके सुन्दर-सुन्दर पुलिनोंको देखकर भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीके हृदयमें उत्तम प्रीतिका उदय हुआ ॥ ३६ ॥

राम और श्याम दोनों ही अपनी तोतली बोली और

अत्यन्त मधुर बालोचित लीलाओंसे गोकुलकी ही तरह वृन्दावनमें भी व्रजवासियोंको आनन्द देते रहे। थोड़े ही दिनोंमें समय आनेपर वे बछड़े चराने लगे ॥ ३७ ॥ दूसरे ग्वालबालोंके साथ खेलनेके लिये बहुत-सी सामग्री लेकर वे घरसे निकल पड़ते और गोष्ठ (गायोंके रहनेके स्थान) के पास ही अपने बछड़ोंको चराते ॥ ३८ ॥ श्याम और राम कहीं बाँसुरी बजा रहे हैं, तो कहीं गुलेल या ढेलवाँससे ढेले या गोलियाँ फेंक रहे हैं। किसी समय अपने पैरोंके घुँघरूपर तान छेड़ रहे हैं, तो कहीं बनावटी गाय और बैल बनकर खेल रहे हैं ॥ ३९ ॥ एक ओर देखिये तो साँड़ बन-बनकर हँकड़ते हुए आपसमे लड़ रहे है तो दूसरी ओर मोर, कोयल, बंदर आदि पशु-पक्षियोंकी बोलियाँ निकाल रहे है। परीक्षित्! इस प्रकार सर्वशक्तिमान् भगवान् साधारण बालकोंके समान खेलते रहते ॥ ४० ॥

एक दिनकी बात है, श्याम और बलराम अपने प्रेमी सखा ग्वालबालोंके साथ यमुनातटपर बछड़े चरा रहे थे। उसी समय उन्हें मारनेकी नीयतसे एक दैत्य आया ॥ ४१ ॥ भगवान्‌ने देखा कि वह बनावटी बछड़ेका रूप धारणकर बछड़ोंके झुंडमें मिल गया है। वे आँखोंके इशारेसे बलरामजीको दिखाते हुए धीरे-धीरे उसके पास पहुँच गये। उस समय ऐसा जान पड़ता था, मानो वे दैत्यको तो पहचानते नहीं और उस हट्टे-कट्टे सुन्दर बछड़ेपर मुग्ध हो गये हैं ॥ ४२ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने पूँछके साथ उसके दोनों पिछले पैर पकड़कर आकाशमें घुमाया और मर जानेपर कैथके वृक्षपर पटक दिया। उसका लंबा-तगड़ा दैत्यशरीर बहुत-से कैथके वृक्षोंको गिराकर स्वयं भी गिर पड़ा ॥ ४३ ॥ यह देखकर ग्वालबालोंके आश्चर्यकी सीमा न रही। वे 'वाह-वाह' करके प्यारे कन्हैयाकी प्रशंसा करने लगे। देवता भी बड़े आनन्दसे फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ ४४ ॥

परीक्षित्! जो सारे लोकोंके एकमात्र रक्षक हैं, वे ही श्याम और बलराम अब वत्सपाल (बछड़ोंके चरवाहे) बने हुए हैं। वे तड़के ही उठकर कलेवेकी सामग्री ले लेते और बछड़ोंको चराते हुए एक वनसे दूसरे वनमें घूमा करते ॥ ४५ ॥ एक दिनकी बात है, सब ग्वालबाल अपने झुंड-के-झुंड बछड़ोंको पानी पिलानेके लिये जलाशयके तटपर ले गये। उन्होंने पहले बछड़ोंको जल पिलाया और फिर स्वयं भी पिया ॥ ४६ ॥ ग्वालबालोंने देखा कि वहाँ एक बहुत बड़ा जीव बैठा हुआ है। वह ऐसा मालूम पड़ता था, मानो इन्द्रके वज्रसे कटकर कोई पहाड़का टुकड़ा गिरा हुआ है ॥ ४७ ॥ ग्वालबाल उसे देखकर डर गये। वह 'बक' नामका एक बड़ा भारी असुर था, जो बगुलेका रूप धरके वहाँ आया था। उसकी चोंच बड़ी तीखी थी और वह स्वयं बड़ा बलवान् था। उसने झपटकर श्रीकृष्णको निगल लिया ॥ ४८ ॥ जब बलराम आदि बालकोंने देखा कि वह बड़ा भारी बगुला श्रीकृष्णको निगल गया, तब उनकी वही गति हुई जो प्राण निकल जानेपर इन्द्रियोंकी होती है। वे अचेत हो गये ॥ ४९ ॥ परीक्षित्! श्रीकृष्ण लोकपितामह ब्रह्माके भी पिता हैं। वे लीलासे ही गोपाल-बालक बने हुए हैं। जब वे बगुलेके तालूके नीचे पहुँचे, तब वे आगके समान उसका तालू जलाने लगे। अतः उस दैत्यने श्रीकृष्णके शरीरपर बिना किसी प्रकारका घाव किये ही झटपट उन्हें उगल दिया और फिर बड़े क्रोधसे अपनी कठोर चोंचसे उनपर चोट करनेके लिये टूट पड़ा ॥ ५० ॥ कंसका सखा बकासुर अभी भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्णपर झपट ही रहा था कि उन्होंने अपने दोनों हाथोंसे उसके दोनों ठोर पकड़ लिये और ग्वालबालोंके देखते-देखते खेल-ही-खेलमें उसे वैसे ही चीर डाला, जैसे कोई बीरण (गाँडर, जिसकी जड़का खस होता है) को चीर डाले। इससे देवताओंको बड़ा आनन्द हुआ ॥ ५१ ॥ सभी देवता भगवान् श्रीकृष्णपर नन्दनवनके बेला, चमेली आदिके फूल बरसाने लगे तथा नगारे, शङ्ख आदि बजाकर एवं स्तोत्रोंके द्वारा उनको प्रसन्न करने लगे। यह सब देखकर सब-के-सब ग्वालबाल आश्चर्यचकित हो गये ॥ ५२ ॥ जब बलराम आदि बालकोंने देखा कि श्रीकृष्ण बगुलेके मुँहसे निकलकर हमारे पास आ गये हैं, तब उन्हें ऐसा आनन्द हुआ मानो प्राणोंके सञ्चारसे इन्द्रियाँ सचेत और आनन्दित हो गयी हों। सबने भगवान्‌को अलग-अलग गले लगाया। इसके बाद अपने-अपने बछड़े

हाँककर सब व्रजमें आये और वहाँ उन्होंने घरके लोगोंसे सारी घटना कह सुनायी ॥ ५३ ॥

परीक्षित् ! बकासुरके वधकी घटना सुनकर सब-के-सब गोपी-गोप आश्चर्यचकित हो गये । उन्हें ऐसा जान पड़ा, जैसे कन्हैया साक्षात् मृत्युके मुखसे ही लौटे हों । वे बड़ी उत्सुकता, प्रेम और आदरसे श्रीकृष्णको निहारने लगे । उनके नेत्रोंकी प्यास बढ़ती ही जाती थी, किसी प्रकार उन्हें तृप्ति न होती थी ॥५४॥ वे आपसमे कहने लगे—'हाय ! हाय !! यह कितने आश्चर्यकी बात है । इस बालकको कई बार मृत्युके मुँहमें जाना पड़ा । परन्तु जिन्होने इसका अनिष्ट करना चाहा, उन्हींका अनिष्ट हुआ । क्योंकि उन्होने पहलेसे दूसरोंका अनिष्ट किया था ॥ ५५ ॥ यह सब होनेपर भी वे भयङ्कर असुर इसका कुछ भी नहीं बिगाड़ पाते । आते हैं इसे मार डालनेकी नीयतसे, किन्तु आगपर गिरकर पतिंगोंकी तरह उलटे स्वयं स्वाहा हो जाते हैं ॥ ५६ ॥ सच है, ब्रह्मवेत्ता महात्माओंके वचन कभी झूठे नहीं होते । देखो न, महात्मा गर्गाचार्यने जितनी बातें कही थीं, सब-की-सब सोलहों आने ठीक उतर रही हैं' ॥ ५७ ॥ नन्दबाबा आदि गोपगण इसी प्रकार बड़े आनन्दसे अपने श्याम और रामकी बातें किया करते । वे उनमे इतने तन्मय रहते कि उन्हें ससारके दुःख-सङ्कटोंका कुछ पता ही न चलता ॥५८॥ इसी प्रकार श्याम और बलराम ग्वालबालोंके साथ कभी आँखमिचौनी खेलते, तो कभी पुल बाँधते । कभी बंदरोंकी भाँति उछलते-कूदते, तो कभी और कोई विचित्र खेल करते । इस प्रकारके बालोचित खेलोंसे उन दोनोंने व्रजमें अपनी बाल्यावस्था व्यतीत की ॥ ५९ ॥

बारहवाँ अध्याय

अघासुरका उद्धार

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! एक दिन नन्दनन्दन श्यामसुन्दर वनमें ही कलेवा करनेके विचारसे बड़े तड़के उठ गये और सींगकी मधुर मनोहर ध्वनिसे अपने साथी ग्वालबालोंको मनकी बात जनाते हुए उन्हें जगाया और बछड़ोंको आगे करके वे व्रजमण्डलसे निकल पड़े ॥ १ ॥ श्रीकृष्णके साथ ही उनके प्रेमी सहस्रों ग्वालबाल सुन्दर छींके, बेत, सींग और बाँसुरी लेकर तथा अपने सहस्रों बछड़ोंको आगे करके बड़ी प्रसन्नतासे अपने-अपने घरोंसे चल पड़े ॥ २ ॥ उन्होंने श्रीकृष्णके अगणित बछड़ोंमें अपने-अपने बछड़े मिला दिये और स्थान-स्थानपर बालोचित खेल खेलते हुए विचरने लगे ॥ ३ ॥ यद्यपि सब-के-सब ग्वालबाल काँच, घुँघची, मणि और सुवर्णके गहने पहने हुए थे, फिर भी उन्होंने वृन्दावनके लाल-पीले-हरे फलोंसे, नयी-नयी कोंपलोंसे, गुच्छोंसे, रग-बिरगे फूलों और मोरपखोंसे तथा गेरू आदि रगीन धातुओंसे अपनेको सजा लिया ॥ ४ ॥ कोई किसीका छींका चुरा लेता, तो कोई किसीकी बेत या बाँसुरी । जब उन वस्तुओंके स्वामी-को पता चलता, तब उन्हें लेनेवाला किसी दूसरेके पास दूर फेंक देता, दूसरा तीसरेके और तीसरा और भी दूर चौथेके पास । फिर वे हँसते हुए उन्हें लौटा देते ॥ ५ ॥ यदि श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण वनकी शोभा देखनेके लिये कुछ आगे बढ़ जाते, तो 'पहले मैं छुऊँगा, पहले मैं छुऊँगा'—इस प्रकार आपसमे होड़ लगाकर सब-के सब उनकी ओर दौड़ पड़ते और उन्हें छू-छूकर आनन्दमग्न हो जाते ॥ ६ ॥ कोई बाँसुरी बजा रहा है, तो कोई सींग ही फूँक रहा है । कोई-कोई भौंरोंके साथ गुनगुना रहे हैं, तो बहुत-से कोयलोंके स्वरमें स्वर मिलाकर 'कुहू-कुहू' कर रहे हैं ॥ ७ ॥ एक ओर कुछ ग्वालबाल आकाशमें उड़ते हुए पक्षियोंकी छायाके साथ दौड़ लगा रहे हैं, तो दूसरी ओर कुछ हंसोंकी चालकी नकल करते हुए उनके साथ सुन्दर गतिसे चल रहे हैं । कोई बगुलेके पास उसीके समान आँखे मूँदकर बैठ रहे है, तो कोई मोरोंको नाचते देख उन्हींकी तरह नाच रहे हैं ॥ ८ ॥ कोई-कोई बंदरोंकी पूँछ पकड़कर खींच रहे हैं, तो दूसरे उनके साथ इस पेड़से उस पेड़पर चढ़ रहे हैं । कोई-

कोई उनके साथ मुँह बना रहे हैं, तो दूसरे उनके साथ एक डालसे दूसरी डालपर छलाँग मार रहे हैं ॥ ९ ॥ बहुत-से ग्वालबाल तो नदीके कछारमें छपका खेल रहे हैं और उसमें फुदकते हुए मेंढकोंके साथ स्वयं भी फुदक रहे हैं। कोई पानीमें अपनी परछाईं देखकर उसकी हँसी कर रहे हैं, तो दूसरे अपने शब्दकी प्रतिध्वनिको ही बुरा-भला कह रहे हैं ॥ १० ॥ भगवान् श्रीकृष्ण ज्ञानी संतोंके लिये स्वयं ब्रह्मानन्दके मूर्तिमान् अनुभव हैं। दास्यभावसे युक्त भक्तोंके लिये वे उनके आराध्यदेव, परम ऐश्वर्यशाली परमेश्वर हैं। और माया-मोहित विषयान्धोंके लिये वे केवल एक मनुष्य-बालक हैं। उन्हीं भगवान्‌के साथ वे महान् पुण्यात्मा ग्वालबाल तरह-तरहके खेल खेल रहे हैं ॥११॥ बहुत जन्मोंतक श्रम और कष्ट उठाकर जिन्होंने अपनी इन्द्रियों और अन्तःकरणको वशमें कर लिया है, उन योगियोंके लिये भी भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी रज अप्राप्य है। वही भगवान् स्वयं जिन व्रजवासी ग्वालबालोंकी आँखोंके सामने रहकर सदा खेल खेलते हैं, उनके सौभाग्यकी महिमा इससे अधिक क्या कही जाय ॥१२॥

परीक्षित्! इसी समय अघासुर नामका महान् दैत्य आ धमका। उससे श्रीकृष्ण और ग्वालबालोंकी सुखमयी क्रीडा देखी न गयी। उसके हृदयमें जलन होने लगी। वह इतना भयङ्कर था कि अमृतपान करके अमर हुए देवता भी उससे अपने जीवनकी रक्षा करनेके लिये चिन्तित रहा करते थे और इस बातकी बाट देखते रहते थे कि किसी प्रकारसे इसकी मृत्युका अवसर आ जाय ॥ १३ ॥ अघासुर पूतना और बकासुरका छोटा भाई तथा कंसका भेजा हुआ था। वह श्रीकृष्ण, श्रीदामा आदि ग्वालबालोंको देखकर मन-ही-मन सोचने लगा कि 'यही मेरे सगे भाई और बहिनको मारनेवाला है। इसलिये आज मैं इन ग्वालबालोंके साथ इसे मार डालूँगा ॥१४॥ जब ये सब मरकर मेरे उन दोनों भाई-बहिनोंके मृत-तर्पणकी तिलाञ्जलि बन जायँगे, तब व्रजवासी अपने-आप मरे-जैसे हो जायँगे। सन्तान ही प्राणियोंके प्राण हैं। जब प्राण ही न रहेंगे, तब शरीर कैसे रहेगा? इसकी मृत्युसे व्रजवासी अपने-आप मर जायँगे' ॥१५॥ ऐसा निश्चय करके वह दुष्ट दैत्य अजगरका रूप धारण कर मार्गमें लेट गया। उसका वह अजगर-शरीर एक योजन लंबे बड़े पर्वतके समान विशाल एवं मोटा था। वह बहुत ही अद्भुत था। उसकी नीयत सब बालकोंको निगल जानेकी थी, इसलिये उसने गुफाके समान अपना बहुत बड़ा मुँह फाड़ रक्खा था ॥ १६ ॥ उसका नीचेका होठ पृथ्वीसे और ऊपरका होठ बादलोंसे लग रहा था। उसके जबड़े कन्दराओंके समान थे और दाढ़ें पर्वतके शिखर-सी जान पड़ती थीं। मुँहके भीतर घोर अन्धकार था। जीभ एक चौड़ी लाल सड़क सी दीखती थी। साँस आँधीके समान थी और आँखें दावानलके समान दहक रही थीं ॥ १७ ॥

अघासुरका ऐसा रूप देखकर बालकोंने समझा कि यह भी वृन्दावनकी कोई शोभा है। वे कौतुकवश खेल-ही-खेलमें उत्प्रेक्षा करने लगे कि यह मानो अजगरका खुला हुआ मुँह है ॥१८॥ कोई कहता—मित्रो! भला, बतलाओ तो, यह जो हमारे सामने कोई जीव-सा बैठा है, यह हमें निगलनेके लिये खुले हुए किसी अजगरके मुँह-जैसा नहीं है?' ॥१९॥ दूसरेने कहा—'सचमुच सूर्यकी किरणें पड़नेसे ये जो बादल लाल-लाल हो गये हैं, वे ऐसे मालूम होते हैं मानो ठीक-ठीक इसका ऊपरी होठ ही हो। और उन्हीं बादलोंकी परछाईंसे यह जो नीचेकी भूमि कुछ लाल-लाल दीख रही है, वही इसका नीचेका होठ जान पड़ता है' ॥२०॥ तीसरे ग्वालबालने कहा—'हाँ, सच तो है। देखो तो सही, क्या ये दायीं और बायीं ओरकी गिरि-कन्दराएँ अजगरके जबड़ोंकी होड़ नहीं करतीं? और ये ऊँची-ऊँची शिखर-पङ्क्तियाँ तो साफ-साफ इसकी दाढ़ें मालूम पड़ती हैं' ॥२१॥ चौथेने कहा—'अरे भाई! यह लंबी-चौड़ी सड़क तो ठीक अजगरकी जीभ-सरीखी मालूम पड़ती है और इन गिरि-शृङ्गोंके बीचका अन्धकार तो उसके मुँहके भीतरी भागको भी मात करता है' ॥२२॥ किसी दूसरे ग्वालबालने कहा—'देखो, देखो! ऐसा जान पड़ता है कि कहीं इधर जंगलमें आग लगी है। इसीसे यह गरम और तीखी हवा आ रही है। परन्तु अजगरकी साँसके साथ इसका क्या ही मेल बैठ गया है। और उसी आगमें जले हुए प्राणियोंकी दुर्गन्ध ऐसी जान पड़ती है, मानो अजगरके

पेटमें मरे हुए जीवोंके मांसकी ही दुर्गन्ध हो' ॥ २३ ॥ तब उन्हींमेंसे एकने कहा—'यदि हमलोग इसके मुँहमें घुस जायँ, तो क्या यह हमें निगल जायगा ? अजी ! यह क्या निगलेगा । कहीं ऐसा करनेकी ढिठाई की तो एक क्षणमें यह भी बकासुरके समान नष्ट हो जायगा । हमारा यह कन्हैया इसको छोड़ेगा थोड़े ही !' इस प्रकार कहते हुए वे ग्वालबाल बकासुरको मारनेवाले श्रीकृष्णका सुन्दर मुख देखते और ताली पीट-पीटकर हँसते हुए अघासुरके मुँहमें घुस गये ॥ २४ ॥ उन अनजान बच्चोंकी आपसमें की हुई भ्रमपूर्ण बातें सुनकर भगवान् श्रीकृष्णने सोचा कि 'अरे, इन्हें तो सच्चा सर्प भी झूठा प्रतीत होता है !' परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्ण जान गये कि यह राक्षस है । भला, उनसे क्या छिपा रहता ? वे तो समस्त प्राणियोंके हृदयमें ही निवास करते हैं । अब उन्होंने यह निश्चय किया कि अपने सखा ग्वाल-बालोंको उसके मुँहमें जानेसे बचा लें ॥ २५ ॥ भगवान् इस प्रकार सोच ही रहे थे कि सब-के-सब ग्वालबाल बछड़ोंके साथ उस असुरके पेटमें चले गये । परन्तु अघासुरने अभी उन्हें निगला नहीं । इसका कारण यह था कि अघासुर अपने भाई बकासुर और बहिन पूतनाके वधकी याद करके इस बातकी बाट देख रहा था कि उनको मारनेवाले श्रीकृष्ण मुँहमें आ जायँ, तब सबको एक साथ ही निगल जाऊँ ॥ २६ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण सबको अभय देनेवाले हैं । जब उन्होंने देखा कि ये बेचारे ग्वालबाल—जिनका एकमात्र रक्षक मैं ही हूँ—मेरे हाथसे निकल गये और जैसे कोई तिनका उड़कर आगमें गिर पड़े, वैसे ही अपने-आप मृत्युरूप अघासुरकी जठराग्निके ग्रास बन गये, तब दैवकी इस विचित्र लीलापर भगवान्‌को बड़ा विस्मय हुआ और उनका हृदय दयासे द्रवित हो गया ॥ २७ ॥ वे सोचने लगे कि 'अब मुझे क्या करना चाहिये ? ऐसा कौन-सा उपाय है, जिससे इस दुष्टकी मृत्यु भी हो जाय और इन संत-स्वभाव भोले-भाले बालकोंकी हत्या भी न हो ? ये दोनों काम कैसे हो सकते हैं ?' परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्ण भूत, भविष्य, वर्तमान—सबको प्रत्यक्ष देखते रहते हैं । उनके लिये यह उपाय जानना कोई कठिन न था । वे अपना कर्तव्य निश्चय करके स्वयं उसके मुँहमें घुस गये ॥ २८ ॥ उस समय बादलोंमें छिपे हुए देवता भयवश 'हाय-हाय' पुकार उठे और अघासुरके हितैषी कंस आदि राक्षस हर्ष प्रकट करने लगे ॥ २९ ॥

अघासुर बछड़ों और ग्वालबालोंके सहित भगवान् श्रीकृष्णको अपनी डाढ़ोंसे चबाकर चूर-चूर कर डालना चाहता था । परन्तु उसी समय अविनाशी श्रीकृष्णने देवताओंकी 'हाय-हाय' सुनकर उसके गलेमें अपने शरीरको बड़ी फुर्तीसे बढ़ा लिया ॥ ३० ॥ इसके बाद भगवान्‌ने अपने शरीरको इतना बड़ा कर लिया कि उसका गला ही रुँध गया । आँखें उलट गयीं । वह व्याकुल होकर बहुत ही छटपटाने लगा । साँस रुककर सारे शरीरमें भर गयी और अन्तमे उसके प्राण ब्रह्मरन्ध्र फोड़कर निकल गये ॥ ३१ ॥ उसी मार्गसे प्राणोंके साथ उसकी सारी इन्द्रियाँ भी शरीरसे बाहर हो गयीं । उसी समय भगवान् मुकुन्दने अपनी अमृतमयी दृष्टिसे मरे हुए बछड़ों और ग्वालबालोंको जिला दिया और उन सबको साथ लेकर वे अघासुरके मुँहसे बाहर निकल आये ॥ ३२ ॥ उस अजगरके स्थूल शरीरसे एक अत्यन्त अद्भुत और महान् ज्योति निकली । उस समय उस ज्योतिके प्रकाशसे दसों दिशाएँ प्रज्वलित हो उठीं । वह थोड़ी देरतक तो आकाशमें स्थित होकर भगवान्‌के निकलनेकी प्रतीक्षा करती रही । जब वे बाहर निकल आये, तब वह सब देवताओंके देखते-देखते उन्हींमें समा गयी ॥ ३३ ॥ उस समय देवताओंने फूल बरसाकर, अप्सराओंने नाचकर, गन्धर्वोंने गाकर, विद्याधरोंने बाजे बजाकर, ब्राह्मणोंने स्तुति-पाठकर और पार्षदोंने जय-जयकारके नारे लगाकर बड़े आनन्दसे भगवान् श्रीकृष्णका अभिनन्दन किया । क्योंकि भगवान् श्रीकृष्णने अघासुरको मारकर उन सबका बहुत बड़ा काम किया था ॥ ३४ ॥ उन अद्भुत स्तुतियों, सुन्दर बाजों, मङ्गलमय गीतों, जय-जयकार और आनन्दोत्सवोंकी मङ्गलध्वनि ब्रह्मलोकके पास पहुँच गयी । जब ब्रह्माजीने वह ध्वनि सुनी, तब वे बहुत ही शीघ्र अपने वाहनपर चढ़कर वहाँ आये और भगवान् श्रीकृष्णकी यह महिमा देखकर आश्चर्यचकित हो गये ॥ ३५ ॥ परीक्षित् ! जब वृन्दावनमें अजगरका वह चाम सूख गया, तब वह व्रजवासियोंके लिये बहुत दिनोंतक खेलनेकी

एक अद्भुत गुफा-सी बना रहा ॥ ३६ ॥ यह जो भगवान्‌ने अपने ग्वालबालोंको मृत्युके मुखसे बचाया था और अघासुरको मोक्ष-दान किया था, वह लीला भगवान्‌ने अपनी कुमार-अवस्थामें अर्थात् पाँचवें वर्षमे ही की थी। ग्वालबालोंने उसे उसी समय देखा भी था, परन्तु पौगण्ड-अवस्था अर्थात् छठे वर्षमें अत्यन्त आश्चर्यचकित होकर व्रजमें उसका वर्णन किया ॥ ३७ ॥ अघासुर मूर्तिमान् अघ (पाप) ही था। भगवान्‌के स्पर्शमात्रसे उसके सारे पाप धुल गये और उसे उस सारूप्य-मुक्तिकी प्राप्ति हुई, जो पापियोंको कभी मिल नहीं सकती। परन्तु यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। क्योंकि मनुष्य-बालककी-सी लीला रचनेवाले ये वे ही परमपुरुष परमात्मा हैं, जो व्यक्त-अव्यक्त और कार्य-कारणरूप समस्त जगत्‌के एकमात्र विधाता हैं ॥ ३८ ॥ भगवान् श्रीकृष्णके किसी एक अङ्गकी भावनिर्मित प्रतिमा यदि ध्यानके द्वारा एक बार भी हृदयमें बैठा ली जाय, तो वह सालोक्य, सामीप्य आदि गतिका दान करती है, जो भगवान्‌के बड़े-बड़े भक्तोंको मिलती है। भगवान् आत्मानन्दके नित्य साक्षात्कारस्वरूप हैं। माया उनके पासतक नहीं फटक पाती। वे ही स्वयं अघासुरके शरीरमें प्रवेश कर गये। क्या अब भी उसकी सद्गतिके विषयमे कोई सन्देह है? ॥ ३९ ॥

सूतजी कहते हैं—शौनकादि ऋषियो! यदुवंश-शिरोमणि भगवान् श्रीकृष्णने ही राजा परीक्षित्‌को जीवन-दान दिया था। उन्होंने जब अपने रक्षक एवं जीवनसर्वस्वका यह विचित्र चरित्र सुना, तब उन्होंने फिर श्रीशुकदेवजी महाराजसे उन्हींकी पवित्र लीलाके सम्बन्धमें प्रश्न किया। इसका कारण यह था कि भगवान्‌की अमृतमयी लीलाने परीक्षित्‌के चित्तको अपने वशमें कर रक्खा था ॥ ४० ॥

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन्! आपने कहा था कि ग्वालबालोंने भगवान्‌की की हुई पाँचवें वर्षकी लीला व्रजमें छठे वर्षमे जाकर कही। अब इस विषयमें आप कृपा करके यह बतलाइये कि एक समयकी लीला दूसरे समयमें वर्तमानकालीन कैसे हो सकती है? ॥ ४१ ॥ महायोगी गुरुदेव! मुझे इस आश्चर्यपूर्ण रहस्यको जाननेके लिये बड़ा कौतूहल हो रहा है। आप कृपा करके बतलाइये। अवश्य ही इसमें भगवान् श्रीकृष्णकी विचित्र घटनाओंको घटित करनेवाली मायाका कुछ-न-कुछ काम होगा। क्योंकि और किसी प्रकार ऐसा नहीं हो सकता ॥ ४२ ॥ गुरुदेव! यद्यपि क्षत्रियोचित धर्म ब्राह्मण-सेवासे विमुख होनेके कारण मैं अपराधी नाममात्रका क्षत्रिय हूँ, तथापि हमारा अहोभाग्य है कि हम आपके मुखारविन्दसे निरन्तर झरते हुए परम पवित्र मधुमय श्रीकृष्णलीलामृतका बार-बार पान कर रहे हैं ॥ ४३ ॥

सूतजी कहते हैं—भगवान्‌के परम प्रेमी भक्तोंमें श्रेष्ठ शौनकजी! जब राजा परीक्षित्‌ने इस प्रकार प्रश्न किया, तब श्रीशुकदेवजीको भगवान्‌की वह लीला स्मरण हो आयी। और उनकी समस्त इन्द्रियाँ तथा अन्तःकरण विवश होकर भगवान्‌की नित्यलीलामें खिंच गये। कुछ समयके बाद धीरे-धीरे श्रम और कष्टसे उन्हें बाह्यज्ञान हुआ। तब वे परीक्षित्‌से भगवान्‌की लीलाका वर्णन करने लगे ॥ ४४ ॥

तेरहवाँ अध्याय

ब्रह्माजीका मोह और उसका नाश

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! तुम बड़े भाग्यवान् हो। भगवान्‌के प्रेमी भक्तोंमें तुम्हारा स्थान श्रेष्ठ है। तभी तो तुमने इतना सुन्दर प्रश्न किया है। यों तो तुम्हें बार-बार भगवान्‌की लीला-कथाएँ सुननेको मिलती हैं, फिर भी तुम उनके सम्बन्धमे प्रश्न करके उन्हें और भी सरस—और भी नूतन बना देते हो ॥ १ ॥ रसिक संतोंकी वाणी, कान और हृदय भगवान्‌की लीलाके गान, श्रवण और चिन्तनके लिये ही होते हैं—उनका यह स्वभाव ही होता है कि वे क्षण-प्रतिक्षण भगवान्‌की लीलाओंको अपूर्व रसमयी और नित्य-नूतन अनुभव करते रहें। ठीक वैसे ही, जैसे लम्पट पुरुषोंको स्त्रियोंकी चर्चामें नया-नया रस जान

पड़ता है ॥ २ ॥ परीक्षित् ! तुम एकाग्र चित्तसे श्रवण करो। यद्यपि भगवान्‌की यह लीला अत्यन्त रहस्यमयी है, फिर भी मैं तुम्हें सुनाता हूँ। क्योंकि दयालु आचार्य-गण अपने प्रेमी शिष्यको गुप्त रहस्य भी बतला दिया करते हैं ॥ ३ ॥ यह तो मैं तुमसे कह ही चुका हूँ कि भगवान् श्रीकृष्णने अपने साथी ग्वालबालोंको मृत्यु-रूप अघासुरके मुँहसे बचा लिया। इसके बाद वे उन्हें यमुनाके पुलिनपर ले आये और उनसे कहने लगे—॥ ४॥ 'मेरे प्यारे मित्रो! यमुनाजीका यह पुलिन अत्यन्त रमणीय है। देखो तो सही, यहाँकी बालू कितनी कोमल और स्वच्छ है! हमलोगोंके लिये खेलनेकी तो यहाँ सभी सामग्री विद्यमान है। देखो, एक ओर रंग-बिरंगे कमल खिले हुए हैं और उनकी सुगन्धसे खिंचकर भौंरे गुंजार कर रहे हैं; तो दूसरी ओर सुन्दर-सुन्दर पक्षी बड़ा ही मधुर कलरव कर रहे हैं, जिसकी प्रतिध्वनिसे सुशोभित वृक्ष इस स्थानकी शोभा बढ़ा रहे हैं ॥ ५ ॥ अब हमलोगोंको यहाँ भोजन कर लेना चाहिये। क्योंकि दिन बहुत चढ़ आया है और हमलोग भूखसे पीड़ित हो रहे हैं। बछड़े पानी पीकर समीप ही धीरे-धीरे हरी-हरी घास चरते रहें' ॥ ६ ॥

ग्वालबालोंने एक स्वरसे कहा—'ठीक है, ठीक है!' उन्होंने बछड़ोंको पानी पिलाकर हरी-हरी घासमें छोड़ दिया और अपने-अपने छींके खोल-खोलकर भगवान्‌के साथ बड़े आनन्दसे भोजन करने लगे ॥ ७ ॥ सबके बीचमें भगवान् श्रीकृष्ण बैठ गये। उनके चारों ओर ग्वालबालोंने बहुत-सी मण्डलाकार पंक्तियाँ बना लीं और एक-से-एक सटकर बैठ गये। सबके मुँह श्रीकृष्णकी ओर थे और सबकी आँखें आनन्दसे खिल रही थीं। वन-भोजनके समय श्रीकृष्णके साथ बैठे हुए ग्वालबाल ऐसे शोभायमान हो रहे थे, मानो कमलकी कर्णिकाके चारों ओर उसकी छोटी-बड़ी पँखुड़ियाँ सुशोभित हो रही हों ॥ ८ ॥ कोई पुष्प तो कोई पत्ते और कोई-कोई पल्लव, अंकुर, फल, छींके, छाल एवं पत्थरोंके पात्र बनाकर भोजन करने लगे ॥ ९ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण और ग्वालबाल सभी परस्पर अपनी-अपनी भिन्न-भिन्न रुचिका प्रदर्शन करते। कोई किसीको हँसा देता, तो कोई स्वयं ही हँसते-हँसते लोट पोट हो जाता। इस प्रकार वे सब भोजन करने लगे ॥ १० ॥ (उस समय श्रीकृष्णकी छटा सबसे निराली थी।) उन्होंने मुरलीको तो कमरकी फेंटमें आगेकी ओर खोंस लिया था। सींग और बेंत बगलमें दबा लिये थे। बायें हाथमें बड़ा ही मधुर घृतमिश्रित दही-भातका ग्रास था और अँगुलियोंमें अदरक, नीबू आदिके अचार-मुरब्बे दबा रक्खे थे। ग्वालबाल उनको चारों ओरसे घेरकर बैठे हुए थे और वे स्वय सबके बीचमें बैठकर अपनी विनोदभरी बातोंसे अपने साथी ग्वालबालोंको हँसाते जा रहे थे। जो समस्त यज्ञोंके एकमात्र भोक्ता हैं, वे ही भगवान् ग्वाल-बालोंके साथ बैठकर इस प्रकार बाल-लीला करते हुए भोजन कर रहे थे और स्वर्गके देवता आश्चर्यचकित होकर यह अद्भुत लीला देख रहे थे ॥ ११ ॥

भरतवंशशिरोमणे! इस प्रकार भोजन करते-करते ग्वालबाल भगवान्‌की इस रसमयी लीलामें तन्मय हो गये। उसी समय उनके बछड़े हरी-हरी घासके लालचसे घोर जंगलमें बड़ी दूर निकल गये ॥ १२ ॥ जब ग्वालबालों-का ध्यान उस ओर गया, तब तो वे भयभीत हो गये। उस समय अपने भक्तोंके भयको भगा देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'मेरे प्यारे मित्रो! तुमलोग भोजन करना बंद मत करो। मैं अभी बछड़ोंको लिये आता हूँ' ॥ १३ ॥ ग्वालबालोंसे इस प्रकार कहकर भगवान् श्रीकृष्ण हाथमें दही-भातका कौर लिये ही पहाड़ों, गुफाओं, कुञ्जों एवं अन्यान्य भयङ्कर स्थानोंमें अपने तथा साथियोंके बछड़ोंको ढूँढ़ने चल दिये ॥ १४ ॥ परीक्षित्! ब्रह्माजी पहलेसे ही आकाशमें उपस्थित थे। प्रभुके प्रभावसे अघासुरका मोक्ष देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने सोचा कि लीलासे मनुष्य-बालक बने हुए भगवान् श्रीकृष्णकी कोई और मनोहर महिमामयी लीला देखनी चाहिये। ऐसा सोचकर उन्होंने पहले तो बछड़ोंको, और भगवान् श्रीकृष्णके चले जानेपर ग्वालबालोंको भी, अन्यत्र ले जाकर रख दिया और स्वयं अन्तर्धान हो गये, अन्ततः वे जड कमलकी ही तो सन्तान हैं ॥ १५ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण बछड़े न मिलनेपर यमुनाजीके पुलिनपर लौट आये, परन्तु यहाँ क्या देखते हैं कि

ग्वालबाल भी नहीं हैं। तब उन्होंने वनमें घूम-घूमकर चारों ओर उन्हें ढूँढ़ा ॥ १६ ॥ परन्तु जब ग्वालबाल और बछड़े उन्हें कहीं न मिले, तब वे तुरंत जान गये कि यह सब ब्रह्माकी करतूत है। वे तो सारे विश्वके एकमात्र ज्ञाता हैं ॥ १७ ॥ अब भगवान् श्रीकृष्णने बछड़ों और ग्वालबालोंकी माताओंको तथा ब्रह्माजीको भी आनन्दित करनेके लिये अपने-आपको ही बछड़ों और ग्वालबालों—दोनोंके रूपमें बना लिया*। क्योंकि वे ही तो सम्पूर्ण विश्वके कर्ता सर्वशक्तिमान् ईश्वर हैं ॥ १८ ॥ परीक्षित्! वे बालक और बछड़े संख्यामें जितने थे, जितने छोटे-छोटे उनके शरीर थे, उनके हाथ-पैर जैसे-जैसे थे, उनके पास जितनी और जैसी छड़ियाँ, सींग, बाँसुरी, पत्ते और छींके थे, जैसे और जितने वस्त्राभूषण थे, उनके शील, स्वभाव, गुण, नाम, रूप और अवस्थाएँ जैसी थीं, जिस प्रकार वे खाते-पीते और चलते थे, ठीक वैसे ही और उतने ही रूपोंमें सर्वस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हो गये। उस समय 'यह सम्पूर्ण जगत् विष्णुरूप है'—यह वेदवाणी मानो मूर्तिमती होकर प्रकट हो गयी ॥ १९ ॥ सर्वात्मा भगवान् स्वयं ही बछड़े बन गये और स्वयं ही ग्वालबाल। अपने आत्मस्वरूप बछड़ोंको अपने आत्मस्वरूप ग्वालबालोंके द्वारा घेरकर अपने ही साथ अनेकों प्रकारके खेल खेलते हुए उन्होंने व्रजमें प्रवेश किया ॥ २० ॥ परीक्षित्! जिस ग्वालबालके जो बछड़े थे, उन्हें उसी ग्वालबालके रूपसे अलग-अलग ले जाकर उसकी बाखलमें घुसा दिया और विभिन्न बालकोंके रूपमें उनके भिन्न-भिन्न घरोंमें चले गये ॥ २१ ॥

ग्वालबालोंकी माताएँ बाँसुरीकी तान सुनते ही जल्दी-से दौड़ आयीं। ग्वालबाल बने हुए परब्रह्म श्रीकृष्णको अपने बच्चे समझकर हाथोंसे उठाकर उन्होंने जोरसे हृदयसे लगा लिया। वे अपने स्तनोंसे वात्सल्य-स्नेहकी अधिकताके कारण सुधासे भी मधुर और आसवसे भी मादक चुचुवाता हुआ दूध उन्हें पिलाने लगीं ॥ २२ ॥ परीक्षित्! इसी प्रकार प्रतिदिन सन्ध्यासमय भगवान् श्रीकृष्ण उन ग्वालबालोंके रूपमें वनसे लौट आते और अपनी बालसुलभ लीलाओंसे माताओंको आनन्दित करते। वे माताएँ उन्हें उबटन लगातीं, नहलातीं, चन्दनका लेप करतीं और अच्छे-अच्छे वस्त्रों तथा गहनोंसे सजातीं। दोनों भौंहोंके बीचमें डीठसे बचानेके लिये काजलका डिठौना लगा देतीं तथा भोजन करातीं और तरह-तरहसे बड़े लाड़-प्यारसे उनका लालन पालन करतीं ॥ २३ ॥ ग्वालिनोंके समान गौएँ भी जब जंगलोंमेंसे चरकर जल्दी-जल्दी लौटतीं और उनकी हुंकार सुनकर उनके प्यारे बछड़े दौड़कर उनके पास आ जाते, तब वे बार-बार उन्हें अपनी जीभसे चाटतीं और अपना दूध पिलातीं। उस समय स्नेहकी अधिकताके कारण उनके थनोंसे स्वयं ही दूधकी धारा बहने लगती ॥ २४ ॥ इन गायों और ग्वालिनोंका मातृभाव पहले-जैसा ही ऐश्वर्यज्ञानरहित और विशुद्ध था। हाँ, अपने असली पुत्रोंकी अपेक्षा इस समय उनका स्नेह अवश्य अधिक था। इसी प्रकार भगवान् भी उनके पहले पुत्रोंके समान ही पुत्रभाव दिखला रहे थे, परन्तु भगवान्‌में उन बालकों-के-जैसा मोहका भाव नहीं था कि मैं इनका पुत्र हूँ ॥ २५ ॥ अपने-अपने बालकोंके प्रति व्रजवासियोंकी स्नेह-लता दिन-प्रतिदिन एक वर्षतक धीरे-धीरे बढ़ती ही गयी। यहाँतक कि पहले श्रीकृष्णमें उनका जैसा असीम और अपूर्व प्रेम था, वैसा ही अपने इन बालकोंके प्रति भी हो गया ॥ २६ ॥ इस प्रकार सर्वात्मा श्रीकृष्ण बछड़े और ग्वालबालोंके बहाने गोपाल बनकर अपने बालकरूपसे वत्सरूपका पालन करते हुए एक वर्षतक वन और गोष्ठमें क्रीडा करते रहे ॥ २७ ॥

जब एक वर्ष पूरा होनेमें पाँच-छः रातें शेष थीं, तब एक दिन भगवान् श्रीकृष्ण बलरामजीके साथ बछड़ों-को चराते हुए वनमें गये ॥ २८ ॥ उस समय गौएँ गोवर्धनकी चोटीपर घास चर रही थीं। वहाँसे उन्होंने व्रजके पास ही घास चरते हुए बहुत दूर अपने बछड़ोंको देखा ॥ २९ ॥ बछड़ोंको देखते ही गौओंका वात्सल्य-स्नेह उमड़ आया। वे अपने-

* भगवान् सर्वसमर्थ हैं। वे ब्रह्माजीके चुराये हुए ग्वालबाल और बछड़ोंको ला सकते थे। किन्तु इससे ब्रह्माजीका मोह दूर न होता और वे भगवान्‌की उस दिव्य मायाका ऐश्वर्य न देख सकते, जिसने उनके विश्वकर्ता होनेके अभिमानको नष्ट किया। इसीलिये भगवान् उन्हीं ग्वालबाल और बछड़ोंको न लाकर स्वयं ही वैसे ही एवं उतने ही ग्वालबाल और बछड़े बन गये।

आपकी सुध-बुध खो बैठीं और ग्वालोंके रोकनेकी कुछ भी परवा न कर जिस मार्गसे वे न जा सकते थे, उस मार्गसे हुंकार करती हुई बड़े वेगसे दौड़ पड़ीं। उस समय उनके थनोंसे दूध बहता जाता था और उनकी गरदनें सिकुड़कर डीलसे मिल गयी थीं। वे पूँछ तथा सिर उठाकर इतने वेगसे दौड़ रही थीं कि मालूम होता था मानो उनके दो ही पैर हैं॥ ३०॥ जिन गौओंके और भी बछड़े हो चुके थे, वे भी गोवर्धनके नीचे अपने पहले बछड़ोंके पास दौड़ आयीं और उन्हें स्नेहवश अपने-आप बहता हुआ दूध पिलाने लगीं। उस समय वे अपने बच्चोंका एक-एक अङ्ग ऐसे चावसे चाट रही थीं, मानो उन्हें अपने पेटमें रख लेंगी॥ ३१॥ गोपोंने उन्हें रोकनेका बहुत कुछ प्रयत्न किया, परन्तु उनका सारा प्रयत्न व्यर्थ रहा। उन्हें अपनी विफलतापर कुछ लज्जा और गायोंपर बड़ा क्रोध आया। जब वे बहुत कष्ट उठाकर उस कठिन मार्गसे उस स्थानपर पहुँचे, तब उन्होंने बछड़ोंके साथ अपने बालकोंको भी देखा॥ ३२॥ अपने बच्चोंको देखते ही उनका हृदय प्रेम-रससे सराबोर हो गया। बालकोंके प्रति अनुरागकी बाढ़ आ गयी, उनका क्रोध न जाने कहाँ हवा हो गया। उन्होंने अपने-अपने बालकोंको गोदमें उठाकर हृदयसे लगा लिया और उनका मस्तक सूँघकर अत्यन्त आनन्दित हुए॥ ३३॥ बूढ़े गोपोंको अपने बालकोंके आलिङ्गनसे परम आनन्द प्राप्त हुआ। वे निहाल हो गये। फिर बड़े कष्टसे उन्हें छोड़कर धीरे-धीरे वहाँसे गये। जानेके बाद भी बालकोंके और उनके आलिङ्गनके स्मरणसे उनके नेत्रोंसे प्रेमके आँसू बहते रहे॥ ३४॥

बलरामजीने देखा कि व्रजवासी गोप, गौएँ और ग्वालिनोंकी उन सन्तानोंपर भी, जिन्होंने अपनी माका दूध पीना छोड़ दिया है, क्षण-प्रतिक्षण प्रेम-सम्पत्ति और उसके अनुरूप उत्कण्ठा बढ़ती ही जा रही है। तब वे विचारमें पड़ गये, क्योंकि उन्हें इसका कारण मालूम न था॥ ३५॥ 'यह कैसी विचित्र बात है! सर्वात्मा श्रीकृष्णमें व्रजवासियोंका और मेरा जैसा अपूर्व स्नेह है, वैसा ही इन बालकों और बछड़ोंपर भी बढ़ता जा रहा है॥ ३६॥ यह कौन-सी माया है? कहाँसे आयी है? यह किसी देवताकी है, मनुष्यकी है अथवा असुरोंकी? परन्तु क्या ऐसा भी सम्भव है? नहीं-नहीं यह तो मेरे प्रभुकी ही माया है। और किसीकी मायामें ऐसी सामर्थ्य नहीं, जो मुझे भी मोहित कर ले'॥ ३७॥ बलरामजीने ऐसा विचार करके ज्ञानदृष्टिसे देखा, तो उन्हें ऐसा मालूम हुआ कि इन सब बछड़ों और ग्वालबालोंके रूपमें केवल श्रीकृष्ण-ही-श्रीकृष्ण हैं॥ ३८॥ तब उन्होंने श्रीकृष्णसे कहा—'भगवन्! ये ग्वालबाल और बछड़े न देवता हैं और न तो कोई ऋषि ही। इन भिन्न-भिन्न रूपोंका आश्रय लेनेपर भी आप अकेले ही इन रूपोंमें प्रकाशित हो रहे हैं। कृपया स्पष्ट करके थोड़ेमें ही यह बतला दीजिये कि आप इस प्रकार बछड़े, बालक, सींग, रस्सी आदिके रूपमें अलग-अलग क्यों प्रकाशित हो रहे हैं?' तब भगवान्‌ने ब्रह्माकी सारी करतूत सुनायी और बलरामजीने सब बातें जान लीं॥ ३९॥

परीक्षित्! तबतक ब्रह्माजी ब्रह्मलोकसे व्रजमें लौट आये। उनके कालमानसे अबतक केवल एक त्रुटि (जितनी देरमें तीखी सूईसे कमलकी पँखुड़ी छिदे) समय व्यतीत हुआ था। उन्होंने देखा कि भगवान् श्रीकृष्ण ग्वालबाल और बछड़ोंके साथ एक सालसे पहलेकी भाँति ही क्रीडा कर रहे हैं॥ ४०॥ वे सोचने लगे—'गोकुलमें जितने भी ग्वालबाल और बछड़े थे, वे तो मेरी मायामयी शय्यापर सो रहे हैं—उनको तो मैंने अपनी मायासे अचेत कर दिया था; वे तबसे अबतक सचेत नहीं हुए॥ ४१॥ तब मेरी मायासे मोहित ग्वालबाल और बछड़ोंके अतिरिक्त ये उतने ही दूसरे बालक तथा बछड़े कहाँसे आ गये, जो एक सालसे भगवान्‌के साथ खेल रहे हैं?॥ ४२॥ ब्रह्माजीने दोनों स्थानोंपर दोनोंको देखा और बहुत देरतक ध्यान करके अपनी ज्ञानदृष्टिसे उनका रहस्य खोलना चाहा; परन्तु इन दोनोंमें कौन-से पहलेके ग्वालबाल हैं और कौन-से पीछे बना लिये गये हैं, इनमेंसे कौन सच्चे हैं और कौन बनावटी—यह बात वे किसी प्रकार न समझ सके॥ ४३॥ भगवान् श्रीकृष्णकी मायामें तो सभी मुग्ध हो रहे हैं, परन्तु कोई भी माया-मोह भगवान्‌का स्पर्श नहीं कर सकता। ब्रह्माजी उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णको अपनी मायासे

मोहित करने चले थे। किन्तु उनको मोहित करना तो दूर रहा, वे अजन्मा होनेपर भी अपनी ही मायासे अपने-आप मोहित हो गये ॥ ४४ ॥ जिस प्रकार रातके घोर अन्धकारमें कुहरेके अन्धकारका और दिनके प्रकाशमें जुगनूके प्रकाशका पता नहीं चलता, वैसे ही जब क्षुद्र पुरुष महापुरुषोंपर अपनी मायाका प्रयोग करते हैं, तब वह उनका तो कुछ बिगाड नहीं सकती, अपना ही प्रभाव खो बैठती है ॥ ४५ ॥

ब्रह्माजी विचार कर ही रहे थे कि उनके देखते-देखते उसी क्षण सभी ग्वालबाल और बछड़े श्रीकृष्णके रूपमें दिखायी पड़ने लगे। सब-के-सब सजल जलधरके समान श्यामवर्ण, पीताम्बरधारी, शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मसे युक्त—चतुर्भुज। सबके सिरपर मुकुट, कानोंमें कुण्डल और कण्ठोंमें मनोहर हार तथा वनमालाएँ शोभायमान हो रही थीं ॥ ४६-४७ ॥ उनके वक्षःस्थलपर सुवर्णकी सुनहली रेखा—श्रीवत्स, बाहुओंमें बाजूबंद, कलाइयोंमें शङ्खाकार रत्नोंसे जड़े कंगन, चरणोंमें नूपुर और कड़े, कमरमें करधनी तथा अँगुलियोंमें अँगूठियाँ जगमगा रही थीं ॥ ४८ ॥ वे नखसे शिखतक समस्त अङ्गोंमें कोमल और नूतन तुलसीकी मालाएँ, जो उन्हें बड़े भाग्यशाली भक्तोंने पहनायी थीं, धारण किये हुए थे ॥ ४९ ॥ उनकी मुसकान चाँदनीके समान उज्ज्वल थी और रतनारे नेत्रोंकी कटाक्षपूर्ण चितवन बड़ी ही मधुर थी। ऐसा जान पड़ता था मानो वे इन दोनोंके द्वारा सत्त्वगुण और रजोगुणको स्वीकार करके भक्तजनोंके हृदयमे शुद्ध लालसाएँ जगाकर उनको पूर्ण कर रहे हैं ॥ ५० ॥ ब्रह्माजीने यह भी देखा कि उन्हींके-जैसे दूसरे ब्रह्मासे लेकर तृणतक सभी चराचर जीव मूर्तिमान् होकर नाचते-गाते अनेक प्रकारकी पूजासामग्रीसे अलग-अलग भगवान्‌के उन सब रूपोंकी उपासना कर रहे हैं ॥ ५१ ॥ उन्हें अलग-अलग अणिमा-महिमा आदि सिद्धियाँ, माया-विद्या आदि विभूतियाँ और महत्तत्त्व आदि चौबीसों तत्त्व चारों ओरसे घेरे हुए हैं ॥ ५२ ॥ प्रकृतिमें क्षोभ उत्पन्न करनेवाला काल, उसके परिणामका कारण स्वभाव, वासनाओंको जगानेवाला संस्कार, कामनाएँ, कर्म, विषय और फल—सभी मूर्तिमान् होकर भगवान्‌के प्रत्येक रूपकी उपासना कर रहे हैं। भगवान्‌की सत्ता और महत्ताके सामने उन सभीकी सत्ता और महत्ता अपना अस्तित्व खो बैठी थी ॥ ५३ ॥ ब्रह्माजीने यह भी देखा कि वे सभी भूत, भविष्यत् और वर्तमान कालके द्वारा सीमित नहीं हैं, त्रिकालाबाधित सत्य हैं। वे सब-के-सब स्वयंप्रकाश और केवल अनन्त आनन्दस्वरूप हैं। उनमें जड़ता अथवा चेतनताका भेदभाव नहीं है। वे सब-के-सब एकरस हैं। यहाँतक कि उपनिषद्दर्शी तत्त्वज्ञानियोंकी दृष्टि भी उनकी अनन्त महिमाका स्पर्श नहीं कर सकती ॥ ५४ ॥ इस प्रकार ब्रह्माजीने एक साथ ही देखा कि वे सब-के-सब उन परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्णके ही स्वरूप हैं, जिनके प्रकाशसे यह सारा चराचर जगत् प्रकाशित हो रहा है ॥ ५५ ॥

यह अत्यन्त आश्चर्यमय दृश्य देखकर ब्रह्माजी तो चकित रह गये। उनकी ग्यारहों इन्द्रियाँ (पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच ज्ञानेन्द्रिय और एक मन) क्षुब्ध एवं स्तब्ध रह गयीं। वे भगवान्‌के तेजसे निस्तेज होकर मौन हो गये। उस समय वे ऐसे स्तब्ध होकर खड़े रह गये, मानो व्रजके अधिष्ठातृ-देवताके पास एक पुतली खड़ी हो ॥ ५६ ॥ परीक्षित्! भगवान्‌का स्वरूप तर्कसे परे है। उसकी महिमा असाधारण है। वह स्वयंप्रकाश, आनन्दस्वरूप और मायासे अतीत है। वेदान्त भी साक्षात्‌रूपसे उसका वर्णन करनेमें असमर्थ है, इसलिये उससे भिन्नका निषेध करके आनन्दस्वरूप ब्रह्मका किसी प्रकार कुछ सङ्केत करता है। यद्यपि ब्रह्माजी समस्त विद्याओंके अधिपति हैं, तथापि भगवान्‌के दिव्यस्वरूपको वे तनिक भी न समझ सके कि यह क्या है। यहाँतक कि वे भगवान्‌के उन महिमामय रूपोंको देखनेमें भी असमर्थ हो गये। उनकी आँखें मुँद गयीं। भगवान् श्रीकृष्णने ब्रह्माके इस मोह और असमर्थताको जानकर बिना किसी प्रयासके तुरंत अपनी मायाका परदा हटा दिया ॥ ५७ ॥ इससे ब्रह्माजीको बाह्यज्ञान हुआ। वे मानो मरकर फिर जी उठे। सचेत होकर उन्होंने ज्यों-त्यों करके बड़े कष्टसे अपने नेत्र खोले। तब कहीं उन्हें अपना शरीर और यह जगत् दिखायी पड़ा ॥ ५८ ॥ फिर ब्रह्माजी जब चारों ओर देखने लगे, तब पहले दिशाएँ और उसके बाद तुरंत ही उनके सामने वृन्दावन

सुमधुर गोपाल

दिखायी पड़ा। वृन्दावन सबके लिये एक-सा प्यारा है। जिधर देखिये, उधर ही जीवोंको जीवन देनेवाले फल और फूलोंसे लदे हुए, हरे-हरे पत्तोंसे लहलहाते हुए वृक्षोंकी पाँतें शोभा पा रही हैं ॥ ५९ ॥ भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाभूमि होनेके कारण वृन्दावन-धाममें क्रोध, तृष्णा आदि दोष प्रवेश नहीं कर सकते और वहाँ स्वभावसे ही परस्पर दुस्त्यज वैर रखनेवाले मनुष्य और पशु-पक्षी भी प्रेमी मित्रोंके समान हिल-मिलकर एक साथ रहते हैं ॥ ६० ॥ ब्रह्माजीने वृन्दावनका दर्शन करनेके बाद देखा कि अद्वितीय परब्रह्म गोपवंशके बालकका-सा नाट्य कर रहा है। एक होनेपर भी उसके सखा हैं, अनन्त होनेपर भी वह इधर-उधर घूम रहा है और उसका ज्ञान अगाध होनेपर भी वह अपने ग्वालबाल और बछड़ों-को ढूँढ़ रहा है। ब्रह्माजीने देखा कि जैसे भगवान् श्रीकृष्ण पहले अपने हाथमें दही-भातका कौर लिये उन्हें ढूँढ़ रहे थे, वैसे ही अब भी अकेले ही उनकी खोजमें लगे हैं ॥ ६१ ॥ भगवान्‌को देखते ही ब्रह्माजी अपने वाहन हंसपरसे कूद पड़े और सोनेके समान चमकते हुए अपने शरीरसे पृथ्वीपर दण्डकी भाँति गिर पड़े। उन्होंने अपने चारों मुकुटोंके अग्रभागसे भगवान्‌के चरण-कमलोंका स्पर्श करके नमस्कार किया और आनन्दके आँसुओंकी धारासे उन्हे नहला दिया ॥ ६२ ॥ वे भगवान् श्रीकृष्णकी पहले देखी हुई महिमाका बार-बार स्मरण करते, उनके चरणोंपर गिरते और उठ-उठकर फिर-फिर गिर पड़ते। इसी प्रकार बहुत देरतक वे भगवान्‌के चरणोंमें ही पड़े रहे ॥ ६३ ॥ फिर धीरे-धीरे उठे और अपने नेत्रोंके आँसू पोंछे। प्रेम और मुक्तिके एकमात्र उद्गम भगवान्‌को देखकर उनका सिर झुक गया। वे काँपने लगे। अञ्जलि बाँधकर बड़ी नम्रता और एकाग्रताके साथ गद्गद वाणीसे वे भगवान्‌की स्तुति करने लगे ॥ ६४ ॥

चौदहवाँ अध्याय

ब्रह्माजीके द्वारा भगवान्‌की स्तुति

श्रीब्रह्माजीने स्तुति की—प्रभो! एकमात्र आप ही स्तुति करने योग्य हैं। मैं आपके चरणोंमें नमस्कार करता हूँ। आपका यह शरीर वर्षाकालीन मेघके समान श्यामल है, इसपर स्थिर बिजलीके समान झिलमिल-झिलमिल करता हुआ पीताम्बर शोभा पाता है, आपके गलेमें घुँघचीकी माला, कानोंमें मकराकृति कुण्डल तथा सिरपर मोरपंखोंका मुकुट है, इन सबकी कान्तिसे आपके मुखपर अनोखी छटा छिटक रही है। वक्षःस्थलपर लटकती हुई वनमाला और नन्ही-सी हथेलीपर दही-भातका कौर। बगलमें बेत और सींग तथा कमरकी फेंटमें आपकी पहचान बतानेवाली बाँसुरी शोभा पा रही है। आपके कमलसे सुकोमल परम सुकुमार चरण और यह गोपाल-बालकका सुमधुर वेष। (मैं और कुछ नहीं जानता; बस, मैं तो इन्हीं चरणोंपर निछावर हूँ)॥ १ ॥ स्वयं-प्रकाश परमात्मन्! आपका यह श्रीविग्रह भक्तजनोंकी लालसा-अभिलाषा पूर्ण करनेवाला है। यह आपकी चिन्मयी इच्छाका मूर्तिमान् स्वरूप मुझपर आपका साक्षात् कृपा-प्रसाद है। मुझे अनुगृहीत करनेके लिये ही आपने इसे प्रकट किया है। कौन कहता है कि यह पञ्चभूतोंकी रचना है? प्रभो! यह तो अप्राकृत शुद्ध सत्त्वमय है। मैं या और कोई समाधि लगाकर भी आपके इस सच्चिदा-नन्द-विग्रहकी महिमा नहीं जान सकता। फिर आत्मा-नन्दानुभवस्वरूप साक्षात् आपकी ही महिमाको तो कोई एकाग्रमनसे भी कैसे जान सकता है ॥ २ ॥ प्रभो! जो लोग ज्ञानके लिये प्रयत्न न करके अपने स्थानमें ही स्थित रहकर केवल सत्सङ्ग करते हैं और आपके प्रेमी संत पुरुषोंके द्वारा गायी हुई आपकी लीला-कथाका, जो उन लोगोंके पास रहनेसे अपने-आप सुननेको मिलती है, शरीर, वाणी और मनसे विनयावनत होकर सेवन करते हैं—यहाँतक कि उसे ही अपना जीवन बना लेते हैं, उसके बिना जी ही नहीं सकते—प्रभो! यद्यपि आपपर त्रिलोकीमे कोई कभी विजय प्राप्त नहीं कर सकता, फिर भी वे आपपर विजय प्राप्त कर लेते है, आप उनके प्रेमके अधीन हो जाते हैं ॥ ३ ॥ भगवन्! आपकी भक्ति

सब प्रकारके कल्याणका मूलस्रोत—उद्गम है । जो लोग उसे छोड़कर केवल ज्ञानकी प्राप्तिके लिये श्रम उठाते और दुःख भोगते हैं, उनको बस, क्लेश-ही-क्लेश हाथ लगता है, और कुछ नहीं—जैसे थोथी भूसी कूटनेवालेको केवल श्रम ही मिलता है, चावल नहीं ॥ ४ ॥

हे अच्युत ! हे अनन्त ! इस लोकमें पहले भी बहुत-से योगी हो गये हैं । जब उन्हें योगादिके द्वारा आपकी प्राप्ति न हुई, तब उन्होंने अपने लौकिक और वैदिक समस्त कर्म आपके चरणोंमें समर्पित कर दिये । उन समर्पित कर्मोंसे तथा आपकी लीला-कथासे उन्हें आपकी भक्ति प्राप्त हुई । उस भक्तिसे ही आपके स्वरूपका ज्ञान प्राप्त करके उन्होंने बड़ी सुगमतासे आपके परमपदकी प्राप्ति कर ली ॥ ५ ॥ हे अनन्त ! आपके सगुण-निर्गुण दोनों स्वरूपोंका ज्ञान कठिन होनेपर भी निर्गुण स्वरूपकी महिमा इन्द्रियोंका प्रत्याहार करके शुद्धान्तःकरणसे जानी जा सकती है । (जाननेकी प्रक्रिया यह है कि) विशेष आकारके परित्यागपूर्वक आत्माकार अन्तःकरणका साक्षात्कार किया जाय । यह आत्माकारता घट-पटादि रूपके समान ज्ञेय नहीं है, प्रत्युत आवरणका भङ्गमात्र है । यह साक्षात्कार 'यह ब्रह्म है' 'मैं ब्रह्मको जानता हूँ' इस प्रकार नहीं किन्तु स्वयप्रकाश रूपसे ही होता है ॥ ६ ॥ परन्तु भगवन् ! जिन समर्थ पुरुषोंने अनेक जन्मोंतक परिश्रम करके पृथ्वीका एक-एक परमाणु, आकाशके हिमकण (ओसकी बूँदें) तथा उसमें चमकनेवाले नक्षत्र एवं तारोंतकको गिन डाला है—उनमें भी भला, ऐसा कौन हो सकता है जो आपके सगुण स्वरूपके अनन्त गुणोंको गिन सके ? प्रभो ! आप केवल ससारके कल्याणके लिये ही अवतीर्ण हुए हैं । सो भगवन् ! आपकी महिमाका ज्ञान तो बड़ा ही कठिन है ॥ ७ ॥ इसलिये जो पुरुष क्षण-क्षणपर बड़ी उत्सुकतासे आपकी कृपाका ही भलीभाँति अनुभव करता रहता है और प्रारब्धके अनुसार जो कुछ सुख या दुःख प्राप्त होता है उसे निर्विकार मनसे भोग लेता है, एवं जो प्रेमपूर्ण हृदय, गद्गद वाणी और पुलकित शरीरसे अपनेको आपके चरणोंमे समर्पित करता रहता है—इस प्रकार जीवन व्यतीत करनेवाला पुरुष ठीक वैसे ही आपके परम पदका अधिकारी हो जाता है, जैसे अपने पिताकी सम्पत्तिका पुत्र ! ॥ ८ ॥

प्रभो ! मेरी कुटिलता तो देखिये ! आप अनन्त आदि-पुरुष परमात्मा हैं और मेरे-जैसे बड़े-बड़े मायावी भी आपकी मायाके चक्रमें हैं । फिर भी मैंने आपपर अपनी माया फैलाकर अपना ऐश्वर्य देखना चाहा । प्रभो ! मैं आपके सामने हूँ ही क्या । क्या आगके सामने चिनगारीकी भी कुछ गिनती है ? ॥ ९ ॥ भगवन् ! मैं रजोगुणसे उत्पन्न हुआ हूँ । आपके स्वरूपको मैं ठीक-ठीक नहीं जानता । इसीसे अपनेको आपसे अलग संसारका स्वामी माने बैठा था । मैं अजन्मा जगत्कर्ता हूँ—इस मायाकृत मोहके घने अन्धकारसे मैं अंधा हो रहा था । इसलिये आप यह समझकर कि 'यह मेरे ही अधीन है—मेरा भृत्य है, इसपर कृपा करनी चाहिये,' मेरा अपराध क्षमा कीजिये ॥ १० ॥ मेरे स्वामी ! प्रकृति, महत्तत्त्व, अहङ्कार, आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वीरूप आवरणोंसे घिरा हुआ यह ब्रह्माण्ड ही मेरा शरीर है । और आपके एक-एक रोमके छिद्रमें ऐसे-ऐसे अगणित ब्रह्माण्ड उसी प्रकार उड़ते-पड़ते रहते हैं, जैसे झरोखेकी जालीमेंसे आनेवाली सूर्यकी किरणोंमें रजके छोटे-छोटे परमाणु उड़ते हुए दिखायी पड़ते हैं । कहाँ अपने परिमाणसे साढ़े तीन हाथके शरीरवाला अत्यन्त क्षुद्र मैं, और कहाँ आपकी अनन्त महिमा ॥ ११ ॥ वृत्तियोंकी पकड़में न आनेवाले परमात्मन् ! जब बच्चा माताके पेटमें रहता है, तब अज्ञानवश अपने हाथ-पैर पीटता है; परन्तु क्या माता उसे अपराध समझती है या उसके लिये वह कोई अपराध होता है ? 'है' और 'नहीं है'—इन शब्दोंसे कही जानेवाली कोई भी वस्तु ऐसी है क्या, जो आपकी कोखके भीतर न हो ? ॥ १२ ॥

श्रुतियाँ कहती हैं कि जिस समय तीनों लोक प्रलयकालीन जलमें लीन थे, उस समय उस जलमें स्थित श्रीनारायणके नाभिकमलसे ब्रह्माका जन्म हुआ । उनका यह कहना किसी प्रकार असत्य नहीं हो सकता । तब आप ही बतलाइये, प्रभो ! क्या मैं आपका पुत्र नहीं हूँ ? ॥ १३ ॥ प्रभो ! आप समस्त जीवोंके आत्मा है । इसलिये आप नारायण (नार—जीव और अयन—

आश्रय) हैं। आप समस्त जगत्के और जीवोंके अधीश्वर हैं, इसलिये आप नारायण (नार—जीव और अयन—प्रवर्तक) हैं। आप समस्त लोकोंके साक्षी हैं, इसलिये भी नारायण (नार—जीव और अयन—जाननेवाला) हैं। नरसे उत्पन्न होनेवाले जलमें निवास करनेके कारण जिन्हें नारायण (नार—जल और अयन—निवासस्थान) कहा जाता है, वे भी आपके एक अंश ही हैं। वह अंशरूपसे दीखना भी सत्य नहीं है, आपकी माया ही है ॥ १४ ॥ भगवन्! यदि आपका वह विराट् स्वरूप सचमुच उस समय जलमें ही था तो मैंने उसी समय उसे क्यों नहीं देखा, जब कि मैं कमलनालके मार्गसे उसे सौ वर्षतक जलमें ढूँढ़ता रहा? फिर मैंने जब तपस्या की, तब उसी समय मेरे हृदयमें उसका दर्शन कैसे हो गया? और फिर कुछ ही क्षणोंमें वह पुनः क्यों नहीं दीखा, अन्तर्धान क्यों हो गया? ॥ १५॥ मायाका नाश करनेवाले प्रभो! दूरकी बात कौन करे—अभी इसी अवतारमें आपने इस बाहर दीखनेवाले जगत्को अपने पेटमें ही दिखला दिया, जिसे देखकर माता यशोदा चकित हो गयी थीं। इससे यही तो सिद्ध होता है कि यह सम्पूर्ण विश्व केवल आपकी माया-ही-माया है ॥ १६ ॥ जब आपके सहित यह सम्पूर्ण विश्व जैसा बाहर दीखता है वैसा ही आपके उदरमें भी दीखा, तब क्या यह सब आपकी मायाके बिना ही आपमें प्रतीत हुआ? अवश्य ही आपकी लीला है ॥ १७ ॥ उस दिनकी बात जाने दीजिये, आजकी ही लीजिये। क्या आज आपने मेरे सामने अपने अतिरिक्त सम्पूर्ण विश्वको अपनी मायाका खेल नहीं दिखलाया है? पहले आप अकेले थे। फिर सम्पूर्ण ग्वालबाल, बछड़े और छड़ी-छींके भी आप ही हो गये। उसके बाद मैंने देखा कि आपके वे सब रूप चतुर्भुज हैं और मेरेसहित सब-के-सब तत्त्व उनकी सेवा कर रहे हैं। आपने अलग-अलग उतने ही ब्रह्माण्डोंका रूप भी धारण कर लिया था, परन्तु अब आप केवल अपरिमित अद्वितीय ब्रह्मरूपसे ही शेष रह गये हैं ॥ १८ ॥

जो लोग अज्ञानवश आपके स्वरूपको नहीं जानते, उन्हींको आप प्रकृतिमें स्थित जीवके रूपसे प्रतीत होते हैं और उनपर अपनी मायाका परदा डालकर सृष्टिके समय मेरे (ब्रह्मा) रूपसे, पालनके समय अपने (विष्णु) रूपसे और संहारके समय रुद्रके रूपमें प्रतीत होते हैं ॥ १९॥ प्रभो! आप सारे जगत्के स्वामी और विधाता हैं। अजन्मा होनेपर भी आप देवता, ऋषि, मनुष्य, पशु-पक्षी और जलचर आदि योनियोंमें अवतार ग्रहण करते हैं—इसलिये कि इन रूपोंके द्वारा दुष्ट पुरुषोंका घमंड तोड़ दें और सत्पुरुषोंपर अनुग्रह करें ॥ २० ॥ भगवन्! आप अनन्त परमात्मा और योगेश्वर हैं। जिस समय आप अपनी योगमायाका विस्तार करके लीला करने लगते हैं, उस समय त्रिलोकीमें ऐसा कौन है, जो यह जान सके कि आपकी लीला कहाँ, किसलिये, कब और कितनी होती है ॥ २१ ॥ इसलिये यह सम्पूर्ण जगत् स्वप्नके समान असत्य, अज्ञानरूप और दुःख-पर-दुःख देनेवाला है। आप परमानन्द, परम ज्ञानस्वरूप एवं अनन्त हैं। यह मायासे उत्पन्न एवं विलीन होनेपर भी आपमें आपकी सत्तासे सत्यके समान प्रतीत होता है ॥ २२ ॥ प्रभो! आप ही एकमात्र सत्य हैं। क्योंकि आप सबके आत्मा जो हैं। आप पुराणपुरुष होनेके कारण समस्त जन्मादि विकारोंसे रहित हैं। आप स्वयंप्रकाश हैं, इसलिये देश, काल और वस्तु—जो परप्रकाश हैं—किसी प्रकार आपको सीमित नहीं कर सकते। आप उनके भी आदि प्रकाशक हैं। आप अविनाशी होनेके कारण नित्य हैं। आपका आनन्द अखण्डित है। आपमें न तो किसी प्रकारका मल है और न अभाव। आप पूर्ण, एक हैं। समस्त उपाधियोंसे मुक्त होनेके कारण आप अमृतस्वरूप हैं ॥ २३ ॥ आपका यह ऐसा स्वरूप समस्त जीवोंका ही अपना स्वरूप है। जो गुरुरूप सूर्यसे तत्त्वज्ञानरूप दिव्य दृष्टि प्राप्त करके उससे आपको अपने स्वरूपके रूपमें साक्षात्कार कर लेते हैं, वे इस झूठे संसार-सागरको मानो पार कर जाते हैं। (संसार-सागरके झूठा होनेके कारण इससे पार जाना भी अविचार-दशाकी दृष्टिसे ही है) ॥ २४ ॥ जो पुरुष परमात्माको आत्माके रूपमें नहीं जानते, उन्हें उस अज्ञानके कारण ही इस नामरूपात्मक निखिल प्रपञ्चकी उत्पत्तिका भ्रम हो जाता है। किन्तु ज्ञान होते ही इसका आत्यन्तिक प्रलय हो जाता है। जैसे रस्सीमें भ्रमके कारण ही साँपकी प्रतीति होती है और भ्रमके निवृत्त होते ही उसकी निवृत्ति हो

जाती है ॥ २५ ॥ संसार-सम्बन्धी बन्धन और उससे मोक्ष—ये दोनों ही नाम अज्ञानसे कल्पित हैं। वास्तवमें ये अज्ञानके ही दो नाम हैं। ये सत्य और ज्ञानस्वरूप परमात्मासे भिन्न अस्तित्व नहीं रखते। जैसे सूर्यमें दिन और रातका भेद नहीं है, वैसे ही विचार करनेपर अखण्ड चित्स्वरूप केवल शुद्ध आत्मतत्त्वमे न बन्धन है और न तो मोक्ष ॥ २६ ॥ भगवन्! कितने आश्चर्यकी बात है कि आप हैं अपने आत्मा, पर लोग आपको पराया मानते हैं। और शरीर आदि हैं पराये, किन्तु उनको आत्मा मान बैठते है। और इसके बाद आपको कहीं अलग ढूँढ़ने लगते है। भला, अज्ञानी जीवोंका यह कितना बड़ा अज्ञान है ॥ २७ ॥ हे अनन्त! आप तो सबके अन्तःकरणमे ही विराजमान है। इसलिये संतलोग आपके अतिरिक्त जो कुछ प्रतीत हो रहा है, उसका परित्याग करते हुए अपने भीतर ही आपको ढूँढ़ते हैं। क्योंकि यद्यपि रस्सीमें साँप नहीं है, फिर भी उस प्रतीयमान साँपको मिथ्या निश्चय किये बिना भला, कोई सत्पुरुष सच्ची रस्सीको कैसे जान सकता है? ॥ २८ ॥

अपने भक्तजनोंके हृदयमें स्वयं स्फुरित होनेवाले भगवन्! आपके ज्ञानका स्वरूप और महिमा ऐसी ही है, उससे अज्ञानकल्पित जगत्का नाश हो जाता है। फिर भी जो पुरुष आपके युगल चरणकमलोंका तनिक-सा भी कृपा-प्रसाद प्राप्त कर लेता है, उससे अनुगृहीत हो जाता है—वही आपकी सच्चिदानन्दमयी महिमाका तत्त्व जान सकता है। दूसरा कोई भी ज्ञान-वैराग्यादि साधनरूप अपने प्रयत्नसे बहुत कालतक कितना भी अनुसन्धान करता रहे, वह आपकी महिमाका यथार्थ ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता ॥ २९ ॥ इसलिये भगवन्! मुझे इस जन्ममें, दूसरे जन्ममें अथवा किसी पशु-पक्षी आदिके जन्ममे भी ऐसा सौभाग्य प्राप्त हो कि मैं आपके दासोंमेंसे कोई एक दास हो जाऊँ और फिर आपके चरणकमलोंकी सेवा करूँ ॥ ३० ॥ मेरे स्वामी! जगत्के बड़े-बड़े यज्ञ सृष्टिके प्रारम्भसे लेकर अबतक आपको पूर्णतः तृप्त न कर सके। परन्तु आपने व्रजकी गायों और ग्वालिनोंके बछड़े एवं बालक बनकर उनके स्तनोंका अमृत-सा दूध बड़े उमंगसे पिया है। वास्तवमे उन्हींका जीवन सफल है, वे ही अत्यन्त धन्य हैं ॥ ३१ ॥ अहो, नन्द आदि व्रजवासी गोपोंके धन्य भाग्य हैं। वास्तवमें उनका अहोभाग्य है। क्योंकि परमानन्दस्वरूप सनातन परिपूर्ण ब्रह्म आप उनके अपने सगे-सम्बन्धी और सुहृद् हैं ॥ ३२ ॥ हे अच्युत! इन व्रजवासियोंके सौभाग्यकी महिमा तो अलग रही—मन आदि ग्यारह इन्द्रियोंके अधिष्ठातृ-देवताके रूपमें रहनेवाले महादेव आदि हमलोग बड़े ही भाग्यवान् हैं। क्योंकि इन व्रजवासियोंकी मन आदि ग्यारह इन्द्रियोंको प्याले बनाकर हम आपके चरणकमलोंका अमृतसे भी मीठा, मदिरासे भी मादक मधुर मकरन्द-रस पान करते रहते हैं। जब उसका एक-एक इन्द्रियसे पान करके हम धन्य-धन्य हो रहे हैं, तब समस्त इन्द्रियोंसे उसका सेवन करनेवाले व्रजवासियोंकी तो बात ही क्या है ॥ ३३ ॥ प्रभो! इस व्रजभूमिके किसी वनमें और विशेष करके गोकुलमें किसी भी योनिमें जन्म हो जाय, यही हमारे लिये बड़े सौभाग्यकी बात होगी! क्योंकि यहाँ जन्म हो जानेपर आपके किसी-न-किसी प्रेमीके चरणोंकी धूलि अपने ऊपर पड़ ही जायगी। प्रभो! आपके प्रेमी व्रजवासियोंका सम्पूर्ण जीवन आपका ही जीवन है। आप ही उनके जीवनके एकमात्र सर्वस्व हैं। इसलिये उनके चरणोंकी धूलि मिलना आपके ही चरणोंकी धूलि मिलना है। और आपके चरणोंकी धूलिको तो श्रुतियाँ भी अनादि कालसे अबतक ढूँढ़ ही रही है ॥ ३४ ॥ देवताओंके भी आराध्यदेव प्रभो! इन व्रजवासियोंको इनकी सेवाके बदलेमें आप क्या फल देंगे? सम्पूर्ण फलोंके फलस्वरूप! आपसे बढ़कर और कोई फल तो है ही नहीं, यह सोचकर मेरा चित्त मोहित हो रहा है। आप उन्हें अपना स्वरूप भी देकर उऋण नहीं हो सकते। क्योंकि आपके स्वरूपको तो उस पूतनाने भी अपने सम्बन्धियों—अघासुर, बकासुर आदिके साथ प्राप्त कर लिया, जिसका केवल वेष ही साध्वी स्त्रीका था, पर जो हृदयसे महान् क्रूर थी। फिर, जिन्होंने अपने घर, धन, स्वजन, प्रिय, शरीर, पुत्र, प्राण और मन—सब कुछ आपके ही चरणोंमे समर्पित कर दिया है, जिनका सब कुछ आपके ही लिये है, उन व्रजवासियोंको भी वही फल देकर आप कैसे उऋण हो सकते हैं ॥ ३५ ॥ सच्चिदानन्दस्वरूप श्यामसुन्दर! तभीतक राग-द्वेष आदि

दोष चोरोंके समान सर्वस्व अपहरण करते रहते हैं, तभीतक घर और उसके सम्बन्धी कैदकी तरह सम्बन्ध-के बन्धनोंमें बाँध रखते हैं और तभीतक मोह पैरकी बेड़ियोंकी तरह जकड़े रखता है—जबतक जीव आप-का नहीं हो जाता ॥ ३६ ॥ प्रभो ! आप विश्वके बखेड़ेसे सर्वथा रहित हैं, फिर भी अपने शरणागत भक्त-जनोंको अनन्त आनन्द वितरण करनेके लिये पृथ्वीमें अवतार लेकर विश्वके समान ही लीलाविलासका विस्तार करते हैं ॥ ३७ ॥ मेरे स्वामी ! बहुत कहनेकी आवश्य-कता नहीं—जो लोग आपकी महिमा जानते हैं, वे जानते रहें; मेरे मन, वाणी और शरीर तो आपकी महिमा जाननेमें सर्वथा असमर्थ हैं ॥ ३८ ॥ सच्चिदानन्द-स्वरूप श्रीकृष्ण ! आप सबके साक्षी हैं । इसलिये आप सब कुछ जानते हैं । आप समस्त जगत्के स्वामी हैं । यह सम्पूर्ण प्रपञ्च आपमें ही स्थित है । आपसे मैं और क्या कहूँ ! अब आप मुझे स्वीकार कीजिये । मुझे अपने लोकमें जानेकी आज्ञा दीजिये ॥ ३९ ॥ सबके मन-प्राण-को अपनी रूप-माधुरीसे आकर्षित करनेवाले श्यामसुन्दर ! आप यदुवंशरूपी कमलको विकसित करनेवाले सूर्य हैं । प्रभो ! पृथ्वी, देवता, ब्राह्मण और पशुरूप समुद्रकी अभिवृद्धि करनेवाले चन्द्रमा भी आप ही हैं । आप पाखण्डियोंके धर्मरूप रात्रिका घोर अन्धकार नष्ट करनेके लिये सूर्य और चन्द्रमा दोनोंके ही समान हैं । पृथ्वीपर रहनेवाले राक्षसोंके नष्ट करनेवाले आप चन्द्रमा, सूर्य आदि समस्त देवताओंके भी परम पूजनीय हैं । भगवन् ! मैं अपने जीवनभर, महाकल्पपर्यन्त आपको नमस्कार ही करता रहूँ ॥ ४० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! संसारके रच-यिता ब्रह्माजीने इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति की । इसके बाद उन्होंने तीन बार परिक्रमा करके उनके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर अपने गन्तव्य स्थान सत्यलोकमें चले गये ॥ ४१ ॥ ब्रह्माजीने बछड़ों और ग्वालबालोंको पहले ही यथास्थान पहुँचा दिया था । भगवान् श्रीकृष्णने ब्रह्माजीको विदा कर दिया और बछड़ों-को लेकर यमुनाजीके पुलिनपर आये, जहाँ वे अपने सखा ग्वालबालोंको पहले छोड़ गये थे ॥ ४२ ॥ परीक्षित् ! अपने जीवनसर्वस्व—प्राणवल्लभ श्रीकृष्णके वियोगमें यद्यपि एक वर्ष बीत गया था, तथापि उन ग्वालबालोंको वह समय आधे क्षणके समान जान पड़ा । क्यों न हो, वे भगवान्की विश्वविमोहिनी योगमायासे मोहित जो हो गये थे ॥ ४३ ॥ जगत्के सभी जीव उसी मायासे मोहित होकर शास्त्र और आचार्योंके बार-बार समझानेपर भी अपने आत्माको निरन्तर भूले हुए हैं । वास्तवमें उस मायाकी ऐसी ही शक्ति है । भला, उससे मोहित होकर जीव यहाँ क्या-क्या नहीं भूल जाते हैं ॥ ४४ ॥

परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णको देखते ही ग्वालबालोंने बड़ी उतावलीसे कहा—'भाई ! तुम भले आये । स्वागत है, स्वागत ! अभी तो हमने तुम्हारे बिना एक कौर भी नहीं खाया है । आओ, इधर आओ, आनन्दसे भोजन करो' ॥ ४५ ॥ तब हँसते हुए भगवान्ने ग्वालबालोंके साथ भोजन किया और उन्हें अघासुरके शरीरका ढाँचा दिखाते हुए वनसे व्रजमें लौट आये ॥ ४६ ॥ श्रीकृष्णके सिरपर मोरपंखका मनोहर मुकुट और घुँघराले बालोंमें सुन्दर-सुन्दर महँ-महँ महँकते हुए पुष्प गुँथ रहे थे । नयी-नयी रंगीन धातुओंसे श्याम शरीरपर चित्रकारी की हुई थी । वे चलते समय रास्तेमें उच्च स्वरसे कभी बाँसुरी, कभी पत्ते और कभी सींग बजाकर वाद्योत्सवमें मग्न हो रहे हैं । पीछे-पीछे ग्वालबाल उनकी लोकपावन कीर्तिका गान करते जा रहे हैं । कभी वे नाम ले-लेकर अपने बछड़ोंको पुकारते, तो कभी उनके साथ लाड़ लड़ाने लगते । मार्गके दोनों ओर गोपियाँ खड़ी हैं; जब वे कभी तिरछे नेत्रोंसे उनकी नजरसे नजर मिला देते हैं, तब गोपियाँ आनन्द-मुग्ध हो जाती हैं । इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णने गोष्ठमें प्रवेश किया ॥ ४७ ॥ परीक्षित् ! उसी दिन बालकोंने व्रजमें जाकर कहा कि 'आज यशोदा मैयाके लाड़ले नन्दनन्दनने वनमें एक बड़ा भारी अजगर मार डाला है और उससे हमलोगोंकी रक्षा की है' ॥ ४८ ॥

राजा परीक्षित्ने कहा—ब्रह्मन् ! व्रजवासियोंके लिये श्रीकृष्ण अपने पुत्र नहीं थे, दूसरेके पुत्र थे । फिर उनका श्रीकृष्णके प्रति इतना प्रेम कैसे हुआ ? ऐसा प्रेम तो उनका अपने बालकोंपर भी पहले कभी नहीं

हुआ था ! आप कृपा करके बतलाइये, इसका क्या कारण है ? ॥ ४९ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन् ! संसारके सभी प्राणी अपने आत्मासे ही सबसे बढ़कर प्रेम करते हैं। पुत्रसे, धनसे या और किसीसे जो प्रेम होता है—वह तो इसलिये कि वे वस्तुएँ अपने आत्माको प्रिय लगती हैं ॥ ५० ॥ राजेन्द्र ! यही कारण है कि सभी प्राणियोंका अपने आत्माके प्रति जैसा प्रेम होता है, वैसा अपने कहलानेवाले पुत्र, धन और गृह आदिमे नही होता ॥५१॥ नृपश्रेष्ठ ! जो लोग देहको ही आत्मा मानते हैं, वे भी अपने शरीरसे जितना प्रेम करते हैं, उतना प्रेम शरीरके सम्बन्धी पुत्र-मित्र आदिसे नहीं करते ॥ ५२ ॥ जब विचारके द्वारा यह मालूम हो जाता है कि 'यह शरीर मैं नहीं हूँ, यह शरीर मेरा है' तब इस शरीरसे भी आत्माके समान प्रेम नहीं रहता। यही कारण है कि इस देहके जीर्ण-शीर्ण हो जानेपर भी जीनेकी आशा प्रबल रूपसे बनी रहती है ॥ ५३ ॥ इससे यह बात सिद्ध होती है कि सभी प्राणी अपने आत्मासे ही सबसे बढ़कर प्रेम करते हैं और उसीके लिये इस सारे चराचर जगत्से भी प्रेम करते हैं ॥ ५४ ॥ इन श्रीकृष्णको ही तुम सब आत्माओंका आत्मा समझो। संसारके कल्याणके लिये ही योगमायाका आश्रय लेकर वे यहाँ देहधारीके समान जान पड़ते हैं ॥ ५५ ॥ जो लोग भगवान् श्रीकृष्णके वास्तविक स्वरूपको जानते हैं, उनके लिये तो इस जगत्मे जो कुछ भी चराचर पदार्थ हैं, अथवा इससे परे परमात्मा, ब्रह्म, नारायण आदि जो भगवत्स्वरूप हैं, सभी श्रीकृष्णस्वरूप ही हैं। श्रीकृष्णके अतिरिक्त और कोई प्राकृत-अप्राकृत वस्तु है ही नहीं ॥ ५६ ॥ सभी वस्तुओंका अन्तिम रूप अपने कारणमें स्थित होता है। उस कारणके भी परम कारण हैं भगवान् श्रीकृष्ण। तब भला बताओ, किस वस्तुको श्रीकृष्णसे भिन्न बतलायें ॥५७॥ जिन्होंने पुण्यकीर्ति मुकुन्द मुरारीके पदपल्लवकी नौकाका आश्रय लिया है, जो कि सत्पुरुषोंका सर्वस्व है, उनके लिये यह भव-सागर बछड़ेके खुरके गढेके समान है। उन्हें परमपदकी प्राप्ति हो जाती है और उनके लिये विपत्तियोंका निवासस्थान—यह संसार नहीं रहता ॥५८॥

परीक्षित् ! तुमने मुझसे पूछा था कि भगवान्के पाँचवें वर्षकी लीला ग्वालबालोंने छठे वर्षमें कैसे कही, उसका सारा रहस्य मैंने तुम्हें बतला दिया ॥ ५९ ॥ भगवान् श्रीकृष्णकी ग्वालबालोंके साथ वनक्रीड़ा, अघासुरको मारना, हरी-हरी घाससे युक्त भूमिपर बैठकर भोजन करना, अप्राकृतरूपधारी बछड़ों और ग्वालबालोंका प्रकट होना और ब्रह्माजीके द्वारा की हुई इस महान् स्तुतिको जो मनुष्य सुनता और कहता है—उस-उसको धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है ॥ ६० ॥ परीक्षित् ! इस प्रकार श्रीकृष्ण और बलरामने कुमार-अवस्थाके अनुरूप आँखमिचौनी, सेतुबन्धन, बंदरोंकी भाँति उछलना-कूदना आदि अनेकों लीलाएँ करके अपनी कुमार-अवस्था व्रजमें ही त्याग दी ॥ ६१ ॥

पंद्रहवाँ अध्याय

धेनुकासुरका उद्धार और ग्वालबालोंको कालियनागके विषसे बचाना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! अब बलराम और श्रीकृष्णने पौगण्ड-अवस्थामे अर्थात् छठे वर्षमें प्रवेश किया। अब उन्हें गौएँ चरानेकी स्वीकृति मिल गयी। वे अपने सखा ग्वालबालोंके साथ गौएँ चराते हुए वृन्दावनमें जाते और अपने चरणोंसे वृन्दावनको अत्यन्त पावन करते ॥ १ ॥ यह वन गौओंके लिये हरी-हरी घाससे युक्त एवं रंग-बिरंगे पुष्पोंकी खान हो रहा था। आगे-आगे गौएँ, उनके पीछे-पीछे बाँसुरी बजाते हुए श्यामसुन्दर, तदनन्तर बलराम और फिर श्रीकृष्णके यशका गान करते हुए ग्वालबाल—इस प्रकार विहार करनेके लिये उन्होंने उस वनमें प्रवेश किया ॥ २ ॥ उस वनमें कहीं तो भौंरे बड़ी मधुर गुंजार कर रहे थे, कहीं झुंड-के-झुंड हरिन चौकड़ी भर रहे थे और कहीं सुन्दर-सुन्दर पक्षी चहक रहे थे। बड़े ही सुन्दर-सुन्दर सरोवर थे, जिनका जल महात्माओंके हृदयके समान स्वच्छ और निर्मल था। उनमें खिले हुए कमलोंके सौरभसे सुवासित होकर शीतल-

मन्द-सुगन्ध वायु उस वनकी सेवा कर रही थी। इतना मनोहर था वह वन कि उसे देखकर भगवान्‌ने मन-ही-मन उसमें विहार करनेका संकल्प किया॥३॥ पुरुषोत्तम भगवान्‌ने देखा कि बड़े-बड़े वृक्ष फल और फूलोंके भारसे झुककर अपनी डालियों और नूतन कोंपलोंकी लालिमासे उनके चरणोंका स्पर्श कर रहे हैं, तब उन्होंने बड़े आनन्दसे कुछ मुसकराते हुए-से अपने बड़े भाई बलरामजीसे कहा ॥ ४ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—देवशिरोमणे! यों तो बड़े-बड़े देवता आपके चरणकमलोंकी पूजा करते हैं; परन्तु देखिये तो, ये वृक्ष भी अपनी डालियोंसे सुन्दर पुष्प और फलोंकी सामग्री लेकर आपके चरणकमलोंमें झुक रहे हैं, नमस्कार कर रहे हैं। क्यों न हो, इन्होंने इसी सौभाग्यके लिये तथा अपना दर्शन एवं श्रवण करनेवालोंके अज्ञानका नाश करनेके लिये ही तो वृन्दावन-धाममें वृक्ष-योनि ग्रहण की है। इनका जीवन धन्य है ॥ ५ ॥ आदिपुरुष! यद्यपि आप इस वृन्दावनमें अपने ऐश्वर्यरूपको छिपाकर बालकोंकी-सी लीला कर रहे हैं, फिर भी आपके श्रेष्ठ भक्त मुनिगण अपने इष्टदेवको पहचानकर यहाँ भी प्रायः भौंरोंके रूपमें आपके भुवन-पावन यशका निरन्तर गान करते हुए आपके भजनमें लगे रहते हैं। वे एक क्षणके लिये भी आपको नहीं छोड़ना चाहते ॥ ६ ॥ भाईजी! वास्तवमें आप ही स्तुति करने योग्य हैं। देखिये, आपको अपने घर आया देख ये मोर आपके दर्शनोंसे आनन्दित होकर नाच रहे हैं। हरिनियाँ मृगनयनी गोपियोंके समान अपनी प्रेमभरी तिरछी चितवनसे आपके प्रति प्रेम प्रकट कर रही हैं, आपको प्रसन्न कर रही हैं। ये कोयलें अपनी मधुर कुहू-कुहू ध्वनिसे आपका कितना सुन्दर स्वागत कर रही हैं! ये वनवासी होनेपर भी धन्य हैं। क्योंकि सत्पुरुषोंका स्वभाव ही ऐसा होता है कि वे घर आये अतिथिको अपनी प्रियसे प्रिय वस्तु भेंट कर देते हैं॥७॥ आज यहाँकी भूमि अपनी हरी-हरी घासके साथ आपके चरणोंका स्पर्श प्राप्त करके धन्य हो रही है। यहाँके वृक्ष, लताएँ और झाड़ियाँ आपकी अँगुलियोंका स्पर्श पाकर अपना अहोभाग्य मान रही है। आपकी दयाभरी चितवनसे नदी, पर्वत, पशु, पक्षी—सब कृतार्थ हो रहे हैं और व्रजकी गोपियाँ आपके वक्षःस्थलका स्पर्श प्राप्त करके, जिसके लिये स्वयं लक्ष्मी भी लालायित रहती हैं, धन्य-धन्य हो रही हैं ॥ ८ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! इस प्रकार परम सुन्दर वृन्दावनको देखकर भगवान् श्रीकृष्ण बहुत ही आनन्दित हुए। वे अपने सखा ग्वालबालोंके साथ गोवर्धनकी तराईमें, यमुनातटपर गौओंको चराते हुए अनेकों प्रकारकी लीलाएँ करने लगे ॥ ९ ॥ एक ओर ग्वालबाल भगवान् श्रीकृष्णके चरित्रोंकी मधुर तान छेड़े रहते हैं, तो दूसरी ओर बलरामजीके साथ वनमाला पहने हुए श्रीकृष्ण मतवाले भौंरोंकी सुरीली गुनगुनाहटमें अपना स्वर मिलाकर मधुर संगीत अलापने लगते हैं ॥ १० ॥ कभी-कभी श्रीकृष्ण कूजते हुए राजहंसोंके साथ स्वयं भी कूजने लगते हैं और कभी नाचते हुए मोरोंके साथ स्वयं भी ठुमुक-ठुमुक नाचने लगते हैं और ऐसा नाचते है कि मयूरको उपहासास्पद बना देते हैं ॥ ११॥ कभी मेघके समान गम्भीर वाणीसे दूर गये हुए पशुओंको उनका नाम ले-लेकर बड़े प्रेमसे पुकारते हैं। उनके कण्ठकी मधुर ध्वनि सुनकर गायों और ग्वालबालोंका चित्त भी अपने वशमें नहीं रहता ॥ १२ ॥ कभी चकोर, क्रौंच (करॉकुल), चकवा, भरदूल और मोर आदि पक्षियोंकी-सी बोली बोलते तो कभी बाघ, सिंह आदिकी गर्जनासे डरे हुए जीवोंके समान स्वयं भी भयभीतकी-सी लीला करते ॥ १३ ॥ जब बलरामजी खेलते-खेलते थककर किसी ग्वालबालकी गोदके तकियेपर सिर रखकर लेट जाते, तब श्रीकृष्ण उनके पैर दबाने लगते, पंखा झलने लगते और इस प्रकार अपने बड़े भाईकी थकावट दूर करते॥ १४॥ जब ग्वाल-बाल नाचने-गाने लगते, अथवा ताल ठोंक-ठोंककर एक दूसरेसे कुश्ती लड़ने लगते, तब श्याम और राम दोनों भाई हाथमें हाथ डालकर खड़े हो जाते और हँस-हँसकर 'वाह-वाह' करते॥ १५॥ कभी-कभी स्वयं श्रीकृष्ण भी ग्वालबालोंके साथ कुश्ती लड़ते-लड़ते थक जाते तथा किसी सुन्दर वृक्षके नीचे कोमल पल्लवोंकी सेजपर किसी ग्वालबालकी गोदमें सिर रखकर लेट जाते ॥ १६ ॥ परीक्षित्! उस समय कोई-कोई पुण्यके मूर्तिमान् स्वरूप ग्वालबाल महात्मा श्रीकृष्णके चरण दबाने लगते और दूसरे निष्पाप बालक उन्हे बड़े-बड़े पत्तों या अँगोछियोंसे

पंखा झलने लगते ॥ १७ ॥ किसी-किसीके हृदयमें प्रेमकी धारा उमड़ आती तो वह धीरे-धीरे उदारशिरोमणि परममनस्वी श्रीकृष्णकी लीलाओंके अनुरूप उनके मनको प्रिय लगनेवाले मनोहर गीत गाने लगता ॥ १८ ॥ भगवान्‌ने इस प्रकार अपनी योगमायासे अपने ऐश्वर्यमय स्वरूपको छिपा रक्खा था । वे ऐसी लीलाएँ करते, जो ठीक-ठीक गोपबालकोंकी-सी ही मालूम पड़तीं । स्वयं भगवती लक्ष्मी जिनके चरणकमलोंकी सेवामें संलग्न रहती हैं, वे ही भगवान् इन ग्रामीण बालकोंके साथ बड़े प्रेमसे ग्रामीण खेल खेला करते थे । परीक्षित् ! ऐसा होनेपर भी कभी-कभी उनकी ऐश्वर्यमयी लीलाएँ भी प्रकट हो जाया करतीं ॥ १९ ॥

बलरामजी और श्रीकृष्णके सखाओंमें एक प्रधान गोप-बालक थे श्रीदामा । एक दिन उन्होंने तथा सुबल और स्तोककृष्ण (छोटे कृष्ण) आदि ग्वालबालोंने श्याम और रामसे बड़े प्रेमके साथ कहा—॥ २० ॥ 'हमलोगोंको सर्वदा सुख पहुँचानेवाले बलरामजी ! आपके बाहु-बलकी तो कोई थाह ही नहीं है । हमारे मनमोहन श्रीकृष्ण ! दुष्टोंको नष्ट कर डालना तो तुम्हारा स्वभाव ही है । यहाँसे थोड़ी ही दूरपर एक बड़ा भारी वन है । बस, उसमें पाँत-के-पाँत ताड़के वृक्ष भरे पड़े हैं ॥ २१ ॥ वहाँ बहुत-से ताड़के फल पक-पककर गिरते रहते हैं और बहुत-से पहलेके गिरे हुए भी हैं । परन्तु वहाँ धेनुक नामका एक दुष्ट दैत्य रहता है । उसने उन फलोंपर रोक लगा रक्खी है ॥ २२ ॥ बलराम-जी और भैया श्रीकृष्ण ! वह दैत्य गधेके रूपमें रहता है । वह स्वयं तो बड़ा बलवान् है ही, उसके साथ और भी बहुत-से उसीके समान बलवान् दैत्य उसी रूपमें रहते हैं ॥ २३ ॥ मेरे शत्रुघाती भैया ! उस दैत्यने अबतक न जाने कितने मनुष्य खा डाले हैं । यही कारण है कि उसके डरके मारे मनुष्य उसका सेवन नहीं करते और पशु-पक्षी भी उस जंगलमें नहीं जाते ॥ २४ ॥ उसके फल हैं तो बड़े सुगन्धित, परन्तु हमने कभी नहीं खाये । देखो न, चारों ओर उन्हींकी मन्द-मन्द सुगन्ध फैल रही है । तनिक-सा ध्यान देनेसे उसका रस मिलने लगता है ॥ २५ ॥ श्रीकृष्ण ! उनकी सुगन्धसे हमारा मन मोहित हो गया है और उन्हें पानेके लिये मचल रहा है । तुम हमें वे फल अवश्य खिलाओ । दाऊ दादा ! हमें उन फलोंकी बड़ी उत्कट अभिलाषा है । आपको रुचे तो वहाँ अवश्य चलिये ॥ २६ ॥

अपने सखा ग्वालबालोंकी यह बात सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी दोनों हँसे और फिर उन्हें प्रसन्न करनेके लिये उनके साथ तालवनके लिये चल पड़े । २७ । उस वनमें पहुँचकर बलरामजीने अपनी बाँहोंसे उन ताड़के पेड़ोंको पकड़ लिया और मतवाले हाथीके बच्चेके समान उन्हें बड़े जोरसे हिलाकर बहुत-से फल नीचे गिरा दिये ॥ २८ ॥ जब गधेके रूपमें रहनेवाले दैत्यने फलोंके गिरनेका शब्द सुना, तब वह पर्वतोंके साथ सारी पृथ्वी-को कँपाता हुआ उनकी ओर दौड़ा ॥ २९ ॥ वह बड़ा बलवान् था । उसने बड़े वेगसे बलरामजीके सामने आकर अपने पिछले पैरोंसे उनकी छातीमें दुलत्ती मारी और इसके बाद वह दुष्ट बड़े जोरसे रेंकता हुआ वहाँसे हट गया ॥ ३० ॥ राजन् ! वह गधा क्रोधमें भरकर फिर रेंकता हुआ दूसरी बार बलरामजीके पास पहुँचा और उनकी ओर पीठ करके फिर बड़े क्रोधसे अपने पिछले पैरोंकी दुलत्ती चलायी ॥ ३१ ॥ बलरामजीने अपने एक ही हाथसे उसके दोनों पैर पकड़ लिये और उसे आकाशमें घुमाकर एक ताड़के पेड़पर दे मारा । घुमाते समय ही उस गधेके प्राणपखेरू उड़ गये थे ॥ ३२ ॥ उसके गिरनेकी चोटसे वह महान् ताड़का वृक्ष—जिसका ऊपरी भाग बहुत विशाल था—स्वयं तो तड़तड़ाकर गिर ही पड़ा, सटे हुए दूसरे वृक्षको भी उसने तोड़ डाला । उसने तीसरेको, तीसरेने चौथेको—इस प्रकार एक-दूसरेको गिराते हुए बहुत-से तालवृक्ष गिर पड़े ॥ ३३ ॥ बलरामजीके लिये तो यह एक खेल था । परन्तु उनके द्वारा फेंके हुए गधेके शरीरसे चोट खा-खाकर वहाँ सब-के-सब ताड़ हिल गये । ऐसा जान पड़ा, मानो सबको झंझावातने झकझोर दिया हो ॥ ३४ ॥ भगवान् बलराम स्वयं जगदीश्वर हैं । उनमें यह सारा संसार ठीक वैसे ही ओतप्रोत है, जैसे सूतोंमें वस्त्र । तब भला, उनके लिये यह कौन आश्चर्यकी बात है ॥ ३५ ॥ उस समय धेनुकासुरके भाई-बन्धु अपने भाईके मारे जानेसे क्रोधके मारे आगबबूला हो गये । सब-के-सब गधे बलरामजी और श्रीकृष्णपर बड़े वेगसे टूट पड़े ॥ ३६ ॥ राजन् !
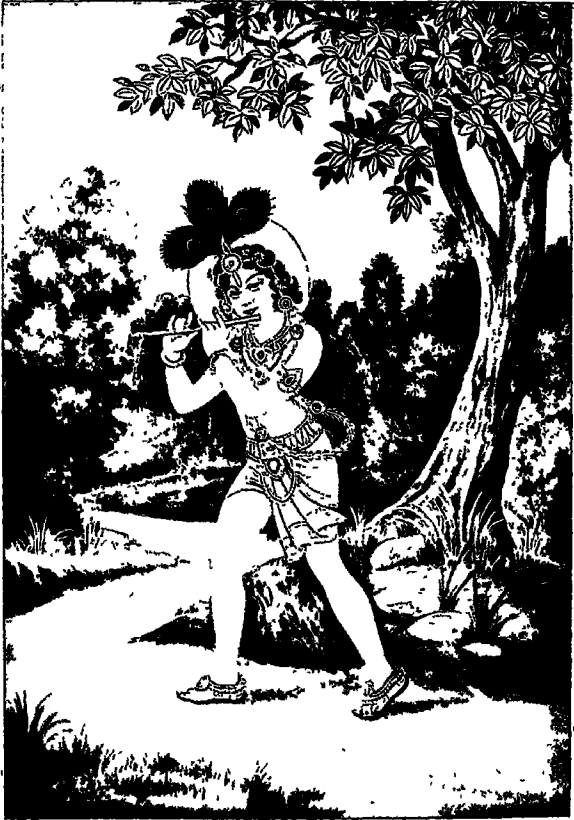
गोधूलि-धूसरित मुरलीधर

उनमेंसे जो-जो पास आया, उसी-उसीको बलरामजी और श्रीकृष्णने खेल-खेलमें ही पिछले पैर पकड़कर तालवृक्षों-पर दे मारा ॥३७॥ उस समय वह भूमि ताड़के फलोंसे पट गयी और टूटे हुए वृक्ष तथा दैत्योंके प्राणहीन शरीरोंसे भर गयी। जैसे बादलोंसे आकाश ढक गया हो, उस भूमिकी वैसी ही शोभा होने लगी ॥ ३८ ॥ बलरामजी और श्रीकृष्णकी यह मङ्गलमयी लीला देखकर देवतागण उनपर फूल बरसाने लगे और बाजे बजा-बजाकर स्तुति करने लगे ॥३९॥ जिस दिन धेनुकासुर मरा, उसी दिनसे लोग निडर होकर उस वनके तालफल खाने लगे तथा पशु भी स्वच्छन्दताके साथ घास चरने लगे ॥ ४० ॥

इसके बाद कमलदललोचन भगवान् श्रीकृष्ण बड़े भाई बलरामजीके साथ व्रजमें आये। उस समय उनके साथी ग्वालबाल उनके पीछे-पीछे चलते हुए उनकी स्तुति करते जाते थे। क्यों न हो; भगवान्‌की लीलाओंका श्रवण-कीर्तन ही सबसे बढ़कर पवित्र जो है ॥ ४१ ॥ उस समय श्रीकृष्णकी घुँघराली अलकोंपर गौओंके खुरोंसे उड़-उड़कर धूलि पड़ी हुई थी, सिरपर मोरपंखका मुकुट था और बालोंमें सुन्दर-सुन्दर जंगली पुष्प गुँथे हुए थे। उनके नेत्रोंमें मधुर चितवन और मुखपर मनोहर मुसकान थी। वे मधुर-मधुर मुरली बजा रहे थे और साथी ग्वालबाल उनकी ललित कीर्तिका गान कर रहे थे। बंशीकी ध्वनि सुनकर बहुत-सी गोपियाँ एक साथ ही व्रजसे बाहर निकल आयीं। उनकी आँखें न जाने कबसे श्रीकृष्णके दर्शनके लिये तरस रही थीं ॥ ४२ ॥ गोपियोंने अपने नेत्ररूप भ्रमरोंसे भगवान्‌के मुखारविन्दका मकरन्द-रस पान करके दिनभरके विरहकी जलन शान्त की। और भगवान्‌ने भी उनकी लाजभरी हँसी तथा विनयसे युक्त प्रेमभरी तिरछी चितवनका सत्कार स्वीकार करके व्रजमें प्रवेश किया ॥ ४३ ॥ उधर यशोदा मैया और रोहिणी-जीका हृदय वात्सल्यस्नेहसे उमड़ रहा था। उन्होंने श्याम और रामके घर पहुँचते ही उनकी इच्छाके अनुसार तथा समयके अनुरूप पहलेसे ही सोच-सँजोकर रक्खी हुई वस्तुएँ उन्हें खिलायीं-पिलायीं और पहनायीं ॥ ४४ ॥ माताओंने तेल-उबटन आदि लगाकर स्नान कराया। इससे उनकी दिनभर घूमने-फिरनेकी मार्गकी थकान दूर हो गयी। फिर उन्होंने सुन्दर वस्त्र पहनाकर दिव्य पुष्पोंकी माला पहनायी तथा चन्दन लगाया ॥ ४५ ॥ तत्पश्चात् दोनों भाइयोंने माताओंका परोसा हुआ स्वादिष्ट अन्न भोजन किया। इसके बाद बड़े लाड़-प्यारसे दुलार-दुलार-कर यशोदा और रोहिणीने उन्हें सुन्दर शय्यापर सुलाया। श्याम और राम बड़े आरामसे सो गये ॥ ४६ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण इस प्रकार वृन्दावनमें अनेकों लीलाएँ करते। एक दिन अपने सखा ग्वालबालोंके साथ वे यमुनातटपर गये। राजन्! उस दिन बलरामजी उनके साथ नहीं थे ॥ ४७ ॥ उस समय ज्येष्ठ-आषाढ़के घामसे गौएँ और ग्वालबाल अत्यन्त पीड़ित हो रहे थे। प्याससे उनका कण्ठ सूख रहा था। इसलिये उन्होंने यमुनाजीका विषैला जल पी लिया ॥ ४८ ॥ परीक्षित्! होनहारके वश उन्हें इस बातका ध्यान ही नहीं रहा था। उस विषैले जलके पीते ही सब गौएँ और ग्वाल-बाल प्राणहीन होकर यमुनाजीके तटपर गिर पड़े ॥ ४९ ॥ उन्हें ऐसी अवस्थामें देखकर योगेश्वरोंके भी ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णने अपनी अमृत बरसानेवाली दृष्टिसे उन्हें जीवित कर दिया। उनके स्वामी और सर्वस्व तो एकमात्र श्रीकृष्ण ही थे ॥ ५० ॥ परीक्षित्! चेतना आनेपर वे सब यमुनाजीके तटपर उठ खड़े हुए और आश्चर्यचकित होकर एक-दूसरेकी ओर देखने लगे ॥ ५१ ॥ राजन्! अन्तमें उन्होंने यही निश्चय किया कि हमलोग विषैला जल पी लेनेके कारण मर चुके थे, परन्तु हमारे श्रीकृष्णने अपनी अनुग्रहभरी दृष्टिसे देखकर हमें फिरसे जिला दिया है ॥ ५२ ॥

सोलहवाँ अध्याय

कालियपर कृपा

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण-ने देखा कि महाविषधर कालिय नागने यमुनाजीका जल विषैला कर दिया है। तब यमुनाजीको शुद्ध करनेके विचारसे उन्होंने वहाँसे उस सर्पको निकाल दिया ॥१॥

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—ब्रह्मन्! भगवान् श्रीकृष्णने यमुनाजीके अगाध जलमें किस प्रकार उस सर्पका दमन किया? फिर कालिय नाग तो जलचर जीव नहीं था, ऐसी दशामें वह अनेक युगोंतक जलमें क्यों और कैसे रहा? सो बतलाइये ॥२॥ ब्रह्मस्वरूप महात्मन्! भगवान् अनन्त हैं। वे अपनी लीला प्रकट करके स्वच्छन्द विहार करते हैं। गोपालरूपसे उन्होंने जो उदार लीला की है, वह तो अमृतस्वरूप है। भला, उसके सेवनसे कौन तृप्त हो सकता है? ॥ ३ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित्! यमुनाजीमें कालिय नागका एक कुण्ड था। उसका जल विषकी गर्मीसे खौलता रहता था। यहाँतक कि उसके ऊपर उड़नेवाले पक्षी भी झुलसकर उसमें गिर जाया करते थे॥४॥ उसके विषैले जलकी उत्ताल तरङ्गोंका स्पर्श करके तथा उसकी छोटी-छोटी बूँदें लेकर जब वायु बाहर आती और तटके घास-पात, वृक्ष, पशु-पक्षी आदिका स्पर्श करती, तब वे उसी समय मर जाते थे ॥ ५ ॥ परीक्षित्! भगवान्‌का अवतार तो दुष्टोंका दमन करनेके लिये होता ही है। जब उन्होंने देखा कि उस साँपके विषका वेग बड़ा प्रचण्ड (भयंकर) है और वह भयानक विष ही उसका महान् बल है तथा उसके कारण मेरे विहारका स्थान यमुनाजी भी दूषित हो गयी हैं, तब भगवान् श्रीकृष्ण अपनी कमरका फेंटा कसकर एक बहुत ऊँचे कदम्बके वृक्षपर चढ़ गये और वहाँसे ताल ठोंककर उस विषैले जलमें कूद पड़े ॥ ६ ॥ यमुनाजीका जल साँपके विषके कारण पहलेसे ही खौल रहा था। उसकी तरङ्गें लाल-पीली और अत्यन्त भयङ्कर उठ रही थीं। पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णके कूद पड़नेसे उसका जल और भी उछलने लगा। उस समय तो कालियदहका जल इधर-उधर उछलकर चार सौ हाथतक फैल गया! अचिन्त्य अनन्त बलशाली भगवान् श्रीकृष्णके लिये इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है ॥ ७ ॥ प्रिय परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण कालियदहमें कूदकर अतुल बलशाली मतवाले गजराजके समान जल उछालने लगे। इस प्रकार जल-क्रीडा करनेपर उनकी भुजाओंकी टक्करसे जलमें बड़े जोरका शब्द होने लगा। आँखसे ही सुननेवाले कालिय नागने वह आवाज सुनी और देखा कि कोई मेरे निवास-स्थानका तिरस्कार कर रहा है। उसे यह सहन न हुआ। वह चिढ़कर भगवान् श्रीकृष्णके सामने आ गया ॥ ८ ॥ उसने देखा कि सामने एक साँवला-सलोना बालक है। वर्षाकालीन मेघके समान अत्यन्त सुकुमार शरीर है, उसमें लगकर आँखें हटनेका नाम ही नहीं लेतीं। उसके वक्षः-स्थलपर एक सुनहली रेखा—श्रीवत्सका चिह्न है और वह पीले रंगका वस्त्र धारण किये हुए है। बड़े मधुर एवं मनोहर मुखपर मन्द-मन्द मुसकान अत्यन्त शोभायमान हो रही है। चरण इतने सुकुमार और सुन्दर हैं, मानो कमलकी गद्दी हो। इतना आकर्षक रूप होनेपर भी जब कालिय नागने देखा कि बालक तनिक भी न डरकर इस विषैले जलमें मौजसे खेल रहा है, तब उसका क्रोध और भी बढ़ गया। उसने श्रीकृष्णको मर्मस्थानोंमें डँसकर अपने शरीरके बन्धनसे उन्हें जकड़ लिया ॥९॥ भगवान् श्रीकृष्ण नागपाशमें बँधकर निश्चेष्ट हो गये। यह देखकर उनके प्यारे सखा ग्वालबाल बहुत ही पीड़ित हुए और उसी समय दुःख, पश्चात्ताप और भयसे मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। क्योंकि उन्होंने अपने शरीर, सुहृद्, धन-सम्पत्ति, स्त्री, पुत्र, भोग और कामनाएँ—सब कुछ भगवान् श्रीकृष्णको ही समर्पित कर रक्खा था ॥१०॥ गाय, बैल, बछिया और बछड़े बड़े दुःखसे डकराने लगे। श्रीकृष्णकी ओर ही उनकी टकटकी बँध रही थी। वे डरकर इस प्रकार खड़े हो गये, मानो रो रहे हों। उस समय उनका शरीर हिलता-डोलता तक न था ॥ ११ ॥

इधर व्रजमें पृथ्वी, आकाश और शरीरोंमें बड़े भयङ्कर-भयङ्कर तीनों प्रकारके उत्पात उठ खड़े हुए, जो इस बातकी सूचना दे रहे थे कि बहुत ही शीघ्र कोई अशुभ घटना घटनेवाली है ॥ १२ ॥ नन्दबाबा आदि गोपोंने पहले तो उन अशकुनोंको देखा और पीछेसे यह जाना कि आज श्रीकृष्ण बिना बलरामके ही गाय चराने चले गये। वे भयसे व्याकुल हो गये ॥ १३ ॥ वे भगवान्‌का प्रभाव नहीं जानते थे। इसीलिये उन अशकुनोंको देखकर उनके मनमें यह बात आयी कि आज तो श्रीकृष्णकी मृत्यु ही हो गयी होगी। वे उसी क्षण दुःख, शोक और भयसे आतुर हो गये। क्यों न हों, श्रीकृष्ण ही उनके प्राण, मन और सर्वस्व जो थे ॥ १४ ॥ प्रिय परीक्षित्! व्रजके बालक, वृद्ध और स्त्रियोंका स्वभाव गायों-जैसा

ही वात्सल्यपूर्ण था। वे मनमें ऐसी बात आते ही अत्यन्त दीन हो गये और अपने प्यारे कन्हैयाको देखनेकी उत्कट लालसासे घरद्वार छोड़कर निकल पड़े ॥ १५ ॥ बलराम-जी स्वयं भगवान्‌के स्वरूप और सर्वशक्तिमान् हैं। उन्होंने जब व्रजवासियोंको इतना कातर और इतना आतुर देखा, तब उन्हें हँसी आ गयी। परन्तु वे कुछ बोले नहीं, चुप ही रहे। क्योंकि वे अपने छोटे भाई श्रीकृष्णका प्रभाव भलीभाँति जानते थे ॥ १६ ॥ व्रज-वासी अपने प्यारे श्रीकृष्णको ढूँढने लगे। कोई अधिक कठिनाई न हुई; क्योंकि मार्गमें उन्हें भगवान्‌के चरणचिह्न मिलते जाते थे। जौ, कमल, अङ्कुश आदिसे युक्त होनेके कारण उन्हें पहचान होती जाती थी। इस प्रकार वे यमुना-तटकी ओर जाने लगे ॥ १७ ॥

परीक्षित्! मार्गमें गौओं और दूसरोंके चरणचिह्नोंके बीच-बीचमें भगवान्‌के चरणचिह्न भी दीख जाते थे। उनमें कमल, जौ, अङ्कुश, वज्र और ध्वजाके चिह्न बहुत ही स्पष्ट थे। उन्हें देखते हुए वे बहुत शीघ्रतासे चले ॥ १८ ॥ उन्होंने दूरसे ही देखा कि कालियदहमे कालिय नागके शरीरसे बँधे हुए श्रीकृष्ण चेष्टाहीन हो रहे हैं। कुण्डके किनारेपर ग्वालबाल अचेत हुए पड़े हैं और गौएँ, बैल, बछड़े आदि बड़े आर्तस्वरसे डकरा रहे हैं। यह सब देखकर वे सब गोप अत्यन्त व्याकुल और अन्तमें मूर्छित हो गये ॥ १९ ॥ गोपियोंका मन अनन्त गुणगणनिलय भगवान् श्रीकृष्णके प्रेमके रँगमें रँगा हुआ था। वे तो नित्य-निरन्तर भगवान्‌के सौहार्द, उनकी मधुर मुसकान, प्रेमभरी चितवन तथा मीठी वाणीका ही स्मरण करती रहती थीं। जब उन्होंने देखा कि हमारे प्रियतम श्यामसुन्दरको काले साँपने जकड़ रक्खा है, तब तो उनके हृदयमें बड़ा ही दुःख और बड़ी ही जलन हुई। अपने प्राणवल्लभ जीवनसर्वस्वके बिना उन्हें तीनों लोक सूने दीखने लगे ॥ २० ॥ माता यशोदा तो अपने लाड़ले लालके पीछे कालियदहमें कूदने ही जा रही थीं; परन्तु गोपियोंने उन्हें पकड़ लिया। उनके हृदयमें भी वैसी ही पीड़ा थी। उनकी आँखोंसे भी आँसुओंकी झड़ी लगी हुई थी। सबकी आँखें श्रीकृष्णके मुखकमलपर लगी थीं। जिनके शरीरमें चेतना थी, वे व्रजमोहन श्रीकृष्णकी पूतना-वध आदिकी प्यारी-प्यारी ऐश्वर्यकी लीलाएँ कह-कहकर यशोदाजीको धीरज बँधाने लगीं। किन्तु अधिकांश तो मुर्देकी तरह पड़ ही गयी थीं ॥ २१ ॥ परीक्षित्! नन्दबाबा आदिके जीवन-प्राण तो श्रीकृष्ण ही थे। वे श्रीकृष्णके लिये कालियदहमें घुसने लगे। यह देखकर श्रीकृष्णका प्रभाव जाननेवाले भगवान् बलराम-जीने किन्हींको समझा-बुझाकर, किन्हींको बलपूर्वक और किन्हींको उनके हृदयोंमें प्रेरणा करके रोक दिया ॥ २२ ॥

परीक्षित्! यह साँपके शरीरसे बँध जाना तो श्रीकृष्णकी मनुष्यों-जैसी एक लीला थी। जब उन्होंने देखा कि व्रजके सभी लोग स्त्री और बच्चोंके साथ मेरे लिये इस प्रकार अत्यन्त दुखी हो रहे हैं और सचमुच मेरे सिवा इनका कोई दूसरा सहारा भी नहीं है, तब वे एक मुहूर्ततक सर्पके बन्धनमें रहकर बाहर निकल आये ॥ २३ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने उस समय अपना शरीर फुलाकर खूब मोटा कर लिया। इससे साँपका शरीर टूटने लगा। वह अपना नागपाश छोड़कर अलग खड़ा हो गया और क्रोधसे आगबबूला हो अपने फण ऊँचा करके फुफकारें मारने लगा। घात मिलते ही श्रीकृष्णपर चोट करनेके लिये वह उनकी ओर टकटकी लगाकर देखने लगा। उस समय उसके नथुनोंसे विषकी फुहारें निकल रही थीं। उसकी आँखें स्थिर थीं और इतनी लाल-लाल हो रही थीं, मानो भट्ठीपर तपाया हुआ खपड़ा हो। उसके मुँहसे आगकी लपटें निकल रही थीं ॥ २४ ॥ उस समय कालिय नाग अपनी दुहरी जीभ लपलपाकर अपने होठोंके दोनों किनारोंको चाट रहा था और अपनी कराल आँखोंसे विषकी ज्वाला उग-लता जा रहा था। अपने वाहन गरुड़के समान भगवान् श्रीकृष्ण उसके साथ खेलते हुए पैंतरा बदलने लगे। और वह साँप भी उनपर चोट करनेका दाँव देखता हुआ पैंतरा बदलने लगा ॥ २५ ॥ इस प्रकार पैंतरा बदलते-बदलते उसका बल क्षीण हो गया। तब भगवान् श्रीकृष्णने उसके बड़े-बड़े सिरोंको तनिक दबा दिया और उछलकर उनपर सवार हो गये। कालिय नागके मस्तकों-पर बहुत-सी लाल-लाल मणियाँ थीं। उनके स्पर्शसे भगवान्‌के सुकुमार तलुओंकी लालिमा और भी बढ़

गयी। नृत्य-गान आदि समस्त कलाओंके आदिप्रवर्तक भगवान् श्रीकृष्ण उसके सिरोंपर कलापूर्ण नृत्य करने लगे ॥ २६ ॥ भगवान्‌के प्यारे भक्त गन्धर्व, सिद्ध, देवता, चारण और देवाङ्गनाओंने जब देखा कि भगवान् नृत्य करना चाहते हैं, तब वे बड़े प्रेमसे मृदङ्ग, ढोल, नगारे आदि बाजे बजाते हुए, सुन्दर-सुन्दर गीत गाते हुए, पुष्पोंकी वर्षा करते हुए और अपनेको निछावर करते हुए भेंट ले-लेकर उसी समय भगवान्‌के पास आ पहुँचे ॥ २७ ॥ परीक्षित्! कालिय नागके एक सौ एक सिर थे। वह अपने जिस सिरको नहीं झुकाता था, उसीको प्रचण्ड दण्डधारी भगवान् अपने पैरोंकी चोटसे कुचल डालते। इससे कालिय नागकी जीवनशक्ति क्षीण हो चली, वह मुँह और नथुनोंसे खून उगलने लगा। अन्तमें चक्कर काटते-काटते वह बेहोश हो गया ॥२८॥ तनिक भी चेत होता तो वह अपनी आँखोंसे विष उगलने लगता और क्रोधके मारे जोर-जोरसे फुफकारें मारने लगता। इस प्रकार वह अपने सिरोंमेंसे जिस सिरको ऊपर उठाता, उसीको नाचते हुए भगवान् श्रीकृष्ण अपने चरणोंकी ठोकरसे झुकाकर रौंद डालते। उस समय पुराण-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंपर जो खूनकी बूँदें पड़ती थी, उनसे ऐसा मालूम होता, मानो रक्त-पुष्पोंसे उनकी पूजा की जा रही हो ॥ २९ ॥ परीक्षित्! भगवान्‌के इस अद्भुत ताण्डव-नृत्यसे कालियके फणरूप छत्ते छिन्न-भिन्न हो गये। उसका एक-एक अंग चूर-चूर हो गया और मुँहसे खूनकी उल्टी होने लगी। अब उसे सारे जगत्‌के आदिशिक्षक पुराण-पुरुष भगवान् नारायणकी स्मृति हुई। वह मन-ही-मन भगवान्‌की शरणमें गया ॥ ३० ॥ भगवान् श्रीकृष्णके उदरमें सम्पूर्ण विश्व है। इसलिये उनके भारी बोझसे कालिय नागके शरीरकी एक-एक गाँठ ढीली पड़ गयी। उनकी एड़ियोंकी चोटसे उसके छत्रके समान फण छिन्न-भिन्न हो गये। अपने पतिकी यह दशा देखकर उसकी पत्नियाँ भगवान्‌की शरणमें आयीं। वे अत्यन्त आतुर हो रही थीं। भयके मारे उनके वस्त्राभूषण अस्त-व्यस्त हो रहे थे और केशकी चोटियाँ भी बिखर रही थीं ॥ ३१ ॥ उस समय उन साध्वी नागपत्नियोंके चित्तमे बडी घबड़ाहट थी। अपने बालकोंको आगे करके वे पृथ्वीपर लोट गयीं और हाथ जोड़कर उन्होंने समस्त प्राणियोंके एकमात्र स्वामी भगवान् श्रीकृष्णको प्रणाम किया। भगवान् श्रीकृष्णको शरणागतवत्सल जानकर अपने अपराधी पतिको छुड़ानेकी इच्छासे उन्होंने उनकी शरण ग्रहण की ॥ ३२ ॥

नागपत्नियोंने कहा—प्रभो! आपका यह अवतार ही दुष्टोंको दण्ड देनेके लिये हुआ है। इसलिये इस अपराधीको दण्ड देना सर्वथा उचित है। आपकी दृष्टिमें शत्रु और पुत्रका कोई भेदभाव नहीं है। इसलिये आप जो किसीको दण्ड देते हैं, वह उसके पापोंका प्रायश्चित्त कराने और उसका परम कल्याण करनेके लिये ही ॥३३॥ आपने हमलोगोंपर यह बड़ा ही अनुग्रह किया। यह तो आपका कृपा-प्रसाद ही है। क्योंकि आप जो दुष्टोंको दण्ड देते हैं, उससे उनके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। इस सर्पके अपराधी होनेमें तो कोई सन्देह ही नहीं है। यदि यह अपराधी न होता, तो इसे सर्पकी योनि ही क्यों मिलती? इसलिये हम सच्चे हृदयसे आपके इस क्रोधको भी आपका अनुग्रह ही समझती हैं ॥ ३४ ॥ अवश्य ही पूर्वजन्ममे इसने स्वयं मानरहित होकर और दूसरोंका सम्मान करते हुए कोई बहुत बड़ी तपस्या की है। अथवा सब जीवोंपर दया करते हुए इसने कोई बहुत बड़ा धर्म किया है। तभी तो आप इसके ऊपर सन्तुष्ट हुए हैं। क्योंकि सर्व-जीवस्वरूप आपकी प्रसन्नताका यही उपाय है ॥ ३५ ॥ भगवन्! हम नहीं समझ पातीं कि यह इसकी किस साधनाका फल है, जो यह आपके चरणकमलोंकी धूलका स्पर्श पानेका अधिकारी हुआ है। आपके चरणोंकी रज इतनी दुर्लभ है कि उसके लिये आपकी अर्द्धाङ्गिनी लक्ष्मीजीको भी बहुत दिनोंतक समस्त भोगोंका त्याग करके नियमोंका पालन करते हुए तपस्या करनी पड़ी थी ॥ ३६ ॥ प्रभो! जो आपके चरणोंकी धूलकी शरण ले लेते हैं, वे भक्तजन स्वर्गका राज्य या पृथ्वीकी बादशाही नहीं चाहते। न वे रसातलका ही राज्य चाहते और न तो ब्रह्माका पद ही लेना चाहते हैं। उन्हे अणिमादि योग-सिद्धियोंकी भी चाह नहीं होती। यहाँतक कि वे जन्म-मृत्युसे छुडानेवाले कैवल्य-मोक्षकी भी इच्छा नहीं करते ॥ ३७ ॥ स्वामी! यह नागराज तमोगुणी योनिमें उत्पन्न हुआ है और

अत्यन्त क्रोधी है। फिर भी इसे आपकी वह परम पवित्र चरणरज प्राप्त हुई, जो दूसरोंके लिये सर्वथा दुर्लभ है; तथा जिसको प्राप्त करनेकी इच्छामात्रसे ही संसारचक्रमें पड़े हुए जीवको संसारके वैभव-सम्पत्तिकी तो बात ही क्या—मोक्षकी भी प्राप्ति हो जाती है ॥ ३८ ॥

प्रभो! हम आपको प्रणाम करती हैं। आप अनन्त एवं अचिन्त्य ऐश्वर्यके नित्य निधि हैं। आप सबके अन्तः-करणोंमें विराजमान होनेपर भी अनन्त हैं। आप समस्त प्राणियों और पदार्थोंके आश्रय तथा सब पदार्थोंके रूपमें भी विद्यमान हैं। आप प्रकृतिसे परे स्वयं परमात्मा हैं ॥ ३९ ॥ आप सब प्रकारके ज्ञान और अनुभवोंके खजाने हैं। आपकी महिमा और शक्ति अनन्त है। आपका स्वरूप अप्राकृत—दिव्य चिन्मय है, प्राकृतिक गुणों एवं विकारोंका आप कभी स्पर्श ही नहीं करते। आप ही ब्रह्म हैं, हम आपको नमस्कार कर रही हैं ॥ ४० ॥ आप प्रकृतिमें क्षोभ उत्पन्न करनेवाले काल हैं, कालशक्तिके आश्रय हैं और कालके क्षण-कल्प आदि समस्त अवयवोंके साक्षी हैं। आप विश्वरूप होते हुए भी उससे अलग रहकर उसके द्रष्टा हैं। आप उसके बनानेवाले निमित्त-कारण तो हैं ही, उसके रूपमें बननेवाले उपादानकारण भी हैं ॥ ४१ ॥ प्रभो! पञ्चभूत, उनकी तन्मात्राएँ, इन्द्रियाँ, प्राण, मन, बुद्धि और इन सबका खजाना चित्त—ये सब आप ही हैं। तीनों गुण और उनके कार्योंमें होनेवाले अभिमानके द्वारा आपने अपने साक्षात्कार-को छिपा रक्खा है ॥ ४२ ॥ आप देश, काल और वस्तुओंकी सीमासे बाहर—अनन्त हैं। सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म और कार्य-कारणोंके समस्त विकारोंमें भी एकरस, विकाररहित और सर्वज्ञ हैं। ईश्वर हैं कि नहीं हैं, सर्वज्ञ हैं कि अल्पज्ञ इत्यादि अनेक मतभेदोंके अनुसार आप उन-उन मतवादियोंको उन्हीं-उन्हीं रूपोंमें दर्शन देते हैं। समस्त शब्दोंके अर्थके रूपमें तो आप हैं ही, शब्दोंके रूपमें भी हैं तथा उन दोनोंका सम्बन्ध जोड़ने-वाली शक्ति भी आप ही हैं। हम आपको नमस्कार करती हैं ॥ ४३ ॥ प्रत्यक्ष-अनुमान आदि जितने भी प्रमाण हैं, उनको प्रमाणित करनेवाले मूल आप ही हैं। समस्त शास्त्र आपसे ही निकले हैं और आपका ज्ञान स्वतःसिद्ध है। आप ही मनको लगानेकी विधिके रूपमें और उसको सब कहींसे हटा लेनेकी आज्ञाके रूपमें प्रवृत्तिमार्ग और निवृत्तिमार्ग हैं। इन दोनोंके मूल वेद भी स्वयं आप ही हैं। हम आपको बार-बार नमस्कार करती हैं ॥ ४४ ॥ आप शुद्धसत्त्वमय वसुदेवके पुत्र वासुदेव, सङ्कर्षण एवं प्रद्युम्न और अनिरुद्ध भी हैं। इस प्रकार चतुर्व्यूहके रूपमें आप भक्तों तथा यादवोंके स्वामी हैं। श्रीकृष्ण! हम आपको नमस्कार करती हैं ॥ ४५ ॥ आप अन्तःकरण और उसकी वृत्तियोंके प्रकाशक हैं, और उन्हींके द्वारा अपने-आपको ढक रखते हैं। उन अन्तःकरण और वृत्तियोंके द्वारा ही आपके स्वरूपका कुछ-कुछ संकेत भी मिलता है। आप उन गुणों और उनकी वृत्तियोंके साक्षी तथा स्वयंप्रकाश हैं। हम आपको नमस्कार करती हैं ॥ ४६ ॥ आप मूलप्रकृतिमें नित्य विहार करते रहते हैं। समस्त स्थूल और सूक्ष्म जगत्‌की सिद्धि आपसे ही होती है। हृषीकेश! आप मननशील आत्माराम हैं। मौन ही आपका स्वभाव है। आपको हमारा नमस्कार है ॥ ४७ ॥ आप स्थूल, सूक्ष्म समस्त गतियोंके जाननेवाले तथा सबके साक्षी हैं। आप नामरूपात्मक विश्वप्रपञ्चके निषेधकी अवधि तथा उसके अधिष्ठान होनेके कारण विश्वरूप भी हैं। आप विश्वके अध्यास तथा अपवादके साक्षी हैं एवं अज्ञानके द्वारा उसकी सत्यत्वभ्रान्ति एवं स्वरूपज्ञानके द्वारा उसकी आत्यन्तिक निवृत्तिके भी कारण हैं। आपको हमारा नमस्कार है ॥ ४८ ॥

प्रभो! यद्यपि कर्तापन न होनेके कारण आप कोई भी कर्म नहीं करते, निष्क्रिय हैं—तथापि अनादि कालशक्तिको स्वीकार करके प्रकृतिके गुणोंके द्वारा आप इस विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयकी लीला करते हैं। क्योंकि आपकी लीलाएँ अमोघ हैं। आप सत्य-सङ्कल्प हैं। इसलिये जीवोंके संस्काररूपसे छिपे हुए स्वभावोंको अपनी दृष्टिसे जाग्रत् कर देते हैं ॥ ४९ ॥ त्रिलोकीमें तीन प्रकारकी योनियाँ हैं—सत्त्वगुण प्रधान शान्त, रजोगुणप्रधान अशान्त और तमोगुणप्रधान मूढ़। वे सब-की-सब आपकी लीलामूर्तियाँ हैं। फिर भी इस समय आपको सत्त्वगुणप्रधान शान्तजन ही विशेष प्रिय हैं। क्योंकि आपका यह अवतार और ये लीलाएँ साधुजनों-

की रक्षा तथा धर्मकी रक्षा एवं विस्तारके लिये ही हैं ॥ ५० ॥ शान्तात्मन् ! स्वामीको एक बार अपनी प्रजाका अपराध सह लेना चाहिये । यह मूढ़ है, आपको पहचानता नहीं है, इसलिये इसे क्षमा कर दीजिये ॥ ५१ ॥ भगवन् ! कृपा कीजिये, अब यह सर्प मरनेहीवाला है । साधु पुरुष सदासे ही हम अबलाओंपर दया करते आये हैं । अतः आप हमें हमारे प्राणस्वरूप पतिदेवको दे दीजिये ॥ ५२ ॥ हम आपकी दासी हैं । हमें आप आज्ञा दीजिये, आपकी क्या सेवा करें ? क्योंकि जो श्रद्धाके साथ आपकी आज्ञाओंका पालन—आपकी सेवा करता है, वह सब प्रकारके भयोंसे छुटकारा पा जाता है ॥ ५३ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! भगवान्‌के चरणोंकी ठोकरोंसे कालिय नागके फण छिन्न-भिन्न हो गये थे । वह बेसुध हो रहा था । जब नागपत्नियोंने इस प्रकार भगवान्‌की स्तुति की, तब उन्होंने दया करके उसे छोड़ दिया ॥ ५४ ॥ धीरे-धीरे कालिय नागकी इन्द्रियों और प्राणोंमें कुछ-कुछ चेतना आ गयी । वह बड़ी कठिनतासे श्वास लेने लगा और थोड़ी देरके बाद बड़ी दीनतासे हाथ जोड़कर भगवान् श्रीकृष्णसे इस प्रकार बोला ॥ ५५ ॥

कालिय नागने कहा—नाथ ! हम जन्मसे ही दुष्ट, तमोगुणी और बहुत दिनोंके बाद भी बदला लेनेवाले—बड़े क्रोधी जीव हैं । जीवोंके लिये अपना स्वभाव छोड़ देना बहुत कठिन है । इसीके कारण संसारके लोग नाना प्रकारके दुराग्रहोंमें फँस जाते हैं ॥ ५६ ॥ विश्वविधाता ! आपने ही गुणोंके भेदसे इस जगत्‌में नाना प्रकारके स्वभाव, वीर्य, बल, योनि, बीज, चित्त और आकृतियोंका निर्माण किया है ॥ ५७ ॥ भगवन् ! आपकी ही सृष्टिमें हम सर्प भी हैं । हम जन्मसे ही बड़े क्रोधी होते हैं । हम इस मायाके चक्करमें स्वयं मोहित हो रहे हैं । फिर अपने प्रयत्नसे इस दुस्त्यज मायाका त्याग कैसे करें ॥ ५८ ॥ आप सर्वज्ञ और सम्पूर्ण जगत्‌के स्वामी है । आप ही हमारे स्वभाव और इस मायाके भी कारण हैं । अब आप अपनी इच्छासे—जैसा ठीक समझें—कृपा कीजिये या दण्ड दीजिये ॥ ५९ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—कालिय नागकी बात सुनकर लीलामनुष्य भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'सर्प ! अब तुझे यहाँ नहीं रहना चाहिये । तू अपने जाति-भाई, पुत्र और स्त्रियोंके साथ शीघ्र ही यहाँसे समुद्रमें चला जा । अब गौएँ और मनुष्य यमुना-जलका उपभोग करें ॥ ६० ॥ जो मनुष्य दोनों समय तुझको दी हुई मेरी इस आज्ञाका स्मरण तथा कीर्तन करे, उसे साँपोंसे कभी भय न हो ॥ ६१ ॥ मैंने इस कालियदहमें क्रीडा की है । इसलिये जो पुरुष इसमें स्नान करके जलसे देवता और पितरोंका तर्पण करेगा, एवं उपवास करके मेरा स्मरण करता हुआ मेरी पूजा करेगा—वह सब पापोंसे मुक्त हो जायगा ॥ ६२ ॥ मैं जानता हूँ कि तू गरुडके भयसे रमणक द्वीप छोड़कर इस दहमें आ बसा था । अब तेरा शरीर मेरे चरणचिह्नोंसे अङ्कित हो गया है । इसलिये जा, अब गरुड तुझे खायेंगे नहीं ॥ ६३ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—भगवान् श्रीकृष्णकी एक-एक लीला अद्भुत है । उनकी ऐसी आज्ञा पाकर कालिय नाग और उसकी पत्नियोंने आनन्दसे भरकर बड़े आदरसे उनकी पूजा की ॥ ६४ ॥ उन्होंने दिव्य वस्त्र, पुष्पमाला, मणि, बहुमूल्य आभूषण, दिव्य गन्ध, चन्दन और अति उत्तम कमलोंकी मालासे जगत्‌के स्वामी गरुडध्वज भगवान् श्रीकृष्णका पूजन करके उन्हें प्रसन्न किया । इसके बाद बड़े प्रेम और आनन्दसे उनकी परिक्रमा की, वन्दना की और उनसे अनुमति ली । तब अपनी पत्नियों, पुत्रों और बन्धु-बान्धवोंके साथ रमणक द्वीपकी, जो समुद्रमें सर्पोंके रहनेका एक स्थान है, यात्रा की । लीला-मनुष्य भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे यमुनाजीका जल केवल विषहीन ही नहीं, बल्कि उसी समय अमृतके समान मधुर हो गया ॥ ६५—६७ ॥

सत्रहवाँ अध्याय

कालियके कालियदहमें आनेकी कथा तथा भगवान्‌का व्रजवासियोंको दावानलसे बचाना

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन् ! कालिय नागने नागोंके निवासस्थान रमणक द्वीपको क्यों छोड़ा था ?

नागपत्नियोंके द्वारा सुभूषित श्यामसुन्दर

और उस अकेलेने ही गरुडजीका कौन-सा अपराध किया था? ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित् ! पूर्वकालमें गरुडजीको उपहारस्वरूप प्राप्त होनेवाले सर्पोंने यह नियम कर लिया था कि प्रत्येक मासमें निर्दिष्ट वृक्षके नीचे गरुडको एक सर्पकी भेंट दी जाय ॥ २ ॥ इस नियमके अनुसार प्रत्येक अमावस्याको सारे सर्प अपनी रक्षाके लिये महात्मा गरुडजीको अपना-अपना भाग देते रहते थे* ॥ ३ ॥ उन सर्पोंमें कद्रूका पुत्र कालिय नाग अपने विष और बलके घमंडसे मतवाला हो रहा था। उसने गरुडका तिरस्कार करके स्वयं तो बलि देना दूर रहा—दूसरे साँप जो गरुडको बलि देते, उसे भी खा लेता ॥ ४ ॥ परीक्षित् ! यह सुनकर भगवान्के प्यारे पार्षद शक्तिशाली गरुडको बड़ा क्रोध आया। इसलिये उन्होंने कालिय नागको मार डालनेके विचारसे बड़े वेगसे उसपर आक्रमण किया ॥ ५ ॥ विषधर कालिय नागने जब देखा कि गरुड बड़े वेगसे मुझपर आक्रमण करने आ रहे हैं तब वह अपने एक सौ एक फण फैलाकर डसनेके लिये उनपर टूट पड़ा। उसके पास शस्त्र थे केवल दाँत, इसलिये उसने दाँतोंसे गरुडको डस लिया। उस समय वह अपनी भयावनी जीभें लपलपा रहा था, उसकी साँस लंबी चल रही थी और आँखें बड़ी डरावनी जान पड़ती थीं ॥ ६ ॥ तार्क्ष्यनन्दन गरुडजी विष्णुभगवान्के वाहन हैं और उनका वेग तथा पराक्रम भी अतुलनीय है। कालिय नागकी यह ढिठाई देखकर उनका क्रोध और भी बढ़ गया तथा उन्होंने उसे अपने शरीरसे झटककर फेंक दिया एवं अपने सुनहले बायें पंखसे कालिय नागपर बड़े जोरसे प्रहार किया ॥ ७ ॥ उनके पंखकी चोटसे कालिय नाग घायल हो गया। वह घबड़ाकर वहाँसे भगा और यमुनाजीके इस कुण्डमें चला आया। यमुनाजीका यह कुण्ड गरुडके लिये अगम्य था। साथ ही वह इतना गहरा था कि उसमें दूसरे लोग भी नहीं जा सकते थे ॥ ८ ॥ इसी स्थानपर एक दिन क्षुधातुर गरुडने तपस्वी सौभरिके मना करनेपर भी अपने अभीष्ट भक्ष्य मत्स्यको बलपूर्वक पकड़कर खा लिया ॥ ९ ॥ अपने मुखिया मत्स्यराजके मारे जानेके कारण मछलियोंको बड़ा कष्ट हुआ। वे अत्यन्त दीन और व्याकुल हो गयीं। उनकी यह दशा देखकर महर्षि सौभरिको बड़ी दया आयी। उन्होंने उस कुण्डमे रहनेवाले सब जीवोंकी भलाईके लिये गरुडको यह शाप दे दिया ॥ १० ॥ 'यदि गरुड फिर कभी इस कुण्डमे घुसकर मछलियोंको खायेंगे, तो उसी क्षण प्राणोंसे हाथ धो बैठेंगे। मैं यह सत्य-सत्य कहता हूँ' ॥ ११ ॥ परीक्षित् ! महर्षि सौभरिके इस शापकी बात कालिय नागके सिवा और कोई साँप नहीं जानता था। इसलिये वह गरुडके भयसे वहाँ रहने लगा था और अब भगवान् श्रीकृष्णने उसे निर्भय करके वहाँसे रमणक द्वीपमें भेज दिया ॥ १२ ॥

परीक्षित् ! इधर भगवान् श्रीकृष्ण दिव्य माला, गन्ध, वस्त्र, महामूल्य मणि और सुवर्णमय आभूषणोंसे विभूषित हो उस कुण्डसे बाहर निकले ॥ १३ ॥ उनको देखकर सब-के-सब व्रजवासी इस प्रकार उठ खड़े हुए, जैसे प्राणोंको पाकर इन्द्रियाँ सचेत हो जाती है। सभी गोपोंका हृदय आनन्दसे भर गया। वे बड़े प्रेम और प्रसन्नतासे अपने कन्हैयाको हृदयसे लगाने लगे ॥ १४ ॥ परीक्षित् ! यशोदारानी, रोहिणीजी, नन्दबाबा, गोपी और गोप—सभी श्रीकृष्णको पाकर सचेत हो गये। उनका मनोरथ सफल हो गया ॥ १५ ॥ बलरामजी तो भगवान्का प्रभाव जानते ही थे। वे श्रीकृष्णको हृदयसे लगाकर हँसने लगे। पर्वत, वृक्ष, गाय, बैल, बछड़े—सब-के सब आनन्दमग्न हो गये ॥ १६ ॥ गोपोंके कुलगुरु ब्राह्मणोंने अपनी पत्नियोंके साथ नन्दबाबाके पास आकर कहा—'नन्दजी ! तुम्हारे बालकको कालिय नागने पकड़ लिया था। सो छूटकर आ गया। यह बड़े सौभाग्यकी

---

* यह कथा इस प्रकार है—गरुडजीकी माता विनता और सर्पोंकी माता कद्रूमें परस्पर वैर था। माताका वैर स्मरण कर गरुडजी जो सर्प मिलता उसीको खा जाते। इससे व्याकुल होकर सब सर्प ब्रह्माजीकी शरणमें गये। तब ब्रह्माजीने यह नियम कर दिया कि प्रत्येक अमावास्याको प्रत्येक सर्पपरिवार बारी-बारीसे गरुडजीको एक सर्पकी बलि दिया करे।

बात है ! ॥१७॥ श्रीकृष्णके मृत्युके मुखसे लौट आनेके उपलक्ष्यमें तुम ब्राह्मणोंको दान करो।' परीक्षित् ! ब्राह्मणोंकी बात सुनकर नन्दबाबाको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने बहुत-सा सोना और गौएँ ब्राह्मणोंको दान दीं ॥ १८ ॥ परमसौभाग्यवती देवी यशोदाने भी कालके गालसे बचे हुए अपने लालको गोदमें लेकर हृदयसे चिपका लिया। उनकी आँखोंसे आनन्दके आँसुओंकी बूँदें बार-बार टपकी पड़ती थीं ॥ १९ ॥

राजेन्द्र ! व्रजवासी और गौएँ सब बहुत ही थक गये थे। ऊपरसे भूख-प्यास भी लग रही थी। इसलिये उस रात वे व्रजमें नहीं गये, वहीं यमुनाजीके तटपर सो रहे ॥ २० ॥ गर्मीके दिन थे, उधरका वन सूख गया था। आधी रातके समय उसमें आग लग गयी। उस आगने सोये हुए व्रजवासियोंको चारों ओरसे घेर लिया और वह उन्हें जलाने लगी ॥ २१ ॥ आगकी आँच लगनेपर व्रजवासी घबड़ाकर उठ खड़े हुए और लीला-मनुष्य भगवान् श्रीकृष्णकी शरणमें गये ॥ २२ ॥ उन्होंने कहा—'प्यारे श्रीकृष्ण ! श्यामसुन्दर ! महाभाग्यवान् बलराम ! तुम दोनोंका बल-विक्रम अनन्त है। देखो, देखो, यह भयङ्कर आग तुम्हारे सगे-सम्बन्धी हम स्वजनोंको जलाना ही चाहती है ॥२३॥ तुममें सब सामर्थ्य है। हम तुम्हारे सुहृद् हैं इसलिये इस प्रलयकी अपार आगसे हमें बचाओ। प्रभो ! हम मृत्युसे नहीं डरते; परन्तु तुम्हारे अकुतोभय चरणकमल छोड़नेमें हम असमर्थ हैं ॥ २४ ॥ भगवान् अनन्त हैं; वे अनन्त शक्तियोंको धारण करते हैं, उन जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्णने जब देखा कि मेरे स्वजन इस प्रकार व्याकुल हो रहे हैं, तब वे उस भयङ्कर आगको पी गये।* ॥ २५ ॥

अठारहवाँ अध्याय

प्रलम्बासुर-उद्धार

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! अब आनन्दित स्वजन-सम्बन्धियोंसे घिरे हुए एवं उनके मुखसे अपनी कीर्तिका गान सुनते हुए श्रीकृष्णने गोकुलमण्डित गोष्ठमें प्रवेश किया ॥ १ ॥ इस प्रकार अपनी योगमायासे ग्वालका-सा वेष बनाकर राम और श्याम व्रजमें क्रीडा कर रहे थे। उन दिनों ग्रीष्म ऋतु थी। यह शरीर-धारियोंको बहुत प्रिय नहीं है ॥ २ ॥ परन्तु वृन्दावनके स्वाभाविक गुणोंसे वहाँ वसन्तकी ही छटा छिटक रही थी। इसका कारण था, वृन्दावनमें परम मधुर भगवान् श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण और बलरामजी निवास जो करते थे ॥ ३ ॥ झींगुरोंकी तीखी झंकार झरनोंके मधुर झर-झरमें छिप गयी थी। उन झरनोंसे सदा-सर्वदा बहुत ठंडी जलकी फुहियाँ उड़ा करती थीं, जिनसे वहाँके वृक्षोंकी हरियाली देखते ही बनती थी ॥ ४ ॥ जिधर देखिये, हरी-हरी दूबसे पृथ्वी हरी-हरी हो रही है। नदी, सरोवर एवं झरनोंकी लहरोंका स्पर्श करके जो वायु चलती थी उसमें लाल-पीले-नीले, तुरतके खिले हुए, देरके खिले हुए—कह्लार, उत्पल आदि अनेकों प्रकारके कमलोंका पराग मिला हुआ होता था। इस शीतल, मन्द और सुगन्ध वायुके कारण वनवासियों-

---

अग्नि-पान

* १—मैं सबका दाह दूर करनेके लिये ही अवतीर्ण हुआ हूँ। इसलिये यह दाह दूर करना भी मेरा कर्तव्य है।

२—रामावतारमें श्रीजानकीजीको सुरक्षित रखकर अग्निने मेरा उपकार किया था। अब उसको अपने मुखमें स्थापित करके उसका सत्कार करना कर्तव्य है।

३. कार्यका कारणमें लय होता है। भगवान्‌के मुखसे अग्नि प्रकट हुआ—मुखाद् अग्निरजायत। इसलिये भगवान्‌ने उसे मुखमें ही स्थापित किया।

४. मुखके द्वारा अग्नि शान्त करके यह भाव प्रकट किया कि भव-दावाग्निको शान्त करनेमें भगवान्‌के मुख-स्थानीय ब्राह्मण ही समर्थ हैं।

को गर्मीका किसी प्रकारका क्लेश नहीं सहना पड़ता था। न दावाग्निका ताप लगता था और न तो सूर्यका घाम ही ॥ ५ ॥ नदियोंमें अगाध जल भरा हुआ था। बड़ी-बड़ी लहरें उनके तटोंको चूम जाया करती थीं। वे उनके पुलिनोंसे टकरातीं और उन्हें स्वच्छ बना जातीं। उनके कारण आस-पासकी भूमि गीली बनी रहती और सूर्यकी अत्यन्त उग्र तथा तीखी किरणें भी वहाँकी पृथ्वी और हरी-भरी घासको नहीं सुखा सकती थीं; चारों ओर हरियाली छा रही थी ॥ ६ ॥ उस वनमें वृक्षोंकी पाँत-की-पाँत फूलोंसे लद रही थी। जहाँ देखिये, वहींसे सुन्दरता फूटी पड़ती थी। कहीं रंग-बिरंगे पक्षी चहक रहे हैं, तो कहीं तरह-तरहके हरिन चौकड़ी भर रहे हैं। कहीं मोर कूक रहे हैं, तो कहीं भौंरे गुंजार कर रहे हैं। कहीं कोयलें कुहक रही हैं, तो कहीं सारस अलग ही अपना अलाप छेड़े हुए हैं ॥ ७ ॥ ऐसा सुन्दर वन देखकर श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण और गौरसुन्दर बलरामजीने उसमें विहार करनेकी इच्छा की। आगे-आगे गौएँ चलीं, पीछे-पीछे ग्वालबाल और बीचमें अपने बड़े भाईके साथ बाँसुरी बजाते हुए श्रीकृष्ण ! ॥ ८ ॥

राम, श्याम और ग्वालबालोंने नव पल्लवों, मोरपंखके गुच्छों, सुन्दर-सुन्दर पुष्पोंके हारों और गेरू आदि रंगीन धातुओंसे अपनेको भाँति-भाँतिसे सजा लिया। फिर कोई आनन्दमें मग्न होकर नाचने लगा, तो कोई ताल ठोंककर कुश्ती लड़ने लगा और किसी-किसीने राग अलापना शुरू कर दिया ॥९॥ जिस समय श्रीकृष्ण नाचने लगते, उस समय कुछ ग्वालबाल गाने लगते और कुछ बाँसुरी तथा सींग बजाने लगते। कुछ हथेलीसे ही ताल देते, तो कुछ 'वाह-वाह' करने लगते ॥१०॥ परीक्षित् ! उस समय नट जैसे अपने नायककी प्रशंसा करते हैं, वैसे ही देवतालोग ग्वालबालोंका रूप धारण करके वहाँ आते और गोपजातिमें जन्म लेकर छिपे हुए बलराम और श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगते ॥ ११ ॥ घुँघराली अलकोंवाले श्याम और बलराम कभी एक-दूसरेका हाथ पकड़कर कुम्हारके चाककी तरह चक्कर काटते—घुमरी-परेता खेलते, कभी एक-दूसरेसे अधिक फाँद जानेकी इच्छासे कूदते—कूँड़ी डाकते, कभी कहीं होड़ लगाकर ढेले फेंकते, तो कभी ताल ठोंक-ठोंककर रस्साकसी करते—एक दल दूसरे दलके विपरीत रस्सी पकड़कर खींचता और कभी कहीं एक-दूसरेसे कुश्ती लड़ते-लड़ाते। इस प्रकार तरह-तरहके खेल खेलते ॥ १२ ॥ कहीं-कहीं जब दूसरे ग्वालबाल नाचने लगते तो श्रीकृष्ण और बलरामजी गाते या बाँसुरी, सींग आदि बजाते। और महाराज ! कभी-कभी वे 'वाह-वाह' कहकर उनकी प्रशंसा भी करने लगते ॥ १३ ॥ कभी एक-दूसरेपर बेल, जायफल या आँवलेके फल हाथमें लेकर फेंकते। कभी एक-दूसरेकी आँख बंद करके छिप जाते और वह पीछेसे ढूँढ़ता—इस प्रकार आँखमिचौनी खेलते। कभी एक दूसरेको छूनेके लिये बहुत दूर-दूरतक दौड़ते रहते और कभी पशु-पक्षियोंकी चेष्टाओंका अनुकरण करते ॥ १४ ॥ कहीं मेढकोंकी तरह फुदक-फुदककर चलते, तो कभी मुँह बना-बनाकर एक दूसरेकी हँसी उड़ाते। कहीं रस्सियोंसे वृक्षोंपर झूला डालकर झूलते, तो कभी दो बालकोंको खड़ा कराकर उनकी बाँहोंके बलपर ही लटकने लगते। कभी किसी राजाकी नकल करने लगते ॥१५॥ इस प्रकार राम और श्याम वृन्दावनकी नदी, पर्वत, घाटी, कुञ्ज, वन और सरोवरोंमें वे सभी खेल खेलते, जो साधारण बच्चे संसारमें खेला करते हैं ॥ १६ ॥

एक दिन जब बलराम और श्रीकृष्ण ग्वालबालोंके साथ उस वनमें गौएँ चरा रहे थे, तब ग्वालके वेषमें प्रलम्ब नामका एक असुर आया। उसकी इच्छा थी कि मैं श्रीकृष्ण और बलरामको हर ले जाऊँ ॥ १७ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण सर्वज्ञ हैं। वे उसे देखते ही पहचान गये। फिर भी उन्होंने उसका मित्रताका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। वे मन-ही-मन यह सोच रहे थे कि किस युक्तिसे इसका वध करना चाहिये ॥१८॥ ग्वालबालोंमें सबसे बड़े खिलाड़ी, खेलोंके आचार्य श्रीकृष्ण ही थे। उन्होंने सब ग्वालबालोंको बुलाकर कहा—'मेरे प्यारे मित्रो ! आज हमलोग अपनेको उचित रीतिसे दो दलोंमें बाँट लें। और फिर आनन्दसे खेलें ॥ १९ ॥ उस खेलमें ग्वालबालोंने बलराम और श्रीकृष्णको नायक

बनाया । कुछ श्रीकृष्णके साथी बन गये और कुछ बलरामके ॥ २० ॥ फिर उन लोगोंने तरह-तरहसे ऐसे बहुत-से खेल खेले, जिनमें एक दलके लोग दूसरे दलके लोगोंको अपनी पीठपर चढ़ाकर एक निर्दिष्ट स्थानपर ले जाते थे । जीतनेवाला दल चढ़ता था और हारनेवाला दल ढोता था ॥ २१ ॥ इस प्रकार एक दूसरेकी पीठपर चढ़ते-चढ़ाते श्रीकृष्ण आदि ग्वालबाल गौएँ चराते हुए भाण्डीर नामक वटके पास पहुँच गये ॥२२॥

परीक्षित् ! एक बार बलरामजीके दलवाले श्रीदामा, वृषभ आदि ग्वालबालोंने खेलमें बाजी मार ली । तब श्रीकृष्ण आदि उन्हें अपनी पीठपर चढ़ाकर ढोने लगे ॥ २३ ॥ हारे हुए श्रीकृष्णने श्रीदामाको अपनी पीठपर चढ़ाया, भद्रसेनने वृषभको और प्रलम्बने बलरामजीको ॥ २४ ॥ दानवपुङ्गव प्रलम्बने देखा कि श्रीकृष्ण तो बड़े बलवान् हैं, उन्हें मैं नहीं हरा सकूँगा । अतः वह उन्हींके पक्षमे हो गया और बलरामजीको लेकर फुर्तीसे भाग चला, और पीठपरसे उतारनेके लिये जो स्थान नियत था उससे आगे निकल गया ॥ २५ ॥ बलरामजी बड़े भारी पर्वतके समान बोझवाले थे । उनको लेकर प्रलम्बासुर दूरतक न जा सका, उसकी चाल रुक गयी । तब उसने अपना स्वाभाविक दैत्यरूप धारण कर लिया । उसके काले शरीरपर सोनेके गहने चमक रहे थे और गौरसुन्दर बलरामजीको धारण करनेके कारण उसकी ऐसी शोभा हो रही थी, मानो बिजलीसे युक्त काला बादल चन्द्रमाको धारण किये हुए हो ॥ २६ ॥ उसकी आँखें आगकी तरह धधक रही थीं और दाढ़ें भौंहोंतक पहुँची हुई बड़ी भयावनी थीं । उसके लाल-लाल बाल इस तरह बिखर रहे थे, मानो आगकी लपटें उठ रही हों । उसके हाथ और पाँवोंमें कड़े, सिरपर मुकुट और कानोंमें कुण्डल थे । उनकी कान्तिसे वह बड़ा अद्भुत लग रहा था ! उस भयानक दैत्यको बड़े वेगसे आकाशमें जाते देख पहले तो बलरामजी कुछ घबड़ा-से गये ॥ २७ ॥ परन्तु दूसरे ही क्षण अपने स्वरूपकी याद आते ही उनका भय जाता रहा । बलरामजीने देखा कि जैसे चोर किसीका धन चुराकर ले जाय, वैसे ही यह शत्रु मुझे चुराकर आकाश-मार्गसे लिये जा रहा है । उस समय जैसे इन्द्रने पर्वतोंपर वज्र चलाया था, वैसे ही उन्होंने क्रोध करके उसके सिरपर एक घूँसा कसकर जमाया ॥ २८ ॥ घूँसा लगना था कि उसका सिर चूर-चूर हो गया । वह मुँहसे खून उगलने लगा, चेतना जाती रही और बड़ा भयङ्कर शब्द करता हुआ इन्द्रके द्वारा वज्रसे मारे हुए पर्वतके समान वह उसी समय प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ २९ ॥

बलरामजी परम बलशाली थे । जब ग्वालबालोंने देखा कि उन्होंने प्रलम्बासुरको मार डाला, तब उनके आश्चर्यकी सीमा न रही । वे बार-बार 'वाह-वाह' करने लगे ॥ ३० ॥ ग्वालबालोंका चित्त प्रेमसे विह्वल हो गया । वे उनके लिये शुभ कामनाओंकी वर्षा करने लगे और मानो मरकर लौट आये हों, इस भावसे आलिङ्गन करके प्रशंसा करने लगे । वस्तुतः बलरामजी इसके योग्य ही थे ॥ ३१ ॥ प्रलम्बासुर मूर्तिमान् पाप था । उसकी मृत्युसे देवताओंको बड़ा सुख मिला । वे बलरामजीपर फूल बरसाने लगे और 'बहुत अच्छा किया, बहुत अच्छा किया' इस प्रकार कहकर उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ ३२ ॥

उन्नीसवाँ अध्याय

गौओं और गोपोंको दावानलसे बचाना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! उस समय जब ग्वालबाल खेल-कूदमें लग गये, तब उनकी गौएँ बेरोक-टोक चरती हुई बहुत दूर निकल गयीं और हरी-हरी घासके लोभसे एक गहन वनमें घुस गयीं ॥ १ ॥ उनकी बकरियाँ, गायें और भैंसें एक वनसे दूसरे वनमें होती हुई आगे बढ़ गयीं तथा गर्मीके तापसे व्याकुल हो गयीं । वे बेसुध-सी होकर अन्तमें डकराती हुई मुञ्जाटवी (सरकंडोंके वन) में घुस गयीं ॥ २ ॥

जब श्रीकृष्ण, बलराम आदि ग्वालबालोंने देखा कि हमारे पशुओंका तो कहीं पता-ठिकाना ही नहीं है, तब उन्हें अपने खेल-कूदपर बड़ा पछतावा हुआ और वे बहुत कुछ खोज-बीन करनेपर भी अपनी गौओंका पता न लगा सके ॥ ३ ॥ गौएँ ही तो व्रजवासियोंकी जीविकाका साधन थीं । उनके न मिलनेसे वे अचेत-से हो रहे थे । अब वे गौओंके खुर और दाँतोंसे कटी हुई घास तथा पृथ्वीपर बने हुए खुरोंके चिह्नोंसे उनका पता लगाते हुए आगे बढ़े ॥ ४ ॥ अन्तमें उन्होंने देखा कि उनकी गौएँ मुञ्जाटवीमें रास्ता भूलकर डकरा रही हैं । उन्हें पाकर वे लौटानेकी चेष्टा करने लगे । उस समय वे एकदम थक गये थे और उन्हें प्यास भी बड़े जोरसे लगी हुई थी । इससे वे व्याकुल हो रहे थे ॥ ५ ॥ उनकी यह दशा देखकर भगवान् श्रीकृष्ण अपनी मेघके समान गम्भीर वाणीसे नाम ले-लेकर गौओंको पुकारने लगे । गौएँ अपने नामकी ध्वनि सुनकर बहुत हर्षित हुईं । वे भी उत्तरमें हुंकारने और रँभाने लगीं ॥ ६ ॥

परीक्षित् ! इस प्रकार भगवान् उन गायोंको पुकार ही रहे थे कि उस वनमें सब ओर अकस्मात् दावाग्नि लग गयी, जो वनवासी जीवोंका काल ही होती है । साथ ही बड़े जोरकी आँधी भी चलकर उस अग्निके बढ़नेमें सहायता देने लगी । इससे सब ओर फैली हुई वह प्रचण्ड अग्नि अपनी भयङ्कर लपटोंसे समस्त चराचर जीवोंको भस्मसात् करने लगी ॥ ७ ॥ जब ग्वालों और गौओंने देखा कि दावानल चारों ओरसे हमारी ही ओर बढ़ता आ रहा है, तब वे अत्यन्त भयभीत हो गये । और मृत्युके भयसे डरे हुए जीव जिस प्रकार भगवान्‌की शरणमें आते हैं, वैसे ही वे श्रीकृष्ण और बलरामजीके शरणापन्न होकर उन्हें पुकारते हुए बोले—॥ ८ ॥ 'महावीर श्रीकृष्ण ! प्यारे श्रीकृष्ण ! परम बलशाली बलराम ! हम तुम्हारे शरणागत हैं । देखो, इस समय हम दावानलसे जलना ही चाहते हैं । तुम दोनों हमें इससे बचाओ ॥ ९ ॥ श्रीकृष्ण ! जिनके तुम्हीं भाई, बन्धु और सब कुछ हो, उन्हें तो किसी प्रकारका कष्ट नहीं होना चाहिये । सब धर्मोंके ज्ञाता श्यामसुन्दर ! तुम्हीं हमारे एकमात्र रक्षक एवं स्वामी हो; हमें केवल तुम्हारा ही भरोसा है' ॥ १० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—अपने सखा ग्वालबालोंके ये दीनतासे भरे वचन सुनकर भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'डरो मत, तुम अपनी आँखें बंद कर लो' ॥ ११ ॥ भगवान्‌की आज्ञा सुनकर उन ग्वालबालोंने कहा 'बहुत अच्छा' और अपनी आँखें मूँद लीं । तब योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने उस भयङ्कर आगको अपने मुँहसे पी लिया * और इस प्रकार उन्हें उस घोर संकटसे छुड़ा दिया ॥ १२ ॥ इसके बाद जब ग्वालबालोंने अपनी-अपनी आँखें खोलकर देखा, तब अपनेको भाण्डीर वटके पास पाया । इस प्रकार अपने-आपको और गौओंको दावानलसे बचा देख वे ग्वालबाल बहुत ही विस्मित हुए ॥ १३ ॥ श्रीकृष्णकी इस योग-सिद्धि तथा योगमायाके प्रभावको एवं दावानलसे अपनी रक्षाको देखकर उन्होंने यही समझा कि श्रीकृष्ण कोई देवता हैं ॥ १४ ॥

परीक्षित् ! सायङ्काल होनेपर बलरामजीके साथ भगवान् श्रीकृष्णने गौएँ लौटायीं और वंशी बजाते हुए उनके पीछे-पीछे व्रजकी यात्रा की । उस समय ग्वालबाल उनकी स्तुति करते आ रहे थे ॥ १५ ॥ इधर व्रजमें गोपियोंको श्रीकृष्णके बिना एक-एक क्षण सौ-सौ युगके समान हो रहा था । जब भगवान् श्रीकृष्ण लौटे, तब उनका दर्शन करके वे परमानन्दमें मग्न हो गयीं ॥ १६ ॥

* १. भगवान् श्रीकृष्ण भक्तोंके द्वारा अर्पित प्रेम-भक्ति सुधा-रसका पान करते हैं । अग्निके मनमें उसीका स्वाद लेनेकी लालसा हो आयी । इसलिये उसने स्वयं ही मुखमें प्रवेश किया ।

२. विषाग्नि, मुञ्जाग्नि और दावाग्नि—तीनोंका पान करके भगवान्‌ने अपनी त्रितापनाशकी शक्ति व्यक्त की ।

३. पहले रात्रिमें अग्निपान किया था, दूसरी बार दिनमें । भगवान् अपने भक्तजनोंका ताप हरनेके लिये सदा तत्पर रहते हैं ।

४. पहली बार सबके सामने और दूसरी बार सबकी आँखें बंद कराके श्रीकृष्णने अग्निपान किया । इसका अभिप्राय यह है कि भगवान् परोक्ष और अपरोक्ष दोनों ही प्रकारसे वे भक्तजनोंका हित करते हैं ।

बीसवाँ अध्याय

वर्षा और शरद्ऋतुका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! ग्वालबालोंने घर पहुँचकर अपनी मा, बहिन आदि स्त्रियोंसे श्रीकृष्ण और बलरामने जो कुछ अद्भुत कर्म किये थे—दावानलसे उनको बचाना, प्रलम्बको मारना इत्यादि—सबका वर्णन किया ॥ १ ॥ बड़े-बड़े बूढ़े गोप और गोपियाँ भी राम और श्यामकी अलौकिक लीलाएँ सुनकर विस्मित हो गयीं। वे सब ऐसा मानने लगे कि 'श्रीकृष्ण और बलरामके वेषमें कोई बहुत बड़े देवता ही व्रजमें पधारे हैं' ॥ २ ॥

इसके बाद वर्षाऋतुका शुभागमन हुआ। इस ऋतुमें सभी प्रकारके प्राणियोंकी बढ़ती हो जाती है। उस समय सूर्य और चन्द्रमापर बार-बार प्रकाशमय मण्डल बैठने लगे। बादल, वायु, चमक, कड़क आदिसे आकाश क्षुब्ध-सा दीखने लगा ॥ ३ ॥ आकाशमें नीले और घने बादल घिर आते, बिजली कौंधने लगती, बार-बार गड़गड़ाहट सुनायी पड़ती; सूर्य, चन्द्रमा और तारे ढके रहते। इससे आकाशकी ऐसी शोभा होती, जैसे ब्रह्मस्वरूप होनेपर भी गुणोंसे ढक जानेपर जीवकी होती है ॥ ४ ॥ सूर्यने राजाकी तरह पृथ्वीरूप प्रजासे आठ महीनेतक जलका कर ग्रहण किया था, अब समय आनेपर वे अपने किरण-करोंसे फिर उसे बाँटने लगे ॥ ५ ॥ जैसे दयालु पुरुष जब देखते हैं कि प्रजा बहुत पीड़ित हो रही है, तब वे दयापरवश होकर अपने जीवन प्राणतक निछावर कर देते हैं—वैसे ही बिजलीकी चमकसे शोभायमान घनघोर बादल तेज हवाकी प्रेरणासे प्राणियोंके कल्याणके लिये अपने जीवनस्वरूप जलको बरसाने लगे ॥ ६ ॥ जेठ-आषाढ़की गर्मीसे पृथ्वी सूख गयी थी। अब वर्षाके जलसे सिंचकर वह फिर हरी-भरी हो गयी—जैसे सकामभावसे तपस्या करते समय पहले तो शरीर दुर्बल हो जाता है, परन्तु जब उसका फल मिलता है, तब हृष्ट-पुष्ट हो जाता है ॥ ७ ॥ वर्षाके सायङ्कालमें बादलोंसे घना अँधेरा छा जानेपर ग्रह और तारोंका प्रकाश तो नहीं दिखलायी पड़ता, परन्तु जुगनू चमकने लगते हैं—जैसे कलियुगमें पापकी प्रबलता हो जानेसे पाखण्ड मतोंका प्रचार हो जाता है और वैदिक सम्प्रदाय लुप्त हो जाते हैं ॥ ८ ॥ जो मेंढक पहले चुपचाप सो रहे थे, अब वे बादलोंकी गरज सुनकर टर्र-टर्र करने लगे—जैसे नित्य-नियमसे निवृत्त होनेपर गुरुके आदेशानुसार ब्रह्मचारी लोग वेदपाठ करने लगते हैं ॥ ९ ॥ छोटी-छोटी नदियाँ, जो जेठ-आषाढ़में बिल्कुल सूखनेको आ गयी थीं, वे अब उमड़-घुमड़कर अपने घेरेसे बाहर बहने लगीं—जैसे अजितेन्द्रिय पुरुषके शरीर और धन-सम्पत्तियोंका कुमार्गमें उपयोग होने लगता है ॥ १० ॥ पृथ्वीपर कहीं-कहीं हरी-हरी घासकी हरियाली थी, तो कहीं-कहीं बीरबहूटियोंकी लालिमा और कहीं-कहीं बरसाती छत्तों (सफेद कुकुरमुत्तों) के कारण वह सफेद मालूम देती थी। इस प्रकार उसकी ऐसी शोभा हो रही थी, मानो किसी राजाकी रंगबिरंगी सेना हो ॥ ११ ॥ सब खेत अनाजोंसे भरे-पूरे लहलहा रहे थे। उन्हें देखकर किसान तो मारे आनन्दके फूले न समाते थे, परन्तु सब कुछ प्रारब्धके अधीन है—यह बात न जाननेवाले धनियोंके चित्तमें बड़ी जलन हो रही थी कि अब हम इन्हें अपने पंजेमें कैसे रख सकेंगे ॥ १२ ॥ नये बरसाती जलके सेवनसे सभी जलचर और थलचर प्राणियोंकी सुन्दरता बढ़ गयी थी, जैसे भगवान्‌की सेवा करनेसे बाहर और भीतरके दोनों ही रूप सुघड़ हो जाते हैं ॥ १३ ॥ वर्षा-ऋतुमें हवाके झोंकोंसे समुद्र एक तो यों ही उत्ताल तरङ्गोंसे युक्त हो रहा था, अब नदियोंके संयोगसे वह और भी क्षुब्ध हो उठा—ठीक वैसे ही, जैसे वासनायुक्त योगीका चित्त विषयोंका सम्पर्क होनेपर कामनाओंके उभारसे भर जाता है ॥ १४ ॥ मूसलधार वर्षाकी चोट खाते रहनेपर भी पर्वतोंको कोई व्यथा नहीं होती थी—जैसे दुःखोंकी भरमार होनेपर भी उन पुरुषोंको किसी प्रकारकी व्यथा नहीं होती, जिन्होंने अपना चित्त भगवान्‌को ही समर्पित कर रक्खा है ॥ १५ ॥ जो मार्ग कभी साफ नहीं किये जाते थे वे घाससे ढक गये और उनको पहचानना कठिन हो गया—जैसे जब द्विजाति वेदोंका अभ्यास नहीं करते तब कालक्रमसे वे उन्हें भूल जाते हैं ॥ १६ ॥ यद्यपि

बादल बड़े लोकोपकारी हैं, फिर भी बिजलियाँ उनमें स्थिर नहीं रहतीं—ठीक वैसे ही, जैसे चपल अनुराग-वाली कामिनी स्त्रियाँ गुणी पुरुषोंके पास भी स्थिर भावसे नहीं रहतीं ॥ १७ ॥ आकाश मेघोंके गर्जन तर्जनसे भर रहा था। उसमें निर्गुण (बिना डोरीके) इन्द्रधनुष-की वैसी ही शोभा हुई, जैसी सत्त्व-रज आदि गुणोंके क्षोभसे होनेवाले विश्वके बखेड़ेमें निर्गुण ब्रह्मकी ॥ १८॥ यद्यपि चन्द्रमाकी उज्ज्वल चाँदनीसे बादलोंका पता चलता था, फिर भी उन बादलोंने ही चन्द्रमाको ढककर शोभा-हीन भी बना दिया था—ठीक वैसे ही, जैसे पुरुषके आभाससे आभासित होनेवाला अहङ्कार ही उसे ढककर प्रकाशित नहीं होने देता ॥ १९ ॥ बादलोंके शुभागमन-से मोरोंका रोम-रोम खिल रहा था, वे अपनी कुहुक और नृत्यके द्वारा आनन्दोत्सव मना रहे थे—ठीक वैसे ही जैसे गृहस्थीके जंजालमें फँसे हुए लोग, जो अधिकतर तीनों तापोंसे जलते और घबड़ाते रहते हैं, भगवान्के भक्तोंके शुभागमनसे आनन्दमग्न हो जाते हैं ॥ २० ॥ जो वृक्ष जेठ-आषाढ़में सूख गये थे, वे अब अपनी जड़ोंसे जल पीकर पत्ते, फूल तथा डालियोंसे खूब सज धज गये—जैसे सकामभावसे तपस्या करनेवाले पहले तो दुर्बल हो जाते हैं, परन्तु कामना पूरी होनेपर मोटे-तगड़े हो जाते हैं ॥ २१ ॥ परीक्षित्! तालाबोंके तट काँटे-कीचड़ और जलके बहावके कारण प्रायः अशान्त ही रहते थे, परन्तु सारस एक क्षणके लिये भी उन्हें नहीं छोड़ते थे—जैसे अशुद्ध हृदयवाले विषयी पुरुष काम-धन्धोंकी झंझटसे कभी छुटकारा नहीं पाते, फिर भी घरोंमें ही पड़े रहते हैं ॥ २२ ॥ वर्षा ऋतुमें इन्द्रकी प्रेरणासे मूसल-धार वर्षा होती है, इससे नदियोंके बाँध और खेतोंकी मेड़े टूट-फूट जाती हैं—जैसे कलियुगमें पाखण्डियोंके तरह-तरहके मिथ्या मतवादोंसे वैदिक मार्गकी मर्यादा ढीली पड़ जाती है ॥ २३ ॥ वायुकी प्रेरणासे घने बादल प्राणियोंके लिये अमृतमय जलकी वर्षा करने लगते हैं—जैसे ब्राह्मणोंकी प्रेरणासे धनीलोग समय-समयपर दानके द्वारा प्रजाकी अभिलाषाएँ पूर्ण करते हैं ॥ २४ ॥

वर्षाऋतुमें वृन्दावन इसी प्रकार शोभायमान और पके हुए खजूर तथा जामुनोंसे भर रहा था। उसी वनमें विहार करनेके लिये श्याम और बलरामने ग्वालबाल और गौओंके साथ प्रवेश किया ॥ २५ ॥ गौएँ अपने थनोंके भारी भारके कारण बहुत ही धीरे-धीरे चल रही थीं। जब भगवान् श्रीकृष्ण उनका नाम लेकर पुकारते, तब वे प्रेमपरवश होकर जल्दी-जल्दी दौड़ने लगतीं। उस समय उनके थनोंसे दूधकी धारा गिरती जाती थी ॥२६॥ भगवान्ने देखा कि वनवासी भील और भीलनियाँ आनन्दमग्न हैं। वृक्षोंकी पङ्क्तियाँ मधुधारा उड़ेल रही हैं। पर्वतोंसे झर-झर करते हुए झरने झर रहे हैं। उनकी आवाज बड़ी सुरीली जान पड़ती है और साथ ही वर्षा होनेपर छिपनेके लिये बहुत-सी गुफाएँ भी हैं ॥ २७ ॥ जब वर्षा होने लगती, तब श्रीकृष्ण कभी किसी वृक्षकी गोदमें या खोड़रमें जा छिपते। कभी-कभी किसी गुफामें ही जा बैठते और कभी कन्द-मूल-फल खाकर ग्वालबालोंके साथ खेलते रहते ॥ २८ ॥ कभी जलके पास ही किसी चट्टानपर बैठ जाते और बलरामजी तथा ग्वाल-बालोंके साथ मिलकर घरसे लाया हुआ दही-भात दाल-शाक आदिके साथ खाते ॥ २९ ॥ वर्षाऋतुमें बैल, बछड़े और थनोंके भारी भारसे थकी हुई गौएँ थोड़ी ही देरमें भरपेट घास चर लेतीं और हरी-हरी घासपर बैठकर ही आँख मूँदकर जुगाली करती रहतीं। वर्षा ऋतुकी सुन्दरता अपार थी। वह सभी प्राणियोंको सुख पहुँचा रही थी। इसमें सन्देह नहीं कि वह ऋतु, गाय, बैल, बछड़े—सब-के-सब भगवान्की लीलाके ही विलास थे। फिर भी उन्हें देखकर भगवान् बहुत प्रसन्न होते और बार-बार उनकी प्रशंसा करते ॥ ३०-३१ ॥

इस प्रकार श्याम और बलराम बड़े आनन्दसे व्रजमें निवास कर रहे थे। इसी समय वर्षा बीतनेपर शरद् ऋतु आ गयी। अब आकाशमें बादल नहीं रहे, जल निर्मल हो गया, वायु बड़ी धीमी गतिसे चलने लगी ॥३२॥ शरद् ऋतुमें कमलोंकी उत्पत्तिसे जलाशयोंके जलने अपनी सहज स्वच्छता प्राप्त कर ली—ठीक वैसे ही, जैसे योगभ्रष्ट पुरुषोंका चित्त फिरसे योगका सेवन करनेसे निर्मल हो जाता है ॥ ३३ ॥ शरद् ऋतुने आकाशके बादल, वर्षाकालके बढ़े हुए जीव, पृ
और जलके मटमैलेपनको नष्ट कर दिया

की भक्ति ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासियोंके सब प्रकारके कष्टों और अशुभोंका झटपट नाश कर देती है ॥ ३४ ॥ बादल अपने सर्वस्व जलका दान करके उज्ज्वल कान्तिसे सुशोभित होने लगे—ठीक वैसे ही, जैसे लोक-परलोक, स्त्री-पुत्र और धन-सम्पत्तिसम्बन्धी चिन्ता और कामनाओंका परित्याग कर देनेपर संसारके बन्धनसे छूटे हुए परम शान्त संन्यासी शोभायमान होते हैं ॥ ३५ ॥ अब पर्वतोंसे कहीं-कहीं झरने झरते थे और कहीं-कहीं वे अपने कल्याणकारी जलको नहीं भी बहाते थे—जैसे ज्ञानी पुरुष समयपर अपने अमृतमय ज्ञानका दान किसी अधिकारीको कर देते हैं और किसी-किसीको नहीं भी करते ॥ ३६ ॥ छोटे-छोटे गड्ढोंमें भरे हुए जलके जलचर यह नहीं जानते कि इस गड्ढेका जल दिन-पर-दिन सूखता जा रहा है—जैसे कुटुम्बके भरण-पोषणमें भूले हुए मूढ़ यह नहीं जानते कि हमारी आयु क्षण-क्षण क्षीण हो रही है ॥ ३७ ॥ थोड़े जलमें रहनेवाले प्राणियोंको शरत्कालीन सूर्यकी प्रखर किरणोंसे बड़ी पीड़ा होने लगी—जैसे अपनी इन्द्रियोंके वशमें रहनेवाले कृपण एवं दरिद्र कुटुम्बीको तरह-तरहके ताप सताते ही रहते हैं ॥ ३८ ॥ पृथ्वी धीरे-धीरे अपना कीचड़ छोड़ने लगी और घास-पात धीरे-धीरे अपनी कचाई छोड़ने लगे—ठीक वैसे ही, जैसे विवेकसम्पन्न साधक धीरे-धीरे शरीर आदि अनात्म पदार्थोंमेंसे 'यह मैं हूँ और यह मेरा है' यह अहंता और ममता छोड़ देते हैं ॥ ३९ ॥ शरद् ऋतुमें समुद्रका जल स्थिर, गम्भीर और शान्त हो गया—जैसे मनके निःसङ्कल्प हो जानेपर आत्माराम पुरुष कर्मकाण्डका झमेला छोड़कर शान्त हो जाता है ॥ ४० ॥ किसान खेतोंकी मेड़ मजबूत करके जलका बहना रोकने लगे—जैसे योगीजन अपनी इन्द्रियोंको विषयोंकी ओर जानेसे रोककर, प्रत्याहार करके उनके द्वारा क्षीण होते हुए ज्ञानकी रक्षा करते हैं ॥ ४१ ॥ शरद् ऋतुमें दिनके समय बड़ी कड़ी धूप होती, लोगोंको बहुत कष्ट होता; परन्तु चन्द्रमा रात्रिके समय लोगोंका सारा सन्ताप वैसे ही हर लेते—जैसे देहाभिमानसे होनेवाले दुःखको ज्ञान और भगवद्विरहसे होनेवाले गोपियोंके दुःखको श्रीकृष्ण नष्ट कर देते हैं ॥ ४२ ॥ जैसे वेदोंके अर्थको स्पष्ट रूपसे जाननेवाला सत्त्वगुणी चित्त अत्यन्त शोभायमान होता है, वैसे ही शरद् ऋतुमें रातके समय मेघोंसे रहित निर्मल आकाश तारोंकी ज्योतिसे जगमगाने लगा ॥ ४३ ॥ परीक्षित्! जैसे पृथ्वीतलमें यदुवंशियोंके बीच यदुपति भगवान् श्रीकृष्णकी शोभा होती है, वैसे ही आकाशमें तारोंके बीच पूर्ण चन्द्रमा सुशोभित होने लगा ॥ ४४ ॥ फूलोंसे लदे हुए वृक्षों और लताओंमें होकर बड़ी ही सुन्दर वायु बहती; वह न अधिक ठंडी होती और न अधिक गरम। उस वायुके स्पर्शसे सब लोगोंकी जलन तो मिट जाती; परन्तु गोपियोंकी जलन और भी बढ़ जाती; क्योंकि उनका चित्त उनके हाथमें नहीं था, श्रीकृष्णने उसे चुरा लिया था ॥ ४५ ॥ शरद् ऋतुमें गौएँ, हरिनियाँ, चिड़ियाँ और नारियाँ ऋतुमती—सन्तानोत्पत्तिकी कामनासे युक्त हो गयीं तथा साँड़, हरिन, पक्षी और पुरुष उनका अनुसरण करने लगे—ठीक वैसे ही, जैसे समर्थ पुरुषके द्वारा की हुई क्रियाओंका अनुसरण उनके फल करते हैं ॥ ४६ ॥ परीक्षित्! जैसे राजाके शुभागमनसे डाकू-चोरोंके सिवा और सब लोग निर्भय हो जाते हैं, वैसे ही सूर्योदयके कारण कुमुदिनी (कुँई या कोईं) के अतिरिक्त और सभी प्रकारके कमल खिल गये ॥ ४७ ॥ उस समय बड़े-बड़े शहरों और गाँवोंमें नवान्नप्राशन और इन्द्रसम्बन्धी उत्सव होने लगे। खेतोंमें अनाज पक गये और पृथ्वी भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलरामजीकी उपस्थितिसे अत्यन्त सुशोभित होने लगी ॥ ४८ ॥ साधना करके सिद्ध हुए पुरुष जैसे समय आनेपर अपने देव आदि शरीरोंको प्राप्त होते हैं, वैसे ही वैश्य, संन्यासी, राजा और स्नातक—जो वर्षाके कारण एक स्थानपर रुके हुए थे—वहाँसे चलकर अपने-अपने अभीष्ट काम-काजमें लग गये ॥ ४९ ॥

इक्कीसवाँ अध्याय

वेणुगीत

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! शरद्-ऋतुके कारण वह वन बड़ा सुन्दर हो रहा था। जल निर्मल था और जलाशयोंमें खिले हुए कमलोंकी सुगन्धसे सनकर वायु मन्द-मन्द चल रही थी। भगवान् श्रीकृष्णने गौओं

गोपियोंके ध्यानमें श्रीकृष्ण-बलराम

और ग्वालबालोंके साथ उस वनमें प्रवेश किया ॥ १ ॥ सुन्दर-सुन्दर पुष्पोंसे परिपूर्ण हरी-हरी वृक्ष-पंक्तियोंमें मतवाले भौंरे स्थान-स्थानपर गुनगुना रहे थे और तरह-तरहके पक्षी झुंड-के-झुंड अलग-अलग कलरव कर रहे थे, जिससे उस वनके सरोवर, नदियाँ और पर्वत—सब-के-सब गूँजते रहते थे। मधुपति श्रीकृष्णने बलराम-जी और ग्वालबालोंके साथ उसके भीतर घुसकर गौओं-को चराते हुए अपनी बाँसुरीपर बड़ी मधुर तान छेड़ी ॥ २ ॥ श्रीकृष्णकी वह वंशीध्वनि भगवान्‌के प्रति प्रेमभावको, उनके मिलनकी आकाङ्क्षाको जगानेवाली थी। (उसे सुनकर गोपियोंका हृदय प्रेमसे परिपूर्ण हो गया) वे एकान्तमें अपनी सखियोंसे उनके रूप, गुण और वंशीध्वनिके प्रभावका वर्णन करने लगीं ॥ ३ ॥ व्रजकी गोपियोंने वंशीध्वनिका माधुर्य आपसमें वर्णन करना चाहा तो अवश्य; परन्तु वंशीका स्मरण होते ही उन्हें श्रीकृष्णकी मधुर चेष्टाओंकी, प्रेमपूर्ण चितवन, भौंहोंके इशारे और मधुर मुसकान आदिकी याद हो आयी। उनकी भगवान्‌से मिलनेकी आकाङ्क्षा और भी बढ़ गयी। उनका मन हाथसे निकल गया। वे मन-ही-मन वहाँ पहुँच गयीं, जहाँ श्रीकृष्ण थे। अब उनकी वाणी बोले कैसे! वे उसके वर्णनमें असमर्थ हो गयीं ॥ ४ ॥ (वे मन ही-मन देखने लगीं कि) श्रीकृष्ण ग्वालबालोंके साथ वृन्दावनमें प्रवेश कर रहे हैं। उनके सिरपर मयूर-पिच्छ है और कानोंपर कनेरके पीले-पीले पुष्प; शरीरपर सुनहला पीताम्बर और गलेमें पाँच प्रकारके सुगन्धित पुष्पोंकी बनी वैजयन्ती माला है। रंगमञ्चपर अभिनय करते हुए श्रेष्ठ नटका-सा क्या ही सुन्दर वेष है! बाँसुरीके छिद्रोंको वे अपने अधरामृतसे भर रहे हैं। उनके पीछे-पीछे ग्वालबाल उनकी लोकपावन कीर्तिका गान कर रहे हैं। इस प्रकार वैकुण्ठसे भी श्रेष्ठ वह वृन्दावनधाम उनके चरणचिह्नोंसे और भी रमणीय बन गया है ॥ ५ ॥ परीक्षित्! यह वंशीध्वनि जड, चेतन—समस्त भूतोंका मन चुरा लेती है। गोपियोंने उसे सुना और सुनकर उसका वर्णन करने लगीं। वर्णन करते-करते वे तन्मय हो गयीं और श्रीकृष्णको पाकर आलिङ्गन करने लगीं ॥ ६ ॥

गोपियाँ आपसमें बातचीत करने लगीं—अरी सखी! हमने तो आँखवालोंके जीवनकी और उनकी आँखोंकी बस, यही—इतनी ही सफलता समझी है; और तो हमें कुछ मालूम ही नहीं है। वह कौन-सा लाभ है? वह यही है कि जब श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण और गौरसुन्दर बलराम ग्वालबालोंके साथ गायोंको हाँककर वनमें ले जा रहे हों या लौटाकर व्रजमें ला रहे हों, उन्होंने अपने अधरोंपर मुरली धर रक्खी हो और प्रेमभरी तिरछी चितवनसे हमारी ओर देख रहे हों, उस समय हम उनकी मुख-माधुरीका पान करती रहें ॥ ७ ॥ अरी सखी! जब वे आमकी नयी कोंपलें, मोरोंके पंख, फूलोंके गुच्छे, रंग-बिरंगे कमल और कुमुदकी मालाएँ धारण कर लेते हैं, श्रीकृष्णके साँवरे शरीरपर पीताम्बर और बलरामके गोरे शरीरपर नीलाम्बर फहराने लगता है, तब उनका वेष बड़ा विचित्र बन जाता है। ग्वालबालोंकी गोष्ठीमें वे दोनों बीचोबीच बैठ जाते हैं और मधुर सङ्गीतकी तान छेड़ देते हैं। मेरी प्यारी सखी! उस समय ऐसा जान पड़ता है मानो दो चतुर नट रंगमञ्चपर अभिनय कर रहे हों। मैं क्या बताऊँ कि उस समय उनकी कितनी शोभा होती है ॥ ८ ॥ अरी गोपियो! यह वेणु पुरुषजातिका होनेपर भी पूर्वजन्ममें न जाने ऐसा कौन-सा साधन-भजन कर चुका है कि हम गोपियोंकी अपनी सम्पत्ति—दामोदरके अधरोंकी सुधा स्वयं ही इस प्रकार पिये जा रहा है कि हमलोगोंके लिये थोड़ा-सा भी रस शेष नहीं रहेगा। इस वेणुको अपने रससे सींचनेवाली ह्रदिनियाँ आज कमलोंके मिस रोमाञ्चित हो रही हैं और अपने वंशमें भगवत्प्रेमी सन्तानोंको देखकर श्रेष्ठ पुरुषोंके समान वृक्ष भी इसके साथ अपना सम्बन्ध जोड़कर आँखोंसे आनन्दाश्रु बहा रहे हैं ॥ ९ ॥

अरी सखी! यह वृन्दावन वैकुण्ठलोकतक पृथ्वीकी कीर्तिका विस्तार कर रहा है। क्योंकि यशोदानन्दन श्रीकृष्णके चरणकमलोंके चिह्नोंसे यह चिह्नित हो रहा है! सखि! जब श्रीकृष्ण अपनी मुनिजनमोहिनी मुरली बजाते हैं, तब मोर मतवाले होकर उसकी तालपर नाचने लगते हैं। यह देखकर पर्वतकी चोटियोंपर विचरनेवाले सभी पशु-पक्षी चुप-चाप—शान्त होकर खड़े रह जाते हैं। अरी सखी! जब प्राणवल्लभ श्रीकृष्ण विचित्र वेष धारण करके बाँसुरी बजाते हैं,

तब मूढ़ बुद्धिवाली ये हरिनियाँ भी वंशीकी तान सुनकर अपने पति कृष्णसार मृगोंके साथ नन्दनन्दनके पास चली आती हैं और अपनी प्रेमभरी बड़ी-बड़ी आँखोंसे उन्हें निरखने लगती हैं। निरखती क्या हैं, अपनी कमलके समान बड़ी-बड़ी आँखें श्रीकृष्णके चरणोंपर निछावर कर देती हैं और श्रीकृष्णकी प्रेमभरी चितवनके द्वारा किया हुआ अपना सत्कार स्वीकार करती हैं।' वास्तवमें उनका जीवन धन्य है! (हम वृन्दावनकी गोपी होनेपर भी इस प्रकार उनपर अपनेको निछावर नहीं कर पातीं, हमारे घरवाले कुढ़ने लगते हैं। कितनी विडम्बना है!) ॥ १०-११ ॥ अरी सखी! हरिनियोंकी तो बात ही क्या है—स्वर्गकी देवियाँ जब युवतियोंको आनन्दित करनेवाले सौन्दर्य और शीलके खजाने श्रीकृष्णको देखती हैं और बाँसुरीपर उनके द्वारा गाया हुआ मधुर संगीत सुनती हैं, तब उनके चित्र-विचित्र आलाप सुनकर वे अपने विमानपर ही सुध-बुध खो बैठती हैं—मूर्छित हो जाती हैं। यह कैसे मालूम हुआ सखी? सुनो तो, जब उनके हृदयमें श्रीकृष्णसे मिलनेकी तीव्र आकाङ्क्षा जग जाती है तब वे अपना धीरज खो बैठती हैं, बेहोश हो जाती हैं; उन्हें इस बातका भी पता नहीं चलता कि उनकी चोटियोंमें गुँथे हुए फूल पृथ्वीपर गिर रहे हैं। यहाँतक कि उन्हें अपनी साड़ीका भी पता नहीं रहता, वह कमरसे खिसककर जमीनपर गिर जाती है ॥१२॥ अरी सखी! तुम देवियोंकी बात क्या कह रही हो, इन गौओंको नहीं देखतीं? जब हमारे कृष्ण-प्यारे अपने मुखसे बाँसुरीमें स्वर भरते हैं और गौएँ उनका मधुर संगीत सुनती हैं, तब ये अपने दोनों कानोंके दोने सम्भाल लेती हैं—खड़े कर लेती हैं और मानो उनसे अमृत पी रही हों, इस प्रकार उस सङ्गीतका रस लेने लगती हैं! ऐसा क्यों होता है सखी! अपने नेत्रोंके द्वारसे श्यामसुन्दरको हृदयमें ले जाकर वे उन्हें वहीं विराजमान कर देती हैं और मन-ही-मन उनका आलिङ्गन करती हैं। देखती नहीं हो, उनके नेत्रोंसे आनन्दके आँसू छलकने लगते हैं! और उनके बछड़े, बछड़ोंकी तो दशा ही निराली हो जाती है। यद्यपि गायोंके थनोंमें अपने-आप दूध झरता रहता है, वे जब दूध पीते-पीते अचानक ही वंशीध्वनि सुनते हैं, तब मुँहमें लिया हुआ दूधका घूँट न उगल पाते हैं और न निगल पाते हैं। उनके हृदयमें भी होता है भगवान्‌का संस्पर्श और नेत्रोंमें छलकते होते हैं आनन्दके आँसू। वे ज्यों-के-त्यों ठिठके रह जाते हैं ॥ १३ ॥ अरी सखी! गौएँ और बछड़े तो हमारी घरकी वस्तु हैं। उनकी बात तो जाने ही दो। वृन्दावनके पक्षियोंको तुम नहीं देखती हो! उन्हें पक्षी कहना ही भूल है! सच पूछो तो उनमेंसे अधिकांश बड़े-बड़े ऋषि-मुनि हैं! वे वृन्दावनके सुन्दर-सुन्दर वृक्षोंकी नयी और मनोहर कोंपलोंवाली डालियोंपर चुपचाप बैठ जाते हैं और आँखें बंद नहीं करते, निर्निमेष नयनोंसे श्रीकृष्णकी रूप-माधुरी तथा प्यारभरी चितवन देख-देखकर निहाल होते रहते हैं, तथा कानोंसे अन्य सब प्रकारके शब्दोंको छोड़कर केवल उन्हींकी मोहनी वाणी और वंशीका त्रिभुवनमोहन सङ्गीत सुनते रहते हैं। मेरी प्यारी सखी! उनका जीवन कितना धन्य है ॥ १४ ॥

अरी सखी! देवता, गौओं और पक्षियोंकी बात क्यों करती हो? वे तो चेतन हैं। इन जड नदियोंको नहीं देखतीं? इनमें जो भँवर दीख रहे हैं, उनसे इनके हृदयमें श्यामसुन्दरसे मिलनेकी तीव्र आकाङ्क्षाका पता चलता है। उसके वेगसे ही तो इनका प्रवाह रुक गया है। इन्होंने भी प्रेमस्वरूप श्रीकृष्णकी वंशीध्वनि सुन ली है। देखो, देखो! ये अपनी तरङ्गोंके हाथोंसे उनके चरण पकड़कर कमलके फूलोंका उपहार चढ़ा रही हैं और उनका आलिङ्गन कर रही हैं मानो उनके चरणोंपर अपना हृदय ही निछावर कर रही हैं ॥१५॥ अरी सखी! ये नदियाँ तो हमारी पृथ्वीकी, हमारे वृन्दावनकी वस्तुएँ हैं; तनिक इन बादलोंको भी देखो! जब वे देखते हैं कि व्रजराजकुमार श्रीकृष्ण और बलरामजी ग्वालबालोंके साथ धूपमें गौएँ चरा रहे हैं और साथ-साथ बाँसुरी भी बजाते जा रहे हैं, तब उनके हृदयमें प्रेम उमड़ आता है। वे उनके ऊपर मँडराने लगते हैं और वे श्यामघन अपने सखा घनश्यामके ऊपर अपने शरीरको ही छाता बनाकर तान देते हैं।

इतना ही नहीं, सखी! वे जब उनपर नन्ही-नन्ही फुहियोंकी वर्षा करने लगते हैं, तब ऐसा जान पड़ता है कि वे उनके ऊपर सुन्दर-सुन्दर श्वेत कुसुम चढ़ा रहे हैं। नहीं सखी, उनके बहाने वे तो अपना जीवन ही निछावर कर देते हैं! ॥ १६ ॥

अरी भटू! हम तो वृन्दावनकी इन भीलनियोंको ही धन्य और कृतकृत्य मानती हैं। ऐसा क्यों सखी? इसलिये कि इनके हृदयमें बड़ा प्रेम है। जब ये हमारे कृष्ण-प्यारेको देखती हैं, तब इनके हृदयमें भी उनसे मिलनेकी तीव्र आकाङ्क्षा जाग उठती है। इनके हृदयमें भी प्रेमकी व्याधि लग जाती है। उस समय ये क्या उपाय करती हैं, यह भी सुन लो। हमारे प्रियतमकी प्रेयसी गोपियाँ अपने वक्षःस्थलोंपर जो केसर लगाती हैं, वह श्याम-सुन्दरके चरणोंमें लगी होती है और वे जब वृन्दावनके घास-पातपर चलते हैं, तब उनमें भी लग जाती है। ये सौभाग्यवती भीलनियाँ उन्हें उन तिनकोंपरसे छुड़ाकर अपने स्तनों और मुखोंपर मल लेती हैं और इस प्रकार अपने हृदयकी प्रेम-पीड़ा शान्त करती हैं ॥ १७ ॥ अरी गोपियो! यह गिरिराज गोवर्द्धन तो भगवान्‌के भक्तोंमें बहुत ही श्रेष्ठ है। धन्य हैं इसके भाग्य! देखती नहीं हो, हमारे प्राणवल्लभ श्रीकृष्ण और नयनाभिराम बलरामके चरणकमलोंका स्पर्श प्राप्त करके यह कितना आनन्दित रहता है! इसके भाग्यकी सराहना कौन करे? यह तो उन दोनोंका—ग्वालबालों और गौओंका बड़ा ही सत्कार करता है। स्नान-पानके लिये झरनोंका जल देता है, गौओंके लिये सुन्दर हरी-हरी घास प्रस्तुत करता है। विश्राम करनेके लिये कन्दराएँ और खानेके लिये कन्द-मूल-फल देता है। वास्तवमें यह धन्य है ॥ १८ ॥ अरी सखी! इन साँवरे-गोरे किशोरोंकी तो गति ही निराली है। जब वे सिरपर नोवना (दुहते समय गायके पैर बाँधनेकी रस्सी) लपेटकर और कंधोंपर फंदा (भागनेवाली गायोंको पकड़नेकी रस्सी) रखकर गायोंको एक वनसे दूसरे वनमें हाँककर ले जाते हैं, साथमें ग्वालबाल भी होते हैं और मधुर-मधुर संगीत गाते हुए बाँसुरीकी तान छेड़ते हैं, उस समय मनुष्योंकी तो बात ही क्या, अन्य शरीरधारियोंमें भी चलनेवाले चेतन पशु-पक्षी और जड नदी आदि तो स्थिर हो जाते हैं तथा अचल वृक्षोंको भी रोमाञ्च हो आता है। जादूभरी वंशीका और क्या चमत्कार सुनाऊँ? ॥ १९ ॥

परीक्षित्! वृन्दावनविहारी श्रीकृष्णकी ऐसी-ऐसी एक नहीं, अनेक लीलाएँ हैं। गोपियाँ प्रतिदिन आपसमें उनका वर्णन करतीं और तन्मय हो जातीं। भगवान्‌की लीलाएँ उनके हृदयमें स्फुरित होने लगतीं ॥ २० ॥

बाईसवाँ अध्याय

चीरहरण

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! अब हेमन्त ऋतु आयी। उसके पहले ही महीनेमें अर्थात् मार्गशीर्षमें नन्दबाबाके व्रजकी कुमारियाँ कात्यायनी देवीकी पूजा और व्रत करने लगीं। वे केवल हविष्यान्न ही खाती थीं ॥ १ ॥ राजन्! वे कुमारी कन्याएँ पूर्व दिशाका क्षितिज लाल होते-होते यमुनाजलमें स्नान कर लेतीं और तटपर ही देवीकी बालुकामयी मूर्ति बनाकर सुगन्धित चन्दन, फूलोंके हार, भाँति-भाँतिके नैवेद्य, धूप-दीप, छोटी-बड़ी भेंटकी सामग्री, पल्लव, फल और चावल आदिसे उनकी पूजा करतीं ॥ २-३ ॥ साथ ही 'हे कात्यायनी! हे महामाये! हे महायोगिनी! हे सबकी एकमात्र स्वामिनी! आप नन्दनन्दन श्रीकृष्णको हमारा पति बना दीजिये। देवि! हम आपके चरणोंमें नमस्कार करती हैं।'—इस मन्त्रका जप करती हुई वे कुमारियाँ देवीकी आराधना करतीं ॥ ४ ॥ इस प्रकार उन कुमारियोंने, जिनका मन श्रीकृष्णपर निछावर हो चुका था, इस सङ्कल्पके साथ एक महीनेतक भद्रकालीकी भलीभाँति पूजा की कि 'नन्दनन्दन श्यामसुन्दर ही हमारे पति हों' ॥ ५ ॥ वे प्रतिदिन उषाकालमें ही नाम ले-लेकर एक-दूसरी सखीको पुकार लेतीं और परस्पर

हाथ-में-हाथ डालकर ऊँचे स्वरसे भगवान् श्रीकृष्णकी लीला तथा नामोंका गान करती हुई यमुनाजलमें स्नान करनेके लिये जातीं ॥ ६ ॥

एक दिन सब कुमारियोंने प्रतिदिनकी भाँति यमुनाजीके तटपर जाकर अपने-अपने वस्त्र उतार दिये और भगवान् श्रीकृष्णके गुणोंका गान करती हुई बड़े आनन्दसे जल-क्रीडा करने लगीं ॥ ७ ॥ परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्ण सनकादि योगियों और शङ्कर आदि योगेश्वरोंके भी ईश्वर हैं । उनसे गोपियोंकी अभिलाषा छिपी न रही । वे उनका अभिप्राय जानकर अपने सखा ग्वालबालोंके साथ उन कुमारियोंकी साधना सफल करनेके लिये यमुना-तटपर गये ॥ ८ ॥ उन्होंने अकेले ही उन गोपियोंके सारे वस्त्र उठा लिये और बड़ी फुर्तीसे वे एक कदम्बके वृक्षपर चढ़ गये । साथी ग्वालबाल ठठा-ठठाकर हँसने लगे और स्वयं श्रीकृष्ण भी हँसते हुए गोपियोंसे हँसीकी बात कहने लगे ॥ ९ ॥ 'अरी कुमारियो ! तुम यहाँ आकर इच्छा हो, तो अपने-अपने वस्त्र ले जाओ । मैं तुमलोगोंसे सच-सच कहता हूँ । हँसी बिल्कुल नहीं करता । तुमलोग व्रत करते-करते दुबली हो गयी हो ॥ १० ॥ ये मेरे सखा ग्वालबाल जानते हैं कि मैंने कभी कोई झूठी बात नहीं कही है । सुन्दरियो ! तुम्हारी इच्छा हो तो अलग-अलग आकर अपने-अपने वस्त्र ले लो, या सब एक साथ ही आओ । मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं है' ॥ ११ ॥

भगवान्‌की यह हँसी-मसखरी देखकर गोपियोंका हृदय प्रेमसे सराबोर हो गया । वे तनिक सकुचाकर एक-दूसरीकी ओर देखने और मुसकराने लगीं । जलसे बाहर नहीं निकलीं ॥ १२ ॥ जब भगवान्‌ने हँसी-हँसीमें यह बात कही, तब उनके विनोदसे कुमारियोंका चित्त और भी उनकी ओर खिंच गया । वे ठंडे पानीमें कण्ठतक डूबी हुई थीं और उनका शरीर थर-थर काँप रहा था । उन्होंने श्रीकृष्णसे कहा— ॥ १३ ॥ 'प्यारे श्रीकृष्ण ! तुम ऐसी अनीति मत करो । हम जानती हैं कि तुम नन्दबाबाके लाड़ले लाल हो । हमारे प्यारे हो । सारे व्रजवासी तुम्हारी सराहना करते रहते हैं । देखो, हम जाड़ेके मारे ठिठुर रही हैं । तुम हमें हमारे वस्त्र दे दो ॥ १४ ॥ प्यारे श्यामसुन्दर ! हम तुम्हारी दासी हैं । तुम जो कुछ कहोगे, उसे हम करनेको तैयार हैं । तुम तो धर्मका मर्म भलीभाँति जानते हो । हमें कष्ट मत दो । हमारे वस्त्र हमें दे दो; नहीं तो हम जाकर नन्दबाबासे कह देंगी' ॥ १५ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—कुमारियो ! तुम्हारी मुसकान पवित्रता और प्रेमसे भरी है । देखो, जब तुम अपनेको मेरी दासी स्वीकार करती हो और मेरी आज्ञाका पालन करना चाहती हो, तो यहाँ आकर अपने-अपने वस्त्र ले लो ॥ १६ ॥ परीक्षित् ! वे कुमारियाँ ठंडसे ठिठुर रही थीं, काँप रही थीं । भगवान्‌की ऐसी बात सुनकर वे अपने दोनों हाथोंसे गुप्त अङ्गोंको छिपाकर यमुनाजीसे बाहर निकलीं । उस समय ठंड उन्हें बहुत ही सता रही थी ॥ १७ ॥ उनके इस शुद्ध भावसे भगवान् बहुत ही प्रसन्न हुए । उनको अपने पास आयी देखकर उन्होंने गोपियोंके वस्त्र अपने कंधेपर रख लिये और बड़ी प्रसन्नतासे मुसकराते हुए बोले— ॥ १८ ॥ 'अरी गोपियो ! तुमने जो व्रत लिया था, उसे अच्छी तरह निभाया है—इसमें संदेह नहीं । परन्तु इस अवस्थामें वस्त्रहीन होकर तुमने जलमें स्नान किया है, इससे तो जलके अधिष्ठातृदेवता वरुणका तथा यमुनाजीका अपराध हुआ है । अतः अब इस दोषकी शान्तिके लिये तुम अपने हाथ जोड़कर सिरसे लगाओ और उन्हें झुककर प्रणाम करो, तदनन्तर अपने-अपने वस्त्र ले जाओ ॥ १९ ॥ भगवान् श्रीकृष्णकी बात सुनकर उन व्रजकुमारियोंने ऐसा ही समझा कि वास्तवमें वस्त्रहीन होकर स्नान करनेसे हमारे व्रतमें त्रुटि आ गयी । अतः उसकी निर्विघ्न पूर्तिके लिये उन्होंने समस्त कर्मोंके साक्षी श्रीकृष्णको नमस्कार किया । क्योंकि उन्हें नमस्कार करनेसे ही सारी त्रुटियों और अपराधोंका मार्जन हो जाता है ॥ २० ॥ जब यशोदानन्दन भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि सब-की-सब कुमारियाँ मेरी आज्ञाके अनुसार प्रणाम कर रही हैं, तब वे बहुत ही प्रसन्न हुए । उनके हृदयमें करुणा उमड़ आयी और उन्होंने उनके वस्त्र दे दिये ॥ २१ ॥ प्रिय परीक्षित् ! श्रीकृष्णने कुमारियोंसे छलभरी बातें कीं, उनका लज्जा-संकोच छुड़ाया, हँसी

की और उन्हें कठपुतलियोंके समान नचाया; यहाँतक कि उनके वस्त्रतक हर लिये। फिर भी वे उनसे रुष्ट नहीं हुईं, उनकी इन चेष्टाओंको दोष नहीं माना, बल्कि अपने प्रियतमके सङ्गसे वे और भी प्रसन्न हुईं ॥ २२ ॥ परीक्षित्! गोपियोंने अपने-अपने वस्त्र पहन लिये। परन्तु श्रीकृष्णने उनके चित्तको इस प्रकार अपने वशमें कर रक्खा था कि वे वहाँसे एक पग भी न चल सकीं। अपने प्रियतमके समागमके लिये सजकर वे उन्हींकी ओर लजीली चितवनसे निहारती रहीं ॥ २३ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि उन कुमारियोंने उनके चरणकमलोंके स्पर्शकी कामनासे ही व्रत धारण किया है और उनके जीवनका यही एकमात्र सङ्कल्प है। तब गोपियोंके प्रेमके अधीन होकर ऊखलतकमें बँध जानेवाले भगवान्ने उनसे कहा—॥ २४ ॥ 'मेरी परम प्रेयसी कुमारियो! मैं तुम्हारा यह सङ्कल्प जानता हूँ कि तुम मेरी पूजा करना चाहती हो। मैं तुम्हारी इस अभिलाषाका अनुमोदन करता हूँ, तुम्हारा यह सङ्कल्प सत्य होगा। तुम मेरी पूजा कर सकोगी ॥ २५ ॥ जिन्होंने अपना मन और प्राण मुझे समर्पित कर रक्खा है, उनकी कामनाएँ उन्हें सांसारिक भोगोंकी ओर ले जानेमें समर्थ नहीं होतीं; ठीक वैसे ही, जैसे भुने या उबाले हुए बीज फिर अङ्कुरके रूपमें उगनेके योग्य नहीं रह जाते ॥ २६ ॥ इसलिये कुमारियो! अब तुम अपने-अपने घर लौट जाओ। तुम्हारी साधना सिद्ध हो गयी है। तुम आनेवाली शरद् ऋतुकी रात्रियोंमें मेरे साथ विहार करोगी। सतियो! इसी उद्देश्यसे तो तुमलोगोंने यह व्रत और कात्यायनी देवीकी पूजा की थी' * ॥ २७ ॥

* चीर-हरणके प्रसंगको लेकर कई तरहकी शङ्काएँ की जाती हैं, अतएव इस सम्बन्धमें कुछ विचार करना आवश्यक है। वास्तवमें बात यह है कि सच्चिदानन्दघन भगवान्की दिव्य मधुर रसमयी लीलाओंका रहस्य जाननेका सौभाग्य बहुत थोड़े लोगोंको होता है। जिस प्रकार भगवान् चिन्मय हैं, उसी प्रकार उनकी लीला भी चिन्मयी ही होती है। सच्चिदानन्द-रसमय साम्राज्यके जिस परमोन्नत स्तरमें यह लीला हुआ करती है, उसकी ऐसी विलक्षणता है कि कई बार तो ज्ञान विज्ञानस्वरूप विशुद्ध चेतन परम ब्रह्ममें भी उसका प्राकट्य नहीं होता और इसीलिये ब्रह्म-साक्षात्कारको प्राप्त महात्मा लोग भी इस लीला-रसका समास्वादन नहीं कर पाते। भगवान्की इस परमोज्ज्वल दिव्य-रस-लीलाका यथार्थ प्रकाश तो भगवान्की स्वरूपभूता ह्लादिनी शक्ति नित्यनिकुञ्जेश्वरी श्रीवृषभानुनन्दिनी श्रीराधाजी और तदङ्गभूता प्रेममयी गोपियोंके ही हृदयमें होता है और वे ही निरावरण होकर भगवान्की इस परम अन्तरङ्ग रसमयी लीलाका समास्वादन करती हैं।

यों तो भगवान्के जन्म-कर्मकी सभी लीलाएँ दिव्य होती हैं, परन्तु व्रजकी लीला, व्रजमें निकुञ्जलीला और निकुञ्जमें भी केवल रसमयी गोपियोंके साथ होनेवाली मधुर लीला तो दिव्यातिदिव्य और सर्वगुह्यतम है। यह लीला सर्वसाधारणके सम्मुख प्रकट नहीं है, अन्तरङ्ग लीला है और इसमें प्रवेशका अधिकार केवल श्रीगोपीजनोंको ही है। अस्तु,

दशम स्कन्धके इक्कीसवें अध्यायमें ऐसा वर्णन आया है कि भगवान्की रूप-माधुरी, वंशीध्वनि और प्रेममयी लीलाएँ देख-सुनकर गोपियाँ मुग्ध हो गयीं। बाईसवें अध्यायमें उसी प्रेमकी पूर्णता प्राप्त करनेके लिये वे साधनमें लग गयी हैं। इसी अध्यायमें भगवान्ने आकर उनकी साधना पूर्ण की है। यही चीर-हरणका प्रसङ्ग है।

गोपियाँ क्या चाहती थीं, यह बात उनकी साधनासे स्पष्ट है। वे चाहती थीं—श्रीकृष्णके प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण, श्रीकृष्णके साथ इस प्रकार घुल-मिल जाना कि उनका रोम-रोम, मन-प्राण, सम्पूर्ण आत्मा केवल श्रीकृष्णमय हो जाय। शरत्-कालमें उन्होंने श्रीकृष्णकी वंशीध्वनिकी चर्चा आपसमें की थी, हेमन्तके पहले ही महीनेमें अर्थात् भगवान्के विभूतिस्वरूप मार्गशीर्षमें उनकी साधना प्रारम्भ हो गयी। विलम्ब उनके लिये असह्य था। जाड़ेके दिनमें वे प्रातःकाल ही यमुना-स्नानके लिये जातीं, उन्हें शरीरकी परवा नहीं थी। बहुत-सी कुमारी ग्वालिनें एक साथ ही जातीं, उनमें ईर्ष्या-द्वेष नहीं था। वे ऊँचे स्वरसे श्रीकृष्णका नामकीर्तन करती हुई

जातीं, उन्हें गोत्र और जातिवालोंका भय नहीं था। वे घरमें भी हविष्यान्नका ही भोजन करतीं, वे श्रीकृष्णके लिये इतनी व्याकुल हो गयी थीं कि उन्हे माता-पितातकका सङ्कोच नही था। वे विधिपूर्वक देवीकी बालुकामयी मूर्ति बनाकर पूजा और मन्त्र-जप करती थीं। अपने इस कार्यको सर्वथा उचित और प्रशस्त मानती थीं। एक वाक्यमे—उन्होने अपना कुल, परिवार, धर्म, सङ्कोच और व्यक्तित्व भगवान्‌के चरणोमें सर्वथा समर्पण कर दिया था। वे यही जपती रहती थीं कि एकमात्र नन्दनन्दन ही हमारे प्राणोके स्वामी हो। श्रीकृष्ण तो वस्तुतः उनके स्वामी थे ही। परन्तु लीलाकी दृष्टिसे उनके समर्पणमें थोड़ी कमी थी। वे निरावरणरूपसे श्रीकृष्णके सामने नहीं जा रही थीं, उनमे थोड़ी झिझक थी; उनकी यही झिझक दूर करनेके लिये—उनकी साधना, उनका समर्पण पूर्ण करनेके लिये उनका आवरण भङ्ग कर देनेकी आवश्यकता थी, उनका यह आवरणरूप चीर हर लेना जरूरी था और यही काम भगवान् श्रीकृष्णने किया। इसीके लिये वे योगेश्वरोंके ईश्वर भगवान् अपने मित्र ग्वालबालोंके साथ यमुनातटपर पधारे थे।

साधक अपनी शक्तिसे, अपने बल और सङ्कल्पसे केवल अपने निश्चयसे पूर्ण समर्पण नहीं कर सकता। समर्पण भी एक क्रिया है और उसका करनेवाला असमर्पित ही रह जाता है। ऐसी स्थितिमे अन्तरात्माका पूर्ण समर्पण तब होता है, जब भगवान् स्वयं आकर वह सङ्कल्प स्वीकार करते हैं और सङ्कल्प करनेवालेको भी स्वीकार करते हैं। यहीं जाकर समर्पण पूर्ण होता है। साधकका कर्तव्य है—पूर्ण समर्पणकी तैयारी। उसे पूर्ण तो भगवान् ही करते हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण यों तो लीलापुरुषोत्तम हैं; फिर भी जब अपनी लीला प्रकट करते हैं, तब मर्यादाका उल्लङ्घन नहीं करते, स्थापना ही करते हैं। विधिका अतिक्रमण करके कोई साधनाके मार्गमें अग्रसर नहीं हो सकता। परन्तु हृदयकी निष्कपटता, सचाई और सच्चा प्रेम विधिके अतिक्रमणको भी शिथिल कर देता है। गोपियाँ श्रीकृष्णको प्राप्त करनेके लिये जो साधना कर रही थीं, उसमें एक त्रुटि थी। वे शास्त्र-मर्यादा और परम्परागत सनातन मर्यादाका उल्लङ्घन करके नग्न-स्नान करती थीं। यद्यपि उनकी यह क्रिया अज्ञानपूर्वक ही थी, तथापि भगवान्‌के द्वारा इसका मार्जन होना आवश्यक था। भगवान्‌ने गोपियोंसे इसका प्रायश्चित्त भी करवाया। जो लोग भगवान्‌के प्रेमके नामपर विधिका उल्लङ्घन करते हैं, उन्हें यह प्रसङ्ग ध्यानसे पढ़ना चाहिये और भगवान् शास्त्रविधिका कितना आदर करते हैं, यह देखना चाहिये।

वैधी भक्तिका पर्यवसान रागात्मिका भक्तिमें है और रागात्मिका भक्ति पूर्ण समर्पणके रूपमें परिणत हो जाती है। गोपियोंने वैधी भक्तिका अनुष्ठान किया, उनका हृदय तो रागात्मिका भक्तिसे भरा हुआ था ही। अब पूर्ण समर्पण होना चाहिये। चीरहरणके द्वारा वही कार्य सम्पन्न होता है।

गोपियोंने जिनके लिये लोक-परलोक, स्वार्थ-परमार्थ, जाति-कुल, पुरजन-परिजन और गुरुजनोंकी परवा नहीं की, जिनकी प्राप्तिके लिये ही उनका यह महान् अनुष्ठान है, जिनके चरणोंमे उन्होंने अपना सर्वस्व निछावर कर रक्खा है, जिनसे निरावरण मिलनकी ही एकमात्र अभिलाषा है, उन्हीं निरावरण रसमय भगवान् श्रीकृष्णके सामने वे निरावरण भावसे न जा सके—क्या यह उनकी साधनाकी अपूर्णता नहीं है? है, अवश्य है। और यह समझकर ही गोपियाँ निरावरणरूपसे उनके सामने गयीं।

श्रीकृष्ण चराचर प्रकृतिके एकमात्र अधीश्वर है; समस्त क्रियाओंके कर्ता, भोक्ता और साक्षी भी वही हैं। ऐसा एक भी व्यक्त या अव्यक्त पदार्थ नहीं है, जो बिना किसी परदेके उनके सामने न हो। वही सर्वव्यापक, अन्तर्यामी हैं। गोपियोंके, गोपोंके और निखिल विश्वके वही आत्मा हैं। उन्हें स्वामी, गुरु, पिता, माता, सखा, पति आदिके रूपमें मानकर लोग उन्हींकी उपासना करते हैं। गोपियाँ उन्हीं भगवान्‌को जान-बूझकर कि यही

भगवान् हैं—यही योगेश्वरेश्वर, क्षराक्षरातीत पुरुषोत्तम हैं—पतिके रूपमें प्राप्त करना चाहती थीं। श्रीमद्भागवत-के दशम स्कन्धका श्रद्धाभावसे पाठ कर जानेपर यह बात बहुत ही स्पष्ट हो जाती है कि गोपियाँ श्रीकृष्णके वास्तविक स्वरूपको जानती थीं, पहचानती थीं। वेणुगीत, गोपीगीत, युगलगीत और श्रीकृष्णके अन्तर्धान हो जानेपर गोपियोंके अन्वेषणमें यह बात कोई भी देख-सुन-समझ सकता है। जो लोग भगवान्‌को भगवान् मानते हैं, उनसे सम्बन्ध रखते हैं, स्वामी-सुहृद् आदिके रूपमें उन्हें मानते हैं, उनके हृदयमें गोपियोंके इस लोकोत्तर माधुर्यसम्बन्ध और उसकी साधनाके प्रति शङ्का ही कैसे हो सकती है।

गोपियोंकी इस दिव्य लीलाका जीवन उच्च श्रेणीके साधकके लिये आदर्श जीवन है। श्रीकृष्ण जीवके एकमात्र प्राप्तव्य साक्षात् परमात्मा हैं। हमारी बुद्धि, हमारी दृष्टि देहतक ही सीमित है। इसलिये हम श्रीकृष्ण-और गोपियोंके प्रेमको भी केवल दैहिक तथा कामनाकलुषित समझ बैठते हैं। उस अपार्थिव और अप्राकृत लीला-को इस प्रकृतिके राज्यमें घसीट लाना हमारी स्थूल वासनाओंका हानिकर परिणाम है। जीवका मन भोगाभिमुख वासनाओंसे और तमोगुणी प्रवृत्तियोंसे अभिभूत रहता है। वह विषयोंमे ही इधर-से-उधर भटकता रहता है और अनेकों प्रकारके रोग-शोकसे आक्रान्त रहता है। जब कभी पुण्यकर्मोंके फल उदय होनेपर भगवान्‌की अचिन्त्य अहैतुकी कृपासे विचारका उदय होता है, तब जीव दु:खज्वालासे त्राण पानेके लिये और अपने प्राणोंको शान्ति-मय धाममें पहुँचानेके लिये उत्सुक हो उठता है। वह भगवान्‌के लीलाधामोंकी यात्रा करता है, सत्सङ्ग प्राप्त करता है और उसके हृदयकी छटपटी उस आकाङ्क्षाको लेकर, जो अबतक सुप्त थी, जगकर बडे वेगसे परमात्मा-की ओर चल पड़ती है। चिरकालसे विषयोंका ही अभ्यास होनेके कारण बीच-बीचमें विषयोंके संस्कार उसे सताते हैं और बार-बार विक्षेपोंका सामना करना पडता है। परन्तु भगवान्‌की प्रार्थना, कीर्तन, स्मरण, चिन्तन करते-करते चित्त सरस होने लगता है और धीरे-धीरे उसे भगवान्‌की सन्निधिका अनुभव भी होने लगता है। थोड़ा-सा रसका अनुभव होते ही चित्त बडे वेगसे अन्तर्देशमें प्रवेश कर जाता है और भगवान् मार्गदर्शकके रूपमें संसार-सागरसे पार ले जानेवाली नावपर केवटके रूपमें अथवा यों कहें कि साक्षात् चित्स्वरूप गुरुदेवके रूपमें प्रकट हो जाते हैं। ठीक उसी क्षण अभाव, अपूर्णता और सीमाका बन्धन नष्ट हो जाता है, विशुद्ध आनन्द—विशुद्ध ज्ञानकी अनुभूति होने लगती है।

गोपियाँ, जो अभी-अभी साधनसिद्ध होकर भगवान्‌की अन्तरङ्ग लीलामें प्रविष्ट होनेवाली हैं, चिरकालसे श्रीकृष्णके प्राणोंमें अपने प्राण मिला देनेके लिये उत्कण्ठित हैं, सिद्धिलाभके समीप पहुँच चुकी हैं। अथवा जो नित्यसिद्धा होनेपर भी भगवान्‌की इच्छाके अनुसार उनकी दिव्य लीलामें सहयोग प्रदान कर रही हैं, उनके हृदयके समस्त भावोंके एकान्त ज्ञाता श्रीकृष्ण बाँसुरी बजाकर उन्हे आकृष्ट करते हैं और जो कुछ उनके हृदयमे बचे-खुचे पुराने संस्कार हैं, मानो उन्हे धो डालनेके लिये साधनामें लगाते हैं, उनकी कितनी दया है, वे अपने प्रेमियोंसे कितना प्रेम करते हैं—यह सोचकर चित्त मुग्ध हो जाता है, गद्गद हो जाता है।

श्रीकृष्ण गोपियोंके वस्त्रोंके रूपमें उनके समस्त संस्कारोंके आवरण अपने हाथमे लेकर पास ही कदम्बके वृक्षपर चढ़कर बैठ गये। गोपियाँ जलमे थी, वे जलमे सर्वव्यापक सर्वदर्शी भगवान् श्रीकृष्णसे मानो अपनेको गुप्त समझ रही थीं—वे मानो इस तत्त्वको भूल गयी थीं कि श्रीकृष्ण जलमे ही नहीं है स्वयं जलस्वरूप भी वही हैं। उनके पुराने संस्कार श्रीकृष्णके सम्मुख जानेमे बाधक हो रहे थे, वे श्रीकृष्णके लिये सब कुछ भूल गयी थीं परन्तु अबतक अपनेको नहीं भूली थीं। वे चाहती थीं केवल श्रीकृष्णको, परन्तु उनके संस्कार बीचमें एक परदा रखना चाहते थे। प्रेम प्रेमी और प्रियतमके बीचमें एक पुष्पका भी परदा नहीं रखना चाहता। प्रेमकी प्रकृति है सर्वथा व्यवधानरहित, अबाध और अनन्त मिलन। जहाँतक अपना सर्वस्व—इसका विस्तार चाहे जितना

हो—प्रेमकी ज्वालामें भस्म नहीं कर दिया जाता, वहाँतक प्रेम और समर्पण दोनों ही अपूर्ण रहते हैं । इसी अपूर्णताको दूर करते हुए, 'शुद्ध भावसे प्रसन्न हुए' (शुद्धभावप्रसादितः) श्रीकृष्णने कहा कि 'मुझसे अनन्य प्रेम करनेवाली गोपियो ! एक बार, केवल एक बार अपने सर्वस्वको और अपनेको भी भूलकर मेरे पास आओ तो सही । तुम्हारे हृदयमें जो अव्यक्त त्याग है, उसे एक क्षणके लिये व्यक्त तो करो । क्या तुम मेरे लिये इतना भी नहीं कर सकती हो ?' गोपियोंने मानो कहा—'श्रीकृष्ण ! हम अपनेको कैसे भूलें ? हमारी जन्म-जन्मकी धारणाएँ भूलने दें, तब न । हम संसारके अगाध जलमें आकण्ठ मग्न हैं । जाड़ेका कष्ट भी है । हम आना चाहनेपर भी नहीं आ पाती हैं । श्यामसुन्दर ! प्राणोंके प्राण ! हमारा हृदय तुम्हारे सामने उन्मुक्त है । हम तुम्हारी दासी हैं । तुम्हारी आज्ञाओंका पालन करेंगी । परन्तु हमें निरावरण करके अपने सामने मत बुलाओ ।' साधककी यह दशा—भगवान्‌को चाहना और साथ ही संसारको भी न छोड़ना, संस्कारोंमें ही उलझे रहना—मायाके परदेको बनाये रखना, बड़ी द्विविधाकी दशा है । भगवान् यही सिखाते हैं कि 'संस्कारशून्य होकर, निरावरण होकर, मायाका परदा हटाकर आओ; मेरे पास आओ । अरे, तुम्हारा यह मोहका परदा तो मैंने ही छीन लिया है; तुम अब इस परदेके मोहमें क्यों पड़ी हो ? यह परदा ही तो परमात्मा और जीवके बीचमें बड़ा व्यवधान है; यह हट गया, बड़ा कल्याण हुआ । अब तुम मेरे पास आओ, तभी तुम्हारी चिरसञ्चित आकाङ्क्षाएँ पूरी हो सकेंगी ।' परमात्मा श्रीकृष्णका यह आह्वान, आत्माके आत्मा परम प्रियतमके मिलनका यह मधुर आमन्त्रण भगवत्कृपासे जिसके अन्तर्देशमें प्रकट हो जाता है, वह प्रेममें निमग्न होकर सब कुछ छोड़कर, छोड़ना भी भूलकर प्रियतम श्रीकृष्णके चरणोंमें दौड़ आता है । फिर न उसे अपने वस्त्रोंकी सुधि रहती है और न लोगोंका ध्यान ! न वह जगत्‌को देखता है न अपनेको । यह भगवत्प्रेमका रहस्य है । विशुद्ध और अनन्य भगवत्प्रेममें ऐसा होता ही है ।

गोपियाँ आयीं, श्रीकृष्णके चरणोंके पास मूकभावसे खड़ी हो गयीं । उनका मुख लज्जावनत था । यत्किञ्चित् संस्कारशेष श्रीकृष्णके पूर्ण आभिमुख्यमें प्रतिबन्ध हो रहा था । श्रीकृष्ण मुसकराये । उन्होंने इशारेसे कहा—'इतने बड़े त्यागमें यह सङ्कोच कलङ्क है । तुम तो सदा निष्कलङ्का हो; तुम्हें इसका भी त्याग, त्यागके भावका भी त्याग—त्यागकी स्मृतिका भी त्याग करना होगा ।' गोपियोंकी दृष्टि श्रीकृष्णके मुखकमलपर पड़ी । दोनों हाथ अपने-आप जुड़ गये और सूर्यमण्डलमें विराजमान अपने प्रियतम श्रीकृष्णसे ही उन्होंने प्रेमकी भिक्षा माँगी । गोपियोंके इसी सर्वस्वत्यागने, इसी पूर्ण समर्पणने, इसी उच्चतम आत्मविस्मृतिने उन्हें भगवान् श्रीकृष्णके प्रेमसे भर दिया । वे दिव्य रसके अलौकिक अप्राकृत मधुके अनन्त समुद्रमें डूबने-उतराने लगीं । वे सब कुछ भूल गयीं, भूलनेवालेको भी भूल गयीं, उनकी दृष्टिमें अब श्यामसुन्दर थे । बस, केवल श्यामसुन्दर थे ।

जब प्रेमी भक्त आत्मविस्मृत हो जाता है, तब उसका दायित्व प्रियतम भगवान्‌पर होता है । अब मर्यादारक्षाके लिये गोपियोंको तो वस्त्रकी आवश्यकता नहीं थी । क्योंकि उन्हे जिस वस्तुकी आवश्यकता थी, वह मिल चुकी थी । परन्तु श्रीकृष्ण अपने प्रेमीको मर्यादाच्युत नहीं होने देते । वे स्वयं वस्त्र देते हैं और अपनी अमृतमयी वाणीके द्वारा उन्हें विस्मृतिसे जगाकर फिर जगत्‌में लाते हैं । श्रीकृष्णने कहा—'गोपियो ! तुम सती-साध्वी हो । तुम्हारा प्रेम और तुम्हारी साधना मुझसे छिपी नहीं है । तुम्हारा सङ्कल्प सत्य होगा । तुम्हारा यह सङ्कल्प—तुम्हारी यह कामना तुम्हे उस पदपर स्थित करती है, जो निस्सङ्कल्पता और निष्कामताका है । तुम्हारा उद्देश्य पूर्ण, तुम्हारा समर्पण पूर्ण और अब आगे आनेवाली शारदीय रात्रियोंमें हमारा रमण पूर्ण होगा ।' भगवान्‌ने साधना सफल होनेकी अवधि निर्धारित कर दी । इससे भी स्पष्ट है कि भगवान् श्रीकृष्णमें किसी भी कामविकारकी कल्पना नहीं थी । कामी पुरुषका चित्त वस्त्रहीन स्त्रियोंको देखकर एक क्षणके लिये भी कब वशमें रह सकता है ।

एक बात बड़ी विलक्षण है। भगवान्‌के सम्मुख जानेके पहले जो वस्त्र समर्पणकी पूर्णतामें बाधक हो रहे थे—विक्षेपका काम कर रहे थे—वही भगवान्‌की कृपा, प्रेम, सान्निध्य और वरदान प्राप्त होनेके पश्चात् 'प्रसाद'-स्वरूप हो गये। इसका कारण क्या है? इसका कारण है भगवान्‌का सम्बन्ध। भगवान्‌ने अपने हाथसे उन वस्त्रोंको उठाया था और फिर उन्हें अपने उत्तम अङ्ग कंधेपर रख लिया था। नीचेके शरीरमें पहनने-की साड़ियाँ भगवान्‌के कंधेपर चढ़कर—उनका संस्पर्श पाकर कितनी अप्राकृत रसात्मक हो गयीं, कितनी पवित्र—कृष्णमय हो गयीं, इसका अनुमान कौन लगा सकता है। असलमें यह संसार तभीतक बाधक और विक्षेपजनक है, जबतक यह भगवान्‌से सम्बद्ध और भगवान्‌का प्रसाद नहीं हो जाता। उनके द्वारा प्राप्त होनेपर तो यह बन्धन ही मुक्तिस्वरूप हो जाता है। उनके सम्पर्कमें जाकर माया शुद्ध विद्या बन जाती है। संसार और उसके समस्त कर्म अमृतमय आनन्दरससे परिपूर्ण हो जाते हैं। तब बन्धनका भय नहीं रहता। कोई भी आवरण भगवान्‌के दर्शनसे वञ्चित नहीं रख सकता। नरक नरक नहीं रहता, भगवान्‌का दर्शन होते रहनेके कारण वह वैकुण्ठ बन जाता है। इसी स्थितिमें पहुँचकर बड़े-बड़े साधक प्राकृत पुरुषके समान आचरण करते हुए-से दीखते हैं। भगवान् श्रीकृष्णकी अपनी होकर गोपियाँ पुनः वे ही वस्त्र धारण करती हैं अथवा श्रीकृष्ण वे ही वस्त्र धारण कराते हैं; परन्तु गोपियोंकी दृष्टिमें अब ये वस्त्र वे वस्त्र नहीं हैं; वस्तुतः वे हैं भी नहीं—अब तो ये दूसरी ही वस्तु हो गये हैं। अब तो ये भगवान्‌के पावन प्रसाद हैं, पल-पलपर भगवान्‌का स्मरण करानेवाले भगवान्‌के परम सुन्दर प्रतीक हैं। इसीसे उन्होंने स्वीकार भी किया। उनकी प्रेममयी स्थिति मर्यादाके ऊपर थी, फिर भी उन्होंने भगवान्‌की इच्छासे मर्यादा स्वीकार की। इस दृष्टिसे विचार करनेपर ऐसा जान पड़ता है कि भगवान्‌की यह चीरहरण-लीला भी अन्य लीलाओंकी भाँति उच्चतम मर्यादासे परिपूर्ण है।

भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंके सम्बन्धमें केवल वे ही प्राचीन आर्षग्रन्थ प्रमाण हैं, जिनमें उनकी लीलाका वर्णन हुआ है। उनमेंसे एक भी ऐसा ग्रन्थ नहीं है जिसमें श्रीकृष्णकी भगवत्ताका वर्णन न हो। श्रीकृष्ण 'स्वयं भगवान्' हैं, यही बात सर्वत्र मिलती है। जो श्रीकृष्णको भगवान् नहीं मानते, यह स्पष्ट है कि वे उन ग्रन्थोंको भी नहीं मानते। और जो उन ग्रन्थोंको ही प्रमाण नहीं मानते, वे उनमें वर्णित लीलाओंके आधारपर श्रीकृष्ण-चरित्रकी समीक्षा करनेका अधिकार भी नहीं रखते। भगवान्‌की लीलाओंको मानवीय-चरित्रके समकक्ष रखना शास्त्र-दृष्टिसे एक महान् अपराध है और उसके अनुकरणका तो सर्वथा ही निषेध है। मानवबुद्धि—जो स्थूलताओंसे ही परिवेष्टित है—केवल जडके सम्बन्धमें ही सोच सकती है, भगवान्‌की दिव्य चिन्मयी लीलाके सम्बन्धमें कोई कल्पना ही नहीं कर सकती। वह बुद्धि स्वयं ही अपना उपहास करती है, जो समस्त बुद्धियोंके प्रेरक और बुद्धियोंसे अत्यन्त परे रहनेवाले परमात्माकी दिव्य लीलाको अपनी कसौटीपर कसती है।

हृदय और बुद्धिके सर्वथा विपरीत होनेपर भी यदि थोड़ी देरके लिये मान लें कि श्रीकृष्ण भगवान् नहीं थे या उनकी यह लीला मानवीय थी, तो भी तर्क और युक्तिके सामने ऐसी कोई बात नहीं टिक पाती जो श्रीकृष्णके चरित्रमें लाञ्छन हो। श्रीमद्भागवतका पारायण करनेवाले जानते हैं कि व्रजमें श्रीकृष्णने केवल ग्यारह वर्षकी अवस्थातक ही निवास किया था। यदि रास-लीलाका समय दसवाँ वर्ष मानें, तो नवें वर्षमें ही चीरहरण-लीला हुई थी। इस बातकी कल्पना भी नहीं हो सकती कि आठ-नौ वर्षके बालकमें कामोत्तेजना हो सकती है। गाँवकी गँवारिन ग्वालिनें, जहाँ वर्तमानकालकी नागरिक मनोवृत्ति नहीं पहुँच पायी है, एक आठ-नौ वर्षके बालकसे अवैध सम्बन्ध करना चाहें और उसके लिये साधना करें—यह कदापि सम्भव नहीं दीखता। उन कुमारी गोपियोंके मनमें कलुषित वृत्ति थी, यह वर्तमान कलुषित मनोवृत्तिकी उद्भावना है। आजकल जैसे गाँवकी छोटी-छोटी लड़कियाँ 'राम'-सा वर और 'लक्ष्मण'-सा देवर पानेके लिये देवी-देवताओंकी पूजा करती हैं, वैसे ही

उन कुमारियोंने भी परम सुन्दर परम मधुर श्रीकृष्णको पानेके लिये देवी-पूजन और व्रत किये थे। इसमें दोषकी कौन-सी बात है?

आजकी बात निराली है। भोगप्रधान देशोंमें तो नग्नसम्प्रदाय और नग्नस्नानके क्लब भी बने हुए हैं। उनकी दृष्टि इन्द्रिय-तृप्तितक ही सीमित है। भारतीय मनोवृत्ति इस उत्तेजक एवं मलिन व्यापारके विरुद्ध है। नग्नस्नान एक दोष है, जो कि पशुत्वको बढ़ानेवाला है। शास्त्रोंमे इसका निषेध है, 'न नग्नः स्नायात्'—यह शास्त्रकी आज्ञा है। श्रीकृष्ण नहीं चाहते थे कि गोपियाँ शास्त्रके विरुद्ध आचरण करें। केवल लौकिक अनर्थ ही नहीं—भारतीय ऋषियोंका वह सिद्धान्त, जो प्रत्येक वस्तुमे पृथक्-पृथक् देवताओंका अस्तित्व मानता है इस नग्नस्नानको देवताओंके विपरीत बतलाता है। श्रीकृष्ण जानते थे कि इससे वरुण देवताका अपमान होता है। गोपियाँ अपनी अभीष्ट-सिद्धिके लिये जो तपस्या कर रही थीं, उसमें उनका नग्नस्नान अनिष्ट फल देनेवाला था और इस प्रथाके प्रभातमें ही यदि इसका विरोध न कर दिया जाय तो आगे चलकर इसका विस्तार हो सकता है; इसलिये श्रीकृष्णने अलौकिक ढंगसे इसका निषेध कर दिया।

गाँवोंकी ग्वालिनोंको इस प्रथाकी बुराई किस प्रकार समझायी जाय, इसके लिये भी श्रीकृष्णने एक मौलिक उपाय सोचा। यदि वे गोपियोंके पास जाकर उन्हें देवतावादकी फिलासफी समझाते, तो वे सरलतासे नहीं समझ सकती थीं। उन्हें तो इस प्रथाके कारण होनेवाली विपत्तिका प्रत्यक्ष अनुभव करा देना था। और विपत्तिका अनुभव करानेके पश्चात् उन्होंने देवताओंके अपमानकी बात भी बता दी तथा अञ्जलि बाँधकर क्षमा-प्रार्थनारूप प्रायश्चित्त भी करवाया। महापुरुषोंमें उनकी बाल्यावस्थामें भी ऐसी प्रतिभा देखी जाती है।

श्रीकृष्ण आठ-नौ वर्षके थे, उनमे कामोत्तेजना नहीं हो सकती और नग्नस्नानकी कुप्रथाको नष्ट करनेके लिये उन्होंने चीरहरण किया—यह उत्तर सम्भव होनेपर भी मूलमें आये हुए 'काम' और रमण शब्दोंसे कई लोग भड़क उठते हैं। यह केवल शब्दकी पकड़ है, जिसपर महात्मालोग ध्यान नहीं देते। श्रुतियोंमें और गीतामें भी अनेकों बार 'काम', 'रमण' और 'रति' आदि शब्दोंका प्रयोग हुआ है; परन्तु वहाँ उनका अश्लील अर्थ नहीं होता। गीतामें तो 'धर्माविरुद्ध काम' को परमात्माका स्वरूप बतलाया गया है। महापुरुषोंका आत्मरमण, आत्ममिथुन और आत्मरति प्रसिद्ध ही है। ऐसी स्थितिमें केवल कुछ शब्दोंको देखकर भड़कना विचारशील पुरुषोंका काम नहीं है। जो श्रीकृष्णको केवल मनुष्य समझते हैं उन्हें रमण और रति शब्दका अर्थ केवल क्रीडा अथवा खिलवाड़ समझना चाहिये, जैसा कि व्याकरणके अनुसार ठीक है—'रमु क्रीडायाम्'।

दृष्टिभेदसे श्रीकृष्णकी लीला भिन्न-भिन्न रूपमे दीख पड़ती है। अध्यात्मवादी श्रीकृष्णको आत्माके रूपमें देखते हैं और गोपियोंको वृत्तियोंके रूपमें। वृत्तियोंका आवरण नष्ट हो जाना ही 'चीरहरणलीला' है और उनका आत्मामें रम जाना ही 'रास' है। इस दृष्टिसे भी समस्त लीलाओंकी संगति बैठ जाती है। भक्तोंकी दृष्टिने गोलोकाधिपति पूर्णतम पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णका यह सब नित्यलीला-विलास है और अनादिकालसे अनन्तकालतक यह नित्य चलता रहता है। कभी-कभी भक्तोंपर कृपा करके वे अपने नित्य धाम और नित्य सखा-सहचरियोंके साथ लीलाधाममें प्रकट होकर लीला करते हैं और भक्तोंके स्मरण-चिन्तन तथा आनन्द-मङ्गलकी सामग्री प्रकट करके पुनः अन्तर्धान हो जाते हैं। साधकोंके लिये किस प्रकार कृपा करके भगवान् अन्तर्मलको और अनादिकालसे सञ्चित संस्कारपटको विशुद्ध कर देते हैं, यह बात भी इस चीरहरण-लीलासे प्रकट होती है। भगवान्‌की लीला रहस्यमयी है, उसका तत्त्व केवल भगवान् ही जानते हैं और उनकी कृपासे उनकी लीलामें प्रविष्ट भाग्यवान् भक्त कुछ-कुछ जानते हैं। यहाँ तो शास्त्रों और संतोंकी वाणीके आधारपर ही कुछ लिखनेकी धृष्टता की गयी है।

हनुमानप्रसाद पोद्दार

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान्‌की यह आज्ञा पाकर वे कुमारियाँ भगवान् श्रीकृष्णके चरण-कमलोंका ध्यान करती हुई जानेकी इच्छा न होनेपर भी बड़े कष्टसे व्रजमें गयीं। अब उनकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो चुकी थीं ॥ २८ ॥

प्रिय परीक्षित्! एक दिन भगवान् श्रीकृष्ण बलराम-जी और ग्वालबालोंके साथ गौएँ चराते हुए वृन्दावनसे बहुत दूर निकल गये ॥ २९ ॥ ग्रीष्म ऋतु थी। सूर्यकी किरणें बहुत ही प्रखर हो रही थीं। परन्तु घने-घने वृक्ष भगवान् श्रीकृष्णके ऊपर छत्तेका काम कर रहे थे। भगवान् श्रीकृष्णने वृक्षोंको छाया करते देख स्तोककृष्ण, अंशु, श्रीदामा, सुबल, अर्जुन, विशाल, ऋषभ, तेजस्वी, देवप्रस्थ और वरूथप आदि ग्वालबालोंको सम्बोधन करके कहा ॥ ३०-३१ ॥ 'मेरे प्यारे मित्रो! देखो, ये वृक्ष कितने भाग्यवान् हैं! इनका सारा जीवन केवल दूसरों-की भलाई करनेके लिये ही है। ये स्वयं तो हवाके झोंके, वर्षा, धूप और पाला—सब कुछ सहते हैं, परन्तु हमलोगोंकी उनसे रक्षा करते हैं ॥ ३२ ॥ मैं कहता हूँ कि इन्हींका जीवन सबसे श्रेष्ठ है। क्योंकि इनके द्वारा सब प्राणियोंको सहारा मिलता है, उनका जीवन-निर्वाह होता है। जैसे किसी सज्जन पुरुषके घरसे कोई याचक खाली हाथ नहीं लौटता, वैसे ही इन वृक्षोंसे भी सभीको कुछ-न-कुछ मिल ही जाता है ॥ ३३ ॥ ये अपने पत्ते, फूल, फल, छाया, जड़, छाल, लकड़ी, गन्ध, गोंद, राख, कोयला, अङ्कुर और कोंपलोंसे भी लोगोंकी कामना पूर्ण करते हैं; ॥३४॥ मेरे प्यारे मित्रो! संसारमें प्राणी तो बहुत हैं; परन्तु उनके जीवनकी सफलता इतनेमें ही है कि जहाँतक हो सके अपने धनसे, विवेक-विचारसे, वाणीसे और प्राणोंसे भी ऐसे ही कर्म किये जायँ, जिनसे दूसरोंकी भलाई हो ॥ ३५ ॥ परीक्षित्! दोनों ओरके वृक्ष नयी-नयी कोंपलों, गुच्छों, फल-फूलों और पत्तोंसे लद रहे थे। उनकी डालियाँ पृथ्वीतक झुकी हुई थीं। इस प्रकार भाषण करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण उन्हींके बीचसे यमुना-तटपर निकल आये ॥ ३६ ॥ राजन्! यमुनाजीका जल बड़ा ही मधुर, शीतल और स्वच्छ था। उन लोगोंने पहले गौओंको पिलाया और इसके बाद स्वयं भी जी भरकर स्वादु जलका पान किया ॥३७॥ परीक्षित्! जिस समय वे यमुनाजीके तटपर हरे-भरे उपवनमें बड़ी स्वतन्त्रतासे अपनी गौएँ चरा रहे थे, उसी समय कुछ भूखे ग्वालोंने भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम-जीके पास आकर यह बात कही— ॥ ३८ ॥

तेईसवाँ अध्याय

यज्ञपत्नियोंपर कृपा

ग्वालबालोंने कहा—नयनाभिराम बलराम! तुम बड़े पराक्रमी हो। हमारे चित्तचोर श्यामसुन्दर! तुमने बड़े-बड़े दुष्टोंका संहार किया है। उन्हीं दुष्टोंके समान यह भूख भी हमें सता रही है। अतः तुम दोनों इसे भी बुझानेका कोई उपाय करो ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित्! जब ग्वालबालोंने देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णसे इस प्रकार प्रार्थना की तब उन्होंने मथुराकी अपनी भक्त ब्राह्मणपत्नियोंपर अनुग्रह करनेके लिये यह बात कही—॥ २ ॥ 'मेरे प्यारे मित्रो! यहाँसे थोड़ी ही दूरपर वेदवादी ब्राह्मण स्वर्गकी कामनासे आङ्गिरस नामका यज्ञ कर रहे हैं। तुम उनकी यज्ञशालामें जाओ ॥ ३ ॥ ग्वालबालो! मेरे भेजनेसे वहाँ जाकर तुमलोग मेरे बड़े भाई भगवान् श्रीबलराम-जीका और मेरा नाम लेकर कुछ थोड़ा-सा भात—भोजनकी सामग्री माँग लाओ' ॥ ४ ॥ जब भगवान्‌ने ऐसी आज्ञा दी, तब ग्वालबाल उन ब्राह्मणोंकी यज्ञशाला-में गये और उनसे भगवान्‌की आज्ञाके अनुसार ही अन्न माँगा। पहले उन्होंने पृथ्वीपर गिरकर दण्डवत्-प्रणाम किया और फिर हाथ जोड़कर कहा—॥ ५ ॥ 'पृथ्वीके मूर्तिमान् देवता ब्राह्मणो! आपका कल्याण हो! आपसे निवेदन है कि हम व्रजके ग्वाले हैं। भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामकी आज्ञासे हम आपके पास आये हैं। आये

हमारी बात सुनें ॥ ६ ॥ भगवान् बलराम और श्रीकृष्ण गौएँ चराते हुए यहाँसे थोड़ी ही दूरपर आये हुए हैं । उन्हें इस समय भूख लगी है और वे चाहते हैं कि आपलोग उन्हें थोड़ा-सा भात दे दें । ब्राह्मणो ! आप धर्मका मर्म जानते हैं । यदि आपकी श्रद्धा हो, तो उन भोजनार्थियोंके लिये कुछ भात दे दीजिये ॥७॥ सज्जनो ! जिस यज्ञदीक्षामें पशुबलि होती है, उसमें और सौत्रामणी यज्ञमें दीक्षित पुरुषका अन्न नहीं खाना चाहिये । इनके अतिरिक्त और किसी भी समय किसी भी यज्ञमें दीक्षित पुरुषका भी अन्न खानेमें कोई दोष नहीं है' ॥ ८ ॥ परीक्षित् ! इस प्रकार भगवान्के अन्न माँगनेकी बात सुनकर भी उन ब्राह्मणोंने उसपर कोई ध्यान नहीं दिया । वे चाहते थे स्वर्गादि तुच्छ फल, और उनके लिये बड़े-बड़े कर्मोंमें उलझे हुए थे । सच पूछो तो वे ब्राह्मण ज्ञानकी दृष्टिसे थे बालक ही, परन्तु अपनेको बड़ा ज्ञानवृद्ध मानते थे ॥९॥ परीक्षित् ! देश, काल, अनेक प्रकारकी सामग्रियाँ, भिन्न-भिन्न कर्मोंमें विनियुक्त मन्त्र, अनुष्ठानकी पद्धति, ऋत्विज-ब्रह्मा आदि यज्ञ करानेवाले, अग्नि, देवता, यजमान, यज्ञ और धर्म—इन सब रूपोंमें एकमात्र भगवान् ही प्रकट हो रहे हैं ॥ ॥ १० ॥ वे ही इन्द्रियातीत परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं ग्वालबालोंके द्वारा भात माँग रहे हैं । परन्तु इन मूर्खोंने, जो अपनेको शरीर ही माने बैठे हैं, भगवान्को भी एक साधारण मनुष्य ही माना और उनका सम्मान नहीं किया ॥११॥ परीक्षित् ! जब उन ब्राह्मणोंने 'हाँ' या 'ना'—कुछ नहीं कहा, तब ग्वालबालोंकी आशा टूट गयी; वे लौट आये और वहाँकी सब बात उन्होंने श्रीकृष्ण तथा बलरामसे कह दी ॥१२॥ उनकी बात सुनकर सारे जगत्के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण हँसने लगे । उन्होंने ग्वालबालोंको समझाया कि 'संसारमें असफलता तो बार-बार होती ही है, उससे निराश नहीं होना चाहिये; बार-बार प्रयत्न करते रहनेसे सफलता मिल ही जाती है ।' फिर उनसे कहा—॥ १३ ॥ 'मेरे प्यारे ग्वालबालो ! इस बार तुमलोग उनकी पत्नियोंके पास जाओ और उनसे कहो कि राम और श्याम यहाँ आये हैं । तुम जितना चाहोगे उतना भोजन वे तुम्हें देंगी । वे मुझसे बड़ा प्रेम करती हैं । उनका मन सदा-सर्वदा मुझमें लगा रहता है' ॥१४॥

अबकी बार ग्वालबाल पत्नीशालामें गये । वहाँ जाकर देखा तो ब्राह्मणोंकी पत्नियाँ सुन्दर-सुन्दर वस्त्र और गहनोंसे सज-धजकर बैठी हैं । उन्होंने द्विजपत्नियोंको प्रणाम करके बड़ी नम्रतासे यह बात कही—॥१५॥ 'आप विप्रपत्नियोंको हम नमस्कार करते हैं । आप कृपा करके हमारी बात सुनें । भगवान् श्रीकृष्ण यहाँसे थोड़ी ही दूरपर आये हुए हैं और उन्होंने ही हमें आपके पास भेजा है ॥ १६ ॥ वे ग्वालबाल और बलरामजीके साथ गौएँ चराते हुए इधर बहुत दूर आ गये हैं । इस समय उन्हें और उनके साथियोंको भूख लगी है । आप उनके लिये कुछ भोजन दे दें ॥१७॥ परीक्षित् ! वे ब्राह्मणियाँ बहुत दिनोंसे भगवान्की मनोहर लीलाएँ सुनती थीं । उनका मन उनमें लग चुका था । वे सदा-सर्वदा इस बातके लिये उत्सुक रहतीं कि किसी प्रकार श्रीकृष्णके दर्शन हो जायँ । श्रीकृष्णके आनेकी बात सुनते ही वे उतावली हो गयीं ।१८। उन्होंने बर्तनोंमें अत्यन्त स्वादिष्ट और हितकर भक्ष्य, भोज्य, लेह्य और चोष्य—चारों प्रकारकी भोजन-सामग्री ले ली तथा भाई-बन्धु, पति-पुत्रोंके रोकते रहनेपर भी अपने प्रियतम भगवान् श्रीकृष्णके पास जानेके लिये घरसे निकल पड़ीं—ठीक वैसे ही, जैसे नदियाँ समुद्रके लिये । क्यों न हो; न जाने कितने दिनोंसे पवित्रकीर्ति भगवान् श्रीकृष्णके गुण, लीला, सौन्दर्य और माधुर्य आदिका वर्णन सुन-सुनकर उन्होंने उनके चरणोंपर अपना हृदय निछावर कर दिया था ।१९-२०। ब्राह्मणपत्नियोंने जाकर देखा कि यमुनाके तटपर नये-नये कोंपलोंसे शोभायमान अशोक-वनमें ग्वालबालोंसे घिरे हुए बलरामजीके साथ श्रीकृष्ण इधर-उधर घूम रहे हैं ॥ २१ ॥ उनके साँवले शरीरपर सुनहला पीताम्बर झिलमिला रहा है । गलेमें वनमाला लटक रही है । मस्तकपर मोरपंखका मुकुट है । अङ्ग-अङ्गमें रंगीन धातुओंसे चित्रकारी कर रक्खी है । नये-नये कोंपलोंके गुच्छे शरीरमें लगाकर नटका-सा वेष बना रक्खा है । एक हाथ अपने सखा ग्वालबालके कंधेपर रक्खे हुए हैं और दूसरे हाथसे कमलका फूल नचा रहे हैं । कानोंमें कमलके कुण्डल हैं, कपोलोंपर घुँघराली अलकें लटक रही हैं और मुख-

ग्वाल-बालकके कन्धेपर हाथ रखे नटवर

कमल मन्द-मन्द मुसकानकी रेखासे प्रफुल्लित हो रहा है ॥ २२ ॥ परीक्षित् ! अबतक अपने प्रियतम श्याम-सुन्दरके गुण और लीलाएँ अपने कानोंसे सुन सुनकर उन्होंने अपने मनको उन्हींके प्रेमके रंगमें रँग डाला था, उसीमें सराबोर कर दिया था । अब नेत्रोंके मार्गसे उन्हें भीतर ले जाकर बहुत देरतक वे मन-ही-मन उनका आलिङ्गन करती रहीं और इस प्रकार उन्होंने अपने हृदयकी जलन शान्त की—ठीक वैसे ही, जैसे जाग्रत् और स्वप्न अवस्थाओंकी वृत्तियाँ 'यह मैं, यह मेरा' इस भावसे जलती रहती हैं, परन्तु सुषुप्ति-अवस्थामें उसके अभिमानी प्राज्ञको पाकर उसीमें लीन हो जाती हैं और उनकी सारी जलन मिट जाती है ॥ २३ ॥

प्रिय परीक्षित् ! भगवान् सबके हृदयकी बात जानते हैं, सबकी बुद्धियोंके साक्षी हैं । उन्होंने जब देखा कि ये ब्राह्मणपत्नियाँ अपने भाई-बन्धु और पति-पुत्रोंके रोकनेपर भी सब सगे-सम्बन्धियों और विषयोंकी आशा छोड़कर केवल मेरे दर्शनकी लालसासे ही मेरे पास आयी हैं, तब उन्होंने उनसे कहा । उस समय उनके मुखारविन्दपर हास्यकी तरङ्गें अठखेलियाँ कर रही थीं॥२४॥ भगवान्ने कहा—'महाभाग्यवती देवियो ! तुम्हारा स्वागत है ।आओ, बैठो । कहो, हम तुम्हारा क्या स्वागत करें ? तुमलोग हमारे दर्शनकी इच्छासे यहाँ आयी हो, यह तुम्हारे-जैसे प्रेमपूर्ण हृदयवालोंके योग्य ही है ॥ २५ ॥ इसमें सन्देह नहीं कि संसारमें अपनी सच्ची भलाईको समझनेवाले जितने भी बुद्धिमान् पुरुष हैं, वे अपने प्रियतमके समान ही मुझसे प्रेम करते हैं, और ऐसा प्रेम करते हैं, जिसमें किसी प्रकारकी कामना नहीं रहती—जिसमें किसी प्रकारका व्यवधान, सङ्कोच, छिपाव, दुविधा या द्वैत नहीं होता ॥ २६ ॥ प्राण, बुद्धि, मन, शरीर, स्वजन, स्त्री, पुत्र और धन आदि संसारकी सभी वस्तुएँ जिसके लिये और जिसकी सन्निधिसे प्रिय लगती हैं—उस आत्मासे, परमात्मासे, मुझ श्रीकृष्णसे बढ़कर और कौन प्यारा हो सकता है ॥ २७ ॥ इसलिये तुम्हारा आना उचित ही है । मैं तुम्हारे प्रेमका अभिनन्दन करता हूँ । परन्तु अब तुमलोग मेरा दर्शन कर चुकीं । अब अपनी यज्ञशालामें लौट जाओ । तुम्हारे पति ब्राह्मण गृहस्थ हैं । वे तुम्हारे साथ मिलकर ही अपना यज्ञ पूर्ण कर सकेंगे' ॥ २८ ॥

ब्राह्मणपत्नियोंने कहा—अन्तर्यामी श्यामसुन्दर ! आपकी यह बात निष्ठुरतासे पूर्ण है । आपको ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये । श्रुतियाँ कहती हैं कि जो एक बार भगवान्को प्राप्त हो जाता है, उसे फिर संसारमें नहीं लौटना पड़ता । आप अपनी यह वेदवाणी सत्य कीजिये । हम अपने समस्त सगे-सम्बन्धियोंकी आज्ञाका उल्लङ्घन करके आपके चरणोंमें इसलिये आयी हैं कि आपके चरणोंसे गिरी हुई तुलसीकी माला अपने केशोंमें धारण करें ॥ २९ ॥ स्वामी ! अब हमारे पति-पुत्र, माता-पिता, भाई-बन्धु और स्वजन-सम्बन्धी हमें स्वीकार नहीं करेंगे; फिर दूसरोंकी तो बात ही क्या है । वीरशिरोमणे ! अब हम आपके चरणोंमें आ पड़ी हैं । हमे और किसीका सहारा नहीं है । इसलिये अब हमें दूसरोंकी शरणमें न जाना पड़े; ऐसी व्यवस्था कीजिये ॥ ३० ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—देवियो ! तुम्हारे पति-पुत्र, माता-पिता, भाई-बन्धु—कोई भी तुम्हारा तिरस्कार नहीं करेंगे । उनकी तो बात ही क्या, सारा संसार तुम्हारा सम्मान करेगा । इसका कारण है । अब तुम मेरी हो गयी हो, मुझसे युक्त हो गयी हो । देखो न, ये देवता मेरी बातका अनुमोदन कर रहे हैं ॥ ३१ ॥ देवियो ! इस संसारमें मेरा अङ्ग-सङ्ग ही मनुष्योंमें मेरी प्रीति या अनुरागका कारण नहीं है । इसलिये तुम जाओ, अपना मन मुझमें लगा दो । तुम्हें बहुत शीघ्र मेरी प्राप्ति हो जायगी ॥ ३२ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जब भगवान्ने इस प्रकार कहा, तब वे ब्राह्मणपत्नियाँ यज्ञशालामें लौट गयीं । उन ब्राह्मणोंने अपनी स्त्रियोंमें तनिक भी दोषदृष्टि नहीं की । उनके साथ मिलकर अपना यज्ञ पूरा किया ॥ ३३ ॥ उन स्त्रियोंमेंसे एकको आनेके समय ही उसके पतिने बलपूर्वक रोक लिया था । इसपर उस ब्राह्मणपत्नीने भगवान्के वैसे ही स्वरूपका ध्यान किया, जैसा कि बहुत दिनोंसे सुन रक्खा था । जब उसका ध्यान जम गया, तब मन-ही-मन भगवान्का आलिङ्गन करके उसने कर्मके द्वारा बने हुए अपने शरीरको छोड़ दिया—(शुद्धसत्त्वमय दिव्य शरीरसे

उसने भगवान्‌की सन्निधि प्राप्त कर ली) ॥ ३४ ॥ इधर भगवान् श्रीकृष्णने ब्राह्मणियोंके लाये हुए उस चार प्रकारके अन्नसे पहले ग्वालबालोंको भोजन कराया और फिर उन्होंने स्वयं भी भोजन किया ॥ ३५ ॥ परीक्षित् ! इस प्रकार लीलामनुष्य भगवान्-श्रीकृष्णने मनुष्यकी-सी लीला की और अपने सौन्दर्य, माधुर्य, वाणी तथा कर्मोंसे गौएँ, ग्वालबाल और गोपियोंको आनन्दित किया और स्वयं भी उनके अलौकिक प्रेमरसका आस्वादन करके आनन्दित हुए ॥ ३६ ॥

परीक्षित् ! इधर जब ब्राह्मणोंको यह मालूम हुआ कि श्रीकृष्ण तो स्वयं भगवान् हैं, तब उन्हें बड़ा पछतावा हुआ । वे सोचने लगे कि जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामकी आज्ञाका उल्लङ्घन करके हमने बड़ा भारी अपराध किया है । वे तो मनुष्यकी-सी लीला करते हुए भी परमेश्वर ही हैं ॥ ३७ ॥ जब उन्होंने देखा कि हमारी पत्नियोंके हृदयमे तो भगवान्‌का अलौकिक प्रेम है और हमलोग उससे बिल्कुल रीते हैं, तब वे पछता-पछताकर अपनी निन्दा करने लगे ॥ ३८ ॥ वे कहने लगे—'हाय ! हम भगवान् श्रीकृष्णसे विमुख हैं । बड़े ऊँचे कुलमें हमारा जन्म हुआ, गायत्री ग्रहण करके हम द्विजाति हुए, वेदाध्ययन करके हमने बड़े-बड़े यज्ञ किये; परन्तु वह सब किस कामका ? धिक्कार है, धिक्कार है ! हमारी विद्या व्यर्थ गयी, हमारे व्रत बुरे सिद्ध हुए । हमारी इस बहुज्ञताको धिक्कार है ! ऊँचे वंशमे जन्म लेना, कर्मकाण्डमे निपुण होना किसी काम न आया । इन्हें बार-बार धिक्कार है ॥३९॥ निश्चय ही भगवान्‌की माया बड़े-बड़े योगियोंको भी मोहित कर लेती है । तभी तो हम कहलाते है मनुष्योंके गुरु और ब्राह्मण, परन्तु अपने सच्चे स्वार्थ और परमार्थके विषयमें बिल्कुल भूले हुए हैं ॥ ४० ॥ कितने आश्चर्यकी बात है ! देखो तो सही—यद्यपि ये स्त्रियाँ है, तथापि जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्णमें इनका कितना अगाध प्रेम है, अखण्ड अनुराग है ! उसीसे इन्होंने गृहस्थीकी वह बहुत बड़ी फाँसी भी काट डाली, जो मृत्युके साथ भी नहीं कटती ॥ ४१ ॥ इनके न तो द्विजातिके योग्य यज्ञोपवीत आदि संस्कार हुए हैं और न तो इन्होंने गुरुकुलमें ही निवास किया है । न इन्होंने तपस्या की है और न तो आत्माके सम्बन्धमें ही कुछ विवेक-विचार किया है । उनकी बात तो दूर रही, इनमें न तो पूरी पवित्रता है और न तो शुभकर्म ही ॥ ४२ ॥ फिर भी समस्त योगेश्वरोंके ईश्वर पुण्य-कीर्ति भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें इनका दृढ़ प्रेम है । और हमने अपने संस्कार किये हैं, गुरुकुलमें निवास किया है, तपस्या की है, आत्मानुसन्धान किया है, पवित्रताका निर्वाह किया है तथा अच्छे-अच्छे कर्म किये हैं; फिर भी भगवान्‌के चरणोंमें हमारा प्रेम नहीं है ॥ ४३ ॥ सच्ची बात यह है कि हमलोग गृहस्थीके काम-धंधोंमे मतवाले हो गये थे, अपनी भलाई और बुराईको बिल्कुल भूल गये थे । अहो, भगवान्‌की कितनी कृपा है ! भक्तवत्सल प्रभुने ग्वालबालोंको भेजकर उनके वचनोंसे हमें चेतावनी दी, अपनी याद दिलायी ॥ ४४ ॥ भगवान् स्वयं पूर्णकाम हैं और कैवल्यमोक्षपर्यन्त जितनी भी कामनाएँ होती हैं, उनको पूर्ण करनेवाले हैं । यदि हमे सचेत नहीं करना होता तो उनका हम-सरीखे क्षुद्र जीवोंसे प्रयोजन ही क्या हो सकता था ? अवश्य ही उन्होंने इसी उद्देश्यसे माँगनेका बहाना बनाया । अन्यथा उन्हें माँगनेकी भला क्या आवश्यकता थी ? ॥ ४५ ॥ स्वयं लक्ष्मी अन्य सब देवताओंको छोड़कर, और अपनी चञ्चलता, गर्व आदि दोषोंका परित्याग कर केवल एक बार उनके चरणकमलोंका स्पर्श पानेके लिये सेवा करती रहती है । वे ही प्रभु किसीसे भोजनकी याचना करें, यह लोगोंको मोहित करनेके लिये नहीं तो और क्या है ? ॥ ४६ ॥ देश, काल, पृथक्-पृथक् सामग्रियाँ, उन-उन कर्मोंमे विनियुक्त मन्त्र, अनुष्ठानकी पद्धति, ऋत्विज, अग्नि, देवता, यजमान, यज्ञ और धर्म—सब भगवान्‌के ही स्वरूप हैं ॥ ४७ ॥ वे ही योगेश्वरोंके भी ईश्वर भगवान् विष्णु स्वयं श्रीकृष्णके रूपमें यदुवंशियोंमें अवतीर्ण हुए है, यह बात हमने सुन रक्खी थी; परन्तु हम इतने मूढ़ हैं कि उन्हे पहचान न सके ॥ ४८ ॥ यह सब होनेपर भी हम धन्यातिधन्य है, हमारे अहोभाग्य है तभी तो हमें वैसी पत्नियाँ प्राप्त हुई हैं ।

उनकी भक्तिसे हमारी बुद्धि भी भगवान् श्रीकृष्णके अविचल प्रेमसे युक्त हो गयी है ॥ ४९ ॥ प्रभो ! आप अचिन्त्य और अनन्त ऐश्वर्योंके स्वामी हैं । श्रीकृष्ण ! आपका ज्ञान अबाध है । आपकी ही मायासे हमारी बुद्धि मोहित हो रही है और हम कर्मोंके पचड़ेमें भटक रहे हैं । हम आपको नमस्कार करते हैं ॥ ५० ॥ वे आदिपुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण हमारे इस अपराधको क्षमा करें । क्योंकि हमारी बुद्धि उनकी मायासे मोहित हो रही है और हम उनके प्रभावको न जाननेवाले अज्ञानी हैं ॥ ५१ ॥

परीक्षित् ! उन ब्राह्मणोंने श्रीकृष्णका तिरस्कार किया था । अत. उन्हें अपने अपराधकी स्मृतिसे बड़ा पश्चात्ताप हुआ और उनके हृदयमें श्रीकृष्ण-बलरामके दर्शनकी बड़ी इच्छा भी हुई, परन्तु कंसके डरके मारे वे उनका दर्शन करने न जा सके ॥ ५२ ॥

चौबीसवाँ अध्याय

इन्द्रयज्ञ-निवारण

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्ण बलरामजीके साथ वृन्दावनमें रहकर अनेकों प्रकारकी लीलाएँ कर रहे थे । उन्होंने एक दिन देखा कि वहाँके सब गोप इन्द्र-यज्ञ करनेकी तैयारी कर रहे हैं ॥ १ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण सबके अन्तर्यामी और सर्वज्ञ हैं । उनसे कोई बात छिपी नहीं थी, वे सब जानते थे । फिर भी विनयावनत होकर उन्होंने नन्दबाबा आदि बड़े-बूढ़े गोपोंसे पूछा—॥ २ ॥ 'पिताजी ! आपलोगोंके सामने यह कौन-सा बड़ा भारी काम, कौन-सा उत्सव आ पहुँचा है ? इसका फल क्या है ? किस उद्देश्यसे, कौन लोग, किन साधनोंके द्वारा यह यज्ञ किया करते हैं ? पिताजी ! आप मुझे यह अवश्य बतलाइये ॥ ३ ॥ आप मेरे पिता हैं और मैं आपका पुत्र । ये बातें सुननेके लिये मुझे बड़ी उत्कण्ठा भी है । पिताजी ! जो संत पुरुष सबको अपनी आत्मा मानते हैं, जिनकी दृष्टिमें अपने और परायेका भेद नहीं है, जिनका न कोई मित्र है, न शत्रु और न उदासीन—उनके पास छिपानेकी तो कोई बात होती ही नहीं । परन्तु यदि ऐसी स्थिति न हो, तो रहस्यकी बात शत्रुकी भाँति उदासीनसे भी नहीं कहनी चाहिये । मित्र तो अपने समान ही कहा गया है, इसलिये उससे कोई बात छिपायी नहीं जाती ॥ ४-५ ॥ यह संसारी मनुष्य समझे-बेसमझे अनेकों प्रकारके कर्मोंका अनुष्ठान करता है । उनमेंसे समझ-बूझकर करनेवाले पुरुषोंके कर्म जैसे सफल होते हैं, वैसे बेसमझके नहीं ॥ ६ ॥ अतः इस समय आपलोग जो क्रियायोग करने जा रहे हैं, वह सुहृदोंके साथ विचारित—शास्त्रसम्मत है अथवा लौकिक ही है—मैं यह सब जानना चाहता हूँ; आप कृपा करके स्पष्टरूपसे बतलाइये' ॥ ७ ॥

नन्दबाबाने कहा—बेटा ! भगवान् इन्द्र वर्षा करनेवाले मेघोंके स्वामी हैं । ये मेघ उन्हींके अपने रूप हैं । वे समस्त प्राणियोंको तृप्त करनेवाला एवं जीवनदान करनेवाला जल बरसाते हैं ॥ ८ ॥ मेरे प्यारे पुत्र ! हम और दूसरे लोग भी उन्हीं मेघपति भगवान् इन्द्रकी यज्ञोंके द्वारा पूजा किया करते हैं । जिन सामग्रियोंसे यज्ञ होता है, वे भी उनके बरसाये हुए शक्तिशाली जलसे ही उत्पन्न होती हैं ॥ ९ ॥ उनका यज्ञ करनेके बाद जो कुछ बच रहता है, उसी अन्नसे हम सब मनुष्य अर्थ, धर्म और कामरूप त्रिवर्गकी सिद्धिके लिये अपना जीवन-निर्वाह करते हैं । मनुष्योंके खेती आदि प्रयत्नोंके फल देनेवाले इन्द्र ही हैं ॥ १० ॥ यह धर्म हमारी कुल-परम्परासे चला आया है । जो मनुष्य काम, लोभ, भय अथवा द्वेषवश ऐसे परम्परागत धर्मको छोड़ देता है, उसका कभी मङ्गल नहीं होता ॥ ११ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! ब्रह्मा, शङ्कर आदिके भी शासन करनेवाले केशव भगवान्‌ने नन्दबाबा और दूसरे व्रजवासियोंकी बात सुनकर इन्द्रको क्रोध दिलानेके लिये अपने पिता नन्दबाबासे कहा ॥ १२ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—पिताजी ! प्राणी अपने कर्मके अनुसार ही पैदा होता और कर्मसे ही मर जाता है । उसे उसके कर्मके अनुसार ही सुख-दुःख, भय और मङ्गलके

निमित्तोंकी प्राप्ति होती है ॥ १३ ॥ यदि कर्मोंको ही सब कुछ न मानकर उनसे भिन्न जीवोंके कर्मका फल देनेवाला ईश्वर माना भी जाय तो वह कर्म करनेवालोंको ही उनके कर्मके अनुसार फल दे सकता है। कर्म न करनेवालोंपर उसकी प्रभुता नहीं चल सकती॥ १४॥ जब सभी प्राणी अपने-अपने कर्मोंका ही फल भोग रहे हैं, तब हमें इन्द्रकी क्या आवश्यकता है ? पिताजी ! जब वे पूर्वसंस्कारके अनुसार प्राप्त होनेवाले मनुष्योंके कर्म-फलको बदल ही नहीं सकते—तब उनसे प्रयोजन ? ॥ १५॥ मनुष्य अपने स्वभाव (पूर्व-संस्कारों) के अधीन है। वह उसीका अनुसरण करता है। यहाँतक कि देवता, असुर, मनुष्य आदिको लिये हुए यह सारा जगत् स्वभावमें ही स्थित है॥ १६ ॥ जीव अपने कर्मोंके अनुसार उत्तम और अधम शरीरोंको ग्रहण करता और छोड़ता रहता है। अपने कर्मोंके अनुसार ही 'यह शत्रु है, यह मित्र है, यह उदासीन है'—ऐसा व्यवहार करता है। कहाँतक कहूँ, कर्म ही गुरु है और कर्म ही ईश्वर ॥ १७ ॥ इसलिये पिताजी ! मनुष्यको चाहिये कि पूर्वसंस्कारोंके अनुसार अपने वर्ण तथा आश्रमके अनुकूल धर्मोंका पालन करता हुआ कर्मका ही आदर करे। जिसके द्वारा मनुष्यकी जीविका सुगमतासे चलती है, वही उसका इष्टदेव होता है ॥ १८ ॥ जैसे अपने विवाहित पतिको छोड़कर जार पतिका सेवन करनेवाली व्यभिचारिणी स्त्री कभी शान्तिलाभ नहीं करती, वैसे ही जो मनुष्य अपनी आजीविका चलानेवाले एक देवताको छोड़कर किसी दूसरेकी उपासना करते हैं, उससे उन्हें कभी सुख नहीं मिलता ॥ १९ ॥ ब्राह्मण वेदोंके अध्ययन-अध्यापनसे, क्षत्रिय पृथ्वीपालनसे, वैश्य वार्तावृत्तिसे और शूद्र ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंकी सेवासे अपनी जीविकाका निर्वाह करे ॥ २० ॥ वैश्योंकी वार्तावृत्ति चार प्रकारकी है—कृषि, वाणिज्य, गोरक्षा और ब्याज लेना। हमलोग उन चारोंमेंसे एक केवल गोपालन ही सदासे करते आये हैं ॥ २१ ॥ पिताजी ! इस संसारकी स्थिति, उत्पत्ति और अन्तके कारण क्रमशः सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण हैं। यह विविध प्रकारका सम्पूर्ण जगत् स्त्री-पुरुषके संयोगसे रजोगुणके द्वारा उत्पन्न होता है ॥ २२ ॥ उसी रजोगुणकी प्रेरणासे मेघगण सब कहीं जल बरसाते हैं। उसीसे अन्न और अन्नसे ही सब जीवोंकी जीविका चलती है। इसमें भला इन्द्रका क्या लेना-देना है ? वह भला, क्या कर सकता है ? ॥ २३ ॥

पिताजी ! न तो हमारे पास किसी देशका राज्य है और न तो बड़े-बड़े नगर ही हमारे अधीन हैं। हमारे पास गाँव या घर भी नहीं हैं। हम तो सदाके वनवासी हैं, वन और पहाड़ ही हमारे घर हैं॥ २४॥ इसलिये हमलोग गौओं, ब्राह्मणों और गिरिराजका यजन करनेकी तैयारी करें। इन्द्र-यज्ञके लिये जो सामग्रियाँ इकट्ठी की गयी हैं, उन्हींसे इस यज्ञका अनुष्ठान होने दें ॥ २५ ॥ अनेकों प्रकारके पकवान—खीर, हलवा, पूआ, पूरी आदिसे लेकर मूँगकी दालतक बनाये जायँ। व्रजका सारा दूध एकत्र कर लिया जाय ॥ २६ ॥ वेदवादी ब्राह्मणोंके द्वारा भलीभाँति हवन करवाया जाय तथा उन्हें अनेकों प्रकारके अन्न, गौएँ और दक्षिणाएँ दी जायँ ॥ २७ ॥ और भी, चाण्डाल, पतित तथा कुत्तोंतकको यथायोग्य वस्तुएँ देकर गायोंको चारा दिया जाय और फिर गिरिराजको भोग लगाया जाय ॥ २८॥ इसके बाद खूब प्रसाद खा-पीकर, सुन्दर-सुन्दर वस्त्र पहनकर, गहनोंसे सज-सजा लिया जाय और चन्दन लगाकर गौ, ब्राह्मण, अग्नि तथा गिरिराज गोवर्धनकी प्रदक्षिणा की जाय ॥ २९ ॥ पिताजी ! मेरी तो ऐसी ही सम्मति है। यदि आप लोगोंको रुचे, तो ऐसा ही कीजिये। ऐसा यज्ञ गौ, ब्राह्मण और गिरिराजको तो प्रिय होगा ही; मुझे भी बहुत प्रिय है ॥ ३० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! कालात्मा भगवान्‌की इच्छा थी कि इन्द्रका घमण्ड चूर-चूर कर दें। नन्दबाबा आदि गोपोंने उनकी बात सुनकर बड़ी प्रसन्नतासे स्वीकार कर ली ॥ ३१ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने जिस प्रकारका यज्ञ करनेको कहा था, वैसा ही यज्ञ उन्होंने प्रारम्भ किया। पहले ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराकर उसी सामग्रीसे गिरिराज और ब्राह्मणोंको सादर भेंटें दीं, तथा गौओंको हरी-हरी घास खिलायी। इसके बाद नन्दबाबा आदि गोपोंने गौओंको आगे करके गिरिराजकी प्रदक्षिणा

की ॥ ३२-३३ ॥ ब्राह्मणोंका आशीर्वाद प्राप्त करके वे और गोपियाँ भलीभाँति शृङ्गार करके और बैलोंसे जुती गाड़ियोंपर सवार होकर भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंका गान करती हुई गिरिराजकी परिक्रमा करने लगीं॥३४॥ भगवान् श्रीकृष्ण गोपोंको विश्वास दिलानेके लिये गिरि-राजके ऊपर एक दूसरा विशाल शरीर धारण करके प्रकट हो गये, तथा 'मैं गिरिराज हूँ' इस प्रकार कहते हुए सारी सामग्री आरोगने लगे ॥ ३५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने अपने उस स्वरूपको दूसरे व्रज-वासियोंके साथ स्वयं भी प्रणाम किया और कहने लगे—'देखो, कैसा आश्चर्य है! गिरिराजने साक्षात् प्रकट होकर हमपर कृपा की है ॥ ३६ ॥ ये चाहे जैसा रूप धारण कर सकते हैं। जो वनवासी जीव इनका निरादर करते हैं, उन्हें ये नष्ट कर डालते हैं। आओ, अपना और गौओंका कल्याण करनेके लिये इन गिरिराजको हम नमस्कार करें' ॥ ३७ ॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णकी प्रेरणासे नन्दबाबा आदि बड़े-बूढ़े गोपोंने गिरिराज, गौ और ब्राह्मणोंका विधिपूर्वक पूजन किया तथा फिर श्रीकृष्णके साथ सब व्रजमें लौट आये ॥ ३८ ॥

पचीसवाँ अध्याय

गोवर्द्धनधारण

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जब इन्द्रको पता लगा कि मेरी पूजा बंद कर दी गयी है, तब वे नन्दबाबा आदि गोपोंपर बहुत ही क्रोधित हुए। परन्तु उनके क्रोध करनेसे होता क्या, उन गोपोंके रक्षक तो स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण थे ॥ १ ॥ इन्द्रको अपने पदका बड़ा घमण्ड था, वे समझते थे कि मैं ही त्रिलोकीका ईश्वर हूँ। उन्होंने क्रोधसे तिलमिलाकर प्रलय करनेवाले मेघोंके सांवर्तक नामक गणको व्रजपर चढ़ाई करनेकी आज्ञा दी और कहा—॥ २ ॥ 'ओह, इन जंगली ग्वालोंको इतना घमण्ड! सचमुच यह धनका ही नशा है। भला देखो तो सही, एक साधारण मनुष्य कृष्णके बलपर उन्होंने मुझ देवराजका अपमान कर डाला ॥ ३ ॥ जैसे पृथ्वीपर बहुत-से मन्दबुद्धि पुरुष भवसागरसे पार जानेके सच्चे साधन ब्रह्मविद्याको तो छोड़ देते हैं और नाममात्रकी टूटी हुई नावसे—कर्ममय यज्ञोंसे इस घोर संसार-सागरको पार करना चाहते हैं ॥ ४ ॥ कृष्ण बकवादी, नादान, अभिमानी और मूर्ख होनेपर भी अपनेको बहुत बड़ा ज्ञानी समझता है। वह स्वयं मृत्युका ग्रास है। फिर भी उसीका सहारा लेकर इन अहीरोंने मेरी अवहेलना की है ॥ ५ ॥ एक तो ये यों ही धनके नशेमें चूर हो रहे थे; दूसरे कृष्णने इनको और बढ़ावा दे दिया है। अब तुमलोग जाकर इनके इस धनके घमण्ड और हेकड़ीको धूलमें मिला दो तथा उनके पशुओंका संहार कर डालो ॥६॥ मैं भी तुम्हारे पीछे-पीछे ऐरावत हाथीपर चढ़कर नन्दके व्रजका नाश करनेके लिये महापराक्रमी मरुद्गणोंके साथ आता हूँ' ॥ ७ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! इन्द्रने इस प्रकार प्रलयके मेघोंको आज्ञा दी और उनके बन्धन खोल दिये। अब वे बड़े वेगसे नन्दबाबाके व्रजपर चढ़ आये और मूसलधार पानी बरसाकर सारे व्रजको पीड़ित करने लगे ॥ ८ ॥ चारों ओर बिजलियाँ चमकने लगीं, बादल आपसमें टकराकर कड़कने लगे और प्रचण्ड आँधीकी प्रेरणासे वे बड़े-बड़े ओले बरसाने लगे ॥ ९ ॥ इस प्रकार जब दल-के-दल बादल बार-बार आ-आकर खंभेके समान मोटी-मोटी धाराएँ गिराने लगे, तब व्रजभूमिका कोना-कोना पानीसे भर गया और कहाँ नीचा है, कहाँ ऊँचा—इसका पता चलना कठिन हो गया ॥ १० ॥ इस प्रकार मूसलधार वर्षा तथा झंझावातके झपाटेसे जब एक-एक पशु ठिठुरने और काँपने लगा, ग्वाल और ग्वालिनें भी ठंडके मारे अत्यन्त व्याकुल हो गयीं, तब वे सब-के-सब भगवान् श्रीकृष्णकी शरणमें आये ॥ ११ ॥ मूसलधार वर्षासे सताये जानेके कारण सबने अपने-अपने सिर और बच्चोंको निहुककर अपने शरीरके नीचे छिपा लिया

था और वे काँपते-काँपते भगवान्‌की चरणशरणमें पहुँचे ॥ १२ ॥ और बोले—'प्यारे श्रीकृष्ण! तुम बड़े भाग्यवान् हो । अब तो कृष्ण ! केवल तुम्हारे ही भाग्यसे हमारी रक्षा होगी । प्रभो ! इस सारे गोकुलके एकमात्र स्वामी, एकमात्र रक्षक तुम्हीं हो । भक्तवत्सल ! इन्द्रके क्रोधसे अब तुम्हीं हमारी रक्षा कर सकते हो' ॥ १३ ॥ भगवान्‌ने देखा कि वर्षा और ओलोंकी मारसे पीड़ित होकर सब बेहोश हो रहे हैं । वे समझ गये कि यह सारी करतूत इन्द्रकी है । उन्होंने ही क्रोधवश ऐसा किया है ॥ १४ ॥ वे मन-ही-मन कहने लगे—'हमने इन्द्रका यज्ञ भङ्ग कर दिया है, इसीसे वे व्रजका नाश करनेके लिये बिना ऋतुके ही यह प्रचण्ड वायु और ओलोंके साथ घनघोर वर्षा कर रहे हैं ॥ १५ ॥ अच्छा, मैं अपनी योगमायासे इसका भलीभाँति जवाब दूँगा । ये मूर्खतावश अपनेको लोकपाल मानते हैं, इनके ऐश्वर्य और धनका घमण्ड तथा अज्ञान मैं चूर-चूर कर दूँगा ॥ १६ ॥ देवतालोग तो सत्त्वप्रधान होते हैं । इनमें अपने ऐश्वर्य और पदका अभिमान न होना चाहिये । अतः यह उचित ही है कि इन सत्त्वगुणसे च्युत दुष्ट देवताओंका मैं मान-भङ्ग कर दूँ । इससे अन्तमे उन्हें शान्ति ही मिलेगी ॥ १७ ॥ यह सारा व्रज मेरे आश्रित है, मेरे द्वारा स्वीकृत है और एकमात्र मैं ही इसका रक्षक हूँ । अतः मैं अपनी योगमायासे इसकी रक्षा करूँगा । संतोंकी रक्षा करना तो मेरा व्रत ही है । अब उसके पालनका अवसर आ पहुँचा है' * ॥ १८ ॥

इस प्रकार कहकर भगवान् श्रीकृष्णने खेल-खेलमें एक ही हाथसे गिरिराज गोवर्द्धनको उखाड़ लिया और जैसे छोटे-छोटे बालक बरसाती छत्तेके पुष्पको उखाड़कर हाथमे रख लेते हैं, वैसे ही उन्होंने उस पर्वतको धारण कर लिया ॥ १९ ॥ इसके बाद भगवान्‌ने गोपोंसे कहा—'माताजी, पिताजी और व्रजवासियो ! तुमलोग अपनी गौओं और सब सामग्रियोंके साथ इस पर्वतके गड्ढेमें आकर आरामसे बैठ जाओ ॥ २० ॥ देखो, तुमलोग ऐसी शङ्का न करना कि मेरे हाथसे यह पर्वत गिर पड़ेगा । तुमलोग तनिक भी मत डरो । इस आँधी-पानीके डरसे तुम्हे बचानेके लिये ही मैंने यह युक्ति रची है' ॥ २१ ॥ जब भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार सबको आश्वासन दिया—ढाढ़स बँधाया, तब सब-के-सब ग्वाल अपने-अपने गोधन, छकड़ों, आश्रितों, पुरोहितों और भृत्योंको अपने-अपने साथ लेकर सुभीतेके अनुसार गोवर्द्धनके गड्ढेमें आ घुसे ॥ २२ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने सब व्रजवासियोंके देखते-देखते भूख-प्यासकी पीड़ा, आराम-विश्रामकी आवश्यकता आदि सब कुछ भुलाकर सात दिनतक लगातार उस पर्वतको उठाये रक्खा । वे एक डग भी वहाँसे इधर-उधर नहीं हुए ॥ २३ ॥ श्रीकृष्णकी योगमायाका यह प्रभाव देखकर इन्द्रके आश्चर्यका ठिकाना न रहा । अपना सङ्कल्प पूरा न होनेके कारण उनकी सारी हेकड़ी बंद हो गयी, वे भौंचक्के-से रह गये । इसके बाद उन्होंने मेघोंको अपने-आप वर्षा करनेसे रोक दिया ॥ २४ ॥ जब गोवर्द्धनधारी भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि वह भयङ्कर आँधी और घनघोर वर्षा बंद हो गयी, आकाशसे बादल छँट गये और सूर्य दीखने लगे, तब उन्होंने गोपोंसे कहा—॥ २५ ॥ 'मेरे प्यारे गोपो ! अब तुमलोग निडर हो जाओ और अपनी स्त्रियों, गोधन तथा बच्चोंके साथ बाहर निकल आओ । देखो, अब आँधी-पानी बंद हो गया तथा नदियोंका पानी भी उतर गया' ॥ २६ ॥ भगवान्‌की ऐसी आज्ञा पाकर अपने-अपने गोधन, स्त्रियों, बच्चों और बूढ़ोंको साथ ले तथा अपनी सामग्री छकड़ोंपर लादकर धीरे-धीरे सब लोग बाहर निकल आये ॥ २७ ॥ सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्णने भी सब प्राणियोंके देखते-देखते खेल-खेलमें ही गिरिराजको पूर्ववत् उसके स्थानपर रख दिया ॥ २८ ॥

व्रजवासियोंका हृदय प्रेमके आवेगसे भर रहा था । पर्वतको रखते ही वे भगवान् श्रीकृष्णके पास दौड़ आये । कोई उन्हे हृदयसे लगाने और कोई चूमने लगा ।

* भगवान् कहते हैं—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते । अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ॥

'जो केवल एक बार मेरी शरणमें आ जाता है और "मैं तुम्हारा हूँ" इस प्रकार याचना करता है, उसे मैं सम्पूर्ण प्राणियोंसे अभय कर देता हूँ—यह मेरा व्रत है ।'

गोवर्द्धनधारी

सबने उनका सत्कार किया। बड़ी-बूढ़ी गोपियोंने बड़े आनन्द और स्नेहसे दही, चावल, जल आदिसे उनका मङ्गल-तिलक किया और उन्मुक्त हृदयसे शुभ आशीर्वाद दिये ॥ २९ ॥ यशोदारानी, रोहिणीजी, नन्दबाबा और बलवानोंमे श्रेष्ठ बलरामजीने स्नेहातुर होकर श्रीकृष्णको हृदयसे लगा लिया तथा आशीर्वाद दिये॥३०॥ परीक्षित्! उस समय आकाशमे स्थित देवता, साध्य, सिद्ध, गन्धर्व और चारण आदि प्रसन्न होकर भगवान्‌की स्तुति करते हुए उनपर फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ ३१ ॥ राजन्! स्वर्गमे देवतालोग शङ्ख और नौबत बजाने लगे। तुम्बुरु आदि गन्धर्वराज भगवान्‌की मधुर लीलाका गान करने लगे ॥ ३२ ॥ इसके बाद भगवान् श्रीकृष्णने व्रजकी यात्रा की। उनके बगलमें बलरामजी चल रहे थे और उनके प्रेमी ग्वालबाल उनकी सेवा कर रहे थे। उनके साथ ही प्रेममयी गोपियाँ भी अपने हृदयको आकर्षित करनेवाले, उसमे प्रेम जगानेवाले भगवान्‌की गोवर्धनधारण आदि लीलाओंका गान करती हुई बड़े आनन्दसे व्रजमे लौट आयीं ॥ ३३ ॥

छब्बीसवाँ अध्याय

नन्दबाबासे गोपोंकी श्रीकृष्णके प्रभावके विषयमें बातचीत

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! व्रजके गोप भगवान् श्रीकृष्णके ऐसे अलौकिक कर्म देखकर बड़े आश्चर्यमें पड़ गये। उन्हें भगवान्‌की अनन्त शक्तिका तो पता था नहीं, वे इकट्ठे होकर आपसमें इस प्रकार कहने लगे ॥ १ ॥ 'इस बालकके ये कर्म बड़े अलौकिक हैं। इसका हमारे-जैसे गँवार ग्रामीणोंमें जन्म लेना तो इसके लिये बड़ी निन्दाकी बात है। यह भला, कैसे उचित हो सकता है ॥ २ ॥ जैसे गजराज कोई कमल उखाड़कर उसे ऊपर उठा ले और धारण करे, वैसे ही इस नन्हे-से सात वर्षके बालकने एक ही हाथसे गिरिराज गोवर्द्धनको उखाड़ लिया और खेल-खेलमें सात दिनोंतक उठाये रक्खा ॥ ३ ॥ यह साधारण मनुष्यके लिये भला, कैसे सम्भव है? जब यह नन्हा-सा बच्चा था, उस समय बड़ी भयङ्कर राक्षसी पूतना आयी और इसने आँख बद किये-किये ही उसका स्तन तो पिया ही, प्राण भी पी डाले—ठीक वैसे ही, जैसे काल शरीरकी आयुको निगल जाता है ॥ ४ ॥ जिस समय यह केवल तीन महीनेका था और छकड़ेके नीचे सोकर रो रहा था, उस समय रोते-रोते इसने ऐसा पाँव उछाला कि उसकी ठोकरसे वह बड़ा भारी छकड़ा उलटकर गिर ही पड़ा ॥ ५ ॥ उस समय तो यह एक ही वर्षका था, जब दैत्य बवंडरके रूपमें इसे बैठे-बैठे आकाशमें उड़ा ले गया था। तुम सब जानते ही हो कि इसने उस तृणावर्त दैत्यको गला घोंटकर मार डाला ॥ ६ ॥ उस दिनकी बात तो सभी जानते हैं कि माखनचोरी करनेपर यशोदारानीने इसे ऊखलसे बाँध दिया था। यह घुटनोंके बल बकैयाँ खींचते-खींचते उन दोनों विशाल अर्जुन-वृक्षोंके बीचमेंसे निकल गया और उन्हें उखाड़ ही डाला ॥ ७ ॥ जब यह ग्वालबाल और बलरामजीके साथ बछड़ोंको चरानेके लिये वनमें गया हुआ था, उस समय इसको मार डालनेके लिये एक दैत्य बगुलेके रूपमें आया और इसने दोनों हाथोंसे उसके दोनों ठोर पकड़कर उसे तिनकेकी तरह चीर डाला ॥ ८ ॥ जिस समय इसको मार डालनेकी इच्छासे एक दैत्य बछड़ेके रूपमें बछड़ोंके झुंडमें घुस गया था, उस समय इसने उस दैत्यको खेल-ही-खेलमें मार डाला और उसे कैथके पेड़ोंपर पटककर उन पेड़ोंको भी गिरा दिया ॥ ९ ॥ इसने बलरामजीके साथ मिलकर गधेके रूपमें रहनेवाले धेनुकासुर तथा उसके भाई-बन्धुओंको मार डाला और पके हुए फलोंसे पूर्ण तालवनको सबके लिये उपयोगी और मङ्गलमय बना दिया ॥ १० ॥ इसीने बलशाली बलरामजीके द्वारा क्रूर प्रलम्बासुरको मरवा डाला तथा दावानलसे गौओं और ग्वालबालोंको उबार लिया ॥ ११ ॥ यमुनाजलमे रहनेवाला कालिय नाग कितना विषैला था? परन्तु इसने उसका भी मान मर्दन कर उसे बलपूर्वक दहसे निकाल दिया और यमुनाजीका जल सदाके लिये विषरहित—अमृतमय बना दिया ॥ १२ ॥ नन्दजी!

हम यह भी देखते हैं कि तुम्हारे इस साँवले बालकपर हम सभी व्रजवासियोंका अनन्त प्रेम है और इसका भी हमपर स्वाभाविक ही स्नेह है। क्या आप बतला सकते है कि इसका क्या कारण है ॥ १३ ॥ भला, कहाँ तो यह सात वर्षका नन्हा-सा बालक और कहाँ इतने बड़े गिरिराजको सात दिनोंतक उठाये रखना! व्रजराज! इसीसे तो तुम्हारे पुत्रके सम्बन्धमें हमें बड़ी शङ्का हो रही है॥१४॥

नन्दबाबाने कहा—गोपो! तुमलोग सावधान होकर मेरी बात सुनो। मेरे बालकके विषयमे तुम्हारी शङ्का दूर हो जाय। क्योंकि महर्षि गर्गने इस बालकको देखकर इसके विषयमें ऐसा ही कहा था॥ १५॥ 'तुम्हारा यह बालक प्रत्येक युगमें शरीर ग्रहण करता है। विभिन्न युगोंमें इसने श्वेत, रक्त और पीत—ये भिन्न-भिन्न रंग स्वीकार किये थे। इस बार यह कृष्णवर्ण हुआ है ॥१६॥ नन्दजी! यह तुम्हारा पुत्र पहले कहीं वसुदेवके घर भी पैदा हुआ था, इसलिये इस रहस्यको जाननेवाले लोग 'इसका नाम श्रीमान् वासुदेव है'—ऐसा कहते है ॥ १७ ॥ तुम्हारे पुत्रके गुण और कर्मोंके अनुरूप और भी बहुत-से नाम हैं तथा बहुत-से रूप। मैं तो उन नामोंको जानता हूँ, परन्तु संसारके साधारण लोग नहीं जानते ॥ १८ ॥ यह तुमलोगोंका परम कल्याण करेगा, समस्त गोप और गौओंको यह बहुत ही आनन्दित करेगा। इसकी सहायतासे तुमलोग बड़ी-बड़ी विपत्तियोंको बड़ी सुगमतासे पार कर लोगे ॥ १९ ॥ व्रजराज! पूर्वकालमें एक बार पृथ्वीमें कोई राजा नही रह गया था। डाकुओंने चारों ओर लूट-खसोट मचा रक्खी थी। तब तुम्हारे इसी पुत्रने सज्जन पुरुषोंकी रक्षा की और इससे बल पाकर उन लोगोंने लुटेरोंपर विजय प्राप्त की ॥ २० ॥ नन्दबाबा! जो तुम्हारे इस साँवले शिशुसे प्रेम करते हैं, वे बड़े भाग्यवान् हैं। जैसे विष्णुभगवान्के करकमलोंकी छत्र-छायामें रहनेवाले देवताओंको असुर नहीं जीत सकते, वैसे ही इससे प्रेम करनेवालोंको भीतरी या बाहरी—किसी भी प्रकारके शत्रु नहीं जीत सकते ॥ २१ ॥ नन्दजी! चाहे जिस दृष्टिसे देखें—गुणसे, ऐश्वर्य और सौन्दर्यसे, कीर्ति और प्रभावसे तुम्हारा बालक स्वयं भगवान् नारायणके ही समान है। अतः इस बालकके अलौकिक कार्योंको देखकर आश्चर्य न करना चाहिये ॥ २२ ॥ गोपो! मुझे स्वयं गर्गाचार्यजी यह आदेश देकर अपने घर चले गये। तबसे मैं अलौकिक और परम सुखद कर्म करनेवाले इस बालकको भगवान् नारायणका ही अंश मानता हूँ ॥ २३ ॥ जब व्रजवासियोंने नन्दबाबाके मुखसे गर्गजीकी यह बात सुनी, तब उनका विस्मय जाता रहा। क्योंकि अब वे अमित तेजस्वी श्रीकृष्णके प्रभावको पूर्णरूपसे देख और सुन चुके थे। आनन्दमे भरकर उन्होंने नन्दबाबा और श्रीकृष्णकी भूरि-भूरि प्रशंसा की ॥ २४ ॥

जिस समय अपना यज्ञ भङ्ग हो जानेके कारण इन्द्र क्रोधके मारे आग-बबूला हो गये थे और मूसलधार वर्षा करने लगे थे, उस समय वज्रपात, ओलोंकी बौछार और प्रचण्ड आँधीसे स्त्री, पशु तथा ग्वाले अत्यन्त पीड़ित हो गये थे। अपनी शरणमे रहनेवाले व्रजवासियोंकी यह दशा देखकर भगवान्का हृदय करुणासे भर आया। परन्तु फिर एक नयी लीला करनेके विचारसे वे तुरंत ही मुसकराने लगे। जैसे कोई नन्हा-सा निर्बल बालक खेल-खेलमें ही बरसाती छत्तेका पुष्प उखाड़ ले, वैसे ही उन्होंने एक हाथसे ही गिरिराज गोवर्द्धनको उखाड़कर धारण कर लिया और सारे व्रजकी रक्षा की। इन्द्रका मद चूर करनेवाले वे ही भगवान् गोविन्द हमपर प्रसन्न हों ॥ २५ ॥

सत्ताईसवाँ अध्याय

श्रीकृष्णका अभिषेक

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जब भगवान् श्रीकृष्णने गिरिराज गोवर्द्धनको धारण करके मूसलधार वर्षासे व्रजको बचा लिया, तब उनके पास गोलोकसे कामधेनु (बधाई देनेके लिये) और स्वर्गसे देवराज इन्द्र (अपने अपराधको क्षमा करानेके लिये) आये॥१॥ भगवान्का तिरस्कार करनेके कारण इन्द्र बहुत ही लज्जित

थे। इसलिये उन्होंने एकान्त-स्थानमें भगवान्‌के पास जाकर अपने सूर्यके समान तेजस्वी मुकुटसे उनके चरणोंका स्पर्श किया॥ २॥ परमतेजस्वी भगवान् श्रीकृष्णका प्रभाव देख-सुनकर इन्द्रका यह घमंड जाता रहा कि मैं ही तीनों लोकोंका स्वामी हूँ। अब उन्होंने हाथ जोड़कर उनकी स्तुति की॥ ३॥

इन्द्रने कहा—भगवन्! आपका स्वरूप परम शान्त, ज्ञानमय, रजोगुण तथा तमोगुणसे रहित एवं विशुद्ध अप्राकृत सत्त्वमय है। यह गुणोंके प्रवाहरूपसे प्रतीत होनेवाला प्रपञ्च केवल मायामय है। क्योंकि आपका स्वरूप न जाननेके कारण ही आपमें इसकी प्रतीति होती है॥ ४॥ जब आपका सम्बन्ध अज्ञान और उसके कारण प्रतीत होनेवाले देहादिसे है ही नहीं, फिर उन देह आदिकी प्राप्तिके कारण तथा उन्हींसे होनेवाले लोभ-क्रोध आदि दोष तो आपमें हो ही कैसे सकते हैं? प्रभो! इन दोषोंका होना तो अज्ञानका लक्षण है। इस प्रकार यद्यपि अज्ञान और उससे होनेवाले जगत्‌से आपका कोई सम्बन्ध नहीं है, फिर भी धर्मकी रक्षा और दुष्टोंका दमन करनेके लिये आप अवतार ग्रहण करते हैं और निग्रह-अनुग्रह भी करते हैं॥ ५॥ आप जगत्‌के पिता, गुरु और स्वामी हैं। आप जगत्‌का नियन्त्रण करनेके लिये दण्ड धारण किये हुए दुस्तर काल हैं। आप अपने भक्तोंकी लालसा पूर्ण करनेके लिये स्वच्छन्दतासे लीला-शरीर प्रकट करते हैं और जो लोग हमारी तरह अपनेको ईश्वर मान बैठते हैं, उनका मान मर्दन करते हुए अनेकों प्रकारकी लीलाएँ करते हैं॥ ६॥ प्रभो! जो मेरे-जैसे अज्ञानी और अपनेको जगत्‌का ईश्वर माननेवाले हैं, वे जब देखते हैं कि बड़े-बड़े भयके अवसरोंपर भी आप निर्भय रहते हैं, तब वे अपना घमंड छोड़ देते हैं और गर्वरहित होकर संतपुरुषोंके द्वारा सेवित भक्ति-मार्गका आश्रय लेकर आपका भजन करते हैं। प्रभो! आपकी एक-एक चेष्टा दुष्टोंके लिये दण्डविधान है॥७॥ प्रभो! मैंने ऐश्वर्यके मदसे चूर होकर आपका अपराध किया है। क्योंकि मैं आपकी शक्ति और प्रभावके सम्बन्धमें बिल्कुल अनजान था। परमेश्वर! आप कृपा करके मुझ मूर्ख अपराधीका यह अपराध क्षमा करें और ऐसी कृपा करें कि मुझे फिर कभी ऐसे दुष्ट अज्ञानका शिकार न होना पड़े॥ ८॥ स्वयंप्रकाश, इन्द्रियातीत परमात्मन्! आपका यह अवतार इसलिये हुआ है कि जो असुर-सेनापति केवल अपना पेट पालनेमें ही लग रहे हैं और पृथ्वीके लिये बड़े भारी भारके कारण बन रहे हैं, उनका वध करके उन्हें मोक्ष दिया जाय, और जो आपके चरणोंके सेवक हैं—आज्ञाकारी भक्तजन हैं, उनका अभ्युदय हो—उनकी रक्षा हो॥ ९॥ भगवन्! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप सर्वान्तर्यामी पुरुषोत्तम तथा सर्वात्मा वासुदेव हैं। आप यदुवंशियोंके एकमात्र स्वामी, भक्तवत्सल एवं सबके चित्तको आकर्षित करनेवाले हैं। मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ॥ १०॥ आपने जीवोंके समान कर्मवश होकर नहीं, स्वतन्त्रतासे अपने भक्तोंकी तथा अपनी इच्छाके अनुसार शरीर स्वीकार किया है। आपका यह शरीर भी विशुद्धज्ञानस्वरूप है। आप सब कुछ हैं, सबके कारण हैं और सबके आत्मा हैं। मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ॥ ११॥ भगवन्! मेरे अभिमानका अन्त नहीं है और मेरा क्रोध भी बहुत ही तीव्र, मेरे वशके बाहर है। जब मैंने देखा कि मेरा यज्ञ तो नष्ट कर दिया गया, तब मैंने मूसलधार वर्षा और आँधीके द्वारा सारे व्रजमण्डलको नष्ट कर देना चाहा॥ १२॥ परन्तु प्रभो! आपने मुझपर बहुत ही अनुग्रह किया। मेरी चेष्टा व्यर्थ होनेसे मेरे घमंडकी जड़ उखड़ गयी। आप मेरे स्वामी हैं, गुरु हैं और मेरे आत्मा हैं। मैं आपकी शरणमें हूँ॥ १३॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जब देवराज इन्द्रने भगवान् श्रीकृष्णकी इस प्रकार स्तुति की, तब उन्होंने हँसते हुए मेघके समान गम्भीर वाणीसे इन्द्रको सम्बोधन करके कहा—॥ १४॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—इन्द्र! तुम ऐश्वर्य और धन-सम्पत्तिके मदसे पूरे-पूरे मतवाले हो रहे थे। इसलिये तुमपर अनुग्रह करके ही मैंने तुम्हारा यज्ञ भङ्ग किया है। यह इसलिये कि अब तुम मुझे नित्य-निरन्तर स्मरण रख सको॥ १५॥ जो ऐश्वर्य और धन-सम्पत्तिके मदसे अंधा हो जाता है, वह यह नहीं देखता कि मैं कालरूप परमेश्वर हाथमें दण्ड लेकर उसके सिरपर सवार हूँ। मैं जिसपर अनुग्रह करना चाहता हूँ, उसे ऐश्वर्यभ्रष्ट कर

देता हूँ ॥ १६ ॥ इन्द्र ! तुम्हारा मङ्गल हो । अब तुम अपनी राजधानी अमरावतीमें जाओ और मेरी आज्ञाका पालन करो । अब कभी घमंड न करना । नित्य-निरन्तर मेरी सन्निधिका, मेरे संयोगका अनुभव करते रहना और अपने अधिकारके अनुसार उचित रीतिसे मर्यादाका पालन करना ॥ १७ ॥

परीक्षित् ! भगवान् इस प्रकार आज्ञा दे ही रहे थे कि मनस्विनी कामधेनुने अपनी सन्तानोंके साथ गोपवेष-धारी परमेश्वर श्रीकृष्णकी वन्दना की और उनको सम्बोधित करके कहा—॥ १८ ॥

कामधेनुने कहा—सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण ! आप महायोगी—योगेश्वर हैं । आप स्वयं विश्व हैं, विश्वके परमकारण हैं, अच्युत हैं । सम्पूर्ण विश्वके स्वामी आपको अपने रक्षकके रूपमें प्राप्तकर हम सनाथ हो गयीं ॥ १९ ॥ आप जगत्के स्वामी हैं । परन्तु हमारे तो परम पूजनीय आराध्यदेव ही हैं । प्रभो ! इन्द्र त्रिलोकीके इन्द्र हुआ करें, परन्तु हमारे इन्द्र तो आप ही हैं । अतः आप ही गौ, ब्राह्मण, देवता और साधुजनोंकी रक्षाके लिये हमारे इन्द्र बन जाइये ॥२०॥ हम गौएँ ब्रह्माजीकी प्रेरणासे आपको अपना इन्द्र मान-कर अभिषेक करेंगी । विश्वात्मन् ! आपने पृथ्वीका भार उतारनेके लिये ही अवतार धारण किया है ॥ २१ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णसे ऐसा कहकर कामधेनुने अपने दूधसे और देवमाताओंकी प्रेरणासे देवराज इन्द्रने ऐरावतकी सूँडके द्वारा लाये हुए आकाशगङ्गाके जलसे देवर्षियोंके साथ यदुनाथ श्रीकृष्णका अभिषेक किया और उन्हें 'गोविन्द' नामसे सम्बोधित किया ॥ २२-२३ ॥ उस समय वहाँ नारद, तुम्बुरु आदि गन्धर्व, विद्याधर, सिद्ध और चारण पहलेसे ही आ गये थे । वे समस्त संसारके पाप-ताप-को मिटा देनेवाले भगवान्‌के लोकमलापह यशका गान करने लगे और अप्सराएँ आनन्दसे भरकर नृत्य करने लगीं ॥ २४ ॥ मुख्य-मुख्य देवता भगवान्‌की स्तुति करके उनपर नन्दनवनके दिव्य पुष्पोंकी वर्षा करने लगे । तीनों लोकोंमें परमानन्दकी बाढ़ आ गयी और गौओंके स्तनोंसे आप-ही-आप इतना दूध गिरा कि पृथ्वी गीली हो गयी ॥ २५ ॥ नदियोंमे विविध रसोंकी बाढ़ आ गयी । वृक्षोंसे मधुधारा बहने लगी । बिना जोते-बोये पृथ्वीमें अनेकों प्रकारकी ओषधियाँ, अन्न पैदा हो गये । पर्वतोंमें छिपे हुए मणि-माणिक्य स्वयं ही बाहर निकल आये ॥ २६ ॥ परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णका अभिषेक होनेपर जो जीव स्वभावसे ही क्रूर हैं, वे भी वैरहीन हो गये, उनमें भी परस्पर मित्रता हो गयी ॥ २७ ॥ इन्द्रने इस प्रकार गौ और गोकुलके स्वामी श्रीगोविन्दका अभिषेक किया और उनसे अनुमति प्राप्त होनेपर देवता, गन्धर्व आदिके साथ स्वर्गकी यात्रा की ॥ २८ ॥

अट्ठाईसवाँ अध्याय

वरुणलोकसे नन्दजीको छुड़ाकर लाना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! नन्दबाबाने कार्तिक शुक्ल एकादशीका उपवास किया और भगवान्‌की पूजा की तथा उसी दिन रातमे द्वादशी लगनेपर स्नान करनेके लिये यमुना-जलमें प्रवेश किया ॥ १ ॥ नन्दबाबाको यह मालूम नहीं था कि यह असुरोंकी वेला है, इसलिये वे रातके समय ही यमुनाजलमें घुस गये । उस समय वरुणके सेवक एक असुरने उन्हें पकड़ लिया और वह अपने स्वामीके पास ले गया ॥ २ ॥ नन्दबाबा-के खो जानेसे व्रजके सारे गोप 'श्रीकृष्ण ! अब तुम्हीं अपने पिताको ला सकते हो; बलराम ! अब तुम्हारा ही भरोसा है'—इस प्रकार कहते हुए रोने-पीटने लगे । भगवान् श्रीकृष्ण सर्वशक्तिमान् हैं एवं सदासे ही अपने भक्तोंका भय भगाते आये हैं । जब उन्होंने व्रजवासियों-का रोना-पीटना सुना और यह जाना कि पिताजीको वरुणका कोई सेवक ले गया है, तब वे वरुणजीके पास गये ॥ ३ ॥ जब लोकपाल वरुणने देखा कि समस्त जगत्के अन्तरिन्द्रिय और बहिरिन्द्रियोंके प्रवर्तक भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं ही उनके यहाँ पधारे है, तब उन्होंने उनकी बहुत बड़ी पूजा

थी । भगवान्‌के दर्शनसे उनका रोम-रोम आनन्दसे खिल उठा । इसके बाद उन्होंने भगवान्‌से निवेदन किया ॥ ४ ॥

वरुणजीने कहा—प्रभो ! आज मेरा शरीर धारण करना सफल हुआ । आज मुझे सम्पूर्ण पुरुषार्थ प्राप्त हो गया । क्योंकि आज मुझे आपके चरणोंकी सेवाका शुभ अवसर प्राप्त हुआ है । भगवन् ! जिन्हें भी आपके चरणकमलोंकी सेवाका सुअवसर मिला, वे भवसागरसे पार हो गये ॥ ५ ॥ आप भक्तोंके भगवान्, वेदान्तियोंके ब्रह्म और योगियोंके परमात्मा हैं । आपके स्वरूपमें विभिन्न लोकसृष्टियोंकी कल्पना करनेवाली माया नहीं है—ऐसा श्रुति कहती है । मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ ६ ॥ प्रभो ! मेरा यह सेवक बड़ा मूढ और अनजान है । वह अपने कर्तव्यको भी नहीं जानता । वही आपके पिताजीको ले आया है, आप कृपा करके उसका अपराध क्षमा कीजिये ॥ ७ ॥ गोविन्द ! मैं जानता हूँ कि आप अपने पिताके प्रति बड़ा प्रेमभाव रखते हैं । ये आपके पिता हैं । इन्हें आप ले जाइये । परन्तु भगवन् ! आप सबके अन्तर्यामी, सबके साक्षी हैं । इसलिये विश्वविमोहन श्रीकृष्ण ! आप मुझ दासपर भी कृपा कीजिये ॥ ८ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्ण ब्रह्मा आदि ईश्वरोंके भी ईश्वर हैं । लोकपाल वरुणने इस प्रकार उनकी स्तुति करके उन्हें प्रसन्न किया । इसके बाद भगवान् अपने पिता नन्दजीको लेकर व्रजमें चले आये और व्रजवासी भाई-बन्धुओंको आनन्दित किया ॥ ९ ॥ नन्दबाबाने वरुणलोकमें लोकपालके इन्द्रियातीत ऐश्वर्य और सुख-सम्पत्तिको देखा तथा यह भी देखा कि वहाँके निवासी उनके पुत्र श्रीकृष्णके चरणोंमें झुक-झुककर प्रणाम कर रहे हैं । उन्हें बड़ा विस्मय हुआ । उन्होंने व्रजमें आकर अपने जाति-भाइयोंको सब बातें कह सुनायीं ॥ १० ॥ परीक्षित् ! भगवान्‌के प्रेमी गोप यह सुनकर ऐसा समझने लगे कि अरे, ये तो स्वयं भगवान् हैं । तब उन्होंने मन-ही-मन बड़ी उत्सुकतासे विचार किया कि क्या कभी जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्ण हमलोगोंको भी अपना वह मायातीत स्वधाम, जहाँ केवल इनके प्रेमी भक्त ही जा सकते हैं, दिखलायेंगे ॥ ११ ॥ परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं सर्वदर्शी हैं । भला, उनसे यह बात कैसे छिपी रहती ? वे अपने आत्मीय गोपोंकी यह अभिलाषा जान गये और उनका सङ्कल्प सिद्ध करनेके लिये कृपासे भरकर इस प्रकार सोचने लगे ॥ १२ ॥ 'इस संसारमें जीव अज्ञानवश शरीरमें आत्मबुद्धि करके भाँति-भाँतिकी कामना और उनकी पूर्तिके लिये नाना प्रकारके कर्म करता है । फिर उनके फलस्वरूप देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि ऊँची-नीची योनियोंमें भटकता फिरता है, अपनी असली गतिको—आत्मस्वरूपको नहीं पहचान पाता ॥ १३ ॥ परमदयालु भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार सोचकर उन गोपोंको मायान्धकारसे अतीत अपना परमधाम दिखलाया ॥ १४ ॥ भगवान्‌ने पहले उनको उस ब्रह्मका साक्षात्कार करवाया जिसका स्वरूप सत्य, ज्ञान, अनन्त, सनातन और ज्योतिःस्वरूप है तथा समाधिनिष्ठ गुणातीत पुरुष ही जिसे देख पाते हैं ॥ १५ ॥ जिस जलाशयमें अक्रूरको भगवान्‌ने अपना स्वरूप दिखलाया था, उसी ब्रह्मस्वरूप ब्रह्महृदमें भगवान् उन गोपोंको ले गये । वहाँ उन लोगोंने उसमें डुबकी लगायी । वे ब्रह्महृदमें प्रवेश कर गये । तब भगवान्‌ने उसमेंसे उनको निकालकर अपने परमधामका दर्शन कराया ॥ १६ ॥ उस दिव्य भगवत्स्वरूप लोकको देखकर नन्द आदि गोप परमानन्दमें मग्न हो गये । वहाँ उन्होंने देखा कि सारे वेद मूर्तिमान् होकर भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति कर रहे हैं । यह देखकर वे सब-के-सब परम विस्मित हो गये ॥ १७ ॥

उन्तीसवाँ अध्याय

रासलीलाका आरम्भ

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! शरद् ऋतु थी । उसके कारण बेला, चमेली आदि सुगन्धित पुष्प खिलकर महँ-महँ महँक रहे थे । भगवान्‌ने चीरहरणके समय गोपियोंको जिन रात्रियोंका सङ्केत किया

था, वे सब-की-सब पुञ्जीभूत होकर एक ही रात्रिके रूपमें उल्लसित हो रही थीं। भगवान्‌ने उन्हें देखा, देखकर दिव्य बनाया। गोपियाँ तो चाहती ही थीं। अब भगवान्‌ने भी अपनी अचिन्त्य महाशक्ति योगमायाके सहारे उन्हें निमित्त बनाकर रसमयी रासक्रीडा करनेका सङ्कल्प किया। अमना होनेपर भी उन्होंने अपने प्रेमियोंकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये मन स्वीकार किया ॥ १ ॥ भगवान्‌के सङ्कल्प करते ही चन्द्रदेवने प्राची दिशाके मुखमण्डलपर अपने शीतल किरणरूपी करकमलोंसे लालिमाकी रोली-केशर मल दी, जैसे बहुत दिनोंके बाद अपनी प्राणप्रिया पत्नीके पास आकर उसके प्रियतम पतिने उसे आनन्दित करनेके लिये ऐसा किया हो! इस प्रकार चन्द्रदेवने उदय होकर न केवल पूर्वदिशाका, प्रत्युत संसारके समस्त चर-अचर प्राणियोंका सन्ताप—जो दिनमें शरत्कालीन प्रखर सूर्यरश्मियोंके कारण बढ़ गया था—दूर कर दिया ॥ २ ॥ उस दिन चन्द्रदेवका मण्डल अखण्ड था। पूर्णिमाकी रात्रि थी। वे नूतन केशरके समान लाल-लाल हो रहे थे, कुछ सङ्कोचमिश्रित अभिलाषासे युक्त जान पड़ते थे। उनका मुखमण्डल लक्ष्मीजीके समान मालूम हो रहा था। उनकी कोमल किरणोंसे सारा वन अनुरागके रंगमें रँग गया था। वनके कोने-कोनेमें उन्होंने अपनी चाँदनीके द्वारा अमृतका समुद्र उड़ेल दिया था। भगवान् श्रीकृष्णने अपने दिव्य उज्ज्वल रसके उद्दीपनकी पूरी सामग्री उन्हें और उस वनको देखकर अपनी बाँसुरीपर व्रजसुन्दरियोंके मनको हरण करनेवाली कामबीज 'क्लीं' की अस्पष्ट एवं मधुर तान छेड़ी ॥ ३ ॥ भगवान्‌का वह वंशीवादन भगवान्‌के प्रेमको, उनके मिलनकी लालसाको अत्यन्त उकसानेवाला—बढ़ानेवाला था। यों तो श्यामसुन्दरने पहलेसे ही गोपियोंके मनको अपने वशमें कर रक्खा था। अब तो उनके मनकी सारी वस्तुएँ—भय, सङ्कोच, धैर्य, मर्यादा आदिकी वृत्तियाँ भी—छीन लीं। वंशीध्वनि सुनते ही उनकी विचित्र गति हो गयी। जिन्होंने एक साथ साधना की थी श्रीकृष्णको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये, वे गोपियाँ भी एक-दूसरेको सूचना न देकर—यहाँतक कि एक दूसरेसे अपनी चेष्टाको छिपाकर जहाँ वे थे, वहाँके लिये चल पड़ीं। परीक्षित्! वे इतने वेगसे चली थीं कि उनके कानोंके कुण्डल झोंके खा रहे थे ॥ ४ ॥

वंशीध्वनि सुनकर जो गोपियाँ दूध दुह रही थीं, वे अत्यन्त उत्सुकतावश दूध दुहना छोड़कर चल पड़ीं। जो चूल्हेपर दूध औंटा रही थीं, वे उफनता हुआ दूध छोड़कर, और जो लपसी पका रही थीं वे पकी हुई लपसी बिना उतारे ही ज्यों-की-त्यों छोड़कर चल दीं ॥ ५ ॥ जो भोजन परस रही थीं वे परसना छोड़कर, जो छोटे-छोटे बच्चोंको दूध पिला रही थीं वे दूध पिलाना छोड़कर, जो पतियोंकी सेवा-शुश्रूषा कर रही थीं वे सेवा-शुश्रूषा छोड़कर और जो स्वयं भोजन कर रही थीं वे भोजन करना छोड़कर अपने कृष्णप्यारेके पास चल पड़ीं ॥ ६ ॥ कोई-कोई गोपी अपने शरीरमें अङ्गराग, चन्दन और उबटन लगा रही थीं और कुछ आँखोंमें अंजन लगा रही थीं। वे उन्हें छोड़कर तथा उलटे-पलटे वस्त्र धारणकर श्रीकृष्णके पास पहुँचनेके लिये चल पड़ीं ॥ ७ ॥ पिता और पतियोंने, भाई और जाति-बन्धुओंने उन्हें रोका, उनकी मङ्गलमयी प्रेमयात्रामें विघ्न डाला। परन्तु वे इतनी मोहित हो गयी थीं कि रोकनेपर भी न रुकीं, न रुक सकीं। रुकतीं कैसे? विश्वविमोहन श्रीकृष्णने उनके प्राण, मन और आत्मा सब कुछका अपहरण जो कर लिया था ॥ ८ ॥ परीक्षित्! उस समय कुछ गोपियाँ घरोंके भीतर थीं। उन्हें बाहर निकलनेका मार्ग ही न मिला। तब उन्होंने अपने नेत्र मूँद लिये और बड़ी तन्मयतासे श्रीकृष्णके सौन्दर्य, माधुर्य और लीलाओंका ध्यान करने लगीं ॥ ९ ॥ परीक्षित्! अपने परम प्रियतम श्रीकृष्णके असह्य विरहकी तीव्र वेदनासे उनके हृदयमें इतनी व्यथा—इतनी जलन हुई कि उनमें जो कुछ अशुभ संस्कारोंका लेशमात्र अवशेष था, वह भस्म हो गया। इसके बाद तुरंत ही ध्यान लग गया। ध्यानमें उनके सामने भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हुए। उन्होंने मन-ही-मन बड़े प्रेमसे, बड़े आवेगसे उनका आलिङ्गन किया। उस समय उन्हें इतना सुख, इतनी शान्ति मिली कि उनके सब-के-सब पुण्यके संस्कार एक साथ ही क्षीण हो गये ॥ १० ॥ परीक्षित्! यद्यपि उनका उस समय

श्रीकृष्णके प्रति जारभाव भी था, तथापि कहीं सत्य वस्तु भी भावकी अपेक्षा रखती है ? उन्होंने जिनका आलिङ्गन किया, चाहे किसी भी भावसे किया हो, वे स्वयं परमात्मा ही तो थे। इसलिये उन्होंने पाप और पुण्यरूप कर्मके परिणामसे बने हुए गुणमय शरीरका परित्याग कर दिया। (भगवान्‌की लीलामें सम्मिलित होनेके योग्य दिव्य अप्राकृत शरीर प्राप्त कर लिया।) इस शरीरसे भोगे जानेवाले कर्मबन्धन तो ध्यानके समय ही छिन्न-भिन्न हो चुके थे ॥ ११ ॥

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन् ! गोपियाँ तो भगवान् श्रीकृष्णको केवल अपना परम प्रियतम ही मानती थीं। उनका उनमें ब्रह्मभाव नहीं था। इस प्रकार उनकी दृष्टि प्राकृत गुणोंमें ही आसक्त दीखती है। ऐसी स्थितिमें उनके लिये गुणोंके प्रवाहरूप इस संसारकी निवृत्ति कैसे सम्भव हुई ? ॥ १२ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित् ! मैं तुमसे पहले ही कह चुका हूँ कि चेदिराज शिशुपाल भगवान्‌के प्रति द्वेष-भाव रखनेपर भी अपने प्राकृत शरीरको छोड़कर अप्राकृत शरीरसे उनका पार्षद हो गया। ऐसी स्थितिमें जो समस्त प्रकृति और उसके गुणोंसे अतीत भगवान् श्रीकृष्णकी प्यारी हैं और उनसे अनन्य प्रेम करती हैं, वे गोपियाँ उन्हें प्राप्त हो जायँ—इसमें कौन-सी आश्चर्यकी बात है ॥ १३ ॥ परीक्षित् ! वास्तवमें भगवान् प्रकृतिसम्बन्धी वृद्धि-विनाश, प्रमाण-प्रमेय और गुणगुणीभावसे रहित हैं। वे अचिन्त्य-अनन्त अप्राकृत परम कल्याणस्वरूप गुणोंके एकमात्र आश्रय हैं। उन्होंने यह जो अपनेको तथा अपनी लीलाको प्रकट किया है, उसका प्रयोजन केवल इतना ही है कि जीव उसके सहारे अपना परम कल्याण सम्पादन करे ॥ १४ ॥ इसलिये भगवान्‌से केवल सम्बन्ध हो जाना चाहिये। वह सम्बन्ध चाहे जैसा हो—कामका हो, क्रोधका हो या भयका हो; स्नेह, नातेदारी या सौहार्दका हो। चाहे जिस भावसे भगवान्‌में नित्य-निरन्तर अपनी वृत्तियाँ जोड़ दी जायँ, वे भगवान्‌से ही जुड़ती हैं। इसलिये वृत्तियाँ भगवन्मय हो जाती हैं, और उस जीवको भगवान्‌की ही प्राप्ति होती है ॥ १५ ॥ परीक्षित् ! तुम्हारे-जैसे परम भागवत, भगवान्‌का रहस्य जाननेवाले भक्तको श्रीकृष्णके सम्बन्धमें ऐसा सन्देह नहीं करना चाहिये। योगेश्वरोंके भी ईश्वर अजन्मा भगवान्‌के लिये भी यह कोई आश्चर्यकी बात है ? अरे ! उनके सङ्कल्पमात्रसे—भौंहोंके इशारेसे सारे जगत्‌का परम कल्याण हो सकता है ॥ १६ ॥ जब भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि व्रजकी अनुपम विभूतियाँ गोपियाँ मेरे बिल्कुल पास आ गयी हैं, तब उन्होंने अपनी विनोदभरी वाक्चातुरीसे उन्हें मोहित करते हुए कहा। क्यों न हो—भूत, भविष्य और वर्तमानकालके जितने वक्ता हैं, उनमें वे ही तो सर्वश्रेष्ठ हैं ॥ १७ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाभाग्यवती गोपियो ! तुम्हारा स्वागत है। बतलाओ, तुम्हें प्रसन्न करनेके लिये मैं कौन-सा काम करूँ ? व्रजमें तो सब कुशल-मङ्गल है न ? कहो, इस समय यहाँ आनेकी क्या आवश्यकता पड़ गयी ? ॥ १८ ॥ सुन्दरी गोपियो ! रातका समय है, यह स्वयं ही बड़ा भयावना होता है और इसमें बड़े-बड़े भयावने जीव-जन्तु इधर-उधर घूमते रहते हैं। अतः तुम सब तुरंत व्रजमें लौट जाओ। रातके समय घोर जंगलमें स्त्रियोंको नहीं रुकना चाहिये ॥ १९ ॥ तुम्हें न देखकर तुम्हारे माँ-बाप, पति-पुत्र और भाई-बन्धु ढूँढ़ रहे होंगे। उन्हें भयमें न डालो ॥ २० ॥ तुमलोगोंने रंग-बिरंगे पुष्पोंसे लदे हुए इस वनकी शोभाको देखा। पूर्ण चन्द्रमाकी कोमल रश्मियोंसे यह रँगा हुआ है, मानो उन्होंने अपने हाथों चित्रकारी की हो; और यमुनाजीके जलका स्पर्श करके बहनेवाले शीतल समीरकी मन्द-मन्द गतिसे हिलते हुए ये वृक्षोंके पत्ते तो इस वनकी शोभाको और भी बढ़ा रहे हैं। परन्तु अब तो तुमलोगोंने यह सब कुछ देख लिया ॥ २१ ॥ अब देर मत करो, शीघ्र-से-शीघ्र व्रजमें लौट जाओ। तुमलोग कुलीन स्त्री हो और स्वयं भी सती हो; जाओ, अपने पतियोंकी और सतियोंकी सेवा-शुश्रूषा करो। देखो, तुम्हारे घरके नन्हे-नन्हे बच्चे और गौओंके बछड़े रो-रँभा रहे हैं; उन्हें दूध पिलाओ, गौएँ दुहो ॥ २२ ॥ अथवा यदि मेरे

प्रेमसे परवश होकर तुमलोग यहाँ आयी हो तो इसमें कोई अनुचित बात नहीं हुई, यह तो तुम्हारे योग्य ही है। क्योंकि जगत्‌के पशु-पक्षीतक मुझसे प्रेम करते हैं, मुझे देखकर प्रसन्न होते है ॥ २३ ॥ कल्याणी गोपियो! स्त्रियोंका परम धर्म यही है कि वे पति और उसके भाई-बन्धुओंकी निष्कपटभावसे सेवा करें और सन्तानका पालन-पोषण करें ॥ २४ ॥ जिन स्त्रियोंको उत्तम लोक प्राप्त करनेकी अभिलाषा हो, वे पातकीको छोड़कर और किसी भी प्रकारके पतिका परित्याग न करें। भले ही वह बुरे स्वभाववाला, भाग्यहीन, वृद्ध, मूर्ख, रोगी या निर्धन ही क्यों न हो ॥ २५ ॥ कुलीन स्त्रियोंके लिये जार पुरुषकी सेवा सब तरहसे निन्दनीय ही है। इससे उनका परलोक बिगड़ता है, स्वर्ग नहीं मिलता, इस लोकमें अपयश होता है। यह कुकर्म स्वयं तो अत्यन्त तुच्छ, क्षणिक है ही; इसमें प्रत्यक्ष—वर्तमानमें भी कष्ट-ही-कष्ट है। मोक्ष आदिकी तो बात ही कौन करे, यह साक्षात् परम भय—नरक आदिका हेतु है ॥ २६ ॥ गोपियो! मेरी लीला और गुणोंके श्रवणसे, रूपके दर्शनसे, उन सबके कीर्तन और ध्यानसे मेरे प्रति जैसे अनन्य प्रेमकी प्राप्ति होती है, वैसे प्रेमकी प्राप्ति पास रहनेसे नहीं होती। इसलिये तुमलोग अभी अपने-अपने घर लौट जाओ ॥२७॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णका यह अप्रिय भाषण सुनकर गोपियाँ उदास, खिन्न हो गयीं। उनकी आशा टूट गयी। वे चिन्ताके अथाह एवं अपार समुद्रमें डूबने-उतराने लगीं ॥ २८ ॥ उनके बिम्बाफल (पके हुए कुँदरू) के समान लाल-लाल अधर शोकके कारण चलनेवाली लंबी और गरम साँससे सूख गये। उन्होंने अपने मुँह नीचेकी ओर लटका लिये, वे पैरके नखोंसे धरती कुरेदने लगीं। नेत्रोंसे दु:खके आँसू बह-बहकर काजलके साथ वक्ष:स्थलपर पहुँचने और वहाँ लगी हुई केशरको धोने लगे। उनका हृदय दु:खसे इतना भर गया कि वे कुछ बोल न सकीं, चुपचाप खड़ी रह गयीं ॥ २९ ॥ गोपियोंने अपने प्यारे श्यामसुन्दरके लिये सारी कामनाएँ, सारे भोग छोड़ दिये थे। श्रीकृष्णमें उनका अनन्य अनुराग, परम प्रेम था। जब उन्होंने अपने प्रियतम श्रीकृष्णकी यह निष्ठुरतासे भरी बात सुनी, जो बड़ी ही अप्रिय-सी मालूम हो रही थी, तब उन्हें बड़ा दु:ख हुआ। आँखें रोते-रोते लाल हो गयीं, आँसुओंके मारे रूँध गयीं। उन्होंने धीरज धारण करके अपनी आँखोंके आँसू पोंछे और फिर प्रणयकोपके कारण वे गद्गद वाणीसे कहने लगीं ॥ ३० ॥

गोपियोंने कहा—प्यारे श्रीकृष्ण! तुम घट-घटव्यापी हो। हमारे हृदयकी बात जानते हो। तुम्हें इस प्रकार निष्ठुरताभरे वचन नहीं कहने चाहिये। हम सब कुछ छोड़कर केवल तुम्हारे चरणोंमें ही प्रेम करती हैं। इसमें सन्देह नहीं कि तुम स्वतन्त्र और हठीले हो। तुमपर हमारा कोई वश नहीं है। फिर भी तुम अपनी ओरसे, जैसे आदि पुरुष भगवान् नारायण कृपा करके अपने मुमुक्षु भक्तोंसे प्रेम करते हैं, वैसे ही हमें स्वीकार कर लो। हमारा त्याग मत करो ॥ ३१ ॥ प्यारे श्यामसुन्दर! तुम सब धर्मोंका रहस्य जानते हो। तुम्हारा यह कहना कि 'अपने पति, पुत्र और भाई-बन्धुओंकी सेवा करना ही स्त्रियोंका स्वधर्म है'—अक्षरश: ठीक है। परन्तु इस उपदेशके अनुसार हमें तुम्हारी ही सेवा करनी चाहिये; क्योंकि तुम्हीं सब उपदेशोंके पद (चरम लक्ष्य) हो; साक्षात् भगवान् हो। तुम्हीं समस्त शरीरधारियोंके सुहृद् हो, आत्मा हो और परम प्रियतम हो ॥ ३२ ॥ आत्मज्ञानमें निपुण महापुरुष तुमसे ही प्रेम करते हैं; क्योंकि तुम नित्य प्रिय एवं अपने ही आत्मा हो। अनित्य एवं दु:खद पति-पुत्रादिसे क्या प्रयोजन है? परमेश्वर! इसलिये हमपर प्रसन्न होओ। कृपा करो। कमलनयन! चिरकालसे तुम्हारे प्रति पाली-पोसी आशा-अभिलाषाकी लहलहाती लताका छेदन मत करो ॥ ३३ ॥ मनमोहन! अबतक हमारा चित्त घरके काम-धंधोंमें लगता था। इसीसे हमारे हाथ भी उनमें रमे हुए थे। परन्तु तुमने हमारे देखते-देखते हमारा वह चित्त लूट लिया। इसमें तुम्हें कोई कठिनाई भी नहीं उठानी पड़ी, तुम तो सुखस्वरूप हो न! परन्तु अब तो हमारी गति-मति निराली ही हो गयी है। हमारे ये पैर तुम्हारे चरणकमलोंको छोड़कर एक पग भी हटनेके लिये तैयार नहीं हैं, नहीं

छूट रहे हैं। फिर हम व्रजमें कैसे जायँ? और यदि वहाँ जायँ भी तो करें क्या? ॥ ३४ ॥ प्राणवल्लभ! हमारे प्यारे सखा! तुम्हारी मन्द-मन्द मधुर मुसकान, प्रेमभरी चितवन और मनोहर संगीतने हमारे हृदयमें तुम्हारे प्रेम और मिलनकी आग धधका दी है। उसे तुम अपने अधरोंकी रसधारासे बुझा दो। नहीं तो प्रियतम! हम सच कहती हैं, तुम्हारी विरह-व्यथाकी आगसे हम अपने-अपने शरीर जला देंगी और ध्यानके द्वारा तुम्हारे चरणकमलोंको प्राप्त करेंगी ॥ ३५ ॥

प्यारे कमलनयन! तुम वनवासियोंके प्यारे हो और वे भी तुमसे बहुत प्रेम करते हैं। इससे प्रायः तुम उन्हींके पास रहते हो। यहाँतक कि तुम्हारे जिन चरणकमलोंकी सेवाका अवसर स्वयं लक्ष्मीजीको भी कभी-कभी ही मिलता है, उन्हीं चरणोंका स्पर्श हमें प्राप्त हुआ। जिस दिन यह सौभाग्य हमें मिला और तुमने हमें स्वीकार करके आनन्दित किया, उसी दिनसे हम और किसीके सामने एक क्षणके लिये भी ठहरनेमें असमर्थ हो गयी हैं—पति-पुत्रादिकोंकी सेवा तो दूर रही ॥ ३६ ॥ हमारे स्वामी! जिन लक्ष्मीजीका कृपा-कटाक्ष प्राप्त करनेके लिये बड़े-बड़े देवता तपस्या करते रहते हैं, वही लक्ष्मीजी तुम्हारे वक्षःस्थलमें बिना किसीकी प्रतिद्वन्द्विताके स्थान प्राप्त कर लेनेपर भी अपनी सौत तुलसीके साथ तुम्हारे चरणोंकी रज पानेकी अभिलाषा किया करती हैं। अबतकके सभी भक्तोंने उस चरणरजका सेवन किया है। उन्हींके समान हम भी तुम्हारी उसी चरणरजकी शरणमें आयी हैं ॥ ३७ ॥ भगवन्! अबतक जिसने भी तुम्हारे चरणोंकी शरण ली, उसके सारे कष्ट तुमने मिटा दिये। अब तुम हमपर कृपा करो। हमें भी अपने प्रसादका भाजन बनाओ। हम तुम्हारी सेवा करनेकी आशा-अभिलाषासे घर, गाँव, कुटुम्ब—सब कुछ छोड़कर तुम्हारे युगल चरणोंकी शरणमें आयी हैं। प्रियतम! वहाँ तो तुम्हारी आराधनाके लिये अवकाश ही नहीं है। पुरुषभूषण! पुरुषोत्तम! तुम्हारी मधुर मुसकान और चारु चितवनने हमारे हृदयमें प्रेमकी—मिलनकी आकांक्षाकी आग धधका दी है; हमारा रोम-रोम उससे जल रहा है। तुम हमें अपनी दासीके रूपमें स्वीकार कर लो। हमें अपनी सेवाका अवसर दो ॥ ३८ ॥ प्रियतम! तुम्हारा सुन्दर मुखकमल, जिसपर घुँघराली अलकें झलक रही हैं; तुम्हारे ये कमनीय कपोल, जिनपर सुन्दर-सुन्दर कुण्डल अपना अनन्त सौन्दर्य बिखेर रहे हैं; तुम्हारे ये मधुर अधर, जिनकी सुधा सुधाको भी लजानेवाली है; तुम्हारी यह नयनमनोहारी चितवन, जो मन्द-मन्द मुसकानसे उल्लसित हो रही है; तुम्हारी ये दोनों भुजाएँ, जो शरणागतोंको अभयदान देनेमें अत्यन्त उदार हैं और तुम्हारा यह वक्षःस्थल, जो लक्ष्मीजीका—सौन्दर्यकी एकमात्र देवीका नित्य क्रीडास्थल है, देखकर हम सब तुम्हारी दासी हो गयी हैं ॥ ३९ ॥ प्यारे श्यामसुन्दर! तीनों लोकोंमे भी और ऐसी कौन-सी स्त्री है, जो मधुर-मधुर पद और आरोह-अवरोह-क्रमसे विविध प्रकारकी मूर्च्छनाओंसे युक्त तुम्हारी वंशीकी तान सुनकर तथा इस त्रिलोकसुन्दर मोहिनी मूर्तिको—जो अपने एक बूँद सौन्दर्यसे त्रिलोकीको सौन्दर्यका दान करती है एवं जिसे देखकर गौ, पक्षी, वृक्ष और हरिन भी रोमाञ्चित, पुलकित हो जाते हैं—अपने नेत्रोंसे निहारकर आर्य-मर्यादासे विचलित न हो जाय, कुल-कान और लोकलज्जाको त्यागकर तुममें अनुरक्त न हो जाय ॥ ४० ॥ हमसे यह बात छिपी नहीं है कि जैसे भगवान् नारायण देवताओंकी रक्षा करते हैं, वैसे ही तुम व्रजमण्डलका भय और दुःख मिटानेके लिये ही प्रकट हुए हो। और यह भी स्पष्ट ही है कि दीन-दुखियोंपर तुम्हारा बड़ा प्रेम, बड़ी कृपा है। प्रियतम! हम भी बड़ी दुःखिनी हैं। तुम्हारे मिलनकी आकांक्षाकी आगसे हमारा वक्षःस्थल जल रहा है। तुम अपनी इन दासियोंके वक्षःस्थल और सिरपर अपने कोमल करकमल रखकर इन्हें अपना लो; हमें जीवनदान दो ॥ ४१ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण सनकादि योगियों और शिवादि योगेश्वरोंके भी ईश्वर हैं। जब उन्होंने गोपियोंकी व्यथा और व्याकुलतासे भरी वाणी सुनी, तब उनका हृदय दयासे भर गया और यद्यपि वे आत्माराम हैं—अपने-आपमें

ही रमण करते रहते हैं, उन्हें अपने अतिरिक्त और किसी भी बाह्य वस्तुकी अपेक्षा नहीं है, फिर भी उन्होंने हँसकर उनके साथ क्रीडा प्रारम्भ की ॥४२॥ भगवान् श्रीकृष्णने अपनी भाव-भङ्गी और चेष्टाएँ गोपियोंके अनुकूल कर दीं; फिर भी वे अपने स्वरूपमें ज्यों-के-त्यों एकरस स्थित थे, अच्युत थे। जब वे खुलकर हँसते, तब उनके उज्ज्वल-उज्ज्वल दाँत कुन्दकलीके समान जान पड़ते थे। उनकी प्रेमभरी चितवनसे और उनके दर्शनके आनन्दसे गोपियोंका मुखकमल प्रफुल्लित हो गया। वे उन्हें चारों ओरसे घेरकर खड़ी हो गयीं। उस समय श्रीकृष्णकी ऐसी शोभा हुई, मानो अपनी पत्नी तारिकाओंसे घिरे हुए चन्द्रमा ही हों॥ ४३॥ गोपियोंके शत-शत यूथोंके स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण वैजयन्ती माला पहने वृन्दावन-को शोभायमान करते हुए विचरण करने लगे। कभी गोपियाँ अपने प्रियतम श्रीकृष्णके गुण और लीलाओंका गान करतीं, तो कभी श्रीकृष्ण गोपियोंके प्रेम और सौन्दर्यके गीत गाने लगते ॥ ४४ ॥ इसके बाद भगवान् श्रीकृष्णने गोपियोंके साथ यमुनाजीके पावन पुलिनपर, जो कपूरके समान चमकीली बालूसे जगमगा रहा था, पदार्पण किया। वह यमुनाजीकी तरल तरङ्गों-के स्पर्शसे शीतल और कुमुदिनीकी सहज सुगन्धसे सुवासित वायुके द्वारा सेवित हो रहा था। उस आनन्दप्रद पुलिनपर भगवान्ने गोपियोंके साथ क्रीडा की॥ ४५ ॥ हाथ फैलाना, आलिङ्गन करना, गोपियोंके हाथ दबाना, उनकी चोटी, जाँघ, नीवी और स्तन आदिका स्पर्श करना, विनोद करना, नखक्षत करना, विनोदपूर्ण चितवनसे देखना और मुसकाना—इन क्रियाओंके द्वारा गोपियोंके दिव्य कामरसको, परमोज्ज्वल प्रेमभावको उत्तेजित करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण उन्हें क्रीडाद्वारा आनन्दित करने लगे॥ ४६॥ उदारशिरोमणि सर्वव्यापक भगवान् श्रीकृष्णने जब इस प्रकार गोपियोंका सम्मान किया, तब गोपियोंके मनमें ऐसा भाव आया कि संसारकी समस्त स्त्रियोंमें हम ही सर्वश्रेष्ठ हैं, हमारे समान और कोई नहीं है। वे कुछ मानवती हो गयीं ॥ ४७॥ जब भगवान्ने देखा कि इन्हें तो अपने सुहागका कुछ गर्व हो आया है और अब मान भी करने लगी हैं, तब वे उनका गर्व शान्त करनेके लिये तथा उनका मान दूर कर प्रसन्न करनेके लिये वहीं—उनके बीचमें ही अन्तर्धान हो गये॥ ४८॥

तीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्णके विरहमें गोपियोंकी दशा

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान् सहसा अन्तर्धान हो गये। उन्हें न देखकर व्रजयुवतियों-की वैसी ही दशा हो गयी, जैसे यूथपति गजराजके बिना हथिनियोंकी होती है। उनका हृदय विरहकी ज्वालासे जलने लगा॥ १॥ भगवान् श्रीकृष्णकी मदोन्मत्त गजराजकी-सी चाल, प्रेमभरी मुसकान, विलासभरी चितवन, मनोरम प्रेमालाप, भिन्न-भिन्न प्रकारकी लीलाओं तथा शृङ्गार-रसकी भाव-भङ्गियोंने उनके चित्तको चुरा लिया था। वे प्रेमकी मतवाली गोपियाँ श्रीकृष्णमय हो गयीं और फिर श्रीकृष्णकी विभिन्न चेष्टाओंका अनुकरण करने लगीं॥ २॥ अपने प्रियतम श्रीकृष्णकी चाल-ढाल, हास-विलास और चितवन-बोलन आदिमें श्रीकृष्णकी प्यारी गोपियाँ उनके समान ही बन गयीं; उनके शरीरमें भी वही गति-मति, वही भाव-भङ्गी उतर आयी। वे अपनेको सर्वथा भूलकर श्रीकृष्णस्वरूप हो गयीं और उन्हींके लीला-विलासका अनुकरण करती हुई 'मैं श्रीकृष्ण ही हूँ'—इस प्रकार कहने लगीं। ॥ ३ ॥ वे सब परस्पर मिलकर ऊँचे स्वरसे उन्हींके गुणोंका गान करने लगीं और मतवाली होकर एक वनसे दूसरे वनमें, एक झाड़ीसे दूसरी झाड़ीमें जा-जाकर श्रीकृष्णको ढूँढ़ने लगीं। परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण कहीं दूर थोड़े ही गये थे। वे तो समस्त जड़-चेतन पदार्थोंमें तथा उनके बाहर भी आकाशके समान एकरस स्थित ही हैं। वे वहीं थे, उन्हींमें थे; परन्तु उन्हें न

देखकर गोपियाँ वनस्पतियोंसे—पेड़-पौधोंसे उनका पता पूछने लगीं ॥ ४ ॥

(गोपियोंने पहले बड़े-बड़े वृक्षोंसे जाकर पूछा) 'हे पीपल, पाकर और बरगद ! नन्दनन्दन श्यामसुन्दर अपनी प्रेमभरी मुसकान और चितवनसे हमारा मन चुराकर चले गये हैं । क्या तुम लोगोंने उन्हे देखा है ? ॥ ५ ॥ कुरबक, अशोक, नागकेशर, पुन्नाग और चम्पा ! बलरामजीके छोटे भाई, जिनकी मुसकानमात्रसे बड़ी-बड़ी मानिनियोंका मानमर्दन हो जाता है, इधर आये थे क्या ?' ॥ ६ ॥ (अब उन्होंने स्त्रीजातिके पौधोंसे कहा—) 'बहिन तुलसी ! तुम्हारा हृदय तो बड़ा कोमल है, तुम तो सभी लोगोंका कल्याण चाहती हो । भगवान्‌के चरणोंमें तुम्हारा प्रेम तो है ही, वे भी तुमसे बहुत प्यार करते हैं । तभी तो भौंरोंके मँडराते रहनेपर भी वे तुम्हारी माला नहीं उतारते, सर्वदा पहने रहते हैं । क्या तुमने अपने परम प्रियतम श्यामसुन्दरको देखा है ? ॥ ७ ॥ प्यारी मालती ! मल्लिके ! जाती और जूही ! तुमलोगोंने कदाचित् हमारे प्यारे माधवको देखा होगा । क्या वे अपने कोमल करोंसे स्पर्श करके तुम्हें आनन्दित करते हुए इधरसे गये हैं ? ॥ ८ ॥ 'रसाल, प्रियाल, कटहल, पीतशाल, कचनार, जामुन, आक, बेल, मौलसिरी, आम, कदम्ब और नीम तथा अन्यान्य यमुनाके तटपर विराजमान सुखी तरुवरो ! तुम्हारा जन्म-जीवन केवल परोपकारके लिये है । श्रीकृष्णके बिना हमारा जीवन सूना हो रहा है । हम बेहोश हो रही हैं । तुम हमें उन्हें पानेका मार्ग बता दो' ॥ ९ ॥ 'भगवान्‌की प्रेयसी पृथ्वीदेवी ! तुमने ऐसी कौन-सी तपस्या की है कि श्रीकृष्णके चरणकमलोंका स्पर्श प्राप्त करके तुम आनन्दसे भर रही हो और तृण-लता आदिके रूपमें अपना रोमाञ्च प्रकट कर रही हो ? तुम्हारा यह उल्लास-विलास श्रीकृष्णके चरणस्पर्शके कारण है अथवा वामनावतारमें विश्वरूप धारण करके उन्होंने तुम्हें जो नापा था, उसके कारण है ? कहीं उनसे भी पहले वराहभगवान्‌के अङ्ग-सङ्गके कारण तो तुम्हारी यह दशा नहीं हो रही है ?' ॥ १० ॥ 'अरी सखी ! हरिनियो ! हमारे श्यामसुन्दरके अङ्ग-सङ्गसे सुषमा-सौन्दर्यकी धारा बहती रहती है, वे कहीं अपनी प्राणप्रियाके साथ तुम्हारे नयनोंको परमानन्दका दान करते हुए इधरसे ही तो नहीं गये हैं ? देखो, देखो; यहाँ कुलपति श्रीकृष्णकी कुन्दकलीकी मालाकी मनोहर गन्ध आ रही है, जो उनकी परम प्रेयसीके अङ्ग-सङ्गसे लगे हुए कुच-कुङ्कुमसे अनुरञ्जित रहती है' ॥ ११ ॥ 'तरुवरो ! उनकी मालाकी तुलसीमें ऐसी सुगन्ध है कि उसकी गन्धके लोभी मतवाले भौंरे प्रत्येक क्षण उसपर मँडराते रहते हैं । उनके एक हाथमें लीलाकमल होगा और दूसरा हाथ अपनी प्रेयसीके कंधेपर रक्खे होंगे । हमारे प्यारे श्यामसुन्दर इधरसे विचरते हुए अवश्य गये होंगे । जान पड़ता है, तुमलोग उन्हें प्रणाम करनेके लिये ही झुके हो । परन्तु उन्होंने अपनी प्रेमभरी चितवनसे भी तुम्हारी वन्दनाका अभिनन्दन किया है या नहीं ?' ॥ १२ ॥ 'अरी सखी ! इन लताओंसे पूछो । ये अपने पति वृक्षोंको भुजपाशमें बाँधकर आलिङ्गन किये हुए हैं, इससे क्या हुआ ? इनके शरीरमे जो पुलक है, रोमाञ्च हैं, वह तो भगवान्‌के नखोंके स्पर्शसे ही है । अहो ! इनका कैसा सौभाग्य है !' ॥ १३ ॥

परीक्षित् ! इस प्रकार मतवाली गोपियाँ प्रलाप करती हुई भगवान् श्रीकृष्णको ढूँढ़ते-ढूँढ़ते कातर हो रही थीं । अब और भी गाढ़ आवेश हो जानेके कारण वे भगवन्मय होकर भगवान्‌की विभिन्न लीलाओंका अनुकरण करने लगीं ॥ १४ ॥ एक पूतना बन गयी, तो दूसरी श्रीकृष्ण बनकर उसका स्तन पीने लगी । कोई छकड़ा बन गयी, तो किसीने बालकृष्ण बनकर रोते हुए उसे पैरकी ठोकर मारकर उलट दिया ॥१५॥ कोई सखी बालकृष्ण बनकर बैठ गयी तो कोई तृणावर्त दैत्यका रूप धारण करके उसे हर ले गयी । कोई गोपी पाँव घसीट-घसीटकर घुटनोंके बल बकैयाँ चलने लगी और उस समय उसके पायजेब रुनझुन-रुनझुन बोलने लगे ।१६। एक बनी कृष्ण, तो दूसरी बनी बलराम, और बहुत-सी गोपियाँ ग्वालबालोंके रूपमें हो गयीं । एक गोपी बन गयी वत्सासुर, तो दूसरी बनी बकासुर । तब तो गोपियोंने अलग-अलग श्रीकृष्ण बनकर वत्सासुर और बकासुर बनी हुई गोपियोंको मारनेकी लीला की ॥१७॥ जैसे श्रीकृष्ण वनमे करते थे, वैसे ही एक गोपी बाँसुरी बजा-बजाकर दूर गये हुए पशुओंको

बुलानेका खेल खेलने लगी । तब दूसरी गोपियाँ 'वाह-वाह' करके उसकी प्रशंसा करने लगीं ॥ १८ ॥ एक गोपी अपनेको श्रीकृष्ण समझकर दूसरी सखीके गलेमें बाँह डालकर चलती और गोपियोंसे कहने लगती—'मित्रो ! मैं श्रीकृष्ण हूँ ! तुमलोग मेरी यह मनोहर चाल देखो' ॥ १९ ॥ कोई गोपी श्रीकृष्ण बनकर कहती—'अरे व्रजवासियो ! तुम आँधी-पानीसे मत डरो । मैंने उससे बचनेका उपाय निकाल लिया है ।' ऐसा कहकर गोवर्धन-धारणका अनुकरण करती हुई वह अपनी ओढ़नी उठाकर ऊपर तान लेती ॥ २० ॥ परीक्षित् ! एक गोपी बनी कालिय नाग, तो दूसरी श्रीकृष्ण बनकर उसके सिरपर पैर रखकर चढ़ी-चढ़ी बोलने लगी—'रे दुष्ट साँप ! तू यहाँसे चला जा । मैं दुष्टोंका दमन करनेके लिये ही उत्पन्न हुआ हूँ' ॥ २१ ॥ इतनेमें ही एक गोपी बोली—'अरे ग्वालो ! देखो, वनमें बड़ी भयङ्कर आग लगी है । तुमलोग जल्दी-से-जल्दी अपनी आँखें मूँद लो, मैं अनायास ही तुमलोगोंकी रक्षा कर लूँगा' ॥ २२ ॥ एक गोपी यशोदा बनी और दूसरी बनी श्रीकृष्ण । यशोदाने फूलोंकी मालासे श्रीकृष्णको ऊखलमें बाँध दिया । अब वह श्रीकृष्ण बनी हुई सुन्दरी गोपी हाथोंसे मुँह ढाँपकर भयकी नकल करने लगी ॥२३॥

परीक्षित् ! इस प्रकार लीला करते-करते गोपियाँ वृन्दावनके वृक्ष और लता आदिसे फिर भी श्रीकृष्णका पता पूछने लगीं । इसी समय उन्होंने एक स्थानपर भगवान्‌के चरणचिह्न देखे ॥ २४ ॥ वे आपसमें कहने लगीं—'अवश्य ही ये चरणचिह्न उदारशिरोमणि नन्द-नन्दन श्यामसुन्दरके हैं; क्योंकि इनमें ध्वजा, कमल, वज्र, अङ्कुश और जौ आदिके चिह्न स्पष्ट ही दीख रहे हैं' ॥२५॥ उन चरणचिह्नोंके द्वारा व्रजवल्लभ भगवान्‌को ढूँढ़ती हुई गोपियाँ आगे बढ़ीं, तब उन्हें श्रीकृष्णके साथ किसी व्रजयुवतीके भी चरणचिह्न दीख पड़े । उन्हें देखकर वे व्याकुल हो गयीं और आपसमें कहने लगीं—॥ २६ ॥ 'जैसे हथिनी अपने प्रियतम गजराजके साथ गयी हो, वैसे ही नन्दनन्दन श्यामसुन्दरके साथ उनके कंधेपर हाथ रखकर चलनेवाली किस बड़-भागिनीके ये चरणचिह्न हैं ? ॥ २७ ॥ अवश्य ही सर्व-शक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्णकी यह 'आराधिका' होगी । इसीलिये इसपर प्रसन्न होकर हमारे प्राणप्यारे श्यामसुन्दरने हमें छोड़ दिया है और इसे एकान्तमें ले गये हैं ॥ २८ ॥ प्यारी सखियो ! भगवान् श्रीकृष्ण अपने चरणकमलसे जिस रजका स्पर्श कर देते हैं, वह धन्य हो जाती है, उसके अहोभाग्य हैं ! क्योंकि ब्रह्मा, शङ्कर और लक्ष्मी आदि भी अपने अशुभ नष्ट करनेके लिये उस रजको अपने सिरपर धारण करते हैं' ॥ २९ ॥ 'अरी सखी ! चाहे कुछ भी हो—यह जो सखी हमारे सर्वस्व श्रीकृष्णको एकान्तमें ले जाकर अकेले ही उनकी अधर-सुधाका रस पी रही है, इस गोपीके उभरे हुए चरणचिह्न तो हमारे हृदयमें बड़ा ही क्षोभ उत्पन्न कर रहे हैं' ॥३०॥ यहाँ उस गोपीके पैर नहीं दिखलायी देते । मालूम होता है, यहाँ प्यारे श्यामसुन्दरने देखा होगा कि मेरी प्रेयसीके सुकुमार चरणकमलोंमें घासकी नोक गड़ती होगी; इसलिये उन्होंने उसे अपने कंधेपर चढ़ा लिया होगा ॥ ३१ ॥ सखियो ! यहाँ देखो, प्यारे श्रीकृष्णके चरणचिह्न अधिक गहरे—बालूमें धँसे हुए हैं । इससे सूचित होता है कि यहाँ वे किसी भारी वस्तुको उठाकर चले हैं, उसीके बोझसे उनके पैर जमीनमें धँस गये हैं । हो-न-हो यहाँ उस कामीने अपनी प्रियतमाको अवश्य कंधेपर चढ़ाया होगा ॥ ३२ ॥ देखो-देखो, यहाँ परमप्रेमी व्रजवल्लभने फूल चुननेके लिये अपनी प्रेयसीको नीचे उतार दिया है और यहाँ परम प्रियतम श्रीकृष्णने अपनी प्रेयसीके लिये फूल चुने हैं । उचक-उचककर फूल तोड़नेके कारण यहाँ उनके पंजे तो धरतीमें गड़े हुए हैं और एड़ीका पता ही नहीं है ॥ ३३ ॥ परम प्रेमी श्रीकृष्णने कामी पुरुषके समान यहाँ अपनी प्रेयसीके केश सँवारे हैं । देखो, अपने चुने हुए फूलोंको प्रेयसीकी चोटीमें गूँथनेके लिये वे यहाँ अवश्य ही बैठे रहे होंगे' ॥३४॥ परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्ण आत्माराम हैं । वे अपने-आपमें ही सन्तुष्ट और पूर्ण हैं । जब वे अखण्ड हैं, उनमें दूसरा कोई है ही नहीं, तब उनमें कामकी कल्पना कैसे हो सकती है ? फिर भी उन्होंने कामियोंकी दीनता—स्त्रीपरवशता और स्त्रियोंकी कुटिलता दिखलाते हुए वहाँ उस गोपीके साथ एकान्तमें क्रीडा की थी—एक खेल रचा था ॥ ३५ ॥

इस प्रकार गोपियाँ मतवाली-सी होकर— अपनी सुध-बुध खोकर एक दूसरेको भगवान् श्रीकृष्णके चरणचिह्न
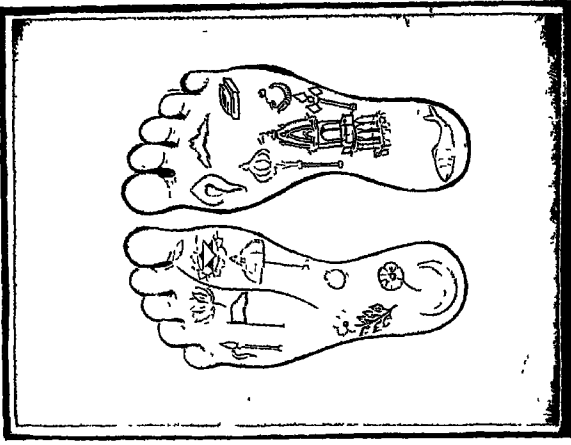
श्रीकृष्ण-चरण
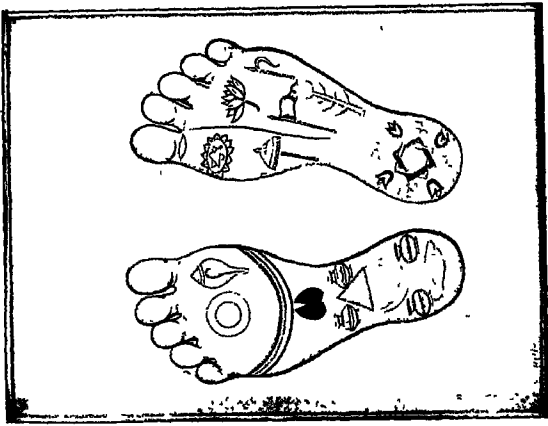
श्रीराधा-चरण

तन्मयता

दिखलाती हुई वन-वनमें भटक रही थीं। इधर भगवान् श्रीकृष्ण दूसरी गोपियोंको वनमें छोड़कर जिस भाग्यवती गोपीको एकान्तमें ले गये थे, उसने समझा कि 'मैं ही समस्त गोपियोंमें श्रेष्ठ हूँ। इसीलिये तो हमारे प्यारे श्रीकृष्ण दूसरी गोपियोंको छोड़कर, जो उन्हें इतना चाहती हैं, केवल मेरा ही मान करते हैं। मुझे ही आदर दे रहे हैं ॥३६-३७॥ भगवान् श्रीकृष्ण ब्रह्मा और शङ्करके भी शासक हैं। वह गोपी वनमें जाकर अपने प्रेम और सौभाग्यके मदसे मतवाली हो गयी और उन्हीं श्रीकृष्णसे कहने लगी—प्यारे! मुझसे अब तो और नहीं चला जाता। मेरे सुकुमार पाँव थक गये हैं। अब तुम जहाँ चलना चाहो, मुझे अपने कंधेपर चढ़ाकर ले चलो' ॥ ३८ ॥ अपनी प्रियतमाकी यह बात सुनकर श्यामसुन्दरने कहा—'अच्छा प्यारी! तुम अब मेरे कंधेपर चढ़ लो।' यह सुनकर वह गोपी ज्यों ही उनके कंधेपर चढ़ने चली, त्यों ही श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये और वह सौभाग्यवती गोपी रोने-पछताने लगी ॥ ३९ ॥ 'हा नाथ! हा रमण! हा प्रेष्ठ! हा महाभुज! तुम कहाँ हो! कहाँ हो!! मेरे सखा! मैं तुम्हारी दीन-हीन दासी हूँ। शीघ्र ही मुझे अपने सान्निध्यका अनुभव कराओ, मुझे दर्शन दो' ॥ ४० ॥ परीक्षित्! गोपियाँ भगवान्‌के चरणचिह्नोंके सहारे उनके जाने-का मार्ग ढूँढ़ती-ढूँढ़ती वहाँ जा पहुँचीं। थोड़ी दूरसे ही उन्होंने देखा कि उनकी सखी अपने प्रियतमके वियोगसे दुखी होकर अचेत हो गयी है ॥ ४१ ॥ जब उन्होंने उसे जगाया, तब उसने भगवान् श्रीकृष्णसे उसे जो प्यार और सम्मान प्राप्त हुआ था, वह उनको सुनाया। उसने यह भी कहा कि मैंने कुटिलतावश उनका अपमान किया, इसीसे वे अन्तर्धान हो गये।' उसकी बात सुनकर गोपियोंके आश्चर्यकी सीमा न रही ॥४२॥

इसके बाद वनमें जहाँतक चन्द्रदेवकी चाँदनी छिटक रही थी, वहाँतक वे उन्हें ढूँढ़ती हुई गयीं। परन्तु जब उन्होंने देखा कि आगे घना अन्धकार है—घोर जंगल है—हम ढूँढ़ती जायँगी तो श्रीकृष्ण और भी उसके अंदर घुस जायँगे, तब वे उधरसे लौट आयीं ॥ ४३ ॥ परीक्षित्! गोपियोंका मन श्रीकृष्णमय हो गया था। उनकी वाणीसे कृष्णचर्चाके अतिरिक्त और कोई बात नहीं निकलती थी। उनके शरीरसे केवल श्रीकृष्णके लिये और केवल श्रीकृष्णकी चेष्टाएँ हो रही थीं। कहाँतक कहूँ; उनका रोम-रोम, उनकी आत्मा श्रीकृष्णमय हो रही थी। वे केवल उनके गुणों और लीलाओंका ही गान कर रही थीं और उनमें इतनी तन्मय हो रही थीं कि उन्हें अपने शरीरकी भी सुध नहीं थी, फिर घरकी याद कौन करता! ॥ ४४ ॥ गोपियोंका रोम-रोम इस बातकी प्रतीक्षा और आकाङ्क्षा कर रहा था कि जल्दी-से-जल्दी श्रीकृष्ण आयें। श्री-कृष्णकी ही भावनामें डूबी हुई गोपियाँ यमुनाजीके पावन पुलिनपर—रमणरेतीमें लौट आयीं और एक साथ मिल-कर श्रीकृष्णके गुणोंका गान करने लगीं ॥ ४५ ॥

इकतीसवाँ अध्याय

गोपिकागीत

गोपियाँ विरहावेशमें गाने लगीं—'प्यारे! तुम्हारे जन्मके कारण वैकुण्ठ आदि लोकोंसे भी व्रजकी महिमा बढ़ गयी है। तभी तो सौन्दर्य और मृदुलताकी देवी लक्ष्मीजी अपना निवासस्थान वैकुण्ठ छोड़कर यहाँ नित्य-निरन्तर निवास करने लगी हैं, इसकी सेवा करने लगी हैं। परन्तु प्रियतम! देखो तुम्हारी गोपियाँ जिन्होंने तुम्हारे चरणोंमें ही अपने प्राण समर्पित कर रखे हैं, वन-वनमें भटककर तुम्हें ढूँढ़ रही हैं ॥ १ ॥ हमारे प्रेमपूर्ण हृदयके स्वामी! हम तुम्हारी बिना मोलकी दासी हैं। तुम शरत्कालीन जलाशयमें सुन्दर-से-सुन्दर सरसिज-की कर्णिकाके सौन्दर्यको चुरानेवाले नेत्रोंसे हमें घायल कर चुके हो। हमारे मनोरथ पूर्ण करनेवाले प्राणेश्वर! क्या नेत्रोंसे मारना वध नहीं है? अस्त्रोंसे हत्या करना ही वध है? ॥ २ ॥ पुरुषशिरोमणे! यमुनाजीके विषैले-जलसे होनेवाली मृत्यु अजगरके रूपमें खानेवाले अघासुर, इन्द्रकी वर्षा, आँधी, बिजली, दावानल, वृषभासुर और व्योमा-सुर आदिसे एवं भिन्न-भिन्न अवसरोंपर सब प्रकारके भयोंसे तुमने बार-बार हमलोगोंकी रक्षा की है ॥ ३ ॥

तुम केवल यशोदानन्दन ही नहीं हो; समस्त शरीरधारियोंके हृदयमें रहनेवाले उनके साक्षी हो, अन्तर्यामी हो। सखे! ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे विश्वकी रक्षा करनेके लिये तुम यदुवंशमें अवतीर्ण हुए हो ॥ ४ ॥

अपने प्रेमियोंकी अभिलाषा पूर्ण करनेवालोंमें अग्रगण्य यदुवंशशिरोमणे! जो लोग जन्म-मृत्युरूप संसारके चक्करसे डरकर तुम्हारे चरणोंकी शरण ग्रहण करते हैं, उन्हें तुम्हारे करकमल अपनी छत्रछायामें लेकर अभय कर देते हैं। हमारे प्रियतम! सबकी लालसा-अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाला वही करकमल, जिससे तुमने लक्ष्मीजीका हाथ पकड़ा है, हमारे सिरपर रख दो ॥ ५ ॥ व्रजवासियोंके दुःख दूर करनेवाले वीर-शिरोमणि श्यामसुन्दर! तुम्हारी मन्द-मन्द मुसकानकी एक उज्ज्वल रेखा ही तुम्हारे प्रेमीजनोंके सारे मान-मदको चूर-चूर कर देनेके लिये पर्याप्त है। हमारे प्यारे सखा! हमसे रूठो मत, प्रेम करो। हम तो तुम्हारी दासी हैं, तुम्हारे चरणोंपर निछावर हैं। हम अबलाओंको अपना वह परम सुन्दर साँवला-साँवला मुखकमल दिखलाओ ॥६॥ तुम्हारे चरणकमल शरणागत प्राणियोंके सारे पापोंको नष्ट कर देते है। वे समस्त सौन्दर्य, माधुर्यकी खान हैं और स्वयं लक्ष्मीजी उनकी सेवा करती रहती हैं। तुम उन्हीं चरणोंसे हमारे बछड़ोंके पीछे-पीछे चलते हो और हमारे लिये उन्हें साँपके फणोंतकपर रखनेमें भी तुमने सङ्कोच नहीं किया। हमारा हृदय तुम्हारी विरह-व्यथाकी आगसे जल रहा है, तुम्हारी मिलनकी आकाङ्क्षा हमें सता रही है। तुम अपने वे ही चरण हमारे वक्षःस्थलपर रखकर हमारे हृदयकी ज्वालाको शान्त कर दो ॥ ७ ॥ कमलनयन! तुम्हारी वाणी कितनी मधुर है! उसका एक-एक पद, एक-एक शब्द, एक-एक अक्षर मधुरातिमधुर है। बड़े-बड़े विद्वान् उसमें रम जाते हैं। उसपर अपना सर्वस्व निछावर कर देते हैं। तुम्हारी उसी वाणीका रसास्वादन करके तुम्हारी आज्ञाकारिणी दासी गोपियाँ मोहित हो रही हैं। दानवीर! अब तुम अपना दिव्य अमृतसे भी मधुर अधर-रस पिलाकर हमें जीवन-दान दो, छका दो ॥ ८ ॥ प्रभो! तुम्हारी लीलाकथा भी अमृतस्वरूप है। विरहसे सताये हुए लोगोंके लिये तो वह जीवन-सर्वस्व ही है। बड़े-बड़े ज्ञानी महात्माओं—भक्त कवियोंने उसका गान किया है, वह सारे पाप-ताप तो मिटाती ही है, साथ ही श्रवणमात्रसे परम मङ्गल—परम कल्याणका दान भी करती है। वह परम सुन्दर, परम मधुर और बहुत विस्तृत भी है। जो तुम्हारी उस लीला-कथाका गान करते हैं, वास्तवमें भूलोकमें वे ही सबसे बड़े दाता हैं ॥९॥ प्यारे! एक दिन वह था, जब तुम्हारी प्रेमभरी हँसी और चितवन तथा तुम्हारी तरह-तरहकी क्रीडाओंका ध्यान करके हम आनन्दमें मग्न हो जाया करती थीं। उनका ध्यान भी परम मङ्गलदायक है, उसके बाद तुम मिले। तुमने एकान्तमें हृदयस्पर्शी ठिठोलियाँ कीं, प्रेमकी बातें कहीं। हमारे कपटी मित्र! अब वे सब बातें याद आकर हमारे मनको क्षुब्ध किये देती हैं ॥ १० ॥

हमारे प्यारे स्वामी! तुम्हारे चरण कमलसे भी सुकोमल और सुन्दर हैं। जब तुम गौओंको चरानेके लिये व्रजसे निकलते हो तब यह सोचकर कि तुम्हारे वे युगल चरण कंकड़, तिनके और कुश-काँटे गड़ जानेसे कष्ट पाते होंगे, हमारा मन बेचैन हो जाता है। हमें बड़ा दुःख होता है ॥ ११ ॥ दिन ढलनेपर जब तुम वनसे घर लौटते हो, तो हम देखती हैं कि तुम्हारे मुखकमलपर नीली-नीली अलकें लटक रही हैं और गौओंके खुरसे उड़-उड़कर घनी धूल पड़ी हुई है। हमारे वीर प्रियतम! तुम अपना वह सौन्दर्य हमें दिखा-दिखाकर हमारे हृदयमें मिलनकी आकाङ्क्षा—प्रेम उत्पन्न करते हो ॥ १२ ॥ प्रियतम! एकमात्र तुम्हीं हमारे सारे दुःखोंको मिटानेवाले हो। तुम्हारे चरणकमल शरणागत भक्तोंकी समस्त अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाले हैं। स्वयं लक्ष्मीजी उनकी सेवा करती हैं और पृथ्वीके तो वे भूषण ही हैं। आपत्तिके समय एकमात्र उन्हींका चिन्तन करना उचित है, जिससे सारी आपत्तियाँ कट जाती हैं। कुञ्जविहारी! तुम अपने वे परम कल्याणस्वरूप चरणकमल हमारे वक्षःस्थलपर रखकर हृदयकी व्यथा शान्त कर दो ॥ १३ ॥ वीरशिरोमणे! तुम्हारा अधरामृत मिलनके सुखको, आकाङ्क्षाको बढ़ानेवाला है। वह विरहजन्य समस्त शोक-सन्तापको नष्ट कर देता है। यह गानेवाली

बाँसुरी भलीभाँति उसे चूमती रहती है। जिन्होंने एक बार उसे पी लिया, उन लोगोंको फिर दूसरों और दूसरोंकी आसक्तियोंका स्मरण भी नहीं होता। हमारे वीर! अपना वही अधरामृत हमें वितरण करो, पिलाओ ॥ १४ ॥ प्यारे! दिनके समय जब तुम वनमें विहार करनेके लिये चले जाते हो, तब तुम्हें देखे बिना हमारे लिये एक-एक क्षण युगके समान हो जाता है और जब तुम सन्ध्याके समय लौटते हो तथा घुँघराली अलकोंसे युक्त तुम्हारा परम सुन्दर मुखारविन्द हम देखती हैं, उस समय पलकोंका गिरना हमारे लिये भार हो जाता है और ऐसा जान पड़ता है कि इन नेत्रोंकी पलकोंको बनानेवाला विधाता मूर्ख है ॥ १५ ॥ प्यारे श्यामसुन्दर! हम अपने पति-पुत्र, भाई-बन्धु और कुल-परिवारका त्याग कर, उनकी इच्छा और आज्ञाओंका उल्लङ्घन करके तुम्हारे पास आयी हैं। हम तुम्हारी एक-एक चाल जानती हैं, सङ्केत समझती हैं और तुम्हारे मधुर गानकी गति समझकर, उसीसे मोहित होकर यहाँ आयी हैं। कपटी! इस प्रकार रात्रिके समय आयी हुई युवतियोंको तुम्हारे सिवा और कौन छोड़ सकता है ॥१६॥ प्यारे! एकान्तमें तुम मिलनकी आकाङ्क्षा, प्रेम-भावको जगानेवाली बातें करते थे। ठिठोली करके हमे छेड़ते थे। तुम प्रेमभरी चितवनसे हमारी ओर देखकर मुसकरा देते थे और हम देखती थीं तुम्हारा वह विशाल वक्षःस्थल, जिसपर लक्ष्मीजी नित्य-निरन्तर निवास करती हैं। तबसे अबतक निरन्तर हमारी लालसा बढ़ती ही जा रही है और हमारा मन अधिकाधिक मुग्ध होता जा रहा है ॥ १७ ॥ प्यारे! तुम्हारी यह अभिव्यक्ति व्रज-वनवासियोंके सम्पूर्ण दुःख-तापको नष्ट करनेवाली और विश्वका पूर्ण मङ्गल करनेके लिये है। हमारा हृदय तुम्हारे प्रति लालसासे भर रहा है। कुछ थोड़ी-सी ऐसी ओषधि दो, जो तुम्हारे निजजनों-के हृदयरोगको सर्वथा निर्मूल कर दे ॥ १८ ॥ तुम्हारे चरण कमलसे भी सुकुमार हैं। उन्हें हम अपने कठोर स्तनोंपर भी डरते-डरते बहुत धीरेसे रखती हैं कि कहीं उन्हें चोट न लग जाय। उन्हीं चरणोंसे तुम रात्रिके समय घोर जंगलमें छिपे-छिपे भटक रहे हो! क्या कंकड़, पत्थर आदिकी चोट लगनेसे उनमें पीड़ा नहीं होती? हमें तो इसकी सम्भावनामात्रसे ही चक्कर आ रहा है। हम अचेत होती जा रही हैं। श्रीकृष्ण! श्यामसुन्दर! प्राणनाथ! हमारा जीवन तुम्हारे लिये है, हम तुम्हारे लिये जी रही हैं, हम तुम्हारी हैं ॥ १९ ॥

बत्तीसवाँ अध्याय

भगवान्‌का प्रकट होकर गोपियोंको सान्त्वना देना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान्‌की प्यारी गोपियाँ विरहके आवेशमें इस प्रकार भाँति-भाँतिसे गाने और प्रलाप करने लगीं। अपने कृष्ण प्यारेके दर्शनकी लालसासे वे अपनेको रोक न सकीं, करुणा-जनक सुमधुर स्वरसे फूट-फूटकर रोने लगीं ॥ १ ॥ ठीक उसी समय उनके बीचोबीच भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हो गये। उनका मुखकमल मन्द-मन्द मुसकानसे खिला हुआ था। गलेमें वनमाला थी, पीताम्बर धारण किये हुए थे। उनका यह रूप क्या था, सबके मनको मथ डालनेवाले कामदेवके मनको भी मथनेवाला था ॥ २ ॥ कोटि-कोटि कामोंसे भी सुन्दर परम मनोहर प्राण-वल्लभ श्यामसुन्दरको आया देख गोपियोंके नेत्र प्रेम और आनन्दसे खिल उठे। वे सब-की-सब एक ही साथ इस प्रकार उठ खड़ी हुईं, मानो प्राणहीन शरीरमें दिव्य प्राणोंका सञ्चार हो गया हो, शरीरके एक एक अङ्गमें नवीन चेतना—नूतन स्फूर्ति आ गयी हो ॥ ३ ॥ एक गोपीने बड़े प्रेम और आनन्दसे श्रीकृष्णके करकमलको अपने दोनों हाथोंमें ले लिया और वह धीरे-धीरे उसे सहलाने लगी। दूसरी गोपीने उनके चन्दनचर्चित भुजदण्डको अपने कंधेपर रख लिया ॥ ४ ॥ तीसरी सुन्दरीने भगवान्‌का चबाया हुआ पान अपने हाथोंमें ले लिया। चौथी गोपी, जिसके हृदयमें

भगवान्‌के विरहसे बड़ी जलन हो रही थी, बैठ गयी और उनके चरणकमलको अपने वक्षःस्थलपर रख लिया ॥ ५ ॥ पाँचवीं गोपी प्रणयकोपसे विह्वल होकर, भौंहें चढ़ाकर, दाँतोंसे होंठ दबाकर अपने कटाक्ष-बाणोंसे बींधती हुई उनकी ओर ताकने लगी ॥ ६ ॥ छठी गोपी अपने निर्निमेष नयनोंसे उनके मुखकमलका मकरन्द-रस पान करने लगी। परन्तु जैसे संत पुरुष भगवान्‌के चरणोंके दर्शनसे कभी तृप्त नहीं होते, वैसे ही वह उनकी मुख-माधुरीका निरन्तर पान करते रहनेपर भी तृप्त नहीं होती थी ॥ ७ ॥ सातवीं गोपी नेत्रोंके मार्गसे भगवान्‌को अपने हृदयमें ले गयी और फिर उसने आँखें बंद कर लीं। अब मन-ही-मन भगवान्‌का आलिङ्गन करनेसे उसका शरीर पुलकित हो गया। रोम-रोम खिल उठा और वह सिद्ध योगियोंके समान परमानन्दमें मग्न हो गयी ॥ ८ ॥ परीक्षित्! जैसे मुमुक्षुजन परम ज्ञानी संत पुरुषको प्राप्त करके संसारकी पीड़ासे मुक्त हो जाते हैं, वैसे ही सभी गोपियोंको भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनसे परम आनन्द और परम उल्लास प्राप्त हुआ। उनके विरहके कारण गोपियोंको जो दुःख हुआ था, उससे वे मुक्त हो गयीं और शान्तिके समुद्रमें डूबने-उतराने लगीं ॥ ९ ॥ परीक्षित्! यों तो भगवान् श्रीकृष्ण अच्युत और एकरस हैं, उनका सौन्दर्य और माधुर्य निरतिशय है; फिर भी विरह-व्यथासे मुक्त हुई गोपियोंके बीचमें उनकी शोभा और भी बढ़ गयी। ठीक वैसे ही, जैसे परमेश्वर अपने नित्य ज्ञान, बल आदि शक्तियोंसे सेवित होनेपर और भी शोभायमान होता है ॥ १० ॥

इसके बाद भगवान् श्रीकृष्णने उन व्रजसुन्दरियोंको साथ लेकर यमुनाजीके पुलिनमें प्रवेश किया। उस समय खिले हुए कुन्द और मन्दारके पुष्पोंकी सुरभि लेकर बड़ी ही शीतल और सुगन्धित मन्द-मन्द वायु चल रही थी और उसकी महँकसे मतवाले होकर भौंरे इधर-उधर मँडरा रहे थे ॥ ११ ॥ शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमाकी चाँदनी अपनी निराली ही छटा दिखला रही थी। उसके कारण रात्रिके अन्धकारका तो कहीं पता ही न था, सर्वत्र आनन्द-मङ्गलका ही साम्राज्य छाया था। वह पुलिन क्या था, यमुनाजीने स्वयं अपनी लहरोंके हाथों भगवान्‌की लीलाके लिये सुकोमल बालुकाका रंगमञ्च बना रक्खा था ॥ १२ ॥ परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनसे गोपियोंके हृदयमें इतने आनन्द और इतने रसका उल्लास हुआ कि उनके हृदयकी सारी आधि-व्याधि मिट गयी। जैसे कर्मकाण्डकी श्रुतियाँ उसका वर्णन करते-करते अन्तमें ज्ञानकाण्डका प्रतिपादन करने लगती है और फिर वे समस्त मनोरथोंसे ऊपर उठ जाती हैं, कृतकृत्य हो जाती हैं—वैसे ही गोपियाँ भी पूर्णकाम हो गयीं। अब उन्होंने अपने वक्षःस्थलपर लगी हुई रोली-केसरसे चिह्नित ओढ़नीको अपने परम प्यारे सुहृद् श्रीकृष्णके विराजनेके लिये बिछा दिया ॥ १३ ॥ बड़े-बड़े योगेश्वर अपने योग-साधनसे पवित्र किये हुए हृदयमें जिनके लिये आसनकी कल्पना करते रहते है, किन्तु फिर भी अपने हृदय-सिंहासनपर बिठा नहीं पाते, वही सर्वशक्तिमान् भगवान् यमुनाजीकी रेतीमें गोपियोंकी ओढ़नीपर बैठ गये। सहस्र-सहस्र गोपियोंके बीचमें उनसे पूजित होकर भगवान् बड़े ही शोभायमान हो रहे थे। परीक्षित्! तीनों लोकोंमें—तीनों कालोंमें जितना भी सौन्दर्य प्रकाशित होता है, वह सब तो भगवान्‌के बिन्दुमात्र सौन्दर्यका आभासभर है। वे उसके एकमात्र आश्रय हैं ॥ १४ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण अपने इस अलौकिक सौन्दर्यके द्वारा उनके प्रेम और आकाङ्क्षाको और भी उभाड़ रहे थे। गोपियोंने अपनी मन्द-मन्द मुसकान, विलासपूर्ण चितवन और तिरछी भौंहोंसे उनका सम्मान किया। किसीने उनके चरणकमलोंको अपनी गोदमें रख लिया, तो किसीने उनके करकमलोंको। वे उनके संस्पर्शका आनन्द लेती हुई कभी-कभी कह उठती थीं—कितना सुकुमार है, कितना मधुर है! इसके बाद श्रीकृष्णके छिप जानेसे मन-ही-मन तनिक रूठकर उनके मुँहसे ही उनका दोष स्वीकार करानेके लिये वे कहने लगीं—॥ १५ ॥

गोपियोंने कहा—नटनागर! कुछ लोग तो ऐसे होते हैं, जो प्रेम करनेवालोंसे ही प्रेम करते हैं और कुछ लोग प्रेम न करनेवालोंसे भी प्रेम करते हैं। परन्तु

कोई-कोई दोनोंसे ही प्रेम नहीं करते। प्यारे! इन तीनोंमें तुम्हें कौन-सा अच्छा लगता है? ॥ १६ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—मेरी प्रिय सखियो! जो प्रेम करनेपर प्रेम करते हैं, उनका तो सारा उद्योग स्वार्थको लेकर है। लेन-देनमात्र है। न तो उनमें सौहार्द है और न तो धर्म। उनका प्रेम केवल स्वार्थके लिये ही है; इसके अतिरिक्त उनका और कोई प्रयोजन नहीं है ॥ १७ ॥ सुन्दरियो! जो लोग प्रेम न करनेवालेसे भी प्रेम करते हैं—जैसे स्वभावसे ही करुणाशील सज्जन और माता-पिता—उनका हृदय सौहार्दसे, हितैषितासे भरा रहता है और सच पूछो, तो उनके व्यवहारमें निश्छल सत्य एवं पूर्ण धर्म भी है ॥ १८ ॥ कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो प्रेम करनेवालोंसे भी प्रेम नहीं करते, न प्रेम करनेवालोंका तो उनके सामने कोई प्रश्न ही नहीं है। ऐसे लोग चार प्रकारके होते हैं। एक तो वे, जो अपने स्वरूपमें ही मस्त रहते हैं—जिनकी दृष्टिमें कभी द्वैत भासता ही नहीं। दूसरे वे, जिन्हें द्वैत तो भासता है, परन्तु जो कृतकृत्य हो चुके हैं; उनका किसीसे कोई प्रयोजन ही नही है। तीसरे वे है, जो जानते ही नहीं कि हमसे कौन प्रेम करता है; और चौथे वे हैं, जो जान-बूझकर अपना हित करनेवाले परोपकारी गुरुतुल्य लोगोंसे भी द्रोह करते हैं, उनको सताना चाहते हैं ॥१९॥ गोपियो! मैं तो प्रेम करनेवालोंसे भी प्रेमका वैसा व्यवहार नहीं करता, जैसा करना चाहिये। मैं ऐसा केवल इसीलिये करता हूँ कि उनकी चित्तवृत्ति और भी मुझमें लगे, निरन्तर लगी ही रहे। जैसे निर्धन पुरुषको कभी बहुत-सा धन मिल जाय और फिर खो जाय तो उसका हृदय खोये हुए धनकी चिन्तासे भर जाता है, वैसे ही मैं भी मिल-मिलकर छिप-छिप जाता हूँ ॥२०॥ गोपियो! इसमें सन्देह नहीं कि तुम लोगोंने मेरे लिये लोक-मर्यादा, वेदमार्ग और अपने सगे सम्बन्धियोंको भी छोड़ दिया है। ऐसी स्थितिमें तुम्हारी मनोवृत्ति और कहीं न जाय, अपने सौन्दर्य और सुहागकी चिन्ता न करने लगे, मुझमें ही लगी रहे—इसीलिये परोक्षरूपसे तुम लोगोंसे प्रेम करता हुआ ही मैं छिप गया था। इसलिये तुमलोग मेरे प्रेममें दोष मत निकालो। तुम सब मेरी प्यारी हो और मैं तुम्हारा प्यारा हूँ ॥२१॥ मेरी प्यारी गोपियो! तुमने मेरे लिये घर-गृहस्थीकी उन बेड़ियोंको तोड़ डाला है, जिन्हें बड़े-बड़े योगी-यति भी नहीं तोड़ पाते। मुझसे तुम्हारा यह मिलन, यह आत्मिक संयोग सर्वथा निर्मल और सर्वथा निर्दोष है। यदि मैं अमर शरीरसे—अमर जीवनसे अनन्त कालतक तुम्हारे प्रेम, सेवा और त्यागका बदला चुकाना चाहूँ तो भी नहीं चुका सकता। मैं जन्म-जन्मके लिये तुम्हारा ऋणी हूँ। तुम अपने सौम्य स्वभावसे, प्रेमसे मुझे उऋण कर सकती हो। परन्तु मै तो तुम्हारा ऋणी ही हूँ ॥२२॥

तैंतीसवाँ अध्याय

महारास

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! गोपियाँ भगवान्‌की इस प्रकार प्रेमभरी सुमधुर वाणी सुनकर जो कुछ विरहजन्य ताप शेष था, उससे भी मुक्त हो गयीं और सौन्दर्य-माधुर्यनिधि प्राणप्यारेके अङ्ग-सङ्गसे सफल-मनोरथ हो गयीं ॥ १ ॥ भगवान् श्रीकृष्णकी प्रेयसी और सेविका गोपियाँ एक-दूसरेकी बाँह-में बाँह डाले खड़ी थीं। उन स्त्रीरत्नोंके साथ यमुनाजीके पुलिनपर भगवान्‌ने अपनी रसमयी रासक्रीडा प्रारम्भ की ॥ २ ॥ सम्पूर्ण योगोंके स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण दो-दो गोपियोंके बीचमे प्रकट हो गये और उनके गलेमें अपना हाथ डाल दिया। इस प्रकार एक गोपी और एक श्रीकृष्ण, यही क्रम था। सभी गोपियाँ ऐसा अनुभव करती थीं कि हमारे प्यारे तो हमारे ही पास है। इस प्रकार सहस्र-सहस्र गोपियोंसे शोभायमान भगवान् श्रीकृष्णका दिव्य रासोत्सव प्रारम्भ हुआ। उस समय आकाशमें शत-शत विमानोंकी भीड़ लग गयी। सभी देवता अपनी-अपनी पत्नियोंके साथ वहाँ आ पहुँचे। रासोत्सवके दर्शनकी लालसासे, उत्सुकतासे उनका मन उनके वशमे नहीं था ॥ ३-४ ॥ स्वर्गकी दिव्य दुन्दुभियाँ अपने-आप बज उठीं। स्वर्गीय पुष्पोकी वर्षा होने लगी। गन्धर्वगण अपनी-अपनी पत्नियोंके साथ भगवान्‌के निर्मल यशका गान करने लगे ॥ ५ ॥ रासमण्डलमें सभी गोपियाँ अपने

प्रियतम श्यामसुन्दरके साथ नृत्य करने लगीं। उनकी कलाइयोंके कंगन, पैरोंके पायजेब और करधनीके छोटे-छोटे घुँघरू एक साथ बज उठे। असंख्य गोपियाँ थीं, इसलिये यह मधुर ध्वनि भी बड़े ही जोरकी हो रही थी ॥ ६ ॥ यमुनाजीकी रमणरेतीपर व्रजसुन्दरियोंके बीचमें भगवान् श्रीकृष्णकी बड़ी अनोखी शोभा हुई। ऐसा जान पड़ता था, मानो अगणित पीली-पीली दमकती हुई सुवर्ण-मणियोंके बीचमें ज्योतिर्मयी नीलमणि चमक रही हो ॥ ७ ॥ नृत्यके समय गोपियाँ तरह-तरहसे ठुमुक-ठुमुककर अपने पाँव कभी आगे बढ़ातीं और कभी पीछे हटा लेतीं। कभी गतिके अनुसार धीरे-धीरे पाँव रखतीं, तो कभी बड़े वेगसे; कभी चाककी तरह घूम जातीं, कभी अपने हाथ उठा-उठाकर भाव बतातीं, तो कभी विभिन्न प्रकारसे उन्हें चमकातीं। कभी बड़े कलापूर्ण ढंगसे मुसकरातीं, तो कभी भौंहें मटकातीं। नाचते-नाचते उनकी पतली कमर ऐसी लचक जाती थी; मानो टूट गयी हो। झुकने, बैठने, उठने और चलनेकी फुर्तीसे उनके स्तन हिल रहे थे तथा वस्त्र उड़े जा रहे थे। कानोंके कुण्डल हिल-हिलकर कपोलोंपर आ जाते थे। नाचनेके परिश्रमसे उनके मुँहपर पसीनेकी बूँदें झलकने लगी थीं। केशोंकी चोटियाँ कुछ ढीली पड़ गयी थीं। नीवीकी गाँठें खुली जा रही थीं। इस प्रकार नटवर नन्दलालकी परम प्रेयसी गोपियाँ उनके साथ गा-गाकर नाच रही थीं। परीक्षित्! उस समय ऐसा जान पड़ता था, मानो बहुत-से श्रीकृष्ण तो साँवले-साँवले मेघ-मण्डल हैं और उनके बीच-बीचमें चमकती हुई गोरी गोपियाँ बिजली हैं। उनकी शोभा असीम थी ॥ ८ ॥ गोपियोंका जीवन भगवान्‌की रति है, प्रेम है। वे श्रीकृष्णसे सटकर नाचते-नाचते ऊँचे स्वरसे मधुर गान कर रही थीं। श्रीकृष्णका संस्पर्श पा-पाकर और भी आनन्दमग्न हो रही थीं। उनके राग-रागिनियोंसे पूर्ण गानसे यह सारा जगत् अब भी गूँज रहा है ॥९॥ कोई गोपी भगवान्‌के साथ—उनके स्वरमें स्वर मिलाकर गा रही थी। वह श्रीकृष्णके स्वरकी अपेक्षा और भी ऊँचे स्वरसे राग अलापने लगी। उसके विलक्षण और उत्तम स्वरको सुनकर वे बहुत ही प्रसन्न हुए और वाह-वाह करके उसकी प्रशंसा करने लगे। उसी रागको एक दूसरी सखीने ध्रुपदमें गाया। उसका भी भगवान्‌ने बहुत सम्मान किया ॥ १० ॥ एक गोपी नृत्य करते-करते थक गयी। उसकी कलाइयोंसे कंगन और चोटियोंसे बेलाके फूल खिसकने लगे। तब उसने अपने बगलमें ही खड़े मुरलीमनोहर श्यामसुन्दरके कंधेको अपनी बाँहसे कसकर पकड़ लिया ॥११॥ भगवान् श्रीकृष्णने अपना एक हाथ दूसरी गोपीके कंधेपर रख रक्खा था। वह स्वभावसे तो कमलके समान सुगन्धसे युक्त था ही, उसपर बड़ा सुगन्धित चन्दनका लेप भी था। उसकी सुगन्धसे वह गोपी पुलकित हो गयी, उसका रोम रोम खिल उठा। उसने झटसे उसे चूम लिया ॥१२॥ एक गोपी नृत्य कर रही थी। नाचनेके कारण उसके कुण्डल हिल रहे थे, उनकी छटासे उसके कपोल और भी चमक रहे थे। उसने अपने कपोलोंको भगवान् श्रीकृष्णके कपोलसे सटा दिया और भगवान्‌ने उसके मुँहमे अपना चबाया हुआ पान दे दिया ॥ १३ ॥ कोई गोपी नूपुर और करधनीके घुँघरुओंको झनकारती हुई नाच और गा रही थी। वह जब बहुत थक गयी, तब उसने अपने बगलमें ही खड़े श्यामसुन्दरके शीतल करकमलको अपने दोनों स्तनोंपर रख लिया ॥ १४ ॥

परीक्षित्! गोपियोंका सौभाग्य लक्ष्मीजीसे भी बढ़कर है। लक्ष्मीजीके परम प्रियतम एकान्त-वल्लभ भगवान् श्रीकृष्णको अपने परम प्रियतमके रूपमें पाकर गोपियाँ गान करती हुई उनके साथ विहार करने लगीं। भगवान् श्रीकृष्णने उनके गलोंको अपने भुजपाशमें बाँध रक्खा था, उस समय गोपियोंकी बड़ी अपूर्व शोभा थी ॥ १५ ॥ उनके कानोंमें कमलके कुण्डल शोभायमान थे। घुँघराली अलकें कपोलोंपर लटक रही थीं। पसीनेकी बूँदें झलकनेसे उनके मुखकी छटा निराली ही हो गयी थी। वे रासमण्डलमें भगवान् श्रीकृष्णके साथ नृत्य कर रही थीं। उनके कंगन और पायजेबोंके बाजे बज रहे थे। भौंरे उनके ताल-सुरमें अपना सुर मिलाकर गा रहे थे। और उनके जूड़ों और चोटियोंमे गुँथे हुए फूल गिरते जा रहे थे ॥१६॥ परीक्षित्! जैसे नन्हा सा शिशु निर्विकारभावसे अपनी परछाईंके साथ खेलता है, वैसे ही रमारमण भगवान् श्रीकृष्ण कभी उन्हें अपने हृदयसे लगा लेते, कभी

हाथसे उनका अङ्गस्पर्श करते, कभी प्रेमभरी तिरछी चितवनसे उनकी ओर देखते तो कभी लीलासे उन्मुक्त हँसी हँसने लगते। इस प्रकार उन्होंने व्रजसुन्दरियोंके साथ क्रीडा की, विहार किया ॥ १७ ॥ परीक्षित्! भगवान्के अङ्गोंका संस्पर्श प्राप्त करके गोपियोंकी इन्द्रियाँ प्रेम और आनन्दसे विह्वल हो गयीं। उनके केश बिखर गये। फूलोंके हार टूट गये और गहने अस्त-व्यस्त हो गये। वे अपने केश, वस्त्र और कंचुकीको भी पूर्णतया सम्हालनेमें असमर्थ हो गयीं ॥ १८ ॥ भगवान् श्रीकृष्णकी यह रासक्रीडा देखकर स्वर्गकी देवाङ्गनाएँ भी मिलनकी कामनासे मोहित हो गयीं और समस्त तारों तथा ग्रहोंके साथ चन्द्रमा चकित, विस्मित हो गये ॥ १९ ॥ परीक्षित्! यद्यपि भगवान् आत्माराम हैं—उन्हें अपने अतिरिक्त और किसीकी भी आवश्यकता नहीं है—फिर भी उन्होंने जितनी गोपियाँ थीं, उतने ही रूप धारण किये और खेल-खेलमें उनके साथ इस प्रकार विहार किया ॥ २० ॥ जब बहुत देरतक गान और नृत्य आदि विहार करनेके कारण गोपियाँ थक गयीं, तब करुणामय भगवान् श्रीकृष्णने बड़े प्रेमसे स्वयं अपने सुखद करकमलोंके द्वारा उनके मुँह पोंछे ॥ २१ ॥ परीक्षित्! भगवान्के करकमल और नखस्पर्शसे गोपियोंको बड़ा आनन्द हुआ। उन्होंने अपने उन कपोलोंके सौन्दर्यसे, जिनपर सोनेके कुण्डल झिलमिला रहे थे और घुँघराली अलकें लटक रही थीं, तथा उस प्रेमभरी चितवनसे, जो सुधासे भी मीठी मुसकानसे उज्ज्वल हो रही थी, भगवान् श्रीकृष्णका सम्मान किया और प्रभुकी परम पवित्र लीलाओंका गान करने लगीं ॥ २२ ॥ इसके बाद जैसे थका हुआ गजराज किनारोंको तोड़ता हुआ हथिनियोंके साथ जलमें घुसकर क्रीडा करता है, वैसे ही लोक और वेदकी मर्यादाका अतिक्रमण करनेवाले भगवान्ने अपनी थकान दूर करनेके लिये गोपियोंके साथ जलक्रीडा करनेके उद्देश्यसे यमुनाके जलमें प्रवेश किया। उस समय भगवान्की वनमाला गोपियोंके अङ्गकी रगड़से कुछ कुचल-सी गयी थी और उनके वक्षःस्थलकी केसरसे वह रँग भी गयी थी। उसके चारों ओर गुनगुनाते हुए भौंरे उनके पीछे-पीछे इस प्रकार चल रहे थे, मानो गन्धर्वराज उनकी कीर्तिका गान करते हुए पीछे-पीछे चल रहे हों ॥ २३ ॥ परीक्षित्! यमुनाजलमें गोपियोंने प्रेमभरी चितवनसे भगवान्की ओर देख-देखकर तथा हँस-हँसकर उनपर इधर-उधरसे जलकी खूब बौछारें डालीं। जल उलीच-उलीचकर उन्हें खूब नहलाया। विमानोंपर चढ़े हुए देवता पुष्पोंकी वर्षा करके उनकी स्तुति करने लगे। इस प्रकार यमुनाजलमें स्वयं आत्माराम भगवान् श्रीकृष्णने गजराजके समान जलविहार किया ॥ २४ ॥ इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण व्रजयुवतियों और भौंरोंकी भीड़से घिरे हुए यमुनातटके उपवनमें गये। वह बड़ा ही रमणीय था। उसके चारों ओर जल और स्थलमें बड़ी सुन्दर सुगन्धवाले फूल खिले हुए थे। उनकी सुवास लेकर मन्द-मन्द वायु चल रही थी। उसमें भगवान् इस प्रकार विचरण करने लगे, जैसे मदमत्त गजराज हथिनियोंके झुंडके साथ घूम रहा हो ॥ २५ ॥ परीक्षित्! शरद्की वह रात्रि जिसके रूपमें अनेक रात्रियाँ पुञ्जीभूत हो गयी थीं, बहुत ही सुन्दर थी। चारों ओर चन्द्रमाकी बड़ी सुन्दर चाँदनी छिटक रही थी। काव्योंमें शरद् ऋतुकी जिन रस-सामग्रियोंका वर्णन मिलता है, उन सभीसे वह युक्त थी। उसमें भगवान् श्रीकृष्णने अपनी प्रेयसी गोपियोंके साथ यमुनाके पुलिन, यमुनाजी और उनके उपवनमें विहार किया। यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि भगवान् सत्यसङ्कल्प हैं। यह सब उनके चिन्मय सङ्कल्पकी ही चिन्मयी लीला है। और उन्होंने इस लीलामें कामभावको, उसकी चेष्टाओंको तथा उसकी क्रियाको सर्वथा अपने अधीन कर रक्खा था, उन्हें अपने आपमें कैद कर रक्खा था ॥ २६ ॥

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन्! भगवान् श्रीकृष्ण सारे जगत्के एकमात्र स्वामी हैं। उन्होंने अपने अंश श्रीबलरामके सहित पूर्णरूपमें अवतार ग्रहण किया था। उनके अवतारका उद्देश्य ही यह था कि धर्मकी स्थापना हो और अधर्मका नाश ॥ २७ ॥ ब्रह्मन्! वे धर्ममर्यादाके बनानेवाले, उपदेश करनेवाले और रक्षक थे। फिर उन्होंने स्वयं धर्मके विपरीत परस्त्रियोंका स्पर्श कैसे किया ॥ २८ ॥ मैं मानता हूँ कि भगवान्

श्रीकृष्ण पूर्णकाम थे, उन्हें किसी भी वस्तुकी कामना नहीं थी, फिर भी उन्होंने किस अभिप्रायसे यह निन्दनीय कर्म किया? परम ब्रह्मचारी मुनीश्वर! आप कृपा करके मेरा यह सन्देह मिटाइये॥ २९॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—सूर्य, अग्नि आदि ईश्वर (समर्थ) कभी-कभी धर्मका उल्लङ्घन और साहसका काम करते देखे जाते हैं। परन्तु उन कामोंसे उन तेजस्वी पुरुषोंको कोई दोष नहीं होता। देखो, अग्नि सब कुछ खा जाता है, परन्तु उन पदार्थोंके दोषसे लिप्त नहीं होता॥ ३०॥ जिन लोगोंमें ऐसी सामर्थ्य नहीं है, उन्हें मनसे भी वैसी बात कभी नहीं सोचनी चाहिये, शरीरसे करना तो दूर रहा। यदि मूर्खतावश कोई ऐसा काम कर बैठे, तो उसका नाश हो जाता है। भगवान् शङ्करने हलाहल विष पी लिया था, दूसरा कोई पिये तो वह जलकर भस्म हो जायगा॥ ३१॥ इसलिये इस प्रकारके जो शङ्कर आदि ईश्वर हैं, अपने अधिकारके अनुसार उनके वचनको ही सत्य मानना और उसीके अनुसार आचरण करना चाहिये। उनके आचरणका अनुकरण तो कहीं-कहीं ही किया जाता है। इसलिये बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि उनका जो आचरण उनके उपदेशके अनुकूल हो, उसीको जीवनमें उतारे॥ ३२॥ परीक्षित्! वे सामर्थ्यवान् पुरुष अहङ्काररहीन होते हैं, शुभकर्म करनेमें उनका कोई सांसारिक स्वार्थ नहीं होता और अशुभ कर्म करनेमें अनर्थ (नुकसान) नहीं होता। वे स्वार्थ और अनर्थसे ऊपर उठे होते हैं॥ ३३॥ जब उन्हींके सम्बन्धमें ऐसी बात है तब जो पशु, पक्षी, मनुष्य, देवता आदि समस्त चराचर जीवोंके एकमात्र प्रभु सर्वेश्वर भगवान् हैं, उनके साथ मानवीय शुभ और अशुभका सम्बन्ध कैसे जोड़ा जा सकता है॥ ३४॥ जिनके चरणकमलोंके रजका सेवन करके भक्तजन तृप्त हो जाते हैं, जिनके साथ योग प्राप्त करके उसके प्रभावसे योगीजन अपने सारे कर्मबन्धन काट डालते हैं और विचारशील ज्ञानीजन जिनके तत्त्वका विचार करके तत्त्वरूप हो जाते हैं तथा समस्त कर्म-बन्धनोंसे मुक्त होकर स्वच्छन्द विचरते हैं, वे ही भगवान् अपने भक्तोंकी इच्छासे अपना चिन्मय श्रीविग्रह प्रकट करते हैं; तब भला, उनमें कर्मबन्धनकी कल्पना ही कैसे हो सकती है॥ ३५॥ गोपियोंके, उनके पतियोंके और सम्पूर्ण शरीरधारियोंके अन्तःकरणोंमें जो आत्मारूपसे विराजमान हैं, जो सबके साक्षी और परमपति हैं, वही तो अपना दिव्य-चिन्मय श्रीविग्रह प्रकट करके यह लीला कर रहे हैं॥ ३६॥ भगवान् जीवोंपर कृपा करनेके लिये ही अपनेको मनुष्यरूपमें प्रकट करते हैं और ऐसी लीलाएँ करते हैं, जिन्हें सुनकर जीव भगवत्परायण हो जायँ॥ ३७॥ व्रजवासी गोपोंने भगवान् श्रीकृष्णमें तनिक भी दोषबुद्धि नहीं की। वे उनकी योगमायासे मोहित होकर ऐसा समझ रहे थे कि हमारी पत्नियाँ हमारे पास ही हैं॥ ३८॥ ब्रह्माकी रात्रिके बराबर वह रात्रि बीत गयी। ब्राह्ममुहूर्त आया। यद्यपि गोपियोंकी इच्छा अपने घर लौटनेकी नहीं थी, फिर भी भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञासे वे अपने-अपने घर चली गयीं। क्योंकि वे अपनी प्रत्येक चेष्टासे, प्रत्येक सङ्कल्पसे केवल भगवान्‌को ही प्रसन्न करना चाहती थीं॥ ३९॥

परीक्षित्! जो धीर पुरुष व्रजयुवतियोंके साथ भगवान् श्रीकृष्णके इस चिन्मय रास-विलासका श्रद्धाके साथ बार-बार श्रवण और वर्णन करता है, उसे भगवान्‌के चरणोंमें परा भक्तिकी प्राप्ति होती है और वह बहुत ही शीघ्र अपने हृदयके रोग—कामविकारसे छुटकारा पा जाता है। उसका कामभाव सर्वदाके लिये नष्ट हो जाता है *॥ ४०॥

---

* श्रीमद्भागवतमें ये रासलीलाके पाँच अध्याय उसके पाँच प्राण माने जाते हैं। भगवान् श्रीकृष्णकी परम अन्तरङ्गलीला, निजस्वरूपभूता गोपिकाओं और ह्लादिनी शक्ति श्रीराधाजीके साथ होनेवाली भगवान्‌की दिव्यातिदिव्य क्रीडा—इन अध्यायोंमें कही गयी है। 'रास' शब्दका मूल रस है और रस स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं—'रसो

वै स॰'। जिस दिव्य क्रीडामें एक ही रस अनेक रसोंके रूपमें होकर अनन्त-अनन्त रसका समास्वादन करे, एक रस ही रस-समूहके रूपमें प्रकट होकर स्वयं ही आस्वाद्य-आस्वादक, लीला, धाम और विभिन्न आलम्बन एवं उद्दीपनके रूपमें क्रीडा करे—उसका नाम रास है। भगवान्‌की यह दिव्य लीला भगवान्‌के दिव्य धाममें दिव्य-रूपसे निरन्तर हुआ करती है। यह भगवान्‌की विशेष कृपासे प्रेमी साधकोंके हितार्थ कभी-कभी अपने दिव्य धामके साथ ही भूमण्डलपर भी अवतीर्ण हुआ करती है, जिसको देख-सुन एव गाकर तथा स्मरण-चिन्तन करके अधिकारी पुरुष रसस्वरूप भगवान्‌की इस परम रसमयी लीलाका आनन्द ले सकें और स्वयं भी भगवान्‌की लीलामें सम्मिलित होकर अपनेको कृतकृत्य कर सके। इस पञ्चाध्यायीमें वंशीध्वनि, गोपियोंके अभिसार, श्रीकृष्णके साथ उनकी बातचीत, रमण, श्रीराधाजीके साथ अन्तर्धान, पुन. प्राकट्य, गोपियोंके द्वारा दिये हुए वसनासनपर विराजना, गोपियोंके कूट प्रश्नका उत्तर, रासनृत्य, क्रीडा, जलकेलि और वनविहारका वर्णन है—जो मानवी भाषामे होनेपर भी वस्तुत· परम दिव्य है।

समयके साथ ही मानव-मस्तिष्क भी पलटता रहता है। कभी अन्तर्दृष्टिकी प्रधानता हो जाती है और कभी बहिर्दृष्टिकी। आजका युग ही ऐसा है, जिसमे भगवान्‌की दिव्य-लीलाओंकी तो बात ही क्या, स्वयं भगवान्‌के अस्तित्वपर ही अविश्वास प्रकट किया जा रहा है। ऐसी स्थितिमे इस दिव्य लीलाका रहस्य न समझकर लोग तरह-तरहकी आशङ्का प्रकट करें, इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। यह लीला अन्तर्दृष्टिसे और मुख्यत भगवत्कृपासे ही समझमें आती है। जिन भाग्यवान् और भगवत्कृपाप्राप्त महात्माओंने इसका अनुभव किया है, वे धन्य हैं और उनकी चरण-धूलिके प्रतापसे ही त्रिलोकी धन्य है। उन्हींकी उक्तियोंका आश्रय लेकर यहाँ रासलीलाके सम्बन्धमें यत्किञ्चित् लिखनेकी धृष्टता की जाती है।

यह बात पहले ही समझ लेनी चाहिये कि भगवान्‌का शरीर जीव-शरीरकी भाँति जड नहीं होता। जडकी सत्ता केवल जीवकी दृष्टिमे होती है, भगवान्‌की दृष्टिमें नहीं। यह देह है और यह देही है, इस प्रकारका भेद-भाव केवल प्रकृतिके राज्यमें होता है। अप्राकृत लोकमें—जहाँकी प्रकृति भी चिन्मय है—सब कुछ चिन्मय ही होता है; वहाँ अचित्‌की प्रतीति तो केवल चिद्विलास अथवा भगवान्‌की लीलाकी सिद्धिके लिये होती है। इसलिये स्थूलतामें—या यों कहिये कि जडराज्यमें रहनेवाला मस्तिष्क जब भगवान्‌की अप्राकृत लीलाओंके सम्बन्धमें विचार करने लगता है, तब वह अपनी पूर्व वासनाओंके अनुसार जडराज्यकी धारणाओं, कल्पनाओं और क्रियाओंका ही आरोप उस दिव्य राज्यके विषयमें भी करता है, इसलिये दिव्यलीलाके रहस्यको समझनेमें असमर्थ हो जाता है। यह रास वस्तुतः परम उज्ज्वल रसका एक दिव्य प्रकाश है। जड जगत्‌की बात तो दूर रही, ज्ञानरूप या विज्ञानरूप जगत्‌में भी यह प्रकट नहीं होता। अधिक क्या, साक्षात् चिन्मय तत्त्वमें भी इस परम दिव्य उज्ज्वल रसका लेशाभास नहीं देखा जाता। इस परम रसकी स्फूर्ति तो परम भावमयी श्रीकृष्णप्रेमस्वरूपा गोपीजनोंके मधुर हृदयमें ही होती है। इस रासलीलाके यथार्थस्वरूप और परम माधुर्यका आस्वाद उन्हींको मिलता है, दूसरे लोग तो इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते।

भगवान्‌के समान ही गोपियाँ भी परमरसमयी और सच्चिदानन्दमयी ही हैं। साधनाकी दृष्टिसे भी उन्होंने न केवल जड शरीरका ही त्याग कर दिया है, बल्कि सूक्ष्म शरीरसे प्राप्त होनेवाले स्वर्ग, कैवल्यसे अनुभव होनेवाले मोक्ष—और तो क्या, जडताकी दृष्टिका ही त्याग कर दिया है। उनकी दृष्टिमें केवल चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण हैं, उनके हृदयमे श्रीकृष्णको तृप्त करनेवाला प्रेमामृत है। उनकी इस अलौकिक स्थितिमे स्थूलशरीर, उसकी स्मृति और उसके सम्बन्धसे होनेवाले अङ्ग-सङ्गकी कल्पना किसी भी प्रकार नहीं की जा सकती। ऐसी कल्पना तो केवल देहात्मबुद्धिसे जकडे हुए जीवोंकी ही होती है। जिन्होंने गोपियोंको पहचाना है, उन्होंने गोपियोंकी

चरणधूलिका स्पर्श प्राप्त करके अपनी कृतकृत्यता चाही है । ब्रह्मा, शङ्कर, उद्धव और अर्जुनने गोपियोंकी उपासना करके भगवान्‌के चरणोंमें वैसे प्रेमका वरदान प्राप्त किया है या प्राप्त करनेकी अभिलाषा की है । उन गोपियोंके दिव्य भावको साधारण स्त्री-पुरुषके भाव-जैसा मानना गोपियोंके प्रति, भगवान्‌के प्रति और वास्तवमें सत्यके प्रति महान् अन्याय एवं अपराध है । इस अपराधसे बचनेके लिये भगवान्‌की दिव्य लीलाओंपर विचार करते समय उनकी अप्राकृत दिव्यताका स्मरण रखना परमावश्यक है ।

भगवान्‌का चिदानन्दघन शरीर दिव्य है । वह अजन्मा और अविनाशी है, हानोपादानरहित है । वह नित्य सनातन शुद्ध भगवत्स्वरूप ही है । इसी प्रकार गोपियाँ दिव्य जगत्‌की भगवान्‌की स्वरूपभूता अन्तरङ्गशक्तियाँ है । इन दोनोंका सम्बन्ध भी दिव्य ही है । यह उच्चतम भावराज्यकी लीला स्थूल शरीर और स्थूल मनसे परे है । आवरण-भङ्गके अनन्तर अर्थात् चीरहरण करके जब भगवान् स्वीकृति देते हैं, तब इसमें प्रवेश होता है ।

प्राकृत देहका निर्माण होता है स्थूल, सूक्ष्म और कारण—इन तीन देहोंके संयोगसे । जबतक 'कारण शरीर' रहता है, तबतक इस प्राकृत देहसे जीवको छुटकारा नहीं मिलता । 'कारण शरीर' कहते हैं पूर्वकृत कर्मोंके उन संस्कारोंको, जो देह-निर्माणमें कारण होते हैं । इस 'कारण शरीर' के आधारपर जीवको बार-बार जन्म-मृत्युके चक्करमें पड़ना होता है और यह चक्र जीवकी मुक्ति न होनेतक अथवा 'कारण' का सर्वथा अभाव न होनेतक चलता ही रहता है । इसी कर्मबन्धनके कारण पाञ्चभौतिक स्थूलशरीर मिलता है—जो रक्त, मांस, अस्थि आदिसे भरा और चमड़ेसे ढका होता है । प्रकृतिके राज्यमें जितने शरीर होते हैं, सभी वस्तुतः योनि और बिन्दुके संयोगसे ही बनते हैं; फिर चाहे कोई कामजनित निकृष्ट मैथुनसे उत्पन्न हो या ऊर्ध्वरेता महापुरुषके सङ्कल्पसे, बिन्दुके अधोगामी होनेपर कर्तव्यरूप श्रेष्ठ मैथुनसे हो, अथवा बिना ही मैथुनके नाभि, हृदय, कण्ठ, कर्ण, नेत्र, सिर, मस्तक आदिके स्पर्शसे, बिना ही स्पर्शके केवल दृष्टिमात्रसे अथवा बिना देखे केवल सङ्कल्पसे ही उत्पन्न हो । ये मैथुनी-अमैथुनी (अथवा कभी-कभी स्त्री या पुरुष-शरीरके बिना भी उत्पन्न होनेवाले) सभी शरीर हैं योनि और बिन्दुके संयोगजनित ही । ये सभी प्राकृत शरीर हैं । इसी प्रकार योगियोंके द्वारा निर्मित 'निर्माणकाय' यद्यपि अपेक्षाकृत शुद्ध हैं, परन्तु वे भी हैं प्राकृत ही । पितर या देवोंके दिव्य कहलानेवाले शरीर भी प्राकृत ही हैं । अप्राकृत शरीर इन सबसे विलक्षण हैं, जो महाप्रलयमें भी नष्ट नहीं होते । और भगवद्देह तो साक्षात् भगवत्स्वरूप ही है । देव-शरीर प्रायः रक्त-मांस-मेद-अस्थिवाले नहीं होते । अप्राकृत शरीर भी नहीं होते । फिर भगवान् श्रीकृष्णका भगवत्स्वरूप शरीर तो रक्त-मांस-अस्थिमय होता ही कैसे । वह तो सर्वथा चिदानन्दमय है । उसमें देह-देही, गुण-गुणी, रूप-रूपी, नाम-नामी और लीला तथा लीलापुरुषोत्तमका भेद नहीं है । श्रीकृष्णका एक-एक अङ्ग पूर्ण श्रीकृष्ण है । श्रीकृष्णका मुखमण्डल जैसे पूर्ण श्रीकृष्ण है, वैसे ही श्रीकृष्णका पदनख भी पूर्ण श्रीकृष्ण है । श्रीकृष्णकी सभी इन्द्रियोंसे सभी काम हो सकते हैं । उनके कान देख सकते हैं, उनकी आँखें सुन सकती हैं, उनकी नाक स्पर्श कर सकती है, उनकी रसना सूँघ सकती है, उनकी त्वचा स्वाद ले सकती है । वे हाथोंसे देख सकते है, आँखोंसे चल सकते हैं । श्रीकृष्णका सब कुछ श्रीकृष्ण होनेके कारण वह सर्वथा पूर्णतम है । इसीसे उनकी रूपमाधुरी नित्यवर्द्धनशील, नित्य नवीन सौन्दर्यमयी है । उसमें ऐसा चमत्कार है कि वह स्वयं अपनेको ही आकर्षित कर लेती है । फिर उनके सौन्दर्य-माधुर्यसे गौ-हरिन और वृक्ष-बेल पुलकित हो जायँ, इसमे तो कहना ही क्या है । भगवान्‌के ऐसे स्वरूपभूत शरीरसे गंदा मैथुनकर्म सम्भव नहीं । मनुष्य जो कुछ खाता है, उससे क्रमशः रस, रक्त, मांस, मेद, मज्जा और अस्थि बनकर अन्तमें शुक्र बनता है; इसी शुक्रके आधारपर शरीर रहता है और मैथुनक्रियामे इसी शुक्रका क्षरण हुआ करता है । भगवान्‌का शरीर न तो कर्म-जन्य है, न मैथुनी सृष्टिका है और न दैवी ही है । वह तो इन सबसे परे सर्वथा विशुद्ध भगवत्स्वरूप है । उसमें रक्त, मांस, अस्थि आदि नहीं हैं । अतएव उसमें शुक्र भी नहीं है । इसलिये उससे प्राकृत पाञ्चभौतिक

शरीरोंवाले स्त्री-पुरुषोंके रमण या मैथुनकी कल्पना भी नहीं हो सकती। इसीलिये भगवान्‌को उपनिषद्‌में 'अखण्ड ब्रह्मचारी' बतलाया गया है और इसीसे भागवतमें उनके लिये 'अवरुद्धसौरत' आदि शब्द आये हैं। फिर कोई शङ्का करे कि उनके सोलह हजार एक सौ आठ रानियोंके इतने पुत्र कैसे हुए तो इसका सीधा उत्तर यही है कि यह सारी भागवती सृष्टि थी, भगवान्‌के सङ्कल्पसे हुई थी। भगवान्‌के शरीरमें जो रक्त-मास आदि दिखलायी पड़ते हैं, वह तो भगवान्‌की योगमायाका चमत्कार है। इस विवेचनसे भी यही सिद्ध होता है कि गोपियोंके साथ भगवान् श्रीकृष्णका जो रमण हुआ वह सर्वथा दिव्य भगवत्-राज्यकी लीला है, लौकिक काम-क्रीडा नहीं।

× × × ×

इन गोपियोंकी साधना पूर्ण हो चुकी है। भगवान्‌ने अगली रात्रियोंमें उनके साथ विहार करनेका प्रेम-सङ्कल्प कर लिया है। इसीके साथ उन गोपियोंको भी जो नित्यसिद्धा हैं, जो लोकदृष्टिमें विवाहिता भी हैं, इन्हीं रात्रियोंमें दिव्य-लीलामे सम्मिलित करना है। वे अगली रात्रियाँ कौन-सी हैं, यह बात भगवान्‌की दृष्टिके सामने है। उन्होंने शारदीय रात्रियोंको देखा। 'भगवान्‌ने देखा'—इसका अर्थ सामान्य नहीं, विशेष है। जैसे सृष्टिके प्रारम्भमें 'स ऐक्षत एकोऽहं बहु स्याम्।'—भगवान्‌के इस ईक्षणसे जगत्‌की उत्पत्ति होती है, वैसे ही रासके आरम्भमें भगवान्‌के प्रेमवीक्षणसे शरत्कालकी दिव्य रात्रियोंकी सृष्टि होती है। मल्लिका-पुष्प, चन्द्रिका आदि समस्त उद्दीपनसामग्री भगवान्‌के द्वारा वीक्षित है अर्थात् लौकिक नहीं, अलौकिक—अप्राकृत है। गोपियोंने अपना मन श्रीकृष्णके मनमें मिला दिया था। उनके पास स्वय मन न था। अब प्रेम-दान करनेवाले श्रीकृष्णने विहारके लिये नवीन मनकी, दिव्य मनकी सृष्टि की। योगेश्वरेश्वर भगवान् श्रीकृष्णकी यही योगमाया है, जो रासलीलाके लिये दिव्य स्थल, दिव्य सामग्री एवं दिव्य मनका निर्माण किया करती है। इतना होनेपर भगवान्‌की बाँसुरी बजती है।

भगवान्‌की बाँसुरी जडको चेतन, चेतनको जड, चलको अचल और अचलको चल, विक्षिप्तको समाधिस्थ और समाधिस्थको विक्षिप्त बनाती ही रहती है। भगवान्‌का प्रेमदान प्राप्त करके गोपियाँ निस्सङ्कल्प, निश्चिन्त होकर घरके काममें लगी हुई थीं। कोई गुरुजनोंकी सेवा-शुश्रूषा—धर्मके काममें लगी हुई थी, कोई गो-दोहन आदि अर्थके काममें लगी हुई थी, कोई साज-शृङ्गार आदि कामके साधनमे व्यस्त थी, कोई पूजा-पाठ आदि मोक्षसाधनमें लगी हुई थी। सब लगी हुई थीं अपने-अपने काममें, परन्तु वास्तवमें वे उनमेंसे एक भी पदार्थ चाहती न थीं। यही उनकी विशेषता थी और इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि वंशीध्वनि सुनते ही कर्मकी पूर्णतापर उनका ध्यान नहीं गया, काम पूरा करके चलें, ऐसा उन्होंने नहीं सोचा। वे चल पड़ी उस साधक संन्यासीके समान, जिसका हृदय वैराग्यकी प्रदीप्त ज्वालासे परिपूर्ण है। किसीने किसीसे पूछा नहीं, सलाह नहीं की; अस्त-व्यस्त गतिसे जो जैसे थी, वैसे ही श्रीकृष्णके पास पहुँच गयी। वैराग्यकी पूर्णता और प्रेमकी पूर्णता एक ही बात है, दो नहीं। गोपियाँ व्रज और श्रीकृष्णके बीचमें मूर्तिमान् वैराग्य है या मूर्तिमान् प्रेम, क्या इसका निर्णय कोई कर सकता है?

साधनाके दो भेद हैं—१—मर्यादापूर्ण वैध साधना और २—मर्यादारहित अवैध प्रेमसाधना। दोनोंके ही अपने-अपने स्वतन्त्र नियम हैं। वैध साधनामें जैसे नियमोंके बन्धनका, सनातन पद्धतिका, कर्तव्योंका और विविध पालनीय धर्मोंका त्याग साधनासे भ्रष्ट करनेवाला और महान् हानिकर है, वैसे ही अवैध प्रेमसाधनामें इनका पालन कलङ्करूप होता है। यह बात नहीं कि इन सब आत्मोन्नतिके साधनोंको वह अवैध प्रेमसाधनाका साधक जान-बूझकर छोड़ देता है। बात यह है कि वह स्तर ही ऐसा है, जहाँ इनकी आवश्यकता नहीं है। ये वहाँ अपने-आप वैसे ही छूट जाते हैं, जैसे नदीके पार पहुँच जानेपर स्वाभाविक ही नौकाकी सवारी छूट जाती है। जमीनपर न तो नौकापर बैठकर चलनेका प्रश्न उठता है और न ऐसा चाहने या करनेवाला बुद्धिमान् ही माना

जाता है। ये सब साधन वहींतक रहते हैं, जहाँतक सारी वृत्तियाँ सहज स्वेच्छासे सदा-सर्वदा एकमात्र भगवान्‌की ओर दौड़ने नहीं लग जातीं। इसीलिये भगवान्‌ने गीतामें एक जगह तो अर्जुनसे कहा है—

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन। नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि ॥
यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः। मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥
उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्। सङ्करस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ॥
सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत। कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् ॥
(३ । २२-२५)

'अर्जुन! यद्यपि तीनों लोकोंमें मुझे कुछ भी करना नहीं है, और न मुझे किसी वस्तुको प्राप्त ही करना है, जो मुझे न प्राप्त हो; तो भी मैं कर्म करता ही हूँ। यदि मैं सावधान होकर कर्म न करूँ तो अर्जुन! मेरी देखा-देखी लोग कर्मोंको छोड़ बैठें और यों मेरे कर्म न करनेसे ये सारे लोक भ्रष्ट हो जायँ तथा मैं इन्हें वर्ण-सङ्कर बनानेवाला और सारी प्रजाका नाश करनेवाला बनूँ। इसलिये मेरे इस आदर्शके अनुसार अनासक्त ज्ञानी पुरुषको भी लोकसंग्रहके लिये वैसे ही कर्म करना चाहिये, जैसे कर्ममें आसक्त अज्ञानी लोग करते हैं।'

यहाँ भगवान् आदर्श लोकसंग्रही महापुरुषके रूपमें बोलते हैं, लोकनायक बनकर सर्वसाधारणको शिक्षा देते हैं। इसीलिये स्वयं अपना उदाहरण देकर लोगोंको कर्ममें प्रवृत्त करना चाहते हैं। ये ही भगवान् उसी गीतामें जहाँ अन्तरङ्गताकी बात कहते हैं, वहाँ स्पष्ट कहते हैं—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
(१८ । ६६)

'सारे धर्मोंका त्याग करके तू केवल एक मेरी शरणमें आ जा।'

यह बात सबके लिये नहीं है। इसीसे भगवान् १८। ६४ में इसे सबसे बढ़कर छिपी हुई गुप्त बात (सर्वगुह्यतम) कहकर इसके बादके ही श्लोकमें कहते हैं—

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति ॥
(१८ । ६७)

'भैया अर्जुन! इस सर्वगुह्यतम बातको जो इन्द्रिय-विजयी तपस्वी न हो, मेरा भक्त न हो, सुनना न चाहता हो और मुझमें दोष लगाता हो, उसे न कहना।'

श्रीगोपीजन साधनाके इसी उच्च स्तरमें परम आदर्श थीं। इसीसे उन्होंने देह-गेह, पति-पुत्र, लोक-परलोक, कर्तव्य-धर्म—सबको छोड़कर, सबका उल्लङ्घन कर, एकमात्र परमधर्मस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णको ही पानेके लिये अभिसार किया था। उनका यह पति-पुत्रोंका त्याग, यह सर्वधर्मका त्याग ही उनके स्तरके अनुरूप स्वधर्म है।

इस 'सर्वधर्मत्याग' रूप स्वधर्मका आचरण गोपियों-जैसे उच्च स्तरके साधकोंमें ही सम्भव है। क्योंकि सब धर्मोंका यह त्याग वही कर सकते हैं, जो इसका यथाविधि पूरा पालन कर चुकनेके बाद इसके परमफल अनन्य और अचिन्त्य देवदुर्लभ भगवत्प्रेमको प्राप्त कर चुकते हैं, वे भी जान-बूझकर त्याग नहीं करते। सूर्यका प्रखर प्रकाश हो जानेपर तैलदीपककी भाँति स्वतः ही ये धर्म उसे त्याग देते हैं। यह त्याग तिरस्कारमूलक नहीं, वरं तृप्तिमूलक है। भगवत्प्रेमकी ऊँची स्थितिका यही स्वरूप है। देवर्षि नारदजीका एक सूत्र है—

'वेदानपि संन्यस्यति, केवलमविच्छिन्नानुरागं लभते।'

'जो वेदोंका (वेदमूलक समस्त धर्ममर्यादाओंका) भी भलीभाँति त्याग कर देता है, वह अखण्ड, असीम भगवत्प्रेमको प्राप्त करता है।'

जिसको भगवान् अपनी वंशीध्वनि सुनाकर—नाम ले-लेकर बुलायें, वह भला, किसी दूसरे धर्मकी ओर ताककर कब और कैसे रुक सकता है।

रोकनेवालोंने रोका भी, परन्तु हिमालयसे निकलकर समुद्रमें गिरनेवाली ब्रह्मपुत्र नदीकी प्रखर धाराको क्या कोई रोक सकता है? वे न रुकीं, नहीं रोकी जा सकीं। जिनके चित्तमें कुछ प्राक्तन संस्कार अवशिष्ट थे, वे अपने अनधिकारके कारण सशरीर जानेमें समर्थ न हुईं। उनका शरीर घरमें पड़ा रह गया, भगवान्के वियोग-दुःखसे उनके सारे कलुष धुल गये, ध्यानमें प्राप्त भगवान्के प्रेमालिङ्गनसे उनके समस्त सौभाग्यका परमफल प्राप्त हो गया और वे भगवान्के पास सशरीर जानेवाली गोपियोंके पहुँचनेसे पहले ही भगवान्के पास पहुँच गयीं। भगवान्में मिल गयीं। यह शास्त्रका प्रसिद्ध सिद्धान्त है कि पाप-पुण्यके कारण ही बन्धन होता है और शुभाशुभका भोग होता है। शुभाशुभ कर्मोंके भोगसे जब पाप-पुण्य दोनों नष्ट हो जाते हैं, तब जीवकी मुक्ति हो जाती है। यद्यपि गोपियाँ पाप-पुण्यसे रहित श्रीभगवान्की प्रेम-प्रतिमास्वरूपा थीं, तथापि लीलाके लिये यह दिखाया गया है कि अपने प्रियतम श्रीकृष्णके पास न जा सकनेसे, उनके विरहानलसे उनको इतना महान् सन्ताप हुआ कि उससे उनके सम्पूर्ण अशुभका भोग हो गया, उनके समस्त पाप नष्ट हो गये। और प्रियतम भगवान्के ध्यानसे उन्हें इतना आनन्द हुआ कि उससे उनके सारे पुण्योंका फल मिल गया। इस प्रकार पाप-पुण्योंका पूर्णरूपसे अभाव होनेसे उनकी मुक्ति हो गयी। चाहे किसी भी भावसे हो—कामसे, क्रोधसे, लोभसे—जो भगवान्के मङ्गलमय श्रीविग्रहका चिन्तन करता है, उसके भावकी अपेक्षा न करके वस्तुशक्तिसे ही उसका कल्याण हो जाता है। यह भगवान्के श्रीविग्रहकी विशेषता है। भावके द्वारा तो एक प्रस्तरमूर्ति भी परम कल्याणका दान कर सकती है, बिना भावके ही कल्याणदान भगवद्विग्रहका सहज दान है।

भगवान् हैं बड़े लीलामय। जहाँ वे अखिल विश्वके विधाता ब्रह्मा-शिव आदिके भी वन्दनीय, निखिल जीवोंके प्रत्यगात्मा हैं, वहीं वे लीलानटवर गोपियोंके इशारेपर नाचनेवाले भी हैं। उन्हींकी इच्छासे, उन्हींके प्रेमाह्वानसे, उन्हींके वंशी-निमन्त्रणसे प्रेरित होकर गोपियाँ उनके पास आयीं; परन्तु उन्होंने ऐसी भावभङ्गी प्रकट की, ऐसा स्वाँग बनाया, मानो उन्हें गोपियोंके आनेका कुछ पता ही न हो। शायद गोपियोंके मुँहसे वे उनके हृदयकी बात, प्रेमकी बात सुनना चाहते हों। सम्भव है, वे विप्रलम्भके द्वारा उनके मिलन-भावको परिपुष्ट करना चाहते हों। बहुत करके तो ऐसा मालूम होता है कि कहीं लोग इसे साधारण बात न समझ लें, इसलिये साधारण लोगोंके लिये उपदेश और गोपियोंका अधिकार भी उन्होंने सबके सामने रख दिया। उन्होंने बतलाया—'गोपियो! व्रजमें कोई विपत्ति तो नहीं आयी, घोर रात्रिमें यहाँ आनेका कारण क्या है? घरवाले ढूँढ़ते होंगे, अब यहाँ ठहरना नहीं चाहिये। वनकी शोभा देख ली, अब बच्चों और बछड़ोंका भी ध्यान करो। धर्मके अनुकूल मोक्षके खुले हुए द्वार अपने सगे-सम्बन्धियोंकी सेवा छोड़कर वनमें दर-दर भटकना स्त्रियोंके लिये अनुचित है। स्त्रीको अपने पतिकी ही सेवा करनी चाहिये, वह कैसा भी क्यों न हो। यही सनातन धर्म है। इसीके अनुसार तुम्हें चलना चाहिये। मैं जानता हूँ कि तुम सब मुझसे प्रेम करती हो। परन्तु प्रेममें शारीरिक सन्निधि आवश्यक नहीं है। श्रवण, स्मरण, दर्शन और ध्यानसे सान्निध्यकी अपेक्षा अधिक प्रेम बढ़ता है। जाओ, तुम सनातन सदाचारका पालन करो। इधर-उधर मनको मत भटकने दो।'

श्रीकृष्णकी यह शिक्षा गोपियोंके लिये नहीं, सामान्य नारी-जातिके लिये है। गोपियोंका अधिकार विशेष था और उसको प्रकट करनेके लिये ही भगवान् श्रीकृष्णने ऐसे वचन कहे थे। इन्हे सुनकर गोपियोंकी क्या

दशा हुई और इसके उत्तरमे उन्होंने श्रीकृष्णसे क्या प्रार्थना की; वे श्रीकृष्णको मनुष्य नहीं मानतीं, उनके पूर्णब्रह्म सनातन स्वरूपको भलीभाँति जानती हैं और यह जानकर ही उनसे प्रेम करती हैं—इस बातका कितना सुन्दर परिचय दिया, यह सब विषय मूलमे ही पाठ करनेयोग्य है। सचमुच जिनके हृदयमे भगवान्‌के परमतत्त्वका वैसा अनुपम ज्ञान और भगवान्‌के प्रति वैसा महान् अनन्य अनुराग है और सचाईके साथ जिनकी वाणीमे वैसे उद्गार हैं, वे ही विशेष अधिकारवान् हैं।

गोपियोंकी प्रार्थनासे यह बात स्पष्ट है कि वे श्रीकृष्णको अन्तर्यामी, योगेश्वरेश्वर परमात्माके रूपमें पहचानती थीं और जैसे दूसरे लोग गुरु, सखा या माता-पिताके रूपमे श्रीकृष्णकी उपासना करते हैं, वैसे ही वे पतिके रूपमें श्रीकृष्णसे प्रेम करती थी, जो कि शास्त्रोंमे मधुर भावके—उज्ज्वल परम रसके नामसे कहा गया है। जब प्रेमके सभी भाव पूर्ण होते हैं और साधकोंको स्वामि-सखादिके रूपमे भगवान् मिलते हैं, तब गोपियोंने क्या अपराध किया था कि उनका यह उच्चतम भाव—जिसमें शान्त, दास्य, सख्य और वात्सल्य सब-के-सब अन्तर्भूत हैं और जो सबसे उन्नत एवं सबका अन्तिम रूप है—न पूर्ण हो? भगवान्‌ने उनका भाव पूर्ण किया और अपनेको असख्य रूपोंमे प्रकट करके गोपियोंके साथ क्रीडा की। उनकी क्रीडाका स्वरूप बतलाते हुए कहा गया है—'रेमे रमेशो व्रजसुन्दरीभिर्यथार्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः'। जैसे नन्हा-सा शिशु दर्पण अथवा जलमें पडे हुए अपने प्रतिबिम्बके साथ खेलता है, वैसे ही रमेश भगवान् और व्रजसुन्दरियोंने रमण किया। अर्थात् सच्चिदानन्दघन सर्वान्तर्यामी प्रेमरस-स्वरूप, लीलारसमय परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णने अपनी ह्लादिनी शक्तिरूपा आनन्द-चिन्मयरस-प्रतिभाविता अपनी ही प्रतिमूर्तिसे उत्पन्न अपनी प्रतिबिम्ब-स्वरूपा गोपियोंसे आत्मक्रीडा की। पूर्णब्रह्म सनातन रसस्वरूप रसराज रसिक-शेखर रसपरब्रह्म अखिलरसामृतविग्रह भगवान् श्रीकृष्णकी इस चिदानन्द-रसमयी दिव्य क्रीडाका नाम ही रास है। इसमें न कोई जड शरीर था, न प्राकृत अङ्ग-सङ्ग था, और न इसके सम्बन्धकी प्राकृत और स्थूल कल्पनाएँ ही थीं। यह था चिदानन्दमय भगवान्‌का दिव्य विहार, जो दिव्य लीलाधाममे सर्वदा होते रहनेपर भी कभी-कभी प्रकट होता है।

वियोग ही संयोगका पोषक है, मान और मद ही भगवान्‌की लीलामे बाधक हैं। भगवान्‌की दिव्य लीलामें मान और मद भी, जो कि दिव्य हैं, इसीलिये होते हैं कि उनसे लीलामें रसकी और भी पुष्टि हो। भगवान्‌की इच्छासे ही गोपियोंमे लीलानुरूप मान और मदका सञ्चार हुआ और भगवान् अन्तर्धान हो गये। जिनके हृदयमे लेशमात्र भी मद अवशेष है, नाममात्र भी मानका सस्कार शेष है, वे भगवान्‌के सम्मुख रहनेके अधिकारी नही। अथवा वे भगवान्‌का, पास रहनेपर भी, दर्शन नहीं कर सकते। परन्तु गोपियाँ गोपियाँ थीं, उनसे जगत्‌के किसी प्राणीकी तिलमात्र भी तुलना नहीं है। भगवान्‌के वियोगमे गोपियोंकी क्या दशा हुई, इस बातको रासलीलाका प्रत्येक पाठक जानता है। गोपियोंके शरीर-मन-प्राण, वे जो कुछ थीं—सब श्रीकृष्णमे एकतान हो गये। उनके प्रेमोन्मादका वह गीत, जो उनके प्राणोका प्रत्यक्ष प्रतीक है, आज भी भावुक भक्तोंको भावमग्न करके भगवान्‌के लीलालोकमे पहुँचा देता है। एक बार सरस हृदयसे हृदयहीन होकर नहीं, पाठ करनेमात्रसे ही यह गोपियोंकी महत्ता सम्पूर्ण हृदयमें भर देता है। गोपियोके उस 'महाभाव'—उस 'अलौकिक प्रेमोन्माद'को देखकर श्रीकृष्ण भी अन्तर्हित न रह सके, उनके सामने 'साक्षान्मन्मथमन्मथः' रूपसे प्रकट हुए और उन्होंने मुक्तकण्ठसे स्वीकार किया कि 'गोपियो! मैं तुम्हारे प्रेमभावका चिर-ऋणी हूँ। यदि मै अनन्त कालतक तुम्हारी सेवा करता रहूँ, तो भी तुमसे उऋण नहीं हो सकता। मेरे अन्तर्धान होनेका प्रयोजन तुम्हारे चित्तको दुखाना नहीं था, बल्कि तुम्हारे प्रेमको और भी उज्ज्वल एवं समृद्ध करना था।' इसके बाद रासक्रीडा प्रारम्भ हुई।

जिन्होंने अध्यात्मशास्त्रका स्वाध्याय किया है, वे जानते हैं कि योगसिद्धिप्राप्त साधारण योगी भी कायव्यूहके द्वारा एक साथ अनेक शरीरोंका निर्माण कर सकते हैं और अनेक स्थानोंपर उपस्थित रहकर पृथक्-पृथक्

कार्य कर सकते हैं। इन्द्रादि देवगण एक ही समय अनेक स्थानोंपर उपस्थित होकर अनेक यज्ञोंमें युगपत् आहुति स्वीकार कर सकते हैं। निखिल योगियों और योगेश्वरोंके ईश्वर सर्वसमर्थ भगवान् श्रीकृष्ण यदि एक ही साथ अनेक गोपियोंके साथ क्रीडा करें, तो इसमें आश्चर्यकी कौन-सी बात है? जो लोग भगवान्को भगवान् नहीं स्वीकार करते, वही अनेकों प्रकारकी शङ्का-कुशङ्काएँ करते हैं। भगवान्की निज लीलामें इन तर्कोंका सर्वथा प्रवेश नहीं है।

गोपियाँ श्रीकृष्णकी स्वकीया थीं या परकीया, यह प्रश्न भी श्रीकृष्णके स्वरूपको भुलाकर ही उठाया जाता है। श्रीकृष्ण जीव नहीं हैं कि जगत्की वस्तुओंमें उनका हिस्सेदार दूसरा भी जीव हो। जो कुछ भी था, है और आगे होगा—उसके एकमात्र पति श्रीकृष्ण ही हैं। अपनी प्रार्थनामें गोपियोंने और परीक्षित्के प्रश्नके उत्तरमें श्रीशुकदेवजीने यही बात कही है कि गोपी, गोपियोंके पति, उनके पुत्र, सगे-सम्बन्धी और जगत्के समस्त प्राणियोंके हृदयमें आत्मारूपसे, परमात्मारूपसे जो प्रभु स्थित हैं—वही श्रीकृष्ण हैं। कोई भ्रमसे, अज्ञानसे, भले ही श्रीकृष्णको पराया समझे, वे किसीके पराये नहीं है, सबके अपने हैं, सब उनके है। श्रीकृष्णकी दृष्टिसे, जो कि वास्तविक दृष्टि है, कोई परकीया है ही नहीं; सब स्वकीया है, सब केवल अपना ही लीलाविलास हैं, सभी स्वरूपभूता अन्तरङ्गा शक्ति हैं। गोपियाँ इस बातको जानती थीं और स्थान-स्थानपर उन्होंने ऐसा कहा है।

ऐसी स्थितिमे 'जारभाव' और 'औपपत्य' का कोई लौकिक अर्थ नहीं रह जाता। जहाँ काम नहीं है, अङ्ग-सङ्ग नहीं है, वहाँ 'औपपत्य' और 'जारभाव' की कल्पना ही कैसे हो सकती है? गोपियाँ परकीया नहीं थीं, स्वकीया थीं; परन्तु उनमें परकीया-भाव था। परकीया होनेमे और परकीयाभाव होनेमें आकाश-पातालका अन्तर है। परकीयाभावमें तीन बातें बड़े महत्त्वकी होती हैं—अपने प्रियतमका निरन्तर चिन्तन, मिलनकी उत्कट उत्कण्ठा और दोषदृष्टिका सर्वथा अभाव। स्वकीयाभावमें निरन्तर एक साथ रहनेके कारण ये तीनों बातें गौण हो जाती हैं; परन्तु परकीया-भावमें ये तीनों भाव बने रहते हैं। कुछ गोपियाँ जारभावसे श्रीकृष्णको चाहती थीं, इसका इतना ही अर्थ है कि वे श्रीकृष्णका निरन्तर चिन्तन करती थीं, मिलनेके लिये उत्कण्ठित रहती थीं और श्रीकृष्णके प्रत्येक व्यवहारको प्रेमकी आँखोंसे ही देखती थीं। चौथा भाव विशेष महत्त्वका और है—वह यह कि स्वकीया अपने घरका, अपना और अपने पुत्र एवं कन्याओंका पालन-पोषण, रक्षणावेक्षण पतिसे चाहती है। वह समझती है कि इनकी देखरेख करना पतिका कर्तव्य है; क्योंकि ये सब उसीके आश्रित हैं, और वह पतिसे ऐसी आशा भी रखती है। कितनी ही पतिपरायणा क्यों न हो, स्वकीयामें यह सकाममात्र छिपा रहता ही है। परन्तु परकीया अपने प्रियतमसे कुछ नहीं चाहती, कुछ भी आशा नहीं रखती; वह तो केवल अपनेको देकर ही उसे सुखी करना चाहती है। श्रीगोपियोंमें यह भाव भी भलीभाँति प्रस्फुटित था। इसी विशेषताके कारण संस्कृत-साहित्यके कई ग्रन्थोंमें निरन्तर चिन्तनके उदाहरणस्वरूप परकीयाभावका वर्णन आता है।

गोपियोंके इस भावके एक नहीं, अनेक दृष्टान्त श्रीमद्भागवतमें मिलते हैं; इसलिये गोपियोंपर परकीयापनका आरोप उनके भावको न समझनेके कारण है। जिसके जीवनमें साधारण धर्मकी एक हलकी-सी प्रकाशरेखा आ जाती है उसीका जीवन परम पवित्र और दूसरोंके लिये आदर्शस्वरूप बन जाता है। फिर वे गोपियाँ, जिनका जीवन साधनाकी चरम सीमापर पहुँच चुका है, अथवा जो नित्यसिद्धा एवं भगवान्की स्वरूपभूता हैं, या जिन्होंने कल्पोंतक साधना करके श्रीकृष्णकी कृपासे उनका सेवाधिकार प्राप्त कर लिया है, सदाचारका उल्लङ्घन कैसे कर सकती हैं और समस्त धर्म-मर्यादाओंके संस्थापक श्रीकृष्णपर धर्मोल्लङ्घनका लाञ्छन कैसे लगाया जा सकता है? श्रीकृष्ण और गोपियोंके सम्बन्धमें इस प्रकारकी कुकल्पनाएँ उनके दिव्य स्वरूप और दिव्यलीलाके विषयमें अनभिज्ञता ही प्रकट करती हैं।

श्रीमद्भागवतपर, दशम स्कन्धपर और रासपञ्चाध्यायीपर अबतक अनेकानेक भाष्य और टीकाएँ लिखी जा चुकी हैं—जिनके लेखकोंमें जगद्गुरु श्रीवल्लभाचार्य, श्रीश्रीधरस्वामी, श्रीजीवगोस्वामी आदि हैं। उन लोगोंने बड़े विस्तारसे रासलीलाकी महिमा समझायी है। किसीने इसे कामपर विजय बतलाया है, किसीने भगवान्का दिव्य विहार बतलाया है और किसीने इसका आध्यात्मिक अर्थ किया है। भगवान् श्रीकृष्ण आत्मा हैं। आत्माकार वृत्ति श्रीराधा हैं और शेष आत्माभिमुख वृत्तियाँ गोपियाँ हैं। उनका धाराप्रवाहरूपसे निरन्तर आत्मरमण ही रास है। किसी भी दृष्टिसे देखें, रासलीलाकी महिमा अधिकाधिक प्रकट होती है।

परन्तु इससे ऐसा नहीं मानना चाहिये कि श्रीमद्भागवतमें वर्णित रास या रमण-प्रसङ्ग केवल रूपक या कल्पना-मात्र है। वह सर्वथा सत्य है और जैसा वर्णन है वैसा ही मिलन-विलासादिरूप शृङ्गारका रसास्वादन भी हुआ था। भेद इतना ही है कि वह लौकिक स्त्री-पुरुषोंका मिलन न था। उसके नायक थे सच्चिदानन्दविग्रह, परात्परतत्त्व, पूर्णतम स्वाधीन और निरङ्कुश स्वेच्छाविहारी गोपीनाथ भगवान् नन्दनन्दन, और नायिका थीं स्वयं ह्लादिनीशक्ति श्रीराधाजी और उनकी कायव्यूहरूपा, उनकी घनीभूत मूर्तियाँ श्रीगोपीजन। अतएव इनकी यह लीला अप्राकृत थी। सर्वथा मीठी मिश्रीकी अत्यन्त कड़ुए इन्द्रायण (तूँबे)-जैसी कोई आकृति बना ली जाय, जो देखनेमें ठीक तूँबे-जैसी ही मालूम हो; परन्तु इससे असलमें क्या वह मिश्रीका तूँबा कड़ुवा थोड़े ही हो जाता है? क्या तूँबेके आकारकी होनेसे ही मिश्रीके स्वाभाविक गुण मधुरताका अभाव हो जाता है? नहीं-नहीं, वह किसी भी आकारमें हो—सर्वत्र, सर्वदा और सर्वथा केवल मिश्री-ही-मिश्री है। बल्कि इसमें लीला-चमत्कारकी बात जरूर है। लोग समझते हैं कड़ुआ तूँबा, और होती है वह मधुर मिश्री। इसी प्रकार अखिलरसामृतसिन्धु सच्चिदानन्दविग्रह भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी अन्तरङ्गा अभिन्नस्वरूपा गोपियोंकी लीला भी देखनेमें कैसी ही क्यों न हो, वस्तुतः वह सच्चिदानन्दमयी ही है। उसमें सांसारिक गंदे कामका कड़ुवा स्वाद है ही नहीं। हाँ, यह अवश्य है कि इस लीलाकी नकल किसीको नहीं करनी चाहिये, करना सम्भव भी नहीं है। मायिक पदार्थोंके द्वारा मायातीत भगवान्का अनुकरण कोई कैसे कर सकता है? कड़ुए तूँबेको चाहे जैसी सुन्दर मिठाईकी आकृति दे दी जाय, उसका कड़ुआपन कभी मिट नहीं सकता। इसीलिये जिन मोहग्रस्त मनुष्योंने श्रीकृष्णकी रास आदि अन्तरङ्ग-लीलाओंका अनुकरण करके नायक-नायिकाका रसास्वादन करना चाहा या चाहते हैं, उनका घोर पतन हुआ है और होगा। श्रीकृष्ण-की इन लीलाओंका अनुकरण तो केवल श्रीकृष्ण ही कर सकते हैं। इसीलिये शुकदेवजीने रासपञ्चाध्यायीके अन्तमें सबको सावधान करते हुए कह दिया है कि भगवान्के उपदेश तो सब मानने चाहिये, परन्तु उनके सभी आचरणोंका अनुकरण नहीं करना चाहिये।

जो लोग भगवान् श्रीकृष्णको केवल मनुष्य मानते हैं, और केवल मानवीय भाव एवं आदर्शोंकी कसौटीपर उनके चरित्रको कसना चाहते हैं वे पहले ही शास्त्रसे विमुख हो जाते हैं, उनके चित्तमें धर्मकी कोई धारणा ही नहीं रहती और वे भगवान्को भी अपनी बुद्धिके पीछे चलाना चाहते हैं। इसलिये साधकोंके सामने उनकी उक्ति-युक्तियोंका कोई महत्त्व ही नहीं रहता। जो शास्त्रके 'श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं' इस वचनको नहीं मानता, वह उनकी लीलाओंको किस आधारपर सत्य मानकर उनकी आलोचना करता है—यह समझमें नहीं आता। जैसे मानवधर्म, देवधर्म और पशुधर्म पृथक्-पृथक् होते हैं, वैसे ही भगवद्धर्म भी पृथक् होता है और भगवान्के चरित्रका परीक्षण उसकी ही कसौटीपर होना चाहिये। भगवान्का एकमात्र धर्म है—प्रेम-परवशता, दयापरवशता और भक्तोंकी अभिलाषाकी पूर्ति। यशोदाके हाथोंसे ऊखलमें बँध जानेवाले श्रीकृष्ण अपने निजजन गोपियोंके प्रेमके कारण उनके साथ नाचे, यह उनका सहज धर्म है।

यदि यह हठ ही हो कि श्रीकृष्णका चरित्र मानवीय धारणाओं और आदर्शोंके अनुकूल ही होना चाहिये, तो इसमें भी कोई आपत्तिकी बात नहीं है। श्रीकृष्णकी अवस्था उस समय दस वर्षके लगभग थी, जैसा कि

भागवतमें स्पष्ट वर्णन मिलता है। गाँवोंमें रहनेवाले बहुत-से दस वर्षके बच्चे तो नंगे ही रहते हैं। उन्हें काम-वृत्ति और स्त्री-पुरुष-सम्बन्धका कुछ ज्ञान ही नहीं रहता। लड़के-लड़की एक साथ खेलते हैं, नाचते हैं, गाते हैं, त्यौहार मनाते हैं, गुड्डुई-गुड्डएकी शादी करते हैं, बारात ले जाते हैं और आपसमें भोज-भात भी करते हैं। गाँवके बड़े-बूढे लोग बच्चोंका यह मनोरञ्जन देखकर प्रसन्न ही होते हैं, उनके मनमें किसी प्रकारका दुर्भाव नहीं आता। ऐसे बच्चोंको युवती स्त्रियाँ भी बड़े प्रेमसे देखती हैं, आदर करती हैं, नहलाती हैं, खिलाती हैं। यह तो साधारण बच्चोंकी बात है। श्रीकृष्ण-जैसे असाधारण धी-शक्तिसम्पन्न बालक जिनके अनेक सद्गुण बाल्यकालमें ही प्रकट हो चुके थे, जिनकी सम्मति, चातुर्य और शक्तिसे बड़ी-बड़ी विपत्तियोंसे व्रजवासियोंने त्राण पाया था; उनके प्रति वहाँकी स्त्रियों, बालिकाओं और बालकोंका कितना आदर रहा होगा—इसकी कल्पना नहीं की जा सकती। उनके सौन्दर्य, माधुर्य और ऐश्वर्यसे आकृष्ट होकर गाँवकी बालक-बालिकाएँ उनके साथ ही रहती थीं और श्रीकृष्ण भी अपनी मौलिक प्रतिभासे राग, ताल आदि नये-नये ढंगसे उनका मनोरञ्जन करते थे और उन्हें शिक्षा देते थे। ऐसे ही मनोरञ्जनोंमेंसे रासलीला भी एक थी, ऐसा समझना चाहिये। जो श्रीकृष्णको केवल मनुष्य समझते हैं, उनकी दृष्टिमें भी यह दोषकी बात नहीं होनी चाहिये। वे उदारता और बुद्धिमानीके साथ भागवतमें आये हुए काम-रति आदि शब्दोंका ठीक वैसा ही अर्थ समझें, जैसा कि उपनिषद् और गीतामें इन शब्दोंका अर्थ होता है। वास्तवमें गोपियोंके निष्कपट प्रेमका ही नामान्तर काम है और भगवान् श्रीकृष्णका आत्मरमण अथवा उनकी दिव्य क्रीड़ा ही रति है। इसीलिये स्थान-स्थानपर उनके लिये विभु, परमेश्वर, लक्ष्मीपति, भगवान्, योगेश्वरेश्वर, आत्माराम, मन्मथमन्मथ आदि शब्द आये हैं—जिससे किसीको कोई भ्रम न हो जाय।

जब गोपियाँ श्रीकृष्णकी वंशीध्वनि सुनकर वनमें जाने लगी थीं, तब उनके सगे-सम्बन्धियोंने उन्हें जानेसे रोका था। रातमें अपनी बालिकाओंको भला, कौन बाहर जाने देता। फिर भी वे चली गयीं और इससे घर-वालोंको किसी प्रकारकी अप्रसन्नता नहीं हुई। और न तो उन्होंने श्रीकृष्णपर या गोपियोंपर किसी प्रकारका लाञ्छन ही लगाया। उनका श्रीकृष्णपर, गोपियोंपर विश्वास था और वे उनके बचपन और खेलोंसे परिचित थे। उन्हें तो ऐसा मालूम हुआ मानो गोपियाँ हमारे पास ही हैं। इसको दो प्रकारसे समझ सकते हैं। एक तो यह कि श्रीकृष्णके प्रति उनका इतना विश्वास था कि श्रीकृष्णके पास गोपियोंका रहना भी अपने ही पास रहना है। यह तो मानवीय दृष्टि है। दूसरी दृष्टि यह कि श्रीकृष्णकी योगमायाने ऐसी व्यवस्था कर रक्खी थी, गोपोंको वे घरमें ही दीखती थीं। किसी भी दृष्टिसे रासलीला दूषित प्रसङ्ग नहीं है, बल्कि अधिकारी पुरुषोंके लिये तो यह सम्पूर्ण मनोमलको नष्ट करनेवाला है। रासलीलाके अन्तमें कहा गया है कि जो पुरुष श्रद्धा-भक्तिपूर्वक रास-लीलाका श्रवण और वर्णन करता है, उसके हृदयका रोग काम बहुत ही शीघ्र नष्ट हो जाता है और उसे भगवान्का प्रेम प्राप्त होता है। भागवतमें अनेक स्थानपर ऐसा वर्णन आता है कि जो भगवान्की मायाका वर्णन करता है, वह मायासे पार हो जाता है। जो भगवान्के कामजयका वर्णन करता है, वह कामपर विजय प्राप्त करता है। राजा परीक्षित्ने अपने प्रश्नोंमें जो शङ्काएँ की हैं, उनका उत्तर प्रश्नोंके अनुरूप ही अध्याय २९ के श्लोक १३ से १६ तक और अध्याय ३३ के श्लोक ३० से ३७ तक श्रीशुकदेवजीने दिया है।

उस उत्तरसे वे शङ्काएँ तो हट गयी हैं, परन्तु भगवान्की दिव्यलीलाका रहस्य नहीं खुलने पाया; सम्भवतः उस रहस्यको गुप्त रखनेके लिये ही ३३ वें अध्यायमें रासलीलाप्रसङ्ग समाप्त कर दिया गया। वस्तुतः इस लीलाके गूढ़ रहस्यकी प्राकृत-जगत्में व्याख्या की भी नहीं जा सकती। क्योंकि यह इस जगत्की क्रीडा ही नहीं है। यह तो उस दिव्य आनन्दमय रसमय राज्यकी चमत्कारमयी लीला है, जिसके श्रवण और दर्शनके लिये परमहंस मुनिगण भी सदा उत्कण्ठित रहते हैं। कुछ लोग इस लीला-प्रसङ्गको भागवतमें क्षेपक मानते हैं, वे

चौंतीसवाँ अध्याय

सुदर्शन और शङ्खचूडका उद्धार

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! एक बार नन्दबाबा आदि गोपोंने शिवरात्रिके अवसरपर बड़ी उत्सुकता, कौतूहल और आनन्दसे भरकर बैलोंसे जुती हुई गाड़ियोंपर सवार होकर अम्बिकावनकी यात्रा की ॥ १ ॥ राजन् ! वहाँ उन लोगोंने सरस्वती नदीमें स्नान किया और सर्वान्तर्यामी पशुपति भगवान् शङ्करजीका तथा भगवती अम्बिकाजीका बड़ी भक्तिसे अनेक प्रकारकी सामग्रियोंके द्वारा पूजन किया ॥ २ ॥ वहाँ उन्होंने आदरपूर्वक गौएँ, सोना, वस्त्र, मधु और मधुर अन्न ब्राह्मणोंको दिये तथा उनको खिलाया-पिलाया। वे केवल यही चाहते थे कि इससे देवाधिदेव भगवान् शङ्कर हमपर प्रसन्न हों ॥ ३ ॥ उस दिन परम भाग्यवान् नन्द-सुनन्द आदि गोपोंने उपवास कर रक्खा था, इसलिये वे लोग केवल जल पीकर रातके समय सरस्वती नदीके तटपर ही बेखटके सो गये ॥ ४ ॥

उस अम्बिकावनमें एक बड़ा भारी अजगर रहता था। उस दिन वह भूखा भी बहुत था। दैववश वह उधर ही आ निकला और उसने सोये हुए नन्दजीको पकड़ लिया ॥५॥ अजगरके पकड़ लेनेपर नन्दरायजी चिल्लाने लगे—'बेटा कृष्ण ! कृष्ण ! दौड़ो, दौड़ो ! देखो बेटा ! यह अजगर मुझे निगल रहा है। मैं तुम्हारी शरणमें हूँ। जल्दी-मुझे इस सङ्कटसे बचाओ' ॥६॥ नन्दबाबाका चिल्लाना सुनकर सब-के-सब गोप एकाएक उठ खड़े हुए और उन्हें अजगरके मुँहमें देखकर घबड़ा गये। अब वे लुकाठियों (अधजली लकड़ियों) से उस अजगरको मारने लगे ॥ ७ ॥ किन्तु लुकाठियोंसे मारे जाने और जलनेपर भी अजगरने नन्दबाबाको छोड़ा नहीं। इतनेमें ही भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्णने वहाँ पहुँचकर अपने चरणोंसे उस अजगरको छू दिया ॥८॥ भगवान्‌के श्रीचरणोंका स्पर्श होते ही अजगरके सारे अशुभ भस्म हो गये और वह उसी क्षण अजगरका शरीर छोड़कर विद्याधरार्चित सर्वाङ्गसुन्दर रूपवान् बन गया ॥ ९ ॥ उस पुरुषके शरीरसे दिव्यज्योति निकल रही थी। वह सोनेके हार पहने हुए था। जब वह प्रणाम करनेके बाद हाथ जोड़कर भगवान्‌के सामने खड़ा हो गया, तब उन्होंने उससे पूछा—॥१०॥ 'तुम कौन हो ? तुम्हारे अङ्ग-अङ्गसे सुन्दरता फूटी पड़ती है। तुम देखनेमें बड़े अद्भुत जान पड़ते हो। तुम्हें यह अत्यन्त निन्दनीय अजगर-योनि क्यों प्राप्त हुई थी ? अवश्य ही तुम्हें विवश होकर इसमें आना पड़ा होगा' ॥११॥

अजगरके शरीरसे निकला हुआ पुरुष बोला—भगवन् ! मैं पहले एक विद्याधर था। मेरा नाम था सुदर्शन। मेरे पास सौन्दर्य तो था ही, लक्ष्मी भी बहुत थी। इससे मैं विमानपर चढ़कर यहाँ-से-वहाँ घूमता रहता था ॥ १२ ॥ एक दिन मैंने अङ्गिरा गोत्रके कुरूप ऋषियोंको देखा। अपने सौन्दर्यके घमंडसे मैंने उनकी हँसी उड़ायी। मेरे इस अपराधसे कुपित होकर उन लोगोंने मुझे अजगर-योनिमें जानेका शाप दे दिया। यह मेरे पापोंका ही फल था ॥ १३ ॥ उन कृपालु ऋषियोंने अनुग्रहके लिये ही मुझे शाप दिया था। क्योंकि यह उसीका प्रभाव है कि आज चराचरके गुरु स्वयं आपने अपने चरणकमलोंसे मेरा स्पर्श किया है, इससे मेरे सारे अशुभ

वास्तवमें दुराग्रह करते हैं। क्योंकि प्राचीन-से-प्राचीन प्रतियोंमें भी यह प्रसङ्ग मिलता है और जरा विचार करके देखनेसे यह सर्वथा सुसंगत और निर्दोष प्रतीत होता है। भगवान् श्रीकृष्ण कृपा करके ऐसी विमल बुद्धि दें, जिससे हमलोग इसका कुछ रहस्य समझनेमें समर्थ हों।

भगवान्‌के इस दिव्य-लीलाके वर्णनका यही प्रयोजन है कि जीव गोपियोंके उस अहैतुक प्रेमका, जो कि श्रीकृष्णको ही सुख पहुँचानेके लिये था, स्मरण करे और उसके द्वारा भगवान्‌के रसमय दिव्यलीलालोकमें भगवान्‌के अनन्त प्रेमका अनुभव करे। हमें रासलीलाका अध्ययन करते समय किसी प्रकारकी भी शङ्का न करके इस भावको जगाये रखना चाहिये। —हनुमानप्रसाद पोद्दार

नष्ट हो गये ॥ १४ ॥ समस्त पापोंका नाश करनेवाले प्रभो ! जो लोग जन्म-मृत्युरूप संसारसे भयभीत होकर आपके चरणोंकी शरण ग्रहण करते हैं, उन्हें आप समस्त भयोंसे मुक्त कर देते हैं । अब मैं आपके श्रीचरणोंके स्पर्शसे शापसे छूट गया हूँ और अपने लोकमें जानेकी अनुमति चाहता हूँ ।१५। भक्तवत्सल ! महायोगेश्वर पुरुषोत्तम ! मैं आपकी शरणमें हूँ । इन्द्रादि समस्त लोकेश्वरोंके परमेश्वर ! स्वयंप्रकाश परमात्मन् ! मुझे आज्ञा दीजिये ।१६। अपने स्वरूपमें नित्य-निरन्तर एकरस रहनेवाले अच्युत ! आपके दर्शनमात्रसे मैं ब्राह्मणोंके शापसे मुक्त हो गया, यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है; क्योंकि जो पुरुष आपके नामोंका उच्चारण करता है, वह अपने-आपको और समस्त श्रोताओंको भी तुरंत पवित्र कर देता है । फिर मुझे तो आपने स्वयं अपने चरणकमलोंसे स्पर्श किया है । तब भला, मेरी मुक्तिमें क्या सन्देह हो सकता है ? ॥१७॥ इस प्रकार सुदर्शनने भगवान् श्रीकृष्णसे विनती की, परिक्रमा की और प्रणाम किया । फिर उनसे आज्ञा लेकर वह अपने लोकमें चला गया और नन्दबाबा इस भारी सङ्कटसे छूट गये ॥ १८ ॥ राजन् ! जब व्रजवासियोंने भगवान् श्रीकृष्णका यह अद्भुत प्रभाव देखा, तब उन्हें बड़ा विस्मय हुआ । उन लोगोंने उस क्षेत्रमें जो नियम ले रक्खे थे, उनको पूर्ण करके वे बड़े आदर और प्रेमसे श्रीकृष्णकी उस लीलाका गान करते हुए पुनः व्रजमें लौट आये ॥ १९ ॥

एक दिनकी बात है, अलौकिक कर्म करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी रात्रिके समय वनमें गोपियोंके साथ विहार कर रहे थे ॥ २० ॥ भगवान् श्रीकृष्ण निर्मल पीताम्बर और बलरामजी नीलाम्बर धारण किये हुए थे । दोनोंके गलेमें फूलोंके सुन्दर-सुन्दर हार लटक रहे थे तथा शरीरमें अङ्गराग, सुगन्धित चन्दन लगा हुआ था और सुन्दर-सुन्दर आभूषण पहने हुए थे । गोपियाँ बड़े प्रेम और आनन्दसे ललित स्वरमें उन्हींके गुणोंका गान कर रही थीं ॥ २१ ॥ अभी-अभी सायङ्काल हुआ था । आकाशमें तारे उग आये थे और चाँदनी छिटक रही थी । बेलाके सुन्दर गन्धसे मतवाले होकर भौंरे इधर-उधर गुनगुना रहे थे तथा जलाशयमें खिली हुई कुमुदिनीकी सुगन्ध लेकर वायु मन्द-मन्द चल रही थी । उस समय उनका सम्मान करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीने एक ही साथ मिलकर राग अलापा । उनका राग आरोह-अवरोह स्वरोंके चढ़ाव-उतारसे बहुत ही सुन्दर लग रहा था । वह जगत्के समस्त प्राणियोंके मन और कानोंको आनन्दसे भर देनेवाला था ॥ २२-२३ ॥ उनका यह गान सुनकर गोपियाँ मोहित हो गयीं । परीक्षित् ! उन्हें अपने शरीरकी भी सुधि नहीं रही कि वे उसपरसे खिसकते हुए वस्त्रों और चोटियोंसे बिखरते हुए पुष्पोंको सम्हाल सकें ॥ २४ ॥

जिस समय बलराम और श्याम दोनों भाई इस प्रकार स्वच्छन्द विहार कर रहे थे और उन्मत्तकी भाँति गा रहे थे, उसी समय वहाँ शङ्खचूड नामका एक यक्ष आया । वह कुबेरका अनुचर था ॥ २५ ॥ परीक्षित् ! दोनों भाइयोंके देखते-देखते वह उन गोपियोंको लेकर बेखटके उत्तरकी ओर भाग चला । जिनके एकमात्र स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं, वे गोपियाँ उस समय रो-रोकर चिल्लाने लगीं ॥ २६ ॥ दोनों भाइयोंने देखा कि जैसे कोई डाकू गौओंको लूट ले जाय, वैसे ही यह यक्ष हमारी प्रेयसियोंको लिये जा रहा है और वे 'हा कृष्ण ! हा राम !' पुकारकर रो-पीट रही हैं । उसी समय दोनों भाई उसकी ओर दौड़ पड़े ॥२७॥ 'डरो मत, डरो मत' इस प्रकार अभयवाणी कहते हुए हाथमें शालका वृक्ष लेकर बड़े वेगसे क्षणभरमें ही उस नीच यक्षके पास पहुँच गये ॥२८॥ यक्षने देखा कि काल और मृत्युके समान ये दोनों भाई मेरे पास आ पहुँचे । तब वह मूढ़ घबड़ा गया । उसने गोपियोंको तो वहीं छोड़ दिया, स्वयं प्राण बचानेके लिये भागा ॥२९॥ तब स्त्रियोंकी रक्षा करनेके लिये बलरामजी तो वहीं खड़े रह गये, परन्तु भगवान् श्रीकृष्ण जहाँ-जहाँ वह भागकर गया, उसके पीछे-पीछे दौड़ते गये । वे चाहते थे कि उसके सिरकी चूड़ामणि निकाल लें ॥३०॥ कुछ ही दूर जानेपर भगवान्ने उसे पकड़ लिया और उस दुष्टके सिरपर कसकर एक घूँसा जमाया और चूड़ामणिके साथ उसका सिर भी धड़से अलग कर

लिया ॥ ३१ ॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण शङ्खचूडको मारकर और वह चमकीली मणि लेकर लौट आये तथा सब गोपियोंके सामने ही उन्होंने बड़े प्रेमसे वह मणि बड़े भाई बलरामजीको दे दी ॥ ३२ ॥

पैंतीसवाँ अध्याय

युगलगीत

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णके गौओंको चरानेके लिये प्रतिदिन वनमें चले जानेपर उनके साथ गोपियोंका चित्त भी चला जाता था। उनका मन श्रीकृष्णका चिन्तन करता रहता और वे वाणीसे उनकी लीलाओंका गान करती रहतीं। इस प्रकार वे बड़ी कठिनाईसे अपना दिन बितातीं ॥ १ ॥

गोपियाँ आपसमें कहतीं—अरी सखी ! अपने प्रेमीजनोंको प्रेम वितरण करनेवाले और द्वेष करनेवालोंतकको मोक्ष दे देनेवाले श्यामसुन्दर नटनागर जब अपने बायें कपोलको बायीं बाँहकी ओर लटका देते हैं और अपनी भौंहें नचाते हुए बाँसुरीको अधरोंसे लगाते हैं तथा अपनी सुकुमार अंगुलियोंको उसके छेदोंपर फिराते हुए मधुर तान छेड़ते हैं, उस समय सिद्धपत्नियाँ आकाशमें अपने पति सिद्धगणोंके साथ विमानोंपर चढ़कर आ जाती हैं और उस तानको सुनकर अत्यन्त ही चकित तथा विस्मित हो जाती हैं। पहले तो उन्हें अपने पतियोंके साथ रहनेपर भी चित्तकी यह दशा देखकर लज्जा मालूम होती है; परन्तु क्षणभरमे ही उनका चित्त कामबाणसे बिंध जाता है, वे विवश और अचेत हो जाती हैं। उन्हें इस बातकी भी सुधि नहीं रहती कि उनकी नीवी खुल गयी है और उनके वस्त्र खिसक गये हैं ॥ २-३ ॥

अरी गोपियो ! तुम यह आश्चर्यकी बात सुनो ! ये नन्दनन्दन कितने सुन्दर हैं। जब वे हँसते हैं तब हास्यरेखाएँ हारका रूप धारण कर लेती हैं, शुभ्र मोती-सी चमकने लगती हैं। अरी वीर ! उनके वक्षःस्थलपर लहराते हुए हारमें हास्यकी किरणें चमकने लगती हैं। उनके वक्षःस्थलपर जो श्रीवत्सकी सुनहली रेखा है, वह तो ऐसी जान पड़ती है, मानो श्याम मेघपर बिजली ही स्थिररूपसे बैठ गयी है। वे जब दुःखीजनोंको सुख देनेके लिये, विरहियोंके मृतक शरीरमें प्राणोंका सञ्चार करनेके लिये बाँसुरी बजाते हैं, तब व्रजके झुंड-के-झुंड बैल, गौएँ और हरिन उनके पास ही दौड़ आते हैं। केवल आते ही नहीं, सखी ! दाँतोंसे चबाया हुआ घासका ग्रास उनके मुँहमें ज्यों-का-त्यों पड़ा रह जाता है, वे उसे न निगल पाते और न तो उगल ही पाते हैं। दोनों कान खड़े करके इस प्रकार स्थिरभावसे खड़े हो जाते हैं, मानो सो गये हैं या केवल भीतपर लिखे हुए चित्र हैं। उनकी ऐसी दशा होना स्वाभाविक ही है, क्योंकि यह बाँसुरीकी तान उनके चित्तको चुरा लेती है ॥ ४-५ ॥

हे सखि ! जब वे नन्दके लाड़ले लाल अपने सिरपर मोरपंखका मुकुट बाँध लेते हैं, घुँघराली अलकोंमें फूलके गुच्छे खोंस लेते हैं, रंगीन धातुओंसे अपना अङ्ग-अङ्ग रँग लेते हैं और नये-नये पल्लवोंसे ऐसा वेष सजा लेते है, जैसे कोई बहुत बड़ा पहलवान हो और फिर बलरामजी तथा ग्वालबालोंके साथ बाँसुरीमें गौओंका नाम ले-लेकर उन्हें पुकारते हैं; उस समय प्यारी सखियो ! नदियोंकी गति भी रुक जाती है। वे चाहती हैं कि वायु उड़ाकर हमारे प्रियतमके चरणोंकी धूलि हमारे पास पहुँचा दे और उसे पाकर हम निहाल हो जायँ, परन्तु सखियो ! वे भी हमारे-ही-जैसी मन्दभागिनी हैं। जैसे नन्दनन्दन श्रीकृष्णका आलिङ्गन करते समय हमारी भुजाएँ काँप जाती है और जड़तारूप सञ्चारीभावका उदय हो जानेसे हम अपने हाथोंको हिला भी नहीं पातीं, वैसे ही वे भी प्रेमके कारण काँपने लगती हैं। दो-चार बार अपनी तरङ्गरूप भुजाओंको काँपते-काँपते उठाती तो अवश्य हैं, परन्तु फिर विवश होकर स्थिर हो जाती हैं, प्रेमावेशसे स्तम्भित हो जाती हैं ॥ ६-७ ॥

अरी वीर ! जैसे देवता लोग अनन्त और अचिन्त्य ऐश्वर्योंके स्वामी भगवान् नारायणकी शक्तियोंका गान

करते हैं, वैसे ही ग्वालबाल अनन्तसुन्दर नटनागर श्रीकृष्णकी लीलाओंका गान करते रहते हैं। वे अचिन्त्य-ऐश्वर्य-सम्पन्न श्रीकृष्ण जब वृन्दावनमें विहार करते रहते हैं और बाँसुरी बजाकर गिरिराज गोवर्धनकी तराईमें चरती हुई गौओंको नाम ले-लेकर पुकारते हैं, उस समय वनके वृक्ष और लताएँ फूल और फलोंसे लद जाती हैं, उनके भारसे डालियाँ झुककर धरती छूने लगती हैं, मानो प्रणाम कर रही हों, वे वृक्ष और लताएँ अपने भीतर भगवान् विष्णुकी अभिव्यक्ति सूचित करती हुई-सी प्रेमसे फूल उठती हैं, उनका रोम-रोम खिल जाता है और सब-की-सब मधुधाराएँ उँड़ेलने लगती हैं॥ ८-९॥

अरी सखी! जितनी भी वस्तुएँ संसारमें या उसके बाहर देखनेयोग्य हैं, उनमें सबसे सुन्दर, सबसे मधुर, सबके शिरोमणि हैं—ये हमारे मनमोहन। उनके साँवले ललाटपर केसरकी खौर कितनी फबती है—बस, देखती ही जाओ! गलेमें घुटनोंतक लटकती हुई वन-माला, उसमें पिरोयी हुई तुलसीकी दिव्य गन्ध और मधुर मधुसे मतवाले होकर झुंड-के-झुंड भौंरे बड़े मनोहर एवं उच्च स्वरसे गुंजार करते रहते हैं। हमारे नटनागर श्यामसुन्दर भौंरोंकी उस गुनगुनाहटका आदर करते हैं और उन्हींके स्वरमें-स्वर मिलाकर अपनी बाँसुरी फूँकने लगते हैं। उस समय सखि! उस मुनिजनमोहन संगीतको सुनकर सरोवरमें रहनेवाले सारस-हंस आदि पक्षियोंका भी चित्त उनके हाथसे निकल जाता है, छिन जाता है। वे विवश होकर प्यारे श्यामसुन्दरके पास आ बैठते हैं तथा आँखें मूँद, चुपचाप, चित्त एकाग्र करके उनकी आराधना करने लगते हैं—मानो कोई विहङ्गम-वृत्तिके रसिक परमहंस ही हों, भला कहो तो यह कितने आश्चर्यकी बात है! ॥ १०-११ ॥

अरी व्रजदेवियो! हमारे श्यामसुन्दर जब पुष्पोंके कुण्डल बनाकर अपने कानोंमें धारण कर लेते हैं और बलरामजीके साथ गिरिराजके शिखरोंपर खड़े होकर सारे जगत्को हर्षित करते हुए बाँसुरी बजाने लगते हैं—बाँसुरी क्या बजाते हैं, आनन्दमें भरकर उसकी ध्वनिके द्वारा सारे विश्वका आलिङ्गन करने लगते हैं—उस समय श्याम मेघ बाँसुरीकी तानके साथ मन्द-मन्द गरजने लगता है। उसके चित्तमें इस बातकी शङ्का बनी रहती है कि कहीं मैं जोरसे गर्जना कर उठूँ और वह कहीं बाँसुरीकी तानके विपरीत पड़ जाय, उसमें बेसुरापन ले आये, तो मुझसे महात्मा श्रीकृष्णका अपराध हो जायगा। सखी! वह इतना ही नहीं करता; वह जब देखता है कि हमारे सखा घनश्यामको घाम लग रहा है, तब वह उनके ऊपर आकर छाया कर लेता है, उनका छत्र बन जाता है। अरी वीर! वह तो प्रसन्न होकर बड़े प्रेमसे उनके ऊपर अपना जीवन ही निछावर कर देता है—नन्हीं-नन्हीं फुहियोंके रूपमें ऐसा बरसने लगता है, मानो दिव्य पुष्पोंकी वर्षा कर रहा हो। कभी-कभी बादलोंकी ओटमें छिपकर देवतालोग भी पुष्पवर्षा कर जाया करते हैं॥ १२-१३ ॥

सतीशिरोमणि यशोदाजी! तुम्हारे सुन्दर कुँवर ग्वालबालोंके साथ खेल खेलनेमें बड़े निपुण हैं। रानीजी! तुम्हारे लाडले लाल सबके प्यारे तो हैं ही, चतुर भी बहुत हैं। देखो, उन्होंने बाँसुरी बजाना किसीसे सीखा नहीं। अपने ही अनेकों प्रकारकी राग-रागिनियाँ उन्होंने निकाल लीं। जब वे अपने बिम्बा-फलसदृश लाल-लाल अधरोंपर बाँसुरी रखकर ऋषभ, निषाद आदि स्वरोंकी अनेक जातियाँ बजाने लगते हैं, उस समय वंशीकी परम मोहिनी और नयी तान सुनकर ब्रह्मा, शङ्कर और इन्द्र आदि बड़े-बड़े देवता भी—जो सर्वज्ञ हैं—उसे नहीं पहचान पाते। वे इतने मोहित हो जाते हैं कि उनका चित्त तो उनके रोकनेपर भी उनके हाथसे निकलकर वंशी-ध्वनिमें तल्लीन हो ही जाता है, सिर भी झुक जाता है, और वे अपनी सुध-बुध खोकर उसीमें तन्मय हो जाते हैं॥ १४-१५ ॥

अरी वीर! उनके चरणकमलोंमें ध्वजा, वज्र, कमल अङ्कुश आदिके विचित्र और सुन्दर-सुन्दर चिह्न हैं। जब व्रजभूमि गौओंके खुरसे खुद जाती है, तब वे अपने सुकुमार चरणोंसे उसकी पीड़ा मिटाते हुए गज-राजके समान मन्दगतिसे आते हैं और बाँसुरी भी बजाते रहते हैं। उनकी वह वंशीध्वनि, उनकी वह चाल और उनकी वह विलासभरी चितवन हमारे हृदयमें प्रेमका,

मिलनकी आकांक्षाका आवेग बढ़ा देती है। हम उस समय इतनी मुग्ध, इतनी मोहित हो जाती हैं कि हिल-डोलतक नहीं सकतीं, मानो हम जड वृक्ष हों! हमें तो इस बातका भी पता नहीं चलता कि हमारा जूड़ा खुल गया है या बँधा है, हमारे शरीरपरका वस्त्र उतर गया है या है॥ १६-१७॥

अरी वीर! उनके गलेमें मणियोंकी माला बहुत ही भली मालूम होती है। तुलसीकी मधुर गन्ध उन्हें बहुत प्यारी है। इसीसे तुलसीकी मालाको तो वे कभी छोड़ते ही नहीं, सदा धारण किये रहते हैं। जब वे श्यामसुन्दर उस मणियोंकी मालासे गौओंकी गिनती करते-करते किसी प्रेमी सखाके गलेमें बाँह डाल देते हैं और भाव बता-बताकर बाँसुरी बजाते हुए गाने लगते हैं, उस समय बजती हुई उस बाँसुरीके मधुर स्वरसे मोहित होकर कृष्णसार मृगोंकी पत्नी हरिनियाँ भी अपना चित्त उनके चरणोंपर निछावर कर देती हैं और जैसे हम गोपियाँ अपने घर-गृहस्थीकी आशा-अभिलाषा छोड़कर गुणसागर नागर नन्दनन्दनको घेरे रहती हैं, वैसे ही वे भी उनके पास दौड़ आती हैं और वहीं एकटक देखती हुई खड़ी रह जाती हैं, लौटनेका नाम भी नहीं लेतीं॥ १८-१९॥

नन्दरानी यशोदाजी! वास्तवमें तुम बड़ी पुण्यवती हो। तभी तो तुम्हें ऐसे पुत्र मिले हैं। तुम्हारे वे लाड़ले लाल बड़े प्रेमी हैं, उनका चित्त बड़ा कोमल है। वे प्रेमी सखाओंको तरह-तरहसे हास-परिहास-के द्वारा सुख पहुँचाते हैं। कुन्दकलीका हार पहनकर जब वे अपनेको विचित्र वेषमें सजा लेते हैं और ग्वालबाल तथा गौओंके साथ यमुनाजीके तटपर खेलने लगते है, उस समय मलयज चन्दनके समान शीतल और सुगन्धित स्पर्शसे मन्द-मन्द अनुकूल बहकर वायु तुम्हारे लालकी सेवा करती है और गन्धर्व आदि उपदेवता वंदीजनोंके समान गा-बजाकर उन्हें सन्तुष्ट करते हैं तथा अनेकों प्रकारकी भेंटें देते हुए सब ओरसे घेरकर उनकी सेवा करते हैं॥ २०-२१॥

अरी सखी! श्यामसुन्दर व्रजकी गौओंसे बड़ा प्रेम करते हैं। इसीलिये तो उन्होंने गोवर्धन धारण किया था। अब वे सब गौओंको लौटाकर आते ही होंगे; देखो, सायङ्काल हो चला है। तब इतनी देर क्यों होती है, सखी? रास्तेमें बड़े-बड़े ब्रह्मा आदि वयोवृद्ध और शङ्कर आदि ज्ञानवृद्ध उनके चरणोंकी वन्दना जो करने लगते हैं! अब गौओंके पीछे-पीछे बाँसुरी बजाते हुए वे आते ही होंगे। ग्वालबाल उनकी कीर्तिका गान कर रहे होंगे। देखो न, यह क्या आ रहे हैं। गौओंके खुरोंसे उड़-उड़कर बहुत-सी धूल वनमालापर पड़ गयी है। वे दिनभर जंगलोंमें घूमते-घूमते थक गये हैं। फिर भी अपनी इस शोभासे हमारी आँखोंको कितना सुख, कितना आनन्द दे रहे हैं। देखो, ये यशोदाकी कोखसे प्रकट हुए सबको आह्लादित करने-वाले चन्द्रमा हम प्रेमी जनोंकी भलाईके लिये, हमारी आशा-अभिलाषाओंको पूर्ण करनेके लिये ही हमारे पास चले आ रहे हैं॥ २२-२३॥

सखी! देखो कैसा सौन्दर्य है! मदभरी आँखें कुछ चढ़ी हुई हैं। कुछ-कुछ ललाई लिये हुए कैसी भली जान पड़ती हैं। गलेमें वनमाला लहरा रही है। सोनेके कुण्डलोंकी कान्तिसे वे अपने कोमल कपोलों-को अलङ्कृत कर रहे हैं। इसीसे मुँहपर अधपके बेरके समान कुछ पीलापन जान पड़ता है। और रोम-रोमसे विशेष करके मुखकमलसे प्रसन्नता फूटी पड़ती है। देखो, अब वे अपने सखा ग्वालबालोंका सम्मान करके उन्हें विदा कर रहे हैं। देखो, देखो सखी! व्रज-विभूषण श्रीकृष्ण गजराजके समान मदभरी चालसे इस सन्ध्या वेलामें हमारी ओर आ रहे हैं। अब व्रजमें रहनेवाली गौओंका, हमलोगोंका दिनभरका असह्य विरह-ताप मिटानेके लिये उदित होनेवाले चन्द्रमाकी भाँति ये हमारे प्यारे श्यामसुन्दर समीप चले आ रहे हैं॥ २४-२५॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! बड़भागिनी गोपियोंका मन श्रीकृष्णमें ही लगा रहता था। वे श्रीकृष्णमय हो गयी थीं। जब भगवान् श्रीकृष्ण दिनमें गौओंको चरानेके लिये वनमें चले जाते, तब वे उन्हींका चिन्तन करती रहतीं और अपनी-अपनी सखियोंके साथ अलग-अलग उन्हींकी लीलाओंका गान करके उसीमें रम जातीं। इस प्रकार उनके दिन बीत जाते॥ २६॥

छत्तीसवाँ अध्याय

अरिष्टासुरका उद्धार और कंसका श्रीअक्रूरजीको व्रज भेजना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जिस समय भगवान् श्रीकृष्ण व्रजमे प्रवेश कर रहे थे और वहाँ आनन्दोत्सवकी धूम मची हुई थी, उसी समय अरिष्टासुर नामका एक दैत्य बैलका रूप धारण करके आया। उसका ककुद् (कंधेका पुट्ठा) या थुआ और डील-डौल दोनों ही बहुत बड़े-बड़े थे। वह अपने खुरोंको इतने जोरसे पटक रहा था कि उससे धरती काँप रही थी ॥ १ ॥ वह बड़े जोरसे गर्ज रहा था और पैरोंसे धूल उछालता जाता था। पूँछ खड़ी किये हुए था और सींगोंसे चहारदीवारी, खेतोंकी मेंड़ आदि तोड़ता जाता था ॥ २ ॥ बीच-बीचमें बार-बार मूतता और गोबर छोड़ता जाता था। आँखें फाड़कर इधर-उधर दौड़ रहा था। परीक्षित् ! उसके जोरसे हँकड़नेसे—निष्ठुर गर्जनासे भयवश स्त्रियों और गौओंके तीन-चार महीनेके गर्भ स्रवित हो जाते थे और पाँच-छः महीनेके गिर जाते थे। और तो क्या कहूँ, उसके ककुद्को पर्वत समझकर बादल उसपर आकर ठहर जाते थे ॥ ३-४ ॥ परीक्षित् ! उस तीखे सींगवाले बैलको देखकर गोपियाँ और गोप सभी भयभीत हो गये। पशु तो इतने डर गये कि अपने रहनेका स्थान छोड़कर भाग ही गये ॥ ५ ॥ उस समय सभी व्रजवासी 'श्रीकृष्ण ! श्रीकृष्ण ! हमें इस भयसे बचाओ' इस प्रकार पुकारते हुए भगवान् श्रीकृष्णकी शरणमें आये। भगवान्ने देखा कि हमारा गोकुल अत्यन्त भयातुर हो रहा है ॥ ६ ॥ तब उन्होंने 'डरनेकी कोई बात नहीं है'—यह कहकर सबको ढाढ़स बँधाया और फिर वृषासुरको ललकारा, 'अरे मूर्ख ! महादुष्ट ! तू इन गौओं और ग्वालोंको क्यों डरा रहा है ? इससे क्या होगा ॥ ७ ॥ देख, तुझ-जैसे दुरात्मा दुष्टोंके बलका घमंड चूर-चूर कर देनेवाला यह मैं हूँ।' इस प्रकार ललकारकर भगवान्ने ताल ठोंकी और उसे क्रोधित करनेके लिये वे अपने एक सखाके गलेमें बाँह डालकर खड़े हो गये। भगवान् श्रीकृष्णकी इस चुनौतीसे वह क्रोधके मारे तिलमिला उठा और अपने खुरोंसे बड़े जोरसे धरती खोदता हुआ श्रीकृष्णकी ओर झपटा। उस समय उसकी उठायी हुई पूँछके धक्केसे आकाशके बादल तितर-बितर होने लगे ॥ ८-९ ॥ उसने अपने तीखे सींग आगे कर लिये। लाल-लाल आँखोंसे टकटकी लगाकर श्रीकृष्णकी ओर टेढ़ी नजरसे देखता हुआ वह उनपर इतने वेगसे टूटा, मानो इन्द्रके हाथसे छोड़ा हुआ वज्र हो ॥ १० ॥ भगवान् श्रीकृष्णने अपने दोनों हाथोंसे उसके दोनों सींग पकड़ लिये और जैसे एक हाथी अपनेसे भिड़नेवाले दूसरे हाथीको पीछे हटा देता है, वैसे ही उन्होंने उसे अठारह पग पीछे ठेलकर गिरा दिया ॥ ११ ॥ भगवान्के इस प्रकार ठेल देनेपर वह फिर तुरत ही उठ खड़ा हुआ और क्रोधसे अचेत होकर लंबी-लंबी साँस छोड़ता हुआ फिर उनपर झपटा। उस समय उसका सारा शरीर पसीनेसे लथपथ हो रहा था ॥ १२ ॥ भगवान्ने जब देखा कि वह अब मुझपर प्रहार करना ही चाहता है, तब उन्होंने उसके सींग पकड़ लिये और उसे लात मारकर जमीनपर गिरा दिया और फिर पैरोंसे दबाकर इस प्रकार उसका कचूमर निकाला, जैसे कोई गीला कपड़ा निचोड़ रहा हो। इसके बाद उसीका सींग उखाड़कर उसको खूब पीटा, जिससे वह पड़ा ही रह गया ॥ १३ ॥ परीक्षित् ! इस प्रकार वह दैत्य मुँहसे खून उगलता और गोबर-मूत करता हुआ पैर पटकने लगा। उसकी आँखें उलट गयीं और उसने बड़े कष्टके साथ प्राण छोड़े। अब देवतालोग भगवान्पर फूल बरसा-बरसाकर उनकी स्तुति करने लगे ॥ १४ ॥ जब भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार बैलके रूपमें आनेवाले अरिष्टासुरको मार डाला, तब सभी गोप उनकी प्रशंसा करने लगे। उन्होंने बलरामजीके साथ गोष्ठमें प्रवेश किया और उन्हें देख-देखकर गोपियोंके नयन-मन आनन्दसे भर गये ॥ १५ ॥

परीक्षित् ! भगवान्की लीला अत्यन्त अद्भुत है। इधर जब उन्होंने अरिष्टासुरको मार डाला, तब भगवन्मय नारद, जो लोगोंको शीघ्र-से-शीघ्र भगवान्का दर्शन कराते रहते हैं, कंसके पास पहुँचे। उन्होंने उससे कहा—॥ १६ ॥ 'कंस ! जो कन्या तुम्हारे हाथसे छूटकर

आकाशमें चली गयी, वह तो यशोदाकी पुत्री थी। और व्रजमें जो श्रीकृष्ण हैं, वे देवकीके पुत्र हैं। वहाँ जो बलरामजी हैं, वे रोहिणीके पुत्र हैं। वसुदेवने तुमसे डरकर अपने मित्र नन्दके पास उन दोनोंको रख दिया है। उन्होंने ही तुम्हारे अनुचर दैत्योंका वध किया है।' यह बात सुनते ही कंसकी एक-एक इन्द्रिय क्रोधके मारे काँप उठी ॥ १७-१८ ॥ उसने वसुदेवजीको मार डालनेके लिये तुरंत तीखी तलवार उठा ली, परन्तु नारदजीने रोक दिया। जब कंसको यह मालूम हो गया कि वसुदेवके लड़के ही हमारी मृत्युके कारण हैं, तब उसने देवकी और वसुदेव दोनों ही पति-पत्नीको हथकड़ी और बेड़ीसे जकड़कर फिर जेलमें डाल दिया। जब देवर्षि नारद चले गये, तब कंसने केशीको बुलाया और कहा 'तुम व्रजमें जाकर बलराम और कृष्णको मार डालो।' वह चला गया। इसके बाद कंसने मुष्टिक, चाणूर, शल, तोशल आदि पहलवानों, मन्त्रियों और महावतोंको बुलाकर कहा—'वीरवर चाणूर और मुष्टिक! तुमलोग ध्यानपूर्वक मेरी बात सुनो। १९—२२। वसुदेवके दो पुत्र बलराम और कृष्ण नन्दके व्रजमें रहते हैं। उन्हींके हाथसे मेरी मृत्यु बतलायी जाती है ॥२३॥ अतः जब वे यहाँ आवें, तब तुमलोग उन्हें कुश्ती लड़ने-लड़ानेके बहाने मार डालना। अब तुमलोग भाँति-भाँतिके मंच बनाओ और उन्हें अखाड़ेके चारों ओर गोल-गोल सजा दो। उनपर बैठकर नगरवासी और देशकी दूसरी प्रजा इस स्वच्छन्द दंगलको देखें ॥ २४ ॥ महावत! तुम बड़े चतुर हो। देखो भाई! तुम दंगलके घेरेके फाटकपर ही अपने कुवलयापीड हाथीको रखना और जब मेरे शत्रु उधरसे निकलें, तब उसीके द्वारा उन्हें मरवा डालना ॥ २५ ॥ इसी चतुर्दशीको विधिपूर्वक धनुषयज्ञ आरम्भ कर दो और उसकी सफलताके लिये वरदानी भूतनाथ भैरवको बहुत-से पवित्र पशुओंकी बलि चढ़ाओ' ॥ २६ ॥

परीक्षित्! कंस तो केवल स्वार्थ-साधनका सिद्धान्त जानता था, इसलिये उसने मन्त्री, पहलवान और महावतको इस प्रकार आज्ञा देकर श्रेष्ठ यदुवंशी अक्रूरको बुलवाया और उनका हाथ अपने हाथमें लेकर बोला—॥२७॥ 'अक्रूरजी! आप तो बड़े उदार दानी हैं। सब तरहसे मेरे आदरणीय हैं। आज आप मेरा एक मित्रोचित काम कर दीजिये; क्योंकि भोजवंशी और वृष्णिवंशी यादवोंमें आपसे बढ़कर मेरी भलाई करनेवाला दूसरा कोई नहीं है ॥ २८ ॥ यह काम बहुत बड़ा है, इसलिये मेरे मित्र! मैंने आपका आश्रय लिया है। ठीक वैसे ही जैसे इन्द्र समर्थ होनेपर भी विष्णुका आश्रय लेकर अपना स्वार्थ साधता रहता है ॥ २९ ॥ आप नन्दरायके व्रजमें जाइये। वहाँ वसुदेवजीके दो पुत्र हैं। उन्हें इसी रथपर चढ़ाकर यहाँ ले आइये। बस, अब इस काममें देर नहीं होनी चाहिये ॥ ३० ॥ सुनते हैं, विष्णुके भरोसे जीनेवाले देवताओंने उन दोनोंको मेरी मृत्युका कारण निश्चित किया है। इसलिये आप उन दोनोंको तो ले ही आइये, साथ ही नन्द आदि गोपोंको भी बड़ी-बड़ी भेंटोंके साथ ले आइये ॥ ३१ ॥ यहाँ आनेपर मैं उन्हें अपने कालके समान कुवलयापीड हाथीसे मरवा डालूँगा। यदि वे कदाचित् उस हाथीसे बच गये, तो मैं अपने वज्रके समान मजबूत और फुर्तीले पहलवान मुष्टिक-चाणूर आदिसे उन्हें मरवा डालूँगा ॥ ३२ ॥ उनके मारे जानेपर वसुदेव आदि वृष्णि, भोज और दशार्हवंशी उनके भाई-बन्धु शोकाकुल हो जायँगे। फिर उन्हें मैं अपने हाथों मार डालूँगा ॥ ३३ ॥ मेरा पिता उग्रसेन यों तो बूढ़ा हो गया है, परन्तु अभी उसको राज्यका लोभ बना हुआ है। यह सब कर चुकनेके बाद मैं उसको, उसके भाई देवकको और दूसरे भी जो-जो मुझसे द्वेष करनेवाले हैं—उन सबको तलवारके घाट उतार दूँगा ॥ ३४ ॥ मेरे मित्र अक्रूरजी! फिर तो मैं होऊँगा और आप होंगे, तथा होगा इस पृथ्वीका अकण्टक राज्य। जरासन्ध हमारे बड़े-बूढ़े ससुर हैं और वानरराज द्विविद मेरे प्यारे सखा हैं ॥३५॥ शम्बरासुर, नरकासुर और बाणासुर—ये तो मुझसे मित्रता करते ही हैं, मेरा मुँह देखते रहते हैं; इन सबकी सहायतासे मैं देवताओंके पक्षपाती नरपतियोंको मारकर पृथ्वीका अकण्टक राज्य भोगूँगा ॥ ३६ ॥ यह सब अपनी गुप्त बातें मैंने आपको बतला दीं। अब आप जल्दी-से-जल्दी बलराम और कृष्णको यहाँ ले आइये। अभी तो वे बच्चे ही हैं। उनको मार डालनेमें क्या लगता है? उनसे केवल इतनी ही बात

कहियेगा कि वे लोग धनुषयज्ञके दर्शन और यदुवंशियोंकी राजधानी मथुराकी शोभा देखनेके लिये यहाँ आ जायँ' ॥ ३७ ॥

अक्रूरजीने कहा—महाराज ! आप अपनी मृत्यु, अपना अरिष्ट दूर करना चाहते हैं, इसलिये आपका ऐसा सोचना ठीक ही है। मनुष्यको चाहिये कि चाहे सफलता हो या असफलता, दोनोंके प्रति समभाव रखकर अपना काम करता जाय। फल तो प्रयत्नसे नहीं, दैवी प्रेरणासे मिलते हैं ॥ ३८ ॥ मनुष्य बड़े-बड़े मनोरथोंके पुल बाँधता रहता है, परन्तु वह यह नहीं जानता कि दैवने, प्रारब्धने इसे पहलेसे ही नष्ट कर रक्खा है। यही कारण है कि कभी प्रारब्धके अनुकूल होनेपर प्रयत्न सफल हो जाता है, तो वह हर्षसे फूल उठता है और प्रतिकूल होनेपर विफल हो जाता है तो शोकग्रस्त हो जाता है। फिर भी मैं आपकी आज्ञाका पालन तो कर ही रहा हूँ॥ ३९॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—कंसने मन्त्रियों और अक्रूरजीको इस प्रकारकी आज्ञा देकर सबको बिदा कर दिया। तदनन्तर वह अपने महलमें चला गया और अक्रूरजी अपने घर लौट आये ॥ ४० ॥

सैंतीसवाँ अध्याय

केशी और व्योमासुरका उद्धार तथा नारदजीके द्वारा भगवान्‌की स्तुति

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! कंसने जिस केशी नामक दैत्यको भेजा था, वह बड़े भारी घोड़ेके रूपमें मनके समान वेगसे दौड़ता हुआ व्रजमें आया। वह अपनी टापोंसे धरती खोदता आ रहा था ! उसकी गरदनके छितराये हुए बालोंके झटकेसे आकाशके बादल और विमानोंकी भीड़ तितर-बितर हो रही थी। उसकी भयानक हिनहिनाहटसे सब-के-सब भयसे काँप रहे थे। उसकी बड़ी-बड़ी आँखें थीं, मुँह क्या था, मानो किसी वृक्षका खोड़र ही हो। उसे देखनेसे ही डर लगता था। बड़ी मोटी गरदन थी। शरीर इतना विशाल था कि मालूम होता था काली-काली बादलकी घटा है। उसकी नीयतमें पाप भरा था। वह श्रीकृष्णको मारकर अपने स्वामी कंसका हित करना चाहता था। उसके चलनेसे भूकम्प होने लगता था ॥१-२॥ भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि उसकी हिनहिनाहटसे उनके आश्रित रहनेवाला गोकुल भयभीत हो रहा है और उसकी पूँछके बालोंसे बादल तितर-बितर हो रहे हैं, तथा वह लड़नेके लिये उन्हींको ढूँढ़ भी रहा है—तब वे बढ़कर उसके सामने आ गये और उन्होंने सिंहके समान गरजकर उसे ललकारा ॥ ३ ॥ भगवान्‌को सामने आया देख वह और भी चिढ़ गया तथा उनकी ओर इस प्रकार मुँह फैलाकर दौड़ा, मानो आकाशको पी जायगा। परीक्षित् ! सचमुच केशीका वेग बड़ा प्रचण्ड था। उसपर विजय पाना तो कठिन था ही, उसे पकड़ लेना भी आसान नहीं था। उसने भगवान्‌के पास पहुँचकर दुलत्ती झाड़ी ॥ ४ ॥ परन्तु भगवान्‌ने उससे अपनेको बचा लिया। भला, वह इन्द्रियातीतको कैसे मार पाता ! उन्होंने अपने दोनों हाथोंसे उसके दोनों पिछले पैर पकड़ लिये और जैसे गरुड़ साँपको पकड़कर झटक देते हैं, उसी प्रकार क्रोधसे उसे घुमाकर बड़े अपमानके साथ चार सौ हाथकी दूरीपर फेंक दिया और स्वयं अकड़कर खड़े हो गये ॥५॥ थोड़ी ही देरके बाद केशी फिर सचेत हो गया और उठ खड़ा हुआ। इसके बाद वह क्रोधसे तिलमिलाकर और मुँह फाड़कर बड़े वेगसे भगवान्‌की ओर झपटा। उसको दौड़ते देख भगवान् मुसकराने लगे। उन्होंने अपना बायाँ हाथ उसके मुँहमें इस प्रकार डाल दिया, जैसे सर्प बिना किसी आशङ्काके अपने बिलमें घुस जाता है ॥ ६ ॥ परीक्षित् ! भगवान्‌का अत्यन्त कोमल कर-कमल भी उस समय ऐसा हो गया, मानो तपाया हुआ लोहा हो। उसका स्पर्श होते ही केशीके दाँत टूट-टूटकर गिर गये और जैसे जलोदर रोग उपेक्षा कर देनेपर बहुत बढ़ जाता है, वैसे ही श्रीकृष्णका भुजदण्ड उसके मुँहमें बढ़ने लगा ॥ ७ ॥ अचिन्त्यशक्ति भगवान् श्रीकृष्णका हाथ उसके मुँहमें इतना बढ़ गया कि उसकी

साँसके भी आने-जानेका मार्ग न रहा । अब तो दम घुटनेके कारण वह पैर पीटने लगा । उसका शरीर पसीनेसे लथपथ हो गया, आँखोंकी पुतली उलट गयी, वह मल-त्याग करने लगा । थोड़ी ही देरमें उसका शरीर निश्चेष्ट होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा तथा उसके प्राण-पखेरू उड़ गये ॥ ८ ॥ उसका निष्प्राण शरीर फूला हुआ होनेके कारण गिरते ही पकी ककड़ीकी तरह फट गया । महाबाहु भगवान् श्रीकृष्णने उसके शरीरसे अपनी भुजा खींच ली । उन्हें इससे कुछ भी आश्चर्य या गर्व नहीं हुआ । बिना प्रयत्नके ही शत्रुका नाश हो गया । देवताओंको अवश्य ही इससे बड़ा आश्चर्य हुआ । वे प्रसन्न हो-होकर भगवान्के ऊपर पुष्प बरसाने और उनकी स्तुति करने लगे ॥ ९ ॥

परीक्षित् ! देवर्षि नारदजी भगवान्के परम प्रेमी और समस्त जीवोंके सच्चे हितैषी हैं । कंसके यहाँसे लौटकर वे अनायास ही अद्भुत कर्म करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण-के पास आये और एकान्तमें उनसे कहने लगे—॥ १० ॥ 'सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण ! आपका स्वरूप मन और वाणीका विषय नहीं है । आप योगेश्वर हैं । सारे जगत्-का नियन्त्रण आप ही करते हैं । आप सबके हृदयमें निवास करते हैं और सब-के-सब आपके हृदयमे निवास करते हैं । आप भक्तोंके एकमात्र वाञ्छनीय, यदुवंश-शिरोमणि और हमारे स्वामी हैं ॥ ११ ॥ जैसे एक ही अग्नि सभी लकड़ियोंमें व्याप्त रहती है, वैसे एक ही आप समस्त प्राणियोंके आत्मा हैं । आत्माके रूपमें होनेपर भी आप अपनेको छिपाये रखते हैं; क्योंकि आप पञ्च-कोशरूप गुफाओंके भीतर रहते हैं । फिर भी पुरुषो-त्तमके रूपमें, सबके नियन्ताके रूपमें और सबके साक्षीके रूपमें आपका अनुभव होता ही है ॥ १२ ॥ प्रभो ! आप सबके अधिष्ठान और स्वयं अधिष्ठानरहित हैं । आपने सृष्टिके प्रारम्भमें अपनी मायासे ही गुणोंकी सृष्टि की और उन गुणोंको ही स्वीकार करके आप जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करते रहते हैं । यह सब करनेके लिये आपको अपनेसे अतिरिक्त और किसी भी वस्तुकी आवश्यकता नहीं है । क्योंकि आप सर्वशक्ति-मान् और सत्यसङ्कल्प हैं ॥ १३ ॥ वही आप दैत्य, प्रमथ और राक्षसोंका, जिन्होंने आजकल राजाओंका वेष धारण कर रक्खा है, विनाश करनेके लिये तथा धर्मकी मर्यादाओंकी रक्षा करनेके लिये यदुवंशमें अव-तीर्ण हुए हैं ॥ १४ ॥ यह बड़े आनन्दकी बात है कि आपने खेल-ही-खेलमें घोड़ेके रूपमें रहनेवाले इस केशी दैत्यको मार डाला । इसकी हिनहिनाहटसे डरकर देवता-लोग अपना स्वर्ग छोड़कर भाग जाया करते थे ॥ १५ ॥

प्रभो ! अब परसों मैं आपके हाथों चाणूर, मुष्टिक, दूसरे पहलवान, कुवलयापीड हाथी और स्वयं कंसको भी मरते देखूँगा ॥ १६ ॥ उसके बाद शङ्खासुर, काल-यवन, मुर और नरकासुरका वध देखूँगा । आप स्वर्गसे कल्पवृक्ष उखाड़ लायेंगे और इन्द्रके चीं-चपड़ करनेपर उनको उसका मजा चखायेंगे ॥ १७ ॥ आप अपनी कृपा, वीरता, सौन्दर्य आदिका शुल्क देकर वीर-कन्याओं-से विवाह करेंगे, और जगदीश्वर ! आप द्वारकामें रहते हुए नृगको पापसे छुड़ायेंगे ॥ १८ ॥ आप जाम्बवतीके साथ स्यमन्तक मणिको जाम्बवान्से ले आयेंगे और अपने धामसे ब्राह्मणके मरे हुए पुत्रोंको ला देंगे ॥ १९ ॥ इसके पश्चात् आप पौण्ड्रक—मिथ्यावासुदेवका वध करेंगे । काशीपुरीको जला देंगे । युधिष्ठिरके राजसूय-यज्ञमें चेदिराज शिशुपालको और वहाँसे लौटते समय उसके मौसेरे भाई दन्तवक्त्रको नष्ट करेंगे ॥ २० ॥ प्रभो ! द्वारकामें निवास करते समय आप और भी बहुत-से पराक्रम प्रकट करेंगे, जिन्हें पृथ्वीके बड़े-बड़े ज्ञानी और प्रतिभाशील पुरुष आगे चलकर गायेंगे । मैं वह सब देखूँगा ॥ २१ ॥ इसके बाद आप पृथ्वीका भार उतारने-के लिये कालरूपसे अर्जुनके सारथि बनेंगे और अनेक अक्षौहिणी सेनाका संहार करेंगे । यह सब मैं अपनी आँखोंसे देखूँगा ॥ २२ ॥

प्रभो ! आप विशुद्ध विज्ञानघन हैं । आपके स्वरूपमें और किसीका अस्तित्व है ही नहीं । आप नित्य-निरन्तर अपने परमानन्दस्वरूपमें स्थित रहते हैं । इसलिये सारे पदार्थ आपको नित्य प्राप्त ही हैं । आपका सङ्कल्प अमोघ है । आपकी चिन्मयी शक्तिके सामने माया और मायासे होनेवाला यह त्रिगुणमय संसार-चक्र नित्यनिवृत्त है—कभी हुआ ही नहीं ! ऐसे आप अखण्ड, एकरस, सच्चिदानन्दस्वरूप, निरतिशय ऐश्वर्यसम्पन्न भगवान्की

मैं शरण ग्रहण करता हूँ ॥ २३ ॥ आप सबके अन्तर्यामी और नियन्ता हैं । अपने-आपमें स्थित, परम स्वतन्त्र हैं । जगत् और उसके अशेष विशेषों—भाव-अभावरूप सारे भेद-विभेदोंकी कल्पना केवल आपकी मायासे ही हुई है । इस समय आपने अपनी लीला प्रकट करनेके लिये मनुष्यका-सा श्रीविग्रह प्रकट किया है । और आप यदु, वृष्णि तथा सात्वतवंशियोंके शिरोमणि बने हैं । प्रभो ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ' ॥ २४ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! भगवान्के परमप्रेमी भक्त देवर्षि नारदजीने इस प्रकार भगवान्की स्तुति और प्रणाम किया । भगवान्के दर्शनोंके आह्लादसे नारदजीका रोम-रोम खिल उठा । तदनन्तर उनकी आज्ञा प्राप्त करके वे चले गये ॥ २५ ॥ इधर भगवान् श्रीकृष्ण केशीको लड़ाईमें मारकर फिर अपने प्रेमी एवं प्रसन्नचित्त ग्वालबालोंके साथ पूर्ववत् पशुपालनके काममें लग गये तथा व्रजवासियोंको परमानन्द वितरण करने लगे ॥ २६ ॥ एक समय वे सब ग्वालबाल पहाड़की चोटियोंपर गाय आदि पशुओंको चरा रहे थे तथा कुछ चोर और कुछ रक्षक बनकर छिपने-छिपानेका—लुका-लुकीका खेल खेल रहे थे ॥ २७ ॥ राजन् ! उन लोगोंमेंसे कुछ तो चोर और कुछ रक्षक तथा कुछ भेड़ बन गये थे । इस प्रकार वे निर्भय होकर खेलमें रम गये थे ॥ २८ ॥ उसी समय ग्वालका वेष धारण करके व्योमासुर वहाँ आया । वह मायावियोंके आचार्य मयासुरका पुत्र था और स्वयं भी बड़ा मायावी था । वह खेलमें बहुधा चोर ही बनता और भेड़ बने हुए बहुत-से बालकोंको चुराकर छिपा आता ॥ २९ ॥ वह महान् असुर बार-बार उन्हें ले जाकर एक पहाड़की गुफामें डाल देता और उसका दरवाजा एक बड़ी चट्टानसे ढक देता । इस प्रकार ग्वालबालोंमें केवल चार-पाँच बालक ही बच रहे ॥ ३० ॥ भक्तवत्सल भगवान् उसकी यह करतूत जान गये । जिस समय वह ग्वालबालोंको लिये जा रहा था, उसी समय उन्होंने, जैसे सिंह भेड़ियेको दबोच ले उसी प्रकार, उसे धर दबाया ॥ ३१ ॥ व्योमासुर बड़ा बली था । उसने पहाड़के समान अपना असली रूप प्रकट कर दिया और चाहा कि अपनेको छुड़ा लूँ । परन्तु भगवान्ने उसको इस प्रकार अपने शिकंजेमें फाँस लिया था कि वह अपनेको छुड़ा न सका ॥ ३२ ॥ तब भगवान् श्रीकृष्णने अपने दोनों हाथोंसे जकड़कर उसे भूमिपर गिरा दिया और पशुकी भाँति गला घोंटकर मार डाला । देवतालोग विमानोंपर चढ़कर उनकी यह लीला देख रहे थे ॥ ३३ ॥ अब भगवान् श्रीकृष्णने गुफाके द्वारपर लगे हुए चट्टानोंके पिहान तोड़ डाले और ग्वालबालोंको उस सङ्कटपूर्ण स्थानसे निकाल लिया । बड़े-बड़े देवता और ग्वालबाल उनकी स्तुति करने लगे और भगवान् श्रीकृष्ण व्रजमें चले आये ॥ ३४ ॥

अड़तीसवाँ अध्याय

अक्रूरजीकी व्रजयात्रा

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! महामति अक्रूरजी भी वह रात मथुरापुरीमें बिताकर प्रातःकाल होते ही रथपर सवार हुए और नन्दबाबाके गोकुलकी ओर चल दिये ॥ १ ॥ परम भाग्यवान् अक्रूरजी व्रजकी यात्रा करते समय मार्गमें कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णकी परम प्रेममयी भक्तिसे परिपूर्ण हो गये । वे इस प्रकार सोचने लगे—॥ २ ॥ 'मैंने ऐसा कौन-सा शुभ कर्म किया है, ऐसी कौन-सी श्रेष्ठ तपस्या की है अथवा किसी सत्पात्रको ऐसा कौन-सा महत्त्वपूर्ण दान दिया है, जिसके फलस्वरूप आज मैं भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन करूँगा ॥ ३ ॥ मैं बड़ा विषयी हूँ । ऐसी स्थितिमें, बड़े-बड़े सात्त्विक पुरुष भी जिनके गुणोंका ही गान करते रहते हैं, दर्शन नहीं कर पाते—उन भगवान्के दर्शन मेरे लिये अत्यन्त दुर्लभ हैं, ठीक वैसे ही, जैसे शूद्रकुलके बालकके लिये वेदोंका कीर्तन ॥ ४ ॥ परन्तु नहीं, मुझ अधमको भी भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन होंगे ही । क्योंकि जैसे नदीमें बहते हुए तिनके कभी-कभी इस पारसे उस पार लग जाते हैं, वैसे ही

समयके प्रवाहसे भी कहीं कोई इस संसारसागरको पार कर सकता है ॥ ५ ॥ अवश्य ही आज मेरे सारे अशुभ नष्ट हो गये । आज मेरा जन्म सफल हो गया । क्योंकि आज मैं भगवान्‌के उन चरणकमलोंमें साक्षात् नमस्कार करूँगा, जो बड़े-बड़े योगी-यतियोंके भी केवल ध्यानके ही विषय हैं ॥ ६ ॥ अहो ! कंसने तो आज मेरे ऊपर बड़ी ही कृपा की है । उसी कंसके भेजनेसे मैं इस भूतलपर अवतीर्ण स्वयं भगवान्‌के चरणकमलोंके दर्शन पाऊँगा । जिनके नखमण्डलकी कान्तिका ध्यान करके पहले युगोंके ऋषि-महर्षि इस अज्ञानरूप अपार अन्धकारराशिको पार कर चुके हैं, स्वयं वही भगवान् तो अवतार ग्रहण करके प्रकट हुए हैं ॥ ७ ॥ ब्रह्मा, शङ्कर, इन्द्र आदि बड़े-बड़े देवता जिन चरणकमलोंकी उपासना करते रहते हैं, स्वयं भगवती लक्ष्मी एक क्षणके लिये भी जिनकी सेवा नहीं छोड़तीं, प्रेमी भक्तोंके साथ बड़े-बड़े ज्ञानी भी जिनकी आराधनामें संलग्न रहते हैं—भगवान्‌के वे ही चरण-कमल गौओंको चरानेके लिये ग्वालबालोंके साथ वन-वनमें विचरते हैं । वे ही सुर-मुनि-वन्दित श्रीचरण गोपियोंके वक्षःस्थलपर लगी हुई केसरसे रँग जाते हैं, चिह्नित हो जाते हैं, ॥ ८ ॥ मैं अवश्य-अवश्य उनका दर्शन करूँगा । मरकतमणिके समान सुस्निग्ध कान्तिमान् उनके कोमल कपोल हैं, तोतेकी ठोरके समान नुकीली नासिका है, होठोंपर मन्द-मन्द मुसकान, प्रेमभरी चितवन, कमल-से कोमल रतनारे लोचन और कपोलोंपर घुँघराली अलकें लटक रही हैं । मैं प्रेम और मुक्तिके परम दानी श्रीमुकुन्दके उस मुखकमलका आज अवश्य दर्शन करूँगा । क्योंकि हरिन मेरी दायीं ओरसे निकल रहे हैं ॥ ९ ॥ भगवान् विष्णु पृथ्वीका भार उतारनेके लिये स्वेच्छासे मनुष्यकी-सी लीला कर रहे हैं । वे सम्पूर्ण लावण्यके धाम हैं । सौन्दर्यकी मूर्तिमान् निधि हैं । आज मुझे उन्हींका दर्शन होगा ! अवश्य होगा ! आज मुझे सहजमें ही आँखोंका फल मिल जायगा ॥ १० ॥ भगवान् इस कार्य-कारणरूप जगत्‌के द्रष्टामात्र हैं, और ऐसा होनेपर भी द्रष्टापनका अहङ्कार उन्हें छूतक नहीं गया है । उनकी चिन्मयी शक्तिसे अज्ञानके कारण होनेवाला भेदभ्रम अज्ञानसहित दूरसे ही निरस्त रहता है । वे अपनी योगमायासे ही अपने-आपमें भ्रूविलासमात्रसे प्राण, इन्द्रिय और बुद्धि आदिके सहित अपने स्वरूप-भूत जीवोंकी रचना कर लेते हैं और उनके साथ वृन्दावनकी कुञ्जोंमें तथा गोपियोंके घरोंमें तरह-तरहकी लीलाएँ करते हुए प्रतीत होते हैं ॥ ११ ॥ जब समस्त पापोंके नाशक उनके परम मङ्गलमय गुण, कर्म और जन्मकी लीलाओंसे युक्त होकर वाणी उनका गान करती है, तब उस गानसे संसारमें जीवनकी स्फूर्ति होने लगती है, शोभाका सञ्चार हो जाता है, सारी अपवित्रताएँ धुलकर पवित्रताका साम्राज्य छा जाता है; परन्तु जिस वाणीसे उनके गुण, लीला और जन्मकी कथाएँ नहीं गायी जातीं, वह तो मुर्देको ही शोभित करनेवाली है, होनेपर भी नहींके समान—व्यर्थ है ॥ १२ ॥ जिनके गुणगानका ही ऐसा माहात्म्य है, वे ही भगवान् स्वयं यदुवंशमें अवतीर्ण हुए हैं । किसलिये ? अपनी ही बनायी मर्यादाका पालन करनेवाले श्रेष्ठ देवताओंका कल्याण करनेके लिये । वे ही परम ऐश्वर्यशाली भगवान् आज व्रजमें निवास कर रहे हैं और वहींसे अपने यशका विस्तार कर रहे हैं । उनका यश कितना पवित्र है ! अहो, देवतालोग भी उस सम्पूर्ण मङ्गलमय यशका गान करते रहते हैं ॥ १३ ॥ इसमें सन्देह नहीं कि आज मैं अवश्य ही उन्हें देखूँगा । वे बड़े-बड़े संतों और लोकपालोंके भी एकमात्र आश्रय हैं । सबके परम गुरु हैं । और उनका रूप-सौन्दर्य तीनों लोकोंके मनको मोह लेनेवाला है । जो नेत्रवाले हैं, उनके लिये वह आनन्द और रसकी चरम सीमा है । इसीसे स्वयं लक्ष्मीजी भी, जो सौन्दर्यकी अधीश्वरी हैं, उन्हें पानेके लिये ललकती रहती हैं । हाँ, तो मैं उन्हें अवश्य देखूँगा । क्योंकि आज मेरा मङ्गल-प्रभात है, आज मुझे प्रातःकालसे ही अच्छे-अच्छे शकुन दीख रहे हैं ॥ १४ ॥

जब मैं उन्हें देखूँगा तब सर्वश्रेष्ठ पुरुष बलराम तथा श्रीकृष्णके चरणोंमें नमस्कार करनेके लिये तुरंत रथसे कूद पड़ूँगा । उनके चरण पकड़ लूँगा । ओह ! उनके चरण कितने दुर्लभ हैं ! बड़े-बड़े योगी-यति आत्म-

साक्षात्कारके लिये मन-ही-मन अपने हृदयमें उनके चरणोंकी धारणा करते हैं और मैं, मैं तो उन्हें प्रत्यक्ष पा जाऊँगा और लोट जाऊँगा उनपर। उन दोनोंके साथ ही उनके वनवासी सखा एक-एक ग्वालबालके चरणोंकी भी वन्दना करूँगा ॥ १५ ॥ मेरे अहोभाग्य! जब मैं उनके चरणकमलोंमें गिर जाऊँगा, तब क्या वे अपना करकमल मेरे सिरपर रख देंगे। उनके वे करकमल उन लोगोंको सदाके लिये अभयदान दे चुके हैं, जो कालरूपी साँपके भयसे अत्यन्त घबड़ाकर उनकी शरण चाहते और शरणमें आ जाते हैं ॥ १६ ॥ इन्द्र तथा दैत्यराज बलिने भगवान्के उन्हीं करकमलोंमें पूजाकी भेंट समर्पित करके तीनों लोकोंका प्रभुत्व—इन्द्रपद प्राप्त कर लिया। भगवान्के उन्हीं करकमलोंने, जिनमेंसे दिव्य कमलकी-सी सुगन्ध आया करती है, अपने स्पर्शसे रासलीलाके समय व्रज-युवतियोंकी सारी थकान मिटा दी थी ॥ १७ ॥ मैं कंसका दूत हूँ। उसीके भेजनेसे उनके पास जा रहा हूँ। कहीं वे मुझे अपना शत्रु तो न समझ बैठेंगे? राम राम! वे ऐसा कदापि नहीं समझ सकते। क्योंकि वे निर्विकार हैं, सम हैं, अच्युत हैं, सारे विश्वके साक्षी हैं, सर्वज्ञ हैं, वे चित्तके बाहर भी हैं और भीतर भी। वे क्षेत्रज्ञरूपसे स्थित होकर अन्तःकरणकी एक-एक चेष्टाको अपनी निर्मल ज्ञानदृष्टिके द्वारा देखते रहते हैं ॥ १८ ॥ तब मेरी शङ्का व्यर्थ है। अवश्य ही मैं उनके चरणोंमें हाथ जोड़कर विनीतभावसे खड़ा हो जाऊँगा। वे मुसकराते हुए दयाभरी स्निग्ध दृष्टिसे मेरी ओर देखेंगे। उस समय मेरे जन्म-जन्मके समस्त अशुभ संस्कार उसी क्षण नष्ट हो जायँगे और मैं निःशङ्क होकर सदाके लिये परमानन्दमें मग्न हो जाऊँगा ॥ १९ ॥ मैं उनके कुटुम्बका हूँ। और उनका अत्यन्त हित चाहता हूँ। उनके सिवा और कोई मेरा आराध्यदेव भी नहीं है। ऐसी स्थितिमें वे अपनी लंबी-लंबी बाँहोंसे पकड़कर मुझे अवश्य अपने हृदयसे लगा लेंगे। अहा! उस समय मेरी तो देह पवित्र होगी ही, वह दूसरोंको पवित्र करनेवाली भी बन जायगी और उसी समय—उनका आलिङ्गन प्राप्त होते ही—मेरे कर्ममय बन्धन, जिनके कारण मैं अनादिकालसे भटक रहा हूँ, टूट जायँगे ॥ २० ॥ जब वे मेरा आलिङ्गन कर चुकेंगे और मैं हाथ जोड़ सिर झुकाकर उनके सामने खड़ा हो जाऊँगा तब वे मुझे 'चाचा अक्रूर!' इस प्रकार कहकर सम्बोधन करेंगे। क्यों न हो, इसी पवित्र और मधुर यशका विस्तार करनेके लिये ही तो वे लीला कर रहे हैं। तब मेरा जीवन सफल हो जायगा। भगवान् श्रीकृष्णने जिसको अपनाया नहीं, जिसे आदर नहीं दिया—उसके उस जन्मको, जीवनको धिक्कार है ॥ २१ ॥ न तो उन्हें कोई प्रिय है और न तो अप्रिय। न तो उनका कोई आत्मीय सुहृद् है और न तो शत्रु। उनकी उपेक्षाका पात्र भी कोई नहीं है। फिर भी जैसे कल्पवृक्ष अपने निकट आकर याचना करनेवालोंको उनकी मुँह-माँगी वस्तु देता है, वैसे ही भगवान् श्रीकृष्ण भी, जो उन्हें जिस प्रकार भजता है, उसे उसी रूपमें भजते हैं—वे अपने प्रेमी भक्तोंसे ही पूर्ण प्रेम करते हैं ॥ २२ ॥ मैं उनके सामने विनीत भावसे सिर झुकाकर खड़ा हो जाऊँगा और बलरामजी मुसकराते हुए मुझे अपने हृदयसे लगा लेंगे और फिर मेरे दोनों हाथ पकड़कर मुझे घरके भीतर ले जायँगे। वहाँ सब प्रकारसे मेरा सत्कार करेंगे। इसके बाद मुझसे पूछेंगे कि 'कंस हमारे घरवालोंके साथ कैसा व्यवहार करता है?' ॥ २३ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! श्वफल्कनन्दन अक्रूर मार्गमें इसी चिन्तनमें डूबे-डूबे रथसे नन्दगाँव पहुँच गये और सूर्य अस्ताचलपर चले गये ॥ २४ ॥ जिनके चरणकमलकी रजको सभी लोकपाल अपने किरीटोंके द्वारा सेवन करते हैं, अक्रूरजीने गोष्ठमें उनके चरणचिह्नोंके दर्शन किये। कमल, यव, अङ्कुश आदि असाधारण चिह्नोंके द्वारा उनकी पहचान हो रही थी और उनसे पृथ्वीकी शोभा बढ़ रही थी ॥ २५ ॥ उन चरणचिह्नोंके दर्शन करते ही अक्रूरजीके हृदयमें इतना आह्लाद हुआ कि वे अपनेको सँभाल न सके, विह्वल हो गये। प्रेमके आवेगसे उनका रोम-रोम खिल उठा, नेत्रोंमें आँसू भर आये और टपटप टपकने लगे। वे रथसे कूदकर उस धूलिमें लोटने लगे और कहने लगे—'अहो! यह हमारे प्रभुके चरणोंकी रज है' ॥ २६ ॥ परीक्षित्! कंसके सन्देशसे लेकर यहाँतक अक्रूरजीके चित्तकी जैसी अवस्था रही है, यही जीवोंके देह धारण करनेका परम लाभ है। इसलिये जीवमात्रका यही परम कर्तव्य है कि दम्भ, भय और शोक त्याग कर भगवान्की मूर्ति (प्रतिमा, भक्त आदि)

चिह्न, लीला, स्थान तथा गुणोंके दर्शन-श्रवण आदिके द्वारा ऐसा ही भाव सम्पादन करें ॥ २७ ॥

व्रजमें पहुँचकर अक्रूरजीने श्रीकृष्ण और बलराम दोनों भाइयोंको गाय दुहनेके स्थानमें विराजमान देखा। श्याम-सुन्दर श्रीकृष्ण पीताम्बर धारण किये हुए थे और गौर-सुन्दर बलराम नीलाम्बर। उनके नेत्र शरत्कालीन कमलके समान खिले हुए थे ॥ २८ ॥ उन्होंने अभी किशोर-अवस्थामें प्रवेश ही किया था। वे दोनों गौर-श्याम निखिल सौन्दर्यकी खान थे। घुटनोंका स्पर्श करनेवाली लम्बी-लम्बी भुजाएँ, सुन्दर वदन, परम मनोहर और गजशावकके समान ललित चाल थी ॥ २९ ॥ उनके चरणोंमे ध्वजा, वज्र, अङ्कुश और कमलके चिह्न थे। जब वे चलते थे, उनसे चिह्नित होकर पृथ्वी शोभायमान हो जाती थी। उनकी मन्द-मन्द मुसकान और चितवन ऐसी थी, मानो दया बरस रही हो। वे उदारताकी तो मानो मूर्ति ही थे ॥ ३० ॥ उनकी एक-एक लीला उदारता और सुन्दर कलासे भरी थी। गलेमें वनमाला और मणियोंके हार जगमगा रहे थे। उन्होंने अभी-अभी स्नान करके निर्मल वस्त्र पहने थे और शरीरमे पवित्र अङ्गराग तथा चन्दनका लेप किया था ॥ ३१ ॥ परीक्षित्! अक्रूरने देखा कि जगत्के आदिकारण, जगत्के परमपति, पुरुषोत्तम ही संसारकी रक्षाके लिये अपने सम्पूर्ण अंशोंसे बलरामजी और श्रीकृष्णके रूपमें अवतीर्ण होकर अपनी अङ्गकान्तिसे दिशाओंका अन्धकार दूर कर रहे हैं। वे ऐसे भले मालूम होते थे, जैसे सोनेसे मढे हुए मरकतमणि और चाँदीके पर्वत जगमगा रहे हों ॥ ३२-३३ ॥ उन्हें देखते ही अक्रूरजी प्रेमावेगसे अधीर होकर रथसे कूद पड़े और भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलरामके चरणोंके पास साष्टाङ्ग लोट गये ॥ ३४ ॥ परीक्षित्! भगवान्के दर्शनसे उन्हें इतना आह्लाद हुआ कि उनके नेत्र आँसूसे सर्वथा भर गये। सारे शरीरमें पुलकावली छा गयी। उत्कण्ठा-वश गला भर आनेके कारण वे अपना नाम भी न बतला सके ॥ ३५ ॥ शरणागतवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण उनके मनका भाव जान गये। उन्होंने बड़ी प्रसन्नतासे चक्राङ्कित हाथोंके द्वारा उन्हें खींचकर उठाया और हृदयसे लगा लिया ॥ ३६ ॥ इसके बाद जब वे परम मनस्वी श्रीबलरामजीके सामने विनीत भावसे खड़े हो गये, तब उन्होंने उनको गले लगा लिया और उनका एक हाथ श्रीकृष्णने पकड़ा तथा दूसरा बलरामजीने। दोनों भाई उन्हें घर ले गये ॥ ३७ ॥

घर ले जाकर भगवान्ने उनका बड़ा स्वागत-सत्कार किया। कुशल-मङ्गल पूछकर श्रेष्ठ आसनपर बैठाया और विधिपूर्वक उनके पाँव पखारकर मधुपर्क (शहद मिला हुआ दही) आदि पूजाकी सामग्री भेंट की ॥ ३८ ॥ इसके बाद भगवान्ने अतिथि अक्रूरजीको एक गाय दी और पैर दबाकर उनकी थकावट दूर की तथा बड़े आदर एवं श्रद्धासे उन्हें पवित्र और अनेक गुणोंसे युक्त अन्नका भोजन कराया ॥ ३९ ॥ जब वे भोजन कर चुके, तब धर्मके परम मर्मज्ञ भगवान् बलरामजीने बड़े प्रेमसे मुखवास (पान-इलायची आदि) और सुगन्धित माला आदि देकर उन्हें अत्यन्त आनन्दित किया ॥ ४० ॥ इस प्रकार सत्कार हो चुकनेपर नन्दरायजीने उनके पास आकर पूछा—'अक्रूरजी! आपलोग निर्दयी कंसके जीते-जी किस प्रकार अपने दिन काटते हैं? अरे! उसके रहते आप लोगोंकी वही दशा है, जो कसाईद्वारा पाली हुई भेड़ोंकी होती है ॥ ४१ ॥ जिस इन्द्रियाराम पापीने अपनी बिलखती हुई बहनके नन्हे-नन्हे बच्चोंको मार डाला। आपलोग उसकी प्रजा हैं। फिर आप सुखी हैं, यह अनुमान तो हम कर ही कैसे सकते हैं?' ॥ ४२ ॥ अक्रूरजीने नन्दबाबासे पहले ही कुशल-मङ्गल पूछ लिया था। जब इस प्रकार नन्दबाबाने मधुर वाणीसे अक्रूरजीसे कुशल-मङ्गल पूछा और उनका सम्मान किया तब अक्रूरजीके शरीरमें रास्ता चलनेकी जो कुछ थकावट थी, वह सब दूर हो गयी ॥ ४३ ॥

उन्तालीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण-बलरामका मथुरागमन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीने अक्रूरजीका भलीभाँति सम्मान किया। वे आराम-सेपलँगपर बैठ गये। उन्होंने मार्गमें जो-जो अभिलाषाएँ की थीं वे सब पूरी हो गयीं ॥ १ ॥ परीक्षित्! लक्ष्मीके

आश्रयस्थान भगवान् श्रीकृष्णके प्रसन्न होनेपर ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो प्राप्त नहीं हो सकती ? फिर भी भगवान्‌के परम प्रेमी भक्तजन किसी भी वस्तुकी कामना नहीं करते ॥ २ ॥ देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने सायङ्कालका भोजन करनेके बाद अक्रूरजीके पास जाकर अपने स्वजन-सम्बन्धियोंके साथ कंसके व्यवहार और उसके अगले कार्यक्रमके सम्बन्धमें पूछा ॥ ३ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—चाचाजी ! आपका हृदय बड़ा शुद्ध है। आपको यात्रामें कोई कष्ट तो नहीं हुआ ? स्वागत है। मैं आपकी मङ्गलकामना करता हूँ। मथुराके हमारे आत्मीय सुहृद्, कुटुम्बी तथा अन्य सम्बन्धी सब सकुशल और स्वस्थ हैं न ? ॥ ४ ॥ हमारा नाममात्रका मामा कंस तो हमारे कुलके लिये एक भयङ्कर व्याधि है। जबतक उसकी बढ़ती हो रही है, तबतक हम अपने वंशवालों और उनके बाल-बच्चोंका कुशल-मङ्गल क्या पूछें ॥ ५ ॥ चाचाजी ! हमारे लिये यह बड़े खेदकी बात है कि मेरे ही कारण मेरे निरपराध और सदाचारी माता-पिताको अनेकों प्रकारकी यातनाएँ झेलनी पड़ीं, तरह-तरहके कष्ट उठाने पड़े। और तो क्या कहूँ, मेरे ही कारण उन्हें हथकड़ी-बेड़ीसे जकड़कर जेलमें डाल दिया गया तथा मेरे ही कारण उनके बच्चे भी मार डाले गये ॥ ६ ॥ मैं बहुत दिनोंसे चाहता था कि आपलोगोंमेंसे किसी-न-किसीका दर्शन हो। यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि आज मेरी वह अभिलाषा पूरी हो गयी। सौम्य स्वभाव चाचाजी ! अब आप कृपा करके यह बतलाइये कि आपका शुभागमन किस निमित्तसे हुआ ? ॥ ७ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जब भगवान् श्रीकृष्णने अक्रूरजीसे इस प्रकार प्रश्न किया, तब उन्होंने बतलाया कि 'कंसने तो सभी यदुवंशियोंसे घोर वैर ठान रक्खा है। वह वसुदेवजीको मार डालनेका भी उद्यम कर चुका है' ॥ ८ ॥ अक्रूरजीने कंसका सन्देश और जिस उद्देश्यसे उसने स्वयं अक्रूरजीको दूत बनाकर भेजा था और नारदजीने जिस प्रकार वसुदेवके घर श्रीकृष्णके जन्म लेनेका वृत्तान्त उसको बता दिया था, सो सब कह सुनाया ॥ ९ ॥ अक्रूरजीकी यह बात सुनकर विपक्षी शत्रुओंका दमन करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी हँसने लगे और इसके बाद उन्होंने अपने पिता नन्दजीको कंसकी आज्ञा सुना दी ॥ १० ॥ तब नन्दबाबाने सब गोपोंको आज्ञा दी कि 'सारा गोरस एकत्र करो। भेंटकी सामग्री ले लो और छकड़े जोड़ो ॥ ११ ॥ कल प्रातःकाल ही हम सब मथुराकी यात्रा करेंगे और वहाँ चलकर राजा कंसको गोरस देंगे। वहाँ एक बहुत बड़ा उत्सव हो रहा है। उसे देखनेके लिये देशकी सारी प्रजा इकट्ठी हो रही है। हमलोग भी उसे देखेंगे।' नन्दबाबाने गाँवके कोतवालके द्वारा यह घोषणा सारे व्रजमें करवा दी ॥ १२ ॥

परीक्षित् ! जब गोपियोंने सुना कि हमारे मनमोहन श्यामसुन्दर और गौरसुन्दर बलरामजीको मथुरा ले जानेके लिये अक्रूरजी व्रजमें आये हैं, तब उनके हृदयमें बड़ी व्यथा हुई। वे व्याकुल हो गयीं ॥ १३ ॥ भगवान् श्रीकृष्णके मथुरा जानेकी बात सुनते ही बहुतोंके हृदयमें ऐसी जलन हुई कि गरम साँस चलने लगी, मुखकमल कुम्हला गया। और बहुतोंकी ऐसी दशा हुई—वे इस प्रकार अचेत हो गयीं कि उन्हें खिसकी हुई ओढ़नी, गिरते हुए कंगन और ढीले हुए जूड़ोंतकका पता न रहा ॥ १४ ॥ भगवान्‌के स्वरूपका ध्यान आते ही बहुत-सी गोपियोंकी चित्तवृत्तियाँ सर्वथा निवृत्त हो गयीं, मानो वे समाधिस्थ—आत्मामें स्थित हो गयी हों, और उन्हें अपने शरीर और संसारका कुछ ध्यान ही न रहा ॥ १५ ॥ बहुत-सी गोपियोंके सामने भगवान् श्रीकृष्णका प्रेम, उनकी मन्द-मन्द मुसकान और हृदयको स्पर्श करनेवाली विचित्र पदोंसे युक्त मधुर वाणी नाचने लगी। वे उसमें तल्लीन हो गयीं। मोहित हो गयीं ॥ १६ ॥ गोपियाँ मन-ही-मन भगवान्‌की लटकीली चाल, भाव-भङ्गी, प्रेमभरी मुसकान, चितवन, सारे शोकोंको मिटा देनेवाली ठिठोलियाँ तथा उदारताभरी लीलाओंका चिन्तन करने लगीं और उनके विरहके भयसे कातर हो गयीं। उनका हृदय, उनका जीवन—सब कुछ भगवान्‌के प्रति समर्पित था। उनकी आँखोंसे आँसू बह रहे थे। वे झुंड-की-झुंड इकट्ठी होकर इस प्रकार कहने लगीं ॥ १७-१८ ॥

गोपियोंने कहा—धन्य हो विधाता ! तुम सब कुछ

विधान तो करते हो, परन्तु तुम्हारे हृदयमें दयाका लेश भी नहीं है। पहले तो तुम सौहार्द और प्रेमसे जगत्‌के प्राणियोंको एक-दूसरेके साथ जोड़ देते हो, उन्हें आपसमें एक कर देते हो, मिला देते हो; परन्तु अभी उनकी आशा-अभिलाषाएँ पूरी भी नहीं हो पातीं, वे तृप्त भी नहीं हो पाते कि तुम उन्हें व्यर्थ ही अलग-अलग कर देते हो। सच है, तुम्हारा यह खिलवाड़ बच्चोंके खेलकी तरह व्यर्थ ही है॥ १९॥ यह कितने दुःखकी बात है। विधाता! तुमने पहले हमें प्रेमका वितरण करनेवाले श्यामसुन्दरका मुखकमल दिखलाया। कितना सुन्दर है वह! काले-काले घुँघराले बाल कपोलोंपर झलक रहे हैं। मरकतमणि-से चिकने सुस्निग्ध कपोल और तोतेकी चोंच-सी सुन्दर नासिका तथा अधरोंपर मन्द-मन्द मुसकानकी सुन्दर रेखा, जो सारे शोकोंको तत्क्षण भगा देती है। विधना! तुमने एक बार तो हमें वह परम सुन्दर मुखकमल दिखाया और अब उसे ही हमारी आँखोंसे ओझल कर रहे हो! सचमुच तुम्हारी यह करतूत बहुत ही अनुचित है॥ २०॥ हम जानती हैं, इसमें अक्रूरका दोष नहीं है; यह तो साफ तुम्हारी क्रूरता है। वास्तवमें तुम्हीं अक्रूरके नामसे यहाँ आये हो और अपनी ही दी हुई आँखें तुम हमसे मूर्खकी भाँति छीन रहे हो। इनके द्वारा हम श्यामसुन्दरके एक-एक अङ्गमें तुम्हारी सृष्टिका सम्पूर्ण सौन्दर्य निहारती रहती थीं। विधाता! तुम्हें ऐसा नहीं चाहिये॥ २१॥

अहो! नन्दनन्दन श्यामसुन्दरको भी नये-नये लोगोंसे नेह लगानेकी चाट पड़ गयी है। देखो तो सही—इनका सौहार्द, इनका प्रेम एक क्षणमें ही कहाँ चला गया! हम तो अपने घर-द्वार, स्वजन-सम्बन्धी, पति-पुत्र आदिको छोड़कर इनकी दासी बनीं और इन्हींके लिये आज हमारा हृदय शोकातुर हो रहा है, परन्तु ये ऐसे हैं कि हमारी ओर देखतेतक नहीं॥ २२॥ आजकी रातका प्रातःकाल मथुराकी स्त्रियोंके लिये निश्चय ही बड़ा मङ्गलमय होगा। आज उनकी बहुत दिनोंकी अभिलाषाएँ अवश्य ही पूरी हो जायँगी। जब हमारे व्रजराज श्यामसुन्दर अपनी तिरछी चितवन और मन्द-मन्द मुसकानसे युक्त मुखारविन्दका मादक मधु वितरण करते हुए मथुरापुरीमें प्रवेश करेंगे, तब वे उसका पान करके धन्य-धन्य हो जायँगी॥ २३॥ यद्यपि हमारे श्यामसुन्दर धैर्यवान् होनेके साथ ही नन्दबाबा आदि गुरुजनोंकी आज्ञामें रहते हैं, तथापि मथुराकी युवतियाँ अपने मधुके समान मधुर वचनोंसे इनका चित्त बरबस अपनी ओर खींच लेंगी और ये उनकी सलज्ज मुसकान तथा विलासपूर्ण भाव-भंगीसे वहीं रम जायँगे। फिर हम गँवार ग्वालिनोंके पास ये लौटकर क्यों आने लगे॥ २४॥ धन्य है आज हमारे श्यामसुन्दरका दर्शन करके मथुराके दाशार्ह, भोज, अन्धक और वृष्णिवंशी यादवोंके नेत्र अवश्य ही परमानन्दका साक्षात्कार करेंगे। आज उनके यहाँ महान् उत्सव होगा। साथ ही जो लोग यहाँसे मथुरा जाते हुए रमारमण गुणसागर नटनागर देवकीनन्दन श्यामसुन्दरका मार्गमें दर्शन करेंगे, वे भी निहाल हो जायँगे॥ २५॥

देखो सखी! यह अक्रूर कितना निठुर, कितना हृदयहीन है। इधर तो हम गोपियाँ इतनी दुःखित हो रही हैं और यह हमारे परम प्रियतम नन्ददुलारे श्यामसुन्दरको हमारी आँखोंसे ओझल करके बहुत दूर ले जाना चाहता है और दो बात कहकर हमें धीरज भी नहीं बँधाता, आश्वासन भी नहीं देता। सचमुच ऐसे अत्यन्त क्रूर पुरुषका 'अक्रूर' नाम नहीं होना चाहिये था॥ २६॥ सखी! हमारे ये श्यामसुन्दर भी तो कम निठुर नहीं हैं। देखो-देखो, वे भी रथपर बैठ गये। और मतवाले गोपगण छकड़ोंद्वारा उनके साथ जानेके लिये कितनी जल्दी मचा रहे हैं। सचमुच ये मूर्ख हैं। और हमारे बड़े-बूढ़े! उन्होंने तो इन लोगोंकी जल्दबाजी देखकर उपेक्षा कर दी है कि 'जाओ जो मनमें आवे, करो।' अब हम क्या करें! आज विधाता सर्वथा हमारे प्रतिकूल चेष्टा कर रहा है॥ २७॥ चलो, हम स्वयं ही चलकर अपने प्राणप्यारे श्यामसुन्दरको रोकेंगी; कुलके बड़े-बूढ़े और बन्धुजन हमारा क्या कर लेंगे? अरी सखी! हम आधे क्षणके लिये भी प्राणवल्लभ नन्दनन्दनका सङ्ग छोड़नेमें असमर्थ थीं। आज हमारे दुर्भाग्यने हमारे सामने उनका वियोग उपस्थित करके हमारे चित्तको विनष्ट एवं व्याकुल कर

दिया है ॥ २८ ॥ सखियो ! जिनकी प्रेमभरी मनोहर मुसकान, रहस्यकी मीठी-मीठी बातें, विलासपूर्ण चितवन और प्रेमालिङ्गनसे हमने रासलीलाकी वे रात्रियाँ—जो बहुत विशाल थीं—एक क्षणके समान बिता दी थीं । अब भला, उनके बिना हम उन्हींकी दी हुई अपार विरहव्यथाका पार कैसे पावेंगी ॥ २९ ॥ एक दिनकी नहीं, प्रतिदिनकी बात है, सायङ्कालमें प्रतिदिन वे ग्वालबालोंसे घिरे हुए बलरामजीके साथ वनसे गौएँ चराकर लौटते हैं । उनकी काली-काली घुँघराली अलकें और गलेके पुष्पहार गौओंके खुरकी रजसे ढके रहते हैं । वे बाँसुरी बजाते हुए अपनी मन्द-मन्द मुसकान और तिरछी चितवनसे देख-देखकर हमारे हृदयको बेध डालते हैं । उनके बिना भला, हम कैसे जी सकेंगी' ॥ ३० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! गोपियाँ वाणीसे तो इस प्रकार कह रही थीं; परन्तु उनका एक-एक मनोभाव भगवान् श्रीकृष्णका स्पर्श, उनका आलिङ्गन कर रहा था । वे विरहकी सम्भावनासे अत्यन्त व्याकुल हो गयीं और लाज छोड़कर 'हे गोविन्द ! हे दामोदर ! हे माधव !'—इस प्रकार ऊँची आवाजसे पुकार-पुकारकर सुलंलित स्वरसे रोने लगीं ॥ ३१ ॥ गोपियाँ इस प्रकार रो रही थीं । रोते-रोते सारी रात बीत गयी, सूर्योदय हुआ । अक्रूरजी सन्ध्या-वन्दन आदि नित्य कर्मोंसे निवृत्त होकर रथपर सवार हुए और उसे हाँक ले चले ॥ ३२ ॥ नन्दबाबा आदि गोपोंने भी दूध, दही, मक्खन, घी आदिसे भरे मटके और भेंटकी बहुत-सी सामग्रियाँ ले लीं तथा वे छकड़ोंपर चढ़कर उनके पीछे-पीछे चले ॥ ३३ ॥ इसी समय अनुरागके रंगमें रँगी हुई गोपियाँ अपने प्राणप्यारे श्रीकृष्णके पास गयीं और उनकी चितवन, मुसकान आदि निरखकर कुछ-कुछ सुखी हुईं । अब वे अपने प्रियतम श्यामसुन्दरसे कुछ सन्देश पानेकी आकाङ्क्षासे वहीं खड़ी हो गयीं ॥ ३४ ॥ यदुवंशशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि मेरे मथुरा जानेसे गोपियोंके हृदयमें बड़ी जलन हो रही है, वे सन्तप्त हो रही हैं, तब उन्होंने दूतके द्वारा 'मैं आऊँगा' यह प्रेम-सन्देश भेजकर उन्हें धीरज बँधाया ॥ ३५ ॥ गोपियोंको जबतक रथकी ध्वजा और पहियोंसे उड़ती हुई धूल दीखती रही, तबतक उनके शरीर चित्रलिखित-से वहीं ज्यों-के-त्यों खड़े रहे । परन्तु उन्होंने अपना चित्त तो मनमोहन प्राणवल्लभ श्रीकृष्णके साथ ही भेज दिया था ॥ ३६ ॥ अभी उनके मनमे आशा थी कि शायद श्रीकृष्ण कुछ दूर जाकर लौट आयें ! परन्तु जब नहीं लौटे, तब वे निराश हो गयीं और अपने-अपने घर चली आयीं । परीक्षित् ! वे रात-दिन अपने प्यारे श्यामसुन्दरकी लीलाओंका गान करती रहतीं और इस प्रकार अपने शोकसन्तापको हल्का करतीं ॥ ३७ ॥

परीक्षित् ! इधर भगवान् श्रीकृष्ण भी बलरामजी और अक्रूरजीके साथ वायुके समान वेगवाले रथपर सवार होकर पापनाशिनी यमुनाजीके किनारे जा पहुँचे ॥ ३८ ॥ वहाँ उन लोगोंने हाथ-मुँह धोकर यमुनाजीका मरकतमणिके समान नीला और अमृतके समान मीठा जल पिया । इसके बाद बलरामजीके साथ भगवान् वृक्षोंके झुरमुटमें खड़े रथपर सवार हो गये ॥ ३९ ॥ अक्रूरजीने दोनों भाइयोंको रथपर बैठाकर उनसे आज्ञा ली और यमुनाजीके कुण्ड (अनन्त-तीर्थ या ब्रह्महृद) पर आकर वे विधिपूर्वक स्नान करने लगे ॥ ४० ॥ उस कुण्डमें स्नान करनेके बाद वे जलमें डुबकी लगाकर गायत्रीका जप करने लगे । उसी समय जलके भीतर अक्रूरजीने देखा कि श्रीकृष्ण और बलराम दोनों भाई एक साथ ही बैठे हुए हैं ॥ ४१ ॥ अब उनके मनमें यह शङ्का हुई कि 'वसुदेवजीके पुत्रोंको तो मैं रथपर बैठा आया हूँ, अब वे यहाँ जलमें कैसे आ गये ? जब यहाँ हैं तो शायद रथपर नहीं होंगे ।' ऐसा सोचकर उन्होंने सिर बाहर निकालकर देखा ॥ ४२ ॥ वे उस रथपर भी पूर्ववत् बैठे हुए थे । उन्होंने यह सोचकर कि मैंने उन्हें जो जलमे देखा था, वह भ्रम ही रहा होगा, फिर डुबकी लगायी ॥ ४३ ॥ परन्तु फिर उन्होंने वहाँ भी देखा कि साक्षात् अनन्तदेव श्रीशेषजी विराजमान हैं और सिद्ध, चारण, गन्धर्व एवं असुर अपने-अपने सिर झुकाकर उनकी स्तुति कर रहे हैं ॥ ४४ ॥ शेषजीके हजार सिर हैं और प्रत्येक

फणपर मुकुट सुशोभित है। कमलनालके समान उज्ज्वल शरीरपर नीलाम्बर धारण किये हुए हैं और उनकी ऐसी शोभा हो रही है, मानो सहस्र शिखरोंसे युक्त श्वेतगिरि कैलास शोभायमान हो ॥ ४५ ॥ अक्रूरजीने देखा कि शेषजीकी गोदमें श्याम मेघके समान घनश्याम विराजमान हो रहे हैं। वे रेशमी पीताम्बर पहने हुए हैं। बड़ी ही शान्त चतुर्भुज मूर्ति है और कमलके रक्तदलके समान रतनारे नेत्र हैं ॥४६॥ उनका वदन बड़ा ही मनोहर और प्रसन्नताका सदन है। उनका मधुर हास्य और चारु चितवन चित्तको चुराये लेती है। भौंहें सुन्दर और नासिका तनिक ऊँची तथा बड़ी ही सुघड़ है। सुन्दर कान, कपोल और लाल-लाल अधरोंकी छटा निराली ही है ॥ ४७ ॥ बाँहें घुटनोंतक लंबी और हृष्ट-पुष्ट हैं। कंधे ऊँचे और वक्षःस्थल लक्ष्मीजीका आश्रयस्थान है। शङ्खके समान उतार-चढ़ाववाला सुडौल गला, गहरी नाभि और त्रिवलीयुक्त उदर पीपलके पत्तेके समान शोभायमान है ॥ ४८ ॥ स्थूल कटिप्रदेश और नितम्ब, हाथीकी सूँडके समान जाँघें, सुन्दर घुटने एवं पिंडलियाँ हैं। एड़ीके ऊपरकी गाँठें उभरी हुई हैं और लाल-लाल नखोंसे दिव्य ज्योतिर्मय किरणें फैल रही हैं। चरण-कमलकी अंगुलियाँ और अंगूठे नयी और कोमल पँखुड़ियोंके समान सुशोभित हैं ॥ ४९-५० ॥ अत्यन्त बहुमूल्य मणियोंसे जड़ा हुआ मुकुट, कड़े, बाजूबंद, करधनी, हार, नूपुर और कुण्डलोंसे तथा यज्ञोपवीतसे वह दिव्य मूर्ति अलंकृत हो रही है। एक हाथमें पद्म शोभा पा रहा है और शेष तीन हाथोंमें शङ्ख, चक्र और गदा, वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न, गलेमें कौस्तुभमणि और वनमाला लटक रही हैं ॥ ५१-५२ ॥ नन्द-सुनन्द आदि पार्षद अपने 'स्वामी,' सनकादि परमर्षि 'परब्रह्म', ब्रह्मा, महादेव आदि देवता 'सर्वेश्वर', मरीचि आदि नौ ब्राह्मण 'प्रजापति' और प्रह्लाद-नारद आदि भगवान्के परम प्रेमी भक्त तथा आठों वसु अपने परम प्रियतम 'भगवान्' समझकर भिन्न-भिन्न भावोंके अनुसार निर्दोष वेदवाणीसे भगवान्की स्तुति कर रहे हैं ॥ ५३-५४ ॥ साथ ही लक्ष्मी, पुष्टि, सरस्वती, कान्ति, कीर्ति और तुष्टि (अर्थात् ऐश्वर्य, बल, ज्ञान, श्री, यश और वैराग्य—ये षडैश्वर्यरूप शक्तियाँ), इला (सन्धिनीरूप पृथ्वी-शक्ति), ऊर्जा (लीलाशक्ति), विद्या-अविद्या (जीवोंके मोक्ष और बन्धनमें कारणरूपा बहिरङ्ग शक्ति), ह्लादिनी, संवित् (अन्तरङ्गा शक्ति) और माया आदि शक्तियाँ मूर्तिमान् होकर उनकी सेवा कर रही हैं ॥ ५५ ॥

भगवान्की यह झाँकी निरखकर अक्रूरजीका हृदय परमानन्दसे लबालब भर गया। उन्हें परम भक्ति प्राप्त हो गयी। सारा शरीर हर्षावेशसे पुलकित हो गया। प्रेमभावका उद्रेक होनेसे उनके नेत्र आँसूसे भर गये ॥ ५६ ॥ अब अक्रूरजीने अपना साहस बटोरकर भगवान्के चरणोंमें सिर रखकर प्रणाम किया और वे उसके बाद हाथ जोड़कर बड़ी सावधानीसे धीरे-धीरे गद्गद स्वरसे भगवान्की स्तुति करने लगे ॥ ५७ ॥

चालीसवाँ अध्याय

अक्रूरजीके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति

अक्रूरजी बोले—प्रभो! आप प्रकृति आदि समस्त कारणोंके परम कारण हैं। आप ही अविनाशी पुरुषोत्तम नारायण हैं तथा आपके ही नाभिकमलसे उन ब्रह्माजीका आविर्भाव हुआ है, जिन्होंने इस चराचर जगत्की सृष्टि की है। मैं आपके चरणोंमें नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥ पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, अहङ्कार, महत्तत्त्व, प्रकृति, पुरुष, मन, इन्द्रिय, सम्पूर्ण इन्द्रियोंके विषय और उनके अधिष्ठातृदेवता—यही सब चराचर जगत् तथा उसके व्यवहारके कारण हैं और ये सब-के-सब आपके ही अङ्गस्वरूप हैं ॥ २ ॥ प्रकृति और प्रकृतिसे उत्पन्न होनेवाले समस्त पदार्थ 'इदंवृत्ति' के द्वारा ग्रहण किये जाते हैं, इसलिये ये सब अनात्मा हैं। अनात्मा

होनेके कारण जड हैं और इसलिये आपका स्वरूप नहीं जान सकते। क्योंकि आप तो स्वयं आत्मा ही ठहरे। ब्रह्माजी अवश्य ही आपके स्वरूप हैं। परन्तु वे प्रकृतिके गुण रजसूसे युक्त हैं, इसलिये वे भी आपकी प्रकृतिका और उसके गुणोंसे परेका स्वरूप नहीं जानते ॥ ३ ॥ साधु योगी स्वय अपने अन्तःकरणमें स्थित 'अन्तर्यामी' के रूपमें; समस्त भूत-भौतिक पदार्थोंमें व्याप्त 'परमात्माके' रूपमें और सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि देवमण्डलमे स्थित 'इष्टदेवता'के रूपमें तथा उनके साक्षी महापुरुष एवं नियन्ता ईश्वरके रूपमें साक्षात् आपकी ही उपासना करते हैं ॥ ४ ॥ बहुत-से कर्मकाण्डी ब्राह्मण कर्ममार्गका उपदेश करनेवाली त्रयीविद्याके द्वारा, जो आपके इन्द्र, अग्नि आदि अनेक देववाचक नाम तथा वज्रहस्त, सप्तार्चि आदि अनेक रूप बतलाती है, बड़े-बडे यज्ञ करते हैं और उनसे आपकी ही उपासना करते हैं ॥ ५ ॥ बहुत-से ज्ञानी अपने समस्त कर्मोंका संन्यास कर देते हैं और शान्तभावमें स्थित हो जाते हैं। वे इस प्रकार ज्ञानयज्ञके द्वारा ज्ञानस्वरूप आपकी ही आराधना करते हैं ॥ ६ ॥ और भी बहुत-से संस्कारसम्पन्न अथवा शुद्धचित्त वैष्णव-जन आपकी बतलायी हुई पाञ्चरात्र आदि विधियोंसे तन्मय होकर आपके चतुर्व्यूह आदि अनेक और नारायणरूप एक स्वरूपकी पूजा करते हैं ॥ ७ ॥ भगवन्! दूसरे लोग शिवजीके द्वारा बतलाये हुए मार्गसे, जिसके आचार्य-भेदसे अनेक अवान्तर भेद भी हैं, शिवस्वरूप आपकी ही पूजा करते है ॥ ८ ॥ स्वामिन्! जो लोग दूसरे देवताओंकी भक्ति करते हैं और उन्हें आपसे भिन्न समझते हैं, वे सब भी वास्तवमें आपकी ही आराधना करते हैं; क्योंकि आप ही समस्त देवताओंके रूपमें है और सर्वेश्वर भी हैं ॥ ९ ॥ प्रभो! जैसे पर्वतोंसे सब ओर बहुत-सी नदियाँ निकलती हैं और वर्षाके जलसे भरकर घूमती-घामती समुद्रमें प्रवेश कर जाती हैं, वैसे ही सभी प्रकारके उपासना-मार्ग घूम-घामकर देर-सवेर आपके ही पास पहुँच जाते हैं ॥ १० ॥

प्रभो! आपकी प्रकृतिके तीन गुण हैं—सत्त्व, रज और तम। ब्रह्मासे लेकर स्थावरपर्यन्त सम्पूर्ण चराचर जीव प्राकृत हैं और जैसे वस्त्र सूत्रोंसे ओतप्रोत रहते हैं, वैसे ही ये सब प्रकृतिके उन गुणोंसे ही ओतप्रोत हैं ॥ ११ ॥ परन्तु आप सर्वस्वरूप होनेपर भी उनके साथ लिप्त नहीं हैं। आपकी दृष्टि निर्लिप्त है, क्योंकि आप समस्त वृत्तियोंके साक्षी हैं। यह गुणोंके प्रवाहसे होनेवाली सृष्टि अज्ञानमूलक है और वह देवता, मनुष्य, पशु-पक्षी आदि समस्त योनियोंमें व्याप्त है; परन्तु आप उससे सर्वथा अलग हैं। इसलिये मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ १२ ॥ अग्नि आपका मुख है। पृथ्वी चरण है। सूर्य और चन्द्रमा नेत्र हैं। आकाश नाभि है। दिशाएँ कान हैं। स्वर्ग सिर है। देवेन्द्रगण भुजाएँ हैं। समुद्र कोख है और यह वायु ही आपकी प्राणशक्तिके रूपमें उपासनाके लिये कल्पित हुई है ॥ १३ ॥ वृक्ष और ओषधियाँ रोम हैं। मेघ सिरके केश हैं। पर्वत आपके अस्थिसमूह और नख हैं। दिन और रात पलकोंका खोलना और मीचना है। प्रजापति जननेन्द्रिय हैं और वृष्टि ही आपका वीर्य है ॥ १४ ॥ अविनाशी भगवन्! जैसे जलमें बहुत-से जलचर जीव और गूलर-के फलोंमें नन्हे-नन्हे कीट रहते हैं, उसी प्रकार उपासनाके लिये स्वीकृत आपके मनोमय पुरुषरूपमें अनेक प्रकारके जीव-जन्तुओंसे भरे हुए लोक और उनके लोकपाल कल्पित किये गये हैं ॥ १५ ॥ प्रभो! आप क्रीडा करनेके लिये पृथ्वीपर जो-जो रूप धारण करते हैं, वे सब अवतार लोगोंके शोक-मोहको धो-बहा देते हैं और फिर सब लोग बडे आनन्दसे आपके निर्मल यशका गान करते हैं ॥ १६ ॥ प्रभो! आपने वेदों, ऋषियों, ओषधियों और सत्यव्रत आदिकी रक्षा-दीक्षाके लिये मत्स्यरूप धारण किया था और प्रलयके समुद्रमें स्वच्छन्द विहार किया था। आपके मत्स्यरूपको मैं नमस्कार करता हूँ। आपने ही मधु और कैटभ नामके असुरोंका संहार करनेके लिये हयग्रीव अवतार ग्रहण किया था। मैं आपके उस रूपको भी नमस्कार करता हूँ ॥ १७ ॥ आपने ही वह विशाल कच्छपरूप ग्रहण करके मन्दराचल-को धारण किया था, आपको मैं नमस्कार करता हूँ। आपने ही पृथ्वीके उद्धारकी लीला करनेके लिये वराहरूप स्वीकार किया था, आपको मेरे बार-बार नमस्कार ॥ १८ ॥ प्रह्लाद-जैसे साधुजनोंका भेदभय मिटानेवाले प्रभो!

आपके उस अलौकिक नृसिंहरूपको मैं नमस्कार करता हूँ। आपने वामनरूप ग्रहण करके अपने पगोंसे तीनों लोक नाप लिये थे, आपको मैं नमस्कार करता हूँ ।१९। धर्मका उल्लङ्घन करनेवाले घमंडी क्षत्रियोंके वनका छेदन कर देनेके लिये आपने भृगुपति परशुरामरूप ग्रहण किया था। मैं आपके उस रूपको नमस्कार करता हूँ। रावणका नाश करनेके लिये आपने रघुवंशमें भगवान् रामके रूपसे अवतार ग्रहण किया था। मैं आपको नमस्कार करता हूँ ।।२०।। वैष्णवजनों तथा यदुवंशियोंका पालन-पोषण करनेके लिये आपने ही अपनेको वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—इस चतुर्व्यूहके रूपमें प्रकट किया है। मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ ।। २१ ।। दैत्य और दानवोंको मोहित करनेके लिये आप शुद्ध अहिंसामार्गके प्रवर्तक बुद्धका रूप ग्रहण करेंगे। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। और पृथ्वीके क्षत्रिय जब म्लेच्छप्राय हो जायँगे, तब उनका नाश करनेके लिये आप ही कल्किके रूपमें अवतीर्ण होंगे। मैं आपको नमस्कार करता हूँ ।। २२ ।।

भगवन्! ये सब-के-सब जीव आपकी मायासे मोहित हो रहे हैं और इस मोहके कारण ही 'यह मैं हूँ और यह मेरा है' इस झूठे दुराग्रहमें फँसकर कर्मके मार्गोंमें भटक रहे हैं।। २३ ।। मेरे स्वामी! इसी प्रकार मैं भी स्वप्नमें दीखनेवाले पदार्थोंके समान झूठे देह-गेह, पत्नी-पुत्र और धन-स्वजन आदिको सत्य समझकर उन्हींके मोहमे फँस रहा हूँ और भटक रहा हूँ ।। २४ ।।

मेरी मूर्खता तो देखिये, प्रभो! मैंने अनित्य वस्तुओंको नित्य, अनात्माको आत्मा और दुःखको सुख समझ लिया। भला इस उलटी बुद्धिकी भी कोई सीमा है! इस प्रकार अज्ञानवश सांसारिक सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोमे ही रम गया और यह बात बिल्कुल भूल गया कि आप ही हमारे सच्चे प्यारे हैं ।। २५ ।। जैसे कोई अनजान मनुष्य जलके लिये तालाबपर जाय और उसे उसीसे पैदा हुए सिवार आदि घासोंसे ढका देखकर ऐसा समझ ले कि यहाँ जल नहीं है, तथा सूर्यकी किरणोंमें झूठमूठ प्रतीत होनेवाले जलके लिये मृगतृष्णाकी ओर दौड़ पड़े, वैसे ही मैं अपनी ही मायासे छिपे रहनेके कारण आपको छोड़कर विषयोंमें सुखकी आशासे भटक रहा हूँ ।।२६।। मैं अविनाशी अक्षर वस्तुके ज्ञानसे रहित हूँ। इसीसे मेरे मनमें अनेक वस्तुओंकी कामना और उनके लिये कर्म करनेके सङ्कल्प उठते ही रहते हैं। इसके अतिरिक्त ये इन्द्रियाँ भी जो बड़ी प्रबल एवं दुर्दमनीय है, मनको मथ-मथकर बलपूर्वक इधर-उधर घसीट ले जाती हैं। इसीलिये इस मनको मै रोक नहीं पाता ।। २७ ।। इस प्रकार भटकता हुआ मैं आपके उन चरणकमलोंकी छत्रछायामे आ पहुँचा हूँ, जो दुष्टोंके लिये दुर्लभ हैं। मेरे स्वामी! इसे भी मैं आपका कृपाप्रसाद ही मानता हूँ। क्योंकि पद्मनाभ! जब जीवके संसारसे मुक्त होने-का समय आता है, तब सत्पुरुषोंकी उपासनासे चित्तवृत्ति आपमें लगती है ।। २८ ।। प्रभो! आप केवल विज्ञान-स्वरूप हैं, विज्ञानघन हैं। जितनी भी प्रतीतियाँ होती हैं, जितनी भी वृत्तियाँ है, उन सबके आप ही कारण और अधिष्ठान हैं। जीवके रूपमें एवं जीवोंके सुख-दुःख आदिके निमित्त काल, कर्म, स्वभाव तथा प्रकृतिके रूपमें भी आप ही हैं। तथा आप ही उन सबके नियन्ता भी हैं। आपकी शक्तियाँ अनन्त हैं। आप स्वयं ब्रह्म हैं। मै आपको नमस्कार करता हूँ ।। २९ ।। प्रभो! आप ही वासुदेव, आप ही समस्त जीवोंके आश्रय (सङ्कर्षण) हैं; तथा आप ही बुद्धि और मनके अधिष्ठातृ-देवता हृषीकेश (प्रद्युम्न और अनिरुद्ध) हैं। मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ। प्रभो! आप मुझ शरणागतकी रक्षा कीजिये ।। ३० ।।

इकतालीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्णका मथुराजीमें प्रवेश

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! अक्रूरजी इस प्रकार स्तुति कर रहे थे। उन्हें भगवान् श्रीकृष्णने जलमें अपने दिव्यरूपके दर्शन कराये और फिर उसे छिपा लिया, ठीक वैसे ही, जैसे कोई नट अभिनयमें कोई रूप

दिखाकर फिर उसे परदेकी ओटमें छिपा दे ॥ १ ॥ जब अक्रूरजीने देखा कि भगवान्‌का वह दिव्यरूप अन्तर्धान हो गया, तब वे जलसे बाहर निकल आये और फिर जल्दी-जल्दी सारे आवश्यक कर्म समाप्त करके रथपर चले आये। उस समय वे बहुत ही विस्मित हो रहे थे ॥ २ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने उनसे पूछा—'चाचाजी! आपने पृथ्वी, आकाश या जलमें कोई अद्भुत वस्तु देखी है क्या? क्योंकि आपकी आकृति देखनेसे ऐसा ही जान पड़ता है' ॥ ३ ॥

अक्रूरजीने कहा—'प्रभो! पृथ्वी, आकाश या जलमें और सारे जगत्‌में जितने भी अद्भुत पदार्थ हैं, वे सब आपमें ही हैं। क्योंकि आप विश्वरूप हैं। जब मैं आपको ही देख रहा हूँ तब ऐसी कौन-सी अद्भुत वस्तु रह जाती है, जो मैंने न देखी हो ॥ ४ ॥ भगवन्! जितनी भी अद्भुत वस्तुएँ हैं, वे पृथ्वीमें हों या जल अथवा आकाशमें—सब-की-सब जिनमें हैं, उन्हीं आपको मैं देख रहा हूँ! फिर भला, मैंने यहाँ अद्भुत वस्तु कौन-सी देखी?' ॥ ५ ॥ गान्दिनीनन्दन अक्रूरजीने यह कहकर रथ हाँक दिया और भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलरामजीको लेकर दिन ढलते-ढलते वे मथुरापुरी जा पहुँचे ॥ ६ ॥ परीक्षित्! मार्गमें स्थान-स्थानपर गाँवोंके लोग मिलनेके लिये आते और भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलरामजीको देखकर आनन्दमग्न हो जाते। वे एकटक उनकी ओर देखने लगते, अपनी दृष्टि हटा न पाते ॥७॥ नन्दबाबा आदि व्रजवासी तो पहलेसे ही वहाँ पहुँच गये थे, और मथुरापुरीके बाहरी उपवनमें रुककर उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे ॥ ८ ॥ उनके पास पहुँचकर जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्णने विनीतभावसे खड़े अक्रूरजीका हाथ अपने हाथमें लेकर मुसकराते हुए कहा—॥ ९ ॥ 'चाचाजी! आप रथ लेकर पहले मथुरापुरीमें प्रवेश कीजिये और अपने घर जाइये। हमलोग पहले यहाँ उतरकर फिर नगर देखनेके लिये आयेंगे' ॥ १० ॥

अक्रूरजीने कहा—प्रभो! आप दोनोंके बिना मैं मथुरामें नहीं जा सकता। स्वामी! मैं आपका भक्त हूँ। भक्तवत्सल प्रभो! आप मुझे मत छोड़िये ॥ ११ ॥ भगवन्! आइये, चलें। मेरे परम हितैषी और सच्चे सुहृद् भगवन्! आप बलरामजी, ग्वालबालों तथा नन्दरायजी आदि आत्मीयोंके साथ चलकर हमारा घर सनाथ कीजिये ॥ १२ ॥ हम गृहस्थ हैं। आप अपने चरणोंकी धूलिसे हमारा घर पवित्र कीजिये। आपके चरणोंकी धोवन (गङ्गाजल या चरणामृत) से अग्नि, देवता, पितर—सब-के-सब तृप्त हो जाते हैं ॥ १३ ॥ प्रभो! आपके युगल चरणोंको पखारकर महात्मा बलिने वह यश प्राप्त किया, जिसका गान संत पुरुष करते हैं। केवल यश ही नहीं—उन्हें अतुलनीय ऐश्वर्य तथा वह गति प्राप्त हुई, जो अनन्यप्रेमी भक्तोंको प्राप्त होती है ॥१४॥ आपके चरणोदक—गङ्गाजीने तीनों लोक पवित्र कर दिये। सचमुच वे मूर्तिमान् पवित्रता हैं। उन्हींके स्पर्शसे सगरके पुत्रोंको सद्गति प्राप्त हुई और उसी जलको स्वयं भगवान् शङ्करने अपने सिरपर धारण किया॥१५॥ यदुवंशशिरोमणे! आप देवताओंके भी आराध्यदेव हैं। जगत्‌के स्वामी हैं। आपके गुण और लीलाओंका श्रवण तथा कीर्तन बड़ा ही मङ्गलकारी है। उत्तम पुरुष आपके गुणोंका कीर्तन करते रहते हैं। नारायण! मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ १६ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—चाचाजी! मैं दाऊ भैयाके साथ आपके घर आऊँगा और पहले इस यदुवंशियोंके द्रोही कंसको मारकर तब अपने सभी सुहृद्-स्वजनोंका प्रिय करूँगा ॥ १७ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान्‌के इस प्रकार कहनेपर अक्रूरजी कुछ अनमने-से हो गये। उन्होंने पुरीमें प्रवेश करके कंससे श्रीकृष्ण और बलरामके ले आनेका समाचार निवेदन किया और फिर अपने घर गये॥१८॥दूसरे दिन तीसरे पहर बलरामजी और ग्वालबालोंके साथ भगवान् श्रीकृष्णने मथुरापुरीको देखनेके लिये नगरमें प्रवेश किया॥ १९ ॥ भगवान्‌ने देखा कि नगरके परकोटेमें स्फटिकमणि (बिल्लौर) के बहुत ऊँचे-ऊँचे गोपुर (प्रधान दरवाजे) तथा घरोंमें भी बड़े-बड़े फाटक बने हुए हैं। उनमें सोनेके बड़े-बड़े किंवाड़ लगे हैं और सोनेके ही तोरण (बाहरी दरवाजे) बने हुए हैं। नगरके चारों ओर ताँबे और पीतलकी चहारदीवारी बनी हुई है। खाईके

कारण और कहींसे उस नगरमे प्रवेश करना बहुत कठिन है। स्थान-स्थानपर सुन्दर-सुन्दर उद्यान और रमणीय उपवन (केवल स्त्रियोंके उपयोगमें आनेवाले बगीचे) शोभायमान हैं ॥ २० ॥ सुवर्णसे सजे हुए चौराहे, धनियोंके महल, उन्हींके साथके बगीचे, कारीगरोंके बैठनेके स्थान या प्रजावर्गके सभा-भवन (टाउनहाल) और साधारण लोगोंके निवासगृह नगरकी शोभा बढा रहे हैं । वैदूर्य, हीरे, स्फटिक (बिल्लौर), नीलम, मूँगे, मोती और पन्ने आदिसे जड़े हुए छज्जे, चबूतरे, झरोखे एवं फर्श आदि जगमगा रहे हैं । उनपर बैठे हुए कबूतर, मोर आदि पक्षी भाँति-भाँतिकी बोली बोल रहे है । सड़क, बाजार, गली एवं चौराहोंपर खूब छिड़काव किया गया है । स्थान-स्थानपर फूलोंके गजरे, जवारे (जौके अङ्कुर), खील और चावल बिखरे हुए हैं ॥ २१-२२ ॥ घरोंके दरवाजोंपर दही और चन्दन आदिसे चर्चित जलसे भरे हुए कलश रक्खे हैं और वे फूल, दीपक, नयी-नयी कोंपलें, फलसहित केले और सुपारीके वृक्ष, छोटी-छोटी झंडियों और रेशमी वस्त्रोंसे भलीभाँति सजाये हुए हैं ॥ २३ ॥

परीक्षित् ! वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीने ग्वालबालोंके साथ राजपथसे मथुरा नगरीमें प्रवेश किया । उस समय नगरकी नारियाँ बड़ी उत्सुकतासे उन्हें देखनेके लिये झटपट अटारियोंपर चढ़ गयीं ॥२४॥ किसी-किसीने जल्दीके कारण अपने वस्त्र और गहने उलटे पहन लिये । किसीने भूलसे कुण्डल, कंगन आदि जोड़ेसे पहने जानेवाले आभूषणोंमेंसे एक ही पहना और चल पड़ी । कोई एक ही कानमे पत्रनामक आभूषण धारण कर पायी थी, तो किसीने एक ही पाँवमें पायजेब पहन रक्खा था । कोई एक ही आँखमें अञ्जन आँज पायी थी और दूसरीमें बिना आँजे ही चल पड़ी॥२५॥ कई रमणियाँ तो भोजन कर रही थीं, वे हाथका कौर फेंककर चल पड़ीं । सबका मन उत्साह और आनन्दसे भर रहा था । कोई-कोई उबटन लगवा रही थीं, वे बिना स्नान किये ही दौड़ पड़ीं । जो सो रही थीं, वे कोलाहल सुनकर उठ खड़ी हुईं और उसी अवस्थामें दौड़ चलीं । जो माताएँ बच्चोंको दूध पिला रही थीं, वे उन्हें गोदसे हटाकर भगवान् श्रीकृष्णको देखनेके लिये चल पड़ीं ॥ २६ ॥ कमलनयन भगवान् श्रीकृष्ण मतवाले गजराजके समान बडी मस्तीसे चल रहे थे । उन्होंने लक्ष्मीको भी आनन्दित करनेवाले अपने श्यामसुन्दर विग्रहसे नगरनारियोंके नेत्रोंको बडा आनन्द दिया और अपनी विलासपूर्ण प्रगल्भ हँसी तथा प्रेमभरी चितवनसे उनके मन चुरा लिये ॥२७॥ मथुराकी स्त्रियाँ बहुत दिनोंसे भगवान् श्रीकृष्णकी अद्भुत लीलाएँ सुनती आ रही थीं । उनके चित्त चिरकालसे श्रीकृष्णके लिये चञ्चल, व्याकुल हो रहे थे । आज उन्होंने उन्हें देखा । भगवान् श्रीकृष्णने भी अपनी प्रेमभरी चितवन और मन्द मुसकानकी सुधासे सींचकर उनका सम्मान किया । परीक्षित् ! उन स्त्रियोंने नेत्रोंके द्वारा भगवान्‌को अपने हृदयमें ले जाकर उनके आनन्दमय स्वरूपका आलिङ्गन किया । उनका शरीर पुलकित हो गया और बहुत दिनोंकी विरह-व्याधि शान्त हो गयी ॥२८॥ मथुराकी नारियाँ अपने-अपने महलोंकी अटारियोंपर चढ़कर बलराम और श्रीकृष्णपर पुष्पोंकी वर्षा करने लगीं । उस समय उन स्त्रियोंके मुखकमल प्रेमके आवेगसे खिल रहे थे ॥२९॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंने स्थान-स्थानपर दही, अक्षत, जलसे भरे पात्र, फूलोंके हार, चन्दन और भेंटकी सामग्रियोंसे आनन्दमग्न होकर भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीकी पूजा की ॥ ३० ॥ भगवान्‌को देखकर सभी पुरवासी आपसमें कहने लगे—'धन्य है ! धन्य है !' गोपियोंने ऐसी कौन-सी महान् तपस्या की है, जिसके कारण वे मनुष्यमात्रको परमानन्द देनेवाले इन दोनों मनोहर किशोरोंको देखती रहती हैं ॥ ३१ ॥

इसी समय भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि एक धोबी, जो कपडे रँगनेका भी काम करता था, उनकी ओर आ रहा है । भगवान् श्रीकृष्णने उससे धुले हुए उत्तम-उत्तम कपड़े माँगे ॥ ३२ ॥ भगवान्‌ने कहा—'भाई ! तुम हमें ऐसे वस्त्र दो, जो हमारे शरीरमें पूरे-पूरे आ जायँ । वास्तवमे हमलोग उन वस्त्रोंके अधिकारी हैं । इसमें सन्देह नहीं कि यदि तुम हमलोगोंको वस्त्र दोगे, तो तुम्हारा परम कल्याण होगा' ॥ ३३ ॥ परीक्षित् ! भगवान् सर्वत्र परिपूर्ण हैं । सब कुछ उन्हींका है । फिर भी उन्होंने इस प्रकार माँगनेकी लीला की । परन्तु वह

मूर्ख राजा कंसका सेवक होनेके कारण मतवाला हो रहा था। भगवान्‌की वस्तु भगवान्‌को देना तो दूर रहा, उसने क्रोधमें भरकर आक्षेप करते हुए कहा—॥ ३४ ॥ 'तुमलोग रहते हो सदा पहाड और जगलोंमे। क्या वहाँ ऐसे ही वस्त्र पहनते हो? तुमलोग बहुत उद्दण्ड हो गये हो, तभी ऐसी बढ़-बढ़कर बातें करते हो। अब तुम्हें राजाका धन लूटनेकी इच्छा हुई है ॥ ३५ ॥ अरे, मूर्खो! जाओ, भाग जाओ! यदि कुछ दिन जीनेकी इच्छा हो तो फिर इस तरह मत माँगना। राजकर्मचारी तुम्हारे-जैसे उच्छृङ्खलोंको कैद कर लेते हैं, मार डालते हैं और जो कुछ उनके पास होता है, छीन लेते हैं' ॥ ३६ ॥ जब वह धोबी इस प्रकार बहुत कुछ बहक-बहककर बातें करने लगा, तब भगवान् श्रीकृष्णने तनिक कुपित होकर उसे एक तमाचा जमाया और उसका सिर धड़ामसे धड़से नीचे जा गिरा ॥ ३७ ॥ यह देखकर उस धोबीके अधीन काम करनेवाले सब के-सब कपड़ोंके गट्ठर वहीं छोड़कर इधर-उधर भाग गये। भगवान्‌ने उन वस्त्रोंको ले लिया ॥३८॥ भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीने मनमाने वस्त्र पहन लिये तथा बचे हुए वस्त्रोंमेंसे बहुत-से अपने साथी ग्वालबालोंको भी दिये। बहुत-से कपड़े तो वहीं जमीनपर ही छोड़कर चल दिये॥३९॥

भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम जब कुछ आगे बढे, तब उन्हे एक दर्जी मिला। भगवान्‌का अनुपम सौन्दर्य देखकर उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने उन रंग-बिरंगे सुन्दर वस्त्रोंको उनके शरीरपर ऐसे ढंगसे सजा दिया कि वे सब ठीक-ठीक फब गये ॥४०॥ अनेक प्रकारके वस्त्रोंसे विभूषित होकर दोनों भाई और भी अधिक शोभायमान हुए। ऐसे जान पड़ते, मानो उत्सवके समय श्वेत और श्याम गजशावक भलीभाँति सजा दिये गये हों ॥ ४१ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण उस दर्जीपर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उसे इस लोकमें भरपूर धन-सम्पत्ति, बल-ऐश्वर्य, अपनी स्मृति और दूरतक देखने-सुनने आदिकी इन्द्रियसम्बन्धी शक्तियाँ दीं और मृत्युके बादके लिये अपना सारूप्य मोक्ष भी दे दिया ॥ ४२ ॥

इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण सुदामा मालीके घर गये। दोनों भाइयोंको देखते ही सुदामा उठ खड़ा हुआ और पृथ्वीपर सिर रखकर उन्हें प्रणाम किया ॥ ४३ ॥ फिर उनको आसनपर बैठाकर उनके पाँव पखारे, हाथ धुलाये और तदनन्तर ग्वालबालोंके सहित सबकी फूलोंके हार, पान, चन्दन आदि सामग्रियोंसे विधिपूर्वक पूजा की ॥ ४४ ॥ इसके पश्चात् उसने प्रार्थना की—'प्रभो! आप दोनोंके शुभागमनसे हमारा जन्म सफल हो गया। हमारा कुल पवित्र हो गया। आज हम पितर, ऋषि और देवताओंके ऋणसे मुक्त हो गये। वे हमपर परमसन्तुष्ट हैं॥४५॥ आप दोनों सम्पूर्ण जगत्‌के परम कारण हैं। आप संसारके अभ्युदय—उन्नति और निःश्रेयस—मोक्षके लिये ही इस पृथ्वीपर अपने ज्ञान, बल आदि अंशोंके साथ अवतीर्ण हुए हैं ॥ ४६ ॥ यद्यपि आप प्रेम करनेवालोंसे ही प्रेम करते हैं, भजन करनेवालोंको ही भजते हैं—फिर भी आपकी दृष्टिमें विषमता नहीं है। क्योंकि आप सारे जगत्‌के परम सुहृद् और आत्मा हैं। आप समस्त प्राणियों और पदार्थोंमें समरूपसे स्थित हैं ॥ ४७ ॥ मैं आपका दास हूँ। आप दोनों मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं आपलोगोंकी क्या सेवा करूँ। भगवन्! जीवपर आपका यह बहुत बड़ा अनुग्रह है, पूर्ण कृपा-प्रसाद है कि आप उसे आज्ञा देकर किसी कार्यमें नियुक्त करते हैं ॥ ४८ ॥ राजेन्द्र! सुदामा मालीने इस प्रकार प्रार्थना करनेके बाद भगवान्‌का अभिप्राय जानकर बड़े प्रेम और आनन्दसे भरकर अत्यन्त सुन्दर-सुन्दर तथा सुगन्धित पुष्पोंसे गूँथे हुए हार उन्हें पहनाये ॥ ४९ ॥ जब ग्वालबाल और बलरामजीके साथ भगवान् श्रीकृष्ण उन सुन्दर-सुन्दर मालाओंसे अलङ्कृत हो चुके, तब उन वरदायक प्रभुने प्रसन्न होकर विनीत और शरणागत सुदामाको श्रेष्ठ वर दिये ।५०। सुदामा मालीने उनसे यही वर माँगा कि 'प्रभो! आप ही समस्त प्राणियोंके आत्मा हैं। सर्वस्वरूप! आपके चरणोंमें मेरी अविचल भक्ति हो। आपके भक्तोंसे मेरा सौहार्द, मैत्रीका सम्बन्ध हो और समस्त प्राणियोंके प्रति अहैतुक दयाका भाव बना रहे ॥ ५१ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने सुदामाको उसके माँगे हुए वर तो दिये ही—ऐसी लक्ष्मी भी दी, जो वंशपरम्पराके साथ-साथ बढ़ती जाय, और साथ ही बल, आयु, कीर्ति तथा कान्तिका भी वरदान दिया। इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण बलरामजीके साथ वहाँसे विदा हुए ॥ ५२ ॥

बयालीसवाँ अध्याय

कुब्जापर कृपा, धनुषभङ्ग और कंसकी घबड़ाहट

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण जब अपनी मण्डलीके साथ राजमार्गसे आगे बढ़े, तब उन्होंने एक युवती स्त्रीको देखा। उसका मुँह तो सुन्दर था, परन्तु वह शरीरसे कुबड़ी थी। इसीसे उसका नाम पड़ गया था 'कुब्जा'। वह अपने हाथमें चन्दनका पात्र लिये हुए जा रही थी। भगवान् श्रीकृष्ण प्रेमरसका दान करनेवाले हैं, उन्होंने कुब्जापर कृपा करनेके लिये हँसते हुए उससे पूछा—॥ १ ॥ 'सुन्दरी ! तुम कौन हो ? यह चन्दन किसके लिये ले जा रही हो ? कल्याणी ! हमें सब बात सच-सच बतला दो। यह उत्तम चन्दन, यह अङ्गराग हमें भी दो। इस दानसे शीघ्र ही तुम्हारा परम कल्याण होगा' ॥ २ ॥

उबटन आदि लगानेवाली सैरन्ध्री कुब्जाने कहा—'परम सुन्दर ! मैं कंसकी प्रिय दासी हूँ। महाराज मुझे बहुत मानते हैं। मेरा नाम त्रिवक्रा (कुब्जा) है। मैं उनके यहाँ चन्दन, अङ्गराग लगानेका काम करती हूँ। मेरे द्वारा तैयार किये हुए चन्दन और अङ्गराग भोजराज कंसको बहुत भाते हैं। परन्तु आप दोनोंसे बढ़कर उसका और कोई उत्तम पात्र नहीं है' ॥ ३ ॥ भगवान्‌के सौन्दर्य, सुकुमारता, रसिकता, मन्दहास्य, प्रेमालाप और चारु चितवनसे कुब्जाका मन हाथसे निकल गया। उसने भगवान्‌पर अपना हृदय न्योछावर कर दिया। उसने दोनों भाइयोंको वह सुन्दर और गाढ़ा अङ्गराग दे दिया ॥ ४ ॥ तब भगवान् श्रीकृष्णने अपने साँवले शरीरपर पीले रंगका और बलरामजीने अपने गोरे शरीरपर लाल रंगका अङ्गराग लगाया तथा नाभिसे ऊपरके भागमें अनुरञ्जित होकर वे अत्यन्त सुशोभित हुए ॥ ५ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण उस कुब्जापर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने अपने दर्शनका प्रत्यक्ष फल दिखलानेके लिये तीन जगहसे टेढ़ी किन्तु सुन्दर मुखवाली कुब्जाको सीधी करनेका विचार किया॥ ६॥ भगवान्‌ने अपने चरणोंसे कुब्जाके पैरके दोनों पंजे दबा लिये और हाथ ऊँचा करके दो अँगुलियाँ उसकी ठोडीमें लगायीं तथा उसके शरीरको तनिक उचका दिया ॥ ७ ॥ उचकाते ही उसके सारे अङ्ग सीधे और समान हो गये। प्रेम और मुक्तिके दाता भगवान्‌के स्पर्शसे वह तत्काल विशाल नितम्ब तथा पीन पयोधरोंसे युक्त एक उत्तम युवती बन गयी ॥ ८ ॥

उसी क्षण कुब्जा रूप, गुण और उदारतासे सम्पन्न हो गयी। उसके मनमें भगवान्‌के मिलनकी कामना जाग उठी। उसने उनके दुपट्टेका छोर पकड़कर मुसकराते हुए कहा—॥ ९ ॥ 'वीरशिरोमणे ! आइये, घर चलें। अब मैं आपको यहाँ नहीं छोड़ सकती। क्योंकि आपने मेरे चित्तको मथ डाला है। पुरुषोत्तम ! मुझ दासीपर प्रसन्न होइये' ॥ १० ॥ जब बलरामजीके सामने ही कुब्जाने इस प्रकार प्रार्थना की, तब भगवान् श्रीकृष्णने अपने साथी ग्वालबालोंके मुँहकी ओर देखकर हँसते हुए उससे कहा—॥ ११ ॥ 'सुन्दरी ! तुम्हारा घर संसारी लोगोंके लिये अपनी मानसिक व्याधि मिटानेका साधन है। मैं अपना कार्य पूरा करके अवश्य वहाँ आऊँगा। हमारे-जैसे बेघरके बटोहियोंको तुम्हारा ही तो आसरा है' ॥ १२ ॥ इस प्रकार मीठी-मीठी बातें करके भगवान् श्रीकृष्णने उसे विदा कर दिया। जब वे व्यापारियोंके बाजारमें पहुँचे, तब उन व्यापारियोंने उनका तथा बलरामजीका पान, फूलोंके हार, चन्दन और तरह-तरहकी भेंट—उपहारोंसे पूजन किया ॥ १३ ॥ उनके दर्शनमात्रसे स्त्रियोंके हृदयमें प्रेमका आवेग, मिलनकी आकाङ्क्षा जग उठती थी। यहाँतक कि उन्हें अपने शरीरकी भी सुध न रहती। उनके वस्त्र, जूड़े और कंगन ढीले पड़ जाते थे तथा वे चित्रलिखित मूर्तियोंके समान ज्यों-की-त्यों खड़ी रह जाती थीं ॥ १४ ॥

इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण पुरवासियोंसे धनुष-यज्ञका स्थान पूछते हुए रंगशालामें पहुँचे और वहाँ उन्होंने इन्द्रधनुषके समान एक अद्भुत धनुष देखा ॥ १५ ॥ उस धनुषमें बहुत-सा धन लगाया गया था, अनेक बहुमूल्य अलङ्कारोंसे उसे सजाया गया था।

उसकी खूब पूजा की गयी थी और बहुत-से सैनिक उसकी रक्षा कर रहे थे। भगवान् श्रीकृष्णने रक्षकोंके रोकनेपर भी उस धनुषको बलात्कारसे उठा लिया ॥ १६ ॥ उन्होंने सबके देखते-देखते उस धनुषको बायें हाथसे उठाया, उसपर डोरी चढ़ायी और एक क्षणमें खींचकर बीचोंबीचसे उसी प्रकार उसके दो टुकड़े कर डाले, जैसे बहुत बलवान् मतवाला हाथी खेल-ही-खेलमें ईखको तोड़ डालता है ॥ १७ ॥ जब धनुष टूटा तब उसके शब्दसे आकाश, पृथ्वी और दिशाएँ भर गयीं; उसे सुनकर कंस भी भयभीत हो गया ॥ १८ ॥ अब धनुषके रक्षक आततायी असुर अपने सहायकोंके साथ बहुत ही बिगड़े। वे भगवान् श्रीकृष्णको घेरकर खड़े हो गये और उन्हें पकड़ लेनेकी इच्छासे चिल्लाने लगे—'पकड़ लो, बाँध लो, जाने न पावे' ॥ १९ ॥ उनका दुष्ट अभिप्राय जानकर बलरामजी और श्रीकृष्ण भी तनिक क्रोधित हो गये और उस धनुषके टुकड़ोंको उठाकर उन्हींसे उनका काम तमाम कर दिया ॥ २० ॥ उन्हीं धनुषखण्डोंसे उन्होंने उन असुरोंकी सहायताके लिये कंसकी भेजी हुई सेनाका भी संहार कर डाला। इसके बाद वे यज्ञशालाके प्रधान द्वारसे होकर बाहर निकल आये और बड़े आनन्दसे मथुरापुरीकी शोभा देखते हुए विचरने लगे ॥ २१ ॥ जब नगरनिवासियोंने दोनों भाइयोंके इस अद्भुत पराक्रमकी बात सुनी और उनके तेज, साहस तथा अनुपम रूपको देखा तब उन्होंने यही निश्चय किया कि हो-न-हो ये दोनों कोई श्रेष्ठ देवता हैं ॥ २२ ॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी पूरी स्वतन्त्रतासे मथुरापुरीमें विचरण करने लगे। जब सूर्यास्त हो गया, तब दोनों भाई ग्वालबालोंसे घिरे हुए नगरसे बाहर अपने डेरेपर, जहाँ छकड़े थे, लौट आये ॥ २३ ॥ तीनों लोकोंके बड़े-बड़े देवता चाहते थे कि लक्ष्मी हमें मिलें, परन्तु उन्होंने सबका परित्याग कर दिया और न चाहनेवाले भगवान्‌का वरण किया। उन्हींको सदाके लिये अपना निवासस्थान बना लिया। मथुरावासी उन्हीं पुरुषभूषण भगवान् श्रीकृष्णके अङ्ग-अङ्गका सौन्दर्य देख रहे हैं। उनका कितना सौभाग्य है! व्रजमें भगवान्‌की यात्राके समय गोपियोंने विरहातुर होकर मथुरावासियोंके सम्बन्धमें जो-जो बातें कही थीं, वे सब वहाँ अक्षरशः सत्य हुईं। सचमुच वे परमानन्दमें मग्न हो गये ॥ २४ ॥ फिर हाथ-पैर धोकर श्रीकृष्ण और बलरामजीने दूधसे बने हुए खीर आदि पदार्थोंका भोजन किया और कंस आगे क्या करना चाहता है, इस बातका पता लगाकर उस रातको वहीं आरामसे सो गये ॥ २५ ॥

जब कंसने सुना कि श्रीकृष्ण और बलरामने धनुष तोड़ डाला, रक्षकों तथा उनकी सहायताके लिये भेजी हुई सेनाका भी संहार कर डाला और यह सब उनके लिये केवल एक खिलवाड़ ही था—इसके लिये उन्हें कोई श्रम या कठिनाई नहीं उठानी पड़ी ॥ २६ ॥ तब वह बहुत ही डर गया; उस दुर्बुद्धिको बहुत देरतक नींद न आयी। उसे जाग्रत्-अवस्थामें तथा स्वप्नमें भी बहुत-से ऐसे अपशकुन हुए, जो उसकी मृत्युके सूचक थे ॥ २७ ॥ जाग्रत्-अवस्थामें उसने देखा कि जल या दर्पणमें शरीरकी परछाईं तो पड़ती है, परन्तु सिर नहीं दिखायी देता; अँगुली आदिकी आड़ न होनेपर भी चन्द्रमा, तारे और दीपक आदिकी ज्योतियाँ उसे दो-दो दिखायी पड़ती हैं ॥ २८ ॥ छायामें छेद दिखायी पड़ता है और कानोंमें अँगुली डालकर सुननेपर भी प्राणोंका घूँ-घूँ शब्द नहीं सुनायी पड़ता। वृक्ष सुनहले प्रतीत होते हैं और बालू या कीचड़में अपने पैरोंके चिह्न नहीं दीख पड़ते ॥ २९ ॥ कंसने स्वप्नावस्थामें देखा कि वह प्रेतोंके गले लग रहा है, गधेपर चढ़कर चलता है और विष खा रहा है। उसका सारा शरीर तेलसे तर है, गलेमें जपाकुसुम (अड़हुल) की माला है और नग्न होकर कहीं जा रहा है ॥ ३० ॥ स्वप्न और जाग्रत्-अवस्थामें उसने इसी प्रकारके और भी बहुत-से अपशकुन देखे। उनके कारण उसे बड़ी चिन्ता हो गयी, वह मृत्युसे डर गया और उसे नींद न आयी ॥ ३१ ॥

परीक्षित्! जब रात बीत गयी और सूर्यनारायण पूर्व समुद्रसे ऊपर उठे, तब राजा कंसने मल्ल-क्रीडा (दंगल) का महोत्सव प्रारम्भ कराया ॥ ३२ ॥ राज-

कर्मचारियोंने रंगभूमिको भलीभाँति सजाया । तुरही, भेरी आदि बाजे बजने लगे । लोगोंके बैठनेके मञ्च फूलोंके गजरों, झंडियों, वस्त्र और बंदनवारोंसे सजा दिये गये ॥ ३३ ॥ उनपर ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि नागरिक तथा ग्रामवासी—सब यथास्थान बैठ गये । राजालोग भी अपने-अपने निश्चित स्थानपर जा डटे ॥ ३४ ॥ राजा कंस अपने मन्त्रियोंके साथ मण्डलेश्वरों (छोटे-छोटे राजाओं) के बीचमें सबसे श्रेष्ठ राजसिंहासनपर जा बैठा । इस समय भी अपशकुनोंके कारण उसका चित्त घबड़ाया हुआ था ॥ ३५ ॥ तब पहलवानोंके ताल ठोंकनेके साथ ही बाजे बजने लगे और गरबीले पहलवान खूब सज-धजकर अपने-अपने उस्तादोंके साथ अखाड़ेमें आ उतरे ॥ ३६ ॥ चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल और तोशल आदि प्रधान-प्रधान पहलवान बाजोंकी सुमधुर ध्वनिसे उत्साहित होकर अखाड़ेमें आ-आकर बैठ गये ॥ ३७ ॥ इसी समय भोजराज कंसने नन्द आदि गोपोंको बुलवाया । उन लोगोंने आकर उसे तरह-तरहकी भेंटें दीं और फिर जाकर वे एक मञ्चपर बैठ गये ॥ ३८ ॥

तैंतालीसवाँ अध्याय

कुवलयापीड़का उद्धार और अखाड़ेमें प्रवेश

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—काम-क्रोधादि शत्रुओंको पराजित करनेवाले परीक्षित् ! अब श्रीकृष्ण और बलराम भी स्नानादि नित्यकर्मसे निवृत्त हो दंगलके अनुरूप नगाड़ेकी ध्वनि सुनकर रङ्गभूमि देखनेके लिये चल पड़े ॥ १ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने रंगभूमिके दरवाजेपर पहुँचकर देखा कि वहाँ महावतकी प्रेरणासे कुवलयापीड नामका हाथी खड़ा है ॥ २ ॥ तब भगवान् श्रीकृष्णने अपनी कमर कस ली और घुँघराली अलकें समेट लीं तथा मेघके समान गम्भीर वाणीसे महावतको ललकारकर कहा ॥ ३ ॥ 'महावत, ओ महावत ! हम दोनोंको रास्ता दे दे । हमारे मार्गसे हट जा । अरे, सुनता नहीं ? देर मत कर । नहीं तो मैं हाथीके साथ अभी तुझे यमराजके घर पहुँचाता हूँ' ॥ ४ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने महावतको जब इस प्रकार धमकाया, तब वह क्रोधसे तिलमिला उठा और उसने काल, मृत्यु तथा यमराजके समान अत्यन्त भयङ्कर कुवलयापीड़को अङ्कुशकी मारसे क्रुद्ध करके श्रीकृष्णकी ओर बढ़ाया ॥ ५ ॥ कुवलयापीड़ने भगवान्की ओर झपटकर उन्हें बड़ी तेजीसे सूँड़मे लपेट लिया; परन्तु भगवान् सूँड़से बाहर सरक आये और उसे एक घूँसा जमाकर उसके पैरोंके बीचमें जा छिपे ॥ ६ ॥ उन्हें अपने सामने न देखकर कुवलयापीड़को बड़ा क्रोध हुआ । उसने सूँघकर भगवान्को अपनी सूँड़से टटोल लिया और पकड़ा भी; परन्तु उन्होंने बलपूर्वक अपनेको उससे छुडा लिया ॥ ७ ॥ इसके बाद भगवान् उस बलवान् हाथीकी पूँछ पकड़कर खेल-खेलमें ही उसे सौ हाथतक पीछे घसीट लाये; जैसे गरुड़ साँपको घसीट लाते हैं ॥ ८ ॥ जिस प्रकार घूमते हुए बछड़ेके साथ बालक घूमता है अथवा स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण जिस प्रकार बछड़ोंसे खेलते थे, वैसे ही वे उसकी पूँछ पकड़कर उसे घुमाने और खेलने लगे । जब वह दायेंसे घूमकर उनको पकड़ना चाहता, तब वे बायें आ जाते और जब वह बायेंकी ओर घूमता, तब वे दायें घूम जाते ॥ ९ ॥ इसके बाद हाथीके सामने आकर उन्होंने उसे एक घूँसा जमाया और वे उसे गिरानेके लिये इस प्रकार उसके सामनेसे भागने लगे, मानो वह अब छू लेता है, तब छू लेता है ॥ १० ॥ भगवान् श्रीकृष्णने दौड़ते-दौड़ते एक बार खेल-खेलमे ही पृथ्वीपर गिरनेका अभिनय किया और झट वहाँसे उठकर भाग खड़े हुए । उस समय वह हाथी क्रोधसे जल-भुन रहा था । उसने समझा कि वे गिर पड़े और बड़े जोरसे अपने दोनों दाँत धरतीपर मारे ॥ ११ ॥ जब कुवलयापीड़का यह आक्रमण व्यर्थ हो गया, तब वह और भी चिढ़ गया । महावतोंकी प्रेरणासे वह क्रुद्ध होकर भगवान् श्रीकृष्णपर टूट पड़ा ॥ १२ ॥ भगवान् मधुसूदनने जब उसे अपनी ओर झपटते देखा, तब उसके पास चले गये और अपने एक ही हाथसे उसकी सूँड़ पकड़कर उसे

धरतीपर पटक दिया ॥ १३ ॥ उसके गिर जानेपर भगवान्‌ने सिंहके समान खेल-ही-खेलमें उसे पैरोंसे दबाकर उसके दाँत उखाड़ लिये और उन्हींसे हाथी और महावतोंका काम तमाम कर दिया ॥ १४ ॥

परीक्षित्! मरे हुए हाथीको छोड़कर भगवान् श्रीकृष्णने हाथमें उसके दाँत लिये-लिये ही रंगभूमिमें प्रवेश किया। उस समय उनकी शोभा देखने ही योग्य थी। उनके कंधेपर हाथीका दाँत रक्खा हुआ था, शरीर रक्त और मदकी बूँदोंसे सुशोभित था और मुखकमलपर पसीनेकी बूँदें झलक रही थीं ॥ १५ ॥ परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम दोनोंके ही हाथोंमें कुवलयापीड़के बड़े-बड़े दाँत शस्त्रके रूपमें सुशोभित हो रहे थे और कुछ ग्वालबाल उनके साथ-साथ चल रहे थे। इस प्रकार उन्होंने रंगभूमिमें प्रवेश किया ॥ १६ ॥ जिस समय भगवान् श्रीकृष्ण बलरामजीके साथ रंगभूमिमें पधारे, उस समय वे पहलवानोंको वज्रकठोर-शरीर, साधारण मनुष्योंको नर रत्न, स्त्रियोंको मूर्तिमान् कामदेव, गोपोंको स्वजन, दुष्ट राजाओंको दण्ड देनेवाले शासक, माता-पिताके समान बड़े-बूढ़ोंको शिशु, कंसको मृत्यु, अज्ञानियोंको विराट्, योगियोंको परम तत्त्व और भक्तशिरोमणि वृष्णिवंशियोंको अपने इष्टदेव जान पड़े (सबने अपने-अपने भावानुरूप क्रमशः रौद्र, अद्भुत, शृङ्गार, हास्य, वीर, वात्सल्य, भयानक, बीभत्स, शान्त और प्रेमभक्तिरसका अनुभव किया) ॥ १७ ॥ राजन्! वैसे तो कंस बड़ा धीर-वीर था; फिर भी जब उसने देखा कि इन दोनोंने कुवलयापीड़को मार डाला, तब उसकी समझमें यह बात आयी कि इनको जीतना तो बहुत कठिन है। उस समय वह बहुत घबड़ा गया ॥ १८ ॥ श्रीकृष्ण और बलरामकी बाँहें बड़ी लंबी-लंबी थीं। पुष्पोंके हार, वस्त्र और आभूषण आदिसे उनका वेष विचित्र हो रहा था; ऐसा जान पड़ता था, मानो उत्तम वेष धारण करके दो नट अभिनय करनेके लिये आये हों। जिनके नेत्र, एक बार उनपर पड़ जाते, बस, लग ही जाते। यही नहीं, वे अपनी कान्तिसे उनका मन भी चुरा लेते। इस प्रकार दोनों रंगभूमिमें शोभायमान हुए ॥ १९ ॥ परीक्षित्! मञ्चोंपर जितने लोग बैठे थे—वे मथुराके नागरिक और राष्ट्रके जन-समुदाय पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीको देखकर इतने प्रसन्न हुए कि उनके नेत्र और मुखकमल खिल उठे, उत्कण्ठासे भर गये। वे नेत्रोंके द्वारा उनकी मुखमाधुरीका पान करते-करते तृप्त ही नहीं होते थे ॥ २० ॥ मानो वे उन्हें नेत्रोंसे पी रहे हों, जिह्वासे चाट रहे हों, नासिकासे सूँघ रहे हों और भुजाओंसे पकड़कर हृदयसे सटा रहे हों ॥ २१ ॥ उनके सौन्दर्य, गुण, माधुर्य और निर्भयताने मानो दर्शकोंको उनकी लीलाओंका स्मरण करा दिया और वे लोग आपसमें उनके सम्बन्धकी देखी-सुनी बातें कहने-सुनने लगे ॥ २२ ॥ 'ये दोनों साक्षात् भगवान् नारायणके अंश हैं। इस पृथ्वीपर वसुदेवजीके घरमें अवतीर्ण हुए हैं ॥ २३ ॥ [अँगुलीसे दिखाकर] ये साँवले-सलोने कुमार देवकीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। जन्मते ही वसुदेवजीने इन्हें गोकुल पहुँचा दिया था। इतने दिनोंतक ये वहाँ छिपकर रहे और नन्दजीके घरमें ही पलकर इतने बड़े हुए ॥ २४ ॥ इन्होंने ही पूतना, तृणावर्त, शङ्खचूड, केशी और धेनुक आदिका तथा और भी दुष्ट दैत्योंका वध तथा यमलार्जुनका उद्धार किया है ॥ २५ ॥ इन्होंने ही गौ और ग्वालोंको दावानलकी ज्वालासे बचाया था। कालिय नागका दमन और इन्द्रका मान-मर्दन भी इन्होंने ही किया था ॥ २६ ॥ इन्होंने सात दिनोंतक एक ही हाथपर गिरिराज गोवर्धनको उठाये रक्खा और उसके द्वारा आँधी-पानी तथा वज्रपातसे गोकुलको बचा लिया ॥ २७ ॥ गोपियाँ इनकी मन्द-मन्द मुसकान, मधुर चितवन और सर्वदा एकरस प्रसन्न रहनेवाले मुखारविन्दके दर्शनसे आनन्दित रहती थीं और अनायास ही सब प्रकारके तापोंसे मुक्त हो जाती थीं ॥ २८ ॥ कहते हैं कि ये यदुवंशकी रक्षा करेंगे। यह विख्यात वंश इनके द्वारा महान् समृद्धि, यश और गौरव प्राप्त करेगा ॥ २९ ॥ ये दूसरे इन्हीं श्यामसुन्दरके बड़े भाई कमलनयन श्रीबलरामजी हैं। हमने किसी-किसीके मुँहसे ऐसा सुना है कि इन्होंने ही प्रलम्बासुर, वत्सासुर और बकासुर आदिको मारा है' ॥ ३० ॥

जिस समय दर्शकोंमें यह चर्चा हो रही थी और अखाड़ेमें तुरही आदि बाजे बज रहे थे, उस समय

चाणूरने भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामको सम्बोधन करके यह बात कही—॥ ३१ ॥ 'नन्दनन्दन श्रीकृष्ण और बलरामजी ! तुम दोनों वीरोंके आदरणीय हो । हमारे महाराजने यह सुनकर कि तुमलोग कुश्ती लड़नेमें बड़े निपुण हो, तुम्हारा कौशल देखनेके लिये तुम्हें यहाँ बुलवाया है ॥ ३२ ॥ देखो भाई ! जो प्रजा मन, वचन और कर्मसे राजाका प्रिय कार्य करती है, उसका भला होता है और जो राजाकी इच्छाके विपरीत काम करती है, उसे हानि उठानी पड़ती है ॥ ३३ ॥ यह सभी जानते हैं कि गाय और बछड़े चरानेवाले ग्वालिये प्रतिदिन आनन्दसे जंगलोंमें कुश्ती लड़-लड़कर खेलते रहते हैं और गायें चराते रहते हैं ॥ ३४ ॥ इसलिये आओ, हम और तुम मिलकर महाराजको प्रसन्न करनेके लिये कुश्ती लड़ें । ऐसा करनेसे हमपर सभी प्राणी प्रसन्न होंगे, क्योंकि राजा सारी प्रजाका प्रतीक है' ॥ ३५ ॥

परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्ण तो चाहते ही थे कि इनसे दो-दो हाथ करें । इसलिये उन्होंने चाणूरकी बात सुनकर उसका अनुमोदन किया और देश-कालके अनुसार यह बात कही—॥ ३६ ॥ 'चाणूर ! हम भी इन भोजराज कंसकी वनवासी प्रजा हैं । हमें इनको प्रसन्न करनेका प्रयत्न अवश्य करना चाहिये । इसीमें हमारा कल्याण है ॥ ३७ ॥ किन्तु चाणूर ! हमलोग अभी बालक हैं । इसलिये हम अपने समान बलवाले बालकोंके साथ ही कुश्ती लड़नेका खेल करेंगे । कुश्ती समान बलवालोंके साथ ही होनी चाहिये, जिससे देखनेवाले सभासदोंको अन्यायके समर्थक होनेका पाप न लगे' ॥ ३८ ॥

चाणूरने कहा—अजी ! तुम और बलराम न बालक हो और न तो किशोर । तुम दोनों बलवानोंमें श्रेष्ठ हो, तुमने अभी-अभी हजार हाथियोंका बल रखनेवाले कुवलयापीडको खेल-ही-खेलमें मार डाला ॥ ३९ ॥ इसलिये तुम दोनोंको हम-जैसे बलवानोंके साथ ही लड़ना चाहिये । इसमें अन्यायकी कोई बात नहीं है । इसलिये श्रीकृष्ण ! तुम मुझपर अपना जोर आजमाओ और बलरामके साथ मुष्टिक लड़ेगा ॥ ४० ॥

चौवालीसवाँ अध्याय

चाणूर, मुष्टिक आदि पहलवानोंका तथा कंसका उद्धार

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णने चाणूर आदिके वधका निश्चित संकल्प कर लिया । जोड़ बद दिये जानेपर श्रीकृष्ण चाणूरसे और बलरामजी मुष्टिकसे जा भिड़े ॥ १ ॥ वे लोग एक दूसरेको जीत लेनेकी इच्छासे हाथसे हाथ बाँधकर और पैरोंमें पैर अड़ाकर बलपूर्वक अपनी-अपनी ओर खींचने लगे ॥ २ ॥ वे पंजोंसे पंजे, घुटनोंसे घुटने, माथेसे माथा और छातीसे छाती भिड़ाकर एक-दूसरेपर चोट करने लगे ॥ ३ ॥ इस प्रकार दाँव-पेंच करते-करते अपने-अपने जोड़ीदारको पकड़कर इधर-उधर घुमाते, दूर ढकेल देते, जोरसे जकड़ लेते, लिपट जाते, उठाकर पटक देते, छूटकर निकल भागते और कभी छोड़कर पीछे हट जाते थे । इस प्रकार एक-दूसरेको रोकते, प्रहार करते और अपने जोड़ीदारको पछाड़ देनेकी चेष्टा करते । कभी कोई नीचे गिर जाता, तो दूसरा उसे घुटनों और पैरोंमें दबाकर उठा लेता । हाथोंसे पकड़कर ऊपर ले जाता । गलेमें लिपट जानेपर ढकेल देता और आवश्यकता होनेपर हाथ-पाँव इकट्ठे करके गाँठ बाँध देता ॥ ४-५ ॥

परीक्षित् ! इस दंगलको देखनेके लिये नगरकी बहुत-सी महिलाएँ भी आयी हुई थीं । उन्होंने जब देखा कि बड़े-बड़े पहलवानोंके साथ ये छोटे-छोटे बलहीन बालक लड़ाये जा रहे हैं, तब वे अलग-अलग टोलियाँ बनाकर करुणावश आपसमें बातचीत करने लगीं—॥ ६ ॥ 'यहाँ राजा कंसके सभासद् बड़ा अन्याय और अधर्म कर रहे हैं । कितने खेदकी बात है कि राजाके सामने ही ये बली पहलवानों और निर्बल बालकोंके युद्धका अनुमोदन करते हैं ॥ ७ ॥ बहिन ! देखो, इन पहलवानोंका एक-एक अङ्ग वज्रके समान

कठोर है। ये देखनेमें बड़े भारी पर्वत-से मालूम होते हैं। परन्तु श्रीकृष्ण और बलराम अभी जवान भी नहीं हुए है। इनकी किशोर अवस्था है। इनका एक-एक अङ्ग अत्यन्त सुकुमार है। कहाँ ये और कहाँ वे ? ॥ ८॥ जितने लोग यहाँ इकट्ठे हुए हैं, देख रहे हैं, उन्हें अवश्य-अवश्य धर्मोल्लङ्घनका पाप लगेगा। सखी! अब हमें भी यहाँसे चल देना चाहिये। जहाँ अधर्मकी प्रधानता हो, वहाँ कमी न रहे; यही शास्त्रका नियम है॥ ९॥ देखो, शास्त्र कहता है कि बुद्धिमान् पुरुषको सभासदोंके दोषोंको जानते हुए, सभामें जाना ठीक नहीं है। क्योंकि वहाँ जाकर उन अवगुणोंको कहना, चुप रह जाना अथवा मैं नहीं जानता ऐसा कह देना—ये तीनों ही बातें मनुष्यको दोषभागी बनाती है॥ १०॥ देखो, देखो, श्रीकृष्ण शत्रुके चारों ओर पैंतरा बदल रहे हैं। उनके मुखपर पसीनेकी बूँदें ठीक वैसे ही शोभा दे रही हैं, जैसे कमलकोशपर जलकी बूँदें ॥ ११॥ सखियो! क्या तुम नहीं देख रही हो कि बलरामजीका मुख मुष्टिकके प्रति क्रोधके कारण कुछ-कुछ लाल लोचनोंसे युक्त हो रहा है! फिर भी हास्यका अनिरुद्ध आवेग कितना सुन्दर लग रहा है॥ १२॥ सखी! सच पूछो तो व्रजभूमि ही परम पवित्र और धन्य है। क्योंकि वहाँ ये पुरुषोत्तम मनुष्यके वेषमें छिपकर रहते हैं। स्वयं भगवान् शङ्कर और लक्ष्मीजी जिनके चरणोंकी पूजा करती हैं, वे ही प्रभु वहाँ रंग-बिरंगे जंगली पुष्पोंकी माला धारण कर लेते हैं तथा बलरामजीके साथ बाँसुरी बजाते, गौएँ चराते और तरह-तरहके खेल खेलते हुए आनन्दसे विचरते है॥ १३॥ सखी! पता नहीं, गोपियोंने कौन-सी तपस्या की थी, जो नेत्रोंके दोनोंसे नित्य-निरन्तर इनकी रूप-माधुरीका पान करती रहती हैं। इनका रूप क्या है, लावण्यका सार! ससारमें या उससे परे किसीका भी रूप इनके रूपके समान नहीं है, फिर बढ़कर होनेकी तो बात ही क्या है! सो भी किसीके सँवारने-सजानेसे नहीं, गहने-कपड़ेसे भी नहीं, बल्कि स्वयंसिद्ध है। इस रूपको देखते-देखते तृप्ति भी नहीं होती! क्योंकि यह प्रतिक्षण नया होता जाता है, नित्य नूतन है। समग्र यश, सौन्दर्य और ऐश्वर्य इसीके आश्रित हैं। सखियो! परन्तु इसका दर्शन तो औरोंके लिये बड़ा ही दुर्लभ है। वह तो गोपियोंके ही भाग्यमें बदा है॥ १४॥ सखी! व्रजकी गोपियाँ धन्य हैं। निरन्तर श्रीकृष्णमें ही चित्त लगा रहनेके कारण प्रेमभरे हृदयसे, आँसुओंके कारण गद्‌गद कण्ठसे वे इन्हींकी लीलाओंका गान करती रहती हैं। वे दूध दुहते, दही मथते, धान कूटते, घर लीपते, बालकोंको झूला झुलाते, रोते हुए बालकोंको चुप कराते, उन्हें नहलाते-धुलाते, घरोंको झाड़ते-बुहारते—कहाँतक कहें, सारे काम-काज करते समय श्रीकृष्णके गुणोंके गानमें ही मस्त रहती हैं॥ १५॥ ये श्रीकृष्ण जब प्रातःकाल गौओंको चरानेके लिये व्रजसे वनमें जाते हैं और सायङ्काल उन्हें लेकर व्रजमें लौटते हैं, तब बड़े मधुर स्वरसे बाँसुरी बजाते हैं। उसकी टेर सुनकर गोपियाँ घरका सारा काम-काज छोड़कर झटपट रास्तेमें दौड आती हैं और श्रीकृष्णका मन्द-मन्द मुसकान एवं दयाभरी चितवनसे युक्त मुखकमल निहार-निहारकर निहाल होती हैं। सचमुच गोपियाँ ही परम पुण्यवती हैं' ॥ १६॥

भरतवंशशिरोमणे! जिस समय पुरवासिनी स्त्रियाँ इस प्रकार बातें कर रही थीं, उसी समय योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने मन-ही-मन शत्रुको मार डालनेका निश्चय किया॥ १७॥ स्त्रियोंकी ये भयपूर्ण बातें माता-पिता देवकी-वसुदेव भी सुन रहे थे*। वे पुत्रस्नेहवश शोकसे विह्वल हो गये। उनके हृदयमे बडी जलन, बडी पीडा होने लगी। क्योंकि वे अपने पुत्रोंके बल-वीर्यको नहीं जानते थे॥ १८॥ भगवान् श्रीकृष्ण और उनसे भिड़नेवाला चाणूर दोनों ही भिन्न-भिन्न प्रकारके दाँव-पेंचका प्रयोग करते हुए परस्पर जिस प्रकार लड़ रहे थे, वैसे ही बलरामजी और मुष्टिक भी भिड़े हुए थे॥ १९॥ भगवान्‌के अङ्ग-प्रत्यङ्ग वज्रसे भी कठोर हो रहे थे। उनकी रगड़से चाणूरकी रग-रग ढीली पड़ गयी। बार-बार उसे ऐसा मालूम हो रहा था मानो उसके शरीरके सारे बन्धन टूट रहे हैं। उसे बड़ी ग्लानि, बड़ी व्यथा हुई॥ २०॥ अब वह अत्यन्त क्रोधित होकर बाजकी तरह झपटा

* स्त्रियाँ जहाँ बातें कर रही थीं, वहाँसे निकट ही वसुदेव-देवकी कैद थे; अतः वे उनकी बातें सुन सके।

और दोनों हाथोंके घूँसे बाँधकर उसने भगवान् श्रीकृष्ण-की छातीपर प्रहार किया ॥ २१ ॥ परन्तु उसके प्रहारसे भगवान् तनिक भी विचलित न हुए, जैसे फूलोंके गजरे-की मारसे गजराज । उन्होंने चाणूरकी दोनों भुजाएँ पकड़ लीं और उसे अन्तरिक्षमे बड़े वेगसे कई बार घुमाकर धरतीपर दे मारा । परीक्षित् ! चाणूरके प्राण तो घुमानेके समय ही निकल गये थे । उसकी वेष-भूषा अस्त-व्यस्त हो गयी, केश और मालाएँ बिखर गयीं, वह इन्द्रध्वज (इन्द्रकी पूजाके लिये खड़े किये गये बड़े झंडे) के समान गिर पड़ा ॥ २२-२३ ॥ इसी प्रकार मुष्टिकने भी पहले बलरामजीको एक घूँसा मारा । इसपर बली बलरामजीने उसे बड़े जोरसे एक तमाचा जड दिया ॥२४॥ तमाचा लगनेसे वह काँप उठा और आँधीसे उखड़े हुए वृक्षके समान अत्यन्त व्यथित और अन्तमें प्राणहीन होकर खून उगलता हुआ पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ २५ ॥ हे राजन् ! इसके बाद योद्धाओंमें श्रेष्ठ भगवान् बलराम-जीने अपने सामने आते ही कूट नामक पहलवानको खेल-खेलमें ही बायें हाथके घूँसेसे उपेक्षापूर्वक मार डाला ॥ २६ ॥ उसी समय भगवान् श्रीकृष्णने पैरकी ठोकरसे शलका सिर धड़से अलग कर दिया और तोशल-को तिनकेकी तरह चीरकर दो टुकड़े कर दिया । इस प्रकार दोनों धराशायी हो गये ॥ २७ ॥ जब चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल और तोशल—ये पाँचों पहलवान मर चुके, तब जो बच रहे थे, वे अपने प्राण बचानेके लिये स्वयं वहाँसे भाग खड़े हुए ॥२८॥ उनके भाग जानेपर भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी अपने समवयस्क ग्वाल-बालोंको खींच-खींचकर उनके साथ भिड़ने और नाच-नाचकर भेरीध्वनिके साथ अपने नूपुरोंकी झनकारको मिलाकर मल्लक्रीडा—कुश्तीके खेल करने लगे ॥२९॥

भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामकी इस अद्भुत लीला-को देखकर सभी दर्शकोंको बड़ा आनन्द हुआ । श्रेष्ठ ब्राह्मण और साधु पुरुष 'धन्य है, धन्य है'—इस प्रकार कहकर प्रशंसा करने लगे । परन्तु कंसको इससे बड़ा दुःख हुआ । वह और भी चिढ़ गया ॥ ३० ॥ जब उसके प्रधान पहलवान मार डाले गये और बचे हुए सब-के-सब भाग गये, तब भोजराज कंसने अपने बाजे-गाजे बंद करा दिये और अपने सेवकोंको यह आज्ञा दी—॥ ३१ ॥ 'अरे, वसुदेवके इन दुश्चरित्र लड़कोंको नगरसे बाहर निकाल दो । गोपोंका सारा धन छीन लो और दुर्बुद्धि नन्दको कैद कर लो ॥ ३२ ॥ वसुदेव भी बड़ा कुबुद्धि और दुष्ट है । उसे शीघ्र मार डालो । और उग्रसेन मेरा पिता होनेपर भी अपने अनुयायियोंके साथ शत्रुओंसे मिला हुआ है । इसलिये उसे भी जीता मत छोड़ो' ॥३३॥ कंस इस प्रकार बढ़-बढ़कर बकवाद कर रहा था कि अविनाशी श्रीकृष्ण कुपित होकर फुर्तीसे वेगपूर्वक उछलकर लीलासे ही उसके ऊँचे मञ्चपर जा चढ़े ॥३४॥ जब मनस्वी कंसने देखा कि मेरे मृत्युरूप भगवान् श्रीकृष्ण सामने आ गये, तब वह सहसा अपने सिंहासनसे उठ खड़ा हुआ और हाथमें ढाल तथा तलवार उठा ली ॥३५॥ हाथमें तलवार लेकर वह चोट करनेका अवसर ढूँढ़ता हुआ पैंतरा बदलने लगा । आकाशमें उड़ते हुए बाजके समान वह कभी दायीं ओर जाता तो कभी बायीं ओर । परन्तु भगवान्का प्रचण्ड तेज अत्यन्त दुस्सह है । जैसे गरुड़ साँपको पकड़ लेते हैं, वैसे ही भगवान्ने बलपूर्वक उसे पकड़ लिया ॥ ३६ ॥ इसी समय कंसका मुकुट गिर गया और भगवान्ने उसके केश पकड़कर उसे भी उस ऊँचे मञ्चसे रंगभूमिमें गिरा दिया । फिर परम स्वतन्त्र और सारे विश्वके आश्रय भगवान् श्रीकृष्ण उसके ऊपर स्वयं कूद पड़े ॥ ३७ ॥ उनके कूदते ही कंसकी मृत्यु हो गयी । सबके देखते-देखते भगवान् श्रीकृष्ण कंसकी लाशको धरतीपर उसी प्रकार घसीटने लगे, जैसे सिंह हाथीको घसीटे । नरेन्द्र ! उस समय सबके मुँहसे 'हाय ! हाय !' की बड़ी ऊँची आवाज सुनायी पड़ी ॥ ३८ ॥ कंस नित्य-निरन्तर बड़ी घबड़ाहटके साथ श्रीकृष्णका ही चिन्तन करता रहता था । वह खाते-पीते, सोते-चलते, बोलते और साँस लेते- सब समय अपने सामने चक्र हाथमें लिये भगवान् श्रीकृष्णको ही देखता रहता था । इस नित्य चिन्तनके फलस्वरूप —वह चाहे द्वेषभावसे ही क्यों न किया गया हो—उसे भगवान्के उसी रूपकी प्राप्ति हुई, सारूप्य-मुक्ति हुई, जिसकी प्राप्ति बड़े-बड़े तपस्वी योगियोंके लिये भी कठिन है ॥ ३९ ॥

कंस-उद्धार

कंसके कङ्क और न्यग्रोध आदि आठ छोटे भाई थे। वे अपने बड़े भाईका बदला लेनेके लिये क्रोधसे आग-बबूले होकर भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामकी ओर दौड़े ॥ ४० ॥ जब भगवान् बलरामजीने देखा कि वे बड़े वेगसे युद्धके लिये तैयार होकर दौड़े आ रहे हैं, तब उन्होंने परिघ उठाकर उन्हें वैसे ही मार डाला, जैसे सिंह पशुओंको मार डालता है ॥ ४१ ॥ उस समय आकाशमें दुन्दुभियाँ बजने लगीं। भगवान्के विभूति-स्वरूप ब्रह्मा, शङ्कर आदि देवता बड़े आनन्दसे पुष्पोंकी वर्षा करते हुए उनकी स्तुति करने लगे। अप्सराएँ नाचने लगीं ॥ ४२ ॥ महाराज! कंस और उसके भाइयोंकी स्त्रियाँ अपने आत्मीय स्वजनोंकी मृत्युसे अत्यन्त दुःखित हुईं। वे अपने सिर पीटती हुई आँखोंमें आँसू भरे वहाँ आयीं ॥ ४३ ॥ वीरशय्यापर सोये हुए अपने पतियोंसे लिपटकर वे शोकग्रस्त हो गयीं और बार-बार आँसू बहाती हुई ऊँचे स्वरसे विलाप करने लगीं ॥ ४४ ॥ 'हा नाथ! हे प्यारे! हे धर्मज्ञ! हे करुणामय! हे अनाथवत्सल! आपकी मृत्युसे हम सबकी मृत्यु हो गयी। आज हमारे घर उजड़ गये। हमारी सन्तान अनाथ हो गयी ॥ ४५ ॥ पुरुषश्रेष्ठ! इस पुरीके आप ही स्वामी थे। आपके विरहसे इसके उत्सव समाप्त हो गये और मङ्गलचिह्न उतर गये। यह हमारी ही भाँति विधवा होकर शोभाहीन हो गयी ॥ ४६ ॥ स्वामी! आपने निरपराध प्राणियोंके साथ घोर द्रोह किया था, अन्याय किया था, इसीसे आपकी यह गति हुई। सच है, जो जगत्के जीवोंसे द्रोह करता है, उनका अहित करता है, ऐसा कौन पुरुष शान्ति पा सकता है? ॥४७॥ ये भगवान् श्रीकृष्ण जगत्के समस्त प्राणियोंकी उत्पत्ति और प्रलयके आधार हैं। यही रक्षक भी हैं। जो इनका बुरा चाहता है, इनका तिरस्कार करता है; वह कभी सुखी नहीं हो सकता ॥ ४८ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण ही सारे संसारके जीवनदाता हैं। उन्होंने रानियोंको ढाढ़स बँधाया, सान्त्वना दी; फिर लोकरीतिके अनुसार मरनेवालोंका जैसा क्रिया-कर्म होता है, वह सब कराया ॥ ४९ ॥ तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीने जेलमें जाकर अपने माता-पिताको बन्धनसे छुड़ाया और सिरसे स्पर्श करके उनके चरणोंकी वन्दना की ॥ ५० ॥ किन्तु अपने पुत्रोंके प्रणाम करनेपर भी देवकी और वसुदेवने उन्हें जगदीश्वर समझकर अपने हृदयसे नहीं लगाया। उन्हें शङ्का हो गयी कि हम जगदीश्वरको पुत्र कैसे समझें ॥ ५१ ॥

पैंतालीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण-बलरामका यज्ञोपवीत और गुरुकुलप्रवेश

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि माता-पिताको मेरे ऐश्वर्यका, मेरे भगवद्भावका ज्ञान हो गया है। परन्तु इन्हें ऐसा ज्ञान होना ठीक नहीं, (इससे तो ये पुत्र-स्नेहका सुख नहीं पा सकेंगे—) ऐसा सोचकर उन्होंने उनपर अपनी वह योगमाया फैला दी, जो उनके स्वजनोंको मुग्ध रखकर उनकी लीलामें सहायक होती है ॥ १ ॥ यदुवंशशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्ण बड़े भाई बलरामजीके साथ अपने माँ-बापके पास जाकर आदरपूर्वक और विनयसे झुककर 'मेरी अम्मा! मेरे पिताजी!' इन शब्दोंसे उन्हें प्रसन्न करते हुए कहने लगे—॥ २ ॥ 'पिताजी! माताजी! हम आपके पुत्र हैं और आप हमारे लिये सर्वदा उत्कण्ठित रहे हैं, फिर भी आप हमारे बाल्य, पौगण्ड और किशोर अवस्थाका सुख हमसे नहीं पा सके ॥ ३ ॥ दुर्दैववश हमलोगोंको आपके पास रहनेका सौभाग्य ही नहीं मिला। इसीसे बालकोंको माता-पिताके घरमें रहकर जो लाड़-प्यारका सुख मिलता है, वह हमें भी नहीं मिल सका ॥४॥ पिता और माता ही इस शरीरको जन्म देते हैं और इसका लालन-पालन करते हैं। तब कहीं जाकर यह शरीर धर्म, अर्थ, काम अथवा मोक्षकी प्राप्तिका साधन बनता है। यदि कोई मनुष्य सौ वर्षतक जीकर माता

और पिताकी सेवा करता रहे, तब भी वह उनके उपकारसे उऋण नहीं हो सकता ॥ ५ ॥ जो पुत्र सामर्थ्य रहते भी अपने माँ-बापकी शरीर और धनसे सेवा नहीं करता, उसके मरनेपर यमदूत उसे उसके अपने शरीरका मांस खिलाते हैं ॥ ६ ॥ जो पुरुष समर्थ होकर भी बूढ़े माता-पिता, सती पत्नी, बालक, सन्तान, गुरु, ब्राह्मण और शरणागतका भरण-पोषण नहीं करता—वह जीता हुआ भी मुर्देके समान ही है ! ॥ ७ ॥ पिताजी ! हमारे इतने दिन व्यर्थ ही बीत गये । क्योंकि कंसके भयसे सदा उद्विग्नचित्त रहनेके कारण हम आपकी सेवा करनेमें असमर्थ रहे ॥ ८ ॥ मेरी माँ और मेरे पिताजी ! आप दोनों हमें क्षमा करें । हाय ! दुष्ट कंसने आपको इतने-इतने कष्ट दिये, परन्तु हम परतन्त्र रहनेके कारण आपकी कोई सेवा-शुश्रूषा न कर सके' ॥ ९ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! अपनी लीलासे मनुष्य बने हुए विश्वात्मा श्रीहरिकी इस वाणीसे मोहित हो देवकी-वसुदेवने उन्हें गोदमें उठा लिया और हृदयसे चिपकाकर परमानन्द प्राप्त किया ॥ १० ॥ राजन् ! वे स्नेह-पाशसे बँधकर पूर्णतः मोहित हो गये और आँसुओंकी धारासे उनका अभिषेक करने लगे । यहाँतक कि आँसुओंके कारण गला रुँध जानेसे वे कुछ बोल भी न सके ॥ ११ ॥

देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार अपने माता-पिताको सान्त्वना देकर अपने नाना उग्रसेनको यदुवंशियोंका राजा बना दिया ॥ १२ ॥ और उनसे कहा—महाराज ! हम आपकी प्रजा हैं । आप हमलोगोंपर शासन कीजिये । राजा ययातिका शाप होनेके कारण यदुवंशी राजसिंहासनपर नहीं बैठ सकते; (परन्तु मेरी ऐसी ही इच्छा है, इसलिये आपको कोई दोष न होगा ।)' ॥ १३ ॥ जब मैं सेवक बनकर आपकी सेवा करता रहूँगा, तब बड़े-बड़े देवता भी सिर झुकाकर आपको भेंट देंगे ।' दूसरे नरपतियोंके बारेमें तो कहना ही क्या है ॥ १४ ॥ परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्ण ही सारे विश्वके विधाता हैं । उन्होंने, जो कंसके भयसे व्याकुल होकर इधर-उधर भाग गये थे, उन यदु, वृष्णि, अन्धक, मधु, दाशार्ह और कुकुर आदि वंशोंमें उत्पन्न समस्त सजातीय सम्बन्धियोंको ढूँढ़-ढूँढ़कर बुलवाया । उन्हें घरसे बाहर रहनेमें बड़ा क्लेश उठाना पड़ा था । भगवान्‌ने उनका सत्कार किया, सान्त्वना दी और उन्हें खूब धन-सम्पत्ति देकर तृप्त किया तथा अपने-अपने घरोंमें बसा दिया ॥ १५-१६ ॥ अब सारे-के-सारे यदुवंशी भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलरामजीके बाहुबलसे सुरक्षित थे । उनकी कृपासे उन्हें किसी प्रकारकी व्यथा नहीं थी, दुःख नहीं था । उनके सारे मनोरथ सफल हो गये थे । वे कृतार्थ हो गये थे । अब वे अपने-अपने घरोंमें आनन्दसे विहार करने लगे ॥ १७ ॥ भगवान् श्रीकृष्णका वदन आनन्दका सदन है । वह नित्य प्रफुल्लित, कभी न कुम्हलानेवाला कमल है । उसका सौन्दर्य अपार है । सदय हास और चितवन उसपर सदा नाचती रहती है । यदुवंशी दिन-प्रतिदिन उसका दर्शन करके आनन्दमग्न रहते ॥ १८ ॥ मथुराके वृद्ध पुरुष भी युवकोंके समान अत्यन्त बलवान् और उत्साही हो गये थे; क्योंकि वे अपने नेत्रोंके दोनोंसे बारबार भगवान्‌के मुखारविन्दका अमृतमय मकरन्द-रस पान करते रहते थे ॥ १९ ॥

प्रिय परीक्षित् ! अब देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी दोनों ही नन्दबाबाके पास आये और गले लगनेके बाद उनसे कहने लगे—॥ २० ॥ 'पिताजी ! आपने और माँ यशोदाने बड़े स्नेह और दुलारसे हमारा लालन-पालन किया है । इसमें कोई सन्देह नहीं कि माता-पिता सन्तानपर अपने शरीरसे भी अधिक स्नेह करते हैं ॥ २१ ॥ जिन्हें पालन-पोषण न कर सकनेके कारण स्वजन-सम्बन्धियोंने त्याग दिया है, उन बालकोंको जो लोग अपने पुत्रके समान लाड़-प्यारसे पालते हैं, वे ही वास्तवमें उनके माँ-बाप हैं ॥ २२ ॥ पिताजी ! अब आपलोग व्रजमें जाइये । इसमें सन्देह नहीं कि हमारे बिना वात्सल्य-स्नेहके कारण आप लोगोंको बहुत दुःख होगा । यहाँके सुहृद्-सम्बन्धियोंको सुखी करके हम आपलोगोंसे मिलनेके लिये आयेंगे' ॥ २३ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने नन्दबाबा और दूसरे व्रजवासियोंको इस प्रकार समझा-बुझाकर बड़े आदरके

साथ वस्त्र, आभूषण और अनेक धातुओंके बने बरतन आदि देकर उनका सत्कार किया ॥ २४ ॥ भगवान्‌की बात सुनकर नन्दबाबाने प्रेमसे अधीर होकर दोनों भाइयोंको गले लगा लिया और फिर नेत्रोंमें आँसू भरकर गोपोंके साथ व्रजके लिये प्रस्थान किया ॥२५॥

हे राजन् ! इसके बाद वसुदेवजीने अपने पुरोहित गर्गाचार्य तथा दूसरे ब्राह्मणोंसे दोनों पुत्रोंका विधिपूर्वक द्विजाति-समुचित यज्ञोपवीत-संस्कार करवाया ॥ २६ ॥ उन्होंने विविध प्रकारके वस्त्र और आभूषणोंसे ब्राह्मणोंका सत्कार करके उन्हें बहुत-सी दक्षिणा तथा बछड़ोंवाली गौएँ दीं । सभी गौएँ गलेमें सोनेकी माला पहने हुए थीं तथा और भी बहुत-से आभूषणों एव रेशमी वस्त्रोंकी मालाओंसे विभूषित थीं ॥ २७ ॥ महामति वसुदेवजीने भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीके जन्म-नक्षत्रमें जितनी गौएँ मन-ही मन सङ्कल्प करके दी थीं, उन्हें पहले कसने अन्यायसे छीन लिया था । अब उनका स्मरण करके उन्होंने ब्राह्मणोंको वे फिरसे दीं ॥ २८ ॥ इस प्रकार यदुवंशके आचार्य गर्गजीसे संस्कार कराकर बलरामजी और भगवान् श्रीकृष्ण द्विजत्वको प्राप्त हुए । उनका ब्रह्मचर्यव्रत अखण्ड तो था ही, अब उन्होंने गायत्रीपूर्वक अध्ययन करनेके लिये उसे नियमतः स्वीकार किया ॥ २९ ॥ श्रीकृष्ण और बलराम जगत्‌के एकमात्र स्वामी हैं । सर्वज्ञ हैं । सभी विद्याएँ उन्हींसे निकली हैं । उनका निर्मल ज्ञान स्वतः सिद्ध है । फिर भी उन्होंने मनुष्यकी-सी लीला करके उसे छिपा रक्खा था ॥३०॥

अब वे दोनों गुरुकुलमें निवास करनेकी इच्छासे काश्यगोत्री सान्दीपनि मुनिके पास गये, जो अवन्तीपुर (उज्जैन) में रहते थे ॥ ३१ ॥ वे दोनों भाई विधिपूर्वक गुरुजीके पास रहने लगे । उस समय वे बड़े ही सुसयत, अपनी चेष्टाओंको सर्वथा नियमित रक्खे हुए थे । गुरुजी तो उनका आदर करते ही थे, भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी भी गुरुकी उत्तम सेवा कैसे करनी चाहिये, इसका आदर्श लोगोंके सामने रखते हुए बड़ी भक्तिसे इष्टदेवके समान उनकी सेवा करने लगे ॥३२॥ गुरुवर सान्दीपनिजी उनकी शुद्धभावसे युक्त सेवासे बहुत प्रसन्न हुए । उन्होंने दोनों भाइयोंको छहों अङ्ग और उपनिषदोंके सहित सम्पूर्ण वेदोंकी शिक्षा दी ॥ ३३॥ इनके सिवा मन्त्र और देवताओंके ज्ञानके साथ धनुर्वेद, मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्र, मीमांसा आदि, वेदोंका तात्पर्य बतलानेवाले शास्त्र, तर्कविद्या (न्यायशास्त्र) आदिकी भी शिक्षा दी । साथ ही सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैध और आश्रय—इन छः भेदोंसे युक्त राजनीतिका भी अध्ययन कराया ॥ ३४ ॥ परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम सारी विद्याओंके प्रवर्तक हैं । इस समय केवल श्रेष्ठ मनुष्यका-सा व्यवहार करते हुए ही वे अध्ययन कर रहे थे । उन्होंने गुरुजीके केवल एक बार कहनेमात्रसे सारी विद्याएँ सीख लीं ॥ ३५ ॥ केवल चौसठ दिन-रातमें ही संयमीशिरोमणि दोनों भाइयोंने चौसठों कलाओं*का ज्ञान प्राप्त कर लिया । इस प्रकार अध्ययन समाप्त होनेपर उन्होंने सान्दीपनि

* चौसठ कलाएँ ये हैं—

१ गानविद्या, २ वाद्य—भाँति-भाँतिके बाजे बजाना, ३ नृत्य, ४ नाट्य, ५ चित्रकारी, ६ बेल-बूटे बनाना, ७ चावल और पुष्पादिसे पूजाके उपहारकी रचना करना, ८ फूलोंकी सेज बनाना, ९ दाँत, वस्त्र और अङ्गोंको रँगना, १० मणियोंकी फर्श बनाना, ११ शय्या-रचना, १२ जलको बाँध देना, १३ विचित्र सिद्धियाँ दिखलाना, १४ हार-माला आदि बनाना, १५ कान और चोटीके फूलोंके गहने बनाना, १६ कपड़े और गहने बनाना, १७ फूलोंके आभूषणोंसे शृङ्गार करना, १८ कानोंके पत्तोंकी रचना करना, १९ सुगन्ध वस्तुएँ— इत्र, तैल आदि बनाना, २० इन्द्रजाल—जादूगरी, २१ चाहे जैसा वेष धारण कर लेना, २२ हाथकी फुर्तीके काम, २३ तरह-तरहकी खानेकी वस्तुएँ बनाना, २४ तरह-तरहके पीनेके पदार्थ बनाना, २५ सूईका काम, २६ कठपुतली बनाना, नचाना, २७ पहेली, २८ प्रतिमा आदि बनाना, २९ कूटनीति, ३० ग्रन्थोंके पढानेकी चातुरी, ३१ नाटक, आख्यायिका आदिकी रचना करना, ३२ समस्यापूर्ति करना, ३३ पट्टी, बेंत, बाण आदि बनाना, ३४ गलीचे, दरी आदि बनाना, ३५ बढ़ईकी कारीगरी, ३६ गृह आदि बनानेकी कारीगरी, ३७ सोने, चाँदी आदि धातु तथा हीरे-पन्ने आदि रत्नोंकी परीक्षा, ३८ सोना-चाँदी आदि बना लेना, ३९ मणियोंके रंगको पहचानना, ४० खानोंकी पहचान, ४१ वृक्षोंकी चिकित्सा, ४२ भेड़ा, मुर्गा, बटेर आदिको लड़ानेकी रीति, ४३ तोता-मैना आदिकी बोलियाँ बोलना, ४४ उच्चाटनकी विधि, ४५ केशोंकी सफाईका कौशल, ४६ मुट्ठीकी चीज या मनकी बात बता देना,

मुनिसे प्रार्थना की कि 'आपकी जो इच्छा हो, गुरुदक्षिणा माँग लें' ॥ ३६ ॥ महाराज ! सान्दीपनि मुनिने उनकी अद्भुत महिमा और अलौकिक बुद्धिका अनुभव कर लिया था। इसलिये उन्होंने अपनी पत्नीसे सलाह करके यह गुरुदक्षिणा माँगी कि 'प्रभासक्षेत्रमें हमारा बालक समुद्रमें डूबकर मर गया था, उसे तुमलोग ला दो' ॥ ३७ ॥ बलरामजी और श्रीकृष्णका पराक्रम अनन्त था। दोनों ही महारथी थे। उन्होंने 'बहुत अच्छा' कहकर गुरुजीकी आज्ञा स्वीकार की और रथपर सवार होकर प्रभासक्षेत्रमें गये। वे समुद्रतटपर जाकर क्षणभर बैठे रहे। उस समय यह जानकर कि ये साक्षात् परमेश्वर हैं, अनेक प्रकारकी पूजा-सामग्री लेकर समुद्र उनके सामने उपस्थित हुआ ॥ ३८ ॥ भगवान्‌ने समुद्रसे कहा—'समुद्र ! तुम यहाँ अपनी बड़ी-बड़ी तरङ्गोंसे हमारे जिस गुरुपुत्रको बहा ले गये थे, उसे लाकर शीघ्र हमें दो' ॥ ३९ ॥

मनुष्यवेषधारी समुद्रने कहा—'देवाधिदेव श्रीकृष्ण ! मैंने उस बालकको नहीं लिया है। मेरे जलमें पञ्चजन नामका एक बड़ा भारी दैत्य जातिका असुर शङ्खके रूपमें रहता है। अवश्य ही उसीने वह बालक चुरा लिया होगा' ॥ ४० ॥ समुद्रकी बात सुनकर भगवान् तुरंत ही जलमें जा घुसे और शङ्खासुरको मार डाला। परन्तु वह बालक उसके पेटमें नहीं मिला ॥ ४१ ॥ तब उसके शरीरका शङ्ख लेकर भगवान् रथपर चले आये। वहाँसे बलरामजीके साथ श्रीकृष्णने यमराजकी प्रियपुरी संयमनीमें जाकर अपना शङ्ख बजाया। शङ्खका शब्द सुनकर सारी प्रजाका शासन करनेवाले यमराजने उनका स्वागत किया और भक्तिभावसे भरकर विधिपूर्वक उनकी बहुत बड़ी पूजा की। उन्होंने नम्रतासे झुककर समस्त प्राणियोंके हृदयमें विराजमान सच्चिदानन्द-स्वरूप भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—'लीलासे ही मनुष्य बने हुए सर्वव्यापक परमेश्वर ! मैं आप दोनोंकी क्या सेवा करूँ ?' ॥ ४२—४४ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—'यमराज ! यहाँ अपने कर्म-बन्धनके अनुसार मेरा गुरुपुत्र लाया गया है। तुम मेरी आज्ञा स्वीकार करो और उसके कर्मपर ध्यान न देकर उसे मेरे पास ले आओ ॥ ४५ ॥ यमराजने 'जो आज्ञा' कहकर भगवान्‌का आदेश स्वीकार किया और उनका गुरुपुत्र ला दिया। तब यदुवंशशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी उस बालकको लेकर उज्जैन लौट आये और उसे अपने गुरुदेवको सौंपकर कहा कि 'आप और जो कुछ चाहें, माँग लें' ॥ ४६ ॥

गुरुजीने कहा—'बेटा ! तुम दोनोंने भलीभाँति गुरुदक्षिणा दी। अब और क्या चाहिये ? जो तुम्हारे-जैसे पुरुषोत्तमोंका गुरु है, उसका कौन-सा मनोरथ अपूर्ण रह सकता है ? ॥ ४७ ॥ वीरो ! अब तुम दोनों अपने घर जाओ। तुम्हें लोकोंको पवित्र करनेवाली कीर्ति प्राप्त हो। तुम्हारी पढ़ी हुई विद्या इस लोक और परलोकमें सदा नवीन बनी रहे, कभी विस्मृत न हो ॥ ४८ ॥ वेटा परीक्षित् ! फिर गुरुजीसे आज्ञा लेकर वायुके समान वेग और मेघके समान शब्दवाले रथपर सवार होकर दोनों भाई मथुरामें लौट आये ॥ ४९ ॥ मथुराकी प्रजा बहुत दिनोंतक श्रीकृष्ण और बलरामको न देखनेसे अत्यन्त दुखी हो रही थी। अब उन्हें आया हुआ देख सब-के-सब परमानन्दमें मग्न हो गये, मानो खोया हुआ धन मिल गया हो ॥ ५० ॥

छियालीसवाँ अध्याय

उद्धवजीकी व्रजयात्रा

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! उद्धवजी वृष्णिवंशियोंमें एक प्रधान पुरुष थे। वे साक्षात्

४७ म्लेच्छ-काव्योंका समझ लेना, ४८ विभिन्न देशोंकी भाषाका ज्ञान, ४९ शकुन-अपशकुन जानना, प्रश्नोंके उत्तरमें शुभाशुभ बतलाना, ५० नाना प्रकारके मातृकायन्त्र बनाना, ५१ रत्नोंको नाना प्रकारके आकारोंमें काटना, ५२ साङ्केतिक भाषा बनाना, ५३ मनमें कटकरचना करना, ५४ नयी-नयी बातें निकालना, ५५ छलसे काम निकालना, ५६ समस्त कोशोंका ज्ञान, ५७ समस्त छन्दोंका ज्ञान, ५८ वस्त्रोंको छिपाने या बदलनेकी विद्या, ५९ द्यूतक्रीड़ा, ६० दूरके मनुष्य या वस्तुओंका आकर्षण कर लेना, ६१ बालकोंके खेल, ६२ मन्त्रविद्या, ६३ विजय प्राप्त करानेवाली विद्या, ६४ वेताल आदिको वशमें रखनेकी विद्या।

बृहस्पतिजीके शिष्य और परम बुद्धिमान् थे । उनकी महिमाके सम्बन्धमें इससे बढ़कर और कौन-सी बात कही जा सकती है कि वे भगवान् श्रीकृष्णके प्यारे सखा तथा मन्त्री भी थे ॥ १ ॥ एक दिन शरणागतोंके सारे दुःख हर लेनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने अपने प्रिय भक्त और एकान्तप्रेमी उद्धवजीका हाथ अपने हाथमें लेकर कहा—॥ २ ॥ 'सौम्यस्वभाव उद्धव ! तुम व्रजमें जाओ । वहाँ मेरे पिता-माता नन्दबाबा और यशोदा मैया हैं, उन्हें आनन्दित करो; और गोपियाँ मेरे विरहकी व्याधिसे बहुत ही दुःखी हो रही हैं, उन्हें मेरे सन्देश सुनाकर उस वेदनासे मुक्त करो ॥ ३ ॥ प्यारे उद्धव ! गोपियोंका मन नित्य-निरन्तर मुझमें ही लगा रहता है । उनके प्राण, उनका जीवन, उनका सर्वस्व मैं ही हूँ । मेरे लिये उन्होंने अपने पति-पुत्र आदि सभी सगे-सम्बन्धियोंको छोड़ दिया है । उन्होंने बुद्धिसे भी मुझीको अपना प्यारा, अपना प्रियतम—नहीं, नहीं, अपना आत्मा मान रक्खा है । मेरा यह व्रत है कि जो लोग मेरे लिये लौकिक और पारलौकिक धर्मोंको छोड़ देते हैं, उनका भरण-पोषण मैं स्वयं करता हूँ ॥ ४ ॥ प्रिय उद्धव ! मैं उन गोपियोंका परम प्रियतम हूँ । मेरे यहाँ चले आनेसे वे मुझे दूरस्थ मानती हैं और मेरा स्मरण करके अत्यन्त मोहित हो रही हैं, बार-बार मूर्च्छित हो जाती हैं । वे मेरे विरहकी व्यथासे विह्वल हो रही हैं, प्रतिक्षण मेरे लिये उत्कण्ठित रहती हैं ॥ ५ ॥ मेरी गोपियाँ, मेरी प्रेयसियाँ इस समय बड़े ही कष्ट और यत्नसे अपने प्राणोंको किसी प्रकार रख रही हैं । मैंने उनसे कहा था कि 'मैं आऊँगा ।' वही उनके जीवनका आधार है । उद्धव ! और तो क्या कहूँ, मैं ही उनकी आत्मा हूँ । वे नित्य-निरन्तर मुझमें ही तन्मय रहती हैं' ॥ ६ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जब भगवान् श्रीकृष्णने यह बात कही, तब उद्धवजी बड़े आदरसे अपने स्वामीका सन्देश लेकर रथपर सवार हुए और नन्दगाँवके लिये चल पड़े ॥ ७ ॥ परम सुन्दर उद्धवजी सूर्यास्तके समय नन्दबाबाके व्रजमें पहुँचे । उस समय जंगलसे गौएँ लौट रही थीं । उनके खुरोंके आघातसे इतनी धूल उड़ रही थी कि उनका रथ ढक गया था ॥ ८ ॥ व्रजभूमिमें ऋतुमती गौओंके लिये मतवाले साँड़ आपसमें लड़ रहे थे । उनकी गर्जनासे सारा व्रज गूँज रहा था । थोड़े दिनोंकी ब्यायी हुई गौएँ अपने थनोंके भारी भारसे दबी होनेपर भी अपने-अपने बछड़ोंकी ओर दौड़ रही थीं ॥ ९ ॥ सफेद रंगके बछड़े इधर-उधर उछल-कूद मचाते हुए बहुत ही भले मालूम होते थे । गाय दुहनेकी 'घर-घर' ध्वनिसे और बाँसुरियोंकी मधुर टेरसे अब भी व्रजकी अपूर्व शोभा हो रही थी ॥ १० ॥ गोपी और गोप सुन्दर-सुन्दर वस्त्र तथा गहनोंसे सज-धजकर श्रीकृष्ण तथा बलरामजीके मङ्गलमय चरित्रोंका गान कर रहे थे और इस प्रकार व्रजकी शोभा और भी बढ़ गयी थी ॥ ११ ॥ गोपोंके घरोंमें अग्नि, सूर्य, अतिथि, गौ, ब्राह्मण और देवता-पितरोंकी पूजा की हुई थी । धूपकी सुगन्ध चारों ओर फैल रही थी और दीपक जगमगा रहे थे । उन घरोंको पुष्पोंसे सजाया गया था । ऐसे मनोहर गृहोंसे सारा व्रज और भी मनोरम हो रहा था ॥ १२ ॥ चारों ओर वन-पंक्तियाँ फूलोंसे लद रही थीं । पक्षी चहक रहे थे और भौंरे गुंजार कर रहे थे । वहाँ जल और स्थल दोनों ही कमलोंके वनसे शोभायमान थे और हंस, बत्तख आदि पक्षी वनमें विहार कर रहे थे ॥ १३ ॥

जब भगवान् श्रीकृष्णके प्यारे अनुचर उद्धवजी व्रजमें आये, तब उनसे मिलकर नन्दबाबा बहुत ही प्रसन्न हुए । उन्होंने उद्धवजीको गले लगाकर उनका वैसे ही सम्मान किया, मानो स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण आ गये हों ॥ १४ ॥ समयपर उत्तम अन्नका भोजन कराया और जब वे आरामसे पलँगपर बैठ गये, सेवकोंने पाँव दबाकर, पंखा झलकर उनकी थकावट दूर कर दी ॥ १५ ॥ तब नन्दबाबाने उनसे पूछा—'परम भाग्यवान् उद्धवजी ! अब हमारे सखा वसुदेवजी जेलसे छूट गये । उनके आत्मीय स्वजन तथा पुत्र आदि उनके साथ हैं । इस समय वे सब कुशलसे तो हैं न ? ॥ १६ ॥ यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि अपने पापोंके फलस्वरूप पापी कंस अपने अनुयायियोंके साथ मारा गया । क्योंकि स्वभावसे ही धार्मिक परम साधु यदुवंशियोंसे वह सदा द्वेष करता था ॥ १७ ॥ अच्छा

तथा ब्रह्ममय होकर परम गतिको प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥ वे भगवान् ही, जो सबके आत्मा और परम कारण हैं, भक्तोंकी अभिलाषा पूर्ण करने और पृथ्वीका भार उतारनेके लिये मनुष्यका-सा शरीर ग्रहण करके प्रकट हुए हैं। उनके प्रति आप दोनोंका ऐसा सुदृढ वात्सल्य-भाव है; फिर महात्माओ! आप दोनोंके लिये अब कौन-सा शुभ कर्म करना शेष रह जाता है ॥ ३३ ॥ भक्तवत्सल यदुवंशशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्ण थोड़े ही दिनोंमें व्रजमें आयेंगे और आप दोनोंको—अपने माँ-बापको आनन्दित करेंगे ॥ ३४ ॥ जिस समय उन्होंने समस्त यदुवंशियोंके द्रोही कंसको रंगभूमिमें मार डाला और आपके पास आकर कहा कि 'मैं व्रजमें आऊँगा', उस कथनको वे सत्य करेंगे ॥ ३५ ॥ नन्दबाबा और माता यशोदाजी! आप दोनों परम भाग्यशाली हैं। खेद न करें। आप श्रीकृष्णको अपने पास ही देखेंगे, क्योंकि जैसे काष्ठमें अग्नि सदा ही व्यापक रूपसे रहती है, वैसे ही वे समस्त प्राणियोंके हृदयमें सर्वदा विराजमान रहते हैं ॥ ३६ ॥ एक शरीरके प्रति अभिमान न होनेके कारण न तो कोई उनका प्रिय है और न तो अप्रिय। वे सबमें और सबके प्रति समान हैं; इसलिये उनकी दृष्टिमें न तो कोई उत्तम है और न तो अधम। यहाँतक कि विषमताका भाव रखनेवाला भी उनके लिये विषम नहीं है ॥ ३७ ॥ न तो उनकी कोई माता है और न पिता। न पत्नी है और न तो पुत्र आदि। न अपना है और न तो पराया। न देह है और न तो जन्म ही ॥ ३८ ॥ इस लोकमें उनका कोई कर्म नहीं है फिर भी वे साधुओंके परित्राणके लिये, लीला करनेके लिये देवादि सात्त्विक, मत्स्यादि तामस एवं मनुष्य आदि मिश्र योनियोंमें शरीर धारण करते हैं ॥ ३९ ॥ भगवान् अजन्मा हैं। उनमें प्राकृत सत्त्व, रज आदिमेंसे एक भी गुण नहीं है। इस प्रकार इन गुणोंसे अतीत होनेपर भी लीलाके लिये खेल-खेलमें वे सत्त्व, रज और तम—इन तीनों गुणोंको स्वीकार कर लेते हैं और उनके द्वारा जगत्‌की रचना, पालन और संहार करते हैं ॥ ४० ॥ जब बच्चे घुमरीपरेता खेलने लगते हैं या मनुष्य वेगसे चक्कर लगाने लगते हैं, तब उन्हें सारी पृथ्वी घूमती हुई जान पड़ती है। वैसे ही वास्तवमें सब कुछ करनेवाला चित्त ही है; परन्तु उस चित्तमें अहंबुद्धि हो जानेके कारण, भ्रमवश उसे आत्मा—अपना 'मैं' समझ लेनेके कारण, जीव अपनेको कर्ता समझने लगता है ॥ ४१ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण केवल आप दोनोंके ही पुत्र नहीं हैं, वे समस्त प्राणियोंके आत्मा, पुत्र, पिता-माता और स्वामी भी हैं ॥ ४२ ॥ बाबा! जो कुछ देखा या सुना जाता है—वह चाहे भूतसे सम्बन्ध रखता हो, वर्तमानसे अथवा भविष्यसे; स्थावर हो या जङ्गम हो, महान् हो अथवा अल्प हो—ऐसी कोई वस्तु ही नहीं है, जो भगवान् श्रीकृष्णसे पृथक् हो। बाबा! श्रीकृष्णके अतिरिक्त ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसे वस्तु कह सकें। वास्तवमें सब वे ही हैं, वे ही परमार्थ सत्य हैं ॥ ४३ ॥

परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णके सखा उद्धव और नन्दबाबा इसी प्रकार आपसमें बात करते रहे और वह रात बीत गयी। कुछ रात शेष रहनेपर गोपियाँ उठीं, दीपक जलाकर उन्होंने घरकी देहलियोंपर वास्तुदेवका पूजन किया, अपने घरोंको झाड़-बुहारकर साफ किया और फिर दही मथने लगीं ॥ ४४ ॥ गोपियोंकी कलाइयोंमें कंगन शोभायमान हो रहे थे, रस्सी खींचते समय वे बहुत भली मालूम हो रही थीं। उनके नितम्ब, स्तन और गलेके हार हिल रहे थे। कानोंके कुण्डल हिल-हिलकर उनके कुङ्कुममण्डित कपोलोंकी लालिमा बढ़ा रहे थे। उनके आभूषणोंकी मणियाँ दीपककी ज्योतिसे और भी जगमगा रही थीं और इस प्रकार वे अत्यन्त शोभासे सम्पन्न होकर दही मथ रही थीं ॥ ४५ ॥ उस समय गोपियाँ—कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णके मङ्गलमय चरित्रोंका गान कर रही थीं। उनका वह सङ्गीत दही मथनेकी ध्वनिसे मिलकर और भी अद्भुत हो गया तथा स्वर्गलोकतक जा पहुँचा, जिसकी स्वर-लहरी सब ओर फैलकर दिशाओंका अमङ्गल मिटा देती है ॥ ४६ ॥

जब भगवान् भुवनभास्करका उदय हुआ, तब व्रजाङ्गनाओंने देखा कि नन्दबाबाके दरवाजेपर एक सोनेका रथ खड़ा है। वे एक-दूसरेसे पूछने लगीं 'यह

किसका रथ है?' ॥ ४७ ॥ किसी गोपीने कहा—'कंसका प्रयोजन सिद्ध करनेवाला अक्रूर ही तो कहीं फिर नहीं आ गया है? जो कमलनयन प्यारे श्यामसुन्दरको यहाँसे मथुरा ले गया था' ॥ ४८ ॥ किसी दूसरी गोपीने कहा—'क्या अब वह हमें ले जाकर अपने मरे हुए स्वामी कंसका पिण्डदान करेगा? अब यहाँ उसके आनेका और क्या प्रयोजन हो सकता है?' व्रजवासिनी स्त्रियाँ इसी प्रकार आपसमें बातचीत कर रही थीं कि उसी समय नित्यकर्मसे निवृत्त होकर उद्धवजी आ पहुँचे ॥ ४९ ॥

सैंतालीसवाँ अध्याय

उद्धव तथा गोपियोंकी बातचीत और भ्रमरगीत

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! गोपियोंने देखा कि श्रीकृष्णके सेवक उद्धवजीकी आकृति और वेषभूषा श्रीकृष्णसे मिलती-जुलती है। घुटनोंतक लंबी-लंबी भुजाएँ हैं, नूतन कमलदलके समान कोमल नेत्र हैं, शरीरपर पीताम्बर धारण किये हुए हैं, गलेमें कमलपुष्पोंकी माला है, कानोंमें मणिजटित कुण्डल झलक रहे हैं और मुखारविन्द अत्यन्त प्रफुल्लित है ॥ १ ॥ पवित्र मुसकानवाली गोपियोंने आपसमें कहा—'यह पुरुष देखनेमें तो बहुत सुन्दर है। परन्तु यह है कौन? कहाँसे आया है? किसका दूत है? इसने श्रीकृष्ण-जैसी वेषभूषा क्यों धारण कर रक्खी है?' सब-की-सब गोपियाँ उनका परिचय प्राप्त करनेके लिये अत्यन्त उत्सुक हो गयीं और उनमेंसे बहुत-सी पवित्रकीर्ति भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंके आश्रित तथा उनके सेवक-सखा उद्धवजीको चारों ओरसे घेरकर खड़ी हो गयीं ॥ २ ॥ जब उन्हें मालूम हुआ कि ये तो रमारमण भगवान् श्रीकृष्णका सन्देश लेकर आये हैं, तब उन्होंने विनयसे झुककर सलज्ज हास्य, चितवन और मधुर वाणी आदिसे उद्धवजीका अत्यन्त सत्कार किया तथा एकान्तमें आसनपर बैठाकर वे उनसे इस प्रकार कहने लगीं—॥ ३ ॥ 'उद्धवजी! हम जानती हैं कि आप यदुनाथके पार्षद हैं। उन्हींका संदेश लेकर यहाँ पधारे हैं। आपके स्वामीने अपने माता-पिताको सुख देनेके लिये आपको यहाँ भेजा है ॥ ४ ॥ अन्यथा हमें तो अब इस नन्दगाँवमें—गौओंके रहनेकी जगहमें उनके स्मरण करने योग्य कोई भी वस्तु दिखायी नहीं पड़ती; माता-पिता आदि सगे-सम्बन्धियोंका स्नेह-बन्धन तो बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी बड़ी कठिनाईसे छोड़ पाते हैं ॥ ५ ॥ दूसरोंके साथ जो प्रेम सम्बन्धका स्वाँग किया जाता है, वह तो किसी-न-किसी स्वार्थके लिये ही होता है। भौंरोंका पुष्पोंसे और पुरुषोंका स्त्रियोंसे ऐसा ही स्वार्थका प्रेम-सम्बन्ध होता है ॥ ६ ॥ जब वेश्या समझती है कि अब मेरे यहाँ आनेवालेके पास धन नहीं है, तब उसे वह धता बता देती है। जब प्रजा देखती है कि यह राजा हमारी रक्षा नहीं कर सकता, तब वह उसका साथ छोड़ देती है। अध्ययन समाप्त हो जानेपर कितने शिष्य अपने आचार्योंकी सेवा करते हैं? यज्ञकी दक्षिणा मिली कि ऋत्विज लोग चलते बने ॥ ७ ॥ जब वृक्षपर फल नहीं रहते, तब पक्षीगण वहाँसे बिना कुछ सोचे-विचारे उड़ जाते हैं। भोजन कर लेनेके बाद अतिथिलोग ही गृहस्थकी ओर कब देखते हैं? वनमें आग लगी कि पशु भाग खड़े हुए। चाहे स्त्रीके हृदयमें कितना भी अनुराग हो, जार पुरुष अपना काम बना लेनेके बाद उलटकर भी तो नहीं देखता' ॥ ८ ॥ परीक्षित्! गोपियोंके मन, वाणी और शरीर श्रीकृष्णमें ही तल्लीन थे। जब भगवान् श्रीकृष्णके दूत बनकर उद्धवजी व्रजमें आये, तब वे उनसे इस प्रकार कहते-कहते यह भूल ही गयीं कि कौन-सी बात किस तरह किसके सामने कहनी चाहिये। भगवान् श्रीकृष्णने बचपनसे लेकर किशोर अवस्थातक जितनी भी लीलाएँ की थीं, उन सबकी याद कर-करके गोपियाँ उनका गान करने लगीं। वे आत्मविस्मृत होकर स्त्री-सुलभ लज्जाको भी भूल गयीं और फूट-फूटकर रोने लगीं ॥ ९-१० ॥ एक गोपीको उस समय स्मरण हो रहा था भगवान् श्रीकृष्णके मिलनकी लीलाका। उसी समय उसने देखा कि पास ही एक भौंरा गुनगुना रहा है। उसने ऐसा समझा मानो मुझे रूठी हुई समझकर श्रीकृष्णने मनानेके लिये दूत भेजा हो। वह गोपी भौंरेसे इस प्रकार कहने लगी—॥ ११ ॥

गोपीने कहा—रे मधुप ! तू कपटीका सखा है; इसलिये तू भी कपटी है। तू हमारे पैरोंको मत छू। झूठे प्रणाम करके हमसे अनुनय-विनय मत कर। हम देख रही हैं कि श्रीकृष्णकी जो वनमाला हमारी सौतोंके वक्षःस्थलके स्पर्शसे मसली हुई है, उसका पीला-पीला कुङ्कुम तेरी मूँछोंपर भी लगा हुआ है। तू स्वयं भी तो किसी कुसुमसे प्रेम नहीं करता, यहाँ-से-वहाँ उड़ा करता है। जैसे तेरे स्वामी, वैसा ही तू! मधुपति श्रीकृष्ण मथुराकी मानिनी नायिकाओंको मनाया करें, उनका वह कुङ्कुमरूप कृपा-प्रसाद, जो यदुवंशियोंकी सभामें उपहास करनेयोग्य है, अपने ही पास रक्खे। उसे तेरे द्वारा यहाँ भेजनेकी क्या आवश्यकता है?॥१२॥ जैसा तू काला है, वैसे ही वे भी हैं। तू भी पुष्पोंका रस लेकर उड़ जाता है, वैसे ही वे भी निकले। उन्होंने हमे केवल एक बार—हाँ, ऐसा ही लगता है—केवल एक बार अपनी तनिक-सी मोहिनी और परम मादक अधरसुधा पिलायी थी और फिर हम भोली-भाली गोपियोंको छोड़कर वे यहाँसे चले गये। पता नहीं, सुकुमारी लक्ष्मी उनके चरणकमलोंकी सेवा कैसे करती रहती हैं! अवश्य ही वे छैल-छबीले श्रीकृष्णकी चिकनी-चुपड़ी बातोंमें आ गयी होंगी। चितचोरने उनका भी चित्त चुरा लिया होगा ॥१३॥ अरे भ्रमर! हम वनवासिनी हैं। हमारे तो घर-द्वार भी नहीं है। तू हमलोगोंके सामने यदुवंशशिरोमणि श्रीकृष्णका बहुत-सा गुणगान क्यों कर रहा है? यह सब भला हमलोगोंको मनानेके लिये ही तो? परन्तु नहीं-नहीं, वे हमारे लिये कोई नये नहीं हैं। हमारे लिये तो जाने-पहचाने, बिल्कुल पुराने हैं। तेरी चापलूसी हमारे पास नहीं चलेगी। तू जा, यहाँसे चला जा और जिनके साथ सदा विजय रहती है, उन श्रीकृष्णकी मधुपुरवासिनी सखियोंके सामने जाकर उनका गुणगान कर। वे नयी हैं, उनकी लीलाएँ कम जानती हैं और इस समय वे उनकी प्यारी हैं; उनके हृदयकी पीड़ा उन्होंने मिटा दी है। वे तेरी प्रार्थना स्वीकार करेंगी, तेरी चापलूसीसे प्रसन्न होकर तुझे मुँहमाँगी वस्तु देंगी ॥१४॥ भौंरे! वे हमारे लिये छटपटा रहे हैं, ऐसा तू क्यों कहता है? उनकी कपटभरी मनोहर मुसकान और भौंहोंके इशारेसे जो वशमें न हो जायँ, उनके पास दौड़ी न आवें—ऐसी कौन-सी स्त्रियाँ हैं? अरे अनजान! स्वर्गमें, पातालमें और पृथ्वीमे ऐसी एक भी स्त्री नहीं है। औरोंकी तो बात ही क्या, स्वयं लक्ष्मीजी भी उनके चरणरजकी सेवा किया करती हैं। फिर हम श्रीकृष्णके लिये किस गिनतीमें हैं? परन्तु तू उनके पास जाकर कहना कि 'तुम्हारा नाम तो 'उत्तमश्लोक' है, अच्छे-अच्छे लोग तुम्हारी कीर्तिका गान करते हैं; परन्तु इसकी सार्थकता तो इसीमें है कि तुम दीनोंपर दया करो। नहीं तो श्रीकृष्ण! तुम्हारा 'उत्तमश्लोक' नाम झूठा पड़ जाता है ॥१५॥ अरे मधुकर! देख, तू मेरे पैरपर सिर मत टेक। मैं जानती हूँ कि तू अनुनय-विनय करनेमें, क्षमा याचना करनेमें बड़ा निपुण है। मालूम होता है तू श्रीकृष्णसे ही यही सीखकर आया है कि रूठे हुएको मनानेके लिये दूतको—सन्देशवाहकको कितनी चाटुकारिता करनी चाहिये। परन्तु तू समझ ले कि यहाँ तेरी दाल नहीं गलनेकी। देख, हमने श्रीकृष्णके लिये ही अपने पति, पुत्र और दूसरे लोगोंको छोड़ दिया। परन्तु उनमें तनिक भी कृतज्ञता नहीं। वे ऐसे निर्मोही निकले कि हमें छोड़कर चलते बने। अब तू ही बता, ऐसे अकृतज्ञके साथ हम क्या सन्धि करें? क्या तू अब भी कहता है कि उनपर विश्वास करना चाहिये? ॥१६॥ ऐ रे मधुप! जब वे राम बने थे, तब उन्होंने कपिराज बालिको व्याधके समान छिपकर बड़ी निर्दयतासे मारा था। बेचारी शूर्पणखा कामवश उनके पास आयी थी, परन्तु उन्होंने अपनी स्त्रीके वश होकर उस बेचारीके नाक-कान काट लिये और इस प्रकार उसे कुरूप कर दिया। ब्राह्मणके घर वामनके रूपमे जन्म लेकर उन्होंने क्या किया? बलिने तो उनकी पूजा की, उनकी मुँहमाँगी वस्तु दी और उन्होंने उसकी पूजा ग्रहण करके भी उसे वरुणपाशसे बाँधकर पातालमें डाल दिया। ठीक वैसे ही, जैसे कौआ बलि खाकर भी बलि देनेवालेको अपने अन्य साथियोंके साथ मिलकर घेर लेता है और परेशान करता है। अच्छा, तो अब जाने दे; हमें कृष्णसे क्या, किसी भी काली वस्तुके साथ मित्रतासे कोई प्रयोजन नहीं

है । परन्तु यदि तू यह कहे कि 'जब ऐसा है तब तुम-लोग उनकी चर्चा क्यों करती हो ?' तो भ्रमर ! हम सच कहती हैं, एक बार जिसे उसका चसका लग जाता है, वह उसे छोड़ नहीं सकता । ऐसी दशामें हम चाहनेपर भी उनकी चर्चा छोड़ नहीं सकतीं ॥ १७ ॥ श्रीकृष्णकी लीलारूप कर्णामृतके एक कणका भी जो रसास्वादन कर लेता है, उसके राग-द्वेष, सुख-दुःख आदि सारे द्वन्द्व छूट जाते हैं । यहाँतक कि बहुत-से लोग तो अपनी दुःखमय—दुःखसे सनी हुई घर-गृहस्थी छोड़कर अकिञ्चन हो जाते हैं, अपने पास कुछ भी संग्रह-परिग्रह नहीं रखते, और पक्षियोंकी तरह चुन-चुनकर—भीख माँगकर अपना पेट भरते हैं, दीन-दुनियासे जाते रहते हैं । फिर भी श्रीकृष्णकी लीला-कथा छोड़ नहीं पाते । वास्तवमें उसका रस, उसका चसका ऐसा ही है । यही दशा हमारी हो रही है ॥ १८ ॥ जैसे कृष्णसार मृगकी पत्नी भोली-भाली हरिनियाँ व्याधके सुमधुर गानका विश्वास कर लेती हैं और उसके जालमें फँसकर मारी जाती हैं, वैसे ही हम भोली-भाली गोपियाँ भी उस छलिया कृष्णकी कपटभरी मीठी-मीठी बातोंमें आकर उन्हें सत्यके समान मान बैठीं और उनके नखस्पर्शसे होनेवाली कामव्याधिका बार-बार अनुभव करती रहीं । इसलिये श्रीकृष्णके दूत भौंरे ! अब इस विषयमें तू और कुछ मत कह । तुझे कहना ही हो तो कोई दूसरी बात कह ॥ १९ ॥ हमारे प्रियतमके प्यारे सखा ! जान पड़ता है तुम एक बार उधर जाकर फिर लौट आये हो । अवश्य ही हमारे प्रियतमने मनानेके लिये तुम्हें भेजा होगा । प्रिय भ्रमर ! तुम सब प्रकारसे हमारे माननीय हो । कहो तुम्हारी क्या इच्छा है ? हमसे जो चाहो, सो माँग लो । अच्छा तुम सच बताओ, क्या हमें वहाँ ले चलना चाहते हो ? अजी, उनके पास जाकर लौटना बड़ा कठिन है । हम तो उनके पास जा चुकी हैं । परन्तु तुम हमें वहाँ ले जाकर करोगे क्या ? प्यारे भ्रमर ! उनके साथ—उनके वक्षःस्थलपर तो उनकी प्यारी पत्नी लक्ष्मीजी सदा रहती हैं न ? तब वहाँ हमारा निर्वाह कैसे होगा ॥ २० ॥ अच्छा, हमारे प्रियतमके प्यारे दूत मधुकर ! हमें यह बतलाओ कि आर्यपुत्र भगवान् श्रीकृष्ण गुरुकुलसे लौटकर मधुपुरीमें अब सुखसे तो हैं न ? क्या वे कभी नन्दबाबा, यशोदारानी, यहाँके घर, सगे-सम्बन्धी और ग्वालबालोंकी भी याद करते हैं ? और क्या हम दासियोंकी भी कोई बात कभी चलाते हैं ? प्यारे भ्रमर ! हमें यह भी बतलाओ कि कभी वे अपनी अगरके समान दिव्य सुगन्धसे युक्त भुजा हमारे सिरोंपर रक्खेंगे ? क्या हमारे जीवनमें कभी ऐसा शुभ अवसर भी आयेगा ? ॥ २१ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! गोपियाँ भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनके लिये अत्यन्त उत्सुक—लालायित हो रही थीं, उनके लिये तड़प रही थीं । उनकी बातें सुनकर उद्धवजीने उन्हें उनके प्रियतमका सन्देश सुनाकर सान्त्वना देते हुए इस प्रकार कहा ॥ २२ ॥

उद्धवजीने कहा—अहो गोपियो ! तुम कृतकृत्य हो ! तुम्हारा जीवन सफल है । देवियो ! तुम सारे संसारके लिये पूजनीय हो; क्योंकि तुमलोगोंने इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णको अपना हृदय, अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया है ॥ २३ ॥ दान, व्रत, तप, होम, जप, वेदाध्ययन, ध्यान, धारणा, समाधि और कल्याणके अन्य विविध साधनोंके द्वारा भगवान्‌की भक्ति प्राप्त हो, यही प्रयत्न किया जाता है ॥ २४ ॥ यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि तुमलोगोंने पवित्रकीर्ति भगवान् श्रीकृष्णके प्रति वही सर्वोत्तम प्रेमभक्ति प्राप्त की है और उसीका आदर्श स्थापित किया है, जो बड़े-बड़े ऋषि-मुनियोंके लिये भी अत्यन्त दुर्लभ है ॥ २५ ॥ सचमुच यह कितने सौभाग्यकी बात है कि तुमने अपने पुत्र, पति, देह, स्वजन और घरोंको छोड़कर पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णको, जो सबके परम पति हैं, पतिके रूपमें वरण किया है ॥ २६ ॥ महाभाग्यवती गोपियो ! भगवान् श्रीकृष्णके वियोगसे तुमने उन इन्द्रियातीत परमात्माके प्रति वह भाव प्राप्त कर लिया है, जो सभी वस्तुओंके रूपमें उनका दर्शन कराता है । तुमलोगोंका वह भाव मेरे सामने भी प्रकट हुआ, यह मेरे ऊपर तुम देवियोंकी बड़ी ही दया है ॥ २७ ॥ मैं अपने स्वामीका गुप्त काम करनेवाला दूत हूँ । तुम्हारे प्रियतम भगवान् श्रीकृष्णने तुमलोगोंको परम सुख देनेके लिये यह प्रिय सन्देश

भेजा है। कल्याणियो! वही लेकर मैं तुमलोगोंके पास आया हूँ, अब उसे सुनो ॥ २८ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—मैं सबका उपादान कारण होनेसे सबका आत्मा हूँ, सबमें अनुगत हूँ; इसलिये मुझसे कभी भी तुम्हारा वियोग नहीं हो सकता। जैसे संसारके सभी भौतिक पदार्थोंमें आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी—ये पाँचों भूत व्याप्त हैं, इन्हींसे सब वस्तुएँ बनी हैं और यही उन वस्तुओंके रूपमें हैं। वैसे ही मैं मन, प्राण, पञ्चभूत, इन्द्रिय और उनके विषयोंका आश्रय हूँ। वे मुझमें हैं, मैं उनमें हूँ और सच पूछो तो मैं ही उनके रूपमें प्रकट हो रहा हूँ॥२९॥ मैं ही अपनी मायाके द्वारा भूत, इन्द्रिय और उनके विषयोंके रूपमें होकर उनका आश्रय बन जाता हूँ तथा स्वयं निमित्त भी बनकर अपने-आपको ही रचता हूँ, पालता हूँ और समेट लेता हूँ ॥ ३० ॥ आत्मा माया और मायाके कार्योंसे पृथक् है। वह विशुद्ध ज्ञानस्वरूप, जड प्रकृति, अनेक जीव तथा अपने ही अवान्तर भेदोंसे रहित सर्वथा शुद्ध है। कोई भी गुण उसका स्पर्श नहीं कर पाते। मायाकी तीन वृत्तियाँ हैं—सुषुप्ति, स्वप्न और जाग्रत्। इनके द्वारा वही अखण्ड, अनन्त बोधस्वरूप आत्मा कभी प्राज्ञ, तो कभी तैजस और कभी विश्वरूप-से प्रतीत होता है ॥ ३१ ॥ मनुष्यको चाहिये कि वह समझे कि स्वप्नमें दीखनेवाले पदार्थोंके समान ही जाग्रत् अवस्थामें इन्द्रियोंके विषय भी प्रतीत हो रहे हैं, वे मिथ्या हैं। इसीलिये उन विषयोंका चिन्तन करनेवाले मन और इन्द्रियोंको रोक ले और मानो सोकर उठा हो, इस प्रकार जगत्के स्वाप्निक विषयोंको त्यागकर मेरा साक्षात्कार करे ॥ ३२ ॥ जिस प्रकार सभी नदियाँ घूम-फिरकर समुद्रमें ही पहुँचती हैं, उसी प्रकार मनस्वी पुरुषोंका वेदाभ्यास, योग-साधन, आत्मानात्मविवेक, त्याग, तपस्या, इन्द्रियसंयम और सत्य आदि समस्त धर्म, मेरी प्राप्तिमें ही समाप्त होते हैं। सबका सच्चा फल है मेरा साक्षात्कार; क्योंकि वे सब मनको निरुद्ध करके मेरे पास पहुँचाते हैं॥३३॥

गोपियो! इसमें सन्देह नहीं कि मैं तुम्हारे नयनोंका ध्रुवतारा हूँ। तुम्हारा जीवन-सर्वस्व हूँ। किन्तु मैं जो तुमसे इतना दूर रहता हूँ, उसका कारण है। वह यही कि तुम निरन्तर मेरा ध्यान कर सको, शरीरसे दूर रहनेपर भी मनसे तुम मेरी सन्निधिका अनुभव करो, अपना मन मेरे पास रक्खो ॥ ३४ ॥ क्योंकि स्त्रियों और अन्यान्य प्रेमियोंका चित्त अपने परदेशी प्रियतममें जितना निश्चल भावसे लगा रहता है, उतना आँखोंके सामने, पास रहनेवाले प्रियतममें नहीं लगता ॥३५॥ अशेष वृत्तियोंसे रहित सम्पूर्ण मन मुझमें लगाकर जब तुमलोग मेरा अनुस्मरण करोगी, तब शीघ्र ही सदाके लिये मुझे प्राप्त हो जाओगी ॥ ३६ ॥ कल्याणियो! जिस समय मैंने वृन्दावनमें शारदीय पूर्णिमाकी रात्रिमें रास-क्रीडा की थी उस समय जो गोपियाँ स्वजनोंके रोक लेनेसे व्रजमें ही रह गयीं—मेरे साथ रास-विहारमें सम्मिलित न हो सकीं, वे मेरी लीलाओंका स्मरण करनेसे ही मुझे प्राप्त हो गयी थीं। (तुम्हें भी मैं मिलूँगा अवश्य, निराश होनेकी कोई बात नहीं है) ॥३७॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! अपने प्रियतम श्रीकृष्णका यह सँदेसा सुनकर गोपियोंको बड़ा आनन्द हुआ। उनके सन्देशसे उन्हें श्रीकृष्णके स्वरूप और एक-एक लीलाकी याद आने लगी। प्रेमसे भरकर उन्होंने उद्धवजीसे कहा ॥ ३८ ॥

गोपियोंने कहा—उद्धवजी! यह बड़े सौभाग्यकी और आनन्दकी बात है कि यदुवंशियोंको सतानेवाला पापी कंस अपने अनुयायियोंके साथ मारा गया। यह भी कम आनन्दकी बात नहीं है कि श्रीकृष्णके बन्धु-बान्धव और गुरुजनोंके सारे मनोरथ पूर्ण हो गये तथा अब हमारे प्यारे श्यामसुन्दर उनके साथ सकुशल निवास कर रहे हैं ॥ ३९ ॥ किन्तु उद्धवजी! एक बात आप हमें बतलाइये। 'जिस प्रकार हम अपनी प्रेमभरी लजीली मुसकान और उन्मुक्त चितवनसे उनकी पूजा करती थीं और वे भी हमसे प्यार करते थे, उसी प्रकार मथुराकी स्त्रियोंसे भी वे प्रेम करते हैं या नहीं?' ॥४०॥ तबतक दूसरी गोपी बोल उठी—'अरी सखी! हमारे प्यारे श्यामसुन्दर तो प्रेमकी मोहिनी कलाके विशेषज्ञ हैं। सभी श्रेष्ठ स्त्रियाँ उनसे प्यार करती हैं, फिर भला जब नगरकी स्त्रियाँ उनसे मीठी-मीठी बातें करेंगी और हाव-भावसे उनकी

ओर देखेंगी तब वे उनपर क्यों न रीझेंगे ?' ॥ ४१ ॥ दूसरी गोपियाँ बोलीं—'साधो ! आप यह तो बतलाइये कि जब कभी नागरी नारियोंकी मण्डलीमें कोई बात चलती है और हमारे प्यारे स्वच्छन्दरूपसे, बिना किसी सङ्कोचके जब प्रेमकी बातें करने लगते हैं, तब क्या कभी प्रसंगवश हम गँवार ग्वालिनोंकी भी याद करते हैं ?' ॥ ४२ ॥ कुछ गोपियोंने कहा—'उद्धवजी ! क्या कभी श्रीकृष्ण उन रात्रियोंका स्मरण करते हैं, जब कुमुदिनी तथा कुन्दके पुष्प खिले हुए थे, चारों ओर चाँदनी छिटक रही थी और वृन्दावन अत्यन्त रमणीय हो रहा था ! उन रात्रियोंमें ही उन्होंने रास-मण्डल बनाकर हमलोगोंके साथ नृत्य किया था। कितनी सुन्दर थी वह रास-लीला ! उस समय हमलोगोंके पैरोंके नूपुर रुनझुन-रुनझुन बज रहे थे। हम सब सखियाँ उन्हींकी सुन्दर-सुन्दर लीलाओंका गान कर रही थीं और वे हमारे साथ नाना प्रकारके विहार कर रहे थे' ॥ ४३ ॥ कुछ दूसरी गोपियाँ बोल उठीं—'उद्धवजी ! हम सब तो उन्हींके विरहकी आगसे जल रही हैं। देवराज इन्द्र जैसे जल बरसाकर वनको हरा-भरा कर देते हैं, उसी प्रकार क्या कभी श्रीकृष्ण भी अपने कर-स्पर्श आदिसे हमें जीवन-दान देनेके लिये यहाँ आवेंगे ?' ॥ ४४ ॥ तबतक एक गोपीने कहा—'अरी सखी ! अब तो उन्होंने शत्रुओंको मारकर राज्य पा लिया है; जिसे देखो, वही उनका सुहृद् बना फिरता है। अब वे बड़े-बड़े नरपतियोंकी कुमारियोंसे विवाह करेंगे, उनके साथ आनन्दपूर्वक रहेंगे; यहाँ हम गँवारियोंके पास क्यों आयेंगे ?' ॥ ४५ ॥ दूसरी गोपीने कहा—'नहीं सखी ! महात्मा श्रीकृष्ण तो स्वयं लक्ष्मीपति हैं। उनकी सारी कामनाएँ पूर्ण ही हैं, वे कृतकृत्य हैं। हम वनवासिनी ग्वालिनों अथवा दूसरी राजकुमारियोंसे उनका कोई प्रयोजन नहीं है। हम-लोगोंके बिना उनका कौन-सा काम अटक रहा है ॥४६॥ देखो, वेश्या होनेपर भी पिङ्गलाने क्या ही ठीक कहा है—'संसारमें किसीकी आशा न रखना ही सबसे बड़ा सुख है।' यह बात हम जानती हैं, फिर भी हम भगवान् श्रीकृष्णके लौटनेकी आशा छोड़नेमें असमर्थ हैं। उनके शुभागमनकी आशा ही तो हमारा जीवन है ॥ ४७ ॥ हमारे प्यारे श्यामसुन्दरने, जिनकी कीर्तिका गान बड़े-बड़े महात्मा करते रहते हैं, हमसे एकान्तमें जो मीठी-मीठी प्रेमकी बातें की हैं उन्हें छोड़नेका, भुलानेका उत्साह भी हम कैसे कर सकती हैं ? देखो तो, उनकी इच्छा न होनेपर भी स्वयं लक्ष्मीजी उनके चरणोंसे लिपटी रहती हैं, एक क्षणके लिये भी उनका अङ्ग-सङ्ग छोड़कर कहीं नहीं जातीं ॥ ४८ ॥ उद्धवजी ! यह वही नदी है, जिसमें वे विहार करते थे। यह वही पर्वत है, जिसके शिखरपर चढ़कर वे बाँसुरी बजाते थे। ये वे ही वन हैं, जिनमें वे रात्रिके समय रासलीला करते थे, और ये वे ही गौएँ हैं, जिनको चरानेके लिये वे सुबह-शाम हमलोगोंको देखते हुए जाते-आते थे। और यह ठीक वैसी ही वंशीकी तान हमारे कानोंमें गूँजती रहती है, जैसी वे अपने अधरोंके संयोगसे छेड़ा करते थे। बलरामजीके साथ श्रीकृष्णने इन सभीका सेवन किया है ॥४९॥ यहाँका एक-एक प्रदेश, एक-एक धूलिकण उनके परम सुन्दर चरणकमलोंसे चिह्नित है। इन्हें जब-जब हम देखती हैं, सुनती हैं—दिनभर यही तो करती रहती हैं—तब-तब वे हमारे प्यारे श्यामसुन्दर नन्दनन्दनको हमारे नेत्रोंके सामने लाकर रख देते हैं। उद्धवजी ! हम किसी भी प्रकार—मरकर भी उन्हें भूल नहीं सकतीं ॥ ५० ॥ उनकी वह हंसकी-सी सुन्दर चाल, उन्मुक्त हास्य, विलासपूर्ण चितवन और मधुमयी वाणी ! ओह ! उन सबने हमारा चित्त चुरा लिया है, हमारा मन हमारे वशमें नहीं है; अब हम उन्हें भूलें तो किस तरह ? ॥ ५१ ॥ हमारे प्यारे श्रीकृष्ण ! तुम्हीं हमारे जीवनके स्वामी हो। सर्वस्व हो। प्यारे ! तुम लक्ष्मीनाथ हो तो क्या हुआ ? हमारे लिये तो व्रजनाथ ही हो। हम व्रजगोपियोंके एक-मात्र तुम्हीं सच्चे स्वामी हो। श्यामसुन्दर ! तुमने बार-बार हमारी व्यथा मिटायी है, हमारे सङ्कट काटे हैं। गोविन्द ! तुम गौओंसे बहुत प्रेम करते हो। क्या हम गौएँ नहीं हैं ? तुम्हारा यह सारा गोकुल—जिसमें ग्वालबाल, पिता-माता, गौएँ और हम गोपियाँ सब कोई हैं—दुःखके अपार सागरमें डूब रहा है। तुम इसे बचाओ, आओ, हमारी रक्षा करो' ॥ ५२ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—प्रिय परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णका प्रिय सन्देश सुनकर गोपियोंके विरहकी

व्यथा शान्त हो गयी थी । वे इन्द्रियातीत भगवान् श्रीकृष्णको अपने आत्माके रूपमें सर्वत्र स्थित समझ चुकी थीं । अब वे बड़े प्रेम और आदरसे उद्धवजीका सत्कार करने लगीं ॥ ५३ ॥ उद्धवजी गोपियोंकी विरह-व्यथा मिटानेके लिये कई महीनोंतक वहीं रहे । वे भगवान् श्रीकृष्णकी अनेकों लीलाएँ और बातें सुना-सुनाकर व्रजवासियोंको आनन्दित करते रहते ॥ ५४ ॥ नन्दबाबाके व्रजमें जितने दिनोंतक उद्धवजी रहे, उतने दिनोंतक भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाकी चर्चा होते रहनेके कारण व्रजवासियोंको ऐसा जान पड़ा, मानो अभी एक ही क्षण हुआ हो ॥ ५५ ॥ भगवान्के परमप्रेमी भक्त उद्धवजी कभी नदीतटपर जाते, कभी वनोंमें विहरते और कभी गिरिराजकी घाटियोंमें विचरते । कभी रंग-बिरंगे फूलोंसे लदे हुए वृक्षोंमें ही रम जाते और यहाँ भगवान् श्रीकृष्णने कौन-सी लीला की है, यह पूछ-पूछकर व्रजवासियोंको भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी लीलाके स्मरणमें तन्मय कर देते ॥ ५६ ॥

उद्धवजीने व्रजमें रहकर गोपियोंकी इस प्रकारकी प्रेम-विकलता तथा और भी बहुत-सी प्रेम-चेष्टाएँ देखीं । उनकी इस प्रकार श्रीकृष्णमें तन्मयता देखकर वे प्रेम और आनन्दसे भर गये । अब वे गोपियोंको नमस्कार करते हुए इस प्रकार गान करने लगे—॥ ५७ ॥ 'इस पृथ्वीपर केवल इन गोपियोंका ही शरीर धारण करना श्रेष्ठ एवं सफल है; क्योंकि ये सर्वात्मा भगवान् श्रीकृष्णके परम प्रेममय दिव्य महाभावमें स्थित हो गयी हैं । प्रेमकी यह ऊँची-से-ऊँची स्थिति संसारके भयसे भीत मुमुक्षुजनोंके लिये ही नहीं, अपितु बड़े-बड़े मुनियों—मुक्त पुरुषों तथा हम भक्तजनोंके लिये भी अभी वाञ्छनीय ही है । हमें इसकी प्राप्ति नहीं हो सकी । सत्य है, जिन्हें भगवान् श्रीकृष्णकी लीला-कथाके रसका चसका लग गया है, उन्हें कुलीनताकी, द्विजातिसमुचित संस्कारकी और बड़े-बड़े यज्ञ-यागोंमें दीक्षित होनेकी क्या आवश्यकता है ? अथवा यदि भगवान्की कथाका रस नहीं मिला, उसमें रुचि नहीं हुई, तो अनेक महाकल्पोंतक बार-बार ब्रह्मा होनेसे ही क्या लाभ ? ॥ ५८ ॥ कहाँ ये वनचरी आचार, ज्ञान और जातिसे हीन गाँवकी गँवार ग्वालिनें और कहाँ सच्चिदानन्दघन भगवान् श्रीकृष्णमें यह अनन्य परम प्रेम ! अहो, धन्य है ! धन्य है ! इससे सिद्ध होता है कि यदि कोई भगवान्के स्वरूप और रहस्यको न जानकर भी उनसे प्रेम करे, उनका भजन करे, तो वे स्वयं अपनी शक्तिसे, अपनी कृपासे उसका परम कल्याण कर देते हैं; ठीक वैसे ही, जैसे कोई अनजानमें भी अमृत पी ले तो वह अपनी वस्तु-शक्तिसे ही पीनेवालेको अमर बना देता है ॥ ५९ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने रासोत्सवके समय इन व्रजाङ्गनाओंके गलेमें बाँह डाल-डालकर इनके मनोरथ पूर्ण किये । इन्हें भगवान्ने जिस कृपा-प्रसादका वितरण किया, इन्हें जैसा प्रेमदान किया; वैसा भगवान्की परमप्रेमवती नित्यसङ्गिनी वक्षःस्थलपर विराजमान लक्ष्मीजीको भी नहीं प्राप्त हुआ । कमलकी-सी सुगन्ध और कान्तिसे युक्त देवाङ्गनाओंको भी नहीं मिला । फिर दूसरी स्त्रियोंकी तो बात ही क्या करें ? ॥ ६० ॥ मेरे लिये तो सबसे अच्छी बात यही होगी कि मैं इस वृन्दावन-धाममें कोई झाड़ी, लता अथवा ओषधि—जड़ी-बूटी ही बन जाऊँ ! अहा ! यदि मैं ऐसा बन जाऊँगा, तो मुझे इन व्रजाङ्गनाओंकी चरणधूलि निरन्तर सेवन करनेके लिये मिलती रहेगी । इनकी चरण-रजमें स्नान करके मैं धन्य हो जाऊँगा । धन्य हैं ये गोपियाँ । देखो तो सही, जिनको छोड़ना अत्यन्त कठिन है, उन स्वजन-सम्बन्धियों तथा लोक-वेदकी आर्य-मर्यादाका परित्याग करके इन्होंने भगवान्की पदवी, उनके साथ तन्मयता, उनका परम प्रेम प्राप्त कर लिया है—औरोंकी तो बात ही क्या—भगवद्वाणी, उनकी निःश्वासरूप समस्त श्रुतियाँ, उपनिषदें भी अबतक भगवान्के परम प्रेममय स्वरूपको ढूँढ़ती ही रहती हैं, प्राप्त नहीं कर पातीं ॥ ६१ ॥ स्वयं भगवती लक्ष्मीजी जिनकी पूजा करती रहती हैं; ब्रह्मा, शङ्कर आदि परम समर्थ देवता, पूर्णकाम आत्माराम और बड़े-बड़े योगेश्वर अपने हृदयमें जिनका चिन्तन करते रहते हैं, भगवान् श्रीकृष्णके उन्हीं चरणारविन्दोंको रास-लीलाके समय गोपियोंने अपने वक्षःस्थलपर रक्खा और उनका आलिङ्गन करके अपने हृदयकी जलन, विरह-व्यथा शान्त की ॥ ६२ ॥ नन्दबाबाके व्रजमें रहने-

वाली गोपाङ्गनाओंकी चरणधूलको मैं बारंबार प्रणाम करता हूँ—उसे सिरपर चढ़ाता हूँ। अहा! इन गोपियोंने भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाकथाके सम्बन्धमें जो कुछ गान किया है, वह तीनों लोकोंको पवित्र कर रहा है और सदा-सर्वदा पवित्र करता रहेगा' ॥ ६३ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! इस प्रकार कई महीनोंतक व्रजमें रहकर उद्धवजीने अब मथुरा जानेके लिये गोपियोंसे, नन्दबाबा और यशोदा मैयासे आज्ञा प्राप्त की। ग्वालबालोंसे विदा लेकर वहाँसे यात्रा करनेके लिये वे रथपर सवार हुए ॥ ६४॥ जब उनका रथ व्रजसे बाहर निकला, तब नन्दबाबा आदि गोपगण बहुत-सी भेंटकी सामग्री लेकर उनके पास आये और आँखोंमें आँसू भरकर उन्होंने बड़े प्रेमसे कहा—॥ ६५॥ 'उद्धवजी! अब हम यही चाहते हैं कि हमारे मनकी एक-एक वृत्ति, एक-एक सङ्कल्प श्रीकृष्णके चरणकमलोंके ही आश्रित रहे। उन्हींकी सेवाके लिये उठे और उन्हींमें लगी भी रहे। हमारी वाणी नित्य-निरन्तर उन्हींके नामोंका उच्चारण करती रहे और शरीर उन्हींको प्रणाम करने, उन्हींके आज्ञा-पालन और सेवामें लगा रहे॥ ६६॥ उद्धवजी! हम सच कहते हैं, हमें मोक्षकी इच्छा बिल्कुल नहीं है। हम भगवान्‌की इच्छासे अपने कर्मोंके अनुसार चाहे जिस योनिमें जन्म लें—वहाँ शुभ आचरण करें, दान करें और उसका फल यही पावें कि हमारे अपने ईश्वर श्रीकृष्णमें हमारी प्रीति उत्तरोत्तर बढ़ती रहे' ॥ ६७ ॥ प्रिय परीक्षित्! नन्दबाबा आदि गोपोंने इस प्रकार श्रीकृष्ण-भक्तिके द्वारा उद्धवजीका सम्मान किया। अब वे भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा सुरक्षित मथुरापुरीमें लौट आये ॥ ६८ ॥ वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णको प्रणाम किया और उन्हें व्रजवासियोंकी प्रेममयी भक्तिका उद्रेक, जैसा उन्होंने देखा था, कह सुनाया। इसके बाद नन्दबाबाने भेंटकी जो-जो सामग्री दी थी वह उनको, वसुदेवजी, बलरामजी और राजा उग्रसेनको दे दी ॥ ६९ ॥

अड़तालीसवाँ अध्याय

भगवान्‌का कुब्जा और अक्रूरजीके घर जाना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! तदनन्तर सबके आत्मा तथा सब कुछ देखनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण अपनेसे मिलनकी आकाङ्क्षा रखकर व्याकुल हुई कुब्जाका प्रिय करने—उसे सुख देनेकी इच्छासे उसके घर गये ॥ १ ॥ कुब्जाका घर बहुमूल्य सामग्रियोंसे सम्पन्न था। उसमें शृङ्गार-रसका उद्दीपन करनेवाली बहुत-सी साधन-सामग्री भी भरी हुई थी। मोतीकी झालरें और स्थान-स्थानपर झंडियाँ भी लगी हुई थीं। चँदोवे तने हुए थे। सेजें बिछायी हुई थीं और बैठनेके लिये बहुत सुन्दर-सुन्दर आसन लगाये हुए थे। धूपकी सुगन्ध फैल रही थी। दीपककी शिखाएँ जगमगा रही थीं। स्थान-स्थानपर फूलोंके हार और चन्दन रक्खे हुए थे ॥ २ ॥ भगवान्‌को अपने घर आते देख कुब्जा तुरंत हड़बड़ाकर अपने आसनसे उठ खड़ी हुई और सखियोंके साथ आगे बढ़कर उसने विधिपूर्वक भगवान्‌का स्वागत-सत्कार किया। फिर श्रेष्ठ आसन आदि देकर विविध उपचारोंसे उनकी विधिपूर्वक पूजा की ॥ ३ ॥ कुब्जाने भगवान्‌के परमभक्त उद्धवजीकी भी समुचित रीतिसे पूजा की; परन्तु वे उसके सम्मानके लिये उसका दिया हुआ आसन छूकर धरतीपर ही बैठ गये। (अपने स्वामीके सामने उन्होंने आसनपर बैठना उचित न समझा।) भगवान् श्रीकृष्ण सच्चिदानन्दस्वरूप होनेपर भी लोकाचारका अनुकरण करते हुए तुरंत उसकी बहुमूल्य सेजपर जा बैठे ॥ ४ ॥ तब कुब्जा स्नान, अङ्गराग, वस्त्र, आभूषण, हार, गन्ध (इत्र आदि), ताम्बूल और सुधासव आदिसे अपनेको खूब सजाकर लीलामयी लजीली मुसकान तथा हाव-भावके साथ भगवान्‌की ओर देखती हुई उनके पास आयी ॥ ५ ॥ कुब्जा नवीन मिलनके सङ्कोचसे कुछ झिझक रही थी। तब श्यामसुन्दर श्रीकृष्णने उसे अपने पास बुला लिया

और उसकी कङ्कणसे सुशोभित कलाई पकड़कर अपने पास बैठा लिया और उसके साथ क्रीडा करने लगे। परीक्षित्! कुब्जाने इस जन्ममें केवल भगवान्‌को अङ्गराग अर्पित किया था, उसी एक शुभकर्मके फलस्वरूप उसे ऐसा अनुपम अवसर मिला ॥ ६ ॥ कुब्जा भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंको अपने काम-संतप्त हृदय, वक्षःस्थल और नेत्रोंपर रखकर उनकी दिव्य सुगन्ध लेने लगी और इस प्रकार उसने अपने हृदयकी सारी आधि-व्याधि शान्त कर ली। वक्षःस्थलसे सटे हुए आनन्द-मूर्ति प्रियतम श्यामसुन्दरका अपनी दोनों भुजाओंसे गाढ़ आलिङ्गन करके कुब्जाने दीर्घकालसे बढ़े हुए विरह-तापको शान्त किया ॥ ७ ॥ परीक्षित्! कुब्जाने केवल अङ्गराग समर्पित किया था। उतनेसे ही उसे उन सर्वशक्तिमान् भगवान्‌की प्राप्ति हुई, जो कैवल्य-मोक्षके अधीश्वर हैं और जिनकी प्राप्ति अत्यन्त कठिन है। परन्तु उस दुर्भगाने उन्हें प्राप्त करके भी व्रजगोपियोंकी भाँति सेवा न माँगकर यही माँगा—॥ ८ ॥ 'प्रियतम! आप कुछ दिन यहीं रहकर मेरे साथ क्रीडा कीजिये। क्योंकि हे कमलनयन! मुझसे आपका साथ नहीं छोड़ा जाता' ॥ ९ ॥ परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण सबका मान रखनेवाले और सर्वेश्वर हैं। उन्होंने अभीष्ट वर देकर उसकी पूजा स्वीकार की और फिर अपने प्यारे भक्त उद्धवजीके साथ अपने सर्वसम्मानित घरपर लौट आये ॥ १० ॥ परीक्षित्! भगवान् ब्रह्मा आदि समस्त ईश्वरोंके भी ईश्वर हैं। उनको प्रसन्न कर लेना भी जीवके लिये बहुत ही कठिन है। जो कोई उन्हें प्रसन्न करके उनसे विषय-सुख माँगता है, वह निश्चय ही दुर्बुद्धि है; क्योंकि वास्तवमें विषय-सुख अत्यन्त तुच्छ—नहींके बराबर है ॥ ११ ॥

तदनन्तर एक दिन सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्ण बलरामजी और उद्धवजीके साथ अक्रूरजीकी अभिलाषा पूर्ण करने और उनसे कुछ काम लेनेके लिये उनके घर गये ॥ १२ ॥ अक्रूरजीने दूरसे ही देख लिया कि हमारे परम बन्धु मनुष्यलोकशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी आदि पधार रहे हैं। वे तुरंत उठकर आगे गये तथा आनन्दसे भरकर उनका अभिनन्दन और आलिङ्गन किया ॥ १३ ॥ अक्रूरजीने भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामको नमस्कार किया तथा उद्धवजीके साथ उन दोनों भाइयोंने भी उन्हें नमस्कार किया। जब सब लोग आरामसे आसनोंपर बैठ गये, तब अक्रूरजी उन लोगोंकी विधिवत् पूजा करने लगे ॥ १४ ॥ परीक्षित्! उन्होंने पहले भगवान्‌के चरण धोकर चरणोदक सिरपर धारण किया और फिर अनेकों प्रकारकी पूजा-सामग्री, दिव्य वस्त्र, गन्ध, माला और श्रेष्ठ आभूषणोंसे उनका पूजन किया, सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम किया और उनके चरणोंको अपनी गोदमें लेकर दबाने लगे। उसी समय उन्होंने विनयावनत होकर भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीसे कहा—॥ १५-१६ ॥ 'भगवन्! यह बड़े ही आनन्द और सौभाग्यकी बात है कि पापी कंस अपने अनुयायियोंके साथ मारा गया। उसे मारकर आप दोनोंने यदुवंशको बहुत बड़े सङ्कटसे बचा लिया है तथा उन्नत और समृद्ध किया है ॥ १७ ॥ आप दोनों जगत्‌के कारण और जगत्‌रूप, आदिपुरुष हैं। आपके अतिरिक्त और कोई वस्तु नहीं है, न कारण और न तो कार्य ॥ १८ ॥ परमात्मन्! आपने ही अपनी शक्तिसे इसकी रचना की है और आप ही अपनी काल, माया आदि शक्तियोंसे इसमें प्रविष्ट होकर जितनी भी वस्तुएँ देखी और सुनी जाती हैं, उनके रूपमें प्रतीत हो रहे हैं ॥ १९ ॥ जैसे पृथ्वी आदि कारणतत्त्वोंसे ही उनके कार्य स्थावर-जङ्गम शरीर बनते हैं, वे उनमें अनुप्रविष्ट-से होकर अनेक रूपोंमें प्रतीत होते हैं, परन्तु वास्तवमें वे कारणरूप ही हैं। इसी प्रकार हैं तो केवल आप ही, परन्तु अपने कार्यरूप जगत्‌में स्वेच्छासे अनेक रूपोंमें प्रतीत होते हैं। यह भी आपकी एक लीला ही है ॥ २० ॥ प्रभो! आप रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुणरूप अपनी शक्तियोंसे क्रमशः जगत्‌की रचना, पालन और संहार करते हैं; किन्तु आप उन गुणोंसे अथवा उनके द्वारा होनेवाले कर्मोंसे बन्धनमें नहीं पड़ते, क्योंकि आप शुद्ध ज्ञान-स्वरूप हैं। ऐसी स्थितिमें आपके लिये बन्धनका कारण ही क्या हो सकता है? ॥ २१ ॥ प्रभो! स्वयं आत्म-वस्तुमें स्थूलदेह, सूक्ष्मदेह आदि उपाधियाँ न होनेके कारण न तो उसमें जन्म-मृत्यु है और न किसी प्रकारका भेदभाव। यही कारण है कि न आपमें बन्धन है और

न मोक्ष । आपमें अपने-अपने अभिप्रायके अनुसार बन्धन या मोक्षकी जो कुछ कल्पना होती है, उसका कारण केवल हमारा अविवेक ही है ॥ २२ ॥ आपने जगत्‌के कल्याणके लिये यह सनातन वेदमार्ग प्रकट किया है । जब-जब इसे पाखण्ड-पथसे चलनेवाले दुष्टोंके द्वारा क्षति पहुँचती है, तब-तब आप शुद्ध सत्त्वमय शरीर ग्रहण करते हैं ॥ २३ ॥ प्रभो ! वही आप इस समय अपने अंश श्रीबलरामजीके साथ पृथ्वीका भार दूर करनेके लिये यहाँ वसुदेवजीके घर अवतीर्ण हुए हैं । आप असुरोंके अंशसे उत्पन्न नाममात्रके शासकोंकी सौ-सौ अक्षौहिणी सेनाका संहार करेंगे और यदुवंशके यशका विस्तार करेंगे ॥ २४ ॥ इन्द्रियातीत परमात्मन् ! सारे देवता, पितर, भूतगण और राजा आपकी मूर्ति हैं । आपके चरणोंकी धोवन गङ्गाजी तीनों लोकोंको पवित्र करती हैं । आप सारे जगत्‌के एकमात्र पिता और शिक्षक हैं । वही आज आप हमारे घर पधारे । इसमें सन्देह नहीं कि आज हमारे घर धन्य-धन्य हो गये । उनके सौभाग्यकी सीमा न रही ॥ २५ ॥ प्रभो ! आप प्रेमी भक्तोंके परम प्रियतम, सत्यवक्ता, अकारण हितू और कृतज्ञ हैं—जरा-सी सेवाको भी मान लेते हैं । भला, ऐसा कौन बुद्धिमान् पुरुष है जो आपको छोड़कर किसी दूसरेकी शरणमें जायगा ? आप अपना भजन करनेवाले प्रेमी भक्तकी समस्त अभिलाषाएँ पूर्ण कर देते हैं । यहाँतक कि जिसकी कभी क्षति और वृद्धि नहीं होती—जो एकरस है, अपने उस आत्माका भी आप दान कर देते हैं ॥ २६ ॥ भक्तोंके कष्ट मिटानेवाले और जन्म-मृत्युके बन्धनसे छुड़ानेवाले प्रभो ! बड़े-बड़े योगिराज और देवराज भी आपके स्वरूपको नहीं जान सकते । परन्तु हमें आपका साक्षात् दर्शन हो गया, यह कितने सौभाग्यकी बात है । प्रभो ! हम स्त्री, पुत्र, धन, स्वजन, गेह और देह आदिके मोहकी रस्सीसे बँधे हुए हैं । अवश्य ही यह आपकी मायाका खेल है । आप कृपा करके इस गाढ़े बन्धनको शीघ्र काट दीजिये' ॥ २७ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! इस प्रकार भक्त अक्रूरजीने भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा और स्तुति की । इसके बाद भगवान् श्रीकृष्णने मुसकराकर अपनी मधुर वाणीसे उन्हें मानो मोहित करते हुए कहा ॥ २८ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'तात ! आप हमारे गुरु—हितोपदेशक और चाचा हैं । हमारे वंशमें अत्यन्त प्रशंसनीय तथा हमारे सदाके हितैषी हैं । हम तो आपके बालक हैं और सदा ही आपकी रक्षा, पालन और कृपाके पात्र हैं ॥ २९ ॥ अपना परम कल्याण चाहनेवाले मनुष्योंको आप-जैसे परम पूजनीय और महाभाग्यवान् संतोंकी सर्वदा सेवा करनी चाहिये । आप-जैसे संत देवताओंसे भी बढ़कर हैं; क्योंकि देवताओंमें तो स्वार्थ रहता है, परन्तु संतोंमें नहीं ॥ ३० ॥ केवल जलके तीर्थ (नदी, सरोवर आदि) ही तीर्थ नहीं हैं, केवल मृत्तिका और शिला आदिकी बनी हुई मूर्तियाँ ही देवता नहीं हैं । चाचाजी ! उनकी तो बहुत दिनोंतक श्रद्धासे सेवा की जाय, तब वे पवित्र करते हैं । परन्तु संतपुरुष तो अपने दर्शनमात्रसे पवित्र कर देते हैं ॥ ३१ ॥ चाचाजी ! आप हमारे हितैषी सुहृदोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं । इसलिये आप पाण्डवोंका हित करनेके लिये तथा उनका कुशल-मङ्गल जाननेके लिये हस्तिनापुर जाइये ॥ ३२ ॥ हमने ऐसा सुना है कि राजा पाण्डुके मर जानेपर अपनी माता कुन्तीके साथ युधिष्ठिर आदि पाण्डव बड़े दुःखमें पड़ गये थे । अब राजा धृतराष्ट्र उन्हें अपनी राजधानी हस्तिनापुरमें ले आये हैं और वे वहीं रहते हैं ॥ ३३ ॥ आप जानते ही हैं कि राजा धृतराष्ट्र एक तो अंधे हैं और दूसरे उनमें मनोबलकी भी कमी है । उनका पुत्र दुर्योधन बहुत दुष्ट है और उसके अधीन होनेके कारण वे पाण्डवोंके साथ अपने पुत्रों-जैसा—समान व्यवहार नहीं कर पाते ॥ ३४ ॥ इसलिये आप वहाँ जाइये और मालूम कीजिये कि उनकी स्थिति अच्छी है या बुरी । आपके द्वारा उनका समाचार जानकर मैं ऐसा उपाय करूँगा, जिससे उन सुहृदोंको सुख मिले' ॥ ३५ ॥ सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्ण अक्रूरजीको इस प्रकार आदेश देकर बलरामजी और उद्धवजीके साथ वहाँसे अपने घर लौट आये ॥ ३६ ॥

उनचासवाँ अध्याय

अक्रूरजीका हस्तिनापुर जाना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान्‌के आज्ञानुसार अक्रूरजी हस्तिनापुर गये। वहाँकी एक-एक वस्तुपर पुरुवंशी नरपतियोंकी अमरकीर्तिकी छाप लग रही है। वे वहाँ पहले धृतराष्ट्र, भीष्म, विदुर, कुन्ती, बाह्लीक और उनके पुत्र सोमदत्त, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, दुर्योधन, द्रोणपुत्र अश्वत्थामा, युधिष्ठिर आदि पाँचों पाण्डव तथा अन्यान्य इष्ट-मित्रोंसे मिले ॥ १-२ ॥ जब गान्दिनीनन्दन अक्रूरजी सब इष्ट-मित्रों और सम्बन्धियोंसे भलीभाँति मिल चुके, तब उनसे उन लोगोंने अपने मथुरावासी स्वजन-सम्बन्धियोंकी कुशल-क्षेम पूछी। उनका उत्तर देकर अक्रूरजीने भी हस्तिनापुरवासियोंके कुशल-मङ्गलके सम्बन्धमें पूछताछ की ॥३॥ परीक्षित्! अक्रूरजी यह जाननेके लिये कि, धृतराष्ट्र पाण्डवोंके साथ कैसा व्यवहार करते हैं, कुछ महीनोंतक वहीं रहे। सच पूछो तो, धृतराष्ट्रमें अपने दुष्ट पुत्रोंकी इच्छाके विपरीत कुछ भी करनेका साहस न था। वे शकुनि आदि दुष्टोंकी सलाहके अनुसार ही काम करते थे ॥ ४ ॥ अक्रूरजीको कुन्ती और विदुरने यह बतलाया कि धृतराष्ट्रके लड़के दुर्योधन आदि पाण्डवोंके प्रभाव, शस्त्रकौशल, बल, वीरता तथा विनय आदि सद्‌गुण देख-देखकर उनसे जलते रहते हैं। जब वे यह देखते हैं कि प्रजा पाण्डवोंसे ही विशेष प्रेम रखती है, तब तो वे और भी चिढ़ जाते हैं और पाण्डवोंका अनिष्ट करनेपर उतारू हो जाते हैं। अबतक दुर्योधन आदि धृतराष्ट्रके पुत्रोंने पाण्डवोंपर कई बार विषदान आदि बहुत-से अत्याचार किये हैं और आगे भी बहुत कुछ करना चाहते हैं ॥ ५-६ ॥

जब अक्रूरजी कुन्तीके घर आये, तब वह अपने भाईके पास जा बैठीं। अक्रूरजीको देखकर कुन्तीके मनमें अपने मायकेकी स्मृति जग गयी और नेत्रोंमें आँसू भर आये। उन्होंने कहा—॥ ७ ॥ प्यारे भाई! क्या कभी मेरे माँ-बाप, भाई-बहिन, भतीजे, कुलकी स्त्रियाँ और सखी-सहेलियाँ मेरी याद करती हैं? ॥८॥ मैंने सुना है कि हमारे भतीजे भगवान् श्रीकृष्ण और कमलनयन बलराम बड़े ही भक्तवत्सल और शरणागत-रक्षक हैं। क्या वे कभी अपने इन फुफेरे भाइयोंको भी याद करते हैं? ॥९॥ मैं शत्रुओंके बीच घिरकर शोकाकुल हो रही हूँ। मेरी वही दशा है, जैसे कोई हरिनी भेड़ियोंके बीचमें पड़ गयी हो। मेरे बच्चे बिना बापके हो गये हैं। क्या हमारे श्रीकृष्ण कभी यहाँ आकर मुझको और इन अनाथ बालकोंको सान्त्वना देंगे?' ॥१०॥ (श्रीकृष्णको अपने सामने समझकर कुन्ती कहने लगीं—) 'सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण! तुम महायोगी हो, विश्वात्मा हो और तुम सारे विश्वके जीवनदाता हो। गोविन्द! अपने बच्चोंके साथ दुःख-पर-दुःख भोग रही हूँ। तुम्हारी शरणमें आयी हूँ। मेरी रक्षा करो। मेरे बच्चोंको बचाओ ॥ ११ ॥ मेरे श्रीकृष्ण! यह संसार मृत्युमय है और तुम्हारे चरण मोक्ष देनेवाले हैं। मैं देखती हूँ कि जो लोग इस संसार-से डरे हुए हैं, उनके लिये तुम्हारे चरणकमलोंके अतिरिक्त और कोई शरण, और कोई सहारा नहीं है ॥ १२ ॥ श्रीकृष्ण! तुम मायाके लेशसे रहित परम शुद्ध हो। तुम स्वयं परब्रह्म परमात्मा हो। समस्त साधनों, योगों और उपायोंके स्वामी हो तथा स्वयं योग भी हो। श्रीकृष्ण! मैं तुम्हारी शरणमें आयी हूँ। तुम मेरी रक्षा करो' ॥ १३ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! तुम्हारी पर-दादी कुन्ती इस प्रकार अपने सगे-सम्बन्धियों और अन्तमें जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्णको स्मरण करके अत्यन्त दुःखित हो गयी और फफक-फफककर रोने लगी ॥१४॥ अक्रूरजी और विदुरजी दोनों ही सुख और दुःखको समान दृष्टिसे देखते थे। दोनों यशस्वी महात्माओंने कुन्तीको उसके पुत्रोंके जन्मदाता धर्म, वायु आदि देवताओंकी याद दिलायी और यह कहकर कि, तुम्हारे पुत्र अधर्मका नाश करनेके लिये ही पैदा हुए हैं, बहुत कुछ समझाया-बुझाया और सान्त्वना दी ॥१५॥ अक्रूरजी जब मथुरा जाने लगे, तब राजा धृतराष्ट्रके पास आये। अबतक यह स्पष्ट हो गया था कि राजा अपने पुत्रोंका पक्षपात करते हैं और भतीजोंके साथ अपने पुत्रोंका-सा

बर्ताव नहीं करते ! अब अक्रूरजीने कौरवोंकी भरी सभामें श्रीकृष्ण और बलरामजी आदिका हितैषितासे भरा सन्देश कह सुनाया ॥ १६ ॥

अक्रूरजीने कहा—महाराज धृतराष्ट्रजी ! आप कुरुवंशियोंकी उज्ज्वल कीर्तिको और भी बढ़ाइये । आपको यह काम विशेषरूपसे इसलिये भी करना चाहिये कि अपने भाई पाण्डुके परलोक सिधार जानेपर अब आप राज्यसिंहासनके अधिकारी हुए है ॥ १७ ॥ आप धर्मसे पृथ्वीका पालन कीजिये । अपने सद्व्यवहारसे प्रजाको प्रसन्न रखिये और अपने स्वजनोंके साथ समान बर्ताव कीजिये । ऐसा करनेसे ही आपको लोकमे यश और परलोकमे सद्गति प्राप्त होगी ॥ १८ ॥ यदि आप इसके विपरीत आचरण करेंगे तो इस लोकमें आपकी निन्दा होगी और मरनेके बाद आपको नरकमें जाना पड़ेगा । इसलिये अपने पुत्रों और पाण्डवोंके साथ समानताका बर्ताव कीजिये ॥ १९ ॥ आप जानते ही हैं कि इस संसारमे कभी कहीं कोई किसीके साथ सदा नहीं रह सकता । जिनसे जुड़े हुए है, उनसे एक दिन बिछुड़ना पड़ेगा ही । राजन् ! यह बात अपने शरीरके लिये भी सोलहों आने सत्य है । फिर स्त्री, पुत्र, धन आदि छोड़कर जाना पड़ेगा, इसके विषयमें तो कहना ही क्या है ॥ २० ॥ जीव अकेला ही पैदा होता है और अकेला ही मरकर जाता है । अपनी करनी-धरनी-का, पाप-पुण्यका फल भी अकेला ही भुगतता है ॥२१॥ जिन स्त्री-पुत्रोंको हम अपना समझते हैं, वे तो 'हम तुम्हारे अपने है, हमारा भरण-पोषण करना तुम्हारा धर्म है'—इस प्रकारकी बातें बनाकर मूर्ख प्राणीके अधर्मसे इकट्ठे किये हुए धनको लूट लेते हैं, जैसे जलमें रहने-वाले जन्तुओंके सर्वस्व जलको उन्हींके सम्बन्धी चाट जाते हैं ॥ २२ ॥ यह मूर्ख जीव जिन्हें अपना समझकर अधर्म करके भी पालता-पोसता है, वे ही प्राण, धन और पुत्र आदि इस जीवको असन्तुष्ट छोड़कर ही चले जाते हैं ॥ २३ ॥ जो अपने धर्मसे विमुख है—सच पूछिये, तो वह अपना लौकिक स्वार्थ भी नहीं जानता । जिनके लिये वह अधर्म करता है, वे तो उसे छोड़ ही देंगे; उसे कभी सन्तोषका अनुभव न होगा और वह अपने पापोंकी गठरी सिरपर लादकर स्वयं घोर नरकमे जायगा ॥ २४ ॥ इसलिये महाराज ! यह बात समझ लीजिये कि यह दुनिया चार दिनकी चाँदनी है, सपने-का खिलवाड़ है, जादूका तमाशा है और है मनोराज्य-मात्र ! आप अपने प्रयत्नसे, अपनी शक्तिसे चित्तको रोकिये; ममतावश पक्षपात न कीजिये । आप समर्थ हैं, समत्वमे स्थित हो जाइये और इस संसारकी ओरसे उपराम—शान्त हो जाइये ॥ २५ ॥

राजा धृतराष्ट्रने कहा—दानपते अक्रूरजी ! आप मेरे कल्याणकी, भलेकी बात कह रहे है । जैसे मरने-वालेको अमृत मिल जाय तो वह उससे तृप्त नहीं हो सकता, वैसे ही मै भी आपकी इन बातोंसे तृप्त नहीं हो रहा हूँ ॥ २६ ॥ फिर भी हमारे हितैषी अक्रूरजी ! मेरे चञ्चल चित्तमे आपकी यह प्रिय शिक्षा तनिक भी नहीं ठहर रही है; क्योंकि मेरा हृदय पुत्रोंकी ममताके कारण अत्यन्त विषम हो गया है । जैसे स्फटिक पर्वतके शिखरपर एक बार बिजली कौंधती है और दूसरे ही क्षण अन्तर्धान हो जाती है, वही दशा आपके उपदेशों-की है ॥ २७ ॥ अक्रूरजी ! सुना है कि सर्वशक्तिमान् भगवान् पृथ्वीका भार उतारनेके लिये यदुकुलमें अवतीर्ण हुए हैं । ऐसा कौन पुरुष है, जो उनके विधानमे उलट-फेर कर सके ? उनकी जैसी इच्छा होगी, वही होगा ॥२८॥ भगवान्‌की मायाका मार्ग अचिन्त्य है । उसी मायाके द्वारा इस संसारकी सृष्टि करके वे इसमें प्रवेश करते हैं और कर्म तथा कर्मफलोंका विभाजन कर देते हैं । इस संसार-चक्रकी बेरोक-टोक चालमें उनकी अचिन्त्य लीला-शक्तिके अतिरिक्त और कोई कारण नहीं है । मै उन्हीं परमैश्वर्यशाली प्रभुको नमस्कार करता हूँ ॥ २९ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—इस प्रकार अक्रूरजी महाराज धृतराष्ट्रका अभिप्राय जानकर और कुरुवंशी स्वजन-सम्बन्धियोंसे प्रेमपूर्वक अनुमति लेकर मथुरा लौट आये ॥ ३० ॥ परीक्षित् ! उन्होंने वहाँ भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीके सामने धृतराष्ट्रका वह सारा व्यवहार-बर्ताव, जो वे पाण्डवोंके साथ करते थे, कह सुनाया, क्योंकि उनको हस्तिनापुर भेजनेका वास्तवमें उद्देश्य भी यही था ॥ ३१ ॥

इति दशम स्कन्ध पूर्वार्ध समाप्त

हरिः ॐ तत्सत्

श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

श्रीमद्भागवतमहापुराण

दशम स्कन्ध

(उत्तरार्ध)

रुन्धानोऽरिगतिं वार्धिद्वारा द्वारावतीं गतः ।
कृतदारोऽच्युतो दद्यात् सौमनस्यं मनस्सलम् ॥

शूरशिरोमणि श्रीकृष्ण

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीमद्भागवतमहापुराण

दशम स्कन्ध

(उत्तरार्ध)

पचासवाँ अध्याय

जरासन्धसे युद्ध और द्वारकापुरीका निर्माण

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—भरतवंशशिरोमणि परीक्षित्! कंसकी दो रानियाँ थीं—अस्ति और प्राप्ति। पतिकी मृत्युसे उन्हें बड़ा दुःख हुआ और वे अपने पिताकी राजधानीमें चली गयीं ॥ १ ॥ उन दोनोंका पिता था मगधराज जरासन्ध। उससे उन्होंने बड़े दुःखके साथ अपने विधवा होनेके कारणोंका वर्णन किया ॥ २ ॥ परीक्षित्! यह अप्रिय समाचार सुनकर पहले तो जरासन्धको बड़ा शोक हुआ, परन्तु पीछे वह क्रोधसे तिलमिला उठा। उसने यह निश्चय करके कि, मैं पृथ्वीपर एक भी यदुवंशी नहीं रहने दूँगा, युद्धकी बहुत बड़ी तैयारी की ॥ ३ ॥ और तेईस अक्षौहिणी सेनाके साथ यदुवंशियोंकी राजधानी मथुराको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ४ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने देखा—जरासन्धकी सेना क्या है, उमड़ता हुआ समुद्र है। उन्होंने यह भी देखा कि उसने चारों ओरसे हमारी राजधानी घेर ली है और हमारे स्वजन तथा पुरवासी भयभीत हो रहे हैं ॥ ५ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण पृथ्वीका भार उतारनेके लिये ही मनुष्य-का-सा वेष धारण किये हुए हैं। अब उन्होंने विचार किया कि मेरे अवतारका क्या प्रयोजन है और इस समय इस स्थानपर मुझे क्या करना चाहिये ॥ ६ ॥ उन्होंने सोचा यह बड़ा अच्छा हुआ कि मगधराज जरासन्धने अपने अधीनस्थ नरपतियोंकी पैदल, घुड़सवार, रथी और हाथियोंसे युक्त कई अक्षौहिणी सेना इकट्ठी कर ली है। यह सब तो पृथ्वीका भार ही जुटकर मेरे पास आ पहुँचा है। मैं इसका नाश करूँगा। परन्तु अभी मगधराज जरासन्धको नहीं मारना चाहिये। क्योंकि वह जीवित रहेगा तो फिरसे असुरोंकी बहुत-सी सेना इकट्ठी कर लायेगा ॥ ७-८ ॥ मेरे अवतारका यही प्रयोजन है कि मैं पृथ्वीका बोझ हल्का कर दूँ, साधु-सज्जनोंकी रक्षा करूँ और दुष्ट-दुर्जनोंका संहार ॥ ९ ॥ समय-समयपर धर्म-रक्षाके लिये और बढ़ते हुए अधर्मको रोकनेके लिये मैं और भी अनेकों शरीर ग्रहण करता हूँ ॥ १० ॥

परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण इस प्रकार विचार कर ही रहे थे कि आकाशसे सूर्यके समान चमकते हुए दो रथ आ पहुँचे। उनमें युद्धकी सारी सामग्रियाँ सुसज्जित थीं और दो सारथी उन्हें हाँक रहे थे ॥ ११ ॥ इसी समय भगवान्‌के दिव्य और सनातन आयुध भी अपने-आप वहाँ आकर उपस्थित हो गये। उन्हें देखकर भगवान् श्रीकृष्णने अपने बड़े भाई बलरामजीसे कहा—॥ १२ ॥ 'भाईजी! आप बड़े शक्तिशाली हैं! इस समय जो यदुवंशी आपको ही अपना स्वामी और रक्षक मानते हैं, जो आपसे ही सनाथ हैं, उनपर बहुत बड़ी विपत्ति आ पड़ी है। देखिये, यह आपका रथ है और आपके प्यारे आयुध हल-मूसल भी आ पहुँचे है ॥ १३ ॥ अब आप इस रथपर सवार होकर शत्रु-सेनाका संहार कीजिये और अपने स्वजनोंको इस विपत्तिसे बचाइये। भगवन्! साधुओंका कल्याण करनेके लिये ही हम दोनोंने अवतार ग्रहण किया है ॥ १४ ॥ अतः अब आप यह तेईस अक्षौहिणी सेना, पृथ्वीका यह विपुल भार नष्ट कीजिये।' भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीने

यह सन्नाह करके कवच धारण किये और रथपर सवार होकर वे मथुरासे निकले। उस समय दोनों भाई अपने-अपने आयुध लिये हुए थे और छोटी-सी सेना उनके साथ-साथ चल रही थी। श्रीकृष्णका रथ हाँक रहा था दारुक। पुरीसे बाहर निकलकर उन्होंने अपना पाञ्चजन्य शङ्ख बजाया ॥ १५-१६ ॥ उनके शङ्खकी भयङ्कर ध्वनि सुनकर शत्रुपक्षकी सेनाके वीरोंका हृदय डरके मारे थर्रा उठा। उन्हें देखकर मगधराज जरासन्धने कहा—'पुरुषाधम कृष्ण! तू तो अभी निरा बच्चा है। अकेले तेरे साथ लड़नेमे मुझे लाज लग रही है। इतने दिनोंतक तू न जाने कहाँ-कहाँ छिपा फिरता था। और मन्द! तू तो अपने मामाका हत्यारा है। इसलिये मैं तेरे साथ नहीं लड़ सकता। जा, मेरे सामनेसे भाग जा ॥ १७-१८ ॥ बलराम! यदि तेरे चित्तमे यह श्रद्धा हो कि युद्धमें मरनेपर स्वर्ग मिलता है तो तू आ, हिम्मत बाँधकर मुझसे लड़। मेरे बाणोंसे छिन्न-भिन्न हुए शरीरको यहाँ छोड़कर स्वर्गमें जा, अथवा यदि तुझमें शक्ति हो तो मुझे ही मार डाल' ॥ १९ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—मगधराज! जो शूरवीर होते हैं, वे तुम्हारी तरह डींग नहीं हाँकते, वे तो अपना बल-पौरुष ही दिखलाते है। देखो, अब तुम्हारी मृत्यु तुम्हारे सिरपर नाच रही है। तुम वैसे ही अकबक कर रहे हो, जैसे मरनेके समय कोई सन्निपातका रोगी करे। बक लो, मैं तुम्हारी बातपर ध्यान नहीं देता ॥ २० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जैसे वायु बादलोंसे सूर्यको और धुएँसे आगको ढक लेती है, किन्तु वास्तवमे वे ढकते नहीं, उनका प्रकाश फिर फैलता ही है; वैसे ही मगधराज जरासन्धने भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामके सामने आकर अपनी बहुत बड़ी बलवान् और अपार सेनाके द्वारा उन्हें चारों ओरसे घेर लिया—यहाँतक कि उनकी सेना, रथ, ध्वजा, घोड़ों और सारथियोंका दीखना भी बंद हो गया ॥ २१ ॥ मथुरापुरीकी स्त्रियाँ अपने महलोंकी अटारियों, छज्जों और फाटकोंपर चढ़कर युद्धका कौतुक देख रही थीं। जब उन्होंने देखा कि युद्धभूमिमें भगवान् श्रीकृष्णकी गरुडचिह्नसे चिह्नित और बलरामजीकी तालचिह्नसे चिह्नित ध्वजावाले रथ नहीं दीख रहे हैं तब वे शोकके आवेगसे मूर्छित हो गयीं ॥ २२ ॥ जब भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि शत्रु-सेनाके वीर हमारी सेनापर इस प्रकार बाणोंकी वर्षा कर रहे हैं, मानो बादल पानीकी अनगिनत बूँदे बरसा रहे हों और हमारी सेना उससे अत्यन्त पीड़ित, व्यथित हो रही है; तब उन्होंने अपने देवता और असुर—दोनोंसे सम्मानित शार्ङ्गधनुषका टङ्कार किया ॥ २३ ॥ इसके बाद वे तरकसमेंसे बाण निकालने, उन्हें धनुषपर चढ़ाने और धनुषकी डोरी खींचकर झुंड-के-झुंड बाण छोड़ने लगे। उस समय उनका वह धनुष इतनी फुर्तीसे घूम रहा था, मानो कोई बड़े वेगसे अलातचक्र (लुकारी) घुमा रहा हो। इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण जरासन्धकी चतुरङ्गिणी—हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सेनाका संहार करने लगे ॥ २४ ॥ इससे बहुत-से हाथियोंके सिर फट गये और वे मर-मरकर गिरने लगे। बाणोंकी बौछारसे अनेकों घोड़ोंके सिर धड़से अलग हो गये। घोड़े, ध्वजा, सारथि और रथियोंके नष्ट हो जानेसे बहुत-से रथ बेकाम हो गये। पैदल सेनाकी बाँहें, जाँघ और सिर आदि अङ्ग-प्रत्यङ्ग कट-कटकर गिर पड़े ॥ २५ ॥ उस युद्धमें अपार तेजस्वी भगवान् बलरामजीने अपने मूसलकी चोटसे बहुत-से मतवाले शत्रुओंको मार-मारकर उनके अङ्ग-प्रत्यङ्गसे निकले हुए खूनकी सैकड़ों नदियाँ बहा दीं। कहीं मनुष्य कट रहे हैं तो कहीं हाथी और घोड़े छटपटा रहे हैं। उन नदियोंमें मनुष्योंकी भुजाएँ साँपके समान जान पड़तीं और सिर इस प्रकार मालूम पड़ते, मानो कछुओंकी भीड़ लग गयी हो। मरे हुए हाथी द्वीप-जैसे और घोड़े ग्राहोंके समान जान पड़ते। हाथ और जाँघें मछलियोंकी तरह, मनुष्योंके केश सेवारके समान, धनुष तरङ्गोंकी भाँति और अस्त्र-शस्त्र लता एवं तिनकोंके समान जान पड़ते। ढालें ऐसी मालूम पड़तीं, मानो भयानक भँवर हों। बहुमूल्य मणियाँ और आभूषण पत्थरके रोड़ों तथा कंकड़ोंके समान बहे जा रहे थे। उन नदियोंको देखकर कायर पुरुष डर रहे थे और वीरोंका आपसमें खूब उत्साह बढ़ रहा था ॥ २६—२८ ॥ परीक्षित्! जरासन्धकी वह सेना समुद्रके समान दुर्गम, भयावह और बड़ी कठिनाईसे जीतने योग्य थी। परन्तु भगवान् श्रीकृष्ण

और बलरामजीने थोड़े ही समयमें उसे नष्ट कर डाला। वे सारे जगत्के स्वामी हैं। उनके लिये एक सेनाका नाश कर देना केवल खिलवाड़ ही तो है॥ २९॥ परीक्षित्! भगवान्के गुण अनन्त हैं। वे खेल-खेलमें ही तीनों लोकोंकी उत्पत्ति, स्थिति और संहार करते हैं। उनके लिये यह कोई बड़ी बात नहीं है कि वे शत्रुओंकी सेनाका इस प्रकार बात-की-बातमें सत्यानाश कर दें। तथापि जब वे मनुष्यका-सा वेष धारण करके मनुष्यकी-सी लीला करते हैं, तब उसका भी वर्णन किया ही जाता है॥ ३०॥

इस प्रकार जरासन्धकी सारी सेना मारी गयी। रथ भी टूट गया। शरीरमें केवल प्राण बाकी रहे। तब भगवान् श्रीबलरामजीने जैसे एक सिंह दूसरे सिंहको पकड़ लेता है, वैसे ही बलपूर्वक महाबली जरासन्धको पकड़ लिया॥ ३१॥ जरासन्धने पहले बहुतसे विपक्षी नरपतियोंका वध किया था, परन्तु आज उसे बलरामजी वरुणकी फाँसी और मनुष्योंके फंदेसे बाँध रहे थे। भगवान् श्रीकृष्णने यह सोचकर कि यह छोड़ दिया जायगा तो और भी सेना इकट्ठी करके लायेगा तथा हम सहज ही पृथ्वीका भार उतार सकेंगे, बलरामजीको रोक दिया॥ ३२॥ बड़े-बड़े शूरवीर जरासन्धका सम्मान करते थे। इसलिये उसे इस बातपर बड़ी लज्जा मालूम हुई कि मुझे श्रीकृष्ण और बलरामने दया करके दीनकी भाँति छोड़ दिया है! अब उसने तपस्या करनेका निश्चय किया। परन्तु रास्तेमें उसके साथी नरपतियोंने बहुत समझाया कि 'राजन्! यदुवंशियोंमें क्या रक्खा है? वे आपको बिल्कुल ही पराजित नहीं कर सकते थे। आपको प्रारब्धवश ही नीचा देखना पड़ा है।' उन लोगोंने भगवान्की इच्छा, फिर विजय प्राप्त करनेकी आशा आदि बतलाकर तथा लौकिक दृष्टान्त एवं युक्तियाँ दे-देकर यह बात समझा दी कि आपको तपस्या नहीं करनी चाहिये॥ ३३-३४॥ परीक्षित्! उस समय मगधराज जरासन्धकी सारी सेना मर चुकी थी। भगवान् बलरामजीने उपेक्षापूर्वक उसे छोड़ दिया था। इससे वह बहुत उदास होकर अपने देश मगधको चला गया॥ ३५॥

परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णकी सेनामें किसीका बाल भी बाँका न हुआ और उन्होंने जरासन्धकी तेईस अक्षौहिणी सेनापर, जो समुद्रके समान थी, सहज ही विजय प्राप्त कर ली। उस समय बड़े-बड़े देवता उनपर नन्दनवनके पुष्पोंकी वर्षा और उनके इस महान् कार्यका अनुमोदन—प्रशंसा कर रहे थे॥ ३६॥ जरासन्धकी सेनाके पराजयसे मथुरावासी भयरहित हो गये थे और भगवान् श्रीकृष्णकी विजयसे उनका हृदय आनन्दसे भर रहा था। भगवान् श्रीकृष्ण आकर उनमें मिल गये। सूत, मागध और वन्दीजन उनकी विजयके गीत गा रहे थे॥ ३७॥ जिस समय भगवान् श्रीकृष्णने नगरमें प्रवेश किया, उस समय वहाँ शङ्ख, नगारे, भेरी, तुरही, वीणा, बाँसुरी और मृदङ्ग आदि बाजे बजने लगे थे॥ ३८॥ मथुराकी एक-एक सड़क और गलीमें छिड़काव कर दिया गया था। चारों ओर हँसते-खेलते नागरिकोंकी चहल-पहल थी। सारा नगर छोटी-छोटी झंडियों और बड़ी बड़ी विजय-पताकाओंसे सजा दिया गया था। ब्राह्मणोंकी वेदध्वनि गूँज रही थी और सब ओर आनन्दोत्सवके सूचक बंदनवार बाँध दिये गये थे॥ ३९॥ जिस समय श्रीकृष्ण नगरमें प्रवेश कर रहे थे, उस समय नगरकी नारियाँ प्रेम और उत्कण्ठासे भरे हुए नेत्रोंसे उन्हें स्नेहपूर्वक निहार रही थीं और फूलोंके हार, दही, अक्षत और जौ आदिके अङ्कुरोंकी उनके ऊपर वर्षा कर रही थीं॥ ४०॥ भगवान् श्रीकृष्ण रणभूमिसे अपार धन और वीरोंके आभूषण ले आये थे। वह सब उन्होंने यदुवंशियोंके राजा उग्रसेनके पास भेज दिया॥ ४१॥

परीक्षित्! इस प्रकार सत्रह बार तेईस-तेईस अक्षौहिणी सेना इकट्ठी करके मगधराज जरासन्धने भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा सुरक्षित यदुवंशियोंसे युद्ध किया॥ ४२॥ किन्तु यादवोंने भगवान् श्रीकृष्णकी शक्तिसे हर बार उसकी सारी सेना नष्ट कर दी। जब सारी सेना नष्ट हो जाती, तब यदुवंशियोंके उपेक्षापूर्वक छोड़ देनेपर जरासन्ध अपनी राजधानीमें लौट जाता॥ ४३॥ जिस समय अठारहवाँ संग्राम छिड़नेहीवाला था, उसी समय नारदजीका भेजा हुआ वीर कालयवन दिखायी पड़ा॥ ४४॥

युद्धमें कालयवनके सामने खड़ा होनेवाला वीर संसारमें दूसरा कोई न था। उसने जब यह सुना कि यदुवंशी हमारे ही-जैसे बलवान् हैं और हमारा सामना कर सकते हैं, तब तीन करोड़ म्लेच्छोंकी सेना लेकर उसने मथुराको घेर लिया ॥ ४५ ॥

कालयवनकी यह असमय चढ़ाई देखकर भगवान् श्रीकृष्णने बलरामजीके साथ मिलकर विचार किया—'अहो! इस समय तो यदुवंशियोंपर जरासन्ध और कालयवन—ये दो-दो विपत्तियाँ एक साथ ही मँडरा रही हैं ॥ ४६ ॥ आज इस परम बलशाली यवनने हमें आकर घेर लिया है और जरासन्ध भी आज, कल या परसोंमें आ ही जायगा ॥ ४७ ॥ यदि हम दोनों भाई इसके साथ लड़नेमें लग गये और उसी समय जरासन्ध आ पहुँचा, तो वह हमारे बन्धुओंको मार डालेगा या तो कैद करके अपने नगरमें ले जायगा। क्योंकि वह बहुत बलवान् है ॥ ४८ ॥ इसलिये आज हमलोग एक ऐसा दुर्ग—ऐसा किला बनायेंगे; जिसमें किसी भी मनुष्यका प्रवेश करना अत्यन्त कठिन होगा। अपने स्वजन-सम्बन्धियोंको उसी किलेमें पहुँचाकर फिर इस यवनका वध करायेंगे' ॥ ४९ ॥ बलरामजीसे इस प्रकार सलाह करके भगवान् श्रीकृष्णने समुद्रके भीतर एक ऐसा दुर्गम नगर बनवाया, जिसमें सभी वस्तुएँ अद्भुत थीं और उस नगरकी लंबाई-चौड़ाई अड़तालीस कोसकी थी ॥ ५० ॥ उस नगरकी एक-एक वस्तुमें विश्वकर्माका विज्ञान (वास्तुविज्ञान) और शिल्पकलाकी निपुणता प्रकट होती थी। उसमें वास्तुशास्त्रके अनुसार बड़ी-बड़ी सड़कों, चौराहों और गलियोंका यथास्थान ठीक-ठीक विभाजन किया गया था ॥ ५१ ॥ वह नगर ऐसे सुन्दर-सुन्दर उद्यानों और विचित्र-विचित्र उपवनोंसे युक्त था, जिनमें देवताओंके वृक्ष और लताएँ लहलहाती रहती थीं। सोनेके इतने ऊँचे-ऊँचे शिखर थे, जो आकाशसे बातें करते थे। स्फटिकमणिकी अटारियाँ और ऊँचे-ऊँचे दरवाजे बड़े ही सुन्दर लगते थे ॥५२॥ अन्न रखनेके लिये चाँदी और पीतलके बहुत-से कोठे बने हुए थे। वहाँके महल सोनेके बने हुए थे और उनपर कामदार सोनेके कलश सजे हुए थे। उनके शिखर रत्नोंके थे तथा गच पन्नेकी बनी हुई बहुत भली मालूम होती थी ॥ ५३ ॥ इसके अतिरिक्त उस नगरमें वास्तुदेवताके मन्दिर और छज्जे भी बहुत सुन्दर-सुन्दर बने हुए थे। उसमें चारों वर्णके लोग निवास करते थे और सबके बीचमें यदुवंशियोंके प्रधान उग्रसेनजी, वसुदेवजी, बलरामजी तथा भगवान् श्रीकृष्णके महल जगमगा रहे थे ॥ ५४ ॥ परीक्षित्! उस समय देवराज इन्द्रने भगवान् श्रीकृष्णके लिये पारिजात वृक्ष और सुधर्मा-सभाको भेज दिया। वह सभा ऐसी दिव्य थी कि उसमें बैठे हुए मनुष्यको भूख-प्यास आदि मर्त्यलोकके धर्म नहीं छू पाते थे ॥ ५५ ॥ वरुणजीने ऐसे बहुत-से श्वेत घोड़े भेज दिये, जिनका एक-एक कान श्याम-वर्णका था, और जिनकी चाल मनके समान तेज थी। धनपति कुबेरजीने अपनी आठों निधियाँ भेज दीं और दूसरे लोकपालोंने भी अपनी-अपनी विभूतियाँ भगवान्‌के पास भेज दीं ॥ ५६ ॥ परीक्षित्! सभी लोकपालोंको भगवान् श्रीकृष्णने ही उनके अधिकारके निर्वाहके लिये शक्तियाँ और सिद्धियाँ दी हैं। जब भगवान् श्रीकृष्ण पृथ्वीपर अवतीर्ण होकर लीला करने लगे, तब सभी सिद्धियाँ उन्होंने भगवान्‌के चरणोंमें समर्पित कर दीं ॥ ५७ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने अपने समस्त स्वजन-सम्बन्धियोंको अपनी अचिन्त्य महाशक्ति योगमायाके द्वारा द्वारकामें पहुँचा दिया। शेष प्रजाकी रक्षाके लिये बलरामजीको मथुरापुरीमें रख दिया और उनसे सलाह लेकर गलेमें कमलोंकी माला पहने, बिना कोई अस्त्र-शस्त्र लिये स्वयं नगरके बड़े दरवाजेसे बाहर निकल आये ॥ ५८ ॥

इक्यावनवाँ अध्याय

कालयवनका भस्म होना, मुचुकुन्दकी कथा

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—प्रिय परीक्षित्! जिस समय भगवान् श्रीकृष्ण मथुरा नगरके मुख्य द्वारसे निकले, उस समय ऐसा मालूम पड़ा, मानो पूर्व दिशासे चन्द्रोदय हो रहा हो। उनका श्यामल शरीर अत्यन्त

ही दर्शनीय था, उसपर रेशमी पीताम्बरकी छटा निराली ही थी; वक्षःस्थलपर स्वर्णरेखाके रूपमें श्रीवत्स-चिह्न शोभा पा रहा था और गलेमें कौस्तुभमणि जगमगा रही थी। चार भुजाएँ थीं, जो लंबी-लंबी और कुछ मोटी-मोटी थीं। हालके खिले हुए कमलके समान कोमल और रतनारे नेत्र थे। मुखकमलपर राशि-राशि आनन्द खेल रहा था। कपोलोंकी छटा निराली ही थी। मन्द-मन्द मुसकान देखनेवालोंका मन चुराये लेती थी। कानोंमें मकराकृत कुण्डल झिलमिल-झिलमिल झलक रहे थे। उन्हें देखकर कालयवनने निश्चय किया कि 'यही पुरुष वासुदेव है। क्योंकि नारदजीने जो-जो लक्षण बतलाये थे—वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न, चार भुजाएँ, कमलके-से नेत्र, गलेमें वनमाला और सुन्दरताकी सीमा; वे सब इसमें मिल रहे हैं। इसलिये यह कोई दूसरा नहीं हो सकता। इस समय यह बिना किसी अस्त्र-शस्त्रके पैदल ही इस ओर चला आ रहा है, इसलिये मैं भी इसके साथ बिना अस्त्र-शस्त्रके ही लड़ूँगा' ॥ १—५ ॥

ऐसा निश्चय करके जब कालयवन भगवान् श्रीकृष्णकी ओर दौड़ा, तब वे दूसरी ओर मुँह करके रणभूमिसे भाग चले और उन योगिदुर्लभ प्रभुको पकड़नेके लिये कालयवन उनके पीछे-पीछे दौड़ने लगा ॥ ६ ॥ रणछोड़ भगवान् लीला करते हुए भग रहे थे; कालयवन पग-पगपर यही समझता था कि अब पकड़ा, तब पकड़ा। इस प्रकार भगवान् उसे बहुत दूर एक पहाड़की गुफामें ले गये ॥ ७ ॥ कालयवन पीछेसे बार-बार आक्षेप करता कि 'अरे भाई! तुम परम यशस्वी यदुवंशमें पैदा हुए हो, तुम्हारा इस प्रकार युद्ध छोड़कर भागना उचित नहीं है।' परन्तु अभी उसके अशुभ निःशेष नहीं हुए थे, इसलिये वह भगवान्को पानेमें समर्थ न हो सका ॥ ८ ॥ उसके आक्षेप करते रहनेपर भी भगवान् उस पर्वतकी गुफामें घुस गये। उनके पीछे कालयवन भी घुसा। वहाँ उसने एक दूसरे ही मनुष्यको सोते हुए देखा ॥९॥ उसे देखकर कालयवनने सोचा 'देखो तो सही, यह मुझे इस प्रकार इतनी दूर ले आया और अब इस तरह—मानो इसे कुछ पता ही न हो—साधुबाबा बनकर सो रहा है।' यह सोचकर उस मूढ़ने उसे कसकर एक लात मारी ॥ १० ॥ वह पुरुष वहाँ बहुत दिनोंसे सोया हुआ था। पैरकी ठोकर लगनेसे वह उठ पड़ा और धीरे-धीरे उसने अपनी आँखें खोलीं। इधर-उधर देखनेपर पास ही कालयवन खड़ा हुआ दिखायी दिया ॥ ११ ॥ परीक्षित्! वह पुरुष इस प्रकार ठोकर मारकर जगाये जानेसे कुछ रुष्ट हो गया था। उसकी दृष्टि पड़ते ही कालयवनके शरीरमें आग पैदा हो गयी और वह क्षणभरमें जलकर राखका ढेर हो गया ॥ १२ ॥

राजा परीक्षित्ने पूछा—भगवन्! जिसके दृष्टि-पातमात्रसे कालयवन जलकर भस्म हो गया, वह पुरुष कौन था? किस वंशका था? उसमें कैसी शक्ति थी और वह किसका पुत्र था? आप कृपा करके यह भी बतलाइये कि वह पर्वतकी गुफामें जाकर क्यों सो रहा था? ॥ १३ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! वे इक्ष्वाकु-वंशी महाराजा मान्धाताके पुत्र राजा मुचुकुन्द थे। वे ब्राह्मणोंके परम भक्त, सत्यप्रतिज्ञ, संग्रामविजयी और महापुरुष थे ॥ १४ ॥ एक बार इन्द्रादि देवता असुरोंसे अत्यन्त भयभीत हो गये थे। उन्होंने अपनी रक्षाके लिये राजा मुचुकुन्दसे प्रार्थना की और उन्होंने बहुत दिनोंतक उनकी रक्षा की ॥ १५ ॥ जब बहुत दिनोंके बाद देवताओंको सेनापतिके रूपमें स्वामिकार्तिकेय मिल गये, तब उन लोगोंने राजा मुचुकुन्दसे कहा—'राजन्! आपने हमलोगोंकी रक्षाके लिये बहुत श्रम और कष्ट उठाया है। अब आप विश्राम कीजिये ॥ १६ ॥ वीर-शिरोमणे! आपने हमारी रक्षाके लिये मनुष्यलोकका अपना अकण्टक राज्य छोड़ दिया और जीवनकी अभिलाषाएँ तथा भोगोंका भी परित्याग कर दिया ॥ १७ ॥ अब आपके पुत्र, रानियाँ, बन्धु-बान्धव और अमात्य-मन्त्री तथा आपके समयकी प्रजामेंसे कोई नहीं रहा है। सब-के-सब कालके गालमें चले गये ॥ १८ ॥ काल समस्त बलवानोंसे भी बलवान् है। वह स्वयं परम समर्थ अविनाशी और भगवत्स्वरूप है। जैसे ग्वाले पशुओंको अपने वशमें रखते हैं, वैसे ही वह खेल-खेलमें सारी प्रजाको अपने अधीन रखता है ॥ १९ ॥ राजन्! आपका कल्याण हो। आपकी जो इच्छा हो हमसे माँग लीजिये। हम कैवल्य-मोक्षके अतिरिक्त आपको सब

कुछ दे सकते है। क्योंकि कैवल्य-मोक्ष देनेकी सामर्थ्य तो केवल अविनाशी भगवान् विष्णुमें ही है ॥ २० ॥ परम यशस्वी राजा मुचुकुन्दने देवताओंके इस प्रकार कहनेपर उनकी वन्दना की और बहुत थके होनेके कारण निद्राका ही वर माँगा, तथा उनसे वर पाकर वे नींदसे भरकर पर्वतकी गुफामे जा सोये ॥ २१ ॥ उस समय देवताओंने कह दिया था कि 'राजन्! सोते समय यदि आपको कोई मूर्ख बीचमें ही जगा देगा, तो वह आपकी दृष्टि पड़ते ही उसी क्षण भस्म हो जायगा' ॥ २२ ॥

परीक्षित्! जब कालयवन भस्म हो गया, तब यदुवंशशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्णने परम बुद्धिमान् राजा मुचुकुन्दको अपना दर्शन दिया। भगवान् श्रीकृष्णका श्रीविग्रह वर्षाकालीन मेघके समान साँवला था। रेशमी पीताम्बर धारण किये हुए थे। वक्षःस्थलपर श्रीवत्स और गलेमें कौस्तुभमणि अपनी दिव्य ज्योति बिखेर रहे थे। चार भुजाएँ थीं। वैजयन्ती माला अलग ही घुटनोंतक लटक रही थी। मुखकमल अत्यन्त सुन्दर और प्रसन्नतासे खिला हुआ था। कानोंमे मकराकृत कुण्डल जगमगा रहे थे। होठोंपर प्रेमभरी मुसकराहट थी और नेत्रोंकी चितवन अनुरागकी वर्षा कर रही थी। अत्यन्त दर्शनीय तरुण अवस्था और मतवाले सिंहके समान निर्भीक चाल! राजा मुचुकुन्द यद्यपि बड़े बुद्धिमान् और धीर पुरुष थे, फिर भी भगवान्की यह दिव्य ज्योतिर्मयी मूर्ति देखकर कुछ चकित हो गये—उनके तेजसे हतप्रतिम हो सकपका गये। भगवान् अपने तेजसे दुर्द्धर्ष जान पड़ते थे; राजाने तनिक शङ्कित होकर पूछा ॥ २३—२७॥

राजा मुचुकुन्दने कहा—'आप कौन हैं? इस काँटोंसे भरे हुए घोर जंगलमे आप कमलके समान कोमल चरणोंसे क्यों विचर रहे हैं? और इस पर्वतकी गुफामें ही पधारनेका क्या प्रयोजन था? ॥ २८ ॥ क्या आप समस्त तेजस्वियोंके मूर्तिमान् तेज अथवा भगवान् अग्निदेव तो नही है? क्या आप सूर्य, चन्द्रमा, देवराज इन्द्र या कोई दूसरे लोकपाल हैं? ॥ २९ ॥ मैं तो ऐसा समझता हूँ कि आप देवताओंके आराध्यदेव ब्रह्मा, विष्णु तथा शङ्कर—इन तीनोंमेंसे पुरुषोत्तम भगवान् नारायण-ही हैं। क्योंकि जैसे श्रेष्ठ दीपक अँधेरेको दूर कर देता है, वैसे ही आप अपनी अङ्गकान्तिसे इस गुफाका अँधेरा भगा रहे हैं ॥ ३० ॥ पुरुषश्रेष्ठ! यदि आपको रुचे तो हमें अपना जन्म, कर्म और गोत्र बतलाइये; क्योंकि हम सच्चे हृदयसे उसे सुननेके इच्छुक है ॥ ३१ ॥ और पुरुषोत्तम! यदि आप हमारे बारेमें पूछें तो हम इक्ष्वाकुवंशी क्षत्रिय हैं, मेरा नाम है मुचुकुन्द। और प्रभु! मैं युवनाश्वनन्दन महाराज मान्धाताका पुत्र हूँ ॥ ३२ ॥ बहुत दिनोंतक जागते रहनेके कारण मैं थक गया था। निद्राने मेरी समस्त इन्द्रियोंकी शक्ति छीन ली थी, उन्हें बेकाम कर दिया था, इसीसे मैं इस निर्जन स्थानमें निर्द्वन्द्व सो रहा था। अभी-अभी किसीने मुझे जगा दिया ॥ ३३ ॥ अवश्य उसके पापोंने ही उसे जलाकर भस्म कर दिया है। इसके बाद शत्रुओंके नाश करनेवाले परम सुन्दर आपने मुझे दर्शन दिया ॥ ३४ ॥ महाभाग! आप समस्त प्राणियोंके माननीय हैं। आपके परम दिव्य और असह्य तेजसे मेरी शक्ति खो गयी है। मैं आपको बहुत देरतक देख भी नहीं सकता ॥३५॥ जब राजा मुचुकुन्दने इस प्रकार कहा, तब समस्त प्राणियोंके जीवनदाता भगवान् श्रीकृष्णने हँसते हुए मेघध्वनिके समान गम्भीर वाणीसे कहा—॥ ३६ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—प्रिय मुचुकुन्द! मेरे हजारो जन्म, कर्म और नाम है। वे अनन्त हैं, इसलिये मैं भी उनकी गिनती करके नहीं बतला सकता ॥३७॥ यह सम्भव है कि कोई पुरुष अपने अनेक जन्मोंमे पृथ्वीके छोटे-छोटे धूल-कणोंकी गिनती कर डाले; परन्तु मेरे जन्म, गुण, कर्म और नामोंको कोई कभी किसी प्रकार नहीं गिन सकता ॥ ३८ ॥ राजन्! सनक-सनन्दन आदि परमर्षिगण मेरे त्रिकालसिद्ध जन्म और कर्मोंका वर्णन करते रहते है, परन्तु कभी उनका पार नही पाते ॥ ३९ ॥ प्रिय मुचुकुन्द! ऐसा होनेपर भी मैं अपने वर्तमान जन्म, कर्म और नामोंका वर्णन करता हूँ, सुनो। पहले ब्रह्माजीने मुझसे धर्मकी रक्षा और पृथ्वीके भार बने हुए असुरोंका संहार करनेके लिये प्रार्थना की थी ॥ ४० ॥ उन्हींकी प्रार्थनासे मैने यदुवंशमे वसुदेवजीके यहाँ अवतार ग्रहण किया है। अब मैं वसुदेवजीका पुत्र हूँ, इसलिये लोग मुझे 'वासुदेव' कहते हैं ॥ ४१ ॥ अबतक मै कालनेमि असुरका, जो कंसके रूपमें पैदा हुआ था, तथा प्रलम्ब आदि अनेकों साधु-

द्रोही असुरोंका संहार कर चुका हूँ । राजन् ! यह कालयवन था, जो मेरी ही प्रेरणासे तुम्हारी तीक्ष्ण दृष्टि पड़ते ही भस्म हो गया ॥ ४२ ॥ वही मैं तुमपर कृपा करनेके लिये ही इस गुफामें आया हूँ । तुमने पहले मेरी बहुत आराधना की है और मैं हूँ भक्तवत्सल ॥४३॥ इसलिये राजर्षे ! तुम्हारी जो अभिलाषा हो, मुझसे माँग लो । मैं तुम्हारी सारी लालसा, अभिलाषाएँ पूर्ण कर दूँगा । जो पुरुष मेरी शरणमें आ जाता है उसके लिये फिर ऐसी कोई वस्तु नहीं रह जाती, जिसके लिये वह शोक करे ॥ ४४ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—जब भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार कहा, तब राजा मुचुकुन्दको वृद्ध गर्गका यह कथन याद आ गया कि यदुवंशमे भगवान् अवतीर्ण होनेवाले हैं । वे जान गये कि ये स्वयं भगवान् नारायण हैं । आनन्दसे भरकर उन्होंने भगवान्‌के चरणोंमें प्रणाम किया और इस प्रकार स्तुति की ॥ ४५ ॥

मुचुकुन्दने कहा—प्रभो ! जगत्‌के सभी प्राणी आपकी मायासे अत्यन्त मोहित हो रहे हैं । वे आपसे विमुख होकर अनर्थमें ही फँसे रहते हैं और आपका भजन नहीं करते । वे सुखके लिये घर-गृहस्थीके उन झंझटोंमें फँस जाते हैं, जो सारे दुःखोंके मूल स्रोत हैं । इस तरह स्त्री और पुरुष सभी ठगे जा रहे हैं ॥ ४६ ॥ इस पापरूप संसारसे सर्वथा रहित प्रभो ! यह भूमि अत्यन्त पवित्र कर्मभूमि है, इसमें मनुष्यका जन्म होना अत्यन्त दुर्लभ है । मनुष्य-जीवन इतना पूर्ण है कि उसमें भजनके लिये कोई भी असुविधा नहीं है । अपने परम सौभाग्य और भगवान्‌की अहैतुक कृपासे उसे अनायास ही प्राप्त करके भी जो अपनी मति, गति असत् संसारमें ही लगा देते है और तुच्छ विषयसुखके लिये ही सारा प्रयत्न करते हुए घर-गृहस्थीके अँधेरे कूएँमें पडे रहते हैं—भगवान्‌के चरणकमलोंकी उपासना नहीं करते, भजन नहीं करते, वे तो ठीक उस पशुके समान हैं, जो तुच्छ तृणके लोभसे अँधेरे कूएँमे गिर जाता है ॥ ४७ ॥ भगवन् ! मैं राजा था, राज्यलक्ष्मीके मदसे मैं मतवाला हो रहा था । इस मरनेवाले शरीरको ही तो मैं आत्मा—अपना स्वरूप समझ रहा था और राजकुमार, रानी, खजाना तथा पृथ्वीके लोभ-मोहमें ही फँसा हुआ था । उन वस्तुओंकी चिन्ता दिन रात मेरे गले लगी रहती थी । इस प्रकार मेरे जीवनका यह अमूल्य समय बिल्कुल निष्फल—व्यर्थ चला गया ॥४८॥ जो शरीर प्रत्यक्ष ही घड़े और भीतके समान मिट्टीका है और दृश्य होनेके कारण उन्हींके समान अपनेसे अलग भी है, उसीको मैंने अपना स्वरूप मान लिया था और फिर अपनेको मान बैठा था । 'नरदेव !' इस प्रकार मैंने मदान्ध होकर आपको तो कुछ समझा ही नहीं । रथ, हाथी, घोड़े और पैदलकी चतुरङ्गिणी सेना तथा सेनापतियोंसे घिरकर मै पृथ्वीमे इधर-उधर घूमता रहता ॥ ४९ ॥ मुझे यह करना चाहिये और यह नहीं करना चाहिये, इस प्रकार विविध कर्तव्य और अकर्तव्यों-की चिन्तामें पड़कर मनुष्य अपने एकमात्र कर्तव्य भगवत्प्राप्तिसे विमुख होकर प्रमत्त हो जाता है, असावधान हो जाता है । संसारमें बाँध रखनेवाले विषयोंके लिये उसकी लालसा दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ती ही जाती है । परन्तु जैसे भूखके कारण जीभ लपलपाता हुआ साँप असावधान चूहेको दबोच लेता है, वैसे ही कालरूपसे सदा-सर्वदा सावधान रहनेवाले आप एकाएक उस प्रमादग्रस्त प्राणीपर टूट पड़ते हैं और उसे ले बीतते है ॥ ५० ॥ जो पहले सोनेके रथोंपर अथवा बड़े-बड़े गजराजोंपर चढ़कर चलता था और नरदेव कहलाता था, वही शरीर आपके अबाध कालका ग्रास बनकर बाहर फेंक देनेपर पक्षियोंकी विष्ठा, धरतीमें गाड़ देनेपर सड़कर कीड़ा और आगमे जला देनेपर राखका ढेर बन जाता है ॥ ५१ ॥ प्रभो ! जिसने सारी दिशाओंपर विजय प्राप्त कर ली है और जिससे लड़ने-वाला संसारमे कोई रह नहीं गया है, जो श्रेष्ठ सिंहासन-पर बैठता है और बड़े-बड़े नरपति, जो पहले उसके समान थे, अब जिसके चरणोंमें सिर झुकाते हैं, वही पुरुष जब विषय सुख भोगनेके लिये, जो घर-गृहस्थीकी एक विशेष वस्तु है, स्त्रियोंके पास जाता है, तब उनके हाथका खिलौना, उनका पालतू पशु बन जाता है ॥५२॥ बहुत-से लोग विषय-भोग छोड़कर पुनः राज्यादि भोग मिलनेकी इच्छासे ही दान-पुण्य करते हैं और 'मैं फिर

जन्म लेकर सबसे बड़ा परम स्वतन्त्र सम्राट् होऊँ।' ऐसी कामना रखकर तपस्यामें भलीभाँति स्थित हो शुभकर्म करते हैं। इस प्रकार जिसकी तृष्णा बढ़ी हुई है, वह कदापि सुखी नहीं हो सकता ॥ ५३ ॥ अपने स्वरूपमें एकरस स्थित रहनेवाले भगवन्! जीव अनादिकालसे जन्म-मृत्युरूप संसारके चक्करमें भटक रहा है। जब उस चक्करमें छूटनेका समय आता है, तब उसे सत्संग प्राप्त होता है। यह निश्चय है कि जिस क्षण सत्संग प्राप्त होता है, उसी क्षण संतोंके आश्रय, कार्य-कारणरूप जगत्के एकमात्र स्वामी आपमें जीवकी बुद्धि अत्यन्त दृढ़तासे लग जाती है ॥ ५४ ॥ भगवन्! मैं तो ऐसा समझता हूँ कि आपने मेरे ऊपर परम अनुग्रहकी वर्षा की, क्योंकि बिना किसी परिश्रमके—अनायास ही मेरे राज्यका बन्धन टूट गया। साधु स्वभावके चक्रवर्ती राजा भी जब अपना राज्य छोड़कर एकान्तमें भजन-साधन करनेके उद्देश्यसे वनमें जाना चाहते हैं, तब उसके ममता-बन्धनसे मुक्त होनेके लिये बड़े प्रेमसे आपसे प्रार्थना किया करते हैं ॥५५॥ अन्तर्यामी प्रभो! आपसे क्या छिपा है? मैं आपके चरणोंकी सेवाके अतिरिक्त और कोई भी वर नहीं चाहता; क्योंकि जिनके पास किसी प्रकारका संग्रह परिग्रह नहीं है अथवा जो उसके अभिमानसे रहित हैं, वे लोग भी केवल उसीके लिये प्रार्थना करते रहते हैं। भगवन्! भला, बतलाइये तो सही—मोक्ष देनेवाले आपकी आराधना करके ऐसा कौन श्रेष्ठ पुरुष होगा, जो अपनेको बाँधनेवाले सांसारिक विषयोंका वर माँगे ॥ ५६ ॥ इसलिये प्रभो! मैं सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुणसे सम्बन्ध रखनेवाली समस्त कामनाओंको छोड़कर केवल मायाके लेशमात्र सम्बन्धसे रहित, गुणातीत, एक—अद्वितीय, चित्स्वरूप परमपुरुष आपकी शरण ग्रहण करता हूँ ॥५७॥ भगवन्! मैं अनादिकालसे अपने कर्मफलोंको भोगते-भोगते अत्यन्त आर्त हो रहा था, उनकी दुःखद ज्वाला रात-दिन मुझे जलाती रहती थी। मेरे छः शत्रु (पाँच इन्द्रिय और एक मन) कभी शान्त न होते थे, उनकी विषयोंकी प्यास बढ़ती ही जा रही थी। कभी किसी प्रकार एक क्षणके लिये भी मुझे शान्ति न मिली। शरणदाता! अब मैं आपके भय, मृत्यु और शोकसे रहित चरणकमलोंकी शरणमें आया हूँ। सारे जगत्के एकमात्र स्वामी! परमात्मन्! आप मुझ शरणागतकी रक्षा कीजिये ॥ ५८ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—सार्वभौम महाराज! तुम्हारी मति, तुम्हारा निश्चय बड़ा ही पवित्र और ऊँची कोटिका है। यद्यपि मैंने तुम्हें बार-बार वर देनेका प्रलोभन दिया, फिर भी तुम्हारी बुद्धि कामनाओंके अधीन न हुई ॥५९॥ मैंने तुम्हें जो वर देनेका प्रलोभन दिया, वह केवल तुम्हारी सावधानीकी परीक्षाके लिये। मेरे जो अनन्य भक्त होते हैं, उनकी बुद्धि कभी कामनाओंसे इधर-उधर नहीं भटकती ॥ ६० ॥ जो लोग मेरे भक्त नहीं होते, वे चाहे प्राणायाम आदिके द्वारा अपने मनको वशमें करनेका कितना ही प्रयत्न क्यों न करें उनकी वासनाएँ क्षीण नहीं होतीं, और राजन्! उनका मन फिरसे विषयोंके लिये मचल पड़ता है ॥६१॥ तुम अपने मन और सारे मनोभावोंको मुझे समर्पित कर दो, मुझमें लगा दो, और फिर स्वच्छन्दरूपसे पृथ्वीपर विचरण करो। मुझमें तुम्हारी विषयवासनाशून्य निर्मल भक्ति सदा बनी रहेगी ॥ ६२ ॥ तुमने क्षत्रियधर्मका आचरण करते समय शिकार आदिके अवसरोंपर बहुत-से पशुओंका वध किया है। अब एकाग्रचित्तसे मेरी उपासना करते हुए तपस्याके द्वारा उस पापको धो डालो ॥ ६३ ॥ राजन्! अगले जन्ममें तुम ब्राह्मण बनोगे और समस्त प्राणियोंके सच्चे हितैषी, परम सुहृद् होओगे तथा फिर मुझ विशुद्ध विज्ञानघन परमात्माको प्राप्त करोगे ॥ ६४ ॥

बावनवाँ अध्याय

द्वारकागमन, श्रीबलरामजीका विवाह तथा श्रीकृष्णके पास रुक्मिणीजीका सन्देशा लेकर ब्राह्मणका आना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—प्यारे परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार इक्ष्वाकुनन्दन राजा मुचुकुन्दपर अनुग्रह किया। अब उन्होंने भगवान्की परिक्रमा की, उन्हें नमस्कार किया और गुफासे बाहर निकले ॥ १ ॥

उन्होंने बाहर आकर देखा कि सब-के-सब मनुष्य, पशु, लता और वृक्ष-वनस्पति पहलेकी अपेक्षा बहुत छोटे-छोटे आकारके हो गये हैं। इससे यह जानकर कि कलियुग आ गया, वे उत्तर दिशाकी ओर चल दिये ॥ २ ॥ महाराज मुचुकुन्द तपस्या, श्रद्धा, धैर्य तथा अनासक्तिसे युक्त एवं संशय-सन्देहसे मुक्त थे। वे अपना चित्त भगवान् श्रीकृष्णमें लगाकर गन्धमादन पर्वतपर जा पहुँचे ॥ ३ ॥ भगवान् नर-नारायणके नित्य निवासस्थान बदरिकाश्रममें जाकर बड़े शान्तभावसे गर्मी-सर्दी आदि द्वन्द्व सहते हुए वे तपस्याके द्वारा भगवान्‌की आराधना करने लगे ॥ ४ ॥

इधर भगवान् श्रीकृष्ण मथुरापुरीमें लौट आये। अबतक कालयवनकी सेनाने उसे घेर रक्खा था। अब उन्होंने म्लेच्छोंकी सेनाका संहार किया और उसका सारा धन छीनकर द्वारकाको ले चले ॥ ५ ॥ जिस समय भगवान् श्रीकृष्णके आज्ञानुसार मनुष्यों और बैलोंपर वह धन ले जाया जाने लगा, उसी समय मगधराज जरासन्ध फिर (अठारहवीं बार) तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर आ धमका ॥ ६ ॥ परीक्षित् ! शत्रु-सेनाका प्रबल वेग देखकर भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम मनुष्योंकी-सी लीला करते हुए उसके सामनेसे बड़ी फुर्तीके साथ भाग निकले ॥ ७ ॥ उनके मनमें तनिक भी भय न था। फिर भी मानो अत्यन्त भयभीत हो गये हों—इस प्रकारका नाट्य करते हुए, वह सब-का-सब धन वहीं छोड़कर अनेक योजनोंतक वे अपने कमलदलके समान सुकोमल चरणोंसे ही—पैदल भागते चले गये ॥ ८ ॥ जब महाबली मगधराज जरासन्धने देखा कि श्रीकृष्ण और बलराम तो भाग रहे हैं, तब वह हँसने लगा और अपनी रथ सेनाके साथ उनका पीछा करने लगा। उसे भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीके ऐश्वर्य, प्रभाव आदिका ज्ञान न था ॥ ९ ॥ बहुत दूरतक दौड़नेके कारण दोनों भाई कुछ थक-से गये। अब वे बहुत ऊँचे प्रवर्षण पर्वतपर चढ़ गये। उस पर्वतका 'प्रवर्षण' नाम इसलिये पड़ा था कि वहाँ सदा ही—मेघ वर्षा किया करते थे ॥ १० ॥ परीक्षित् ! जब जरासन्धने देखा कि वे दोनों पहाड़में छिप गये और बहुत ढूँढ़नेपर भी पता न चला, तब उसने ईंधनसे भरे हुए प्रवर्षण पर्वतके चारों ओर आग लगवाकर उसे जला दिया ॥ ११ ॥ जब भगवान्‌ने देखा कि पर्वतके छोर जलने लगे हैं, तब दोनों भाई जरासन्धकी सेनाके घेरेको लाँघते हुए बड़े वेगसे उस ग्यारह योजन (चौवालीस कोस) ऊँचे पर्वतसे एकदम नीचे धरतीपर कूद आये ॥ १२ ॥ राजन् ! उन्हें जरासन्धने अथवा उसके किसी सैनिकने देखा नहीं और वे दोनों भाई वहाँसे चलकर फिर अपनी समुद्रसे घिरी हुई द्वारकापुरीमें चले आये ॥ १३ ॥ जरासन्धने झूठमूठ ऐसा मान लिया कि श्रीकृष्ण और बलराम तो जल गये, और फिर वह अपनी बहुत बड़ी सेना लौटाकर मगधदेशको चला गया ॥ १४ ॥

यह बात मैं तुमसे पहले ही (नवम स्कन्धमें) कह चुका हूँ कि आनर्तदेशके राजा श्रीमान् रैवतजीने अपनी रेवती नामकी कन्या ब्रह्माजीकी प्रेरणासे बलरामजीके साथ ब्याह दी ॥ १५ ॥ परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्ण भी स्वयंवरमें आये हुए शिशुपाल और उसके पक्षपाती शाल्व आदि नरपतियोंको बलपूर्वक हराकर सबके देखते-देखते, जैसे गरुडने सुधाका हरण किया था, वैसे ही विदर्भदेशकी राजकुमारी रुक्मिणीको हर लाये और उनसे विवाह कर लिया। रुक्मिणीजी राजा भीष्मककी कन्या और स्वयं भगवती लक्ष्मीजीका अवतार थीं ॥ १६-१७ ॥

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन् ! हमने सुना है कि भगवान् श्रीकृष्णने भीष्मकनन्दिनी परमसुन्दरी रुक्मिणीदेवीको बलपूर्वक हरण करके राक्षसविधिसे उनके साथ विवाह किया था ॥ १८ ॥ महाराज ! अब मैं यह सुनना चाहता हूँ कि परम तेजस्वी भगवान् श्रीकृष्णने जरासन्ध, शाल्व आदि नरपतियोंको जीतकर किस प्रकार रुक्मिणीका हरण किया ? ॥ १९ ॥ ब्रह्मर्षे ! भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंके सम्बन्धमें क्या कहना है ? वे स्वयं तो पवित्र हैं ही, सारे जगत्‌का मल धो-बहाकर उसे भी पवित्र कर देनेवाली हैं। उनमें ऐसी लोकोत्तर माधुरी है, जिसे दिन-रात सेवन करते रहनेपर भी नित्य नया-नया रस मिलता रहता है। भला ऐसा कौन रसिक,

कौन मर्मज्ञ है, जो उन्हें सुनकर तृप्त न हो जाय ॥ २० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! महाराज भीष्मक विदर्भदेशके अधिपति थे। उनके पाँच पुत्र और एक सुन्दरी कन्या थी॥ २१ ॥ सबसे बड़े पुत्रका नाम था रुक्मी और चार छोटे थे—जिनके नाम थे क्रमशः रुक्मरथ, रुक्मबाहु, रुक्मकेश और रुक्ममाली। इनकी बहिन थी सती रुक्मिणी॥ २२ ॥ जब उसने भगवान् श्रीकृष्णके सौन्दर्य, पराक्रम, गुण और वैभवकी प्रशंसा सुनी—जो उसके महलमें आनेवाले अतिथि प्रायः गाया ही करते थे—तब उसने यही निश्चय किया कि भगवान् श्रीकृष्ण ही मेरे अनुरूप पति है॥ २३ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण भी समझते थे कि 'रुक्मिणीमें बड़े सुन्दर-सुन्दर लक्षण हैं, वह परम बुद्धिमती है; उदारता, सौन्दर्य, शीलस्वभाव और गुणोंमें भी अद्वितीय है। इसलिये रुक्मिणी ही मेरे अनुरूप पत्नी है।' अतः भगवान्ने रुक्मिणीजीसे विवाह करनेका निश्चय किया॥ २४ ॥ रुक्मिणीजीके भाई-बन्धु भी चाहते थे कि हमारी बहिनका विवाह श्रीकृष्णसे ही हो। परन्तु रुक्मी श्रीकृष्णसे बड़ा द्वेष रखता था, उसने उन्हें विवाह करनेसे रोक दिया और शिशुपालको ही अपनी बहिनके योग्य वर समझा॥ २५ ॥

जब परमसुन्दरी रुक्मिणीको यह मालूम हुआ कि मेरा बड़ा भाई रुक्मी शिशुपालके साथ मेरा विवाह करना चाहता है, तब वे बहुत उदास हो गयीं। उन्होंने बहुत कुछ सोच-विचारकर एक विश्वासपात्र ब्राह्मणको तुरंत श्रीकृष्णके पास भेजा॥ २६ ॥ जब वे ब्राह्मण-देवता द्वारिकापुरीमें पहुँचे, तब द्वारपाल उन्हें राजमहलके भीतर ले गये। वहाँ जाकर ब्राह्मणदेवताने देखा कि आदि-पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण सोनेके सिंहासनपर विराजमान हैं॥ २७ ॥ ब्राह्मणोंके परमभक्त भगवान् श्रीकृष्ण उन ब्राह्मणदेवताको देखते ही अपने आसनसे नीचे उतर गये और उन्हें अपने आसनपर बैठाकर वैसी ही पूजा की; जैसे देवतालोग उनकी (भगवान्की) किया करते हैं॥ २८ ॥ आदर-सत्कार, कुशल-प्रश्नके अनन्तर जब ब्राह्मणदेवता खा-पी चुके, आराम-विश्राम कर चुके तब संतोंके परम आश्रय भगवान् श्रीकृष्ण उनके पास गये और अपने कोमल हाथोंसे उनके पैर सहलाते हुए बड़े शान्त-भावसे पूछने लगे—॥ २९ ॥ 'ब्राह्मणशिरोमणे! आपका चित्त तो सदा-सर्वदा सन्तुष्ट रहता है न? आपको अपने पूर्वपुरुषोंद्वारा स्वीकृत धर्मका पालन करनेमें कोई कठिनाई तो नहीं होती॥ ३० ॥ ब्राह्मण यदि जो कुछ मिल जाय, उसीमें सन्तुष्ट रहे और अपने धर्मका पालन करे, उससे च्युत न हो, तो वह सन्तोष ही उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण कर देता है॥ ३१ ॥ यदि इन्द्रका पद पाकर भी किसीको सन्तोष न हो तो उसे सुखके लिये एक लोकसे दूसरे लोकमें बार-बार भटकना पड़ेगा, वह कहीं भी शान्तिसे बैठ नहीं सकेगा। परन्तु जिसके पास तनिक भी संग्रह-परिग्रह नहीं है, और जो उसी अवस्थामें सन्तुष्ट है, वह सब प्रकारसे सन्तापरहित होकर सुखकी नींद सोता है॥ ३२ ॥ जो स्वयं प्राप्त हुई वस्तुसे सन्तोष कर लेते हैं, जिनका स्वभाव बड़ा ही मधुर है और जो समस्त प्राणियोंके परम हितैषी, अहङ्काररहित और शान्त हैं—उन ब्राह्मणोंको मैं सदा सिर झुकाकर नमस्कार करता हूँ॥ ३३ ॥ ब्राह्मणदेवता! राजाकी ओरसे तो आपलोगोंको सब प्रकारकी सुविधा है न? जिसके राज्यमें प्रजाका अच्छी तरह पालन होता है और वह आनन्दसे रहती है, वह राजा मुझे बहुत ही प्रिय है॥ ३४ ॥ ब्राह्मणदेवता! आप कहाँसे, किस हेतुसे और किस अभिलाषासे इतना कठिन मार्ग तय करके यहाँ पधारे हैं? यदि कोई बात विशेष गोपनीय न हो तो हमसे कहिये। हम आपकी क्या सेवा करें?'॥ ३५॥ परीक्षित्! लीलासे ही मनुष्यरूप धारण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने जब इस प्रकार ब्राह्मण-देवतासे पूछा, तब उन्होंने सारी बात कह सुनायी। इसके बाद वे भगवान्से रुक्मिणीजीका सन्देश कहने लगे॥ ३६ ॥

रुक्मिणीजीने कहा है—त्रिभुवनसुन्दर ! आपके गुणोंको जो सुननेवालोंके कानोंके रास्ते हृदयमें प्रवेश करके एक-एक अङ्गके ताप, जन्म-जन्मकी जलन बुझा देते हैं तथा अपने रूप-सौन्दर्यको जो नेत्रवाले जीवोंके नेत्रोंके लिये धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंके

फल एवं स्वार्थ-परमार्थ, सब कुछ हैं, श्रवण करके प्यारे अच्युत ! मेरा चित्त लज्जा, शर्म सब कुछ छोड़कर आपमें ही प्रवेश कर रहा है ॥ ३७ ॥ प्रेमस्वरूप श्यामसुन्दर ! चाहे जिस दृष्टिसे देखें; कुल, शील, स्वभाव, सौन्दर्य, विद्या, अवस्था, धन-धाम—सभीमें आप अद्वितीय हैं, अपने ही समान हैं । मनुष्य-लोकमें जितने भी प्राणी हैं, सबका मन आपको देखकर शान्तिका अनुभव करता है, आनन्दित होता है । अब पुरुषभूषण ! आप ही बतलाइये—ऐसी कौन-सी कुलवती, महागुणवती और धैर्यवती कन्या होगी, जो विवाहके योग्य समय आनेपर आपको ही पतिके रूपमें वरण न करेगी ॥ ३८ ॥ इसीलिये प्रियतम ! मैंने आपको पतिरूपसे वरण किया है । मैं आपको आत्मसमर्पण कर चुकी हूँ । आप अन्तर्यामी हैं । मेरे हृदयकी बात आपसे छिपी नहीं है । आप यहाँ पधारकर मुझे अपनी पत्नीके रूपमें स्वीकार कीजिये । कमलनयन ! प्राणवल्लभ ! मैं आप-सरीखे वीरको समर्पित हो चुकी हूँ, आपकी हूँ । अब जैसे सिंहका भाग सियार छू जाय, वैसे कहीं शिशुपाल निकटसे आकर मेरा स्पर्श न कर जाय ॥ ३९ ॥ मैंने यदि जन्म-जन्ममें पूर्त (कूआँ, बावली आदि खुदवाना), इष्ट (यज्ञादि करना), दान, नियम, व्रत तथा देवता, ब्राह्मण और गुरु आदिकी पूजाके द्वारा भगवान् परमेश्वरकी ही आराधना की हो और वे मुझपर प्रसन्न हों, तो भगवान् श्रीकृष्ण आकर मेरा पाणिग्रहण करें; शिशुपाल अथवा दूसरा कोई भी पुरुष मेरा स्पर्श न कर सके ॥ ४० ॥ प्रभो ! आप अजित हैं । जिस दिन मेरा विवाह होनेवाला हो उसके एक दिन पहले आप हमारी राजधानीमें गुप्तरूपसे आ जाइये और फिर बड़े-बड़े सेनापतियोंके साथ शिशुपाल तथा जरासन्धकी सेनाओंको मथ डालिये, तहस-नहस कर दीजिये और बलपूर्वक राक्षस-विधिसे वीरताका मूल्य देकर मेरा पाणिग्रहण कीजिये ॥ ४१ ॥ यदि आप यह सोचते हों कि 'तुम तो अन्तःपुरमें—भीतरके जनाने महलोंमें पहरेके अंदर रहती हो, तुम्हारे भाई-बन्धुओंको मारे बिना मैं तुम्हें कैसे ले जा सकता हूँ ?,' तो इसका उपाय मैं आपको बतलाये देती हूँ । हमारे कुलका ऐसा नियम है कि विवाहके पहले दिन कुलदेवीका दर्शन करनेके लिये एक बहुत बड़ी यात्रा होती है, जुलूस निकलता है—जिसमें विवाही जानेवाली कन्याको—दुलहिनको नगरके बाहर गिरिजादेवीके मन्दिरमें जाना पड़ता है ॥ ४२ ॥ कमलनयन ! उमापति भगवान् शङ्करके समान बड़े-बड़े महापुरुष भी आत्मशुद्धिके लिये आपके चरणकमलोंकी धूलसे स्नान करना चाहते हैं । यदि मैं आपका वह प्रसाद, आपकी वह चरणधूल नहीं प्राप्त कर सकी तो व्रतद्वारा शरीरको सुखाकर प्राण छोड़ दूँगी । चाहे उसके लिये सैकड़ों जन्म क्यों न लेने पड़ें, कभी-न-कभी तो आपका वह प्रसाद अवश्य ही मिलेगा ॥ ४३ ॥

ब्राह्मणदेवताने कहा—यदुवंशशिरोमणे ! यही रुक्मिणीके अत्यन्त गोपनीय सन्देश हैं, जिन्हें लेकर मैं आपके पास आया हूँ । इसके सम्बन्धमें जो कुछ करना हो, विचार कर लीजिये और तुरंत ही उसके अनुसार कार्य कीजिये ॥ ४४ ॥

तिरपनवाँ अध्याय

रुक्मिणीहरण

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णने विदर्भराजकुमारी रुक्मिणीजीका यह सन्देश सुनकर अपने हाथसे ब्राह्मणदेवताका हाथ पकड़ लिया और हँसते हुए यों बोले ॥ १ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—ब्राह्मणदेवता ! जैसे विदर्भराजकुमारी मुझे चाहती हैं, वैसे ही मैं भी उन्हें चाहता हूँ । मेरा चित्त उन्हींमें लगा रहता है । कहाँतक कहूँ, मुझे रातके समय नींदतक नहीं आती । मैं जानता हूँ कि रुक्मीने द्वेषवश मेरा विवाह रोक दिया है ॥ २ ॥ परन्तु ब्राह्मणदेवता ! आप देखियेगा, जैसे लकड़ियोंको मथकर—एक-दूसरेसे रगड़कर मनुष्य उनमेंसे आग निकाल लेता है, वैसे ही युद्धमें उन नाम-

धारी क्षत्रियकुलकलङ्कोंको तहस-नहस करके अपनेसे प्रेम करनेवाली परमसुन्दरी राजकुमारीको मैं निकाल लाऊँगा ॥ ३ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! मधुसूदन श्रीकृष्णने यह जानकर कि रुक्मिणीके विवाहकी लग्न परसों रात्रिमें ही है, सारथीको आज्ञा दी कि 'दारुक! तनिक भी विलम्ब न करके रथ जोत लाओ' ॥ ४ ॥ दारुक भगवान्‌के रथमें शैब्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और बलाहक नामके चार घोड़े जोतकर उसे ले आया और हाथ जोड़कर भगवान्‌के सामने खड़ा हो गया ॥५॥ शूरनन्दन श्रीकृष्ण ब्राह्मणदेवताको पहले रथपर चढ़ाकर फिर आप भी सवार हुए और उन शीघ्रगामी घोड़ोंके द्वारा एक ही रातमें आनर्तदेशसे विदर्भदेशमें जा पहुँचे ॥ ६ ॥

कुण्डिननरेश महाराज भीष्मक अपने बड़े लड़के रुक्मीके स्नेहवश अपनी कन्या शिशुपालको देनेके लिये विवाहोत्सवकी तैयारी करा रहे थे ॥७॥ नगरके राजपथ, चौराहे तथा गली-कूचे झाड़-बुहार दिये गये थे, उनपर छिड़काव किया जा चुका था। चित्र-विचित्र, रंग-बिरंगी, छोटी-बड़ी झंडियाँ और पताकाएँ लगा दी गयी थीं। तोरन बाँध दिये गये थे ॥ ८ ॥ वहाँके स्त्री-पुरुष पुष्प-माला, हार, इत्र-फुलेल, चन्दन, गहने और निर्मल वस्त्रोंसे सजे हुए थे। वहाँके सुन्दर-सुन्दर घरोंमेंसे अगरके धूपकी सुगन्ध फैल रही थी ॥९॥ परीक्षित्! राजा भीष्मकने पितर और देवताओंका विधिपूर्वक पूजन करके ब्राह्मणोंको भोजन कराया और नियमानुसार स्वस्तिवाचन भी ॥१०॥ सुशोभित दाँतोंवाली परमसुन्दरी राजकुमारी रुक्मिणीजीको स्नान कराया गया, उनके हाथोंमें मङ्गल-सूत्र कङ्कण पहनाये गये, कोहबर बनाया गया, दो नये-नये वस्त्र उन्हें पहनाये गये और वे उत्तम-उत्तम आभूषणोंसे विभूषित की गयीं ॥ ११ ॥ श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने साम, ऋक् और यजुर्वेदके मन्त्रोंसे उनकी रक्षा की और अथर्ववेदके विद्वान् पुरोहितने ग्रह शान्तिके लिये हवन किया ॥१२॥ राजा भीष्मक कुलपरम्परा और शास्त्रीय विधियोंके बड़े जानकार थे। उन्होंने सोना, चाँदी, वस्त्र, गुड़ मिले हुए तिल और गौएँ ब्राह्मणोंको दीं ॥ १३ ॥

इसी प्रकार चेदिनरेश राजा दमघोषने भी अपने पुत्र शिशुपालके लिये मन्त्रज्ञ ब्राह्मणोंसे अपने पुत्रके विवाह-सम्बन्धी मङ्गलकृत्य कराये ॥ १४ ॥ इसके बाद वे मद चुआते हुए हाथियों, सोनेकी मालाओंसे सजाये हुए रथों, पैदलों तथा घुड़सवारोंकी चतुरङ्गिणी सेना साथ लेकर कुण्डिनपुर जा पहुँचे ॥ १५ ॥ विदर्भराज भीष्मकने आगे आकर उनका स्वागत-सत्कार और प्रथाके अनुसार अर्चन-पूजन किया। इसके बाद उन लोगोंको पहलेसे ही निश्चित किये हुए जनवासोंमें आनन्दपूर्वक ठहरा दिया ॥१६॥ उस बारातमें शाल्व, जरासन्ध, दन्तवक्त्र, विदूरथ और पौण्ड्रक आदि शिशुपालके सहस्रों मित्र नरपति आये थे ॥ १७ ॥ वे सब राजा श्रीकृष्ण और बलरामजीके विरोधी थे और राजकुमारी रुक्मिणी शिशुपालको ही मिले, इस विचारसे आये थे। उन्होंने अपने-अपने मनमें यह पहलेसे ही निश्चय कर रक्खा था कि यदि श्रीकृष्ण, बलराम आदि यदुवंशियोंके साथ आकर कन्याको हरनेकी चेष्टा करेगा तो हम सब मिलकर उससे लड़ेंगे। यही कारण था कि उन राजाओंने अपनी-अपनी पूरी सेना और रथ, घोड़े, हाथी आदि भी अपने साथ ले लिये थे ॥ १८-१९ ॥

विपक्षी राजाओंकी इस तैयारीका पता भगवान् बलरामजीको लग गया और जब उन्होंने यह सुना कि भैया श्रीकृष्ण अकेले ही राजकुमारीका हरण करनेके लिये चले गये हैं, तब उन्हें वहाँ लड़ाई-झगड़ेकी बड़ी आशङ्का हुई ॥ २० ॥ यद्यपि वे श्रीकृष्णका बल-विक्रम जानते थे, फिर भी भ्रातृस्नेहसे उनका हृदय भर आया; वे तुरत ही हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंकी बड़ी भारी चतुरङ्गिणी सेना साथ लेकर कुण्डिनपुरके लिये चल पड़े ॥ २१ ॥

इधर, परमसुन्दरी रुक्मिणीजी भगवान् श्रीकृष्णके शुभागमनकी प्रतीक्षा कर रही थीं। उन्होंने देखा श्रीकृष्णकी तो कौन कहे, अभी ब्राह्मणदेवता भी नहीं लौटे! वे बड़ी चिन्तामें पड़ गयीं; सोचने लगीं ॥२२॥ 'अहो! अब मुझ अभागिनीके विवाहमें केवल एक रातकी देरी है। परन्तु मेरे जीवनसर्वस्व कमलनयन भगवान् अब भी नहीं पधारे! इसका क्या कारण हो सकता है, कुछ निश्चय नहीं मालूम पड़ता। यही नहीं, मेरे सन्देश ले

जानेवाले ब्राह्मणदेवता भी तो अभीतक नहीं लौटे ॥ २३ ॥ इसमें सन्देह नहीं कि भगवान् श्रीकृष्णका स्वरूप परम शुद्ध है और विशुद्ध पुरुष ही उनसे प्रेम कर सकते हैं। उन्होंने मुझमें कुछ-न-कुछ बुराई देखी होगी, तभी तो मेरा हाथ पकड़नेके लिये—मुझे स्वीकार करनेके लिये उद्यत होकर वे यहाँ नहीं पधार रहे हैं ॥ २४ ॥ ठीक है, मेरे भाग्य ही मन्द हैं! विधाता और भगवान् शङ्कर भी मेरे अनुकूल नहीं जान पड़ते। यह भी सम्भव है कि रुद्रपत्नी गिरिराजकुमारी सती पार्वतीजी मुझसे अप्रसन्न हों ॥ २५ ॥ परीक्षित्! रुक्मिणीजी इसी उधेड़-बुनमें पड़ी हुई थीं। उनका सम्पूर्ण मन और उनके सारे मनोभाव भक्तमनचोर भगवान्ने चुरा लिये थे। उन्होंने उन्हींको सोचते-सोचते 'अभी समय है' ऐसा समझकर अपने आँसूभरे नेत्र बन्द कर लिये ॥ २६ ॥ परीक्षित्! इस प्रकार रुक्मिणीजी भगवान् श्रीकृष्णके शुभागमनकी प्रतीक्षा कर रही थीं। उसी समय उनकी बायीं जाँघ, भुजा और नेत्र फड़कने लगे, जो प्रियतमके आगमनका प्रिय संवाद सूचित कर रहे थे ॥ २७ ॥ इतनेमें ही भगवान् श्रीकृष्णके भेजे हुए वे ब्राह्मणदेवता आ गये और उन्होंने अन्तःपुरमें राजकुमारी रुक्मिणीको इस प्रकार देखा, मानो कोई ध्यानमग्न देवी हो ॥ २८ ॥ सती रुक्मिणीजीने देखा ब्राह्मणदेवताका मुख प्रफुल्लित है। उनके मन और चेहरेपर किसी प्रकारकी घबड़ाहट नहीं है। वे उन्हें देखकर लक्षणोंसे ही समझ गयीं कि भगवान् श्रीकृष्ण आ गये! फिर प्रसन्नतासे खिलकर उन्होंने ब्राह्मणदेवतासे पूछा ॥ २९ ॥ तब ब्राह्मणदेवताने निवेदन किया कि 'भगवान् श्रीकृष्ण यहाँ पधार गये हैं।' और उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। यह भी बतलाया कि 'राजकुमारीजी! आपको ले जानेकी उन्होंने सत्य प्रतिज्ञा की है' ॥ ३० ॥ भगवान्के शुभागमनका समाचार सुनकर रुक्मिणीजीका हृदय आनन्दातिरेकसे भर गया। उन्होंने इसके बदलेमें ब्राह्मणके लिये भगवान्के अतिरिक्त और कुछ प्रिय न देखकर उन्होंने केवल नमस्कार कर लिया। अर्थात् जगत्की समग्र लक्ष्मी ब्राह्मणदेवताको सौंप दी ॥ ३१ ॥

राजा भीष्मकने सुना कि भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी मेरी कन्याका विवाह देखनेके लिये उत्सुकतावश यहाँ पधारे हैं। तब तुरही, भेरी आदि बाजे बजवाते हुए पूजाकी सामग्री लेकर उन्होंने उनकी अगवानी की ॥ ३२ ॥ और मधुपर्क, निर्मल वस्त्र तथा उत्तम-उत्तम भेंट देकर विधिपूर्वक उनकी पूजा की ॥ ३३ ॥ भीष्मकजी बड़े बुद्धिमान् थे। भगवान्के प्रति उनकी बड़ी भक्ति थी। उन्होंने भगवान्को सेना और साथियोंके सहित समस्त सामग्रियोंसे युक्त निवासस्थानमें ठहराया और उनका यथावत् आतिथ्य-सत्कार किया ॥ ३४ ॥ विदर्भराज भीष्मकजीके यहाँ निमन्त्रणमें जितने राजा आये थे, उन्होंने उनके पराक्रम, अवस्था, बल और धनके अनुसार सारी इच्छित वस्तुएँ देकर सबका खूब सत्कार किया ॥ ३५ ॥ विदर्भदेशके नागरिकोंने जब सुना कि भगवान् श्रीकृष्ण यहाँ पधारे हैं, तब वे लोग भगवान्के निवासस्थानपर आये और अपने नयनोंकी अंजलिमें भर-भरकर उनके वदनारविन्दका मधुर मकरन्द-रस पान करने लगे ॥ ३६ ॥ वे आपसमें इस प्रकार बातचीत करते थे—रुक्मिणी इन्हींकी अर्द्धाङ्गिनी होनेके योग्य है, और ये परम पवित्रमूर्ति श्यामसुन्दर रुक्मिणीके ही योग्य पति हैं। दूसरी कोई इनकी पत्नी होनेके योग्य नहीं है ॥ ३७ ॥ यदि हमने अपने पूर्वजन्म या इस जन्ममें कुछ भी सत्कर्म किया हो, तो त्रिलोक-विधाता भगवान् हमपर प्रसन्न हों और ऐसी कृपा करें कि श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण ही विदर्भराजकुमारी रुक्मिणीजीका पाणिग्रहण करें' ॥ ३८ ॥

परीक्षित्! जिस समय प्रेम-परवश होकर पुरवासी-लोग परस्पर इस प्रकार बातचीत कर रहे थे, उसी समय रुक्मिणीजी अन्तःपुरसे निकलकर देवीजीके मन्दिरके लिये चलीं। बहुत-से सैनिक उनकी रक्षामें नियुक्त थे ॥ ३९ ॥ वे प्रेममूर्ति श्रीकृष्णचन्द्रके चरण-कमलोंका चिन्तन करती हुई भगवती भवानीके पाद-पल्लवोंका दर्शन करनेके लिये पैदल ही चलीं ॥ ४० ॥ वे स्वयं मौन थीं और माताएँ तथा सखी-सहेलियाँ सब ओरसे उन्हें घेरे हुए थीं। शूरवीर राजसैनिक हाथोंमें अस्त्र-शस्त्र उठाये, कवच पहने उनकी रक्षा कर रहे थे। उस समय मृदङ्ग, शङ्ख, ढोल, तुरही और भेरी आदि

बाजे बज रहे थे ॥ ४१ ॥ बहुत-सी ब्राह्मणपत्नियाँ पुष्पमाला, चन्दन आदि सुगन्ध-द्रव्य और गहने-कपड़ोंसे सज-धजकर साथ-साथ चल रही थीं और अनेकों प्रकारके उपहार तथा पूजन आदिकी सामग्री लेकर सहस्रों श्रेष्ठ वाराङ्गनाएँ भी साथ थीं ॥ ४२ ॥ गवैये गाते जाते थे, बाजेवाले बाजे बजाते चलते थे और सूत, मागध तथा वंदीजन दुलहिनके चारों ओर जय-जयकार करते—विरद बखानते जा रहे थे ॥ ४३ ॥ देवीजीके मन्दिर-में पहुँचकर रुक्मिणीजीने अपने कमलके सदृश सुकोमल हाथ-पैर धोये, आचमन किया; इसके बाद बाहर-भीतरसे पवित्र एवं शान्तभावसे युक्त होकर अम्बिकादेवीके मन्दिरमें प्रवेश किया ॥ ४४ ॥ बहुत-सी विधि-विधान जाननेवाली बड़ी-बूढ़ी ब्राह्मणियाँ उनके साथ थीं। उन्होंने भगवान् शङ्करकी अर्द्धाङ्गिनी भवानीको और भगवान् शङ्करजीको भी रुक्मिणीजीसे प्रणाम करवाया ॥४५॥ रुक्मिणीजीने भगवतीसे प्रार्थना की—'अम्बिका माता! आपकी गोदमें बैठे हुए आपके प्रिय पुत्र गणेशजीको तथा आपको मैं बार-बार नमस्कार करती हूँ। आप ऐसा आशीर्वाद दीजिये कि मेरी अभिलाषा पूर्ण हो। भगवान् श्रीकृष्ण ही मेरे पति हों' ॥ ४६ ॥ इसके बाद रुक्मिणीजीने जल, गन्ध, अक्षत, धूप, वस्त्र, पुष्पमाला, हार, आभूषण, अनेकों प्रकारके नैवेद्य, भेट और आरती आदि सामग्रियोंसे अम्बिकादेवीकी पूजा की ॥ ४७ ॥ तदनन्तर उक्त सामग्रियोंसे तथा नमक, पूआ, पान, कण्ठसूत्र, फल और ईखसे सुहागिन ब्राह्मणियोंकी भी पूजा की ॥ ४८ ॥ तब ब्राह्मणियोंने उन्हें प्रसाद देकर आशीर्वाद दिये और दुलहिनने ब्राह्मणियों और माता अम्बिकाको नमस्कार करके प्रसाद ग्रहण किया ॥ ४९ ॥ पूजा-अर्चाकी विधि समाप्त हो जानेपर उन्होंने मौनव्रत तोड दिया और रत्नजटित अँगूठीसे जगमगाते हुए करकमलके द्वारा एक सहेलीका हाथ पकड़कर वे गिरिजामन्दिरसे बाहर निकलीं ॥ ५० ॥

परीक्षित्! रुक्मिणीजी भगवान्‌की मायाके समान ही बड़े-बड़े धीर-वीरोंको भी मोहित कर लेनेवाली थीं। उनका कटिभाग बहुत ही सुन्दर और पतला था। मुखमण्डलपर कुण्डलोंकी शोभा जगमगा रही थी। वे किशोर और तरुण अवस्थाकी सन्धिमें स्थित थीं। नितम्बपर जड़ाऊ करधनी शोभायमान हो रही थी, वक्षःस्थल कुछ उभरे हुए थे और उनकी दृष्टि लटकती हुई अलकोंके कारण कुछ चञ्चल हो रही थी ॥ ५१ ॥ उनके होठोंपर मनोहर मुसकान थी। उनके दाँतोंकी पाँत थी तो कुन्दकलीके समान परम उज्ज्वल, परन्तु पके हुए कुँदरूके समान लाल-लाल होठोंकी चमकसे उसपर भी लालिमा आ गयी थी। उनके पाँवोंके पायजेब चमक रहे थे और उनमें लगे हुए छोटे-छोटे घुँघरू रुनझुन-रुनझुन कर रहे थे। वे अपने सुकुमार चरण-कमलोंसे पैदल ही राजहंसकी गतिसे चल रही थीं। उनकी वह अपूर्व छबि देखकर वहाँ आये हुए बड़े बड़े यशस्वी वीर सब मोहित हो गये। कामदेवने ही भगवान्‌का कार्य सिद्ध करनेके लिये अपने बाणोंसे उनका हृदय जर्जर कर दिया ॥ ५२ ॥ रुक्मिणीजी इस प्रकार इस उत्सव-यात्राके बहाने मन्द-मन्द गतिसे चलकर भगवान् श्रीकृष्णपर अपना राशि-राशि सौन्दर्य निछावर कर रही थीं। उन्हें देखकर और उनकी खुली मुसकान तथा लजीली चितवनपर अपना चित्त लुटाकर वे बड़े-बड़े नरपति एवं वीर इतने मोहित और बेहोश हो गये कि उनके हाथोंसे अस्त्र-शस्त्र छूटकर गिर पड़े और वे स्वयं भी रथ, हाथी तथा घोड़ोंसे धरतीपर आ गिरे ॥ ५३ ॥ इस प्रकार रुक्मिणीजी भगवान् श्रीकृष्णके शुभागमनकी प्रतीक्षा करती हुई अपने कमलकी कलीके समान सुकुमार चरणोंको बहुत ही धीरे-धीरे आगे बढ़ा रही थीं। उन्होंने अपने बायें हाथकी अँगुलियोंसे मुखकी ओर लटकती हुई अलकें हटायीं और वहाँ आये हुए नरपतियोंकी ओर लजीली चितवनसे देखा। उसी समय उन्हें श्यामसुन्दर भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन हुए ॥ ५४ ॥ राजकुमारी रुक्मिणीजी रथपर चढ़ना ही चाहती थीं कि भगवान् श्रीकृष्णने समस्त शत्रुओंके देखते-देखते उनकी भीड़मेंसे रुक्मिणीजीको उठा लिया और उन सैकड़ों राजाओंके सिरपर पाँव रखकर उन्हें अपने उस रथपर बैठा लिया, जिसकी ध्वजापर गरुडका चिह्न लगा हुआ था ॥ ५५ ॥ इसके बाद जैसे सिंह सियारोंके बीचमेंसे अपना भाग ले जाय, वैसे ही

रुक्मिणीजीको लेकर भगवान् श्रीकृष्ण बलरामजी आदि यदुवंशियोंके साथ वहाँसे चल पड़े ॥ ५६ ॥ उस समय जरासन्धके वशवर्ती अभिमानी राजाओंको अपना यह बड़ा भारी तिरस्कार और यश-कीर्तिका नाश सहन न हुआ। वे सब-के-सब चिढ़कर कहने लगे—'अहो, हमें धिक्कार है। आज हमलोग धनुष धारण करके खड़े ही रहे और ये ग्वाले, जैसे सिंहके भागको हरिन ले जायँ उसी प्रकार हमारा सारा यश छीन ले गये' ॥५७॥

चौवनवाँ अध्याय

शिशुपालके साथी राजाओंकी और रुक्मीकी हार तथा श्रीकृष्ण-रुक्मिणी-विवाह

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! इस प्रकार कह-सुनकर सब-के-सब राजा क्रोधसे आगबबूला हो उठे और कवच पहनकर अपने-अपने वाहनोंपर सवार हो गये। अपनी-अपनी सेनाके साथ सब धनुष ले-लेकर भगवान् श्रीकृष्णके पीछे दौड़े ॥ १ ॥ राजन्! जब यदुवंशियोंके सेनापतियोंने देखा कि शत्रुदल हमपर चढ़ा आ रहा है, तब उन्होंने भी अपने-अपने धनुषका टङ्कार किया और घूमकर उनके सामने डट गये ॥ २ ॥ जरासन्धकी सेनाके लोग कोई घोड़ेपर, कोई हाथीपर तो कोई रथपर चढ़े हुए थे। वे सभी धनुर्वेदके बड़े मर्मज्ञ थे। वे यदुवंशियोंपर इस प्रकार बाणोंकी वर्षा करने लगे, मानो दल-के-दल बादल पहाड़ोंपर मूसलधार पानी बरसा रहे हों ॥ ३ ॥ परमसुन्दरी रुक्मिणीजीने देखा कि उनके पति श्रीकृष्णकी सेना बाण-वर्षासे ढक गयी है। तब उन्होंने लज्जाके साथ भयभीत नेत्रोंसे भगवान् श्रीकृष्णके मुखकी ओर देखा ॥ ४ ॥ भगवान्ने हँसकर कहा—'सुन्दरी! डरो मत। तुम्हारी सेना अभी तुम्हारे शत्रुओंकी सेनाको नष्ट किये डालती है' ॥ ५ ॥ इधर गद और सङ्कर्षण आदि यदुवंशी वीर अपने शत्रुओंका पराक्रम और अधिक न सह सके। वे अपने बाणोंसे शत्रुओंके हाथी, घोड़े तथा रथोंको छिन्न-भिन्न करने लगे।६। उनके बाणोंसे रथ, घोड़े और हाथियोंपर बैठे विपक्षी वीरोंके कुण्डल, किरीट और पगड़ियोंसे सुशोभित करोड़ों सिर, खड्ग, गदा और धनुषयुक्त हाथ, पहुँचे, जाँघें और पैर कट-कटकर पृथ्वीपर गिरने लगे। इसी प्रकार घोड़े, खच्चर, हाथी, ऊँट, गधे और मनुष्योंके सिर भी कट-कटकर रणभूमिमें लोटने लगे ॥ ७-८ ॥ अन्तमें विजयकी सच्ची आकाङ्क्षावाले यदुवंशियोंने शत्रुओंकी सेना तहस-नहस कर डाली। जरासन्ध आदि सभी राजा युद्धसे पीठ दिखाकर भाग खड़े हुए ॥ ९ ॥

उधर शिशुपाल अपनी भावी पत्नीके छिन जानेके कारण मरणासन्न-सा हो रहा था। न तो उसके हृदयमें उत्साह रह गया था और न तो शरीरपर कान्ति। उसका मुँह सूख रहा था। उसके पास जाकर जरासन्ध कहने लगा—॥१०॥ शिशुपालजी! आप तो एक श्रेष्ठ पुरुष हैं। यह उदासी छोड़ दीजिये। क्योंकि राजन्! कोई भी बात सर्वदा अपने मनके अनुकूल ही हो या प्रतिकूल ही हो, इस सम्बन्धमें कुछ स्थिरता किसी भी प्राणीके जीवनमें नहीं देखी जाती ॥ ११ ॥ जैसे कठपुतली बाजीगरकी इच्छाके अनुसार नाचती है, वैसे ही यह जीव भी भगवदिच्छाके अधीन रहकर सुख और दुःखके सम्बन्धमें यथाशक्ति चेष्टा करता रहता है ॥ १२ ॥ देखिये, श्रीकृष्णने मुझे तेईस-तेईस अक्षौहिणी सेनाओंके साथ सत्रह बार हरा दिया, मैंने केवल एक बार—अठारहवीं बार उनपर विजय प्राप्त की ॥ १३ ॥ फिर भी इस बातको लेकर मैं न तो कभी शोक करता हूँ और न तो कभी हर्ष; क्योंकि मैं जानता हूँ कि प्रारब्धके अनुसार कालभगवान् ही इस चराचर जगत्को झकझोरते रहते हैं ॥ १४ ॥ इसमें सन्देह नहीं कि हमलोग बड़े-बड़े वीर सेनापतियोंके भी नायक हैं। फिर भी, इस समय श्रीकृष्णके द्वारा सुरक्षित यदुवंशियोंकी थोड़ी-सी सेनाने हमें हरा दिया है ॥ १५ ॥ इस बार हमारे शत्रुओंकी ही जीत हुई, क्योंकि काल उन्हींके अनुकूल था। जब काल हमारे दाहिने होगा, तब हम भी उन्हें जीत लेंगे' ॥ १६ ॥ परीक्षित्! जब मित्रोंने इस प्रकार समझाया, तब चेदिराज शिशुपाल अपने अनुयायियोंके

साथ अपनी राजधानीको लौट गया और उसके मित्र राजा भी, जो मरनेसे बचे थे, अपने-अपने नगरोंको चले गये ॥ १७ ॥

रुक्मिणीजीका बड़ा भाई रुक्मी भगवान् श्रीकृष्णसे बहुत द्वेष रखता था । उसको यह बात बिल्कुल सहन न हुई कि मेरी बहिनको श्रीकृष्ण हर ले जायँ और राक्षसरीतिसे बलपूर्वक उसके साथ विवाह करें । रुक्मी बली तो था ही, उसने एक अक्षौहिणी सेना साथ ले ली और श्रीकृष्णका पीछा किया ॥ १८ ॥ महाबाहु रुक्मी क्रोधके मारे जल रहा था । उसने कवच पहनकर और धनुष धारण करके समस्त नरपतियोंके सामने यह प्रतिज्ञा की—॥ १९ ॥ 'मैं आपलोगोंके बीचमें यह शपथ करता हूँ कि यदि मैं युद्धमें श्रीकृष्णको न मार सका और अपनी बहिन रुक्मिणीको न लौटा सका तो अपनी राजधानी कुण्डिनपुरमे प्रवेश नहीं करूँगा ॥ २० ॥ परीक्षित् ! यह कहकर वह रथपर सवार हो गया और सारथीसे बोला—'जहाँ कृष्ण हो वहाँ शीघ्र-से-शीघ्र मेरा रथ ले चलो । आज मेरा उसीके साथ युद्ध होगा ॥ २१ ॥ आज मैं अपने तीखे बाणोंसे उस खोटी बुद्धिवाले ग्वालेके बल-वीर्यका घमंड चूर-चूर कर दूँगा । देखो तो उसका साहस, वह हमारी बहिनको बलपूर्वक हर ले गया है' ॥ २२ ॥ परीक्षित् ! रुक्मीकी बुद्धि बिगड़ गयी थी । वह भगवान्के तेज-प्रभावको बिल्कुल नहीं जानता था । इसीसे इस प्रकार बहक-बहककर बातें करता हुआ वह एक ही रथसे श्रीकृष्णके पास पहुँचकर ललकारने लगा—'खड़ा रह ! खड़ा रह !'॥२३॥ उसने अपने धनुषको बलपूर्वक खींचकर भगवान् श्रीकृष्णको तीन बाण मारे और कहा—'एक क्षण मेरे सामने ठहर ! यदुवंशियोंके कुलकलङ्क ! जैसे कौआ होमकी सामग्री चुराकर उड़ जाय, वैसे ही तू मेरी बहिनको चुराकर कहाँ भागा जा रहा है ? अरे मन्द ! तू बडा मायावी और कपट-युद्धमें कुशल है । आज मै तेरा सारा गर्व खर्व किये डालता हूँ ॥ २४-२५ ॥ देख ! जबतक मेरे बाण तुझे धरतीपर सुला नहीं देते, उसके पहले ही इस बच्चीको छोड़कर भाग जा ।' रुक्मीकी बात सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण मुसकराने लगे । उन्होंने उसका धनुष काट डाला और उसपर छः बाण छोड़े ॥ २६ ॥ साथ ही भगवान् श्रीकृष्णने आठ बाण उसके चार घोड़ोंपर और दो सारथीपर छोडे और तीन बाणोंसे उसके रथकी ध्वजाको काट डाला । तब रुक्मीने दूसरा धनुष उठाया और भगवान् श्रीकृष्णको पाँच बाण मारे ॥ २७ ॥ उन बाणोंके लगनेपर उन्होंने उसका वह धनुष भी काट डाला । रुक्मीने इसके बाद एक और धनुष लिया, परन्तु हाथमें लेते-ही-लेते अविनाशी अच्युतने उसे भी काट डाला ॥ २८ ॥ इस प्रकार रुक्मीने परिघ, पट्टिश, शूल, ढाल, तलवार, शक्ति और तोमर—जितने अस्त्र-शस्त्र उठाये, उन सभीको भगवान्ने प्रहार करनेके पहले ही काट डाला ॥ २९ ॥ अब रुक्मी क्रोधवश हाथमे तलवार लेकर भगवान् श्रीकृष्णको मार डालनेकी इच्छासे रथसे कूद पडा और इस प्रकार उनकी ओर झपटा, जैसे पतिंगा आगकी ओर लपकता है॥३०॥ जब भगवान्ने देखा कि रुक्मी मुझपर चोट करना चाहता है, तब उन्होंने अपने बाणोंसे उसकी ढाल-तलवारको तिल-तिल करके काट दिया और उसको मार डालनेके लिये हाथमे तीखी तलवार निकाल ली ॥३१॥ जब रुक्मिणीजीने देखा कि ये तो हमारे भाईको अब मार ही डालना चाहते हैं, तब वे भयसे विह्वल हो गयीं और अपने प्रियतम पति भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंपर गिरकर करुण-स्वरमे बोलीं—॥ ३२ ॥ 'देवताओंके भी आराध्यदेव ! जगत्पते ! आप योगेश्वर है । आपके स्वरूप और इच्छाओको कोई जान नहीं सकता । आप परम बलवान् हैं । परन्तु कल्याणस्वरूप भी तो हैं । प्रभो ! मेरे भैयाको मारना आपके योग्य काम नहीं है' ॥ ३३ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—रुक्मिणीजीका एक-एक अङ्ग भयके मारे थर-थर काँप रहा था । शोककी प्रबलता-से मुँह सूख गया था, गला रुँध गया था । आतुरता-वश सोनेका हार गलेसे गिर पड़ा था । इसी अवस्थामें वे भगवान्के चरणकमल पकडे हुए थीं । परमदयालु भगवान् उन्हें भयभीत देखकर करुणासे द्रवित हो गये । उन्होंने रुक्मीको मार डालनेका विचार छोड़ दिया ॥ ३४ ॥ फिर भी रुक्मी उनके अनिष्टकी चेष्टासे

विमुख न हुआ। तब भगवान् श्रीकृष्णने उसको उसीके दुपट्टेसे बाँध दिया और उसकी दाढ़ी-मूँछ तथा केश कई जगहसे मूँडकर उसे कुरूप बना दिया। तबतक यदुवंशी वीरोंने शत्रुकी अद्भुत सेनाको तहस-नहस कर डाला—ठीक वैसे ही, जैसे हाथी कमलवनको रौंद डालता है ॥ ३५ ॥ फिर वे लोग उधरसे लौटकर श्रीकृष्णके पास आये, तो देखा कि रुक्मी दुपट्टेसे बँधा हुआ अधमरी अवस्थामें पड़ा हुआ है। उसे देखकर सर्वशक्तिमान् भगवान् बलरामजीको बड़ी दया आयी और उन्होंने उसके बन्धन खोलकर उसे छोड़ दिया तथा श्रीकृष्णसे कहा—॥ ३६ ॥ 'कृष्ण! तुमने यह अच्छा नहीं किया। यह निन्दित कार्य हमलोगोंके योग्य नहीं है। अपने सम्बन्धीकी दाढ़ी-मूँछ मूँडकर उसे कुरूप कर देना, यह तो एक प्रकारका वध ही है' ॥ ३७ ॥ इसके बाद बलरामजीने रुक्मिणीको सम्बोधन करके कहा—'साध्वी! तुम्हारे भाईका रूप विकृत कर दिया गया है, यह सोचकर हमलोगोंसे बुरा न मानना, क्योंकि जीवको सुख-दुःख देनेवाला कोई दूसरा नहीं है। उसे तो अपने ही कर्मका फल भोगना पड़ता है ॥ ३८ ॥ अब श्रीकृष्णसे बोले—'कृष्ण! यदि अपना सगा-सम्बन्धी वध करने योग्य अपराध करे, तो भी अपने ही सम्बन्धियोंके द्वारा उसका मारा जाना उचित नहीं है। उसे छोड़ देना चाहिये। वह तो अपने अपराधसे ही मर चुका है, मरे हुएको फिर क्या मारना?' ॥ ३९ ॥ फिर रुक्मिणीजीसे बोले—'साध्वी! ब्रह्माजीने क्षत्रियोंका धर्म ही ऐसा बना दिया है कि सगा भाई भी अपने भाईको मार डालता है। इसलिये यह क्षात्रधर्म अत्यन्त घोर है' ॥ ४० ॥ इसके बाद श्रीकृष्णसे बोले—'भाई कृष्ण! यह ठीक है कि जो लोग धनके नशेमें अंधे हो रहे हैं और अभिमानी हैं, वे राज्य, पृथ्वी, पैसा, स्त्री, मान, तेज अथवा किसी और कारणसे अपने बन्धुओंका भी तिरस्कार कर दिया करते हैं' ॥ ४१ ॥ अब वे रुक्मिणीजीसे बोले—'साध्वी! तुम्हारे भाई-बन्धु समस्त प्राणियोंके प्रति दुर्भाव रखते हैं। हमने उनके मङ्गलके लिये ही उनके प्रति दण्डविधान किया है। उसे तुम अज्ञानियोंकी भाँति अमङ्गल मान रही हो, यह तुम्हारी बुद्धिकी विषमता है ॥ ४२ ॥ देवि! जो लोग भगवान्‌की मायासे मोहित होकर देहको ही आत्मा मान बैठते हैं, उन्हींको ऐसा आत्ममोह होता है कि यह मित्र है, यह शत्रु है और यह उदासीन है ॥ ४३ ॥ समस्त देहधारियोंकी आत्मा एक ही है और कार्य-कारणसे, मायासे उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। जल और घड़ा आदि उपाधियोंके भेदसे जैसे सूर्य, चन्द्रमा आदि प्रकाशयुक्त पदार्थ और आकाश भिन्न-भिन्न मालूम पड़ते हैं; परन्तु हैं एक ही, वैसे ही मूर्ख लोग शरीरके भेदसे आत्माका भेद मानते है ॥ ४४ ॥ यह शरीर आदि और अन्तवाला है। पञ्चभूत, पञ्चप्राण, तन्मात्रा और त्रिगुण ही इसका स्वरूप है। आत्मामें उसके अज्ञानसे ही इसकी कल्पना हुई है और वह कल्पित शरीर ही, जो उसे 'मैं' समझता है, उसको जन्म-मृत्युके चक्करमें ले जाता है ॥ ४५ ॥ साध्वी! नेत्र और रूप दोनों ही सूर्यके द्वारा प्रकाशित होते हैं। सूर्य ही उनका कारण है। इसलिये सूर्यके साथ नेत्र और रूपका न तो कभी वियोग होता है और न संयोग। इसी प्रकार समस्त संसारकी सत्ता आत्मसत्ताके कारण जान पड़ती है, समस्त संसारका प्रकाशक आत्मा ही है। फिर आत्माके साथ दूसरे असत् पदार्थोंका संयोग या वियोग हो ही कैसे सकता है? ॥४६॥ जन्म लेना, रहना, बढ़ना, बदलना, घटना और मरना—ये सारे विकार शरीरके ही होते हैं, आत्माके नहीं। जैसे कृष्णपक्षमें कलाओंका ही क्षय होता है, चन्द्रमाका नहीं, परन्तु अमावस्याके दिन व्यवहारमें लोग चन्द्रमाका ही क्षय हुआ कहते-सुनते हैं, वैसे ही जन्म-मृत्यु आदि सारे विकार शरीरके ही होते हैं, परन्तु लोग उसे भ्रमवश अपना—अपने आत्माका मान लेते हैं ॥४७॥ जैसे सोया हुआ पुरुष किसी पदार्थके न होनेपर भी स्वप्नमें भोक्ता, भोग्य और भोगरूप फलोंका अनुभव करता है, उसी प्रकार अज्ञानीलोग झूठमूठ संसार-चक्रका अनुभव करते हैं ॥४८॥ इसलिये साध्वी! अज्ञानके कारण होनेवाले इस शोकको त्याग दो। यह शोक अन्तःकरणको मुरझा देता है, मोहित कर देता है। इसलिये इसे छोड़कर तुम अपने स्वरूपमें स्थित हो जाओ' ॥४९॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जब बलरामजीने इस प्रकार समझाया, तब परमसुन्दरी रुक्मिणीजीने अपने मनका मैल मिटाकर विवेक-बुद्धिसे उसका समाधान किया ॥५०॥ रुक्मीकी सेना और उसके तेजका नाश हो चुका था। केवल प्राण बच रहे थे। उसके चित्तकी सारी आशा-अभिलाषाएँ व्यर्थ हो चुकी थीं और शत्रुओंने अपमानित करके उसे छोड़ दिया था। उसे अपने विरूप किये जानेकी कष्टदायक स्मृति भूल नहीं पाती थी ॥५१॥ अतः उसने अपने रहनेके लिये भोजकट नामकी एक बहुत बड़ी नगरी बसायी। उसने पहले ही यह प्रतिज्ञा कर ली थी कि 'दुर्बुद्धि कृष्णको मारे बिना और अपनी छोटी बहिनको लौटाये बिना मैं कुण्डिनपुरमे प्रवेश नहीं करूँगा।' इसलिये क्रोध करके वह वहीं रहने लगा ॥५२॥

परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार सब राजाओंको जीत लिया और विदर्भराजकुमारी रुक्मिणीजीको द्वारकामें लाकर उनका विधिपूर्वक पाणिग्रहण किया ॥ ५३ ॥ हे राजन् ! उस समय द्वारकापुरीमें घर-घर बड़ा ही उत्सव मनाया जाने लगा। क्यों न हो, वहाँके सभी लोगोंका यदुपति श्रीकृष्णके प्रति अनन्य प्रेम जो था ॥५४॥ वहाँके सभी नर-नारी मणियोंके चमकीले कुण्डल धारण किये हुए थे। उन्होंने आनन्दमे भरकर चित्र-विचित्र वस्त्र पहने दूल्हा और दुलहिनको अनेकों भेंटकी सामग्रियाँ उपहारमे दीं ॥५५॥ उस समय द्वारकाकी अपूर्व शोभा हो रही थी। कहीं बड़ी-बड़ी पताकाएँ बहुत ऊँचेतक फहरा रही थीं। चित्र-विचित्र मालाएँ, वस्त्र और रत्नोंके तोरन बँधे हुए थे। द्वार-द्वारपर दूब, खील आदि मङ्गलकी वस्तुएँ सजायी हुई थीं। जलभरे कलश, अरगजा और धूपकी सुगन्ध तथा दीपावलीसे बड़ी ही विलक्षण शोभा हो रही थी ॥५६॥ मित्र नरपति आमन्त्रित किये गये थे। उनके मतवाले हाथियोंके मदमे द्वारकाकी सड़क और गलियोंका छिड़काव हो गया था। प्रत्येक दरवाजेपर केलोंके खंभे और सुपारीके पेड़ रोपे हुए बहुत ही भले मालूम होते थे ॥ ५७ ॥ उस उत्सवमें कुतूहलवश इधर-उधर दौड़-धूप करते हुए बन्धुवर्गोंमें कुरु, सृञ्जय, कैकय, विदर्भ, यदु और कुन्ति आदि वंशोंके लोग परस्पर आनन्द मना रहे थे ॥५८॥ जहाँ-तहाँ रुक्मिणी-हरणकी ही गाथा गायी जाने लगी। उसे सुनकर राजा और राजकन्याएँ अत्यन्त विस्मित हो गयीं ॥५९॥ महाराज ! भगवती लक्ष्मीजीको रुक्मिणीके रूपमें साक्षात् लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्णके साथ देखकर द्वारकावासी नर-नारियोंको परम आनन्द हुआ ॥६०॥

पचपनवाँ अध्याय

प्रद्युम्नका जन्म और शम्बरासुरका वध

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! कामदेव भगवान् वासुदेवके ही अंश हैं। वे पहले रुद्रभगवान्‌की क्रोधाग्निसे भस्म हो गये थे। अब फिर शरीर-प्राप्तिके लिये उन्होंने अपने अंशी भगवान् वासुदेवका ही आश्रय लिया ॥१॥ वे ही काम अबकी बार भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा रुक्मिणीजीके गर्भसे उत्पन्न हुए और प्रद्युम्न नामसे जगत्में प्रसिद्ध हुए। सौन्दर्य, वीर्य, सौशील्य आदि सद्गुणोंमें भगवान् श्रीकृष्णसे वे किसी प्रकार कम न थे ॥ २ ॥ बालक प्रद्युम्न अभी दस दिनके भी न हुए थे कि कामरूपी शम्बरासुर वेष बदलकर सूतिकागृहसे उन्हें हर ले गया और समुद्रमें फेंककर अपने घर लौट गया। उसे मालूम हो गया था कि यह मेरा भावी शत्रु है ॥ ३ ॥ समुद्रमें बालक प्रद्युम्नको एक बड़ा भारी मच्छ निगल गया। तदनन्तर मछुओंने अपने बहुत बड़े जालमें फँसाकर दूसरी मछलियोंके साथ उस मच्छको भी पकड़ लिया ॥४॥ और उन्होंने उसे ले जाकर शम्बरासुरको भेंटके रूपमें दे दिया। शम्बरासुरके रसोइये उस अद्भुत मच्छको उठाकर रसोईघरमें ले आये और कुल्हाड़ियोंसे उसे काटने लगे ॥ ५ ॥ रसोइयोंने मत्स्यके पेटमें बालक देखकर उसे शम्बरासुरकी दासी मायावतीको समर्पित किया। उसके मनमें बड़ी शङ्का हुई। तब नारदने आकर बालकका कामदेव होना, श्रीकृष्णकी पत्नी

रुक्मिणीके गर्भसे जन्म लेना, मच्छके पेटमें जाना सब कुछ कह सुनाया ॥ ६ ॥ परीक्षित् ! वह मायावती कामदेवकी यशस्विनी पत्नी रति ही थी। जिस दिन शङ्करजीके क्रोधसे कामदेवका शरीर भस्म हो गया था, उसी दिनसे वह उसकी देहके पुनः उत्पन्न होनेकी प्रतीक्षा कर रही थी ॥ ७ ॥ उसी रतिको शम्बरासुरने अपने यहाँ दाल-भात बनानेके काममें नियुक्त कर रक्खा था। जब उसे मालूम हुआ कि इस शिशुके रूपमें मेरे पति कामदेव ही हैं, तब वह उसके प्रति बहुत प्रेम करने लगी ॥ ८ ॥ श्रीकृष्णकुमार भगवान् प्रद्युम्न बहुत थोड़े दिनोंमें जवान हो गये। उनका रूप-लावण्य इतना अद्भुत था कि जो स्त्रियाँ उनकी ओर देखतीं, उनके मनमें शृङ्गार-रसका उद्दीपन हो जाता ॥ ९ ॥ कमलदलके समान कोमल एवं विशाल नेत्र घुटनोंतक लंबी-लंबी बाँहें और मनुष्यलोकमें सबसे सुन्दर शरीर ! रति सलज्ज हास्यके साथ भौंह मटकाकर उनकी ओर देखती और प्रेमसे भरकर स्त्री-पुरुषसम्बन्धी भाव व्यक्त करती हुई उनकी सेवा-शुश्रूषामें लगी रहती ॥१०॥ श्रीकृष्णनन्दन भगवान् प्रद्युम्नने उसके भावोंमें परिवर्तन देखकर कहा—'देवि ! तुम तो मेरी माँके समान हो। तुम्हारी बुद्धि उलटी कैसे हो गयी ? मैं देखता हूँ कि तुम माताका भाव छोड़कर कामिनीके समान हाव-भाव दिखा रही हो' ॥११॥

रतिने कहा—'प्रभो ! आप स्वयं भगवान् नारायणके पुत्र हैं। शम्बरासुर आपको सूतिकागृहसे चुरा लाया था। आप मेरे पति स्वयं कामदेव हैं और मैं आपकी सदाकी धर्म-पत्नी रति हूँ ॥१२॥ मेरे स्वामी ! जब आप दस दिनके भी न थे, तब इस शम्बरासुरने आपको हरकर समुद्रमें डाल दिया था। वहाँ एक मच्छ आपको निगल गया और उसीके पेटसे आप यहाँ मुझे प्राप्त हुए हैं ॥१३॥ यह शम्बरासुर सैकड़ों प्रकारकी माया जानता है। इसको अपने वशमें कर लेना या जीत लेना बहुत ही कठिन है। आप अपने इस शत्रुको मोहन आदि मायाओंके द्वारा नष्ट कर डालिये ॥१४॥ स्वामिन् ! अपनी सन्तान आपके खो जानेसे आपकी माता पुत्रस्नेहसे व्याकुल हो रही हैं, वे आतुर होकर अत्यन्त दीनतासे रात-दिन चिन्ता करती रहती हैं। उनकी ठीक वैसी ही दशा हो रही है, जैसी बच्चा खो जानेपर कुररी पक्षीकी अथवा बछड़ा खो जानेपर बेचारी गायकी होती है ॥१५॥ मायावती रतिने इस प्रकार कहकर परमशक्तिशाली प्रद्युम्नको महामाया नामकी विद्या सिखायी। यह विद्या ऐसी है, जो सब प्रकारकी मायाओंका नाश कर देती है ॥१६॥ अब प्रद्युम्नजी शम्बरासुरके पास जाकर उसपर बड़े कटु-कटु आक्षेप करने लगे। वे चाहते थे कि यह किसी प्रकार झगड़ा कर बैठे। इतना ही नहीं, उन्होंने युद्धके लिये उसे स्पष्टरूपसे ललकारा ॥१७॥

प्रद्युम्नजीके कटुवचनोंकी चोटसे शम्बरासुर तिलमिला उठा। मानो किसीने विषैले साँपको पैरसे ठोकर मार दी हो। उसकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं। वह हाथमें गदा लेकर बाहर निकल आया ॥ १८ ॥ उसने अपनी गदा बड़े जोरसे आकाशमें घुमायी और इसके बाद प्रद्युम्नजीपर चला दी। गदा चलते समय उसने इतना कर्कश सिंहनाद किया, मानो बिजली कड़क रही हो ॥१९॥ परीक्षित् ! भगवान् प्रद्युम्नने देखा कि उसकी गदा बड़े वेगसे मेरी ओर आ रही है। तब उन्होंने अपनी गदाके प्रहारसे उसकी गदा गिरा दी और क्रोधमें भरकर अपनी गदा उसपर चलायी ॥२०॥ तब वह दैत्य मयासुरकी बतलायी हुई आसुरी मायाका आश्रय लेकर आकाशमें चला गया और वहींसे प्रद्युम्नजीपर अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगा ॥२१॥ महारथी प्रद्युम्नजीपर बहुत-सी अस्त्र-वर्षा करके जब वह उन्हें पीडित करने लगा, तब उन्होंने समस्त मायाओंको शान्त करनेवाली सत्त्वमयी महाविद्याका प्रयोग किया ॥२२॥ तदनन्तर शम्बरासुरने यक्ष, गन्धर्व, पिशाच, नाग और राक्षसोंकी सैकड़ों मायाओंका प्रयोग किया, परन्तु श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्नजीने अपनी महाविद्यासे उन सबका नाश कर दिया ॥ २३ ॥ इसके बाद उन्होंने एक तीक्ष्ण तलवार उठायी और शम्बरासुरका किरीट एवं कुण्डलसे सुशोभित सिर, जो लाल-लाल दाढ़ी-मूँछोंसे बड़ा भयङ्कर लग रहा था, काटकर धड़से अलग कर दिया ॥२४॥ देवता लोग पुष्पोंकी वर्षा करते हुए स्तुति करने लगे और इसके बाद मायावती रति, जो

आकाशमें चलना जानती थी, अपने पति प्रद्युम्नजीको आकाशमार्गसे द्वारकापुरीमे ले गयी ॥२५॥

परीक्षित् ! आकाशमें अपनी गोरी पत्नीके साथ साँवले प्रद्युम्नजीकी ऐसी शोभा हो रही थी, मानो बिजली और मेघका जोड़ा हो। इस प्रकार उन्होंने भगवान्‌के उस उत्तम अन्तःपुरमें प्रवेश किया, जिसमें सैकड़ों श्रेष्ठ रमणियाँ निवास करती थीं ॥२६॥ अन्तःपुरकी नारियोंने देखा प्रद्युम्नजीका शरीर वर्षाकालीन मेघके समान श्यामवर्ण है। रेशमी पीताम्बर धारण किये हुए हैं। घुटनोंतक लम्बी भुजाएँ हैं, रतनारे नेत्र हैं। और सुन्दर मुखपर मन्द-मन्द मुसकानकी अनूठी ही छटा है। उनके मुखारविन्दपर घुँघराली और नीली अलकें इस प्रकार शोभायमान हो रही हैं, मानो भौंरे खेल रहे हों। वे सब उन्हें श्रीकृष्ण समझकर सकुचा गयीं और घरोंमे इधर-उधर लुक-छिप गयीं ॥२७-२८॥ फिर धीरे-धीरे स्त्रियोंको यह मालूम हो गया कि ये श्रीकृष्ण नहीं हैं। क्योंकि उनकी अपेक्षा इनमें कुछ विलक्षणता अवश्य है। अब वे अत्यन्त आनन्द और विस्मयसे भर-कर इस श्रेष्ठ दम्पतिके पास आ गयीं ॥ २९ ॥ इसी समय वहाँ रुक्मिणीजी आ पहुँचीं। परीक्षित् ! उनके नेत्र कजरारे और वाणी अत्यन्त मधुर थी। इस नवीन दम्पतिको देखते ही उन्हें अपने खोये हुए पुत्रकी याद हो आयी। वात्सल्यस्नेहकी अधिकतासे उनके स्तनोंसे दूध झरने लगा ॥ ३० ॥ रुक्मिणीजी सोचने लगीं—'यह नररत्न कौन है? यह कमलनयन किसका पुत्र है? किस बड़-भागिनीने इसे अपने गर्भमें धारण किया होगा? इसे यह कौन सौभाग्यवती पत्नीरूपमें प्राप्त हुई है? ॥ ३१ ॥ मेरा भी एक नन्हा-सा शिशु खो गया था। न जाने कौन उसे सूतिकागृहसे उठा ले गया! यदि वह कहीं जीता-जागता होगा तो उसकी अवस्था तथा रूप भी इसीके समान हुआ होगा ॥ ३२ ॥ मैं तो इस बातसे हैरान हूँ कि इसे भगवान् श्यामसुन्दरकी-सी रूप-रेखा, अङ्गोंकी गठन, चाल-ढाल, मुसकान-चितवन और बोल-चाल कहाँसे प्राप्त हुई? ॥ ३३ ॥ हो न हो यह वही बालक है, जिसे मैंने अपने गर्भमें धारण किया था। क्योंकि स्वभावसे ही मेरा स्नेह इसके प्रति उमड़ रहा है और मेरी बायीं बाँह भी फड़क रही है' ॥ ३४ ॥

जिस समय रुक्मिणीजी इस प्रकार सोच-विचार कर रही थीं—निश्चय और सन्देहके झूलेमें झूल रही थीं, उसी समय पवित्रकीर्ति भगवान् श्रीकृष्ण अपने माता-पिता देवकी-वसुदेवजीके साथ वहाँ पधारे ॥ ३५ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण सब कुछ जानते थे। परन्तु वे कुछ न बोले, चुपचाप खड़े रहे। इतनेमें ही नारदजी वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने प्रद्युम्नजीको शम्बरासुरका हर ले जाना, समुद्रमे फेंक देना आदि जितनी भी घटनाएँ घटित हुई थीं, वे सब कह सुनायीं ॥ ३६ ॥ नारदजी-के द्वारा यह महान् आश्चर्यमयी घटना सुनकर भगवान् श्रीकृष्णके अन्तःपुरकी स्त्रियाँ चकित हो गयीं और बहुत वर्षोंतक खोये रहनेके बाद लौटे हुए प्रद्युम्नजीका इस प्रकार अभिनन्दन करने लगीं, मानो कोई मरकर जी उठा हो ॥ ३७ ॥ देवकीजी, वसुदेवजी, भगवान् श्री-कृष्ण, बलरामजी, रुक्मिणीजी और स्त्रियाँ—सब उस नव-दम्पतिको हृदयसे लगाकर बहुत ही आनन्दित हुए ॥ ३८ ॥ जब द्वारकावासी नर-नारियोंको यह मालूम हुआ कि खोये हुए प्रद्युम्नजी लौट आये हैं, तब वे परस्पर कहने लगे—'अहो, कैसे सौभाग्यकी बात है कि यह बालक मानो मरकर फिर लौट आया' ॥३९॥ परीक्षित् ! प्रद्युम्नजीका रूप-रंग भगवान् श्रीकृष्णसे इतना मिलता-जुलता था कि उन्हें देखकर उनकी माताएँ भी उन्हे अपना पतिदेव श्रीकृष्ण समझकर मधुरभावमें मग्न हो जाती थीं और उनके सामनेसे हटकर एकान्तमें चली जाती थीं। श्रीनिकेतन भगवान्‌के प्रतिबिम्बस्वरूप कामावतार भगवान् प्रद्युम्नके दीख जानेपर ऐसा होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। फिर उन्हें देखकर दूसरी स्त्रियोंकी विचित्र दशा हो जाती थी, इसमें तो कहना ही क्या है ॥ ४० ॥

छप्पनवाँ अध्याय

स्यमन्तकमणिकी कथा, जाम्बवती और सत्यभामाके साथ श्रीकृष्णका विवाह

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! सत्राजित्ने श्रीकृष्णको झूठा कलङ्क लगाया था । फिर उस अपराधका मार्जन करनेके लिये उसने स्वयं स्यमन्तकमणिसहित अपनी कन्या सत्यभामा भगवान् श्रीकृष्णको सौंप दी ॥ १ ॥

राजा परीक्षित्ने पूछा—भगवन् ! सत्राजित्ने भगवान् श्रीकृष्णका क्या अपराध किया था ? उसे स्यमन्तकमणि कहाँसे मिली ? और उसने अपनी कन्या उन्हें क्यों दी ? ॥ २ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित् ! सत्राजित् भगवान् सूर्यका बहुत बड़ा भक्त था । वे उसकी भक्तिसे प्रसन्न होकर उसके बहुत बड़े मित्र बन गये थे । सूर्य भगवान्ने ही प्रसन्न होकर बड़े प्रेमसे उसे स्यमन्तकमणि दी थी ॥ ३ ॥ सत्राजित् उस मणिको गलेमें धारणकर ऐसा चमकने लगा, मानो स्वयं सूर्य ही हो । परीक्षित् ! जब सत्राजित् द्वारकामें आया, तब अत्यन्त तेजस्विताके कारण लोग उसे पहचान न सके ॥ ४ ॥ दूरसे ही उसे देखकर लोगोंकी आँखें उसके तेजसे चौंधिया गयीं । लोगोंने समझा कि कदाचित् स्वयं भगवान् सूर्य आ रहे हैं । उन लोगोंने भगवान्के पास आकर उन्हें इस बातकी सूचना दी । उस समय भगवान् श्रीकृष्ण चौसर खेल रहे थे ॥ ५ ॥ लोगोंने कहा—'शङ्ख-चक्र-गदाधारी नारायण ! कमलनयन दामोदर ! यदुवंशशिरोमणि गोविन्द ! आपको नमस्कार है ॥ ६ ॥ जगदीश्वर ! देखिये ! अपनी चमकीली किरणोंसे लोगोंके नेत्रोंको चौंधियाते हुए प्रचण्डरश्मि भगवान् सूर्य आपका दर्शन करने आ रहे हैं ॥ ७ ॥ प्रभो ! सभी श्रेष्ठ देवता त्रिलोकीमें आपकी प्राप्तिका मार्ग ढूँढ़ते रहते हैं; किन्तु उसे पाते नहीं । आज आपको यदुवंशमें छिपा हुआ जानकर स्वयं सूर्यनारायण आपका दर्शन करने आ रहे हैं' ॥ ८ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! अनजान पुरुषोंकी यह बात सुनकर कमलनयन भगवान् श्रीकृष्ण हँसने लगे । उन्होंने कहा—'अरे ये सूर्यदेव नहीं हैं। यह तो सत्राजित् है, जो मणिके कारण इतना चमक रहा है ॥ ९ ॥ इसके बाद सत्राजित् अपने समृद्ध घरमें चला आया । घरपर उसके शुभागमनके उपलक्ष्यमें मङ्गल-उत्सव मनाया जा रहा था । उसने ब्राह्मणोंके द्वारा स्यमन्तकमणिको एक देवमन्दिरमें स्थापित करा दिया ।१०। परीक्षित् ! वह मणि प्रतिदिन आठ भार* सोना दिया करती थी । और जहाँ वह पूजित होकर रहती थी, वहाँ दुर्भिक्ष, महामारी, ग्रहपीडा, सर्पभय, मानसिक और शारीरिक व्यथा तथा मायावियोंका उपद्रव आदि कोई भी अशुभ नहीं होता था ॥ ११ ॥ एक बार भगवान् श्रीकृष्णने प्रसङ्गवश कहा—'सत्राजित् ! तुम अपनी मणि राजा उग्रसेनको दे दो ।' परन्तु वह इतना अर्थ-लोलुप—लोभी था कि भगवान्की आज्ञाका उल्लङ्घन होगा, इसका कुछ भी विचार न करके उसे अस्वीकार कर दिया ॥ १२ ॥

एक दिन सत्राजित्के भाई प्रसेनने उस परम प्रकाशमयी मणिको अपने गलेमें धारण कर लिया और फिर वह घोड़ेपर सवार होकर शिकार खेलने वनमें चला गया ॥ १३ ॥ वहाँ एक सिंहने घोड़ेसहित प्रसेनको मार डाला और उस मणिको छीन लिया । वह अभी पर्वतकी गुफामें प्रवेश कर ही रहा था कि मणिके लिये ऋक्षराज जाम्बवान्ने उसे मार डाला ॥ १४ ॥ उन्होंने वह मणि अपनी गुफामें

---

* भारका परिमाण इस प्रकार है—

चतुर्भिर्व्रीहिभिर्गुञ्जं गुञ्जान्पञ्च पणं पणान् ।
अष्टौ धरणमष्टौ च कर्षं तांश्चतुरः पलम् ।
तुला पलशतं प्राहुर्भारं स्याद्विंशतिस्तुलाः ॥

अर्थात् 'चार व्रीहि (धान) की एक गुञ्जा, पाँच गुञ्जाका एक पण, आठ पणका एक धरण, आठ धरणका एक कर्ष, चार कर्षका एक पल, सौ पलकी एक तुला और बीस तुलाका एक भार कहलाता है ।

ले जाकर बच्चेको खेलनेके लिये दे दी। अपने भाई प्रसेनके न लौटनेसे उसके भाई सत्राजित्को बड़ा दुःख हुआ ॥ १५ ॥ वह कहने लगा, 'बहुत सम्भव है श्रीकृष्णने ही मेरे भाईको मार डाला हो। क्योंकि वह मणि गलेमें डालकर वनमे गया था।' सत्राजित्की यह बात सुनकर लोग आपसमें काना-फूँसी करने लगे ॥१६॥ जब भगवान् श्रीकृष्णने सुना कि यह कलङ्कका टीका मेरे ही सिर लगाया गया है, तब वे उसे धो-बहानेके उद्देश्यसे नगरके कुछ सभ्य पुरुषोंको साथ लेकर प्रसेनको ढूँढ़नेके लिये वनमें गये ॥ १७ ॥ वहाँ खोजते-खोजते लोगोंने देखा कि घोर जंगलमें सिंहने प्रसेन और उसके घोड़ेको मार डाला है। जब वे लोग सिंहके पैरोंका चिह्न देखते हुए आगे बढ़े, तब उन लोगोंने यह भी देखा कि पर्वतपर एक रीछने सिंहको भी मार डाला है ॥ १८ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने सब लोगोंको बाहर ही बिठा दिया और अकेले ही घोर अन्धकारसे भरी हुई ऋक्षराजकी भयङ्कर गुफामें प्रवेश किया ॥ १९ ॥ भगवान्ने वहाँ जाकर देखा कि श्रेष्ठ मणि स्यमन्तकको बच्चोंका खिलौना बना दिया गया है। वे उसे हर लेनेकी इच्छासे बच्चेके पास जा खड़े हुए ॥ २० ॥ उस गुफामे एक अपरिचित मनुष्यको देखकर बच्चेकी धाय भयभीतकी भाँति चिल्ला उठी। उसकी चिल्लाहट सुनकर परम बली ऋक्षराज जाम्बवान् क्रोधित होकर वहाँ दौड़ आये ॥२१॥ परीक्षित् ! जाम्बवान् उस समय कुपित हो रहे थे। उन्हें भगवान्की महिमा, उनके प्रभावका पता न चला। उन्होंने उन्हें एक साधारण मनुष्य समझ लिया और वे अपने स्वामी भगवान् श्रीकृष्णसे युद्ध करने लगे॥ २२ ॥ जिस प्रकार मासके लिये दो बाज आपसमें लड़ते हैं, वैसे ही विजयाभिलाषी भगवान् श्रीकृष्ण और जाम्बवान् आपसमें घमासान युद्ध करने लगे। पहले तो उन्होंने अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार किया, फिर शिलाओंका। तत्पश्चात् वे वृक्ष उखाड़कर एक दूसरेपर फेंकने लगे। अन्तमें उनमें बाहुयुद्ध होने लगा ॥२३॥ परीक्षित् ! वज्र-प्रहारके समान कठोर घूँसोंसे आपसमें वे अट्ठाईस दिनतक बिना विश्राम किये रात-दिन लड़ते रहे ॥ २४ ॥ अन्तमें भगवान् श्रीकृष्णके घूँसोंकी चोटसे जाम्बवान्के शरीरकी एक-एक गाँठ टूट-फूट गयी। उत्साह जाता रहा। शरीर पसीनेसे लथ-पथ हो गया। तब उन्होंने अत्यन्त विस्मित—चकित होकर भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—॥ २५ ॥ प्रभो ! मैं जान गया। आप ही समस्त प्राणियोंके स्वामी, रक्षक, पुराणपुरुष भगवान् विष्णु हैं। आप ही सबके प्राण, इन्द्रियबल, मनोबल और शरीरबल हैं ॥ २६ ॥ आप विश्वके रचयिता ब्रह्मा आदिको भी बनानेवाले हैं। बनाये हुए पदार्थोंमें भी सत्तारूपसे आप ही विराजमान हैं। कालके जितने भी अवयव हैं, उनके नियामक परम काल आप ही हैं और शरीर-भेदसे भिन्न-भिन्न प्रतीयमान अन्तरात्माओंके परम आत्मा भी आप ही हैं ॥ २७ ॥ प्रभो ! मुझे स्मरण है, आपने अपने नेत्रोंमें तनिक-सा क्रोधका भाव लेकर तिरछी दृष्टिसे समुद्रकी ओर देखा था। उस समय समुद्रके अंदर रहनेवाले बड़े-बड़े नाक (घड़ियाल) और मगरमच्छ क्षुब्ध हो गये थे और समुद्रने आपको मार्ग दे दिया था। तब आपने उसपर सेतु बाँधकर सुन्दर यशकी स्थापना की तथा लङ्काका विध्वंस किया। आपके बाणोंसे कट-कटकर राक्षसोंके सिर पृथ्वीपर लोट रहे थे। (अवश्य ही आप मेरे वे ही 'रामजी' श्रीकृष्णके रूपमे आये हैं)' ॥ २८ ॥ परीक्षित् ! जब ऋक्षराज जाम्बवान्ने भगवान्को पहचान लिया, तब कमलनयन श्रीकृष्णने अपने परमकल्याणकारी शीतल करकमलको उनके शरीरपर फेर दिया और फिर अहैतुकी कृपासे भरकर प्रेमगम्भीरवाणीसे अपने भक्त जाम्बवान्-जीसे कहा—॥२९-३०॥ 'ऋक्षराज ! हम मणिके लिये ही तुम्हारी इस गुफामें आये हैं। इस मणिके द्वारा मैं अपनेपर लगे झूठे कलङ्कको मिटाना चाहता हूँ' ॥३१॥ भगवान्के ऐसा कहनेपर जाम्बवान्ने बड़े आनन्दसे उनकी पूजा करनेके लिये अपनी कन्या कुमारी जाम्बवती-को मणिके साथ उनके चरणोंमें समर्पित कर दिया। ३२।

भगवान् श्रीकृष्ण जिन लोगोंको गुफाके बाहर छोड़ गये थे, उन्होंने बारह दिनतक उनकी प्रतीक्षा की। परन्तु जब उन्होंने देखा कि अबतक वे गुफामेंसे नहीं निकले, तब वे अत्यन्त दुखी होकर द्वारकाको लौट गये ॥ ३३ ॥ वहाँ जब माता देवकी, रुक्मिणी, वसुदेवजी तथा अन्य सम्बन्धियों और कुटुम्बियोंको यह

मालूम हुआ कि श्रीकृष्ण गुफामेंसे नहीं निकले, तब उन्हें बड़ा शोक हुआ ॥ ३४ ॥ सभी द्वारकावासी अत्यन्त दुःखित होकर सत्राजित्को भला-बुरा कहने लगे और भगवान् श्रीकृष्णकी प्राप्तिके लिये महामाया दुर्गादेवीकी शरणमें गये, उनकी उपासना करने लगे ॥ ३५ ॥ उनकी उपासनासे दुर्गादेवी प्रसन्न हुईं और उन्होंने आशीर्वाद दिया। उसी समय उनके बीचमें मणि और अपनी नववधू जाम्बवतीके साथ सफलमनोरथ होकर श्रीकृष्ण सबको प्रसन्न करते हुए प्रकट हो गये ॥ ३६ ॥ सभी द्वारकावासी भगवान् श्रीकृष्णको पत्नीके साथ और गलेमें मणि धारण किये हुए देखकर परमानन्दमें मग्न हो गये, मानो कोई मरकर लौट आया हो ॥ ३७ ॥

तदनन्तर भगवान्ने सत्राजित्को राजसभामें महाराज उग्रसेनके पास बुलवाया और जिस प्रकार मणि प्राप्त हुई थी, वह सब कथा सुनाकर उन्होंने वह मणि सत्राजित्को सौंप दी ॥ ३८ ॥ सत्राजित् अत्यन्त लज्जित हो गया। मणि तो उसने ले ली, परन्तु उसका मुँह नीचेकी ओर लटक गया। अपने अपराधपर उसे बड़ा पश्चात्ताप हो रहा था, किसी प्रकार वह अपने घर पहुँचा ॥ ३९ ॥ उसके मनकी आँखोंके सामने निरन्तर अपना अपराध नाचता रहता। बलवान्के साथ विरोध करनेके कारण वह भयभीत भी हो गया था। अब वह यही सोचता रहता कि 'मैं अपने अपराधका मार्जन कैसे करूँ? मुझपर भगवान् श्रीकृष्ण कैसे प्रसन्न हों ॥ ४० ॥ मैं ऐसा कौन-सा काम करूँ, जिससे मेरा कल्याण हो और लोग मुझे कोसें नहीं। सचमुच मैं अदूरदर्शी, क्षुद्र हूँ। धनके लोभसे मैं बड़ी मूढ़ताका काम कर बैठा ॥ ४१ ॥ अब मैं रमणियोंमें रत्नके समान अपनी कन्या सत्यभामा और वह स्यमन्तकमणि दोनों ही श्रीकृष्णको दे दूँ। यह उपाय बहुत अच्छा है। इसीसे मेरे अपराधका मार्जन हो सकता है, और कोई उपाय नहीं है' ॥ ४२ ॥ सत्राजित्ने अपनी विवेक-बुद्धिसे ऐसा निश्चय करके स्वयं ही इसके लिये उद्योग किया और अपनी कन्या तथा स्यमन्तकमणि दोनों ही ले जाकर श्रीकृष्णको अर्पण कर दीं ॥ ४३ ॥ सत्यभामा शील-स्वभाव, सुन्दरता, उदारता आदि सद्गुणोंसे सम्पन्न थीं। बहुत-से लोग चाहते थे कि सत्यभामा हमें मिलें और उन लोगोंने उन्हें माँगा भी था। परन्तु अब भगवान् श्रीकृष्णने विधिपूर्वक उनका पाणिग्रहण किया ॥ ४४ ॥ परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णने सत्राजित्से कहा—'हम स्यमन्तकमणि न लेंगे। आप सूर्य-भगवान्के भक्त हैं, इसलिये वह आपके ही पास रहे। हम तो केवल उसके फलके, अर्थात् उससे निकले हुए सोनेके अधिकारी हैं। वही आप हमें दे दिया करें' ॥ ४५ ॥

सत्तावनवाँ अध्याय

स्यमन्तक-हरण, शतधन्वाका उद्धार और अक्रूरजीको फिरसे द्वारका बुलाना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! यद्यपि भगवान् श्रीकृष्णको इस बातका पता था कि लाक्षागृहकी आगसे पाण्डवोंका बाल भी बाँका नहीं हुआ है, तथापि जब उन्होंने सुना कि कुन्ती और पाण्डव जल मरे, तब उस समयका कुल-परम्परोचित व्यवहार करनेके लिये वे बलराम-जीके साथ हस्तिनापुर गये ॥ १ ॥ वहाँ जाकर भीष्म-पितामह, कृपाचार्य, विदुर, गान्धारी और द्रोणाचार्यसे मिलकर उनके साथ समवेदना—सहानुभूति प्रकट की और उन लोगोंसे कहने लगे—'हाय-हाय! यह तो बड़े ही दुःखकी बात हुई' ॥ २ ॥

भगवान् श्रीकृष्णके हस्तिनापुर चले जानेसे द्वारकामें अक्रूर और कृतवर्माको अवसर मिल गया। उन लोगोंने शतधन्वासे आकर कहा—'तुम सत्राजित्से मणि क्यों नहीं छीन लेते? ॥ ३ ॥ सत्राजित्ने अपनी श्रेष्ठ कन्या सत्यभामाका विवाह हमसे करनेका वचन दिया था और अब उसने हमलोगोंका तिरस्कार करके उसे श्रीकृष्णके साथ ब्याह दिया है। अब सत्राजित् भी अपने भाई प्रसेनकी तरह क्यों न यमपुरीमें जाय?' ॥ ४ ॥ शतधन्वा पापी था और अब तो उसकी मृत्यु भी

उसके सिरपर नाच रही थी। अक्रूर और कृतवर्माके इस प्रकार बहकानेपर शतधन्वा उनकी बातोंमें आ गया और उस महादुष्टने लोभवश सोये हुए सत्राजित्को मार डाला ॥ ५ ॥ इस समय स्त्रियाँ अनाथके समान रोने-चिल्लाने लगीं; परन्तु शतधन्वाने उनकी ओर तनिक भी ध्यान न दिया, जैसे कसाई पशुओंकी हत्या कर डालता है वैसे ही वह सत्राजित्को मारकर और मणि लेकर वहाँसे चंपत हो गया ॥ ६ ॥

सत्यभामाजीको यह देखकर कि मेरे पिता मार डाले गये हैं, बड़ा शोक हुआ और वे 'हाय पिताजी ! हाय पिताजी ! मैं मारी गयी'—इस प्रकार पुकार-पुकारकर विलाप करने लगीं। बीच-बीचमें वे बेहोश हो जातीं और होशमें आनेपर फिर विलाप करने लगतीं ॥ ७ ॥ इसके बाद उन्होंने अपने पिताके शवको तेलके कड़ाहेमें रखवा दिया और आप हस्तिनापुरको गयीं। उन्होंने बड़े दुःखसे भगवान् श्रीकृष्णको अपने पिताकी हत्याका वृत्तान्त सुनाया— यद्यपि इन बातोंको भगवान् श्रीकृष्ण पहलेसे ही जानते थे ॥ ८ ॥ परीक्षित् ! सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीने सब सुनकर मनुष्योंकी-सी लीला करते हुए अपनी आँखोंमें आँसू भर लिये और विलाप करने लगे कि 'अहो ! हम-लोगोंपर तो यह बहुत बड़ी विपत्ति आ पड़ी !' ॥९॥ इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण सत्यभामाजी और बलराम-जीके साथ हस्तिनापुरसे द्वारका लौट आये और शत-धन्वाको मारने तथा उससे मणि छीननेका उद्योग करने लगे ॥ १० ॥

जब शतधन्वाको यह मालूम हुआ कि भगवान् श्रीकृष्ण मुझे मारनेका उद्योग कर रहे हैं, तब वह बहुत डर गया और अपने प्राण बचानेके लिये उसने कृतवर्मासे सहायता माँगी। तब कृतवर्माने कहा—॥ ११ ॥ 'भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी सर्वशक्तिमान् ईश्वर हैं। मैं उनका सामना नहीं कर सकता। भला, ऐसा कौन है, जो उनके साथ वैर बाँधकर इस लोक और परलोकमें सकुशल रह सके ? ॥ १२ ॥ तुम जानते हो कि कंस उन्हींसे द्वेष करनेके कारण राज्य-लक्ष्मीको खो बैठा और अपने अनुयायियोंके साथ मारा गया। जरासन्ध-जैसे शूरवीरको भी उनके सामने सत्रह बार मैदानमें हारकर बिना रथके ही अपनी राजधानीमें लौट जाना पड़ा था' ॥ १३ ॥ जब कृतवर्माने उसे इस प्रकार टका-सा जवाब दे दिया, तब शतधन्वाने सहायताके लिये अक्रूरजीसे प्रार्थना की। उन्होंने कहा—'भाई ! ऐसा कौन है, जो सर्वशक्तिमान् भगवान्का बल-पौरुष जान-कर भी उनसे वैर-विरोध ठाने। जो भगवान् खेल-खेलमें ही इस विश्वकी रचना, रक्षा और संहार करते हैं तथा जो कब क्या करना चाहते हैं—इस बातको मायासे मोहित ब्रह्मा आदि विश्व-विधाता भी नहीं समझ पाते; जिन्होंने सात वर्षकी अवस्थामें—जब वे निरे बालक थे, एक हाथसे ही गिरिराज गोवर्द्धनको उखाड़ लिया और जैसे नन्हे-नन्हे बच्चे बरसाती छत्तेको उखाड़कर हाथमें रख लेते हैं, वैसे ही खेल-खेलमें सात दिनोंतक उसे उठाये रक्खा; मैं तो उन भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार करता हूँ। उनके कर्म अद्भुत हैं। वे अनन्त, अनादि, एकरस और आत्मस्वरूप हैं। मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ' ॥ १४—१७ ॥ जब इस प्रकार अक्रूरजीने भी उसे कोरा जवाब दे दिया, तब शतधन्वाने स्यमन्तक-मणि उन्हींके पास रख दी और आप चार सौ कोस लगातार चलनेवाले घोड़ेपर सवार होकर वहाँसे बड़ी फुर्तीसे भागा ॥ १८ ॥

परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम दोनों भाई अपने उस रथपर सवार हुए, जिसपर गरुड़चिह्नसे चिह्नित ध्वजा फहरा रही थी और बड़े वेगवाले घोड़े जुते हुए थे। अब उन्होंने अपने श्वशुर सत्राजित्को मारनेवाले शतधन्वाका पीछा किया ॥ १९ ॥ मिथिला-पुरीके निकट एक उपवनमें शतधन्वाका घोडा गिर पड़ा, अब वह उसे छोड़कर पैदल ही भागा। वह अत्यन्त भयभीत हो गया था। भगवान् श्रीकृष्ण भी क्रोध करके उसके पीछे दौड़े ॥ २० ॥ शतधन्वा पैदल ही भाग रहा था, इसलिये भगवान्ने भी पैदल ही दौड़कर अपने तीक्ष्ण धारवाले चक्रसे उसका सिर उतार लिया और उसके वस्त्रोंमें स्यमन्तकमणिको ढूँढ़ा ॥ ॥ २१ ॥ परन्तु जब मणि मिली नहीं, तब भगवान् श्रीकृष्णने

बड़े भाई बलरामजीके पास आकर कहा—'हमने शतधन्वाको व्यर्थ ही मारा। क्योंकि उसके पास स्यमन्तकमणि तो है ही नहीं' ॥ २२ ॥ बलरामजीने कहा—'इसमें सन्देह नहीं कि शतधन्वाने स्यमन्तकमणिको किसी-न-किसीके पास रख दिया है। अब तुम द्वारका जाओ और उसका पता लगाओ ॥ २३ ॥ मैं विदेहराजसे मिलना चाहता हूँ; क्योंकि वे मेरे बहुत ही प्रिय मित्र हैं।' परीक्षित्! यह कहकर यदुवंशशिरोमणि बलरामजी मिथिला नगरीमें चले गये ॥ २४ ॥ जब मिथिलानरेशने देखा कि पूजनीय बलरामजी महाराज पधारे हैं, तब उनका हृदय आनन्दसे भर गया। उन्होंने झटपट अपने आसनसे उठकर अनेक सामग्रियोंसे उनकी पूजा की ॥ २५ ॥ इसके बाद भगवान् बलरामजी कई वर्षोंतक मिथिलापुरीमें ही रहे। महात्मा जनकने बड़े प्रेम और सम्मानसे उन्हें रक्खा। इसके बाद समयपर धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनने बलरामजीसे गदायुद्धकी शिक्षा ग्रहण की ॥ २६ ॥ अपनी प्रिया सत्यभामाका प्रिय कार्य करके भगवान् श्रीकृष्ण द्वारका लौट आये और उनको यह समाचार सुना दिया कि शतधन्वाको मार डाला गया, परन्तु स्यमन्तकमणि उसके पास न मिली ॥२७॥ इसके बाद उन्होंने भाई-बन्धुओंके साथ अपने श्वशुर सत्राजित्‌की वे सब और्ध्वदैहिक क्रियाएँ करवायीं, जिनसे मृतक प्राणीका परलोक सुधरता है ॥ २८ ॥

अक्रूर और कृतवर्माने शतधन्वाको सत्राजित्‌के वधके लिये उत्तेजित किया था। इसलिये जब उन्होंने सुना कि भगवान् श्रीकृष्णने शतधन्वाको मार डाला है, तब वे अत्यन्त भयभीत होकर द्वारकासे भाग खड़े हुए ॥२९॥ परीक्षित्! कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि अक्रूरके द्वारकासे चले जानेपर द्वारका-वासियोंको बहुत प्रकारके अनिष्टों और अरिष्टोंका सामना करना पड़ा। दैविक और भौतिक निमित्तोंसे बार-बार वहाँके नागरिकोंको शारीरिक और मानसिक कष्ट सहना पड़ा। परन्तु जो लोग ऐसा कहते हैं, वे पहले कही हुई बातोंको भूल जाते हैं। भला, यह भी कभी सम्भव है कि जिन भगवान् श्रीकृष्णमें समस्त ऋषि-मुनि निवास करते हैं, उनके निवासस्थान द्वारकामें उनके रहते कोई उपद्रव खड़ा हो जाय ॥ ३०-३१ ॥ उस समय नगरके बड़े-बूढ़े लोगोंने कहा—'एक बार काशी-नरेशके राज्यमें वर्षा नहीं हो रही थी, सूखा पड़ गया था। तब उन्होंने अपने राज्यमे आये हुए अक्रूरके पिता श्वफल्कको अपनी पुत्री गान्दिनी ब्याह दी। तब उस प्रदेशमें वर्षा हुई। अक्रूर भी श्वफल्कके ही पुत्र हैं और इनका प्रभाव भी वैसा ही है। इसलिये जहाँ-जहाँ अक्रूर रहते हैं, वहाँ-वहाँ खूब वर्षा होती है तथा किसी प्रकारका कष्ट और महामारी आदि उपद्रव नहीं होते।' परीक्षित्! उन लोगोंकी बात सुनकर भगवान्‌ने सोचा कि 'इस उपद्रवका यही कारण नहीं है' यह जानकर भी भगवान्‌ने दूत भेजकर अक्रूरजीको ढुँढ़वाया और आनेपर उनसे बातचीत की ॥३२—३४॥ भगवान्‌ने उनका खूब स्वागत-सत्कार किया और मीठी-मीठी प्रेमकी बातें कहकर उनसे सम्भाषण किया। परीक्षित्! भगवान् सबके चित्तका एक-एक सङ्कल्प देखते रहते हैं। इसलिये उन्होंने मुसकराते हुए अक्रूरसे कहा—॥ ३५ ॥ 'चाचाजी! आप दान-धर्मके पालक हैं। हमें यह बात पहलेसे ही मालूम है कि शतधन्वा आपके पास वह स्यमन्तकमणि छोड़ गया है, जो बड़ी ही प्रकाशमान और धन देनेवाली है ॥ ३६ ॥ आप जानते ही हैं कि सत्राजित्‌के कोई पुत्र नहीं है। इसलिये उनकी लड़कीके लड़के—उनके नाती ही उन्हें तिलाञ्जलि और पिण्डदान करेंगे, उनका ऋण चुकायेंगे और जो कुछ बच रहेगा, उसके उत्तराधिकारी होंगे ॥३७॥ इस प्रकार शास्त्रीय दृष्टिसे यद्यपि स्यमन्तकमणि हमारे पुत्रोंको ही मिलनी चाहिये, तथापि वह मणि आपके ही पास रहे। क्योंकि आप बड़े व्रतनिष्ठ और पवित्रात्मा हैं तथा दूसरोंके लिये उस मणिको रखना अत्यन्त कठिन भी है। परन्तु हमारे सामने एक बहुत बड़ी कठिनाई यह आ गयी है कि हमारे बड़े भाई बलरामजी मणिके सम्बन्धमें मेरी बातका पूरा विश्वास नहीं करते ॥३८॥ इसलिये महाभाग्यवान् अक्रूरजी! आप वह मणि दिखाकर हमारे इष्ट-मित्र—बलरामजी, सत्यभामा और जाम्बवतीका सन्देह दूर कर दीजिये और उनके हृदयमें शान्तिका सञ्चार कीजिये। हमें पता है कि उसी

मणिके प्रतापसे आजकल आप लगातार ही ऐसे यज्ञ करते रहते हैं, जिनमें सोनेकी वेदियाँ बनती हैं' ॥३९॥ परीक्षित्! जब भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार सान्त्वना देकर उन्हें समझाया-बुझाया, तब अक्रूरजीने वस्त्रमें लपेटी हुई सूर्यके समान प्रकाशमान वह मणि निकाली और भगवान् श्रीकृष्णको दे दी ॥ ४० ॥ भगवान् श्रीकृष्णने वह स्यमन्तकमणि अपने जाति-भाइयोंको दिखाकर अपना कलङ्क दूर किया और उसे अपने पास रखनेमें समर्थ होनेपर भी पुनः अक्रूरजीको लौटा दिया ॥ ४१ ॥

सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापक भगवान् श्रीकृष्णके पराक्रमोंसे परिपूर्ण यह आख्यान समस्त पापों, अपराधों और कलङ्कोंका मार्जन करनेवाला तथा परम मङ्गलमय है। जो इसे पढ़ता, सुनता अथवा स्मरण करता है, वह सब प्रकारकी अपकीर्ति और पापोंसे छूटकर शान्तिका अनुभव करता है ॥ ४२ ॥

अट्ठावनवाँ अध्याय

भगवान् श्रीकृष्णके अन्यान्य विवाहोंकी कथा

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! अब पाण्डवोंका पता चल गया था कि वे लाक्षाभवनमें जले नहीं हैं। एक बार भगवान् श्रीकृष्ण उनसे मिलनेके लिये इन्द्रप्रस्थ पधारे। उनके साथ सात्यकि आदि बहुत-से यदुवंशी भी थे ॥ १ ॥ जब वीर पाण्डवोंने देखा कि सर्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण पधारे हैं तो जैसे प्राणका सञ्चार होनेपर सभी इन्द्रियाँ सचेत हो जाती हैं, वैसे ही वे सब-के-सब एक साथ उठ खड़े हुए ॥ २ ॥ वीर पाण्डवोंने भगवान् श्रीकृष्णका आलिङ्गन किया, उनके अङ्ग-सङ्गसे इनके सारे पाप-ताप धुल गये। भगवान्‌की प्रेमभरी मुसकराहटसे सुशोभित मुख-सुषमा देखकर वे आनन्दमें मग्न हो गये ॥ ३ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने युधिष्ठिर और भीमसेनके चरणोंमें प्रणाम किया और अर्जुनको हृदयसे लगाया। नकुल और सहदेवने भगवान्‌के चरणोंकी वन्दना की ॥ ४ ॥ जब भगवान् श्रीकृष्ण श्रेष्ठ सिंहासनपर विराजमान हो गये; तब परमसुन्दरी श्यामवर्णा द्रौपदी, जो नवविवाहिता होनेके कारण तनिक लजा रही थी, धीरे-धीरे भगवान् श्रीकृष्णके पास आयी और उन्हें प्रणाम किया ॥ ५ ॥ पाण्डवोंने भगवान् श्रीकृष्णके समान ही वीर सात्यकिका भी स्वागत-सत्कार और अभिनन्दन-वन्दन किया। वे एक आसनपर बैठ गये। दूसरे यदुवंशियोंका भी यथायोग्य सत्कार किया गया तथा वे भी श्रीकृष्णके चारों ओर आसनोंपर बैठ गये ॥ ६ ॥ इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण अपनी फूआ कुन्तीके पास गये और उनके चरणोंमें प्रणाम किया। कुन्तीजीने अत्यन्त स्नेहवश उन्हें अपने हृदयसे लगा लिया। उस समय उनके नेत्रोंमें प्रेमके आँसू छलक आये। कुन्तीजीने श्रीकृष्णसे अपने भाई-बन्धुओंकी कुशल-क्षेम पूछी और भगवान्‌ने भी उनका यथोचित उत्तर देकर उनसे उनकी पुत्रवधू द्रौपदी और स्वयं उनका कुशल-मङ्गल पूछा ॥ ७ ॥ उस समय प्रेमकी विह्वलतासे कुन्तीजीका गला रूँध गया था, नेत्रोंसे आँसू बह रहे थे। भगवान्‌के पूछनेपर उन्हें अपने पहलेके क्लेश-पर-क्लेश याद आने लगे और वे अपनेको बहुत सम्हालकर, जिनका दर्शन समस्त क्लेशोंका अन्त करनेके लिये ही हुआ करता है, उन भगवान् श्रीकृष्णसे कहने लगीं— ॥ ८ ॥ 'श्रीकृष्ण! जिस समय तुमने हमलोगोंको अपना कुटुम्बी, सम्बन्धी समझकर स्मरण किया और हमारा कुशल-मङ्गल जाननेके लिये भाई अक्रूरको भेजा, उसी समय हमारा कल्याण हो गया, हम अनाथोंको तुमने सनाथ कर दिया ॥ ९ ॥ मैं जानती हूँ कि तुम सम्पूर्ण जगत्‌के परम हितैषी सुहृद् और आत्मा हो। यह अपना है और यह पराया, इस प्रकारकी भ्रान्ति तुम्हारे अंदर नहीं है। ऐसा होनेपर भी, श्रीकृष्ण! जो सदा तुम्हें स्मरण करते हैं, उनके हृदयमें आकर तुम बैठ जाते हो और उनकी क्लेश-परम्पराको सदाके लिये मिटा देते हो' ॥ १० ॥

युधिष्ठिरजीने कहा—'सर्वेश्वर श्रीकृष्ण! हमें इस बातका पता नहीं है कि हमने अपने पूर्वजन्मोंमें या इस जन्ममें कौन-सा कल्याण-साधन किया है! आपका दर्शन बड़े-बड़े योगेश्वर भी बड़ी कठिनतासे प्राप्त कर पाते हैं

और हम कुबुद्धियोंको घर बैठे ही आपके दर्शन हो रहे हैं' ॥ ११ ॥ राजा युधिष्ठिरने इस प्रकार भगवान्‌का खूब सम्मान किया और कुछ दिन वहीं रहनेकी प्रार्थना की। इसपर भगवान् श्रीकृष्ण इन्द्रप्रस्थके नर-नारियोंको अपनी रूपमाधुरीसे नयनानन्दका दान करते हुए बरसातके चार महीनोंतक सुखपूर्वक वहीं रहे ॥ १२ ॥

परीक्षित्! एक बार वीरशिरोमणि अर्जुनने गाण्डीव धनुष और अक्षय बाणवाले दो तरकस लिये तथा भगवान् श्रीकृष्णके साथ कवच पहनकर अपने उस रथपर सवार हुए, जिसपर वानर-चिह्नसे चिह्नित ध्वजा लगी हुई थी। इसके बाद विपक्षी वीरोंका नाश करनेवाले अर्जुन उस गहन वनमें शिकार खेलने गये, जो बहुत-से सिंह, बाघ आदि भयङ्कर जानवरोंसे भरा हुआ था ॥ १३-१४ ॥ वहाँ उन्होंने बहुत-से बाघ, सूअर, भैंसे, काले हरिन, शरभ, गवय (नीलापन लिये हुए भूरे रंगका एक बड़ा हिरन), गैंडे, हरिन, खरगोश और शल्लक (साही) आदि पशुओंपर अपने बाणोंका निशाना लगाया ॥१५॥ उनमेंसे जो यज्ञके योग्य थे, उन्हें सेवकगण पर्वका समय जानकर राजा युधिष्ठिरके पास ले गये। अर्जुन शिकार खेलते-खेलते थक गये थे। अब वे प्यास लगनेपर यमुनाजीके किनारे गये ॥ १६ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों महारथियोंने यमुनाजीमें हाथ-पैर धोकर उनका निर्मल जल पीया और देखा कि एक परमसुन्दरी कन्या वहाँ तपस्या कर रही है ॥ १७ ॥ उस श्रेष्ठ सुन्दरीकी जंघा, दाँत और मुख अत्यन्त सुन्दर थे। अपने प्रिय मित्र श्रीकृष्णके भेजनेपर अर्जुनने उसके पास जाकर पूछा—॥ १८ ॥ 'सुन्दरी! तुम कौन हो? किसकी पुत्री हो? कहाँसे आयी हो? और क्या करना चाहती हो? मैं ऐसा समझता हूँ कि तुम अपने योग्य पति चाह रही हो। हे कल्याणि! तुम अपनी सारी बात बतलाओ' ॥ १९ ॥

कालिन्दीने कहा—'मैं भगवान् सूर्यदेवकी पुत्री हूँ। मैं सर्वश्रेष्ठ वरदानी भगवान् विष्णुको पतिके रूपमें प्राप्त करना चाहती हूँ और इसीलिये यह कठोर तपस्या कर रही हूँ ॥ २० ॥ वीर अर्जुन! मैं लक्ष्मीके परम आश्रय भगवान्‌को छोड़कर और किसीको अपना पति नहीं बना सकती। अनाथोंके एकमात्र सहारे, प्रेम वितरण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण मुझपर प्रसन्न हों ॥२१॥ मेरा नाम है कालिन्दी। यमुनाजलमें मेरे पिता सूर्यने मेरे लिये एक भवन भी बनवा दिया है। उसीमें मैं रहती हूँ। जबतक भगवान्‌का दर्शन न होगा, मैं यहीं रहूँगी' ॥२२॥ अर्जुनने जाकर भगवान् श्रीकृष्णसे सारी बातें कहीं। वे तो पहलेसे ही यह सब कुछ जानते थे, अब उन्होंने कालिन्दीको अपने रथपर बैठा लिया और धर्मराज युधिष्ठिरके पास ले आये ॥ २३ ॥

इसके बाद पाण्डवोंकी प्रार्थनासे भगवान् श्रीकृष्णने पाण्डवोंके रहनेके लिये एक अत्यन्त अद्भुत और विचित्र नगर विश्वकर्माके द्वारा बनवा दिया ॥ २४ ॥ भगवान् इस बार पाण्डवोंको आनन्द देने और उनका हित करनेके लिये वहाँ बहुत दिनोंतक रहे। इसी बीच अग्निदेवको खाण्डव-वन दिलानेके लिये वे अर्जुनके सारथी भी बने ॥ २५ ॥ खाण्डव-वनका भोजन मिल जानेसे अग्निदेव बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने अर्जुनको गाण्डीव धनुष, चार श्वेत घोड़े, एक रथ, दो अटूट बाणोंवाले तरकस और एक ऐसा कवच दिया, जिसे कोई अस्त्र-शस्त्रधारी भेद न सके ॥ २६ ॥ खाण्डवदाहके समय अर्जुनने मय दानवको जलनेसे बचा लिया था। इसलिये उसने अर्जुनसे मित्रता करके उनके लिये एक परम अद्भुत सभा बना दी। उसी सभामें दुर्योधनको जलमें स्थल और स्थलमें जलका भ्रम हो गया था ॥ २७ ॥

कुछ दिनोंके बाद भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनकी अनुमति एवं अन्य सम्बन्धियोंका अनुमोदन प्राप्त करके सात्यकि आदिके साथ द्वारका लौट आये ॥ २८ ॥ वहाँ आकर उन्होंने विवाहके योग्य ऋतु और ज्यौतिषशास्त्रके अनुसार प्रशंसित पवित्र लग्नमें कालिन्दीजीका पाणिग्रहण किया। इससे उनके स्वजन-सम्बन्धियोंको परम मङ्गल और परमानन्दकी प्राप्ति हुई ॥ २९ ॥

अवन्ती (उज्जैन) देशके राजा थे विन्द और अनुविन्द। वे दुर्योधनके वशवर्ती तथा अनुयायी थे। उनकी बहिन मित्रविन्दाने स्वयंवरमें भगवान् श्रीकृष्णको ही अपना पति बनाना चाहा। परन्तु विन्द और अनुविन्दने अपनी बहिनको रोक दिया ॥३०॥ परीक्षित्! मित्रविन्दा

श्रीकृष्णकी फूआ राजाधिदेवीकी कन्या थी। भगवान् श्रीकृष्ण राजाओंकी भरी सभामें उसे बलपूर्वक हर ले गये, सब लोग अपना-सा मुँह लिये देखते ही रह गये ॥ ३१ ॥

परीक्षित्! कोसलदेशके राजा थे नग्नजित्। वे अत्यन्त धार्मिक थे। उनकी परमसुन्दरी कन्याका नाम था सत्या; नग्नजित्की पुत्री होनेसे वह नाग्नजिती भी कहलाती थी। परीक्षित्! राजाकी प्रतिज्ञाके अनुसार सात दुर्दान्त बैलोंपर विजय प्राप्त न कर सकनेके कारण कोई राजा उस कन्यासे विवाह न कर सके। क्योंकि उनके सींग बड़े तीखे थे और वे बैल किसी वीर पुरुषकी गन्ध भी नहीं सह सकते थे ॥ ३२-३३ ॥ जब यदुवंशशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्णने यह समाचार सुना कि जो पुरुष उन बैलोंको जीत लेगा, उसे ही सत्या प्राप्त होगी; तब वे बहुत बड़ी सेना लेकर कोसलपुरी (अयोध्या) पहुँचे ॥ ३४ ॥ कोसलनरेश महाराज नग्नजित्ने बड़ी प्रसन्नतासे उनकी अगवानी की और आसन आदि देकर बहुत बड़ी पूजा-सामग्रीसे उनका सत्कार किया। भगवान् श्रीकृष्णने भी उनका बहुत-बहुत अभिनन्दन किया ॥ ३५ ॥ राजा नग्नजित्की कन्या सत्याने देखा कि मेरे चिर-अभिलषित रमारमण भगवान् श्रीकृष्ण यहाँ पधारे हैं; तब उसने मन-ही-मन यह अभिलाषा की कि 'यदि मैंने व्रत-नियम आदिका पालन करके इन्हींका चिन्तन किया है तो ये ही मेरे पति हों और मेरी विशुद्ध लालसाको पूर्ण करें' ॥ ३६ ॥ नाग्नजिती सत्या मन-ही-मन सोचने लगी—'भगवती लक्ष्मी, ब्रह्मा, शङ्कर और बड़े-बड़े लोकपाल जिनके पद-पङ्कजका पराग अपने सिरपर धारण करते हैं और जिन प्रभुने अपनी बनायी हुई मर्यादाका पालन करनेके लिये ही समय-समयपर अनेकों लीलावतार ग्रहण किये हैं, वे प्रभु मेरे किस धर्म, व्रत अथवा नियमसे प्रसन्न होंगे? वे तो केवल अपनी कृपासे ही प्रसन्न हो सकते हैं' ॥ ३७ ॥ परीक्षित्! राजा नग्नजित्ने भगवान् श्रीकृष्णकी विधिपूर्वक अर्चा-पूजा करके यह प्रार्थना की—'जगत्के एकमात्र स्वामी नारायण! आप अपने स्वरूपभूत आनन्दसे ही परिपूर्ण हैं और मैं हूँ एक तुच्छ मनुष्य! मैं आपकी क्या सेवा करूँ?' ॥ ३८ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! राजा नग्नजित्का दिया हुआ आसन, पूजा आदि स्वीकार करके भगवान् श्रीकृष्ण बहुत सन्तुष्ट हुए। उन्होंने मुसकराते हुए मेघके समान गम्भीर वाणीसे कहा ॥ ३९ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—राजन्! जो क्षत्रिय अपने धर्ममें स्थित है, उसका कुछ भी माँगना उचित नहीं। धर्मज्ञ विद्वानोंने उसके इस कर्मकी निन्दा की है। फिर भी मैं आपसे सौहार्दका—प्रेमका सम्बन्ध स्थापित करनेके लिये आपकी कन्या चाहता हूँ। हमारे यहाँ इसके बदलेमें कुछ शुल्क देनेकी प्रथा नहीं है ॥ ४० ॥

राजा नग्नजित्ने कहा—'प्रभो! आप समस्त गुणोंके धाम हैं, एकमात्र आश्रय हैं। आपके वक्षःस्थलपर भगवती लक्ष्मी नित्य-निरन्तर निवास करती हैं। आपसे बढ़कर कन्याके लिये अभीष्ट वर भला और कौन हो सकता है? ॥ ४१ ॥ परन्तु यदुवंशशिरोमणे! हमने पहले ही इस विषयमें एक प्रण कर लिया है। कन्याके लिये कौन-सा वर उपयुक्त है, उसका बल-पौरुष कैसा है—इत्यादि बातें जाननेके लिये ही ऐसा किया गया है ॥ ४२ ॥ वीरश्रेष्ठ श्रीकृष्ण! हमारे ये सातों बैल किसीके वशमें न आनेवाले और बिना सधाये हुए हैं। इन्होंने बहुत-से राजकुमारोंके अङ्गोंको खण्डित करके उनका उत्साह तोड़ दिया है ॥ ४३ ॥ श्रीकृष्ण! यदि इन्हें आप ही नाथ लें, अपने वशमें कर लें तो लक्ष्मीपते! आप ही हमारी कन्याके लिये अभीष्ट वर होंगे' ॥ ४४ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने राजा नग्नजित्का ऐसा प्रण सुनकर कमरमें फेंट कस ली और अपने सात रूप बनाकर खेल-खेलमें ही उन बैलोंको नाथ लिया ॥ ४५ ॥ इससे बैलोंका घमंड चूर हो गया और उनका बल-पौरुष भी जाता रहा। अब भगवान् श्रीकृष्ण उन्हें रस्सीसे बाँधकर इस प्रकार खींचने लगे, जैसे खेलते समय नन्हा-सा बालक काठके बैलोंको घसीटता है ॥ ४६ ॥ राजा नग्नजित्को बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने प्रसन्न होकर भगवान् श्रीकृष्णको अपनी कन्याका दान कर दिया और सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्णने भी अपने अनुरूप पत्नी सत्याका विधिपूर्वक पाणिग्रहण

किया ॥ ४७ ॥ रानियोंने देखा कि हमारी कन्याको उसके अत्यन्त प्यारे भगवान् श्रीकृष्ण ही पतिके रूपमें प्राप्त हो गये हैं। उन्हें बड़ा आनन्द हुआ और चारों ओर बड़ा भारी उत्सव मनाया जाने लगा ॥ ४८ ॥ शङ्ख, ढोल, नगारे बजने लगे। सब ओर गाना-बजाना होने लगा। ब्राह्मण आशीर्वाद देने लगे। सुन्दर वस्त्र, पुष्पोंके हार और गहनोंसे सज-धजकर नगरके नर-नारी आनन्द मनाने लगे ॥ ४९ ॥ राजा नग्नजित्‌ने दस हजार गौएँ और तीन हजार ऐसी नवयुवती दासियाँ, जो सुन्दर वस्त्र तथा गलेमें स्वर्णहार पहने हुए थीं, दहेजमें दीं। इनके साथ ही नौ हजार हाथी, नौ लाख रथ, नौ करोड घोड़े और नौ अरब सेवक भी दहेजमें दिये ॥ ५०-५१ ॥ कोसलनरेश राजा नग्नजित्‌ने कन्या और दामादको रथपर चढ़ाकर एक बड़ी सेनाके साथ विदा किया। उस समय उनका हृदय वात्सल्य-स्नेहके उद्रेकसे द्रवित हो रहा था ॥ ५२ ॥

परीक्षित्! यदुवंशियोंने और राजा नग्नजित्‌के बैलोंने पहले बहुत-से राजाओंका बल-पौरुष धूलमें मिला दिया था। जब उन राजाओंने यह समाचार सुना, तब उनसे भगवान् श्रीकृष्णकी यह विजय सहन न हुई। उन लोगोंने नाग्नजिती सत्याको लेकर जाते समय मार्गमें भगवान् श्रीकृष्णको घेर लिया ॥ ५३ ॥ और वे बड़े वेगसे उनपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। उस समय पाण्डववीर अर्जुनने अपने मित्र भगवान् श्रीकृष्णका प्रिय करनेके लिये गाण्डीव धनुष धारण करके—जैसे सिंह छोटे-मोटे पशुओंको खदेड़ दे, वैसे ही उन नरपतियोंको मार-पीटकर भगा दिया ॥ ५४ ॥ तदनन्तर यदुवंशशिरोमणि देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण उस दहेज और सत्याके साथ द्वारकामें आये और वहाँ रहकर गृहस्थोचित विहार करने लगे ॥ ५५ ॥

परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णकी फूआ श्रुतकीर्ति केकय-देशमें ब्याही गयी थीं। उनकी कन्याका नाम था भद्रा। उसके भाई सन्तर्दन आदिने उसे स्वयं ही भगवान् श्रीकृष्णको दे दिया और उन्होंने उसका पाणिग्रहण किया ॥ ५६ ॥ मद्रप्रदेशके राजाकी एक कन्या थी लक्ष्मणा। वह अत्यन्त सुलक्षणा थी। जैसे गरुडने स्वर्गसे अमृतका हरण किया था, वैसे ही भगवान् श्रीकृष्णने स्वयंवरमें अकेले ही उसे हर लिया ॥ ५७ ॥

परीक्षित्! इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णकी और भी सहस्रों स्त्रियाँ थीं। उन परम सुन्दरियोंको वे भौमासुरको मारकर उसके बंदीगृहसे छुड़ा लाये थे ॥ ५८ ॥

उनसठवाँ अध्याय

भौमासुरका उद्धार और सोलह हजार एक सौ राजकन्याओंके साथ भगवान्‌का विवाह

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन्! भगवान् श्रीकृष्णने भौमासुरको, जिसने उन स्त्रियोंको बंदीगृहमें डाल रक्खा था, क्यों और कैसे मारा? आप कृपा करके शार्ङ्ग-धनुषधारी भगवान् श्रीकृष्णका वह विचित्र चरित्र सुनाइये ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित्! भौमासुरने वरुणका छत्र, माता अदितिके कुण्डल और मेरु पर्वतपर स्थित देवताओंका मणिपर्वत नामक स्थान छीन लिया था। इसपर सबके राजा इन्द्र द्वारकामें आये और उसकी एक-एक करतूत उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णको सुनायी। अब भगवान् श्रीकृष्ण अपनी प्रिय पत्नी सत्यभामाके साथ गरुडपर सवार हुए और भौमासुरकी राजधानी प्राग्ज्योतिषपुरमें गये ॥ २ ॥ प्राग्ज्योतिपपुरमें प्रवेश करना बहुत कठिन था। पहले तो उसके चारों ओर पहाड़ोंकी किलेबंदी थी, उसके बाद शस्त्रोंका घेरा लगाया हुआ था। फिर जलसे भरी खाईं थी, उसके बाद आग या बिजलीकी चहारदीवारी थी और उसके भीतर वायु (गैस) बंद करके रक्खा गया था। इससे भी भीतर मुर दैत्यने नगरके चारों ओर अपने दस हजार घोर एवं सुदृढ़ फंदे (जाल) बिछा रक्खे थे ॥ ३ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने अपनी गदाकी चोटसे पहाड़ोंको तोड़-फोड़ डाला और शस्त्रोंकी मोरचेबंदीको बाणोंसे छिन्न-भिन्न कर दिया। चक्रके द्वारा अग्नि, जल और वायुकी चहारदीवारियोंको तहस-नहस कर दिया और

मुर दैत्यके फंदोंको तलवारसे काट-कूटकर अलग रख दिया ॥ ४ ॥ जो बड़े-बड़े यन्त्र—मशीनें वहाँ लगी हुई थीं, उनको, तथा वीरपुरुषोंके हृदयको शङ्खनादसे विदीर्ण कर दिया और नगरके परकोटेका गदाधर भगवान्ने अपनी भारी गदासे ध्वंस कर डाला ॥ ५ ॥

भगवान्के पाञ्चजन्य शङ्खकी ध्वनि प्रलयकालीन बिजलीकी कड़कके समान महाभयङ्कर थी। उसे सुनकर मुर दैत्यकी नींद टूटी और वह बाहर निकल आया। उसके पाँच सिर थे और अबतक वह जलके भीतर सो रहा था ॥ ६ ॥ वह दैत्य प्रलयकालीन सूर्य और अग्निके समान प्रचण्ड तेजस्वी था। वह इतना भयङ्कर था कि उसकी ओर आँख उठाकर देखना भी आसान काम नहीं था। उसने त्रिशूल उठाया और इस प्रकार भगवान्की ओर दौड़ा, जैसे साँप गरुडजीपर टूट पड़े। उस समय ऐसा माल्म होता था मानो वह अपने पाँचों मुखोंसे त्रिलोकीको निगल जायगा ॥ ७ ॥ उसने अपने त्रिशूलको बड़े वेगसे घुमाकर गरुडजीपर चलाया और फिर अपने पाँचों मुखोंसे घोर सिंहनाद करने लगा। उसके सिंहनादका महान् शब्द पृथ्वी, आकाश, पाताल और दसों दिशाओंमें फैलकर सारे ब्रह्माण्डमें भर गया ॥८॥ भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि मुर दैत्यका त्रिशूल गरुडकी ओर बड़े वेगसे आ रहा है। तब अपना हस्तकौशल दिखाकर फुर्तीसे उन्होंने दो बाण मारे, जिनसे वह त्रिशूल कटकर तीन टूक हो गया। इसके साथ ही मुर दैत्यके मुखोंमें भी भगवान्ने बहुत-से बाण मारे। इससे वह दैत्य अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा और उसने भगवान्पर अपनी गदा चलायी ॥ ९ ॥ परन्तु भगवान् श्रीकृष्णने अपनी गदाके प्रहारसे मुर दैत्यकी गदाको अपने पास पहुँचनेके पहले ही चूर-चूर कर दिया। अब वह अस्त्रहीन हो जानेके कारण अपनी भुजाएँ फैलाकर श्रीकृष्णकी ओर दौड़ा और उन्होंने खेल-खेलमे ही चक्रसे उसके पाँचों सिर उतार लिये ॥ १० ॥ सिर कटते ही मुर दैत्यके प्राण-पखेरू उड़ गये और वह ठीक वैसे ही जलमें गिर पड़ा, जैसे इन्द्रके वज्रसे शिखर कट जानेपर कोई पर्वत समुद्रमे गिर पडा हो। मुर दैत्यके सात पुत्र थे—ताम्र, अन्तरिक्ष, श्रवण, विभावसु, वसु, नभस्वान् और अरुण—ये अपने पिताकी मृत्युसे, अत्यन्त शोकाकुल हो उठे और फिर बदला लेनेके लिये क्रोधसे भरकर शस्त्रास्त्रसे सुसज्जित हो गये तथा पीठ नामक दैत्यको अपना सेनापति बनाकर भौमासुरके आदेशसे श्रीकृष्णपर चढ़ आये ॥ ११-१२॥ वे वहाँ आकर बड़े क्रोधसे भगवान् श्रीकृष्णपर बाण, खड्ग, गदा, शक्ति, ऋष्टि और त्रिशूल आदि प्रचण्ड शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे। परीक्षित्! भगवान्की शक्ति अमोघ और अनन्त है। उन्होंने अपने बाणोंसे उनके कोटि-कोटि शस्त्रास्त्र तिल-तिल करके काट गिराये ॥१३॥ भगवान्के शस्त्रप्रहारसे सेनापति पीठ और उसके साथी दैत्योंके सिर, जाँघें, भुजा, पैर और कवच कट गये और उन सभीको भगवान्ने यमराजके घर पहुँचा दिया। जब पृथ्वीके पुत्र नरकासुर (भौमासुर) ने देखा कि भगवान् श्रीकृष्णके चक्र और बाणोंसे हमारी सेना और सेनापतियोंका संहार हो गया, तब उसे असह्य क्रोध हुआ। वह समुद्रतटपर पैदा हुए बहुत-से मदवाले हाथियोंकी सेना लेकर नगरसे बाहर निकला। उसने देखा भगवान् श्रीकृष्ण अपनी पत्नीके साथ आकाशमें गरुडपर स्थित हैं, जैसे सूर्यके ऊपर बिजलीके साथ वर्षाकालीन श्याममेघ शोभायमान हो। भौमासुरने स्वय भगवान्के ऊपर शतघ्नी नामकी शक्ति चलायी और उसके सब सैनिकोंने भी एक ही साथ उनपर अपने-अपने अस्त्र-शस्त्र छोड़े ॥ १४-१५ ॥ अब भगवान् श्रीकृष्ण भी चित्र-विचित्र पंखवाले तीखे-तीखे बाण चलाने लगे। इससे उसी समय भौमासुरके सैनिकोंकी भुजाएँ, जाँघें, गर्दन और धड़ कट-कटकर गिरने लगे, हाथी और घोड़े भी मरने लगे ॥ १६ ॥

परीक्षित्! भौमासुरके सैनिकोंने भगवान्पर जो-जो अस्त्र-शस्त्र चलाये थे, उनमेंसे प्रत्येकको भगवान्ने तीन-तीन तीखे बाणोंसे काट गिराया ॥ १७ ॥ उस समय भगवान् श्रीकृष्ण गरुडजीपर सवार थे और गरुडजी अपने पंखोंसे हाथियोंको मार रहे थे। उनकी चोंच, पख और पंजोंकी मारसे हाथियोंको बड़ी पीडा हुई और वे सब-के-सब आर्त होकर युद्धभूमिसे भागकर नगरमें घुस गये। अब वहाँ अकेला भौमासुर ही लड़ता रहा। जब

उसने देखा कि गरुडजीकी मारसे पीडित होकर मेरी सेना भाग रही है, तब उसने उनपर वह शक्ति चलायी, जिसने वज्रको भी विफल कर दिया था। परन्तु उसकी चोटसे पक्षिराज गरुड तनिक भी विचलित न हुए, मानो किसीने मतवाले गजराजपर फूलोंकी मालासे प्रहार किया हो ॥ १८—२० ॥ अब भौमासुरने देखा कि मेरी एक भी चाल नहीं चलती, सारे उद्योग विफल होते जा रहे हैं, तब उसने श्रीकृष्णको मार डालनेके लिये एक त्रिशूल उठाया। परन्तु उसे अभी वह छोड भी न पाया था कि भगवान् श्रीकृष्णने छुरेके समान तीखी धारवाले चक्रसे हाथीपर बैठे हुए भौमासुरका सिर काट डाला॥२१॥ उसका जगमगाता हुआ सिर कुण्डल और सुन्दर किरीटके सहित पृथ्वीपर गिर पडा। उसे देखकर भौमासुरके सगे सम्बन्धी हाय-हाय पुकार उठे; ऋषिलोग 'साधु-साधु' कहने लगे और देवतालोग भगवान्पर पुष्पोंकी वर्षा करते हुए स्तुति करने लगे ॥ २२ ॥

अब पृथ्वी भगवान्के पास आयी। उसने भगवान् श्रीकृष्णके गलेमें वैजयन्तीके साथ वनमाला पहना दी और अदिति माताके जगमगाते हुए कुण्डल, जो तपाये हुए सोनेके एवं रत्नजटित थे, भगवान्को दे दिये तथा वरुणका छत्र और साथ ही एक महामणि भी उनको दी ॥ २३ ॥ राजन्! इसके बाद पृथ्वीदेवी बड़े-बडे देवताओंके द्वारा पूजित विश्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्णको प्रणाम करके हाथ जोड़कर भक्तिभावभरे हृदयसे उनकी स्तुति करने लगीं ॥ २४ ॥

पृथ्वीदेवीने कहा—शङ्खचक्रगदाधारी देवदेवेश्वर! मैं आपको नमस्कार करती हूँ। परमात्मन्! आप अपने भक्तोंकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये उसीके अनुसार रूप प्रकट किया करते हैं। आपको मैं नमस्कार करती हूँ ॥ २५ ॥ प्रभो! आपकी नाभिसे कमल प्रकट हुआ है। आप कमलकी माला पहनते हैं। आपके नेत्र कमल-से खिले हुए और शान्तिदायक हैं। आपके चरण कमलके समान सुकुमार और भक्तोंके हृदयको शीतल करनेवाले हैं। आपको मैं बार-बार नमस्कार करती हूँ ॥ २६ ॥ आप समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यश, सम्पत्ति, ज्ञान और वैराग्यके आश्रय हैं। आप सर्वव्यापक होनेपर भी स्वयं वसुदेवनन्दनके रूपमें प्रकट हैं। मैं आपको नमस्कार करती हूँ। आप ही पुरुष हैं और समस्त कारणोंके भी परम कारण हैं। आप स्वयं पूर्ण ज्ञानस्वरूप हैं। मैं आपको नमस्कार करती हूँ ॥ २७ ॥ आप स्वयं तो हैं जन्मरहित, परन्तु इस जगत्के जन्मदाता आप ही हैं। आप ही अनन्त शक्तियोंके आश्रय ब्रह्म हैं। जगत्का जो कुछ भी कार्य-कारणमय रूप है, जितने भी प्राणी या अप्राणी हैं—सब आपके ही स्वरूप हैं। परमात्मन्! आपके चरणोंमें मेरे बार-बार नमस्कार ॥ २८ ॥ प्रभो! जब आप जगत्की रचना करना चाहते हैं, तब उत्कट रजोगुणको, और जब इसका प्रलय करना चाहते हैं तब तमोगुणको, तथा जब इसका पालन करना चाहते हैं तब सत्त्वगुणको स्वीकार करते हैं। परन्तु यह सब करनेपर भी आप इन गुणोंसे ढकते नहीं, लिप्त नहीं होते। जगत्पते! आप स्वयं ही प्रकृति, पुरुष और दोनोंके संयोग-वियोगके हेतु काल हैं, तथा उन तीनोंसे परे भी हैं ॥ २९ ॥ भगवन्! मैं (पृथ्वी), जल, अग्नि, वायु, आकाश, पञ्चतन्मात्राएँ, मन, इन्द्रिय और इनके अधिष्ठातृ-देवता, अहङ्कार और महत्तत्त्व—कहाँतक कहूँ, यह सम्पूर्ण चराचर जगत् आपके अद्वितीय स्वरूपमें भ्रमके कारण ही पृथक् प्रतीत हो रहा है ॥ ३० ॥ शरणागत-भय-भञ्जन प्रभो! मेरे पुत्र भौमासुरका यह पुत्र भगदत्त अत्यन्त भयभीत हो रहा है। मैं इसे आपके चरणकमलोंकी शरणमें ले आयी हूँ। प्रभो! आप इसकी रक्षा कीजिये और इसके सिरपर अपना वह करकमल रखिये जो सारे जगत्के समस्त पाप-तापोंको नष्ट करने-वाला है ॥ ३१ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जब पृथ्वीने भक्तिभावसे विनम्र होकर इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति-प्रार्थना की, तब उन्होंने भगदत्तको अभयदान दिया और भौमासुरके समस्त सम्पत्तियोंसे सम्पन्न महलमें प्रवेश किया ॥ ३२ ॥ वहाँ जाकर भगवान्ने देखा कि भौमासुरने बलपूर्वक राजाओंसे सोलह हजार राजकुमारियाँ छीनकर अपने यहाँ रख छोडी थीं ॥ ३३ ॥ जब उन राजकुमारियोंने अन्तःपुरमें पधारे हुए नरश्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णको देखा, तब वे मोहित हो गयीं और उन्होंने उनकी

अहैतुकी कृपा तथा अपना सौभाग्य समझकर मन-ही-मन भगवान्‌को अपने परम प्रियतम पतिके रूपमें वरण कर लिया ॥ ३४ ॥ उन राजकुमारियोंमेंसे प्रत्येकने अलग-अलग अपने मनमें यही निश्चय किया कि 'ये श्रीकृष्ण ही मेरे पति हों और विधाता मेरी इस अभिलाषाको पूर्ण करें।' इस प्रकार उन्होंने प्रेम-भावसे अपना हृदय भगवान्‌के प्रति निछावर कर दिया ॥ ३५ ॥ तब भगवान् श्रीकृष्णने उन राजकुमारियोंको सुन्दर-सुन्दर निर्मल वस्त्राभूषण पहनाकर पालकियोंसे द्वारका भेज दिया और उनके साथ ही बहुत-से खजाने, रथ, घोड़े तथा अतुल सम्पत्ति भी भेजी ॥ ३६ ॥ ऐरावतके वंशमें उत्पन्न हुए अत्यन्त वेगवान् चार-चार दाँतोंवाले सफेद रंगके चौसठ हाथी भी भगवान्‌ने वहाँसे द्वारका भेजे ॥ ३७ ॥

इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण अमरावतीमें स्थित देवराज इन्द्रके महलोंमें गये। वहाँ देवराज इन्द्रने अपनी पत्नी इन्द्राणीके साथ सत्यभामाजी और भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा की, तब भगवान्‌ने अदितिके कुण्डल उन्हें दे दिये ॥ ३८ ॥ वहाँसे लौटते समय सत्यभामाजीकी प्रेरणासे भगवान् श्रीकृष्णने कल्पवृक्ष उखाड़कर गरुडपर रख लिया और देवराज इन्द्र तथा समस्त देवताओंको जीतकर उसे द्वारकामें ले आये ॥ ३९ ॥ भगवान्‌ने उसे सत्यभामाके महलके बगीचेमें लगा दिया। इससे उस बगीचेकी शोभा अत्यन्त बढ़ गयी। कल्पवृक्षके साथ उसके गन्ध और मकरन्दके लोभी भौंरे स्वर्गसे द्वारकामें चले आये थे ॥ ४० ॥ परीक्षित्! देखो तो सही, जब इन्द्रको अपना काम बनाना था, तब तो उन्होंने अपना सिर झुकाकर मुकुटकी नोकसे भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंका स्पर्श करके उनसे सहायताकी भिक्षा माँगी थी, परन्तु जब काम बन गया, तब उन्होंने उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णसे लड़ाई ठान ली। सचमुच ये देवता भी बड़े तमोगुणी हैं और सबसे बड़ा दोष तो उनमें धनाढ्यताका है। धिक्कार है ऐसी धनाढ्यताको ॥ ४१ ॥

तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णने एक ही मुहूर्तमें अलग-अलग भवनोंमें अलग-अलग रूप धारण करके एक ही साथ सब राजकुमारियोंका शास्त्रोक्त विधिसे पाणिग्रहण किया। सर्वशक्तिमान् अविनाशी भगवान्‌के लिये इसमें आश्चर्यकी कौन-सी बात है ॥ ४२ ॥ परीक्षित्! भगवान्‌की पत्नियोंके अलग-अलग महलोंमें ऐसी दिव्य सामग्रियाँ भरी हुई थीं, जिनके बराबर जगत्‌में कहीं भी और कोई भी सामग्री नहीं है; फिर अधिककी तो बात ही क्या है। उन महलोंमें रहकर मति-गतिके परेकी लीला करनेवाले अविनाशी भगवान् श्रीकृष्ण अपने आत्मानन्दमें मग्न रहते हुए लक्ष्मीजीकी अंशस्वरूपा उन पत्नियोंके साथ ठीक वैसे ही विहार करते थे, जैसे कोई साधारण मनुष्य घर-गृहस्थीमें रहकर गृहस्थ-धर्मके अनुसार आचरण करता हो ॥ ४३ ॥ परीक्षित्! ब्रह्मा आदि बड़े-बड़े देवता भी भगवान्‌के वास्तविक स्वरूपको और उनकी प्राप्तिके मार्गको नहीं जानते। उन्हीं रमारमण भगवान् श्रीकृष्णको उन स्त्रियोंने पतिके रूपमें प्राप्त किया था। अब नित्य-निरन्तर उनके प्रेम और आनन्दकी अभिवृद्धि होती रहती थी और वे प्रेमभरी मुसकराहट, मधुर चितवन, नवसमागम, प्रेमालाप तथा भाव बढ़ानेवाली लज्जासे युक्त होकर सब प्रकारसे भगवान्‌की सेवा करती रहती थीं ॥ ४४ ॥ उनमेंसे सभी पत्नियोंके साथ सेवा करनेके लिये सैकड़ों दासियाँ रहतीं, फिर भी जब उनके महलमें भगवान् पधारते तब वे स्वयं आगे जाकर आदरपूर्वक उन्हें लिवा लातीं, श्रेष्ठ आसनपर बैठातीं, उत्तम सामग्रियोंसे पूजा करतीं, चरणकमल पखारतीं, पान लगाकर खिलातीं, पाँव दबाकर थकावट दूर करतीं, पंखा झलतीं, इत्र-फुलेल, चन्दन आदि लगातीं, फूलोंके हार पहनातीं, केश सँवारतीं, सुलातीं, स्नान करातीं और अनेक प्रकारके भोजन कराकर अपने ही हाथों भगवान्‌की सेवा करतीं ॥ ४५ ॥

साठवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण-रुक्मिणी-संवाद

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! एक दिन समस्त जगत्‌के परमपिता और ज्ञानदाता भगवान् श्रीकृष्ण रुक्मिणीजीके पलँगपर आरामसे बैठे हुए थे। भीष्मकनन्दिनी श्रीरुक्मिणीजी सखियोंके साथ अपने पतिदेवकी

सेवा कर रही थीं, उन्हें पंखा झल रही थीं ॥ १ ॥ परीक्षित् ! जो सर्वशक्तिमान् भगवान् खेल-खेलमें ही इस जगत्की रचना, रक्षा और प्रलय करते हैं—वही अजन्मा प्रभु अपनी बनायी हुई धर्म-मर्यादाओंकी रक्षा करनेके लिये यदुवंशियोंमें अवतीर्ण हुए हैं ॥ २ ॥ रुक्मिणीजीका महल बड़ा ही सुन्दर था। उसमें ऐसे-ऐसे चँदोवे तने हुए थे, जिनमें मोतियोंकी लड़ियोंकी झालरें लटक रही थीं। मणियोंके दीपक जगमगा रहे थे ॥ ३ ॥ बेला-चमेलीके फूल और हार महँ-महँ महक रहे थे। फूलोंपर झुंड-के-झुंड भौंरे गुंजार कर रहे थे। सुन्दर-सुन्दर झरोखों-की जालियोंमेंसे चन्द्रमाकी शुभ्र किरणें महलके भीतर छिटक रही थीं ॥ ४ ॥ उद्यानमें पारिजातके उपवनकी सुगन्ध लेकर मन्द-मन्द शीतल वायु चल रही थी। झरोखोंकी जालियोंमेंसे अगरके धूपका धूआँ बाहर निकल रहा था ॥ ५ ॥ ऐसे महलमें दूधके फेनके समान कोमल और उज्ज्वल बिछौनोंसे युक्त सुन्दर पलँगपर भगवान् श्रीकृष्ण बड़े आनन्दसे विराजमान थे और रुक्मिणीजी त्रिलोकीके स्वामीको पतिरूपमें प्राप्त करके उनकी सेवा कर रही थीं ॥ ६ ॥ रुक्मिणीजीने अपनी सखीके हाथसे वह चँवर ले लिया, जिसमें रत्नोंकी डाँडी लगी थी और परमरूपवती लक्ष्मीरूपिणी देवी रुक्मिणीजी उसे डुला-डुलाकर भगवान्की सेवा करने लगीं ॥ ७ ॥ उनके करकमलोंमें जड़ाऊ अँगूठियाँ, कंगन और चँवर शोभा पा रहे थे। चरणोंमें मणिजटित पायजेब रुनझुन-रुनझुन कर रहे थे। अञ्चलके नीचे छिपे हुए स्तनोंकी केशरकी लालिमासे हार लाल-लाल जान पड़ता था और चमक रहा था। नितम्बभागमें बहुमूल्य करधनीकी लड़ियाँ लटक रही थीं। इस प्रकार वे भगवान्के पास ही रहकर उनकी सेवामें संलग्न थीं ॥ ८ ॥ रुक्मिणीजीकी घुँघराली अलकें, कानोंके कुण्डल और गलेके स्वर्णहार अत्यन्त विलक्षण थे। उनके मुखचन्द्रसे मुसकराहटकी अमृतवर्षा हो रही थी। वे रुक्मिणीजी अलौकिक रूपलावण्यवती लक्ष्मीजी ही तो हैं। उन्होंने जब देखा कि भगवान्ने लीलाके लिये मनुष्यका-सा शरीर ग्रहण किया है, तब उन्होंने भी उनके अनुरूप रूप प्रकट कर दिया। भगवान् श्रीकृष्ण यह देखकर बहुत प्रसन्न हुए कि रुक्मिणीजी मेरे परायण हैं, मेरी अनन्य प्रेयसी हैं। तब उन्होंने बड़े प्रेमसे मुसकराते हुए उनसे कहा ॥ ९ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—राजकुमारी ! बड़े-बड़े नरपति, जिनके पास लोकपालोंके समान ऐश्वर्य और सम्पत्ति है, जो बड़े महानुभाव और श्रीमान् हैं तथा सुन्दरता, उदारता और बलमें भी बहुत आगे बढ़े हुए हैं, तुमसे विवाह करना चाहते थे ॥ १० ॥ तुम्हारे पिता और भाई भी उन्हींके साथ तुम्हारा विवाह करना चाहते थे, यहाँतक कि उन्होंने वाग्दान भी कर दिया था। शिशुपाल आदि बड़े-बड़े वीरोंको, जो कामोन्मत्त होकर तुम्हारे याचक बन रहे थे, तुमने छोड़ दिया और मेरे-जैसे व्यक्तिको, जो किसी प्रकार तुम्हारे समान नहीं है, अपना पति स्वीकार किया। ऐसा तुमने क्यों किया ? ॥ ११ ॥ सुन्दरी ! देखो, हम जरासन्ध आदि राजाओंसे डरकर समुद्रकी शरणमें आ बसे हैं। बड़े-बड़े बलवानोंसे हमने वैर बाँध रक्खा है और प्रायः राज-सिंहासनके अधिकारसे भी हम वञ्चित ही हैं ॥ १२ ॥ सुन्दरी ! हम किस मार्गके अनुयायी हैं, हमारा कौन-सा मार्ग है, यह भी लोगोंको अच्छी तरह मालूम नहीं है। हमलोग लौकिक व्यवहारका भी ठीक-ठीक पालन नहीं करते, अनुनय-विनयके द्वारा स्त्रियोंको रिझाते भी नहीं। जो स्त्रियाँ हमारे-जैसे पुरुषोंका अनुसरण करती हैं, उन्हें प्रायः क्लेश-ही-क्लेश भोगना पड़ता है ॥ १३ ॥ सुन्दरी ! हम तो सदाके अकिञ्चन हैं। न तो हमारे पास कभी कुछ था और न रहेगा। ऐसे ही अकिञ्चन लोगोंसे हम प्रेम भी करते हैं, और वे लोग भी हमसे प्रेम करते हैं। यही कारण है कि अपनेको धनी समझनेवाले लोग प्रायः हमसे प्रेम नहीं करते, हमारी सेवा नहीं करते ॥ १४ ॥ जिनका धन, कुल, ऐश्वर्य, सौन्दर्य और आय अपने समान होती है—उन्हींसे विवाह और मित्रताका सम्बन्ध करना चाहिये। जो अपनेसे श्रेष्ठ या अधम हों, उनसे नहीं करना चाहिये ॥ १५ ॥ विदर्भराज-कुमारी ! तुमने अपनी अदूरदर्शिताके कारण इन बातोंका विचार नहीं किया और बिना जाने-बूझे भिक्षुकोंसे मेरी झूठी प्रशंसा सुनकर मुझ गुणहीनको वरण कर लिया ॥ १६ ॥ अब भी कुछ बिगड़ा नहीं है। तुम

अपने अनुरूप किसी श्रेष्ठ क्षत्रियको वरण कर लो । जिसके द्वारा तुम्हारी इहलोक और परलोककी सारी आशा-अभिलाषाएँ पूरी हो सकें ॥ १७ ॥ सुन्दरी ! तुम जानती ही हो कि शिशुपाल, शाल्व, जरासन्ध, दन्तवक्त्र आदि नरपति और तुम्हारा बड़ा भाई रुक्मी—सभी मुझसे द्वेष करते थे ॥ १८ ॥ कल्याणी ! वे सब बल-पौरुषके मदसे अंधे हो रहे थे, अपने सामने किसीको कुछ नहीं गिनते थे । उन दुष्टोंका मान मर्दन करनेके लिये ही मैंने तुम्हारा हरण किया था । और कोई कारण नहीं था ॥ १९ ॥ निश्चय ही हम उदासीन हैं । हम स्त्री, सन्तान और धनके लोलुप नहीं हैं । निष्क्रिय और देह-गेहसे सम्बन्धरहित दीपशिखाके समान साक्षीमात्र हैं । हम अपने आत्माके साक्षात्कारसे ही पूर्णकाम हैं । कृतकृत्य हैं ॥ २० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णके क्षणभरके लिये भी अलग न होनेके कारण रुक्मिणीजीको यह अभिमान हो गया था कि मैं इनकी सबसे अधिक प्यारी हूँ । इसी गर्वकी शान्तिके लिये इतना कहकर भगवान् चुप हो गये ॥ २१ ॥ परीक्षित्! जब रुक्मिणीजीने अपने परम प्रियतम पति त्रिलोकेश्वर भगवान्की यह अप्रिय वाणी सुनी—जो पहले कभी नहीं सुनी थी, तब वे अत्यन्त भयभीत हो गयीं; उनका हृदय धड़कने लगा, वे रोते-रोते चिन्ताके अगाध समुद्रमें डूबने-उतराने लगी ॥ २२ ॥ वे अपने कमलके समान कोमल और नखोंकी लालिमासे कुछ-कुछ लाल प्रतीत होनेवाले चरणोंसे धरती कुरेदने लगीं । अञ्जनसे मिले हुए काले-काले आँसू केशरसे रँगे हुए वक्षःस्थलको धोने लगे । मुँह नीचेको लटक गया । अत्यन्त दुःखके कारण उनकी वाणी रुक गयी और वे ठिठकी-सी रह गयीं ।२३। अत्यन्त व्यथा, भय और शोकके कारण विचारशक्ति लुप्त हो गयी, वियोगकी सम्भावनासे वे तत्क्षण इतनी दुबली हो गयीं कि उनकी कलाईका कंगनतक खिसक गया । हाथका चँवर गिर पड़ा, बुद्धिकी विकलताके कारण वे एकाएक अचेत हो गयीं, केश बिखर गये और वे वायुवेगसे उखड़े हुए केलेके खंभेकी तरह धरतीपर गिर पड़ीं ॥ २४ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि मेरी प्रेयसी रुक्मिणीजी हास्य-विनोदकी गम्भीरता नहीं समझ रही हैं और प्रेम-पाशकी दृढ़ताके कारण उनकी यह दशा हो रही है । स्वभावसे ही परम कारुणिक भगवान् श्रीकृष्णका हृदय उनके प्रति करुणासे भर गया ॥२५॥ चार भुजाओंवाले वे भगवान् उसी समय पलँगसे उतर पड़े और रुक्मिणीजीको उठा लिया तथा उनके खुले हुए केशपाशोंको बाँधकर अपने शीतल करकमलोंसे उनका मुँह पोंछ दिया ॥ २६ ॥ भगवान्ने उनके नेत्रोंके आँसू और शोकके आँसुओंसे भीगे हुए स्तनोंको पोंछकर अपने प्रति अनन्य प्रेमभाव रखनेवाली उन सती रुक्मिणीजीको बाँहोंमें भरकर छातीसे लगा लिया ॥२७॥ भगवान् श्रीकृष्ण समझाने-बुझानेमें बड़े कुशल और अपने प्रेमी भक्तोंके एकमात्र आश्रय हैं । जब उन्होंने देखा कि हास्यकी गम्भीरताके कारण रुक्मिणीजीकी बुद्धि चक्करमें पड़ गयी है और वे अत्यन्त दीन हो रही हैं; तब उन्होंने इस अवस्थाके अयोग्य अपनी प्रेयसी रुक्मिणीजीको समझाया ॥ २८ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—विदर्भनन्दिनी ! तुम मुझसे बुरा मत मानना । मुझसे रूठना नहीं । मैं जानता हूँ कि तुम एकमात्र मेरे ही परायण हो । मेरी प्रिय सहचरी ! तुम्हारी प्रेमभरी बात सुननेके लिये ही मैंने हँसी-हँसीमें यह छलना की थी ॥ २९ ॥ मैं देखना चाहता था कि मेरे यों कहनेपर तुम्हारे लाल-लाल होठ प्रणय-कोपसे किस प्रकार फड़कने लगते हैं । तुम्हारे कटाक्षपूर्वक देखनेसे नेत्रोंमें कैसी लाली छा जाती है और भौंहें चढ़ जानेके कारण तुम्हारा मुँह कैसा सुन्दर लगता है ॥ ३० ॥ मेरी परमप्रिये ! सुन्दरी ! घरके काम-धंधोंमें रात-दिन लगे रहनेवाले गृहस्थोंके लिये घर-गृहस्थीमें इतना ही तो परम लाभ है कि अपनी प्रिय अर्द्धाङ्गिनीके साथ हास-परिहास करते हुए कुछ घड़ियाँ सुखसे बिता ली जाती हैं ॥ ३१ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन् ! जब भगवान् श्रीकृष्णने अपनी प्राणप्रियाको इस प्रकार समझाया-बुझाया, तब उन्हें इस बातका विश्वास हो गया कि मेरे प्रियतमने केवल परिहासमें ही ऐसा कहा था । अब उनके हृदयसे यह भय जाता रहा कि प्यारे हमें छोड़

देंगे ॥ ३२ ॥ परीक्षित्! अब वे सलज्ज हास्य और प्रेमपूर्ण मधुर चितवनसे पुरुषभूषण भगवान् श्रीकृष्णका मुखारविन्द निरखती हुई उनसे कहने लगीं—॥ ३३ ॥

रुक्मिणीजीने कहा—कमलनयन! आपका यह कहना ठीक है कि ऐश्वर्य आदि समस्त गुणोंसे युक्त, अनन्त भगवान्के अनुरूप मैं नहीं हूँ। आपकी समानता मैं किसी प्रकार नहीं कर सकती। कहाँ तो अपनी अखण्ड महिमामें स्थित, तीनों गुणोंके स्वामी तथा ब्रह्मा आदि देवताओंसे सेवित आप भगवान्; और कहाँ तीनों गुणोंके अनुसार स्वभाव रखनेवाली गुणमयी प्रकृति मैं, जिसकी सेवा कामनाओंके पीछे भटकनेवाले अज्ञानी लोग ही करते हैं॥ ३४ ॥ भला, मैं आपके समान कब हो सकती हूँ। स्वामिन्! आपका यह कहना भी ठीक ही है कि आप राजाओंके भयसे समुद्रमें आ छिपे हैं। परन्तु राजा शब्दका अर्थ पृथ्वीके राजा नहीं, तीनों गुणरूप राजा हैं। मानो आप उन्हींके भयसे अन्तःकरणरूप समुद्रमें चैतन्यघन अनुभूतिस्वरूप आत्माके रूपमें विराजमान रहते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि आप राजाओंसे वैर रखते हैं, परन्तु वे राजा कौन हैं? यही अपनी दुष्ट इन्द्रियाँ। इनसे तो आपका वैर है ही। और प्रभो! आप राजसिंहासनसे रहित हैं, यह भी ठीक ही है। क्योंकि आपके चरणोंकी सेवा करनेवालोंने भी राजाके पदको घोर अज्ञानान्धकार समझकर दूरसे ही दुत्कार रक्खा है। फिर आपके लिये तो कहना ही क्या है॥ ३५ ॥ आप कहते हैं कि हमारा मार्ग स्पष्ट नहीं है और हम लौकिक पुरुषों-जैसा आचरण भी नहीं करते, यह बात भी निस्सन्देह सत्य है। क्योंकि जो ऋषि-मुनि आपके पादपद्मोंका मकरन्द-रस सेवन करते है, उनका मार्ग भी अस्पष्ट रहता है और विषयोंमें उलझे हुए नरपशु उसका अनुमान भी नहीं लगा सकते। और हे अनन्त! आपके मार्गपर चलनेवाले आपके भक्तोंकी भी चेष्टाएँ जब प्रायः अलौकिक ही होती हैं, तब समस्त शक्तियों और ऐश्वर्योंके आश्रय आपकी चेष्टाएँ अलौकिक हों इसमें तो कहना ही क्या है? ॥ ३६ ॥ आपने अपनेको अकिञ्चन बतलाया है, परन्तु आपकी अकिञ्चनता दरिद्रता नहीं है। उसका अर्थ यह है कि आपके अतिरिक्त और कोई वस्तु न होनेके कारण आप ही सब कुछ हैं। आपके पास रखनेके लिये कुछ नहीं है। परन्तु जिन ब्रह्मा आदि देवताओंकी पूजा सब लोग करते हैं, भेंट देते हैं, वे ही लोग आपकी पूजा करते रहते हैं। आप उनके प्यारे हैं और वे आपके प्यारे हैं। (आपका यह कहना भी सर्वथा उचित है कि धनाढ्य लोग मेरा भजन नहीं करते;) जो लोग अपनी धनाढ्यताके अभिमानसे अंधे हो रहे हैं और इन्द्रियोंको तृप्त करनेमें ही लगे हैं, वे न तो आपका भजन-सेवन ही करते और न तो यह जानते हैं कि आप मृत्युके रूपमें उनके सिरपर सवार हैं॥ ३७ ॥ जगत्में जीवके लिये जितने भी वाञ्छनीय पदार्थ हैं—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—उन सबके रूपमें आप ही प्रकट हैं। आप समस्त वृत्तियों—प्रवृत्तियों, साधनों, सिद्धियों और साध्योंके फलस्वरूप हैं। विचारशील पुरुष आपको प्राप्त करनेके लिये सब कुछ छोड देते हैं। भगवन्! उन्हीं विवेकी पुरुषोंका आपके साथ सम्बन्ध होना चाहिये। जो लोग स्त्री-पुरुषके सहवाससे प्राप्त होनेवाले सुख या दुःखके वशीभूत हैं, वे कदापि आपका सम्बन्ध प्राप्त करने योग्य नहीं हैं॥ ३८ ॥ यह ठीक है कि भिक्षुकोंने आपकी प्रशंसा की है। परन्तु किन भिक्षुकोंने? उन परमशान्त संन्यासी महात्माओंने आपकी महिमा और प्रभावका वर्णन किया है, जिन्होंने अपराधी-से-अपराधी व्यक्तिको भी दण्ड न देनेका निश्चय कर लिया है। मैंने अदूरदर्शितासे नहीं, इस बातको समझते हुए आपको वरण किया है कि आप सारे जगत्के आत्मा हैं और अपने प्रेमियोंको आत्मदान करते हैं। मैंने जान-बूझकर उन ब्रह्मा और देवराज इन्द्र आदिका भी इसलिये परित्याग कर दिया है कि आपकी भौंहोंके इशारेसे पैदा होनेवाला काल अपने वेगसे उनकी आशा-अभिलाषाओं-पर पानी फेर देता है। फिर दूसरोंकी—शिशुपाल, दन्तवक्त्र या जरासन्धकी तो बात ही क्या है? ॥ ३९ ॥

सर्वेश्वर आर्यपुत्र! आपकी यह बात किसी प्रकार युक्तिसङ्गत नहीं मालूम होती कि आप राजाओंसे भय-भीत होकर समुद्रमें आ बसे हैं। क्योंकि आपने केवल अपने शार्ङ्गधनुषके टङ्कारसे मेरे विवाहके समय आये हुए समस्त राजाओंको भगाकर अपने चरणोंमें समर्पित मुझ दासीको उसी प्रकार हरण कर लिया, जैसे सिंह अपनी कर्कश ध्वनिसे वन-पशुओंको भगाकर अपना भाग ले

आते ॥ ४० ॥ कमलनयन ! आप कैसे कहते हैं कि जो मेरा अनुसरण करता है, उसे प्रायः कष्ट ही उठाना पड़ता है। प्राचीन कालके अङ्ग, पृथु, भरत, ययाति और गय आदि जो बड़े-बड़े राजराजेश्वर अपना-अपना एकछत्र साम्राज्य छोड़कर आपको पानेकी अभिलाषासे तपस्या करने वनमें चले गये थे, वे आपके मार्गका अनुसरण करनेके कारण क्या किसी प्रकारका कष्ट उठा रहे हैं ॥ ४१ ॥ आप कहते हैं कि तुम और किसी राजकुमारका वरण कर लो। भगवन् ! आप समस्त गुणोंके एकमात्र आश्रय हैं। बड़े-बड़े संत आपके चरणकमलोंकी सुगन्धका बखान करते रहते हैं। उसका आश्रय लेनेमात्रसे लोग संसारके पाप-तापसे मुक्त हो जाते हैं। लक्ष्मी सर्वदा उन्हींमें निवास करती हैं। फिर आप बतलाइये कि अपने स्वार्थ और परमार्थको भलीभाँति समझनेवाली ऐसी कौन-सी स्त्री है, जिसे एक बार उन चरणकमलोंकी सुगन्ध सूँघनेको मिल जाय और फिर वह उनका तिरस्कार करके ऐसे लोगोंको वरण करे जो सदा मृत्यु, रोग, जन्म, जरा आदि भयोंसे युक्त हैं ! कोई भी बुद्धिमती स्त्री ऐसा नहीं कर सकती ॥ ४२ ॥ प्रभो ! आप सारे जगत्के एकमात्र स्वामी हैं। आप ही इस लोक और परलोकमें समस्त आशाओंको पूर्ण करनेवाले एवं आत्मा हैं। मैंने आपको अपने अनुरूप समझकर ही वरण किया है। मुझे अपने कर्मोंके अनुसार विभिन्न योनियोंमें भटकना पड़े, इसकी मुझको परवा नहीं है। मेरी एकमात्र अभिलाषा यही है कि मैं सदा अपना भजन करनेवालोंका मिथ्या संसारभ्रम निवृत्त करनेवाले तथा उन्हें अपना स्वरूपतक दे डालनेवाले आप परमेश्वरके चरणोंकी शरणमें रहूँ ॥ ४३ ॥ अच्युत ! शत्रुसूदन ! गधोंके समान घरका बोझा ढोनेवाले, बैलोंके समान गृहस्थीके व्यापारोंमें जुते रहकर कष्ट उठानेवाले, कुत्तोंके समान तिरस्कार सहनेवाले, बिलावके समान कृपण और हिंसक तथा क्रीत दासोंके समान स्त्रीकी सेवा करनेवाले शिशुपाल आदि राजालोग, जिन्हें वरण करनेके लिये आपने मुझे संकेत किया है—उसी अभागिनी स्त्रीके पति हों, जिनके कानोंमें भगवान् शङ्कर, ब्रह्मा आदि देवेश्वरोंकी सभामें गायी जानेवाली आपकी लीलाकथाने प्रवेश नहीं किया है ॥ ४४ ॥ यह मनुष्यका शरीर जीवित होनेपर भी मुर्दा ही है। ऊपर चमड़ी, दाढ़ी-मूँछ, रोएँ, नख और केशोंसे ढका हुआ है; परन्तु इसके भीतर मांस, हड्डी, खून, कीड़े, मल-मूत्र, कफ, पित्त और वायु भरे पड़े हैं। इसे वही मूढ़ स्त्री अपना प्रियतम पति समझकर सेवन करती है, जिसे कभी आपके चरणारविन्दके मकरन्दकी सुगन्ध सूँघनेको नहीं मिली है ॥ ४५ ॥ कमलनयन ! आप आत्माराम हैं। मैं सुन्दरी अथवा गुणवती हूँ, इन बातोंपर आपकी दृष्टि नहीं जाती। अतः आपका उदासीन रहना स्वाभाविक है, फिर भी आपके चरणकमलोंमें मेरा सुदृढ अनुराग हो, यही मेरी अभिलाषा है। जब आप इस संसारकी अभिवृद्धिके लिये उत्कट रजोगुण स्वीकार करके मेरी ओर देखते हैं, तब वह भी आपका परम अनुग्रह ही है ॥ ४६ ॥ मधुसूदन ! आपने कहा कि किसी अनुरूप वरको वरण कर लो। मैं आपकी इस बातको भी झूठ नहीं मानती। क्योंकि कभी-कभी एक पुरुषके द्वारा जीती जानेपर भी काशीनरेशकी कन्या अम्बाके समान किसी-किसीकी दूसरे पुरुषमें भी प्रीति रहती है ॥ ४७ ॥ कुलटा स्त्रीका मन तो विवाह हो जानेपर भी नये-नये पुरुषोंकी ओर खिंचता रहता है। बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि वह ऐसी कुलटा स्त्रीको अपने पास न रक्खे। उसे अपनानेवाला पुरुष लोक और परलोक दोनों खो बैठता है, उभयभ्रष्ट हो जाता है ॥ ४८ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—साध्वी ! राजकुमारी ! यही बातें सुननेके लिये तो मैंने तुमसे हँसी-हँसीमें तुम्हारी वञ्चना की थी, तुम्हें छकाया था। तुमने मेरे वचनोंकी जैसी व्याख्या की है, वह अक्षरशः सत्य है ॥ ४९ ॥ सुन्दरी ! तुम मेरी अनन्य प्रेयसी हो। मेरे प्रति तुम्हारा अनन्य प्रेम है। तुम मुझसे जो-जो अभिलाषाएँ करती हो, वे तो तुम्हें सदा-सर्वदा प्राप्त ही हैं। और यह बात भी है कि मुझसे की हुई अभिलाषाएँ सांसारिक कामनाओंके समान बन्धनमें डालनेवाली नहीं होतीं, बल्कि वे समस्त कामनाओंसे मुक्त कर देती हैं ॥ ५० ॥ पुण्यमयी प्रिये ! मैंने तुम्हारा पतिप्रेम और पातिव्रत्य भी भलीभाँति देख लिया। मैंने उल्टी-सीधी

बात कह-कहकर तुम्हें विचलित करना चाहा था; परन्तु तुम्हारी बुद्धि मुझसे तनिक भी इधर-उधर न हुई ॥ ५१ ॥ प्रिये ! मैं मोक्षका स्वामी हूँ। लोगोंको संसार-सागरसे पार करता हूँ। जो सकाम पुरुष अनेक प्रकारके व्रत और तपस्या करके दाम्पत्य-जीवनके विषय-सुखकी अभिलाषासे मेरा भजन करते हैं, वे मेरी मायासे मोहित हैं ॥ ५२ ॥ मानिनी प्रिये ! मैं मोक्ष तथा सम्पूर्ण सम्पदाओंका आश्रय हूँ, अधीश्वर हूँ। मुझ परमात्माको प्राप्त करके भी जो लोग केवल विषय-सुखके साधन-सम्पत्तिकी ही अभिलाषा करते हैं, मेरी पराभक्ति नहीं चाहते, वे बड़े मन्दभागी हैं, क्योंकि विषयसुख तो नरकमें और नरकके ही समान सूकर-कूकर आदि योनियोंमें भी प्राप्त हो सकते हैं। परन्तु उन लोगोंका मन तो विषयोंमें ही लगा रहता है, इसलिये उन्हें नरकमें जाना भी अच्छा जान पड़ता है ॥ ५३ ॥ गृहेश्वरी प्राणप्रिये ! यह बड़े आनन्दकी बात है कि तुमने अबतक निरन्तर संसार-बन्धनसे मुक्त करनेवाली मेरी सेवा की है। दुष्ट पुरुष ऐसा कभी नहीं कर सकते। जिन स्त्रियोंका चित्त दूषित कामनाओंसे भरा हुआ है और जो अपनी इन्द्रियोंकी तृप्तिमें ही लगी रहनेके कारण अनेकों प्रकारके छल-छन्द रचती रहती हैं, उनके लिये तो ऐसा करना और भी कठिन है ॥ ५४ ॥ मानिनि ! मुझे अपने घरभरमे तुम्हारे समान प्रेम करनेवाली भार्या और कोई दिखायी नहीं देती। क्योंकि जिस समय तुमने मुझे देखा न था, केवल मेरी प्रशसा सुनी थी, उस समय भी अपने विवाहमें आये हुए राजाओंकी उपेक्षा करके ब्राह्मणके द्वारा मेरे पास गुप्त सन्देश भेजा था ॥ ५५ ॥ तुम्हारा हरण करते समय मैंने तुम्हारे भाईको युद्धमें जीतकर उसे विरूप कर दिया था और अनिरुद्धके विवाहोत्सवमे चौसर खेलते समय बलरामजीने तो उसे मार ही डाला। किन्तु हमसे वियोग हो जानेकी आशङ्कासे तुमने चुपचाप वह सारा दुःख सह लिया। मुझसे एक बात भी नहीं कही। तुम्हारे इस गुणसे मैं तुम्हारे वश हो गया हूँ ॥ ५६ ॥ तुमने मेरी प्राप्तिके लिये दूतके द्वारा अपना गुप्त सन्देश भेजा था; परन्तु जब तुमने मेरे पहुँचनेमें कुछ विलम्ब होता देखा; तब तुम्हें यह सारा संसार सूना दीखने लगा। उस समय तुमने अपना यह सर्वाङ्गसुन्दर शरीर किसी दूसरेके योग्य न समझकर इसे छोड़नेका सङ्कल्प कर लिया था। तुम्हारा यह प्रेमभाव तुम्हारे ही अंदर रहे। हम इसका बदला नहीं चुका सकते। तुम्हारे इस सर्वोच्च प्रेम-भावका केवल अभिनन्दन करते हैं ॥ ५७ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्ण आत्माराम हैं। वे जब मनुष्योंकी-सी लीला कर रहे हैं, तब उसमें दाम्पत्य-प्रेमको बढ़ानेवाले विनोदभरे वार्तालाप भी करते है और इस प्रकार लक्ष्मी-रूपिणी रुक्मिणीजीके साथ विहार करते हैं ॥ ५८ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण समस्त जगत्को शिक्षा देनेवाले और सर्वव्यापक हैं। वे इसी प्रकार दूसरी पत्नियोंके महलोंमें भी गृहस्थोंके समान रहते और गृहस्थोचित धर्मका पालन करते थे ॥ ५९ ॥

इकसठवाँ अध्याय

भगवान्की सन्ततिका वर्णन तथा अनिरुद्धके विवाहमें रुक्मीका मारा जाना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णकी प्रत्येक पत्नीके गर्भसे दस-दस पुत्र उत्पन्न हुए। वे रूप, बल आदि गुणोंमें अपने पिता भगवान् श्रीकृष्णसे किसी बातमें कम न थे ॥ १ ॥ राजकुमारियाँ देखतीं कि भगवान् श्रीकृष्ण हमारे महलसे कभी बाहर नहीं जाते। सदा हमारे ही पास बने रहते हैं। इससे वे यही समझतीं कि श्रीकृष्णको मैं ही सबसे प्यारी हूँ। परीक्षित् ! सच पूछो तो वे अपने पति भगवान् श्रीकृष्ण-का तत्त्व—उनकी महिमा नहीं समझती थीं ॥ २ ॥ वे सुन्दरियाँ अपने आत्मानन्दमें एकरस स्थित भगवान् श्रीकृष्णके कमल-कलीके समान सुन्दर मुख, विशाल बाहु, कर्णस्पर्शी नेत्र, प्रेमभरी मुसकान, रसमयी चितवन और मधुर वाणीसे स्वयं ही मोहित रहती थीं। वे अपने शृङ्गारसम्बन्धी हावभावोंसे उनके मनको अपनी ओर खींचनेमें समर्थ न हो सकीं ॥ ३ ॥ वे सोलह हजारसे अधिक थीं। अपनी मन्द-मन्द मुसकान और तिरछी

चितवनसे युक्त मनोहर भौंहोंके इशारेसे ऐसे प्रेमके बाण चलाती थीं, जो काम-कलाके भावोंसे परिपूर्ण होते थे। परन्तु किसी भी प्रकारसे, किन्हीं साधनोंके द्वारा वे भगवान्के मन एवं इन्द्रियोंमें चञ्चलता नहीं उत्पन्न कर सकीं ॥ ४ ॥ परीक्षित्! ब्रह्मा आदि बड़े-बड़े देवता भी भगवान्के वास्तविक स्वरूपको या उनकी प्राप्तिके मार्गको नहीं जानते। उन्हीं रमारमण भगवान् श्रीकृष्णको उन स्त्रियोंने पतिके रूपमें प्राप्त किया था। अब नित्य-निरन्तर उनके प्रेम और आनन्दकी अभिवृद्धि होती रहती थी और वे प्रेमभरी मुसकराहट, मधुर चितवन, नवसमागमकी लालसा आदिसे भगवान्की सेवा करती रहती थीं ॥ ५ ॥ उनमेंसे सभी पत्नियोंके साथ सेवा करनेके लिये सैकड़ों दासियाँ रहतीं। फिर भी जब उनके महलमें भगवान् पधारते तब वे स्वयं आगे जाकर आदरपूर्वक उन्हें लिवा लातीं, श्रेष्ठ आसनपर बैठातीं, उत्तम सामग्रियोंसे उनकी पूजा करतीं, चरणकमल पखारतीं, पान लगाकर खिलातीं, पाँव दबाकर थकावट दूर करतीं, पंखा झलतीं, इत्र-फुलेल, चन्दन आदि लगातीं, फूलोंके हार पहनातीं, केश सँवारतीं, सुलातीं, स्नान करातीं और अनेक प्रकारके भोजन कराकर अपने हाथों भगवान्की सेवा करतीं ॥ ६ ॥

परीक्षित्! मैं कह चुका हूँ कि भगवान् श्रीकृष्णकी प्रत्येक पत्नीके दस-दस पुत्र थे। उन रानियोंमें आठ पटरानियाँ थीं, जिनके विवाहका वर्णन मैं पहले कर चुका हूँ। अब उनके प्रद्युम्न आदि पुत्रोंका वर्णन करता हूँ ॥ ७ ॥ रुक्मिणीके गर्भसे दस पुत्र हुए—प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, सुदेष्ण, पराक्रमी चारुदेह, सुचारु, चारुगुप्त, भद्रचारु, चारुचन्द्र, विचारु और दसवाँ चारु। ये अपने पिता भगवान् श्रीकृष्णसे किसी बातमें कम न थे ॥ ८-९ ॥ सत्यभामाके भी दस पुत्र थे—भानु, सुभानु, स्वर्भानु, प्रभानु, भानुमान्, चन्द्रभानु, बृहद्भानु, अतिभानु, श्रीभानु और प्रतिभानु। जाम्बवतीके भी साम्ब आदि दस पुत्र थे—साम्ब, सुमित्र, पुरुजित्, शतजित्, सहस्रजित्, विजय, चित्रकेतु वसुमान्, द्रविड और क्रतु। ये सब श्रीकृष्णको बहुत प्यारे थे ॥ १०–१२ ॥ नाग्नजिती सत्याके भी दस पुत्र हुए—वीर, चन्द्र, अश्वसेन, चित्रगु, वेगवान्, वृष, आम, शङ्कु, वसु और परम तेजस्वी कुन्ति ॥ १३ ॥ कालिन्दीके दस पुत्र ये थे—श्रुत, कवि, वृष, वीर, सुबाहु, भद्र, शान्ति, दर्श, पूर्णमास और सबसे छोटा सोमक ॥ १४ ॥ मद्रदेशकी राजकुमारी लक्ष्मणाके गर्भसे प्रघोष, गात्रवान्, सिंह, बल, प्रबल, ऊर्ध्वग, महाशक्ति, सह, ओज और अपराजितका जन्म हुआ ॥ १५ ॥ मित्रविन्दाके पुत्र थे—वृक, हर्ष, अनिल, गृध्र, वर्धन, अन्नाद, महाश, पावन, वह्नि और क्षुधि ॥ १६ ॥ भद्राके पुत्र थे—संग्रामजित्, बृहत्सेन, शूर, प्रहरण, अरिजित्, जय, सुभद्र, वाम, आयु और सत्यक ॥ १७ ॥ इन पटरानियोंके अतिरिक्त भगवान्की रोहिणी आदि सोलह हजार एक सौ और भी पत्नियाँ थीं। उनके दीप्तिमान् और ताम्रतप्त आदि दस-दस पुत्र हुए। रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्नका मायावती रतिके अतिरिक्त भोजकट-नगरनिवासी रुक्मीकी पुत्री रुक्मवतीसे भी विवाह हुआ था। उसीके गर्भसे परम बलशाली अनिरुद्धका जन्म हुआ। परीक्षित्! श्रीकृष्णके पुत्रोंकी माताएँ ही सोलह हजारसे अधिक थीं। इसलिये उनके पुत्र-पौत्रोंकी संख्या करोड़ोंतक पहुँच गयी ॥ १८-१९ ॥

राजा परीक्षित्ने पूछा—परम ज्ञानी मुनीश्वर! भगवान् श्रीकृष्णने रणभूमिमें रुक्मीका बड़ा तिरस्कार किया था। इसलिये वह सदा इस बातकी घातमें रहता था कि अवसर मिलते ही श्रीकृष्णसे उसका बदला लूँ और उनका काम तमाम कर डालूँ। ऐसी स्थितिमें उसने अपनी कन्या रुक्मवती अपने शत्रुके पुत्र प्रद्युम्नजीको कैसे ब्याह दी? कृपा करके बतलाइये! दो शत्रुओंमें—श्रीकृष्ण और रुक्मीमें फिरसे परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध कैसे हुआ? ॥ २० ॥ आपसे कोई बात छिपी नहीं है। क्योंकि योगीजन भूत, भविष्य और वर्तमानकी सभी बातें भलीभाँति जानते हैं। उनसे ऐसी बातें भी छिपी नहीं रहतीं; जो इन्द्रियोंसे परे हैं, बहुत दूर हैं अथवा बीचमें किसी वस्तुकी आड़ होनेके कारण नहीं दीखतीं ॥ २१ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! प्रद्युम्नजी मूर्तिमान् कामदेव थे। उनके सौन्दर्य और गुणोंपर रीझकर

रुक्मवतीने स्वयंवरमें उन्हींको वरमाला पहना दी। प्रद्युम्नजीने युद्धमें अकेले ही वहाँ इकट्ठे हुए नरपतियोंको जीत लिया और रुक्मवतीको हर लाये॥२२॥यद्यपि भगवान् श्रीकृष्णसे अपमानित होनेके कारण रुक्मीके हृदयकी क्रोधाग्नि शान्त नहीं हुई थी, वह अब भी उनसे वैर गाँठे हुए था, फिर भी अपनी बहिन रुक्मिणीको प्रसन्न करनेके लिये उसने अपने भानजे प्रद्युम्नको अपनी बेटी ब्याह दी ॥ २३ ॥ परीक्षित्! दस पुत्रोंके अतिरिक्त रुक्मिणीजीके एक परम सुन्दरी बड़े-बड़े नेत्रोंवाली कन्या थी। उसका नाम था चारुमती। कृतवर्माके पुत्र बलीने उसके साथ विवाह किया॥ २४ ॥

परीक्षित्! रुक्मीका भगवान् श्रीकृष्णके साथ पुराना वैर था। फिर भी अपनी बहिन रुक्मिणीको प्रसन्न करनेके लिये उसने अपनी पौत्री रोचनाका विवाह रुक्मिणीके पौत्र, अपने नाती (दौहित्र) अनिरुद्धके साथ कर दिया। यद्यपि रुक्मीको इस बातका पता था कि इस प्रकारका विवाह-सम्बन्ध धर्मके अनुकूल नहीं है, फिर भी स्नेह-बन्धनमें बँधकर उसने ऐसा कर दिया ॥ २५ ॥ परीक्षित्! अनिरुद्धके विवाहोत्सवमें सम्मिलित होनेके लिये भगवान् श्रीकृष्ण, बलरामजी, रुक्मिणीजी, प्रद्युम्न, साम्ब आदि द्वारकावासी भोजकट नगरमें पधारे ॥ २६ ॥ जब विवाहोत्सव निर्विघ्न समाप्त हो गया, तब कलिङ्गनरेश आदि घमंडी नरपतियोंने रुक्मीसे कहा कि 'तुम बलरामजीको पासोंके खेलमें जीत लो ॥ २७ ॥ राजन्! बलरामजीको पासे डालने तो आते नहीं, परन्तु उन्हें खेलनेका बहुत बड़ा व्यसन है।' उन लोगोंके बहकानेसे रुक्मीने बलरामजीको बुलवाया और वह उनके साथ चौसर खेलने लगा ॥२८॥ बलरामजीने पहले सौ, फिर हजार और इसके बाद दस हजार मुहरोंका दाँव लगाया। उन्हें रुक्मीने जीत लिया। रुक्मीकी जीत होनेपर कलिङ्गनरेश दाँत दिखा-दिखाकर, ठहाका मारकर बलरामजीकी हँसी उड़ाने लगा। बलरामजीसे वह हँसी सहन न हुई। वे कुछ चिढ़ गये॥२९॥ इसके बाद रुक्मीने एक लाख मुहरोंका दाँव लगाया। उसे बलरामजीने जीत लिया। परन्तु रुक्मी धूर्ततासे यह कहने लगा कि 'मैंने जीता है' ॥ ३० ॥ इसपर श्रीमान् बलरामजी क्रोधसे तिलमिला उठे। उनके हृदयमें इतना क्षोभ हुआ, मानो पूर्णिमाके दिन समुद्रमें ज्वार आ गया हो। उनके नेत्र एक तो स्वभावसे ही लाल-लाल थे, दूसरे अत्यन्त क्रोधके मारे वे और भी दहक उठे। अब उन्होंने दस करोड़ मुहरोंका दाँव रक्खा ॥ ३१ ॥ इस बार भी द्यूतनियमके अनुसार बलरामजीकी ही जीत हुई। परन्तु रुक्मीने छल करके कहा—'मेरी जीत है। इस विषयके विशेषज्ञ कलिङ्गनरेश आदि सभासद् इसका निर्णय कर दें' ॥ ३२ ॥ उस समय आकाशवाणीने कहा—'यदि धर्मपूर्वक कहा जाय, तो बलरामजीने ही यह दाँव जीता है। रुक्मीका यह कहना सरासर झूठ है कि उसने जीता है' ॥३३॥ एक तो रुक्मीके सिरपर मौत सवार थी और दूसरे उसके साथी दुष्ट राजाओंने भी उसे उभाड़ रक्खा था। इससे उसने आकाशवाणीपर कोई ध्यान न दिया और बलरामजीकी हँसी उड़ाते हुए कहा—॥३४॥ 'बलरामजी! आखिर आपलोग वन-वन भटकनेवाले ग्वाले ही तो ठहरे! आप पासा खेलना क्या जानें? पासों और बाणोंसे तो केवल राजालोग ही खेला करते हैं, आप-जैसे नहीं' ॥३५॥ रुक्मीके इस प्रकार आक्षेप और राजाओंके उपहास करनेपर बलरामजी क्रोधसे आगबबूला हो उठे। उन्होंने एक मुद्गर उठाया और उस माङ्गलिक सभामें ही रुक्मीको मार डाला ॥३६॥ पहले कलिङ्गनरेश दाँत दिखा-दिखाकर हँसता था, अब रंगमें भंग देखकर वहाँसे भागा; परन्तु बलरामजीने दस ही कदमपर उसे पकड़ लिया और क्रोधसे उसके दाँत तोड़ डाले ॥३७॥ बलरामजीने अपने मुद्गरकी चोटसे दूसरे राजाओंकी भी बाँह, जाँघ और सिर आदि तोड़-फोड़ डाले। वे खूनसे लथपथ और भयभीत होकर वहाँसे भागते बने ॥ ३८ ॥ परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णने यह सोचकर कि बलरामजीका समर्थन करनेसे रुक्मिणीजी अप्रसन्न होंगी और रुक्मीके वधको बुरा बतलानेसे बलरामजी रुष्ट होंगे, अपने साले रुक्मीकी मृत्युपर भला-बुरा कुछ भी न कहा ॥ ३९ ॥ इसके बाद अनिरुद्धजीका विवाह और शत्रुका वध दोनों प्रयोजन सिद्ध हो जानेपर भगवान्‌के आश्रित बलरामजी आदि यदुवंशी नवविवाहिता दुलहिन रोचनाके साथ अनिरुद्धजीको श्रेष्ठ रथपर चढ़ाकर भोजकट नगरसे द्वारकापुरीको चले आये ॥ ४० ॥

बासठवाँ अध्याय

ऊषा-अनिरुद्ध-मिलन

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—महायोगसम्पन्न मुनीश्वर! मैंने सुना है कि यदुवंशशिरोमणि अनिरुद्धजीने बाणासुरकी पुत्री ऊषासे विवाह किया था और इस प्रसङ्गमें भगवान् श्रीकृष्ण और शङ्करजीका बहुत बड़ा घमासान युद्ध हुआ था। आप कृपा करके यह वृत्तान्त विस्तारसे सुनाइये ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित्! महात्मा बलिकी कथा तो तुम सुन ही चुके हो। उन्होंने वामनरूपधारी भगवान्‌को सारी पृथ्वीका दान कर दिया था। उनके सौ लड़के थे। उनमें सबसे बड़ा था बाणासुर ॥२॥ दैत्यराज बलिका औरस पुत्र बाणासुर भगवान् शिवकी भक्तिमें सदा रत रहता था। समाजमें उसका बड़ा आदर था। उसकी उदारता और बुद्धिमत्ता प्रशंसनीय थी। उसकी प्रतिज्ञा अटल होती थी और सचमुच वह बातका धनी था ॥ ३ ॥ उन दिनों वह परम रमणीय शोणितपुरमें राज्य करता था। भगवान् शङ्करकी कृपासे इन्द्रादि देवता नौकर-चाकरकी तरह उसकी सेवा करते थे। उसके हजार भुजाएँ थीं। एक दिन जब भगवान् शङ्कर ताण्डवनृत्य कर रहे थे, तब उसने अपने हजार हाथोंसे अनेकों प्रकारके बाजे बजाकर उन्हें प्रसन्न कर लिया ॥४॥ सचमुच भगवान् शङ्कर बड़े ही भक्तवत्सल और शरणागतरक्षक हैं। समस्त भूतोंके एकमात्र स्वामी प्रभुने बाणासुरसे कहा—'तुम्हारी जो इच्छा हो, मुझसे माँग लो।' बाणासुरने कहा—'भगवन्! आप मेरे नगरकी रक्षा करते हुए यहीं रहा करें' ॥ ५ ॥

एक दिन बल-पौरुषके घमंडमे चूर बाणासुरने अपने समीप ही स्थित भगवान् शङ्करके चरणकमलोंको सूर्यके समान चमकीले मुकुटसे छूकर प्रणाम किया और कहा—॥ ६ ॥ 'देवाधिदेव! आप समस्त चराचर जगत्‌के गुरु और ईश्वर हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। जिन लोगोंके मनोरथ अबतक पूरे नहीं हुए हैं, उनको पूर्ण करनेके लिये आप कल्पवृक्ष हैं ॥७॥ भगवन्! आपने मुझे एक हजार भुजाएँ दी हैं, परन्तु वे मेरे लिये केवल भाररूप हो रही हैं। क्योंकि त्रिलोकीमें आपको छोड़कर मुझे अपनी बराबरीका कोई वीर-योद्धा ही नहीं मिलता, जो मुझसे लड़ सके ॥ ८ ॥ आदिदेव! एक बार मेरी बाँहोंमें लड़नेके लिये इतनी खुजलाहट हुई कि मैं दिग्गजोंकी ओर चला। परन्तु वे भी डरके मारे भाग खड़े हुए। उस समय मार्गमें अपनी बाँहोंकी चोटसे मैंने बहुत-से पहाड़ोंको तोड़-फोड़ डाला था' ॥ ९ ॥ बाणासुरकी यह प्रार्थना सुनकर भगवान् शङ्करने तनिक क्रोधसे कहा—'रे मूढ! जिस समय तेरी ध्वजा टूटकर गिर जायगी, उस समय मेरे ही समान योद्धासे तेरा युद्ध होगा और वह युद्ध तेरा घमंड चूर-चूर कर देगा' ॥१०॥ परीक्षित्! बाणासुरकी बुद्धि इतनी बिगड़ गयी थी कि भगवान् शङ्करकी बात सुनकर उसे बड़ा हर्ष हुआ और वह अपने घर लौट गया। अब वह मूर्ख भगवान् शङ्करके आदेशानुसार उस युद्धकी प्रतीक्षा करने लगा, जिसमें उसके बल-वीर्यका नाश होनेवाला था ॥ ११ ॥

परीक्षित्! बाणासुरकी एक कन्या थी, उसका नाम था ऊषा। अभी वह कुमारी ही थी कि एक दिन स्वप्नमें उसने देखा कि 'परम सुन्दर अनिरुद्धजीके साथ मेरा समागम हो रहा है।' आश्चर्यकी बात तो यह थी कि उसने अनिरुद्धजीको न तो कभी देखा था और न सुना ही था ॥ १२ ॥ स्वप्नमे ही उन्हें न देखकर वह बोल उठी—'प्राणप्यारे! तुम कहाँ हो?' और उसकी नींद टूट गयी। वह अत्यन्त विह्वलताके साथ उठ बैठी और यह देखकर कि मैं सखियोंके बीचमें हूँ, बहुत ही लज्जित हुई ॥ १३ ॥ परीक्षित्! बाणासुरके मन्त्रीका नाम था कुम्भाण्ड। उसकी एक कन्या थी, जिसका नाम था चित्रलेखा। ऊषा और चित्रलेखा एक-दूसरेकी सहेलियाँ थीं। चित्रलेखाने ऊषासे कौतूहलवश पूछा—॥ १४ ॥ 'सुन्दरी! राजकुमारी! मैं देखती हूँ कि अभीतक किसीने तुम्हारा पाणिग्रहण भी नहीं किया है। फिर तुम किसे ढूँढ़ रही हो और तुम्हारे मनोरथका क्या स्वरूप है?' ॥ १५ ॥

ऊषाने कहा—सखी! मैंने स्वप्नमें एक बहुत ही

सुन्दर नवयुवकको देखा है । उसके शरीरका रंग साँवला-साँवला-सा है । नेत्र कमलदलके समान हैं । शरीरपर पीला-पीला पीताम्बर फहरा रहा है । भुजाएँ लंबी-लंबी हैं और वह स्त्रियोंका चित्त चुरानेवाला है ॥ १६ ॥ उसने पहले तो अपने अधरोंका मधुर मधु मुझे पिलाया, परन्तु मैं उसे अघाकर पी ही न पायी थी कि वह मुझे दुःखके सागरमें डालकर न जाने कहाँ चला गया । मैं तरसती ही रह गयी । सखी ! मैं अपने उसी प्राणवल्लभको ढूँढ़ रही हूँ ॥ १७ ॥

चित्रलेखाने कहा—'सखी ! यदि तुम्हारा चित्तचोर त्रिलोकीमें कहीं भी होगा और उसे तुम पहचान सकोगी, तो मैं तुम्हारी विरह व्यथा अवश्य शान्त कर दूँगी । मैं चित्र बनाती हूँ, तुम अपने चित्तचोर प्राणवल्लभको पहचानकर बतला दो । फिर वह चाहे कहीं भी होगा, मैं उसे तुम्हारे पास ले आऊँगी' ॥ १८ ॥ यों कहकर चित्रलेखाने बात-की-बातमें बहुत-से देवता, गन्धर्व, सिद्ध, चारण, पन्नग, दैत्य, विद्याधर, यक्ष और मनुष्योंके चित्र बना दिये ॥ १९ ॥ मनुष्योंमें उसने वृष्णिवंशी वसुदेवजीके पिता शूर, स्वयं वसुदेवजी, बलरामजी और भगवान् श्रीकृष्ण आदिके चित्र बनाये । प्रद्युम्नका चित्र देखते ही ऊषा लज्जित हो गयी ॥ २० ॥ परीक्षित् ! जब उसने अनिरुद्धका चित्र देखा, तब तो लज्जाके मारे उसका सिर नीचा हो गया । फिर मन्द-मन्द मुसकराते हुए उसने कहा—'मेरा वह प्राणवल्लभ यही है, यही है' ॥ २१ ॥

परीक्षित् ! चित्रलेखा योगिनी थी । वह जान गयी कि ये भगवान् श्रीकृष्णके पौत्र हैं । अब वह आकाशमार्गसे रात्रिमें ही भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा सुरक्षित द्वारकापुरीमें पहुँची ॥ २२ ॥ वहाँ अनिरुद्धजी बहुत ही सुन्दर पलँगपर सो रहे थे । चित्रलेखा योगसिद्धिके प्रभावसे उन्हें उठाकर शोणितपुर ले आयी और अपनी सखी ऊषाको उसके प्रियतमका दर्शन करा दिया ॥ २३ ॥ अपने परम सुन्दर प्राणवल्लभको पाकर आनन्दकी अधिकतासे उसका मुखकमल प्रफुल्लित हो उठा और वह अनिरुद्धजीके साथ अपने महलमें विहार करने लगी । परीक्षित् ! उसका अन्तःपुर इतना सुरक्षित था कि उसकी ओर कोई पुरुष झाँकतक नहीं सकता था ॥ २४ ॥ ऊषाका प्रेम दिन दूना रात चौगुना बढ़ता जा रहा था । वह बहुमूल्य वस्त्र, पुष्पोंके हार, इत्र-फुलेल, धूप-दीप, आसन आदि सामग्रियोंसे, सुमधुर पेय (पीनेयोग्य पदार्थ—दूध, शरबत आदि), भोज्य (चबाकर खानेयोग्य) और भक्ष्य (निगल जानेयोग्य) पदार्थोंसे तथा मनोहर वाणी एवं सेवा-शुश्रूषासे अनिरुद्धजीका बड़ा सत्कार करती । ऊषाने अपने प्रेमसे उनके मनको अपने वशमें कर लिया । अनिरुद्धजी उस कन्याके अन्तःपुरमें छिपे रहकर अपने-आपको भूल गये । उन्हें इस बातका भी पता न चला कि मुझे यहाँ आये कितने दिन बीत गये ॥ २५-२६ ॥

परीक्षित् ! यदुकुमार अनिरुद्धजीके सहवाससे ऊषाका कुआँरपन नष्ट हो चुका था । उसके शरीरपर ऐसे चिह्न प्रकट हो गये, जो स्पष्ट इस बातकी सूचना दे रहे थे और जिन्हें किसी प्रकार छिपाया नहीं जा सकता था । ऊषा बहुत प्रसन्न भी रहने लगी । पहरेदारोंने समझ लिया कि इसका किसी-न-किसी पुरुषसे सम्बन्ध अवश्य हो गया है । उन्होंने जाकर बाणासुरसे निवेदन किया—'राजन् ! हमलोग आपकी अविवाहिता राजकुमारीका जैसा रंग-ढंग देख रहे हैं, वह आपके कुलपर बट्टा लगानेवाला है ॥ २७-२८ ॥ प्रभो ! इसमें सन्देह नहीं कि हमलोग बिना क्रम टूटे, रात-दिन महलका पहरा देते रहते हैं । आपकी कन्याको बाहरके मनुष्य देख भी नहीं सकते । फिर भी वह कलङ्कित कैसे हो गयी ? इसका कारण हमारी समझमें नहीं आ रहा है' ॥ २९ ॥

परीक्षित् ! पहरेदारोंसे यह समाचार जानकर कि कन्याका चरित्र दूषित हो गया है, बाणासुरके हृदयमें बड़ी पीडा हुई । वह झटपट ऊषाके महलमें जा धमका और देखा कि अनिरुद्धजी वहाँ बैठे हुए हैं ॥ ३० ॥ प्रिय परीक्षित् ! अनिरुद्धजी स्वयं कामावतार प्रद्युम्नजीके पुत्र थे । त्रिभुवनमें उनके-जैसा सुन्दर और कोई न था । साँवरा-सलोना शरीर और उसपर पीताम्बर फहराता हुआ, कमलदलके समान बड़ी-बड़ी कोमल आँखें, लंबी-लंबी भुजाएँ, कपोलोंपर घुँघराली अलकें और

कुण्डलोंकी झिलमिलाती हुई ज्योति, होठोंपर मन्द-मन्द मुसकान और प्रेमभरी चितवनसे मुखकी शोभा अनूठी हो रही थी ॥ ३१ ॥ अनिरुद्धजी उस समय अपनी सब ओरसे सज-धजकर बैठी हुई प्रियतमा ऊषाके साथ पासे खेल रहे थे। उनके गलेमें बसंती बेलाके बहुत सुन्दर पुष्पोंका हार सुशोभित हो रहा था और उस हारमें ऊषाके अङ्गका सम्पर्क होनेसे उसके वक्ष स्थलकी केशर लगी हुई थी। उन्हें ऊषाके सामने ही बैठा देखकर बाणासुर विस्मित—चकित हो गया ॥ ३२ ॥ जब अनिरुद्धजीने देखा कि बाणासुर बहुत-से आक्रमणकारी शस्त्रास्त्रसे सुसज्जित वीर सैनिकोंके साथ महलमें घुस आया है, तब वे उन्हें धराशायी कर देनेके लिये लोहेका एक भयङ्कर परिघ लेकर डट गये, मानो स्वयं कालदण्ड लेकर मृत्यु (यम) खड़ा हो ॥ ३३ ॥ बाणासुरके साथ आये हुए सैनिक उनको पकड़नेके लिये ज्यों-ज्यों उनकी ओर झपटते त्यों-त्यों वे उन्हें मार-मारकर गिराते जाते—ठीक वैसे ही, जैसे सूअरोंके दलका नायक कुत्तोंको मार डाले। अनिरुद्धजीकी चोटसे उन सैनिकोंके सिर, भुजा, जंघा आदि अङ्ग टूट-फूट गये और वे महलसे निकल भागे ॥ ३४ ॥ जब बली बाणासुरने देखा कि यह तो मेरी सारी सेनाका संहार कर रहा है, तब वह क्रोधसे तिलमिला उठा और उसने नागपाशसे उन्हें बाँध लिया। ऊषाने जब सुना कि उसके प्रियतमको बाँध लिया गया है, तब वह अत्यन्त शोक और विषादसे विह्वल हो गयी; उसके नेत्रोंसे आँसूकी धारा बहने लगी, वह रोने लगी ॥ ३५ ॥

तिरसठवाँ अध्याय

भगवान् श्रीकृष्णके साथ बाणासुरका युद्ध

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! बरसातके चार महीने बीत गये। परन्तु अनिरुद्धजीका कहीं पता न चला। उनके घरके लोग, इस घटनासे बहुत ही शोकाकुल हो रहे थे ॥ १ ॥ एक दिन नारदजीने आकर अनिरुद्धका शोणितपुर जाना, वहाँ बाणासुरके सैनिकोंको हराना और फिर नागपाशमें बाँधा जाना—यह सारा समाचार सुनाया। तब श्रीकृष्णको ही अपना आराध्यदेव माननेवाले यदुवंशियोंने शोणितपुरपर चढ़ाई कर दी ॥ २ ॥ अब श्रीकृष्ण और बलरामजीके साथ उनके अनुयायी सभी यदुवंशी—प्रद्युम्न, सात्यकि, गद, साम्ब, सारण, नन्द, उपनन्द और भद्र आदिने बारह अक्षौहिणी सेनाके साथ व्यूह बनाकर चारों ओरसे बाणासुरकी राजधानीको घेर लिया ॥ ३-४ ॥ जब बाणासुरने देखा कि यदुवंशियोंकी सेना नगरके उद्यान, परकोटों, बुर्जों और सिंहद्वारोंको तोड़-फोड़ रही है, तब उसे बड़ा क्रोध आया और वह भी बारह अक्षौहिणी सेना लेकर नगरसे निकल पड़ा ॥ ५ ॥ बाणासुरकी ओरसे साक्षात् भगवान् शङ्कर वृषभराज नन्दीपर सवार होकर अपने पुत्र कार्तिकेय और गणोंके साथ रणभूमिमें पधारे और उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलरामजीसे युद्ध किया ॥ ६ ॥ परीक्षित्! वह युद्ध इतना अद्भुत और घमासान हुआ कि उसे देखकर रोंगटे खड़े हो जाते थे। भगवान् श्रीकृष्णसे शङ्करजीका और प्रद्युम्नसे स्वामिकार्तिकका युद्ध हुआ ॥ ७ ॥ बलरामजीसे कुम्भाण्ड और कूपकर्णका युद्ध हुआ। बाणासुरके पुत्रके साथ साम्ब और स्वयं बाणासुरके साथ सात्यकि भिड़ गये ॥ ८ ॥ ब्रह्मा आदि बड़े-बड़े देवता, ऋषि-मुनि, सिद्ध-चारण, गन्धर्व-अप्सराएँ और यक्ष विमानोंपर चढ़-चढ़कर युद्ध देखनेके लिये आ पहुँचे ॥ ९ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने अपने शार्ङ्गधनुषके तीखी नोकवाले बाणोंसे शङ्करजीके अनुचरों—भूत, प्रेत, प्रमथ, गुह्यक, डाकिनी, यातुधान, वेताल, विनायक, प्रेतगण, मातृगण, पिशाच, कूष्माण्ड और ब्रह्मराक्षसोंको मार-मारकर खदेड़ दिया ॥ १०-११ ॥ पिनाकपाणि शङ्करजीने भगवान् श्रीकृष्णपर भाँति-भाँतिके अगणित अस्त्र-शस्त्रोंका प्रयोग किया, परन्तु भगवान् श्रीकृष्णने बिना किसी प्रकारके विस्मयके उन्हें विरोधी शस्त्रास्त्रोंसे शान्त कर दिया ॥ १२ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने ब्रह्मास्त्रकी शान्तिके लिये ब्रह्मास्त्रका, वायव्यास्त्रके लिये पार्वतास्त्रका, आग्नेयास्त्रके लिये पर्जन्यास्त्रका और पाशुपतास्त्रके लिये नारायणास्त्रका प्रयोग किया ॥ १३ ॥ इसके बाद भगवान् श्रीकृष्णने जृम्भणास्त्रसे (जिससे मनुष्यको जँभाई-पर-जँभाई आने लगती है) महादेवजीको मोहित कर दिया।

वे युद्धसे विरत होकर जँभाई लेने लगे, तब भगवान् श्रीकृष्ण शङ्करजीसे छुट्टी पाकर तलवार, गदा और बाणोंसे बाणासुरकी सेनाका संहार करने लगे ॥ १४ ॥ इधर प्रद्युम्नने बाणोंकी बौछारसे स्वामिकार्तिकको घायल कर दिया, उनके अङ्ग-अङ्गसे रक्तकी धारा बह चली, वे रणभूमि छोड़कर अपने वाहन मयूरद्वारा भाग निकले ॥ १५ ॥ बलरामजीने अपने मूसलकी चोटसे कुम्भाण्ड और कूपकर्णको घायल कर दिया, वे रणभूमिमें गिर पड़े। इस प्रकार अपने सेनापतियोंको हताहत देखकर बाणासुरकी सारी सेना तितर-बितर हो गयी ॥ १६ ॥

जब रथपर सवार बाणासुरने देखा कि श्रीकृष्ण आदिके प्रहारसे हमारी सेना तितर-बितर और तहस-नहस हो रही है, तब उसे बड़ा क्रोध आया। उसने चिढ़कर सात्यकिको छोड़ दिया और वह भगवान् श्रीकृष्णपर आक्रमण करनेके लिये दौड़ पड़ा ॥ १७ ॥ परीक्षित्! रणोन्मत्त बाणासुरने अपने एक हजार हाथोंसे एक साथ ही पाँच सौ धनुष खींचकर एक-एकपर दो-दो बाण चढ़ाये ॥ १८ ॥ परन्तु भगवान् श्रीकृष्णने एक साथ ही उसके सारे धनुष काट डाले और सारथी, रथ तथा घोड़ोंको भी धराशायी कर दिया एवं शङ्ख-ध्वनि की ॥ १९ ॥ कोटरा नामकी एक देवी बाणासुरकी धर्ममाता थी। वह अपने उपासक पुत्रके प्राणोंकी रक्षाके लिये बाल बिखेरकर नंग-धड़ंग भगवान् श्रीकृष्णके सामने आकर खड़ी हो गयी ॥ २० ॥ भगवान् श्रीकृष्णने, इसलिये कि कहीं उसपर दृष्टि न पड़ जाय, अपना मुँह फेर लिया और वे दूसरी ओर देखने लगे। तबतक बाणासुर धनुष कट जाने और रथहीन हो जानेके कारण अपने नगरमें चला गया ॥ २१ ॥

इधर जब भगवान् शङ्करके भूतगण इधर-उधर भाग गये, तब उनका छोड़ा हुआ तीन सिर और तीन पैरवाला ज्वर दसों दिशाओंको जलाता हुआ-सा भगवान् श्रीकृष्णकी ओर दौड़ा ॥ २२ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने उसे अपनी ओर आते देखकर उसका मुकाबला करनेके लिये अपना ज्वर छोड़ा। अब वैष्णव और माहेश्वर दोनों ज्वर आपसमें लड़ने लगे ॥ २३ ॥ अन्तमें वैष्णव ज्वरके तेजसे माहेश्वर ज्वर पीड़ित होकर चिल्लाने लगा और अत्यन्त भयभीत हो गया। जब उसे अन्यत्र कहीं त्राण न मिला, तब वह अत्यन्त नम्रतासे हाथ जोड़कर शरणमें लेनेके लिये भगवान् श्रीकृष्णसे प्रार्थना करने लगा ॥ २४ ॥

ज्वरने कहा—प्रभो! आपकी शक्ति अनन्त है। आप ब्रह्मादि ईश्वरोंके भी परम महेश्वर हैं। आप सबके आत्मा और सर्वस्वरूप हैं। आप अद्वितीय और केवल ज्ञानस्वरूप हैं। संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और संहारके कारण आप ही हैं। श्रुतियोंके द्वारा आपका ही वर्णन और अनुमान किया जाता है। आप समस्त विकारोंसे रहित स्वयं ब्रह्म हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥ २५ ॥ काल, दैव (अदृष्ट), कर्म, जीव, स्वभाव, सूक्ष्मभूत, शरीर, सूत्रात्मा प्राण, अहङ्कार, एकादश इन्द्रियाँ और पञ्चभूत—इन सबका संघात लिङ्गशरीर और बीजाङ्कुरन्यायके अनुसार उससे कर्म और कर्मसे फिर लिङ्गशरीरकी उत्पत्ति—यह सब आपकी माया है। आप मायाके निषेधकी परम अवधि हैं। मैं आपकी शरण ग्रहण करता हूँ ॥ २६ ॥ प्रभो! आप अपनी लीलासे ही अनेकों रूप धारण कर लेते हैं और देवता, साधु तथा लोक-मर्यादाओंका पालन-पोषण करते हैं। साथ ही उन्मार्गगामी और हिंसक असुरोंका संहार भी करते हैं। आपका यह अवतार पृथ्वीका भार उतारनेके लिये ही हुआ है ॥ २७ ॥ प्रभो! आपके शान्त, उग्र और अत्यन्त भयानक दुस्सह तेज ज्वरसे मैं अत्यन्त सन्तप्त हो रहा हूँ। भगवन्! देहधारी जीवोंको तभीतक ताप-सन्ताप रहता है, जबतक वे आशाके फंदोंमें फँसे रहनेके कारण आपके चरणकमलोंकी शरण नहीं ग्रहण करते ॥ २८ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'त्रिशिरा! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। अब तुम मेरे ज्वरसे निर्भय हो जाओ। संसारमें जो कोई हम दोनोंके संवादका स्मरण करेगा, उसे तुमसे कोई भय न रहेगा' ॥ २९ ॥ भगवान् श्रीकृष्णके इस प्रकार कहनेपर माहेश्वर ज्वर उन्हें प्रणाम करके चला गया। तबतक बाणासुर रथपर सवार होकर भगवान् श्रीकृष्णसे युद्ध करनेके लिये फिर आ पहुँचा ॥ ३० ॥ परीक्षित्! बाणासुरने अपने हजार हाथोंमें तरह-तरहके हथियार ले रक्खे थे। अब वह अत्यन्त क्रोधमें भरकर चक्रपाणि भगवान्पर बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ ३१ ॥

जब भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि बाणासुरने तो बाणोंकी झड़ी लगा दी है, तब वे छुरेकी समान तीखी धारवाले चक्रसे उसकी भुजाएँ काटने लगे, मानो कोई किसी वृक्षकी छोटी-छोटी डालियाँ काट रहा हो ॥ ३२ ॥ जब भक्तवत्सल भगवान् शङ्करने देखा कि बाणासुरकी भुजाएँ कट रही हैं, तब वे चक्रधारी भगवान् श्रीकृष्णके पास आये और स्तुति करने लगे ॥ ३३ ॥

भगवान् शङ्करने कहा—प्रभो ! आप वेदमन्त्रोंमें तात्पर्यरूपसे छिपे हुए परमज्योतिःस्वरूप परब्रह्म हैं। शुद्धहृदय महात्मागण आपके आकाशके समान सर्वव्यापक और निर्विकार (निर्लेप) स्वरूपका साक्षात्कार करते हैं। ॥ ३४ ॥ आकाश आपकी नाभि है, अग्नि मुख है और जल वीर्य । स्वर्ग सिर, दिशाएँ कान और पृथ्वी चरण है। चन्द्रमा मन, सूर्य नेत्र और मैं शिव आपका अहङ्कार हूँ । समुद्र आपका पेट है और इन्द्र भुजा ॥ ३५ ॥ धान्यादि ओषधियाँ रोम हैं, मेघ केश हैं और ब्रह्मा बुद्धि । प्रजापति लिङ्ग हैं और धर्म हृदय। इस प्रकार समस्त लोक और लोकान्तरोंके साथ जिसके शरीरकी तुलना की जाती है, वे परमपुरुष आप ही हैं ॥ ३६ ॥ अखण्ड ज्योतिःस्वरूप परमात्मन् ! आपका यह अवतार धर्मकी रक्षा और संसारके अभ्युदय—अभिवृद्धिके लिये हुआ है। हम सब भी आपके प्रभावसे ही प्रभावान्वित होकर सातों भुवनोंका पालन करते हैं ॥ ३७ ॥ आप सजातीय, विजातीय और स्वगतभेदसे रहित हैं—एक और अद्वितीय आदिपुरुष हैं। मायाकृत जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति—इन तीन अवस्थाओंमें अनुगत और उनसे अतीत तुरीयतत्त्व भी आप ही हैं। आप किसी दूसरी वस्तुके द्वारा प्रकाशित नहीं होते, स्वयंप्रकाश हैं । आप सबके कारण हैं, परन्तु आपका न तो कोई कारण है और न तो आपमें कारणपना ही है। भगवन् ! ऐसा होनेपर भी आप तीनों गुणोंकी विभिन्न विषमताओंको प्रकाशित करनेके लिये अपनी मायासे देवता, पशु-पक्षी, मनुष्य आदि शरीरोंके अनुसार भिन्न-भिन्न रूपोंमें प्रतीत होते है ॥ ३८ ॥ प्रभो ! जैसे सूर्य अपनी छाया बादलोंसे ही ढक जाता है और उन बादलों तथा विभिन्न रूपोंको प्रकाशित करता है उसी प्रकार आप तो स्वयंप्रकाश हैं, परन्तु गुणोंके द्वारा मानो ढक-से जाते हैं और समस्त गुणों तथा गुणाभिमानी जीवोंको प्रकाशित करते हैं। वास्तवमें आप अनन्त हैं ॥ ३९ ॥

भगवन् ! आपकी मायासे मोहित होकर लोग स्त्री-पुत्र, देह-गेह आदिमें आसक्त हो जाते हैं और फिर दुःखके अपार सागरमें डूबने-उतराने लगते हैं ॥ ४० ॥ संसारके मानवोंको यह मनुष्य-शरीर आपने अत्यन्त कृपा करके दिया है। जो पुरुष इसे पाकर भी अपनी इन्द्रियोंको वशमें नहीं करता और आपके चरणकमलोंका आश्रय नहीं लेता—उनका सेवन नहीं करता, उसका जीवन अत्यन्त शोचनीय है और वह स्वयं अपने-आपको धोखा दे रहा है ॥४१॥ प्रभो ! आप समस्त प्राणियोंके आत्मा, प्रियतम और ईश्वर हैं। जो मृत्युका ग्रास मनुष्य आपको छोड़ देता है और अनात्म, दुःखरूप एवं तुच्छ विषयोंमें सुखबुद्धि करके उनके पीछे भटकता है, वह इतना मूर्ख है कि अमृतको छोड़कर विष पी रहा है ॥ ४२ ॥ मैं, ब्रह्मा, सारे देवता और विशुद्ध हृदयवाले ऋषि-मुनि सब प्रकारसे और सर्वात्मभावसे आपके शरणागत हैं; क्योंकि आप ही हमलोगोंके आत्मा, प्रियतम और ईश्वर हैं ॥ ४३ ॥ आप जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके कारण हैं। आप सबमें सम, परम शान्त, सबके सुहृद् आत्मा और इष्टदेव हैं। आप एक, अद्वितीय और जगत्‌के आधार तथा अधिष्ठान हैं। हे प्रभो ! हम सब संसारसे मुक्त होनेके लिये आपका भजन करते हैं ॥ ४४ ॥ देव ! यह बाणासुर मेरा परमप्रिय, कृपापात्र और सेवक है। मैंने इसे अभयदान दिया है। प्रभो ! जिस प्रकार इसके परदादा दैत्यराज प्रह्लादपर आपका कृपाप्रसाद है, वैसा ही कृपाप्रसाद आप इसपर भी करें ॥ ४५ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—भगवन् ! आपकी बात मानकर—जैसा आप चाहते हैं, मै इसे निर्भय किये देता हूँ। आपने पहले इसके सम्बन्धमें जैसा निश्चय किया था—मैंने इसकी भुजाएँ काटकर उसीका अनुमोदन किया है ॥ ४६ ॥ मैं जानता हूँ कि बाणासुर दैत्यराज बलिका पुत्र है। इसलिये मैं भी इसका वध नहीं कर सकता; क्योंकि मैंने प्रह्लादको वर दे दिया है कि 'मैं तुम्हारे वंशमें पैदा होनेवाले किसी भी दैत्यका

वध नहीं करूँगा' ॥ ४७ ॥ इसका घमंड चूर करनेके लिये ही मैंने इसकी भुजाएँ काट दी हैं। इसकी बहुत बड़ी सेना पृथ्वीके लिये भार हो रही थी, इसीलिये मैंने उसका संहार कर दिया है ॥ ४८ ॥ अब इसकी चार भुजाएँ बच रही हैं। ये अजर, अमर बनी रहेंगी। यह बाणासुर आपके पार्षदोंमें मुख्य होगा। अब इसको किसीसे किसी प्रकारका भय नहीं है ॥ ४९ ॥

श्रीकृष्णसे इस प्रकार अभयदान प्राप्त करके बाणासुरने उनके पास आकर धरतीमें माथा टेका, प्रणाम किया और अनिरुद्धजीको अपनी पुत्री ऊषाके साथ रथपर बैठाकर भगवान्‌के पास ले आया ॥ ५० ॥ इसके बाद भगवान् श्रीकृष्णने महादेवजीकी सम्मतिसे वस्त्रालङ्कारविभूषित ऊषा और अनिरुद्धजीको एक अक्षौहिणी सेनाके साथ आगे करके द्वारकाके लिये प्रस्थान किया ॥ ५१ ॥ इधर द्वारकामें भगवान् श्रीकृष्ण आदिके शुभागमनका समाचार सुनकर झण्डियों और तोरणोंसे नगरका कोना कोना सजा दिया गया। बड़ी-बड़ी सड़कों और चौराहोंको चन्दन-मिश्रित जलसे सींच दिया गया। नगरके नागरिकों, बन्धु-बान्धवों और ब्राह्मणोंने आगे आकर खूब धूमधामसे भगवान्‌का स्वागत किया। उस समय शङ्ख, नगारों और ढोलोंकी तुमुल ध्वनि हो रही थी। इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णने अपनी राजधानीमें प्रवेश किया ॥ ५२ ॥

परीक्षित्! जो पुरुष श्रीशङ्करजीके साथ भगवान् श्रीकृष्णका युद्ध और उनकी विजयकी कथाका प्रातःकाल उठकर स्मरण करता है, उसकी पराजय नहीं होती ॥ ५३ ॥

चौसठवाँ अध्याय

नृग राजाकी कथा

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—प्रिय परीक्षित्! एक दिन साम्ब, प्रद्युम्न, चारुभानु और गद आदि यदुवंशी राजकुमार घूमनेके लिये उपवनमें गये ॥ १ ॥ वहाँ बहुत देरतक खेल खेलते हुए उन्हें प्यास लग आयी। अब वे इधर-उधर जलकी खोज करने लगे। वे एक कूएँके पास गये; उसमें जल तो था नहीं, एक बड़ा विचित्र जीव दीख पड़ा ॥ २ ॥ वह जीव पर्वतके समान आकारका एक गिरगिट था। उसे देखकर उनके आश्चर्यकी सीमा न रही। उनका हृदय करुणासे भर आया और वे उसे बाहर निकालनेका प्रयत्न करने लगे ॥ ३ ॥ परन्तु जब वे राजकुमार उस गिरे हुए गिरगिटको चमड़े और सूतकी रस्सियोंसे बाँधकर बाहर न निकाल सके, तब कुतूहलवश उन्होंने यह आश्चर्यमय वृत्तान्त भगवान् श्रीकृष्णके पास जाकर निवेदन किया ॥ ४ ॥ जगत्‌के जीवनदाता कमलनयन भगवान् श्रीकृष्ण उस कुएँपर आये। उसे देखकर उन्होंने बायें हाथसे खेल-खेलमें—अनायास ही उसको बाहर निकाल लिया ॥ ५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णके करकमलोंका स्पर्श होते ही उसका गिरगिट-रूप जाता रहा और वह एक स्वर्गीय देवताके रूपमें परिणत हो गया। अब उसके शरीरका रंग तपाये हुए सोनेके समान चमक रहा था। और उसके शरीरपर अद्भुत वस्त्र, आभूषण और पुष्पोंके हार शोभा पा रहे थे ॥ ६ ॥ यद्यपि भगवान् श्रीकृष्ण जानते थे कि इस दिव्य पुरुषको गिरगिट-योनि क्यों मिली थी, फिर भी वह कारण सर्वसाधारणको मालूम हो जाय, इसलिये उन्होंने उस दिव्य पुरुषसे पूछा—'महाभाग! तुम्हारा रूप तो बहुत ही सुन्दर है। तुम हो कौन? मैं तो ऐसा समझता हूँ कि तुम अवश्य ही कोई श्रेष्ठ देवता हो ॥ ७ ॥ कल्याणमूर्ते! किस कर्मके फलसे तुम्हें इस योनिमे आना पड़ा था? वास्तवमें तुम इसके योग्य नहीं हो। हमलोग तुम्हारा वृत्तान्त जानना चाहते हैं। यदि तुम हमलोगोंको वह बतलाना उचित समझो तो अपना परिचय अवश्य दो' ॥ ८ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जब अनन्तमूर्ति भगवान् श्रीकृष्णने राजा नृगसे [क्योंकि वे ही इस रूपमें प्रकट हुए थे] इस प्रकार पूछा, तब उन्होंने अपना सूर्यके समान जाज्वल्यमान मुकुट झुकाकर भगवान्‌को प्रणाम किया और वे इस प्रकार कहने लगे ॥ ९ ॥

राजा नृगने कहा—प्रभो ! मैं महाराज इक्ष्वाकुका पुत्र राजा नृग हूँ। जब कभी किसीने आपके सामने दानियोंकी गिनती की होगी, तब उसमें मेरा नाम भी अवश्य ही आपके कानोंमें पड़ा होगा ॥ १० ॥ प्रभो ! आप समस्त प्राणियोंकी एक-एक वृत्तिके साक्षी हैं। भूत और भविष्यका व्यवधान भी आपके अखण्ड ज्ञानमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं डाल सकता। अतः आपसे छिपा ही क्या है? फिर भी मैं आपकी आज्ञाका पालन करनेके लिये कहता हूँ ॥ ११ ॥ भगवन् ! पृथ्वीमें जितने धूलिकण हैं, आकाशमें जितने तारे हैं और वर्षामें जितनी जलकी धाराएँ गिरती हैं, मैंने उतनी ही गौएँ दान की थीं ॥ १२ ॥ वे सभी गौएँ दुधार, नौजवान, सीधी, सुन्दर, सुलक्षणा और कपिला थीं। उन्हें मैंने न्यायके धनसे प्राप्त किया था। सबके साथ बछड़े थे। उनके सींगोंमें सोना मढ़ दिया गया था और खुरोंमें चाँदी। उन्हें वस्त्र, हार और गहनोंसे सजा दिया जाता था। ऐसी गौएँ मैंने दी थीं ॥ १३ ॥ भगवन् ! मैं युवावस्थासे सम्पन्न श्रेष्ठ ब्राह्मणकुमारोंको—जो सद्गुणी, शीलसम्पन्न, कष्टमें पड़े हुए कुटुम्बवाले, दम्भरहित तपस्वी, वेदपाठी, शिष्योंको विद्यादान करनेवाले तथा सच्चरित्र होते—वस्त्राभूषणसे अलङ्कृत करता और उन गौओंका दान करता ॥ १४ ॥ इस प्रकार मैंने बहुत-सी गौएँ, पृथ्वी, सोना, घर, घोड़े, हाथी, दासियोंके सहित कन्याएँ, तिलोंके पर्वत, चाँदी, शय्या, वस्त्र, रत्न, गृह-सामग्री और रथ आदि दान किये। अनेकों यज्ञ किये और बहुत-से कूएँ, बावली आदि बनवाये ॥ १५ ॥

एक दिन किसी अप्रतिग्रही (दान न लेनेवाले), तपस्वी ब्राह्मणकी एक गाय बिछुड़कर मेरी गौओंमें आ मिली। मुझे इस बातका बिल्कुल पता न चला। इसलिये मैंने अनजानमें उसे किसी दूसरे ब्राह्मणको दान कर दिया ॥ १६ ॥ जब उस गायको वे ब्राह्मण ले चले, तब उस गायके असली स्वामीने कहा—'यह गौ मेरी है। दान ले जानेवाले ब्राह्मणने कहा—'यह तो मेरी है, क्योंकि राजा नृगने मुझे इसका दान किया है ॥ १७ ॥ वे दोनों ब्राह्मण आपसमें झगड़ते हुए अपनी-अपनी बात कायम करनेके लिये मेरे पास आये। एकने कहा—'यह गाय अभी-अभी आपने मुझे दी है' और दूसरेने कहा कि 'यदि ऐसी बात है तो तुमने मेरी गाय चुरा ली है।' भगवन् ! उन दोनों ब्राह्मणोंकी बात सुनकर मेरा चित्त भ्रमित हो गया ॥ १८ ॥ मैंने धर्म-संकटमें पड़कर उन दोनोंसे बड़ी अनुनय-विनय की और कहा कि 'मैं बदलेमें एक लाख उत्तम गौएँ दूँगा। आपलोग मुझे यह गाय दे दीजिये ॥ १९ ॥ मैं आप-लोगोंका सेवक हूँ। मुझसे अनजानमें यह अपराध बन गया है। मुझपर आपलोग कृपा कीजिये और मुझे इस घोर कष्टसे तथा घोर नरकमें गिरनेसे बचा लीजिये ॥ २० ॥ 'राजन् ! मैं इसके बदलेमें कुछ नहीं लूँगा।' यह कहकर गायका स्वामी चला गया। 'तुम इसके बदलेमें एक लाख ही नहीं, दस हजार गौएँ और दो तो भी मैं लेनेका नहीं।' इस प्रकार कहकर दूसरा ब्राह्मण भी चला गया ॥ २१ ॥ देवाधिदेव जगदीश्वर ! इसके बाद आयु समाप्त होनेपर यमराजके दूत आये और मुझे यमपुरी ले गये। वहाँ यमराजने मुझसे पूछा—॥ २२ ॥ राजन् ! तुम पहले अपने पापका फल भोगना चाहते हो या पुण्यका ? तुम्हारे दान और धर्मके फलस्वरूप तुम्हें ऐसा तेजस्वी लोक प्राप्त होनेवाला है, जिसकी कोई सीमा ही नहीं है ॥ २३ ॥ भगवन् ! तब मैंने यमराजसे कहा—'देव ! पहले मैं अपने पापका फल भोगना चाहता हूँ।' और उसी क्षण यमराजने कहा—'तुम गिर जाओ।' उनके ऐसा कहते ही मैं वहाँसे गिरा और गिरते ही समय मैंने देखा कि मैं गिरगिट हो गया हूँ ॥ २४ ॥ प्रभो ! मैं ब्राह्मणोंका सेवक उदार दानी और आपका भक्त था। मुझे इस बातकी उत्कट अभिलाषा थी कि किसी प्रकार आपके दर्शन हो जायँ। इस प्रकार आपकी कृपासे मेरे पूर्वजन्मकी स्मृति नष्ट न हुई ॥ २५ ॥ भगवन् ! आप परमात्मा हैं। बड़े-बड़े शुद्ध-हृदय योगीश्वर उपनिषदोंकी दृष्टिसे (अभेद-दृष्टिसे) अपने हृदयमें आपका ध्यान करते रहते हैं। इन्द्रियातीत परमात्मन् ! साक्षात् आप मेरे नेत्रोंके सामने कैसे आ गये ! क्योंकि मैं तो अनेक प्रकारके व्यसनों, दुःखद कर्मोंमें फँसकर अंधा हो रहा था। आपका दर्शन तो तब होता है, जब संसारके चक्करसे छुटकारा मिलनेका समय आता है ॥ २६ ॥ देवताओंके भी आराध्यदेव !

पुरुषोत्तम गोविन्द ! आप ही व्यक्त और अव्यक्त जगत् तथा जीवोंके स्वामी हैं। अविनाशी अच्युत ! आपकी कीर्ति पवित्र है। अन्तर्यामी नारायण ! आप ही समस्त वृत्तियों और इन्द्रियोंके स्वामी हैं ॥ २७ ॥ प्रभो ! श्रीकृष्ण ! मैं अब देवताओंके लोकमें जा रहा हूँ। आप मुझे आज्ञा दीजिये। आप ऐसी कृपा कीजिये कि मैं चाहे कहीं भी क्यों न रहूँ, मेरा चित्त सदा आपके चरणकमलोंमें ही लगा रहे ॥ २८ ॥ आप समस्त कार्यों और कारणोंके रूपमें विद्यमान हैं। आपकी शक्ति अनन्त है और आप स्वयं ब्रह्म है। आपको मैं नमस्कार करता हूँ। सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वान्तर्यामी वासुदेव श्रीकृष्ण ! आप समस्त योगोंके स्वामी योगेश्वर हैं। मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ ॥ २९ ॥

राजा नृगने इस प्रकार कहकर भगवान्‌की परिक्रमा की और अपने मुकुटसे उनके चरणोंका स्पर्श करके प्रणाम किया। फिर उनसे आज्ञा लेकर सबके देखते-देखते ही वे श्रेष्ठ विमानपर सवार हो गये ॥ ३० ॥

राजा नृगके चले जानेपर ब्राह्मणोंके परम प्रेमी, धर्मके आधार देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने क्षत्रियोंको शिक्षा देनेके लिये वहाँ उपस्थित अपने कुटुम्बके लोगोंसे कहा—॥ ३१ ॥ 'जो लोग अग्निके समान तेजस्वी हैं वे भी ब्राह्मणोंका थोड़े-से थोड़ा धन हड़पकर नहीं पचा सकते। फिर जो अभिमानवश झूठमूठ अपनेको लोगों-का स्वामी समझते हैं, वे राजा तो क्या पचा सकते हैं? ॥ ३२ ॥ मैं हलाहल विषको विष नहीं मानता, क्योंकि उसकी चिकित्सा होती है। वस्तुतः ब्राह्मणोंका धन ही परम विष है; उसको पचा लेनेके लिये पृथ्वीमें कोई औषध, कोई उपाय नहीं है ॥ ३३ ॥ हलाहल विष केवल खानेवालेका ही प्राण लेता है, और आग भी जलके द्वारा बुझायी जा सकती है; परन्तु ब्राह्मणके धनरूप अरणिसे जो आग पैदा होती है, वह सारे कुलको समूल जला डालती है ॥ ३४ ॥ ब्राह्मणका धन यदि उसकी पूरी-पूरी सम्मति लिये बिना भोगा जाय तब तो वह भोगनेवाले, उसके लड़के और पौत्र—इन तीन पीढ़ियोंको ही चौपट करता है। परन्तु यदि बल-पूर्वक हठ करके उसका उपभोग किया जाय, तब तो पूर्वपुरुषोंकी दस पीढ़ियाँ और आगेकी भी दस पीढ़ियाँ नष्ट हो जाती हैं ॥ ३५ ॥ जो मूर्ख राजा अपनी राजलक्ष्मी-के घमंडसे अंधे होकर ब्राह्मणोंका धन हड़पना चाहते हैं, समझना चाहिये कि वे जान-बूझकर नरकमें जानेका रास्ता साफ कर रहे हैं। वे देखते नहीं कि उन्हें अधःपतनके कैसे गहरे गड्ढेमें गिरना पड़ेगा ॥ ३६ ॥ जिन उदार-हृदय और बहुकुटुम्बी ब्राह्मणोंकी वृत्ति छीन ली जाती है, उनके रोनेपर उनके आँसूकी बूँदोंसे धरतीके जितने धूलिकण भीगते हैं, उतने वर्षोंतक ब्राह्मणके स्वत्वको छीननेवाले उस उच्छृङ्खल राजा और उसके वंशजोंको कुम्भीपाक नरकमें दुःख भोगना पड़ता है ॥ ३७-३८ ॥ जो मनुष्य अपनी या दूसरोंकी दी हुई ब्राह्मणोंकी वृत्ति, उनकी जीविकाके साधन छीन लेते हैं, वे साठ हजार वर्षतक विष्ठाके कीड़े होते हैं ॥ ३९ ॥ इसलिये मैं तो यही चाहता हूँ कि ब्राह्मणोंका धन कभी भूलसे भी मेरे कोषमें न आये, क्योंकि जो लोग ब्राह्मणोंके धनकी इच्छा भी करते हैं—उसे छीननेकी बात तो अलग रही—वे इस जन्ममें अल्पायु, शत्रुओंसे पराजित और राज्यभ्रष्ट हो जाते हैं और मृत्युके बाद भी वे दूसरोंको कष्ट देनेवाले साँप ही होते हैं ॥ ४० ॥ इसलिये मेरे आत्मीयो ! यदि ब्राह्मण अपराध करे, तो भी उससे द्वेष मत करो। वह मार ही क्यों न बैठे या बहुत-सी गालियाँ या शाप ही क्यों न दे, उसे तुमलोग सदा नमस्कार ही करो ॥ ४१ ॥ जिस प्रकार मैं बड़ी सावधानीसे तीनों समय ब्राह्मणोंको प्रणाम करता हूँ, वैसे ही तुमलोग भी किया करो। जो मेरी इस आज्ञाका उल्लङ्घन करेगा, उसे मैं क्षमा नहीं करूँगा! दण्ड दूँगा ॥ ४२ ॥ यदि ब्राह्मणके धनका अपहरण हो जाय तो वह अपहृत धन उस अपहरण करनेवाले-को—अनजानमें उसके द्वारा यह अपराध हुआ हो तो भी—अधःपतनके गड्ढेमें डाल देता है। जैसे ब्राह्मणकी गायने अनजानमें उसे लेनेवाले राजा नृगको नरकमें डाल दिया था ॥ ४३ ॥ परीक्षित् ! समस्त लोकोंको पवित्र करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण द्वारकावासियोंको इस प्रकार उपदेश देकर अपने महलमें चले गये' ॥ ४४ ॥

पैंसठवाँ अध्याय

श्रीबलरामजीका व्रजगमन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! भगवान् बलरामजीके मनमें व्रजके नन्दबाबा आदि स्वजन-सम्बन्धियोंसे मिलनेकी बड़ी इच्छा और उत्कण्ठा थी। अब वे रथपर सवार होकर द्वारकासे नन्दबाबाके व्रजमें आये॥१॥ इधर उनके लिये व्रजवासी गोप और गोपियाँ भी बहुत दिनोंसे उत्कण्ठित थीं। उन्हें अपने बीचमें पाकर सबने बड़े प्रेमसे गले लगाया। बलरामजीने माता यशोदा और नन्दबाबाको प्रणाम किया। उन लोगोंने भी आशीर्वाद देकर उनका अभिनन्दन किया ॥ २ ॥ यह कहकर कि 'बलरामजी ! तुम जगदीश्वर हो, अपने छोटे भाई श्रीकृष्णके साथ सर्वदा हमारी रक्षा करते रहो', उनको गोदमें ले लिया और अपने प्रेमाश्रुओंसे उन्हें भिगो दिया ॥ ३ ॥ इसके बाद बड़े-बड़े गोपोंको बलरामजीने और छोटे-छोटे गोपोंने बलरामजीको नमस्कार किया। वे अपनी आयु, मेल-जोल और सम्बन्धके अनुसार सबसे मिले-जुले ॥ ४ ॥ ग्वालबालोंके पास जाकर किसीसे हाथ मिलाया, किसीसे मीठी-मीठी बातें कीं, किसीको खूब हँस-हँसकर गले लगाया। इसके बाद जब बलरामजीकी थकावट दूर हो गयी, वे आरामसे बैठ गये, तब सब ग्वाल उनके पास आये, इन ग्वालोंने कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णके लिये समस्त भोग, स्वर्ग और मोक्षतक त्याग रक्खा था। बलरामजीने जब उनके और उनके घरवालोंके सम्बन्धमें कुशलप्रश्न किया, तब उन्होंने प्रेम-गद्गद वाणीसे उनसे प्रश्न किया॥ ५-६ ॥ बलरामजी ! वसुदेवजी आदि हमारे सब भाई-बन्धु सकुशल हैं न ? अब आपलोग स्त्री-पुत्र आदिके साथ रहते हैं, बाल-बच्चेदार हो गये हैं; क्या कभी आपलोगोंको हमारी याद भी आती है ? ॥ ७ ॥ यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि पापी कंसको आपलोगोंने मार डाला और अपने सुहृद्-सम्बन्धियोंको बड़े कष्टसे बचा लिया। यह भी कम आनन्दकी बात नहीं है कि आपलोगोंने और भी बहुत-से शत्रुओंको मार डाला या जीत लिया और अब अत्यन्त सुरक्षित दुर्ग (किले) में आपलोग निवास करते हैं' ॥ ८ ॥

परीक्षित् ! भगवान् बलरामजीके दर्शनसे, उनकी प्रेमभरी चितवनसे गोपियाँ निहाल हो गयीं। उन्होंने हँसकर पूछा—'क्यों बलरामजी ! नगर-नारियोंके प्राणवल्लभ श्रीकृष्ण अब सकुशल तो हैं न ? ॥ ९ ॥ क्या कभी उन्हें अपने भाई-बन्धु और पिता-माताकी भी याद आती है ? क्या वे अपनी माताके दर्शनके लिये एक बार भी यहाँ आ सकेंगे ? क्या महाबाहु श्रीकृष्ण कभी हमलोगोंकी सेवाका भी कुछ स्मरण करते हैं ॥ १० ॥ आप जानते हैं कि स्वजन-सम्बन्धियोंको छोड़ना बहुत ही कठिन है। फिर भी हमने उनके लिये माँ-बाप, भाई-बन्धु, पति-पुत्र और बहिन-बेटियोंको भी छोड़ दिया। परन्तु प्रभो ! वे बात-की-बातमें हमारे सौहार्द और प्रेमका बन्धन काटकर, हमसे नाता तोड़कर परदेश चले गये; हमलोगोंको बिल्कुल ही छोड़ दिया। हम चाहतीं तो उन्हें रोक लेतीं; परन्तु जब वे कहते कि हम तुम्हारे ऋणी हैं—तुम्हारे उपकारका बदला कभी नहीं चुका सकते, तब ऐसी कौन-सी स्त्री है, जो उनकी मीठी मीठी बातोंपर विश्वास न कर लेती॥११-१२॥ एक गोपीने कहा—'बलरामजी ! हम तो गाँवकी गँवार ग्वालिनें ठहरीं, उनकी बातोंमे आ गयीं। परन्तु नगरकी स्त्रियाँ तो बड़ी चतुर होती हैं। भला, वे चञ्चल और कृतघ्न श्रीकृष्णकी बातोंमें क्यों फँसने लगीं; उन्हें तो वे नहीं छका पाते होंगे !' दूसरी गोपीने कहा—'नहीं सखी, श्रीकृष्ण बातें बनानेमे तो एक ही हैं। ऐसी रंग-बिरंगी मीठी-मीठी बातें गढ़ते हैं कि क्या कहना ! उनकी सुन्दर मुसकराहट और प्रेमभरी चितवनसे नगर-नारियाँ भी प्रेमावेशसे व्याकुल हो जाती होंगी और वे अवश्य उनकी बातोंमें आकर अपनेको निछावर कर देती होंगी॥१३॥ तीसरी गोपीने कहा—'अरी गोपियो ! हमलोगोंको उसकी बातसे क्या मतलब है ? यदि समय ही काटना है तो कोई दूसरी बात करो। यदि उस निष्ठुरका समय हमारे बिना बीत जाता है तो हमारा भी उसीकी तरह भले ही दुःखसे क्यों न हो, कट ही जायगा ॥१४॥ अब गोपियोंके भाव-नेत्रोंके सामने भगवान् श्रीकृष्णकी

हँसी, प्रेमभरी बातें, चारु चितवन, अनूठी चाल और प्रेमालिङ्गन आदि मूर्तिमान् होकर नाचने लगे । वे उन बातोंकी मधुर स्मृतिमें तन्मय होकर रोने लगीं ॥१५॥

परीक्षित् ! भगवान् बलरामजी नाना प्रकारसे अनुनय-विनय करनेमें बड़े निपुण थे । उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णके हृदयस्पर्शी और लुभावने सन्देश सुना-सुनाकर गोपियोंको सान्त्वना दी ॥१६॥ और वसन्तके दो महीने—चैत्र और वैशाख वहीं बिताये । वे रात्रिके समय गोपियोंमें रहकर उनके प्रेमकी अभिवृद्धि करते । क्यों न हो, भगवान् राम ही जो ठहरे ! ॥ १७ ॥ उस समय कुमुदिनीकी सुगन्ध लेकर भीनी भीनी वायु चलती रहती, पूर्ण चन्द्रमाकी चाँदनी छिटककर यमुनाजीके तटवर्ती उपवन-को उज्ज्वल कर देती और भगवान् बलराम गोपियोंके साथ वहीं विहार करते ॥ १८ ॥ वरुणदेवने अपनी पुत्री वारुणीदेवीको वहाँ भेज दिया था । वह एक वृक्षके खोड़रसे बह निकली । उसने अपनी सुगन्धसे सारे वनको सुगन्धित कर दिया ।१९। मधुधाराकी वह सुगन्ध वायुने बलरामजीके पास पहुँचायी, मानो उसने उन्हें उपहार दिया हो ! उसकी महँकसे आकृष्ट होकर बलरामजी गोपियोंको लेकर वहाँ पहुँच गये और उनके साथ उसका पान किया ॥ २० ॥ उस समय गोपियाँ बलरामजीके चारों ओर उनके चरित्रका गान कर रही थीं, और वे मतवाले-से होकर वनमें विचर रहे थे । उनके नेत्र आनन्दमदसे विह्वल हो रहे थे ॥२१॥ गलेमें पुष्पोंका हार शोभा पा रहा था । वैजयन्तीकी माला पहने हुए आनन्दोन्मत्त हो रहे थे । उनके एक कानमें कुण्डल झलक रहा था । मुखारविन्दपर मुस-कराहटकी शोभा निराली ही थी । उसपर पसीनेकी बूँदें हिमकणके समान जान पड़ती थीं ॥ २२ ॥ सर्व-शक्तिमान् बलरामजीने जलक्रीडा करनेके लिये यमुना-जीको पुकारा । परन्तु यमुनाजीने यह समझकर कि ये तो मतवाले हो रहे हैं, उनकी आज्ञाका उल्लङ्घन कर दिया; वे नहीं आयीं । तब बलरामजीने क्रोधपूर्वक अपने हलकी नोकसे उन्हें खींचा ॥ २३ ॥ और कहा—'पापिनी यमुने ! मेरे बुलानेपर भी तू मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन करके यहाँ नहीं आ रही है, मेरा तिरस्कार कर रही है ! देख, अब मैं तुझे तेरे स्वेच्छाचारका फल चखाता हूँ । अभी-अभी तुझे हलकी नोकसे सौ-सौ टुकडे किये देता हूँ' ॥ २४ ॥ जब बलरामजीने यमुनाजीको इस प्रकार डाँटा-फटकारा, तब वे चकित और भयभीत होकर बलरामजीके चरणोंपर गिर पड़ीं और गिड़गिड़ाकर प्रार्थना करने लगीं—॥ २५ ॥ लोका-भिराम बलरामजी ! महाबाहो ! मैं आपका पराक्रम भूल गयी थी । जगत्पते ! अब मैं जान गयी कि आपके अंशमात्र शेषजी इस सारे जगत्को धारण करते हैं ।२६। भगवन् ! आप परम ऐश्वर्यशाली हैं । आपके वास्तविक स्वरूपको न जाननेके कारण ही मुझसे यह अपराध बन गया है । सर्वस्वरूप भक्तवत्सल ! मैं आपकी शरणमें हूँ । आप मेरी भूल-चूक क्षमा कीजिये, मुझे छोड़ दीजिये' ॥ २७ ॥

अब यमुनाजीकी प्रार्थना स्वीकार करके भगवान् बलरामने उन्हें क्षमा कर दिया और फिर जैसे गजराज हथिनियोंके साथ क्रीडा करता है, वैसे ही वे गोपियोंके साथ जलक्रीडा करने लगे ॥ २८ ॥ जब वे यथेष्ट जल-विहार करके यमुनाजीसे बाहर निकले, तब लक्ष्मी-जीने उन्हें नीलाम्बर, बहुमूल्य आभूषण और सोनेका सुन्दर हार दिया ॥२९॥ बलरामजीने नीले वस्त्र पहन लिये और सोनेकी माला गलेमें डाल ली । वे अङ्गराग लगाकर, सुन्दर भूषणोंसे विभूषित होकर इस प्रकार शोभायमान हुए मानो इन्द्रका श्वेतवर्ण ऐरावत हाथी हो ॥ ३० ॥ परीक्षित् ! यमुनाजी अब भी बलरामजीके खींचे हुए मार्गसे बहती हैं और वे ऐसी जान पड़ती हैं, मानो अनन्तशक्ति भगवान् बलरामजीका यश गान कर रही हों ॥ ३१ ॥ बलरामजीका चित्त व्रजवासिनी गोपियोंके माधुर्यसे इस प्रकार मुग्ध हो गया कि उन्हें समयका कुछ ध्यान ही न रहा, बहुत-सी रात्रियाँ एक रातके समान व्यतीत हो गयीं । इस प्रकार बलरामजी व्रजमें विहार करते रहे ॥ ३२ ॥

छाछठवाँ अध्याय

पौण्ड्रक और काशिराजका उद्धार

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जब भगवान् बलरामजी नन्दबाबाके व्रजमें गये हुए थे, तब पीछेसे करूष देशके अज्ञानी राजा पौण्ड्रकने भगवान् श्रीकृष्णके पास एक दूत भेजकर यह कहलाया कि 'भगवान् वासुदेव मैं हूँ' ॥ १ ॥ मूर्खलोग उसे बहकाया करते थे कि 'आप ही भगवान् वासुदेव हैं और जगत्की रक्षाके लिये पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए हैं ।' इसका फल यह हुआ कि वह मूर्ख अपनेको ही भगवान् मान बैठा ॥ २ ॥ जैसे बच्चे आपसमें खेलते समय किसी बालकको ही राजा मान लेते हैं और वह राजाकी तरह उनके साथ व्यवहार करने लगता है, वैसे ही मन्दमति अज्ञानी पौण्ड्रकने अचिन्त्यगति भगवान् श्रीकृष्णकी लीला और रहस्य न जानकर द्वारकामें उनके पास दूत भेज दिया ॥ ३ ॥ पौण्ड्रकका दूत द्वारका आया और राजसभामें बैठे हुए कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णको उसने अपने राजाका यह सन्देश कह सुनाया—॥ ४ ॥ 'एकमात्र मैं ही वासुदेव हूँ । दूसरा कोई नहीं है । प्राणियोंपर कृपा करनेके लिये मैंने ही अवतार ग्रहण किया है । तुमने झूठ-मूठ अपना नाम वासुदेव रख लिया है, अब उसे छोड़ दो ॥ ५ ॥ यदुवंशी ! तुमने मूर्खतावश मेरे चिह्न धारण कर रक्खे हैं । उन्हें छोड़कर मेरी शरणमें आओ और यदि मेरी बात तुम्हें स्वीकार न हो, तो मुझसे युद्ध करो' ॥ ६ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! मन्दमति पौण्ड्रककी यह बहक सुनकर उग्रसेन आदि सभासद् जोर-जोरसे हँसने लगे ॥७॥ उन लोगोंकी हँसी समाप्त होनेके बाद भगवान् श्रीकृष्णने दूतसे कहा—'तुम जाकर अपने राजासे कह देना कि "रे मूढ़ ! मैं अपने चक्र आदि चिह्न यों नहीं छोड़ूँगा । इन्हें मैं तुझपर छोड़ूँगा और केवल तुमपर ही नहीं, तेरे उन सब साथियोंपर भी, जिनके बहकानेसे तू इस प्रकार बहक रहा है । उस समय मूर्ख ! तू अपना मुँह छिपाकर—औंधे मुँह गिरकर चील, गीध, बटेर आदि मांसभोजी पक्षियोंसे घिरकर सो जायगा, और तू मेरा शरणदाता नहीं, उन कुत्तोंकी शरण होगा, जो तेरा मांस चींथ-चींथकर खा जायँगे" ॥८-९॥ परीक्षित् ! भगवान्का यह तिरस्कारपूर्ण संवाद लेकर पौण्ड्रकका दूत अपने स्वामीके पास गया और उसे कह सुनाया । इधर भगवान् श्रीकृष्णने भी रथपर सवार होकर काशीपर चढ़ाई कर दी । (क्योंकि वह करूषका राजा उन दिनों वहीं अपने मित्र काशि-राजके पास रहता था) ॥ १० ॥

भगवान् श्रीकृष्णके आक्रमणका समाचार पाकर महारथी पौण्ड्रक भी दो अक्षौहिणी सेनाके साथ शीघ्र ही नगरसे बाहर निकल आया ॥११॥ काशीका राजा पौण्ड्रकका मित्र था । अतः वह भी उसकी सहायता करनेके लिये तीन अक्षौहिणी सेनाके साथ उसके पीछे-पीछे आया । परीक्षित् ! अब भगवान् श्रीकृष्णने पौण्ड्रकको देखा ॥ १२ ॥ पौण्ड्रकने भी शङ्ख-चक्र, तलवार, गदा, शार्ङ्गधनुष और श्रीवत्सचिह्न आदि धारण कर रक्खे थे । उसके वक्षःस्थलपर बनावटी कौस्तुभ-मणि और वनमाला भी लटक रही थी ॥ १३ ॥ उसने रेशमी पीले वस्त्र पहन रक्खे थे और रथकी ध्वजापर गरुड़का चिह्न भी लगा रक्खा था । उसके सिरपर अमूल्य मुकुट था और कानोंमें मकराकृत कुण्डल जगमगा रहे थे ॥ १४ ॥ उसका यह सारा-का-सारा वेष बनावटी था, मानो कोई अभिनेता रंगमंचपर अभिनय करनेके लिये आया हो । उसकी वेष-भूषा अपने समान देखकर भगवान् श्रीकृष्ण खिलखिलाकर हँसने लगे ॥ १५ ॥ अब शत्रुओंने भगवान् श्रीकृष्णपर त्रिशूल, गदा, मुद्गर, शक्ति, ऋष्टि, प्रास, तोमर, तलवार, पट्टिश और बाण आदि अस्त्र-शस्त्रोंसे प्रहार किया ।१६। प्रलयके समय जिस प्रकार आग सभी प्रकारके प्राणियों-को जला देती है, वैसे ही भगवान् श्रीकृष्णने भी गदा, तलवार, चक्र और बाण आदि शस्त्रास्त्रोंसे पौण्ड्रक तथा काशिराजके हाथी, रथ, घोड़े और पैदलकी चतुरङ्गिणी सेनाको तहस-नहस कर दिया ॥ १७ ॥ वह रणभूमि

भगवान्‌के चक्रसे खण्ड-खण्ड हुए रथ, घोड़े, हाथी, मनुष्य, गधे और ऊँटोंसे पट गयी। उस समय ऐसा मालूम हो रहा था, मानो वह भूतनाथ शङ्करकी भयङ्कर क्रीडास्थली हो। उसे देख-देखकर शूरवीरोंका उत्साह और भी बढ़ रहा था॥ १८॥

अब भगवान् श्रीकृष्णने पौण्ड्रकसे कहा—'रे पौण्ड्रक! तूने दूतके द्वारा कहलाया था कि मेरे चिह्न अस्त्र-शस्त्रादि छोड़ दो। सो अब मैं उन्हें तुझपर छोड़ रहा हूँ॥१९॥ तूने झूठमूठ मेरा नाम रख लिया है। अतः मूर्ख! अब मैं तुझसे उन नामोंको भी छुड़ाकर रहूँगा। रही तेरे शरणमें आनेकी बात; सो यदि मैं तुझसे युद्ध न कर सकूँगा तो तेरी शरण ग्रहण करूँगा'॥ २०॥ भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार पौण्ड्रकका तिरस्कार करके अपने तीखे बाणोंसे उसके रथको तोड़-फोड़ डाला और चक्रसे उसका सिर वैसे ही उतार लिया, जैसे इन्द्रने अपने वज्रसे पहाड़की चोटियोंको उड़ा दिया था॥२१॥ इसी प्रकार भगवान्‌ने अपने बाणोंसे काशिनरेशका सिर भी धड़से ऊपर उड़ाकर काशीपुरीमें गिरा दिया जैसे वायु कमलका पुष्प गिरा देती है॥ २२॥ इस प्रकार अपने साथ डाह रखनेवाले पौण्ड्रकको और उसके सखा काशिनरेशको मारकर भगवान् श्रीकृष्ण अपनी राजधानी द्वारकामें लौट आये। उस समय सिद्धगण भगवान्‌की अमृतमयी कथाका गान कर रहे थे॥ २३॥ परीक्षित्! पौण्ड्रक भगवान्‌के रूपका, चाहे वह किसी भावसे हो, सदा चिन्तन करता रहता था। इससे उसके सारे बन्धन कट गये। वह भगवान्‌का बनावटी वेष धारण किये रहता था, इससे बार-बार उसीका स्मरण होनेके कारण वह भगवान्‌के सारूप्यको ही प्राप्त हुआ॥२४॥

इधर काशीमें राजमहलके दरवाजेपर एक कुण्डल-मण्डित मुण्ड गिरा देखकर लोग तरह-तरहका सन्देह करने लगे और सोचने लगे कि 'यह क्या है, यह किसका सिर है?'॥ २५॥ जब यह मालूम हुआ कि वह तो काशिनरेशका ही सिर है, तब रानियाँ, राजकुमार, राजपरिवारके लोग तथा नागरिक रो-रोकर विलाप करने लगे—'हा नाथ! हा राजन्! हाय-हाय! हमारा तो सर्वनाश हो गया'॥ २६॥ काशिनरेशका पुत्र था सुदक्षिण। उसने अपने पिताका अन्त्येष्टि-संस्कार करके मन-ही-मन यह निश्चय किया कि अपने पितृघातीको मारकर ही मैं पिताके ऋणसे उऋण हो सकूँगा। निदान वह अपने कुलपुरोहित और आचार्योंके साथ अत्यन्त एकाग्रतासे भगवान् शङ्करकी आराधना करने लगा॥ २७-२८॥ काशी नगरीमें उसकी आराधनासे प्रसन्न होकर भगवान् शङ्करने वर देनेको कहा। सुदक्षिणने यह अभीष्ट वर माँगा कि मुझे मेरे पितृघातीके वधका उपाय बतलाइये॥ २९॥ भगवान् शङ्करने कहा—'तुम ब्राह्मणोंके साथ मिलकर यज्ञके देवता ऋत्विग्भूत दक्षिणाग्निकी अभिचारविधिसे आराधना करो। इससे वह अग्नि प्रमथगणोंके साथ प्रकट होकर यदि ब्राह्मणोंके अभक्तपर प्रयोग करोगे तो वह तुम्हारा संकल्प सिद्ध करेगा।' भगवान् शङ्करकी ऐसी आज्ञा प्राप्त करके सुदक्षिणने अनुष्ठानके उपयुक्त नियम ग्रहण किये और वह भगवान् श्रीकृष्णके लिये अभिचार (मारणका पुरश्चरण) करने लगा॥ ३०-३१॥ अभिचार पूर्ण होते ही यज्ञकुण्डसे अति भीषण अग्नि मूर्तिमान् होकर प्रकट हुआ। उसके केश और दाढ़ी-मूँछ तपे हुए ताँबेके समान लाल-लाल थे। आँखोंसे अंगारे बरस रहे थे॥ ३२॥ उग्र दाढ़ों और टेढ़ी भृकुटियोंके कारण उसके मुखसे क्रूरता टपक रही थी। वह अपनी जीभसे मुँहके दोनों कोने चाट रहा था। शरीर नंग-धड़ंग था। हाथमें त्रिशूल लिये हुए था, जिसे वह बार-बार घुमाता जाता था और उसमेंसे अग्निकी लपटें निकल रही थीं॥३३॥ ताड़के पेड़के समान बड़ी-बड़ी टाँगें थीं। वह अपने वेगसे धरतीको कँपाता हुआ और ज्वालाओंसे दसों दिशाओंको दग्ध करता हुआ द्वारकाकी ओर दौड़ा और बात-की-बातमें द्वारकाके पास जा पहुँचा। उसके साथ बहुत-से भूत भी थे॥ ३४॥ उस अभिचारकी आगको बिल्कुल पास आयी हुई देख द्वारकावासी वैसे ही डर गये, जैसे जंगलमें आग लगनेपर हरिन डर जाते हैं॥ ३५॥ वे लोग भयभीत होकर भगवान्‌के पास दौड़े हुए आये, भगवान् उस समय सभामें चौसर खेल रहे थे। उन लोगोंने भगवान्‌से प्रार्थना की—तीनों लोकोंके एकमात्र स्वामी! द्वारका नगरी इस आगसे

भस्म होना चाहती है। आप हमारी रक्षा कीजिये। आपके सिवा इसकी रक्षा और कोई नहीं कर सकता ॥ ३६ ॥ शरणागतवत्सल भगवान्‌ने देखा कि हमारे स्वजन भयभीत हो गये हैं और पुकार-पुकारकर विकलताभरे स्वरसे हमारी प्रार्थना कर रहे हैं; तब उन्होंने हँसकर कहा—'डरो मत, मैं तुमलोगोंकी रक्षा करूँगा' ॥ ३७ ॥

परीक्षित्! भगवान् सबके बाहर-भीतरकी जाननेवाले हैं। वे जान गये कि यह काशीसे चली हुई माहेश्वरी कृत्या है। उन्होंने उसके प्रतिकारके लिये अपने पास ही विराजमान चक्रसुदर्शनको आज्ञा दी ॥ ३८ ॥ भगवान् मुकुन्दका प्यारा अस्त्र सुदर्शनचक्र कोटि-कोटि सूर्योंके समान तेजस्वी और प्रलयकालीन अग्निके समान जाज्वल्यमान है। उसके तेजसे आकाश, दिशाएँ और अन्तरिक्ष चमक उठे और अब उसने उस अभिचार-अग्निको कुचल डाला ॥ ३९ ॥ भगवान् श्रीकृष्णके अस्त्र सुदर्शनचक्रकी शक्तिसे कृत्यारूप आगका मुँह टूट-फूट गया, उसका तेज नष्ट हो गया, शक्ति कुण्ठित हो गयी और वह वहाँसे लौटकर काशी आ गयी तथा उसने ऋत्विज आचार्योंके साथ सुदक्षिणको जलाकर भस्म कर दिया। इस प्रकार उसका अभिचार उसीके विनाशका कारण हुआ ॥ ४० ॥ कृत्याके पीछे-पीछे सुदर्शनचक्र भी काशी पहुँचा। काशी बड़ी विशाल नगरी थी। वह बड़ी-बड़ी अटारियों, सभाभवन, बाजार, नगरद्वार, द्वारोंके शिखर, चहारदीवारियों, खजाने, हाथी, घोड़े, रथ और अन्नोंके गोदामसे सुसज्जित थी। भगवान् श्रीकृष्णके सुदर्शनचक्रने सारी काशीको जलाकर भस्म कर दिया और फिर वह परमानन्दमयी लीला करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णके पास लौट आया ॥ ४१-४२ ॥

जो मनुष्य पुण्यकीर्ति भगवान् श्रीकृष्णके इस चरित्रको एकाग्रताके साथ सुनता या सुनाता है, वह सारे पापोंसे छूट जाता है ॥ ४३ ॥

सड़सठवाँ अध्याय

द्विविदका उद्धार

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवान् बलरामजी सर्वशक्तिमान् एवं सृष्टि-प्रलयकी सीमासे परे, अनन्त हैं। उनका स्वरूप, गुण, लीला आदि मन, बुद्धि और वाणीके विषय नहीं हैं। उनकी एक-एक लीला लोक-मर्यादासे विलक्षण है, अलौकिक है। उन्होंने और जो कुछ अद्भुत कर्म किये हों, उन्हें मैं फिर सुनना चाहता हूँ ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित्! द्विविद नामका एक वानर था। वह भौमासुरका सखा, सुग्रीवका मन्त्री और मैन्दका शक्तिशाली भाई था ॥ २ ॥ जब उसने सुना कि श्रीकृष्णने भौमासुरको मार डाला, तब वह अपने मित्रकी मित्रताके ऋणसे उऋण होनेके लिये राष्ट्र विप्लव करनेपर उतारू हो गया। वह वानर बड़े-बड़े नगरों, गाँवों, खानों और अहीरोंकी बस्तियोंमें आग लगाकर उन्हें जलाने लगा ॥ ३ ॥ कभी वह बड़े-बड़े पहाड़ोंको उखाड़कर उनसे प्रान्त-के-प्रान्त चकनाचूर कर देता और विशेष करके ऐसा काम वह आनर्त (काठियावाड़) देशमें ही करता था। क्योंकि उसके मित्रको मारनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण उसी देशमें निवास करते थे ॥ ४ ॥ द्विविद वानरमें दस हजार हाथियोंका बल था। कभी-कभी वह दुष्ट समुद्रमें खड़ा हो जाता और हाथोंसे इतना जल उछालता कि समुद्रतटके देश डूब जाते ॥५॥ वह दुष्ट बड़े-बड़े ऋषि-मुनियोंके आश्रमोंकी सुन्दर-सुन्दर लता-वनस्पतियोंको तोड़-मरोड़कर चौपट कर देता और उनके यज्ञसम्बन्धी अग्नि-कुण्डोंमें मलमूत्र डालकर अग्नियोंको दूषित कर देता ॥ ६ ॥ जैसे भृङ्गी नामका कीड़ा दूसरे कीड़ोंको ले जाकर अपने बिलमें बंद कर देता है, वैसे ही वह मदोन्मत्त वानर स्त्रियों और पुरुषोंको ले जाकर पहाड़ोंकी घाटियों तथा गुफाओंमें डाल देता। फिर बाहरसे बड़ी-बड़ी चट्टानें रखकर उनका मुँह बंद कर देता ॥ ७ ॥ इस प्रकार वह देशवासियोंका तो तिरस्कार करता ही, कुलीन स्त्रियोंको भी दूषित कर देता था।

एक दिन वह दुष्ट सुललित संगीत सुनकर रैवतक पर्वतपर गया ॥ ८ ॥

वहाँ उसने देखा कि यदुवशशिरोमणि बलरामजी सुन्दर-सुन्दर युवतियोंके झुंडमें विराजमान हैं। उनका एक-एक अङ्ग अत्यन्त सुन्दर और दर्शनीय है और वक्षःस्थलपर कमलोंकी माला लटक रही है ॥ ९ ॥ वे मधुपान करके मधुर संगीत गा रहे थे और उनके नेत्र आनन्दोन्मादसे विह्वल हो रहे थे। उनका शरीर इस प्रकार शोभायमान हो रहा था, मानो कोई मदमत्त गजराज हो ॥ १० ॥ वह दुष्ट वानर वृक्षोंकी शाखाओंपर चढ़ जाता और उन्हें झकझोर देता। कभी स्त्रियोंके सामने आकर किलकारी भी मारने लगता ॥ ११ ॥ युवती स्त्रियाँ स्वभावसे ही चञ्चल और हास-परिहासमें रुचि रखनेवाली होती हैं। बलरामजीकी स्त्रियाँ उस वानरकी ढिठाई देखकर हँसने लगीं ॥ १२ ॥ अब वह वानर भगवान् बलरामजीके सामने ही उन स्त्रियोंकी अवहेलना करने लगा। वह उन्हें कभी अपनी गुदा दिखाता तो कभी भौंहें मटकाता, फिर कभी-कभी गरज-तरजकर मुँह बनाता, घुड़कता ॥ १३ ॥ वीरशिरोमणि बलरामजी उसकी यह चेष्टा देखकर क्रोधित हो गये। उन्होंने उसपर पत्थरका एक टुकडा फेंका। परन्तु द्विविदने उससे अपनेको बचा लिया और झपटकर मधुकलश उठा लिया तथा बलरामजीकी अवहेलना करने लगा। उस धूर्तने मधुकलशको तो फोड़ ही डाला, स्त्रियोंके वस्त्र भी फाड़ डाले और अब वह दुष्ट हँस-हँसकर बलरामजीको क्रोधित करने लगा ॥ १४-१५ ॥ परीक्षित्! जब इस प्रकार बलवान् और मदोन्मत्त द्विविद बलरामजीको नीचा दिखाने तथा उनका घोर तिरस्कार करने लगा, तब उन्होंने उसकी ढिठाई देखकर और उसके द्वारा सताये हुए देशोंकी दुर्दशापर विचार करके उस शत्रुको मार डालनेकी इच्छासे क्रोधपूर्वक अपना हल-मूसल उठाया। द्विविद भी बड़ा बलवान् था। उसने अपने एक ही हाथसे शालका पेड़ उखाड़ लिया और बड़े वेगसे दौड़कर बलरामजीके सिर-पर उसे दे मारा। भगवान् बलराम पर्वतकी तरह अविचल खड़े रहे। उन्होंने अपने हाथसे उस वृक्षको सिरपर गिरते-गिरते पकड लिया और अपने सुनन्द नामक मूसलसे उसपर प्रहार किया। मूसल लगनेसे द्विविदका मस्तक फट गया और उससे खूनकी धारा बहने लगी। उस समय उसकी ऐसी शोभा हुई, मानो किसी पर्वतसे गेरूका सोता बह रहा हो। परन्तु द्विविदने अपने सिर फटनेकी कोई परवा नहीं की। उसने कुपित होकर एक दूसरा वृक्ष उखाड़ा, उसे झाड़-झूडकर बिना पत्तेका कर दिया और फिर उससे बलरामजीपर बड़े जोरका प्रहार किया। बलरामजीने उस वृक्षके सैकड़ों टुकड़े कर दिये। इसके बाद द्विविदने बड़े क्रोधसे दूसरा वृक्ष चलाया, परन्तु भगवान् बलरामजीने उसे भी शतधा छिन्न-भिन्न कर दिया ॥ १६—२१ ॥ इस प्रकार वह उनसे युद्ध करता रहा। एक वृक्षके टूट जानेपर दूसरा वृक्ष उखाडता और उससे प्रहार करनेकी चेष्टा करता। इस तरह सब ओरसे वृक्ष उखाड़-उखाडकर लड़ते-लडते उसने सारे वनको ही वृक्षहीन कर दिया ॥ २२ ॥ वृक्ष न रहे, तब द्विविदका क्रोध और भी बढ़ गया तथा वह बहुत चिढ़कर बलरामजीके ऊपर बडी-बडी चट्टानोंकी वर्षा करने लगा। परन्तु भगवान् बलरामजीने अपने मूसलसे उन सभी चट्टानोंको खेल-खेलमें ही चकनाचूर कर दिया ॥ २३ ॥ अन्तमें कपिराज द्विविद अपनी ताड़के समान लंबी बाँहोंसे घूँसा बाँधकर बलरामजीकी ओर झपटा और पास जाकर उसने उनकी छातीपर प्रहार किया ॥ २४ ॥ अब यदुवंशशिरोमणि बलरामजीने हल और मूसल अलग रख दिये तथा क्रुद्ध होकर दोनों हाथोंसे उसके जत्रुस्थान (हँसली) पर प्रहार किया। इससे वह वानर खून उगलता हुआ धरतीपर गिर पड़ा ॥ २५ ॥ परीक्षित्! आँधी आनेपर जैसे जलमें डोंगी डगमगाने लगती है, वैसे ही उसके गिरनेसे बड़े-बड़े वृक्षों और चोटियोंके साथ सारा पर्वत हिल गया ॥ २६ ॥ आकाशमें देवता लोग 'जय-जय' सिद्ध लोग 'नमो नमः' और बड़े-बड़े ऋषि-मुनि 'साधु-साधु'के नारे लगाने और बलरामजीपर फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ २७ ॥ परीक्षित्! द्विविदने जगत्‌में बड़ा उपद्रव मचा रक्खा था, अतः भगवान् बलरामजीने उसे इस प्रकार मार डाला और फिर वे द्वारकापुरीमें लौट आये। उस समय सभी पुरजन-परिजन भगवान् बलरामकी प्रशंसा कर रहे थे ॥ २८ ॥

अड़सठवाँ अध्याय

कौरवोंपर बलरामजीका कोप और साम्बका विवाह

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जाम्बवती-नन्दन साम्ब अकेले ही बहुत बड़े-बड़े वीरोंपर विजय प्राप्त करनेवाले थे। वे स्वयंवरमें स्थित दुर्योधनकी कन्या लक्ष्मणाको हर लाये ॥ १ ॥ इससे कौरवोंको बड़ा क्रोध हुआ। वे बोले—'यह बालक बहुत ढीठ है। देखो तो सही, इसने हमलोगोंको नीचा दिखाकर बलपूर्वक हमारी कन्याका अपहरण कर लिया। वह तो इसे चाहती भी न थी ॥ २ ॥ अतः इस ढीठको पकड़कर बाँध लो। यदि यदुवंशीलोग रुष्ट भी होंगे तो वे हमारा क्या बिगाड़ लेंगे ? वे लोग हमारी ही कृपासे हमारी ही दी हुई धन-धान्यसे परिपूर्ण पृथ्वीका उपभोग कर रहे हैं ॥ ३ ॥ यदि वे लोग अपने इस लड़केके बंदी होनेका समाचार सुनकर यहाँ आयेंगे, तो हमलोग उनका सारा घमंड चूर-चूर कर देंगे और उन लोगोंके मिजाज वैसे ही ठंडे हो जायँगे, जैसे संयमी पुरुषके द्वारा प्राणायाम आदि उपायोंसे वशमें की हुई इन्द्रियाँ ॥ ४ ॥ ऐसा विचार करके कर्ण, शल, भूरिश्रवा, यज्ञकेतु और दुर्योधनादि वीरोंने कुरुवंशके बड़े-बूढ़ोंकी अनुमति ली तथा साम्बको पकड़ लेनेकी तैयारी की ॥ ५ ॥

जब महारथी साम्बने देखा कि धृतराष्ट्रके पुत्र मेरा पीछा कर रहे हैं, तब वे एक सुन्दर धनुष चढ़ाकर सिंहके समान अकेले ही रणभूमिमें डट गये ॥ ६ ॥ इधर कर्णको मुखिया बनाकर कौरववीर धनुष चढ़ाये हुए साम्बके पास आ पहुँचे और क्रोधमें भरकर उनको पकड़ लेनेकी इच्छासे 'खड़ा रह ! खड़ा रह !' इस प्रकार ललकारते हुए बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ७ ॥ परीक्षित् ! यदुनन्दन साम्ब अचिन्त्यैश्वर्यशाली भगवान् श्रीकृष्णके पुत्र थे। कौरवोंके प्रहारसे वे उनपर चिढ़ गये, जैसे सिंह तुच्छ हरिनोंका पराक्रम देखकर चिढ़ जाता है ॥ ८ ॥ साम्बने अपने सुन्दर धनुषका टंकार करके कर्ण आदि छः वीरोंपर, जो अलग-अलग छः रथोंपर सवार थे, छः-छः बाणोंसे एक साथ अलग-अलग प्रहार किया ॥ ९ ॥ उनमेंसे चार-चार बाण उनके चार-चार घोड़ोंपर, एक-एक उनके सारथियोंपर और एक-एक उन महान् धनुषधारी रथी वीरोंपर छोड़ा। साम्बके इस अद्भुत हस्तलाघवको देखकर विपक्षी वीर भी मुक्त-कण्ठसे उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ १० ॥ इसके बाद उन छहों वीरोंने एक साथ मिलकर साम्बको रथहीन कर दिया। चार वीरोंने एक-एक बाणसे उनके चार घोड़ोंको मारा, एकने सारथीको और एकने साम्बका धनुष काट डाला ॥ ११ ॥ इस प्रकार कौरवोंने युद्धमें बड़ी कठिनाई और कष्टसे साम्बको रथहीन करके बाँध लिया। इसके बाद वे उन्हें तथा अपनी कन्या लक्ष्मणाको लेकर जय मनाते हुए हस्तिनापुर लौट आये ॥ १२ ॥

परीक्षित् ! नारदजीसे यह समाचार सुनकर यदु-वंशियोंको बड़ा क्रोध आया। वे महाराज उग्रसेनकी आज्ञासे कौरवोंपर चढ़ाई करनेकी तैयारी करने लगे ॥ १३ ॥ बलरामजी कलहप्रधान कलियुगके सारे पाप-तापको मिटाने-वाले हैं। उन्होंने कुरुवंशियों और यदुवंशियोंके लड़ाई-झगड़े-को ठीक न समझा। यद्यपि यदुवंशी अपनी तैयारी पूरी कर चुके थे, फिर भी उन्होंने उन्हें शान्त कर दिया और स्वयं सूर्यके समान तेजस्वी रथपर सवार होकर हस्तिनापुर गये। उनके साथ कुछ ब्राह्मण और यदुवंशके बड़े-बूढ़े भी गये। उनके बीचमें बलरामजीकी ऐसी शोभा हो रही थी, मानो चन्द्रमा ग्रहोंसे घिरे हुए हों ॥ १४-१५ ॥ हस्तिनापुर पहुँचकर बलरामजी नगरके बाहर एक उप-वनमें ठहर गये और कौरवलोग क्या करना चाहते हैं, इस बातका पता लगानेके लिये उन्होंने उद्धवजीको धृत-राष्ट्रके पास भेजा ॥ १६ ॥

उद्धवजीने कौरवोंकी सभामें जाकर धृतराष्ट्र, भीष्म-पितामह, द्रोणाचार्य, बाह्लीक और दुर्योधनकी विधिपूर्वक अभ्यर्थना-वन्दना की और निवेदन किया कि 'बलरामजी पधारे हैं' ॥ १७ ॥ अपने परम हितैषी और प्रियतम बलरामजीका आगमन सुनकर कौरवोंकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। वे उद्धवजीका विधिपूर्वक सत्कार करके अपने हाथोंमें माङ्गलिक सामग्री लेकर बलरामजीकी अगवानी करने चले ॥ १८ ॥ फिर अपनी-अपनी

अवस्था और सम्बन्धके अनुसार सब लोग बलरामजीसे मिले तथा उनके सत्कारके लिये उन्हें गौ अर्पण की एवं अर्घ्य प्रदान किया। उनमें जो लोग भगवान् बलरामजीका प्रभाव जानते थे, उन्होंने सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम किया ॥ १९ ॥ तदनन्तर उन लोगोंने परस्पर एक-दूसरेका कुशल-मङ्गल पूछा और यह सुनकर कि सब भाई-बन्धु सकुशल हैं, बलरामजीने बड़ी धीरता और गम्भीरताके साथ यह बात कही—॥ २० ॥ 'सर्वसमर्थ राजाधिराज महाराज उग्रसेनने तुमलोगोंको एक आज्ञा दी है। उसे तुमलोग एकाग्रता और सावधानीके साथ सुनो और अविलम्ब उसका पालन करो ॥ २१ ॥ उग्रसेनजीने कहा है—हम जानते हैं कि तुमलोगोंने कइयोंने मिलकर अधर्मसे अकेले धर्मात्मा साम्बको हरा दिया और बंदी कर लिया है। यह सब हम इसलिये सह लेते हैं कि हम सम्बन्धियोंमें परस्पर फूट न पड़े, एकता बनी रहे। (अतः अब झगड़ा मत बढ़ाओ, साम्बको उसकी नववधूके साथ हमारे पास भेज दो)॥२२॥

परीक्षित्! बलरामजीकी वाणी वीरता, शूरता और बल-पौरुषके उत्कर्षसे परिपूर्ण और उनकी शक्तिके अनुरूप थी। यह बात सुनकर कुरुवंशी क्रोधसे तिलमिला उठे। वे कहने लगे—॥ २३ ॥ 'अहो, यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है! सचमुच कालकी चालको कोई टाल नहीं सकता। तभी तो आज पैरोंकी जूती उस सिरपर चढ़ना चाहती है, जो श्रेष्ठ मुकुटसे सुशोभित है ॥ २४ ॥ इन यदुवंशियोंके साथ किसी प्रकार हमलोगोंने विवाह-सम्बन्ध कर लिया। ये हमारे साथ सोने-बैठने और एक पंक्तिमें खाने लगे। हमलोगोंने ही इन्हें राजसिंहासन देकर राजा बनाया और अपने बराबर बना लिया ॥२५॥ ये यदुवंशी चँवर, पंखा, शङ्ख, श्वेतछत्र, मुकुट, राजसिंहासन और राजोचित शय्याका उपयोग-उपभोग इसलिये कर रहे हैं कि हमने जान-बूझकर इस विषयमें उपेक्षा कर रक्खी है ॥ २६ ॥ बस-बस, अब हो चुका। यदुवंशियोंके पास अब राजचिह्न रहनेकी आवश्यकता नहीं, उन्हें उनसे छीन लेना चाहिये। जैसे साँपको दूध पिलाना पिलानेवालेके लिये ही घातक है, वैसे ही हमारे दिये हुए राजचिह्नोंको लेकर ये यदुवंशी हमसे ही विपरीत हो रहे हैं। देखो तो भला हमारे ही कृपा-प्रसादसे तो इनकी बढ़ती हुई और अब ये निर्लज्ज होकर हमींपर हुकुम चलाने चले हैं। शोक है! शोक है! ॥ २७ ॥ जैसे सिंहका ग्रास कभी भेड़ा नहीं छीन सकता, वैसे ही यदि भीष्म, द्रोण, अर्जुन आदि कौरववीर जान-बूझकर न छोड़ दें, न दे दें तो स्वयं देवराज इन्द्र भी किसी वस्तुका उपभोग कैसे कर सकते हैं?' ॥ २८ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! कुरुवंशी अपनी कुलीनता, बान्धवों-परिवारवालों (भीष्मादि) के बल और धनसम्पत्तिके घमंडमें चूर हो रहे थे। उन्होंने साधारण शिष्टाचारकी भी परवा नहीं की और वे भगवान् बलरामजीको इस प्रकार दुर्वचन कहकर हस्तिनापुर लौट गये ॥ २९ ॥ बलरामजीने कौरवोंकी दुष्टता—अशिष्टता देखी और उनके दुर्वचन भी सुने। अब उनका चेहरा क्रोध-से तमतमा उठा। उस समय उनकी ओर देखातक नहीं जाता था। वे बार-बार जोर-जोरसे हँसकर कहने लगे—॥३०॥ 'सच है, जिन दुष्टोंको अपनी कुलीनता, बलपौरुष और धनका घमंड हो जाता है, वे शान्ति नहीं चाहते। उनको दमन करनेका, रास्तेपर लानेका उपाय समझाना-बुझाना नहीं, बल्कि दण्ड देना है—ठीक वैसे ही जैसे पशुओंको ठीक करनेके लिये डंडेका प्रयोग आवश्यक होता है ॥ ३१ ॥ भला, देखो तो सही—सारे यदुवंशी और श्रीकृष्ण भी क्रोधसे भरकर लड़ाईके लिये तैयार हो रहे थे। मैं उन्हें शनैः-शनैः समझा-बुझाकर इन लोगोंको शान्त करनेके लिये, सुलह करनेके लिये यहाँ आया ॥ ३२ ॥ फिर भी ये मूर्ख ऐसी दुष्टता कर रहे हैं! इन्हें शान्ति प्यारी नहीं, कलह प्यारी है। ये इतने घमंडी हो रहे हैं कि बार-बार मेरा तिरस्कार करके गालियाँ बक गये हैं ॥ ३३ ॥ ठीक है, भाई! ठीक है। पृथ्वीके राजाओंकी तो बात ही क्या, त्रिलोकीके स्वामी इन्द्र आदि लोकपाल जिनकी आज्ञाका पालन करते हैं, वे उग्रसेन राजाधिराज नहीं हैं, वे तो केवल भोज, वृष्णि और अन्धकवंशी यादवोंके ही स्वामी हैं! ॥ ३४ ॥ क्यों? जो सुधर्मासभाको अधिकारमें करके उसमें विराजते हैं और जो देवताओंके वृक्ष पारिजातको उखाड़कर ले आते और उसका उपभोग करते हैं, वे भगवान् श्रीकृष्ण भी राजसिंहासनके अधिकारी नहीं हैं! अच्छी बात है! ॥ ३५ ॥ सारे

जगत्‌की स्वामिनी भगवती लक्ष्मी स्वयं जिनके चरण-कमलोंकी उपासना करती हैं, वे लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र छत्र, चँवर आदि राजोचित सामग्रियोंको नहीं रख सकते ॥ ३६ ॥ ठीक है भाई ! जिनके चरणकमलोंकी धूल संत पुरुषोंके द्वारा सेवित गङ्गा आदि तीर्थोंको भी तीर्थ बनानेवाली है, सारे लोकपाल अपने-अपने श्रेष्ठ मुकुटपर जिनके चरणकमलोंकी धूल धारण करते है; ब्रह्मा, शङ्कर, मैं और लक्ष्मीजी जिनकी कला-की भी कला हैं और जिनके चरणोंकी धूल सदा-सर्वदा धारण करते हैं; उन भगवान् श्रीकृष्णके लिये भला राजसिंहासन कहाँ रक्खा है ! ॥३७॥ बेचारे यदुवंशी तो कौरवोंका दिया हुआ पृथ्वीका एक टुकड़ा भोगते हैं । क्या खूब ! हमलोग जूती हैं और ये कुरुवंशी स्वयं सिर हैं ॥ ३८ ॥ ये लोग ऐश्वर्यसे उन्मत्त, घमंडी कौरव पागल-सरीखे हो रहे हैं । इनकी एक-एक बात कटुतासे भरी और बेसिर-पैरकी है । मेरे-जैसा पुरुष—जो इनका शासन कर सकता है, इन्हें दण्ड देकर इनके होश ठिकाने ला सकता है—भला, इनकी बातोंको कैसे सहन कर सकता है ? ॥ ३९ ॥ आज मैं सारी पृथ्वीको कौरवहीन कर डालूँगा, इस प्रकार कहते-कहते बलरामजी क्रोधसे ऐसे भर गये, मानो त्रिलोकीको भस्म कर देंगे । वे अपना हल लेकर खड़े हो गये ॥४०॥ उन्होंने उसकी नोकसे बार-बार चोट करके हस्तिनापुर-को उखाड़ लिया और उसे डुबानेके लिये बड़े क्रोधसे गङ्गाजीकी ओर खींचने लगे ॥ ४१ ॥

हलसे खींचनेपर हस्तिनापुर इस प्रकार काँपने लगा मानो जलमें कोई नाव डगमगा रही हो । जब कौरवोंने देखा कि हमारा नगर तो गङ्गाजीमें गिर रहा है, तब वे घबड़ा उठे ॥ ४२ ॥ फिर उन लोगोंने लक्ष्मणाके साथ साम्बको आगे किया और अपने प्राणोंकी रक्षाके लिये कुटुम्बके साथ हाथ जोड़कर सर्वशक्तिमान् उन्हीं भगवान् बलरामजीकी शरणमें गये ॥ ४३ ॥ और कहने लगे—'लोकाभिराम बलरामजी! आप सारे जगत्-के आधार शेषजी हैं । हम आपका प्रभाव नहीं जानते । प्रभो। हमलोग मूढ हो रहे हैं, हमारी बुद्धि बिगड़ गयी है; इसलिये आप हमलोगोंका अपराध क्षमा कर दीजिये ॥४४॥ आप जगत्‌की स्थिति, उत्पत्ति और प्रलयके एकमात्र कारण हैं और स्वयं निराधार स्थित हैं । सर्वशक्तिमान् प्रभो ! बड़े-बड़े ऋषि-मुनि कहते हैं कि आप खिलाड़ी हैं और ये सब-के-सब लोक आपके खिलौने हैं ॥ ४५ ॥ अनन्त ! आपके सहस्र-सहस्र सिर हैं और आप खेल-खेलमें ही इस भूमण्डलको अपने सिरपर रक्खे रहते हैं । जब प्रलयका समय आता है, तब आप सारे जगत्‌को अपने भीतर लीन कर लेते हैं और केवल आप ही बचे रहकर अद्वितीयरूपसे शयन करते हैं ॥ ४६ ॥ भगवन् ! आप जगत्‌की स्थिति और पालनके लिये विशुद्ध सत्त्वमय शरीर ग्रहण किये हुए हैं । आपका यह क्रोध द्वेष या मत्सरके कारण नहीं है । यह तो समस्त प्राणियोंको शिक्षा देनेके लिये है ॥ ४७ ॥ समस्त शक्तियोंको धारण करनेवाले सर्वप्राणिस्वरूप अविनाशी भगवन् ! आपको हम नमस्कार करते हैं । समस्त विश्वके रचयिता देव ! हम आपको बार-बार नमस्कार करते हैं । हम आपकी शरणमें हैं । आप कृपा करके हमारी रक्षा कीजिये' ॥ ४८ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! कौरवोंका नगर डगमगा रहा था और वे अत्यन्त घबराहटमें पड़े हुए थे । जब सब-के-सब कुरुवंशी इस प्रकार भगवान् बलरामजीकी शरणमें आये और उनकी स्तुति-प्रार्थना की, तब वे प्रसन्न हो गये और 'डरो मत' ऐसा कहकर उन्हें अभयदान दिया ॥ ४९ ॥ परीक्षित् ! दुर्योधन अपनी पुत्री लक्ष्मणासे बड़ा प्रेम करता था । उसने दहेजमें साठ-साठ वर्षके बारह सौ हाथी, दस हजार घोड़े, सूर्यके समान चमकते हुए सोनेके छः हजार रथ और सोनेके हार पहनी हुई एक हजार दासियाँ दीं ॥ ५०-५१ ॥ यदुवंशशिरोमणि भगवान् बलराम-जीने वह सब दहेज स्वीकार किया और नवदम्पति लक्ष्मणा तथा साम्बके साथ कौरवोंका अभिनन्दन स्वीकार करके द्वारकाकी यात्रा की ॥ ५२ ॥ अब बलरामजी द्वारकापुरीमें पहुँचे और अपने प्रेमी तथा समाचार जाननेके लिये उत्सुक बन्धु-बान्धवोंसे मिले । उन्होंने यदुवंशियोंकी भरी सभामें अपना वह सारा चरित्र कह सुनाया, जो हस्तिनापुरमें उन्होंने कौरवोंके

साथ किया था ॥ ५३ ॥ परीक्षित् ! यह हस्तिनापुर आज भी दक्षिणकी ओर ऊँचा और गङ्गाजीकी ओर कुछ झुका हुआ है और इस प्रकार यह भगवान् बलराम-जीके पराक्रमकी सूचना दे रहा है ॥ ५४ ॥

उनहत्तरवाँ अध्याय

देवर्षि नारदजीका भगवान्‌की गृहचर्या देखना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जब देवर्षि नारदने सुना कि भगवान् श्रीकृष्णने नरकासुर (भौमासुर) को मारकर अकेले ही हजारों राजकुमारियोंके साथ विवाह कर लिया है, तब उनके मनमें भगवान्‌की रहन-सहन देखनेकी बड़ी अभिलाषा हुई ॥ १ ॥ वे सोचने लगे—अहो, यह कितने आश्चर्यकी बात है कि भगवान् श्रीकृष्णने एक ही शरीरसे एक ही समय सोलह हजार महलोंमें अलग-अलग सोलह हजार राजकुमारियोंका पाणिग्रहण किया ॥ २ ॥ देवर्षि नारद इस उत्सुकतासे प्रेरित होकर भगवान्‌की लीला देखनेके लिये द्वारका आ पहुँचे। वहाँके उपवन और उद्यान खिले हुए रंग-बिरंगे पुष्पोंसे लदे वृक्षोंसे परिपूर्ण थे, उनपर तरह-तरहके पक्षी चहक रहे थे और भौंरे गुञ्जार कर रहे थे ॥ ३ ॥ निर्मल जलसे भरे सरोवरोंमें नीले, लाल और सफेद रंगके भाँति-भाँतिके कमल खिले हुए थे। कुमुद (कोईं) और नवजात कमलोंकी मानो भीड़ ही लगी हुई थी। उनमें हंस और सारस कलरव कर रहे थे। ॥ ४ ॥ द्वारकापुरीमें स्फटिकमणि और चाँदीके नौ लाख महल थे। वे फर्श आदिमें जड़ी हुई महामरकतमणि (पन्ने) की प्रभासे जगमगा रहे थे और उनमें सोने तथा हीरोंकी बहुत-सी सामग्रियाँ शोभायमान थीं ॥ ५ ॥ उसके राज-पथ (बड़ी-बड़ी सड़कें), गलियाँ, चौराहे और बाजार बहुत ही सुन्दर-सुन्दर थे। घुड़साल आदि पशुओंके रहनेके स्थान, सभा-भवन और देव-मन्दिरोंके कारण उसका सौन्दर्य और भी चमक उठा था। उसकी सड़कों, चौक, गली और दरवाजोंपर छिड़काव किया गया था। छोटी-छोटी झंडियाँ और बड़े-बड़े झंडे जगह-जगह फहरा रहे थे, जिनके कारण रास्तोंपर धूप नहीं आ पाती थी ॥ ६ ॥

उसी द्वारका नगरीमें भगवान् श्रीकृष्णका बहुत ही सुन्दर अन्तःपुर था। बड़े-बड़े लोकपाल उसकी पूजा-प्रशंसा किया करते थे। उसका निर्माण करनेमें विश्वकर्माने अपना सारा कला-कौशल, सारी कारीगरी लगा दी थी ॥ ७ ॥ उस अन्तःपुर (रनिवास) में भगवान्‌की रानियोंके सोलह हजारसे अधिक महल शोभायमान थे, उनमेंसे एक बड़े भवनमें देवर्षि नारद-जीने प्रवेश किया ॥ ८ ॥ उस महलमें मूँगोंके खंभे, वैदूर्यके उत्तम-उत्तम छज्जे तथा इन्द्रनील मणिकी दीवारें जगमगा रही थीं और वहाँकी गचें भी ऐसी इन्द्रनील मणियोंसे बनी हुई थीं, जिनकी चमक किसी प्रकार कम नहीं होतीं ॥ ९ ॥ विश्वकर्माने बहुत-से ऐसे चँदोवे बना रक्खे थे, जिनमें मोतीकी लड़ियोंकी झालरें लटक रही थीं। हाथी-दाँतके बने हुए आसन और पलँग थे, जिनमें श्रेष्ठ-श्रेष्ठ मणि जड़ी हुई थी ॥ १० ॥ बहुत-सी दासियाँ गलेमें सोनेका हार पहने और सुन्दर वस्त्रोंसे सुसज्जित होकर तथा बहुत-से सेवक भी जामा-पगड़ी और सुन्दर-सुन्दर वस्त्र पहने तथा जड़ाऊ कुण्डल धारण किये अपने-अपने काममें व्यस्त थे और महलकी शोभा बढ़ा रहे थे ॥ ११ ॥ अनेकों रत्न-प्रदीप अपनी जगमगाहटसे उसका अन्धकार दूर कर रहे थे। अगरकी धूप देनेके कारण झरोखोंसे धूआँ निकल रहा था। उसे देखकर रंग-बिरंगे मणिमय छज्जोंपर बैठे हुए मोर बादलोंके भ्रमसे कूक-कूककर नाचने लगते ॥ १२ ॥ देवर्षि नारदजीने देखा कि भगवान् श्रीकृष्ण उस महल-की स्वामिनी रुक्मिणीजीके साथ बैठे हुए हैं और वे अपने हाथों भगवान्‌को सोनेकी डाँडीवाले चँवरसे हवा कर रही हैं। यद्यपि उस महलमें रुक्मिणीजीके समान ही गुण, रूप, अवस्था और वेष-भूषावाली सहस्रों दासियाँ भी हर समय विद्यमान रहती थीं ॥ १३ ॥

नारदजीको देखते ही समस्त धार्मिकोंके मुकुटमणि

भगवान् श्रीकृष्ण रुक्मिणीजीके पलँगसे सहसा उठ खड़े हुए। उन्होंने देवर्षि नारदके युगलचरणोंमें मुकुटयुक्त सिरसे प्रणाम किया और हाथ जोड़कर उन्हें अपने आसनपर बैठाया ॥ १४ ॥ परीक्षित्! इसमें सन्देह नहीं कि भगवान् श्रीकृष्ण चराचर जगत्के परम गुरु हैं और उनके चरणोंका धोवन गङ्गाजल सारे जगत्को पवित्र करनेवाला है। फिर भी वे परमभक्तवत्सल और संतोंके परम आदर्श, उनके स्वामी हैं। उनका एक असाधारण नाम ब्रह्मण्यदेव भी है। वे ब्राह्मणोंको ही अपना आराध्यदेव मानते हैं। उनका यह नाम उनके गुणके अनुरूप एवं उचित ही है। तभी तो भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं ही नारदजीके पाँव पखारे और उनका चरणामृत अपने सिरपर धारण किया ॥ १५ ॥ नर-शिरोमणि नरके सखा सर्वदर्शी पुराणपुरुष भगवान् नारायणने शास्त्रोक्त विधिसे देवर्षिशिरोमणि भगवान् नारदकी पूजा की। इसके बाद अमृतसे भी मीठे किन्तु थोड़े शब्दोंमें उनका स्वागत-सत्कार किया और फिर कहा—'प्रभो! आप तो स्वयं समग्र ज्ञान, वैराग्य, धर्म, यश, श्री और ऐश्वर्यसे पूर्ण हैं। आपकी हम क्या सेवा करें?' ॥ १६ ॥

देवर्षि नारदने कहा—भगवन्! आप समस्त लोकोंके एकमात्र स्वामी हैं। आपके लिये यह कोई नयी बात नहीं है कि आप अपने भक्तजनोंसे प्रेम करते हैं और दुष्टोंको दण्ड देते हैं। परमयशस्वी प्रभो! आपने जगत्की स्थिति और रक्षाके द्वारा समस्त जीवोंका कल्याण करनेके लिये स्वेच्छासे अवतार ग्रहण किया है। भगवन्! यह बात हम भलीभाँति जानते हैं ॥ १७ ॥ यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि आज मुझे आपके चरणकमलोंके दर्शन हुए हैं। आपके ये चरणकमल सम्पूर्ण जनताको परम साम्य, मोक्ष देनेमें समर्थ हैं। जिनके ज्ञानकी कोई सीमा ही नहीं है वे ब्रह्मा, शङ्कर आदि सदा-सर्वदा अपने हृदयमें उनका चिन्तन करते रहते हैं। वास्तवमें वे श्रीचरण ही संसाररूप कूएँमें गिरे हुए लोगोंके बाहर निकलनेके लिये अवलम्बन हैं। आप ऐसी कृपा कीजिये कि आपके उन चरणकमलोंकी स्मृति सर्वदा बनी रहे और मैं चाहे जहाँ जैसे रहूँ, उनके ध्यानमें तन्मय रहूँ ॥ १८ ॥

परीक्षित्! इसके बाद देवर्षि नारदजी योगेश्वरोंके भी ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णकी योगमायाका रहस्य जाननेके लिये उनकी दूसरी पत्नीके महलमें गये ॥ १९ ॥ वहाँ उन्होंने देखा कि भगवान् श्रीकृष्ण अपनी प्राणप्रिया और उद्धवजीके साथ चौसर खेल रहे हैं। वहाँ भी भगवान्ने खड़े होकर उनका स्वागत किया, आसनपर बैठाया और विविध सामग्रियोंद्वारा बड़ी भक्तिसे उनकी अर्चा-पूजा की ॥ २० ॥ इसके बाद भगवान्ने नारदजीसे अनजानकी तरह पूछा—'आप यहाँ कब पधारे! आप तो परिपूर्ण आत्माराम—आप्तकाम हैं और हमलोग हैं अपूर्ण। ऐसी अवस्थामें भला हम आपकी क्या सेवा कर सकते हैं ॥ २१ ॥ फिर भी ब्रह्मस्वरूप नारदजी! आप कुछ-न-कुछ आज्ञा अवश्य कीजिये और हमें सेवाका अवसर देकर हमारा जन्म सफल कीजिये।' नारदजी यह सब देख-सुनकर चकित और विस्मित हो रहे थे। वे वहाँसे उठकर चुपचाप दूसरे महलमें चले गये ॥ २२ ॥ उस महलमें भी देवर्षि नारदने देखा कि भगवान् श्रीकृष्ण अपने नन्हे-नन्हे बच्चोंको दुलार रहे हैं। वहाँसे फिर दूसरे महलमें गये तो क्या देखते हैं कि भगवान् श्रीकृष्ण स्नानकी तैयारी कर रहे हैं ॥ २३ ॥ (इसी प्रकार देवर्षि नारदने विभिन्न महलोंमें भगवान्को भिन्न-भिन्न कार्य करते देखा।) कहीं वे यज्ञकुण्डोंमें हवन कर रहे हैं तो कहीं पञ्चमहायज्ञोंसे देवता आदिकी आराधना कर रहे हैं। कहीं ब्राह्मणोंको भोजन करा रहे हैं, तो कहीं यज्ञका अवशेष स्वयं भोजन कर रहे हैं ॥ २४ ॥ कहीं सन्ध्या कर रहे हैं, तो कहीं मौन होकर गायत्रीका जप कर रहे हैं। कहीं हाथोंमें ढाल-तलवार लेकर उनको चलानेके पैतरे बदल रहे हैं ॥ २५ ॥ कहीं घोड़े, हाथी अथवा रथपर सवार होकर श्रीकृष्ण विचरण कर रहे हैं। कहीं पलंगपर सो रहे हैं तो कहीं वंदीजन उनकी स्तुति कर रहे हैं ॥ २६ ॥ किसी महलमें उद्धव आदि मन्त्रियोंके साथ किसी गम्भीर विषयपर परामर्श कर रहे हैं, तो कहीं उत्तमोत्तम वाराङ्गनाओंसे घिरकर जलक्रीडा कर रहे हैं ॥ २७ ॥ कहीं श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको वस्त्राभूषणसे सुसज्जित गौओंका

दान कर रहे हैं, तो कहीं मङ्गलमय इतिहास-पुराणोंका श्रवण कर रहे हैं ॥ २८ ॥ कहीं किसी पत्नीके महलमें अपनी प्राणप्रियाके साथ हास्य-विनोदकी बातें करके हँस रहे हैं, तो कहीं धर्मका सेवन कर रहे हैं। कहीं अर्थका सेवन कर रहे हैं—धन-संग्रह और धनवृद्धिके कार्यमें लगे हुए हैं, तो कहीं धर्मानुकूल गृहस्थोचित विषयोंका उपभोग कर रहे हैं ॥ २९ ॥ कहीं एकान्तमें बैठकर प्रकृतिसे अतीत पुराण पुरुषका ध्यान कर रहे हैं, तो कहीं गुरुजनोंको इच्छित भोग-सामग्री समर्पित करके उनकी सेवा-शुश्रूषा कर रहे हैं ॥ ३० ॥ देवर्षि नारदने देखा कि भगवान् श्रीकृष्ण किसीके साथ युद्धकी बात कर रहे हैं, तो किसीके साथ सन्धिकी। कहीं भगवान् बलरामजीके साथ बैठकर सत्पुरुषोंके कल्याणके बारेमें विचार कर रहे हैं ॥ ३१ ॥ कहीं उचित समयपर पुत्र और कन्याओंका उनके सदृश पत्नी और वरोंके साथ बड़ी धूमधामसे विधिवत् विवाह कर रहे हैं ॥ ३२ ॥ कहीं घरसे कन्याओंको विदा कर रहे हैं, तो कहीं बुलानेकी तैयारीमें लगे हुए हैं। योगेश्वरेश्वर भगवान् श्रीकृष्णके इन विराट् उत्सवोंको देखकर सभी लोग विस्मित-चकित हो जाते थे ॥ ३३ ॥ कहीं बड़े-बड़े यज्ञोंके द्वारा समस्त देवताओंका यजन-पूजन और कहीं कूएँ, बगीचे तथा मठ आदि बनवाकर इष्टापूर्त धर्मका आचरण कर रहे हैं ॥ ३४ ॥ कहीं श्रेष्ठ यादवोंसे घिरे हुए सिन्धुदेशीय घोड़ेपर चढ़कर मृगया कर रहे हैं, और उसमें यज्ञके लिये मेध्य पशुओंका ही वध कर रहे हैं ॥ ३५ ॥ और कहीं प्रजामें तथा अन्तःपुरके महलोंमें वेष बदलकर छिपे रूपसे सबका अभिप्राय जाननेके लिये विचरण कर रहे हैं। क्यों न हो, भगवान् योगेश्वर जो हैं ॥ ३६ ॥

परीक्षित्! इस प्रकार मनुष्यकी-सी लीला करते हुए हृषीकेश भगवान् श्रीकृष्णकी योगमायाका वैभव देखकर देवर्षि नारदजीने मुसकराते हुए उनसे कहा—॥ ३७ ॥ 'योगेश्वर! आत्मदेव! आपकी योगमाया ब्रह्माजी आदि बड़े-बड़े मायावियोंके लिये भी अगम्य है। परन्तु हम आपकी योगमायाका रहस्य जानते हैं; क्योंकि आपके चरणकमलोंकी सेवा करनेसे वह स्वयं ही हमारे सामने प्रकट हो गयी है ॥ ३८ ॥ देवताओंके भी आराध्यदेव भगवन्! चौदहों भुवन आपके सुयशसे परिपूर्ण हो रहे हैं। अब मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं आपकी त्रिभुवन-पावनी लीलाका गान करता हुआ उन लोकोंमें विचरण करूँ' ॥ ३९ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—देवर्षि नारदजी! मैं ही धर्मका उपदेशक, पालन करनेवाला और उसका अनुष्ठान करनेवालोंका अनुमोदनकर्ता भी हूँ। इसलिये संसारको धर्मकी शिक्षा देनेके उद्देश्यसे ही मैं इस प्रकार धर्मका आचरण करता हूँ। मेरे प्यारे पुत्र! तुम मेरी यह योगमाया देखकर मोहित मत होना ॥ ४० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण गृहस्थोंको पवित्र करनेवाले श्रेष्ठ धर्मोंका आचरण कर रहे थे। यद्यपि वे एक ही हैं, फिर भी देवर्षि नारदजीने उनको उनकी प्रत्येक पत्नीके महलमें अलग-अलग देखा ॥ ४१ ॥ भगवान् श्रीकृष्णकी शक्ति अनन्त है। उनकी योगमायाका परम ऐश्वर्य बार-बार देखकर देवर्षि नारदके विस्मय और कौतूहलकी सीमा न रही ॥ ४२ ॥ द्वारकामें भगवान् श्रीकृष्ण गृहस्थकी भाँति ऐसा आचरण करते थे, मानो धर्म, अर्थ और कामरूप पुरुषार्थोंमें उनकी बड़ी श्रद्धा हो। उन्होंने देवर्षि नारदका बहुत सम्मान किया। वे अत्यन्त प्रसन्न होकर भगवान्‌का स्मरण करते हुए वहाँसे चले गये ॥ ४३ ॥ राजन्! भगवान् नारायण सारे जगत्‌के कल्याणके लिये अपनी अचिन्त्य महाशक्ति योगमायाको स्वीकार करते हैं और इस प्रकार मनुष्योंकी-सी लीला करते हैं। द्वारकापुरीमें सोलह हजारसे भी अधिक पत्नियाँ अपनी सलज्ज एवं प्रेमभरी चितवन तथा मन्द-मन्द मुसकानसे उनकी सेवा करती थीं और वे उनके साथ विहार करते थे ॥ ४४ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने जो लीलाएँ की हैं, उन्हें दूसरा कोई नहीं कर सकता। परीक्षित्! वे विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके परम कारण हैं। जो उनकी लीलाओंका गान, श्रवण और गान-श्रवण करनेवालोंका अनुमोदन करता है, उसे मोक्षके मार्गस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें परम प्रेममयी भक्ति प्राप्त हो जाती है ॥ ४५ ॥

सत्तरवाँ अध्याय

भगवान् श्रीकृष्णकी नित्यचर्या और उनके पास जरासन्धके कैदी राजाओंके दूतका आना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जब सवेरा होने लगता, कुक्कुट (मुरगे) बोलने लगते, तब वे श्रीकृष्ण-पत्नियाँ, जिनके कण्ठमें श्रीकृष्णने अपनी भुजा डाल रखी है, उनके विछोहकी आशङ्कासे व्याकुल हो जातीं और उन मुरगोंको कोसने लगतीं ॥ १ ॥ उस समय पारिजातकी सुगन्धसे सुवासित भीनी-भीनी वायु बहने लगती । भौंरे तालस्वरसे अपने सङ्गीतकी तान छेड़ देते । पक्षियोंकी नींद उचट जाती और वे वंदीजनोंकी भाँति भगवान् श्रीकृष्णको जगानेके लिये मधुर स्वरसे कलरव करने लगते ॥ २ ॥ रुक्मिणीजी अपने प्रियतमके भुजपाशसे बँधी रहनेपर भी आलिङ्गन छूट जानेकी आशङ्कासे अत्यन्त सुहावने और पवित्र ब्राह्ममुहूर्तको भी असह्य समझने लगती थीं ॥ ३ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण प्रतिदिन ब्राह्ममुहूर्तमें ही उठ जाते और हाथ-मुँह धोकर अपने मायातीत आत्मस्वरूपका ध्यान करने लगते । उस समय उनका रोम-रोम आनन्दसे खिल उठता था ॥४॥ परीक्षित् ! भगवान्का वह आत्मस्वरूप सजातीय, विजातीय और स्वगतभेदसे रहित एक, अखण्ड है । क्योंकि उसमें किसी प्रकारकी उपाधि या उपाधिके कारण होनेवाला अन्य वस्तुका अस्तित्व नहीं है । और यही कारण है कि वह अविनाशी सत्य है । जैसे चन्द्रमा-सूर्य आदि नेत्र-इन्द्रियके द्वारा और नेत्र-इन्द्रिय चन्द्रमा-सूर्य आदिके द्वारा प्रकाशित होती है, वैसे वह आत्म-स्वरूप दूसरेके द्वारा प्रकाशित नहीं, स्वयंप्रकाश है । इसका कारण यह है कि अपने स्वरूपमें ही सदा-सर्वदा और कालकी सीमाके परे भी एकरस स्थित रहनेके कारण अविद्या उसका स्पर्श भी नहीं कर सकती । इसीसे प्रकाश्य-प्रकाशकभाव उसमें नहीं है । जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और नाशकी कारणभूता ब्रह्मशक्ति, विष्णुशक्ति और रुद्रशक्तियोंके द्वारा केवल इस बातका अनुमान हो सकता है कि वह स्वरूप एकरस सत्तारूप और आनन्दस्वरूप है । उसीको समझानेके लिये 'ब्रह्म' नामसे कहा जाता है । भगवान् श्रीकृष्ण अपने उसी आत्मस्वरूपका प्रतिदिन ध्यान करते ॥ ५ ॥ इसके बाद वे विधिपूर्वक निर्मल और पवित्र जलमें स्नान करते । फिर शुद्ध धोती पहनकर, दुपट्टा ओढ़कर यथाविधि नित्यकर्म सन्ध्या-वन्दन आदि करते । इसके बाद हवन करते और मौन होकर गायत्रीका जप करते । क्यों न हो, वे सत्पुरुषोंके पात्र आदर्श जो हैं ॥ ६ ॥ इसके बाद सूर्योदय होनेके समय सूर्योपस्थान करते और अपने कलास्वरूप देवता, ऋषि तथा पितरोंका तर्पण करते । फिर कुलके बड़े-बूढ़ों और ब्राह्मणोंकी विधिपूर्वक पूजा करते । इसके बाद परम मनस्वी श्रीकृष्ण दुधार, पहले-पहल ब्यायी हुई, बछड़ोंवाली सीधी-शान्त गौओंका दान करते । उस समय उन्हें सुन्दर वस्त्र और मोतियोंकी माला पहना दी जाती । सींगमें सोना और खुरोंमें चाँदी मढ़ दी जाती । वे ब्राह्मणोंको वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित करके रेशमी वस्त्र, मृगचर्म और तिलके साथ प्रतिदिन तेरह हजार चौरासी गौएँ इस प्रकार दान करते ॥ ७—९ ॥ तदनन्तर अपनी विभूतिरूप गौ, ब्राह्मण, देवता, कुलके बड़े-बूढ़े, गुरुजन और समस्त प्राणियोंको प्रणाम करके माङ्गलिक वस्तुओंका स्पर्श करते ॥ १० ॥ परीक्षित् ! यद्यपि भगवान्के शरीरका सहज सौन्दर्य ही मनुष्यलोकका अलङ्कार है, फिर भी वे अपने पीताम्बरादि दिव्य वस्त्र, कौस्तुभादि आभूषण, पुष्पोंके हार और चन्दनादि दिव्य अङ्गरागसे अपनेको आभूषित करते ॥ ११ ॥ इसके बाद वे घी और दर्पणमें अपना मुखारविन्द देखते; गाय, बैल, ब्राह्मण और देव-प्रतिमाओंका दर्शन करते । फिर पुरवासी और अन्तःपुरमें रहनेवाले चारों वर्णोंके लोगोंकी अभिलाषाएँ पूर्ण करते और फिर अपनी अन्य (ग्रामवासी) प्रजाकी कामनापूर्ति करके उसे सन्तुष्ट करते और इन सबको प्रसन्न देखकर स्वयं बहुत ही आनन्दित होते ॥ १२ ॥ वे पुष्पमाला, ताम्बूल, चन्दन और अङ्गराग आदि वस्तुएँ पहले ब्राह्मण, स्वजन-सम्बन्धी, मन्त्री और रानियोंको बाँट देते; और उनसे बची हुई स्वयं अपने काममें लाते ॥ १३ ॥ भगवान् यह सब करते होते, तबतक दारुक नामका सारथी

सुग्रीव आदि घोड़ोंसे जुता हुआ अत्यन्त अद्भुत रथ ले आता और प्रणाम करके भगवान्‌के सामने खड़ा हो जाता ॥ १४ ॥ इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण सात्यकि और उद्धवजीके साथ अपने हाथसे सारथीका हाथ पकड़कर रथपर सवार होते—ठीक वैसे ही जैसे भुवनभास्कर भगवान् सूर्य उदयाचलपर आरूढ होते हैं ॥ १५ ॥ उस समय रनिवासकी स्त्रियाँ लज्जा एवं प्रेमसे भरी चितवनसे उन्हें निहारने लगतीं और बड़े कष्टसे उन्हें बिदा करतीं । भगवान् मुसकराकर उनके चित्तको चुराते हुए महलसे निकलते ॥ १६ ॥

परीक्षित् ! तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण समस्त यदुवंशियोंके साथ सुधर्मा नामकी सभामें प्रवेश करते । उस सभाकी ऐसी महिमा है कि जो लोग उस सभामें जा बैठते हैं, उन्हें भूख-प्यास, शोक-मोह और जरा-मृत्यु—ये छः ऊर्मियाँ नहीं सतातीं ॥ १७ ॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण सब रानियोंसे अलग-अलग बिदा होकर एक ही रूपमें सुधर्मा-सभामे प्रवेश करते और वहाँ जाकर श्रेष्ठ सिंहासनपर विराज जाते । उनकी अङ्गकान्तिसे दिशाएँ प्रकाशित होती रहतीं । उस समय यदुवंशी वीरोंके बीचमें यदुवंशशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्णकी ऐसी शोभा होती, जैसे आकाशमें तारोंसे घिरे हुए चन्द्रदेव शोभायमान होते हैं ॥ १८ ॥ परीक्षित् ! सभामें विदूषकलोग विभिन्न प्रकारके हास्य-विनोदसे, नटाचार्य अभिनयसे और नर्तकियाँ कलापूर्ण नृत्योंसे अलग-अलग अपनी टोलियोंके साथ भगवान्‌की सेवा करतीं ॥ १९ ॥ उस समय मृदङ्ग, वीणा, पखावज, बाँसुरी, झाँझ और शङ्ख बजने लगते और सूत, मागध तथा बंदीजन नाचते-गाते और भगवान्‌की स्तुति करते ॥ २० ॥ कोई-कोई व्याख्याकुशल ब्राह्मण वहाँ बैठकर वेदमन्त्रोंकी व्याख्या करते और कोई पूर्वकालीन पवित्रकीर्ति नरपतियोंके चरित्र कह-कहकर सुनाते ॥ २१ ॥

एक दिनकी बात है, द्वारकापुरीमें राजसभाके द्वारपर एक नया मनुष्य आया । द्वारपालोंने भगवान्‌को उसके आनेकी सूचना देकर उसे सभाभवनमें उपस्थित किया ॥ २२ ॥ उस मनुष्यने परमेश्वर भगवान् श्रीकृष्णको हाथ जोड़कर नमस्कार किया और उन राजाओंका, जिन्होंने जरासन्धके दिग्विजयके समय उसके सामने सिर नहीं झुकाया था और बलपूर्वक कैद कर लिये गये थे, जिनकी संख्या बीस हजार थी, जरासन्धके बंदी बननेका दुःख श्रीकृष्णके सामने निवेदन किया—॥ २३-२४ ॥ 'सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण ! आप मन और वाणीके अगोचर हैं । जो आपकी शरणमें आता है, उसके सारे भय आप नष्ट कर देते हैं । प्रभो ! हमारी भेद-बुद्धि मिटी नहीं है । हम जन्म-मृत्युरूप संसारके चक्करसे भयभीत होकर आपकी शरणमें आये हैं ॥ २५ ॥ भगवन् ! अधिकांश जीव ऐसे सकाम और निषिद्ध कर्मोंमें फँसे हुए हैं कि वे आपके बतलाये हुए अपने परम कल्याणकारी कर्म, आपकी उपासनासे विमुख हो गये हैं और अपने जीवन एवं जीवनसम्बन्धी आशा-अभिलाषाओंमें भ्रम-भटक रहे हैं । परन्तु आप बड़े बलवान् हैं । आप कालरूपसे सदा-सर्वदा सावधान रहकर उनकी आशालताका तुरंत समूल उच्छेद कर डालते हैं । हम आपके उस कालरूपको नमस्कार करते हैं ॥ २६ ॥ आप स्वयं जगदीश्वर हैं और आपने जगत्‌में अपने ज्ञान, बल आदि कलाओंके साथ इसलिये अवतार ग्रहण किया है कि संतोंकी रक्षा करें और दुष्टोंको दण्ड दें । ऐसी अवस्थामें प्रभो ! जरासन्ध आदि कोई दूसरे राजा आपकी इच्छा और आज्ञाके विपरीत हमें कैसे कष्ट दे रहे हैं, यह बात हमारी समझमें नहीं आती । यदि यह कहा जाय कि जरासन्ध हमें कष्ट नहीं देता, उसके रूपमें—उसे निमित्त बनाकर हमारे अशुभ कर्म ही हमें दुःख पहुँचा रहे हैं, तो यह भी ठीक नहीं । क्योंकि जब हमलोग आपके अपने हैं, तब हमारे दुष्कर्म हमें फल देनेमें कैसे समर्थ हो सकते हैं ! इसलिये आप कृपा करके अवश्य ही हमें इस क्लेशसे मुक्त कीजिये ॥ २७ ॥ प्रभो ! हम जानते हैं कि राजापनेका सुख प्रारब्धके अधीन एवं विषयसाध्य है । और सच कहें तो स्वप्न-सुखके समान अत्यन्त तुच्छ और असत् है । साथ ही उस सुखको भोगनेवाला यह शरीर भी एक प्रकारसे मुर्दा ही है और इसके पीछे सदा-सर्वदा सैकड़ों प्रकारके भय लगे रहते हैं । परन्तु

हम तो इसीके द्वारा जगत्‌के अनेकों भार ढो रहे हैं और यही कारण है कि हमने अन्तःकरणके निष्काम-भाव और निस्सङ्कल्प स्थितिसे प्राप्त होनेवाले आत्म-सुखका परित्याग कर दिया है। सचमुच हम अत्यन्त अज्ञानी हैं और आपकी मायाके फंदेमें फँसकर क्लेश-पर-क्लेश भोगते जा रहे हैं ॥ २८ ॥ भगवन्! आपके चरणकमल शरणागत पुरुषोंके समस्त शोक और मोहोंको नष्ट कर देनेवाले हैं। इसलिये आप ही जरासन्धरूप कर्मोंके बन्धनसे हमे छुड़ाइये। प्रभो! यह अकेला ही दस हजार हाथियोंकी शक्ति रखता है और हमलोगोंको उसी प्रकार बंदी बनाये हुए है, जैसे सिंह भेड़ोंको घेर रक्खे ॥ २९ ॥ चक्रपाणे! आपने अठारह बार जरासन्धसे युद्ध किया और सत्रह बार उसका मान-मर्दन करके उसे छोड़ दिया। परन्तु एक बार उसने आपको जीत लिया। हम जानते हैं कि आपकी शक्ति, आपका बल-पौरुष अनन्त है। फिर भी मनुष्योंका-सा आचरण करते हुए आपने हारनेका अभिनय किया। परन्तु इसीसे उसका घमंड बढ़ गया है। हे अजित! अब वह यह जानकर हमलोगोंको और भी सताता है कि हम आपके भक्त हैं, आपकी प्रजा हैं। अब आपकी जैसी इच्छा हो, वैसा कीजिये' ॥ ३० ॥

दूतने कहा—भगवन्! जरासन्धके बंदी नरपतियोंने इस प्रकार आपसे प्रार्थना की है। वे आपके चरणकमलोंकी शरणमें हैं और आपका दर्शन चाहते हैं। आप कृपा करके उन दीनोंका कल्याण कीजिये ॥ ३१ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! राजाओंका दूत इस प्रकार कह ही रहा था कि परमतेजस्वी देवर्षि नारदजी वहाँ आ पहुँचे। उनकी सुनहरी जटाएँ चमक रही थीं। उन्हें देखकर ऐसा मालूम हो रहा था, मानो साक्षात् भगवान् सूर्य ही उदय हो गये हों ॥ ३२ ॥ ब्रह्मा आदि समस्त लोकपालोंके एकमात्र स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण उन्हें देखते ही समासदों और सेवकोंके साथ हर्षित होकर उठ खड़े हुए और सिर झुकाकर उनकी वन्दना करने लगे ॥ ३३ ॥ जब देवर्षि नारद आसन स्वीकार करके बैठ गये, तब भगवान्‌ने उनकी विधिपूर्वक पूजा की और अपनी श्रद्धासे उनको सन्तुष्ट करते हुए वे मधुर वाणीसे बोले—॥३४॥ 'देवर्षे! इस समय तीनों लोकोंमें कुशल-मङ्गल तो है न? आप तीनों लोकोंमें विचरण करते रहते हैं, इससे हमें यह बहुत बड़ा लाभ है कि घर बैठे सबका समाचार मिल जाता है ॥ ३५ ॥ ईश्वरके द्वारा रचे हुए तीनों लोकोंमें ऐसी कोई बात नहीं है, जिसे आप न जानते हों। अतः हम आपसे यह जानना चाहते हैं कि युधिष्ठिर आदि पाण्डव इस समय क्या करना चाहते हैं?' ॥ ३६ ॥

देवर्षि नारदजीने कहा—सर्वव्यापक अनन्त! आप विश्वके निर्माता हैं और इतने बडे मायावी हैं कि बड़े-बडे मायावी ब्रह्माजी आदि भी आपकी मायाका पार नहीं पा सकते। प्रभो! आप सबके घट-घटमें अपनी अचिन्त्य शक्तिसे व्याप्त रहते हैं—ठीक वैसे ही; जैसे अग्नि लकड़ियोंमें अपनेको छिपाये रखता है। लोगोंकी दृष्टि सत्त्व आदि गुणोंपर ही अटक जाती है, इससे आपको वे नहीं देख पाते। मैंने एक बार नहीं, अनेकों बार आपकी माया देखी है। इसलिये आप जो यों अनजान बनकर पाण्डवोंका समाचार पूछते हैं, इससे मुझे कोई कौतूहल नहीं हो रहा है ॥ ३७ ॥ भगवन्! आप अपनी मायासे ही इस जगत्‌की रचना और संहार करते हैं, और आपकी मायाके कारण ही यह असत्य होनेपर भी सत्यके समान प्रतीत होता है। आप कब क्या करना चाहते हैं, यह बात भलीभाँति कौन समझ सकता है। आपका स्वरूप सर्वथा अचिन्तनीय है। मैं तो केवल बार-बार आपको नमस्कार करता हूँ।३८। शरीर और इससे सम्बन्ध रखनेवाली वासनाओंमें फँसकर जीव जन्म-मृत्युके चक्करमें भटकता रहता है तथा यह नहीं जानता कि मैं इस शरीरसे कैसे मुक्त हो सकता हूँ। वास्तवमें उसीके हितके लिये आप नाना प्रकारके लीलावतार ग्रहण करके अपने पवित्र यशका दीपक जला देते हैं, जिसके सहारे वह इस अनर्थकारी शरीरसे मुक्त हो सके। इसलिये मैं आपकी शरणमें हूँ ॥३९॥ प्रभो! आप स्वयं परब्रह्म हैं, तथापि मनुष्योंकी-सी

लीलाका नाट्य करते हुए मुझसे पूछ रहे हैं। इसलिये आपके फुफेरे भाई और प्रेमी भक्त राजा युधिष्ठिर क्या करना चाहते हैं, यह बात मैं आपको सुनाता हूँ ।४०। इसमें सन्देह नहीं कि ब्रह्मलोकमें किसीको जो भोग प्राप्त हो सकता है, वह राजा युधिष्ठिरको यहीं प्राप्त है। उन्हें किसी वस्तुकी कामना नहीं है। फिर भी वे श्रेष्ठ यज्ञ राजसूयके द्वारा आपकी प्राप्तिके लिये आपकी आराधना करना चाहते हैं। आप कृपा करके उनकी इस अभिलाषाका अनुमोदन कीजिये ॥ ४१ ॥ भगवन्! उस श्रेष्ठ यज्ञमें आपका दर्शन करनेके लिये बड़े-बड़े देवता और यशस्वी नरपतिगण एकत्र होंगे ॥ ४२ ॥ प्रभो! आप स्वयं विज्ञानानन्दघन ब्रह्म हैं। आपके श्रवण, कीर्तन और ध्यान करनेमात्रसे अन्त्यज भी पवित्र हो जाते हैं। फिर जो आपका दर्शन और स्पर्श प्राप्त करते हैं, उनके सम्बन्धमें तो कहना ही क्या है ।४३। त्रिभुवनमङ्गल! आपकी निर्मल कीर्ति समस्त दिशाओंमें छा रही है तथा स्वर्ग, पृथ्वी और पातालमें व्याप्त हो रही है; ठीक वैसे ही, जैसे आपकी चरणामृतधारा स्वर्गमें मन्दाकिनी, पातालमें भोगवती और मर्त्यलोकमें गङ्गाके नामसे प्रवाहित होकर सारे विश्वको पवित्र कर रही है ॥ ४४ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! सभामें जितने यदुवंशी बैठे थे, वे सब इस बातके लिये अत्यन्त उत्सुक हो रहे थे कि पहले जरासन्धपर चढ़ाई करके उसे जीत लिया जाय। अतः उन्हें नारदजीकी बात पसंद न आयी। तब ब्रह्मा आदिके शासक भगवान् श्रीकृष्णने तनिक मुसकराकर बड़ी मीठी वाणीमें उद्धव-जीसे कहा—॥ ४५ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'उद्धव! तुम मेरे हितैषी सुहृद् हो! शुभ सम्मति देनेवाले और कार्यके तत्त्वको भली-भाँति समझनेवाले हो, इसीलिये हम तुम्हें अपना उत्तम नेत्र मानते हैं। अब तुम्हीं बताओ कि इस विषयमें हमे क्या करना चाहिये। तुम्हारी बातपर हमारी श्रद्धा है। इसलिये हम तुम्हारी सलाहके अनुसार ही काम करेंगे' ॥४६॥ जब उद्धवजीने देखा कि भगवान् श्रीकृष्ण सर्वज्ञ होनेपर भी अनजानकी तरह सलाह पूछ रहे हैं, तब वे उनकी आज्ञा शिरोधार्य करके बोले ॥ ४७ ॥

इकहत्तरवाँ अध्याय

श्रीकृष्णभगवान्‌का इन्द्रप्रस्थ पधारना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णके वचन सुनकर महामति उद्धवजीने देवर्षि नारद, सभासद् और भगवान् श्रीकृष्णके मतपर विचार किया और फिर वे कहने लगे ॥ १ ॥

उद्धवजीने कहा—भगवन्! देवर्षि नारदजीने आप-को यह सलाह दी है कि फुफेरे भाई पाण्डवोंके राजसूय यज्ञमें सम्मिलित होकर उनकी सहायता करनी चाहिये। उनका यह कथन ठीक ही है और साथ ही यह भी ठीक है कि शरणागतोंकी रक्षा अवश्यकर्तव्य है ॥ २ ॥ प्रभो! जब हम इस दृष्टिसे विचार करते हैं कि राजसूय यज्ञ वही कर सकता है, जो दसों दिशाओंपर विजय प्राप्त कर ले, तब हम इस निर्णयपर बिना किसी दुविधाके पहुँच जाते हैं कि पाण्डवोंके यज्ञ और शरणागतोंकी रक्षा दोनों कामोंके लिये जरासन्धको जीतना आवश्यक है ॥ ३ ॥ प्रभो! केवल जरासन्धको जीत लेनेसे ही हमारा महान् उद्देश्य सफल हो जायगा, साथ ही उससे बंदी राजाओंकी मुक्ति और उसके कारण आपको सुयशकी भी प्राप्ति हो जायगी ॥ ४ ॥ राजा जरासन्ध बड़े-बड़े लोगोंके भी दाँत खट्टे कर देता है; क्योंकि दस हजार हाथियोंका बल उसे प्राप्त है। उसे यदि हरा सकते हैं तो केवल भीमसेन, क्योंकि वे भी वैसे ही बली हैं ॥ ५ ॥ उसे आमने-सामनेके युद्धमें एक वीर जीत ले, यही सबसे अच्छा है। सौ अक्षौहिणी सेना लेकर जब वह युद्धके लिये खड़ा होगा, उस समय उसे जीतना आसान न होगा। जरासन्ध बहुत बड़ा ब्राह्मणभक्त है। यदि ब्राह्मण उससे किसी बातकी याचना करते हैं,

तो वह कभी कोरा जवाब नहीं देता ॥ ६ ॥ इसलिये भीमसेन ब्राह्मणके वेषमें जायँ और उससे युद्धकी भिक्षा माँगें । भगवन् ! इसमें सन्देह नहीं कि यदि आपकी उपस्थितिमें भीमसेन और जरासन्धका द्वन्द्वयुद्ध हो, तो भीमसेन उसे मार डालेंगे ॥ ७ ॥ प्रभो ! आप सर्व-शक्तिमान्, रूपरहित कालस्वरूप हैं । विश्वकी सृष्टि और प्रलय आपकी ही शक्तिसे होता है । ब्रह्मा और शङ्कर तो उसमें निमित्तमात्र हैं । (इसी प्रकार जरासन्ध-का वध तो होगा आपकी शक्तिसे, भीमसेन केवल उसमें निमित्तमात्र बनेंगे) ॥ ८ ॥ जब इस प्रकार आप जरासन्धका वध कर डालेंगे, तब कैदमें पड़े हुए राजाओं-की रानियाँ अपने महलोंमें आपकी इस विशुद्ध लीलाका गान करेंगी कि आपने उनके शत्रुका नाश कर दिया और उनके प्राणपतियोंको छुड़ा दिया । ठीक वैसे ही, जैसे गोपियाँ शङ्खचूड़से छुड़ानेकी लीलाका, आपके शरणागत मुनिगण गजेन्द्र और जानकीजीके उद्धारकी लीलाका तथा हमलोग आपके माता-पिताको कंसके कारागारसे छुड़ानेकी लीलाका गान करते हैं ॥९॥ इसलिये प्रभो ! जरासन्धका वध स्वयं ही बहुत-से प्रयोजन सिद्ध कर देगा । बंदी नरपतियोंके पुण्य-परिणामसे अथवा जरासन्धके पाप-परिणामसे सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण ! आप भी तो इस समय राजसूय यज्ञका होना ही पसंद करते हैं (इसलिये पहले आप वहीं पधारिये) ॥ १० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! उद्धवजीकी यह सलाह सब प्रकारसे हितकर और निर्दोष थी । देवर्षि नारद, यदुवंशके बड़े-बूढ़े और स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने भी उनकी बातका समर्थन किया ॥ ११ ॥ अब अन्तर्यामी भगवान् श्रीकृष्णने वसुदेव आदि गुरु-जनोंसे अनुमति लेकर दारुक, जैत्र आदि सेवकोंको इन्द्रप्रस्थ जानेकी तैयारी करनेके लिये आज्ञा दी ॥१२॥ इसके बाद भगवान् श्रीकृष्णने यदुराज उग्रसेन और बलरामजीसे आज्ञा लेकर बाल-बच्चोंके साथ रानियों और उनके सब सामानको आगे चला दिया और फिर दारुकके लाये हुए गरुडध्वज रथपर स्वयं सवार हुए ॥ १३ ॥ इसके बाद रथों, हाथियों, घुड़सवारों और पैदलोंकी बड़ी भारी सेनाके साथ उन्होंने प्रस्थान किया । उस समय मृदङ्ग, नगारे, ढोल, शङ्ख और नरसिंगोंकी ऊँची ध्वनिसे दसों दिशाएँ गूँज उठीं ॥ १४ ॥ सतीशिरोमणि रुक्मिणीजी आदि सहस्रों श्रीकृष्ण-पत्नियाँ अपनी सन्तानों-के साथ सुन्दर-सुन्दर वस्त्राभूषण, चन्दन, अङ्गराग और पुष्पोंके हार आदिसे सज-धजकर डोलियों, रथों और सोनेकी बनी हुई पालकियोंमें चढ़कर अपने पतिदेव भगवान् श्रीकृष्णके पीछे-पीछे चलीं । पैदल सिपाही हाथोंमें ढाल-तलवार लेकर उनकी रक्षा करते हुए चल रहे थे ॥१५॥ इसी प्रकार अनुचरोंकी स्त्रियाँ और वाराङ्गनाएँ भलीभाँति शृङ्गार करके खस आदिकी झोपड़ियों, भाँति-भाँतिके तंबुओं, कनातों, कम्बलों और ओढ़ने-बिछाने आदिकी सामग्रियोंको बैलों, भैंसों, गधों और खच्चरोंपर लादकर तथा स्वयं पालकी, ऊँट, छकड़ों और हथिनियोंपर सवार होकर चलीं ॥ १६ ॥ जैसे मगरमच्छों और लहरोंकी उछल-कूदसे क्षुब्ध समुद्रकी शोभा होती है, ठीक वैसे ही अत्यन्त कोलाहलसे परिपूर्ण, फहराती हुई बड़ी-बड़ी पताकाओं, छत्रों, चँवरों, श्रेष्ठ अस्त्र-शस्त्रों, वस्त्राभूषणों, मुकुटों, कवचों और दिनके समय उनपर पड़ती हुई सूर्यकी किरणोंसे भगवान् श्रीकृष्णकी सेना अत्यन्त शोभायमान हुई ॥ १७ ॥ देवर्षि नारदजी भगवान् श्रीकृष्णसे सम्मानित होकर और उनके निश्चयको सुनकर बहुत प्रसन्न हुए । भगवान्‌के दर्शनसे उनका हृदय और समस्त इन्द्रियाँ परमानन्दमें मग्न हो गयीं । विदा होनेके समय भगवान् श्रीकृष्णने उनका नाना प्रकारकी सामग्रियोंसे पूजन किया । अब देवर्षि नारदने उन्हें मन-ही-मन प्रणाम किया और उनकी दिव्य मूर्तिको हृदयमें धारण करके आकाशमार्गसे प्रस्थान किया ॥१८॥ इसके बाद भगवान् श्रीकृष्णने जरासन्धके बंदी नरपतियोंके दूतको अपनी मधुर वाणीसे आश्वासन देते हुए कहा—'दूत ! तुम अपने राजाओंसे जाकर कहना—'डरो मत । तुमलोगोंका कल्याण हो । मैं जरासन्धको मरवा डालूँगा' ॥ १९ ॥ भगवान्‌की ऐसी आज्ञा पाकर वह दूत गिरिव्रज चला गया और नरपतियोंको भगवान् श्रीकृष्णका सन्देश ज्यों-का-त्यों सुना दिया । वे राजा भी कारागारसे छूटनेके लिये शीघ्र-से-शीघ्र भगवान्‌के शुभ दर्शनकी बाट जोहने लगे ॥ २० ॥

परीक्षित् ! अब भगवान् श्रीकृष्ण आनर्त, सौवीर,

मरु, कुरुक्षेत्र और उनके बीचमें पड़नेवाले पर्वत, नदी, नगर, गाँव, अहीरोंकी बस्तियाँ तथा खानोंको पार करते हुए आगे बढ़ने लगे ॥ २१ ॥ भगवान् मुकुन्द मार्गमें दृषद्वती एवं सरस्वती नदी पार करके पाञ्चाल और मत्स्य देशोंमें होते हुए इन्द्रप्रस्थ जा पहुँचे ॥ २२ ॥ परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है। जब अजातशत्रु महाराज युधिष्ठिरको यह समाचार मिला कि भगवान् श्रीकृष्ण पधार गये हैं, तब उनका रोम-रोम आनन्दसे खिल उठा। वे अपने आचार्यों और स्वजन-सम्बन्धियोंके साथ भगवान्‌की अगवानी करनेके लिये नगरसे बाहर आये ॥ २३ ॥ मङ्गल-गीत गाये जाने लगे, बाजे बजने लगे, बहुत-से ब्राह्मण मिलकर ऊँचे स्वरसे वेदमन्त्रोंका उच्चारण करने लगे। इस प्रकार वे बड़े आदरसे हृषीकेश भगवान्‌का स्वागत करनेके लिये चले, जैसे इन्द्रियाँ मुख्य प्राणसे मिलने जा रही हों ॥ २४ ॥ भगवान् श्रीकृष्णको देखकर राजा युधिष्ठिरका हृदय स्नेहातिरेकसे गद्गद हो गया। उन्हें बहुत दिनोंपर अपने प्रियतम भगवान् श्रीकृष्णको देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। अतः वे उन्हें बार-बार अपने हृदयसे लगाने लगे ॥ २५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णका श्रीविग्रह भगवती लक्ष्मीजीका पवित्र और एकमात्र निवासस्थान है। राजा युधिष्ठिर अपनी दोनों भुजाओंसे उसका आलिङ्गन करके समस्त पाप-तापोंसे छुटकारा पा गये। वे सर्वतोभावेन परमानन्दके समुद्रमें मग्न हो गये। नेत्रोंमें आँसू छलक आये, अङ्ग-अङ्ग पुलकित हो गया, उन्हें इस विश्व-प्रपञ्चके भ्रमका तनिक भी स्मरण न रहा ॥ २६ ॥ तदनन्तर भीमसेनने मुसकराकर अपने ममेरे भाई श्रीकृष्णका आलिङ्गन किया। इससे उन्हें बड़ा आनन्द मिला। उस समय उनके हृदयमें इतना प्रेम उमड़ा कि उन्हें बाह्य विस्मृति-सी हो गयी। नकुल, सहदेव और अर्जुनने भी अपने परम प्रियतम और हितैषी भगवान् श्रीकृष्णका बड़े आनन्दसे आलिङ्गन प्राप्त किया। उस समय उनके नेत्रोंमें आँसुओंकी बाढ़-सी आ गयी थी ॥ २७ ॥ अर्जुनने पुनः भगवान् श्रीकृष्णका आलिङ्गन किया, नकुल और सहदेवने अभिवादन किया और स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने ब्राह्मणों और कुरुवंशी वृद्धोंको यथायोग्य नमस्कार किया ॥ २८ ॥ कुरु, सृञ्जय और केकय देशके नर-पतियोंने भगवान् श्रीकृष्णका सम्मान किया और भगवान् श्रीकृष्णने भी उनका यथोचित सत्कार किया। सूत, मागध, वंदीजन और ब्राह्मण भगवान्‌की स्तुति करने लगे तथा गन्धर्व, नट, विदूषक आदि मृदङ्ग, शङ्ख, नगारे, वीणा, ढोल और नरसिंगे बजा-बजाकर कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णको प्रसन्न करनेके लिये नाचने-गाने लगे ॥ २९-३० ॥ इस प्रकार परमयशस्वी भगवान् श्रीकृष्णने अपने सुहृद्-स्वजनोंके साथ सब प्रकारसे सुसज्जित इन्द्रप्रस्थ नगरमें प्रवेश किया। उस समय लोग आपसमें भगवान् श्रीकृष्णकी प्रशंसा करते चल रहे थे ॥ ३१ ॥

इन्द्रप्रस्थ नगरकी सड़कें और गलियाँ मतवाले हाथियोंके मदसे तथा सुगन्धित जलसे सींच दी गयी थीं। जगह-जगह रंग-बिरंगी झंडियाँ लगा दी गयी थीं। सुनहले तोरन बाँधे हुए थे और सोनेके जल भरे कलश स्थान-स्थानपर शोभा पा रहे थे। नगरके नर-नारी नहा-धोकर तथा नये वस्त्र, आभूषण, पुष्पोंके हार, इत्र-फुलेल आदिसे सज-धजकर घूम रहे थे ॥ ३२ ॥ घर-घरमें ठौर-ठौरपर दीपक जलाये गये थे, जिनसे दीपावलीकी-सी छटा हो रही थी। प्रत्येक घरके झरोखोंसे धूपका धूआँ निकलता हुआ बहुत ही भला मालूम होता था। सभी घरोंके ऊपर पताकाएँ फहरा रही थीं तथा सोनेके कलश और चाँदीके शिखर जगमगा रहे थे। भगवान् श्रीकृष्ण इस प्रकारके महलोंसे परिपूर्ण पाण्डवोंकी राजधानी इन्द्रप्रस्थ नगरको देखते हुए आगे बढ़ रहे थे ॥ ३३ ॥ जब युवतियोंने सुना कि मानव-नेत्रोंके पानपात्र अर्थात् अत्यन्त दर्शनीय भगवान् श्रीकृष्ण राजपथपर आ रहे हैं, तब उनके दर्शनकी उत्सुकताके आवेगसे उनकी चोटियों और साड़ियोंकी गाँठें ढीली पड़ गयीं। उन्होंने घरका काम-काज तो छोड़ ही दिया, सेजपर सोये हुए अपने पतियोंको भी छोड़ दिया और भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन करनेके लिये राजपथपर दौड़ आयीं ॥ ३४ ॥ सड़कपर हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सेनाकी भीड़ लग रही थी। उन स्त्रियोंने अटारियोंपर चढ़कर रानियोंके सहित भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन

किया, उनके ऊपर पुष्पोंकी वर्षा की और मन-ही-मन आलिङ्गन किया तथा प्रेमभरी मुसकान एवं चितवनसे उनका सुस्वागत किया ॥ ३५ ॥ नगरकी स्त्रियाँ राजपथ-पर चन्द्रमाके साथ विराजमान ताराओंके समान श्रीकृष्ण-की पत्नियोंको देखकर आपसमें कहने लगीं—'सखी ! इन बड़भागिनी रानियोंने न जाने ऐसा कौन-सा पुण्य किया है, जिसके कारण पुरुषशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्ण अपने उन्मुक्त हास्य और विलासपूर्ण कटाक्षसे उनकी ओर देखकर उनके नेत्रोंको परम आनन्द प्रदान करते हैं ॥ ३६ ॥ इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण राज-पथसे चल रहे थे । स्थान-स्थानपर बहुत-से निष्पाप धनी-मानी और शिल्पजीवी नागरिकोंने अनेकों माङ्गलिक वस्तुएँ ला-लाकर उनकी पूजा-अर्चा और स्वागत-सत्कार किया ॥ ३७ ॥

अन्तःपुरकी स्त्रियाँ भगवान् श्रीकृष्णको देखकर प्रेम और आनन्दसे भर गयीं । उन्होंने अपने प्रेमविह्वल और आनन्दसे खिले नेत्रोंके द्वारा भगवान्का स्वागत किया और श्रीकृष्ण उनका स्वागत-सत्कार स्वीकार करते हुए राजमहलमें पधारे ॥ ३८ ॥ जब कुन्तीने अपने त्रिभुवन-पति भतीजे श्रीकृष्णको देखा, तब उनका हृदय प्रेमसे भर आया । वे पलंगसे उठकर अपनी पुत्रवधू द्रौपदीके साथ आगे गयीं और भगवान् श्रीकृष्णको हृदयसे लगा लिया ॥ ३९ ॥ देवदेवेश्वर भगवान् श्रीकृष्णको राज-महलके अंदर लाकर राजा युधिष्ठिर आदरभाव और आनन्दके उद्रेकसे आत्मविस्मृत हो गये; उन्हें इस बातकी भी सुधि न रही कि किस क्रमसे भगवान्की पूजा करनी चाहिये ॥ ४० ॥ भगवान् श्रीकृष्णने अपनी फूआ कुन्ती और गुरुजनोंकी पत्नियोंका अभिवादन किया । उनकी बहिन सुभद्रा और द्रौपदीने भगवान्को नमस्कार किया ॥ ४१ ॥ अपनी सास कुन्तीकी प्रेरणासे द्रौपदीने वस्त्र, आभूषण, माला आदिके द्वारा रुक्मिणी, सत्यभामा, भद्रा, जाम्बवती, कालिन्दी, मित्रविन्दा, लक्ष्मणा और परम साध्वी सत्या— भगवान् श्रीकृष्णकी इन पटरानियोंका तथा वहाँ आयी हुई श्रीकृष्णकी अन्यान्य रानियोंका भी यथायोग्य सत्कार किया ॥ ४२-४३ ॥ धर्मराज युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्णको उनकी सेना, सेवक, मन्त्री और पत्नियोंके साथ ऐसे स्थानमें ठहराया जहाँ उन्हें नित्य नयी-नयी सुखकी सामग्रियाँ प्राप्त हों ॥ ४४ ॥ अर्जुनके साथ रहकर भगवान् श्रीकृष्णने खाण्डव वनका दाह करवाकर अग्निको तृप्त किया था और मयासुरको उससे बचाया था । परीक्षित् ! उस मयासुरने ही धर्मराज युधिष्ठिरके लिये भगवान्की आज्ञासे एक दिव्य सभा तैयार कर दी ॥ ४५ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण राजा युधिष्ठिरको आनन्दित करनेके लिये कई महीनोंतक इन्द्रप्रस्थमें ही रहे । वे समय-समयपर अर्जुनके साथ रथपर सवार होकर विहार करनेके लिये इधर-उधर चले जाया करते थे । उस समय बड़े-बड़े वीर सैनिक भी उनकी सेवाके लिये साथ-साथ जाते ॥ ४६ ॥

बहत्तरवाँ अध्याय

पाण्डवोंके राजसूययज्ञका आयोजन और जरासन्धका उद्धार

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! एक दिन महाराज युधिष्ठिर बहुत-से मुनियों, ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों, भीमसेन आदि भाइयों, आचार्यों, कुलके बड़े-बूढ़ों, जाति-बन्धुओं, सम्बन्धियों एवं कुटुम्बियोंके साथ राजसभामें बैठे हुए थे । उन्होंने सबके सामने ही भगवान् श्रीकृष्णको सम्बोधित करके यह बात कही ॥ १-२ ॥

धर्मराज युधिष्ठिरने कहा—गोविन्द ! मैं सर्वश्रेष्ठ राजसूय यज्ञके द्वारा आपका और आपके परम पावन विभूतिस्वरूप देवताओंका यजन करना चाहता हूँ । प्रभो ! आप कृपा करके मेरा यह सङ्कल्प पूरा कीजिये ॥ ३ ॥ कमलनाभ ! आपके चरणकमलोंकी पादुकाएँ समस्त अमङ्गलोंको नष्ट करनेवाली हैं । जो लोग निरन्तर उनकी सेवा करते हैं, ध्यान और स्तुति करते

हैं, वास्तवमें वे ही पवित्रात्मा हैं। वे जन्म-मृत्युके चक्करसे छुटकारा पा जाते हैं। और यदि वे सांसारिक विषयोंकी अभिलाषा करें, तो उन्हें उनकी भी प्राप्ति हो जाती है। परन्तु जो आपके चरणकमलोंकी शरण ग्रहण नहीं करते, उन्हें मुक्ति तो मिलती ही नहीं, सांसारिक भोग भी नहीं मिलते ॥ ४ ॥ देवताओंके भी आराध्यदेव! मैं चाहता हूँ कि संसारी लोग आपके चरणकमलोंकी सेवाका प्रभाव देखें। प्रभो! कुरुवंशी और सृञ्जयवंशी नरपतियोंमें जो लोग आपका भजन करते हैं, और जो नहीं करते, उनका अन्तर आप जनताको दिखला दीजिये ॥ ५ ॥ प्रभो! आप सबके आत्मा, समदर्शी और स्वयं आत्मानन्दके साक्षात्कार हैं, स्वयं ब्रह्म हैं। आपमें 'यह मैं हूँ और यह दूसरा, यह अपना है और यह पराया'—इस प्रकारका भेदभाव नहीं है। फिर भी जो आपकी सेवा करते हैं उन्हें, उनकी भावनाके अनुसार फल मिलता ही है—ठीक वैसे ही, जैसे कल्पवृक्षकी सेवा करनेवालेको। उस फलमें जो न्यूनाधिकता होती है, वह तो न्यूनाधिक सेवाके अनुरूप ही होती है। इससे आपमें विषमता या निर्दयता आदि दोष नहीं आते ॥ ६ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—शत्रु-विजयी धर्मराज! आपका निश्चय बहुत ही उत्तम है। राजसूय यज्ञ करनेसे समस्त लोकोंमें आपकी मङ्गलमयी कीर्तिका विस्तार होगा ॥ ७ ॥ राजन्! आपका यह महायज्ञ ऋषियों, पितरों, देवताओं, सगे-सम्बन्धियों, हमें—और कहाँतक कहें, समस्त प्राणियोंको अभीष्ट है ॥ ८ ॥ महाराज! पृथ्वीके समस्त नरपतियोंको जीतकर, सारी पृथ्वीको अपने वशमें करके और यज्ञोचित सम्पूर्ण सामग्री एकत्रित करके फिर इस महायज्ञका अनुष्ठान कीजिये ॥ ९ ॥ महाराज! आपके चारों भाई वायु, इन्द्र आदि लोकपालोंके अंशसे पैदा हुए हैं। वे सब-के-सब बड़े वीर हैं। आप तो परम मनस्वी और संयमी हैं ही। आपलोगोंने अपने सद्‌गुणोंसे मुझे अपने वशमे कर लिया है। जिन लोगोंने अपनी इन्द्रियों और मनको वशमे नहीं किया है, वे मुझे अपने वशमें नहीं कर सकते ॥ १० ॥ संसारमें कोई बड़े-से बड़ा देवता भी तेज, यश, लक्ष्मी, सौन्दर्य और ऐश्वर्य आदिके द्वारा मेरे भक्तका तिरस्कार नहीं कर सकता। फिर कोई राजा उसका तिरस्कार कर दे, इसकी तो सम्भावना ही क्या है? ॥ ११ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान्‌की बात सुनकर महाराज युधिष्ठिरका हृदय आनन्दसे भर गया। उनका मुखकमल प्रफुल्लित हो गया। अब उन्होंने अपने भाइयोंको दिग्विजय करनेका आदेश दिया। भगवान् श्रीकृष्णने पाण्डवोंमें अपनी शक्तिका सञ्चार करके उनको अत्यन्त प्रभावशाली बना दिया था ॥ १२ ॥ धर्मराज युधिष्ठिरने सृञ्जयवंशी वीरोंके साथ सहदेवको दक्षिण दिशामें दिग्विजय करनेके लिये भेजा। नकुलको मत्स्यदेशीय वीरोंके साथ पश्चिममें, अर्जुनको केकयदेशीय वीरोंके साथ उत्तरमें और भीमसेनको मद्रदेशीय वीरोंके साथ पूर्व दिशामे दिग्विजय करनेका आदेश दिया ॥ १३ ॥ परीक्षित्! उन भीमसेन आदि वीरोंने अपने बल-पौरुषसे सब ओरके नरपतियोंको जीत लिया और यज्ञ करनेके लिये उद्यत महाराज युधिष्ठिरको बहुत-सा धन लाकर दिया ॥ १४ ॥ जब महाराज युधिष्ठिरने यह सुना कि अबतक जरासन्धपर विजय नहीं प्राप्त की जा सकी, तब वे चिन्तामें पड गये। उस समय भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें वही उपाय कह सुनाया, जो उद्धवजीने बतलाया था ॥ १५ ॥ परीक्षित्! इसके बाद भीमसेन, अर्जुन और भगवान् श्रीकृष्ण—ये तीनों ही ब्राह्मणका वेष धारण करके गिरिव्रज गये। वही जरासन्धकी राजधानी थी ॥ १६ ॥ राजा जरासन्ध ब्राह्मणोंका भक्त और गृहस्थोचित धर्मोंका पालन करनेवाला था। उपर्युक्त तीनों क्षत्रिय ब्राह्मणका वेष धारण करके अतिथि-अभ्यागतोंके सत्कारके समय जरासन्धके पास गये और उससे इस प्रकार याचना की—॥ १७ ॥ 'राजन्! आपका कल्याण हो। हम तीनों आपके अतिथि हैं और बहुत दूरसे आ रहे हैं। अवश्य ही हम यहाँ किसी विशेष प्रयोजनसे ही आये हैं। इसलिये हम आपसे जो कुछ चाहते हैं, वह आप हमें अवश्य दीजिये ॥ १८ ॥ तितिक्षु पुरुष क्या नहीं सह सकते। दुष्ट पुरुष बुरा-से-बुरा क्या नहीं कर सकते। उदार पुरुष क्या नहीं दे सकते और समदर्शीके लिये पराया कौन है? ॥ १९ ॥ जो पुरुष स्वयं समर्थ होकर भी इस नाशवान् शरीरसे ऐसे अविनाशी यशका

संग्रह नहीं करता, जिसका बड़े-बड़े सत्पुरुष भी गान करें; सच पूछिये तो उसकी जितनी निन्दा की जाय, थोड़ी है। उसका जीवन शोक करनेयोग्य है ॥ २० ॥ राजन्! आप तो जानते ही होंगे—राजा हरिश्चन्द्र, रन्तिदेव, केवल अन्नके दाने बीन-चुनकर निर्वाह करनेवाले महात्मा मुद्गल, शिबि, बलि, व्याध और कपोत आदि बहुत-से व्यक्ति अतिथिको अपना सर्वस्व देकर इस नाशवान् शरीरके द्वारा अविनाशी पदको प्राप्त हो चुके हैं। इसलिये आप भी हमलोगोंको निराश मत कीजिये ॥ २१ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जरासन्धने उन लोगोंकी आवाज, सूरत-शकल और कलाइयोंपर पड़े हुए धनुषकी प्रत्यञ्चाकी रगड़के चिह्नोंको देखकर पहचान लिया कि ये तो ब्राह्मण नहीं, क्षत्रिय हैं। अब वह सोचने लगा कि मैंने कहीं-न-कहीं इन्हें देखा भी अवश्य है ॥ २२ ॥ फिर उसने मन-ही-मन यह विचार किया कि 'ये क्षत्रिय होनेपर भी मेरे भयसे ब्राह्मणका वेष बनाकर आये हैं। जब ये भिक्षा माँगनेपर ही उतारू हो गये हैं, तब चाहे जो कुछ माँग लें, मै इन्हे दूँगा। याचना करनेपर अपना अत्यन्त प्यारा और दुस्त्यज शरीर देनेमें भी मुझे हिचकिचाहट न होगी ॥ २३ ॥ विष्णुभगवान्‌ने ब्राह्मणका वेष धारण करके बलिका धन, ऐश्वर्य—सब कुछ छीन लिया; फिर भी बलिकी पवित्र कीर्ति सब ओर फैली हुई है और आज भी लोग बड़े आदरसे उसका गान करते हैं ॥ २४ ॥ इसमे सन्देह नहीं कि विष्णुभगवान्‌ने देवराज इन्द्रकी राज्यलक्ष्मी बलिसे छीनकर उन्हे लौटानेके लिये ही ब्राह्मणरूप धारण किया था। दैत्यराज बलिको यह बात मालूम हो गयी थी और शुक्राचार्यने उन्हें रोका भी; परन्तु उन्होंने पृथ्वीका दान कर ही दिया ॥ २५ ॥ मेरा तो यह पक्का निश्चय है कि यह शरीर नाशवान् है। इस शरीरसे जो विपुल यश नहीं कमाता और जो क्षत्रिय ब्राह्मणके लिये ही जीवन नहीं धारण करता, उसका जीना व्यर्थ है' ॥ २६ ॥ परीक्षित्! सचमुच जरासन्धकी बुद्धि बड़ी उदार थी। उपर्युक्त विचार करके उसने ब्राह्मण-वेषधारी श्रीकृष्ण, अर्जुन और भीमसेनसे कहा—'ब्राह्मणो! आपलोग मनचाही वस्तु माँग लें, आप चाहें तो मैं आपलोगोंको अपना सिर भी दे सकता हूँ' ॥ २७ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'राजेन्द्र! हमलोग अन्नके इच्छुक ब्राह्मण नहीं हैं, क्षत्रिय हैं; हम आपके पास युद्धके लिये आये हैं। यदि आपकी इच्छा हो तो हमें द्वन्द्वयुद्धकी भिक्षा दीजिये ॥ २८ ॥ देखो, ये पाण्डुपुत्र भीमसेन हैं और यह इनका भाई अर्जुन है, और मैं इन दोनोंका ममेरा भाई तथा आपका पुराना शत्रु कृष्ण हूँ' ॥ २९ ॥ जब भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार अपना परिचय दिया, तब राजा जरासन्ध ठठाकर हँसने लगा। और चिढ़कर बोला—'अरे मूर्खो! यदि तुम्हें युद्धकी ही इच्छा है तो लो मैं तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार करता हूँ ॥ ३० ॥ परन्तु कृष्ण! तुम तो बड़े डरपोक हो। युद्धमें तुम घबरा जाते हो। यहाँतक कि मेरे डरसे तुमने अपनी नगरी मथुरा भी छोड़ दी तथा समुद्रकी शरण ली है। इसलिये मैं तुम्हारे साथ नहीं लड़ूँगा ॥ ३१ ॥ यह अर्जुन भी कोई योद्धा नहीं है। एक तो अवस्थामें मुझसे छोटा, दूसरे कोई विशेष बलवान् भी नहीं है। इसलिये यह भी मेरे जोड़का वीर नहीं है। मैं इसके साथ भी नहीं लड़ूँगा। रहे भीमसेन, ये अवश्य ही मेरे समान बलवान् और मेरे जोड़के हैं' ॥ ३२ ॥ जरासन्धने यह कहकर भीमसेनको एक बहुत बड़ी गदा दे दी और स्वयं दूसरी गदा लेकर नगरसे बाहर निकल आया ॥ ३३ ॥ अब दोनों रणोन्मत्त वीर अखाड़ेमें आकर एक दूसरेसे भिड़ गये और अपनी वज्रके समान कठोर गदाओंसे एक दूसरेपर चोट करने लगे ॥ ३४ ॥ वे दायें-बायें तरह-तरहके पैंतरे बदलते हुए ऐसे शोभायमान हो रहे थे—मानो दो श्रेष्ठ नट रंगमंचपर युद्धका अभिनय कर रहे हों ॥ ३५ ॥ परीक्षित्! जब एककी गदा दूसरेकी गदासे टकराती, तब ऐसा मालूम होता मानो युद्ध करनेवाले दो हाथियोंके दाँत आपसमें भिड़कर चटचटा रहे हों, या बड़े जोरसे बिजली तड़क रही हो ॥ ३६ ॥ जब दो हाथी क्रोधमे भरकर लड़ने लगते हैं और आककी डालियाँ तोड़-तोड़कर एक-दूसरेपर प्रहार करते हैं, उस समय एक-दूसरेकी चोटसे वे डालियाँ चूर-चूर हो जाती हैं; वैसे ही जब जरासन्ध और भीमसेन

बड़े वेगसे गदा चला-चलाकर एक-दूसरेके कंधों, कमरों, पैरों, हाथों, जाँघों और हँसलियोंपर चोट करने लगे, तब उनकी गदाएँ उनके अङ्गोंसे टकरा-टकराकर चकनाचूर होने लगीं ॥ ३७ ॥ इस प्रकार जब गदाएँ चूर-चूर हो गयीं, तब दोनों वीर क्रोधमें भरकर अपने घूँसोंसे एक-दूसरेको कुचल डालनेकी चेष्टा करने लगे । उनके घूँसे ऐसी चोट करते, मानो लोहेका घन गिर रहा हो । एक-दूसरेपर खुलकर चोट करते हुए दो हाथियोंकी तरह उनके थप्पड़ों और घूँसोंका कठोर शब्द बिजलीकी कड़कड़ाहटके समान जान पड़ता था ॥ ३८ ॥ परीक्षित् ! जरासन्ध और भीमसेन दोनोंकी गदा-युद्धमें कुशलता, बल और उत्साह समान थे । दोनोंकी शक्ति तनिक भी क्षीण नहीं हो रही थी । इस प्रकार लगातार प्रहार करते रहनेपर भी दोनोंमेंसे किसीकी जीत या हार न हुई । ३९ । दोनों वीर रातके समय मित्रके समान रहते और दिनमें छूटकर एक दूसरेपर प्रहार करते और लड़ते । महाराज ! इस प्रकार उनके लड़ते-लड़ते सत्ताईस दिन बीत गये ।४०।

प्रिय परीक्षित् ! अट्ठाईसवें दिन भीमसेनने अपने ममेरे भाई श्रीकृष्णसे कहा—'श्रीकृष्ण ! मैं युद्धमें जरासन्धको जीत नहीं सकता ॥ ४१ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण जरासन्धके जन्म और मृत्युका रहस्य जानते थे और यह भी जानते थे कि जरा राक्षसीने जरासन्धके शरीरके दो टुकड़ोंको जोड़कर इसे जीवन-दान दिया है । इसलिये उन्होंने भीमसेनके शरीरमें अपनी शक्तिका सञ्चार किया और जरासन्धके वधका उपाय सोचा ॥ ४२ ॥ परीक्षित् ! भगवान्‌का ज्ञान अबाध है । अब उन्होंने उसकी मृत्युका उपाय जानकर एक वृक्षकी डालीको बीचोबीचसे चीर दिया और इशारेसे भीमसेनको दिखाया ॥ ४३ ॥ वीरशिरोमणि एवं परम शक्तिशाली भीमसेनने भगवान् श्रीकृष्णका अभिप्राय समझ लिया और जरासन्धके पैर पकड़कर उसे धरतीपर दे मारा ॥ ४४ ॥ फिर उसके एक पैरको अपने पैरके नीचे दबाया और दूसरेको अपने दोनों हाथोंसे पकड़ लिया । इसके बाद भीमसेनने उसे गुदाकी ओरसे इस प्रकार चीर डाला, जैसे गजराज वृक्षकी डाली चीर डाले ॥ ४५ ॥ लोगोंने देखा कि जरासन्धके शरीरके दो टुकड़े हो गये हैं, और इस प्रकार उनके एक-एक पैर, जाँघ, अण्डकोश, कमर, पीठ, स्तन, कंधा, भुजा, नेत्र, भौंह और कान अलग-अलग हो गये है ॥ ४६ ॥ मगधराज जरासन्धकी मृत्यु हो जानेपर वहाँकी प्रजा बड़े जोरसे 'हाय-हाय !' पुकारने लगी । भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनने भीमसेनका आलिङ्गन करके उनका सत्कार किया ॥ ४७ ॥ सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्णके स्वरूप और विचारोंको कोई समझ नहीं सकता । वास्तवमें वे ही समस्त प्राणियोंके जीवनदाता हैं । उन्होंने जरासन्धके राजसिंहासनपर उसके पुत्र सहदेवका अभिषेक कर दिया और जरासन्धने जिन राजाओंको कैदी बना रक्खा था, उन्हें कारागारसे मुक्त कर दिया ॥ ४८ ॥

तिहत्तरवाँ अध्याय

जरासन्धके जेलसे छूटे हुए राजाओंकी विदाई और भगवान्‌का इन्द्रप्रस्थ लौट आना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जरासन्धने अनायास ही बीस हजार आठ सौ राजाओंको जीतकर पहाड़ोंकी घाटीमें एक किलेके भीतर कैद कर रक्खा था । भगवान् श्रीकृष्णके छोड़ देनेपर जब वे वहाँसे निकले, तब उनके शरीर और वस्त्र मैले हो रहे थे ॥ १ ॥ वे भूखसे दुर्बल हो रहे थे और उनके मुँह सूख गये थे । जेलमें बंद रहनेके कारण उनके शरीरका एक-एक अङ्ग ढीला पड़ गया था । वहाँसे निकलते ही उन नरपतियोंने देखा कि सामने भगवान् श्रीकृष्ण खड़े हैं । वर्षाकालीन मेघके समान उनका साँवला-सलोना शरीर है और उसपर पीले रंगका रेशमी वस्त्र फहरा रहा है ॥ २ ॥ चार भुजाएँ हैं—जिनमें गदा, शङ्ख, चक्र और कमल सुशोभित हैं । वक्षःस्थलपर सुनहली रेखा—श्रीवत्सका चिह्न है और कमलके भीतरी भागके समान कोमल, रतनारे नेत्र हैं । सुन्दर वदन प्रसन्नताका सदन है । कानोंमें मकराकृति कुण्डल झिलमिला रहे हैं । सुन्दर

मुकुट, मोतियोंका हार, कड़े, करधनी और बाजूबंद अपने-अपने स्थानपर शोभा पा रहे हैं ॥ ३-४ ॥ गलेमें कौस्तुभमणि जगमगा रही है और वनमाला लटक रही है। भगवान् श्रीकृष्णको देखकर उन राजाओंकी ऐसी स्थिति हो गयी, मानो वे नेत्रोंसे उन्हें पी रहे हैं। जीभसे चाट रहे हैं, नासिकासे सूँघ रहे हैं और बाहुओंसे आलिङ्गन कर रहे हैं। उनके सारे पाप तो भगवान्‌के दर्शनसे ही धुल चुके थे। उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंपर अपना सिर रखकर प्रणाम किया ॥ ५-६ ॥ भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनसे उन राजाओंको इतना अधिक आनन्द हुआ कि कैदमें रहनेका क्लेश बिल्कुल जाता रहा। वे हाथ जोड़कर विनम्र वाणीसे भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगे ॥ ७ ॥

राजाओंने कहा—शरणागतोंके सारे दुःख और भय हर लेनेवाले देवदेवेश्वर! सच्चिदानन्दस्वरूप अविनाशी श्रीकृष्ण! हम आपको नमस्कार करते हैं। आपने जरासन्धके कारागारसे तो हमें छुड़ा ही दिया, अब इस जन्म-मृत्युरूप घोर संसार-चक्रसे भी छुड़ा दीजिये; क्योंकि हम संसारमें दुःखका कटु अनुभव करके उससे ऊब गये हैं और आपकी शरणमें आये हैं। प्रभो! अब आप हमारी रक्षा कीजिये ॥ ८ ॥ मधुसूदन! हमारे स्वामी! हम मगधराज जरासन्धका कोई दोष नहीं देखते। भगवन्! यह तो आपका बहुत बड़ा अनुग्रह है कि हम राजा कहलानेवाले लोग राज्यलक्ष्मीसे च्युत कर दिये गये ॥ ९ ॥ क्योंकि जो राजा अपने राज्य-ऐश्वर्यके मदसे उन्मत्त हो जाता है, उसको सच्चे सुखकी—कल्याणकी प्राप्ति कभी नहीं हो सकती। वह आपकी मायासे मोहित होकर अनित्य सम्पत्तियोंको ही अचल मान बैठता है ॥ १० ॥ जैसे मूर्खलोग मृगतृष्णाके जलको ही जलाशय मान लेते हैं, वैसे ही इन्द्रियलोलुप और अज्ञानी पुरुष भी इस परिवर्तनशील मायाको सत्य वस्तु मान लेते हैं ॥ ११ ॥ भगवन्! पहले हमलोग धन-सम्पत्तिके नशेमें चूर होकर अंधे हो रहे थे। इस पृथ्वीको जीत लेनेके लिये एक दूसरेकी होड़ करते थे और अपनी ही प्रजाका नाश करते रहते थे। सचमुच हमारा जीवन अत्यन्त क्रूरतासे भरा हुआ था, और हमलोग इतने अधिक मनवाले हो रहे थे कि आप मृत्युरूपसे हमारे सामने खड़े हैं, इस बातकी भी हम तनिक परवा नहीं करते थे ॥ १२ ॥ सच्चिदानन्द-स्वरूप श्रीकृष्ण! कालकी गति बड़ी गहन है। वह इतना बलवान् है कि किसीके टाले टलता नहीं। क्यों न हो, वह आपका शरीर ही तो है। अब उसने हम-लोगोंको श्रीहीन, निर्धन कर दिया है। आपकी अहैतुक अनुकम्पासे हमारा घमंड चूर-चूर हो गया। अब हम आपके चरणकमलोंका स्मरण करते हैं ॥ १३ ॥ विभो! यह शरीर दिन-दिन क्षीण होता जा रहा है। रोगोंकी तो यह जन्मभूमि ही है। अब हमें इस शरीरसे भोगे जानेवाले राज्यकी अभिलाषा नहीं है। क्योंकि हम समझ गये हैं कि वह मृगतृष्णाके जलके समान सर्वथा मिथ्या है। यही नहीं, हमें कर्मके फल स्वर्गादि लोकोंकी भी, जो मरनेके बाद मिलते हैं, इच्छा नहीं है। क्योंकि हम जानते हैं कि वे निस्सार हैं; केवल सुननेमें ही आकर्षक जान पड़ते हैं ॥ १४ ॥ अब हमें कृपा करके आप वह उपाय बतलाइये, जिससे आपके चरणकमलोंकी विस्मृति कभी न हो, सर्वदा स्मृति बनी रहे। चाहे हमें संसारकी किसी भी योनिमें जन्म क्यों न लेना पड़े ॥ १५ ॥ प्रणाम करनेवालोंके क्लेशका नाश करनेवाले श्रीकृष्ण, वासुदेव, हरि, परमात्मा एवं गोविन्दके प्रति हमारा बार-बार नमस्कार है ॥ १६ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! कारागारसे मुक्त राजाओंने जब इस प्रकार करुणावरुणालय भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति की, तब शरणागतरक्षक प्रभुने बड़ी मधुर वाणीसे उनसे कहा ॥ १७ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—नरपतियो! तुमलोगोंने जैसी इच्छा प्रकट की है, उसके अनुसार आजसे मुझमें तुमलोगोंकी निश्चय ही सुदृढ भक्ति होगी। यह जान लो कि मैं सबका आत्मा और सबका स्वामी हूँ ॥ १८ ॥ नरपतियो! तुमलोगोंने जो निश्चय किया है, वह सचमुच तुम्हारे लिये बड़े सौभाग्य और आनन्दकी बात है। तुमलोगोंने मुझसे जो कुछ कहा है, वह बिल्कुल ठीक है। क्योंकि मैं देखता हूँ, धन-सम्पत्ति और ऐश्वर्यके मदसे चूर होकर बहुत-से लोग उच्छृङ्खल

और मतवाले हो जाते हैं ॥ १९ ॥ हैहय, नहुष, वेन, रावण, नरकासुर आदि अनेकों देवता, दैत्य और नरपति श्रीमदके कारण अपने स्थानसे, पदसे च्युत हो गये ॥ २० ॥ तुमलोग यह समझ लो कि शरीर और इसके सम्बन्धी पैदा होते हैं, इसलिये उनका नाश भी अवश्यम्भावी है । अत उनमें आसक्ति मत करो । बड़ी सावधानीसे मन और इन्द्रियोंको वशमें रखकर यज्ञोंके द्वारा मेरा यजन करो और धर्मपूर्वक प्रजाकी रक्षा करो ॥ २१ ॥ तुमलोग अपनी वंश-परम्पराकी रक्षाके लिये, भोगके लिये नहीं, सन्तान उत्पन्न करो और प्रारब्धके अनुसार जन्म-मृत्यु, सुख-दु ख, लाभ-हानि—जो कुछ भी प्राप्त हों, उन्हें समानभावसे मेरा प्रसाद समझकर सेवन करो और अपना चित्त मुझमें लगाकर जीवन बिताओ ॥ २२ ॥ देह और देहके सम्बन्धियोंसे किसी प्रकारकी आसक्ति न रखकर उदासीन रहो; अपने-आपमें, आत्मामें ही रमण करो और भजन तथा आश्रमके योग्य व्रतोंका पालन करते रहो । अपना मन भलीभाँति मुझमें लगाकर अन्तमें तुमलोग मुझ ब्रह्मस्वरूपको ही प्राप्त हो जाओगे ॥ २३ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! भुवनेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने राजाओंको यह आदेश देकर उन्हें स्नान आदि करानेके लिये बहुत-से स्त्री-पुरुष नियुक्त कर दिये ॥ २४ ॥ परीक्षित् ! जरासन्धके पुत्र सहदेवसे उनको राजोचित वस्त्र-आभूषण, माला-चन्दन आदि दिलवाकर उनका खूब सम्मान करवाया ॥२५॥ जब वे स्नान करके वस्त्राभूषणसे सुसज्जित हो चुके, तब भगवान्ने उन्हें उत्तम-उत्तम पदार्थोंका भोजन करवाया और पान आदि विविध प्रकारके राजोचित भोग दिलवाये ॥ २६ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार उन बंदी राजाओंको सम्मानित किया । अब वे समस्त क्लेशोंसे छुटकारा पाकर तथा कानोंमें झिलमिलाते हुए सुन्दर-सुन्दर कुण्डल पहनकर ऐसे शोभायमान हुए, जैसे वर्षाऋतुका अन्त हो जानेपर तारे ॥ २७ ॥ फिर भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें सुवर्ण और मणियोंसे भूषित एव श्रेष्ठ घोड़ोंसे युक्त रथोंपर चढ़ाया, मधुर वाणीसे तृप्त किया और फिर उन्हें उनके देशोंको भेज दिया ॥ २८ ॥ इस प्रकार उदारशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्णने उन राजाओंको महान् कष्टसे मुक्त किया । अब वे जगत्पति भगवान् श्रीकृष्णके रूप, गुण और लीलाओंका चिन्तन करते हुए अपनी-अपनी राजधानीको चले गये ॥ २९ ॥ वहाँ जाकर उन लोगोंने अपनी-अपनी प्रजासे परमपुरुष भगवान् श्रीकृष्णकी अद्भुत कृपा और लीला कह सुनायी और फिर बड़ी सावधानीसे भगवान्के आज्ञानुसार वे अपना जीवन व्यतीत करने लगे ॥ ३० ॥

परीक्षित् ! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण भीमसेनके द्वारा जरासन्धका वध करवाकर भीमसेन और अर्जुनके साथ जरासन्धनन्दन सहदेवसे सम्मानित होकर इन्द्रप्रस्थके लिये चले । उन विजयी वीरोंने इन्द्रप्रस्थके पास पहुँचकर अपने-अपने शङ्ख बजाये, जिससे उनके इष्टमित्रोंको सुख और शत्रुओंको बड़ा दुःख हुआ ॥ ३१-३२ ॥ इन्द्रप्रस्थनिवासियोंका मन उस शङ्ख-ध्वनिको सुनकर खिल उठा । उन्होंने समझ लिया कि जरासन्ध मर गया और अब राजा युधिष्ठिरका राजसूय यज्ञ करनेका संकल्प एक प्रकारसे पूरा हो गया ॥ ३३ ॥ भीमसेन, अर्जुन और भगवान् श्रीकृष्णने राजा युधिष्ठिरकी वन्दना की और वह सब कृत्य कह सुनाया, जो उन्हें जरासन्धके वधके लिये करना पड़ा था ॥ ३४ ॥ धर्मराज युधिष्ठिर भगवान् श्रीकृष्णके इस परम अनुग्रहकी बात सुनकर प्रेमसे भर गये, उनके नेत्रोंसे आनन्दके आँसुओंकी बूँदें टपकने लगीं और वे उनसे कुछ भी कह न सके ॥ ३५ ॥

चौहत्तरवाँ अध्याय

भगवान्की अग्रपूजा और शिशुपालका उद्धार

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! धर्मराज युधिष्ठिर जरासन्धका वध और सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्णकी अद्भुत महिमा सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और उनसे बोले ॥ १ ॥

धर्मराज युधिष्ठिरने कहा—सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण ! त्रिलोकीके स्वामी ब्रह्मा, शङ्कर आदि और इन्द्रादि लोकपाल—सब आपकी आज्ञा पानेके लिये तरसते रहते हैं और यदि वह मिल जाती है तो बड़ी श्रद्धासे उसको शिरोधार्य करते हैं ॥ २ ॥ अनन्त ! हमलोग हैं तो अत्यन्त दीन, परन्तु मानते हैं अपनेको भूपति और नरपति । ऐसी स्थितिमें हैं तो हम दण्डके पात्र, परन्तु आप हमारी आज्ञा स्वीकार करते हैं और उसका पालन करते हैं । सर्वशक्तिमान् कमलनयन भगवान्‌के लिये यह मनुष्य-लीलाका अभिनयमात्र है ॥ ३ ॥ जैसे उदय अथवा अस्तके कारण सूर्यके तेजमें घटती या बढ़ती नहीं होती, वैसे ही किसी भी प्रकारके कर्मोंसे न तो आपका उल्लास होता है और न तो ह्रास ही । क्योंकि आप सजातीय, विजातीय और स्वगतभेदसे रहित स्वयं परब्रह्म परमात्मा हैं ॥ ४ ॥ किसीसे पराजित न होनेवाले माधव ! 'यह मैं हूँ और यह मेरा है तथा यह तू है और यह तेरा'—इस प्रकारकी विकारयुक्त भेदबुद्धि तो पशुओंकी होती है । जो आपके अनन्य भक्त हैं, उनके चित्तमें ऐसे पागलपनके विचार कभी नहीं आते । फिर आपमे तो होंगे ही कहाँसे ? (इसलिये आप जो कुछ कर रहे हैं, वह लीला-ही-लीला है) ॥ ५ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! इस प्रकार कहकर धर्मराज युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्णकी अनुमतिसे यज्ञके योग्य समय आनेपर यज्ञके कर्मोंमें निपुण वेदवादी ब्राह्मणोंको ऋत्विज, आचार्य आदिके रूपमें वरण किया ॥ ६ ॥ उनके नाम ये हैं—श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासदेव, भरद्वाज, सुमन्तु, गौतम, असित, वसिष्ठ, च्यवन, कण्व, मैत्रेय, कवष, त्रित, विश्वामित्र, वामदेव, सुमति, जैमिनि, क्रतु, पैल, पराशर, गर्ग, वैशम्पायन, अथर्वा, कश्यप, धौम्य, परशुराम, शुक्राचार्य, आसुरि, वीतिहोत्र, मधुच्छन्दा, वीरसेन और अकृतव्रण ॥ ७–९ ॥ इनके अतिरिक्त धर्मराजने द्रोणाचार्य, भीष्मपितामह, कृपाचार्य, धृतराष्ट्र और उनके दुर्योधन आदि पुत्रों और महामति विदुर आदिको भी बुलवाया ॥ १० ॥ राजन् ! राजसूय यज्ञका दर्शन करनेके लिये देशके सब राजा, उनके मन्त्री तथा कर्मचारी, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—सब-के-सब वहाँ आये ॥ ११ ॥

इसके बाद ऋत्विज ब्राह्मणोंने सोनेके हलोंसे यज्ञभूमिको जुतवाकर राजा युधिष्ठिरको शास्त्रानुसार यज्ञकी दीक्षा दी ॥ १२ ॥ प्राचीन कालमें जैसे वरुणदेवके यज्ञमें सब-के-सब यज्ञपात्र सोनेके बने हुए थे, वैसे ही युधिष्ठिरके यज्ञमें भी थे । पाण्डुनन्दन महाराज युधिष्ठिरके यज्ञमें निमन्त्रण पाकर ब्रह्माजी, शङ्करजी, इन्द्रादि लोकपाल, अपने गणोंके साथ सिद्ध और गन्धर्व, विद्याधर, नाग, मुनि, यक्ष, राक्षस, पक्षी, किन्नर, चारण, बड़े-बड़े राजा और रानियाँ—ये सभी उपस्थित हुए ॥ १३–१५ ॥ सबने बिना किसी प्रकारके कौतूहलके यह बात मान ली कि राजसूय यज्ञ करना युधिष्ठिरके योग्य ही है । क्योंकि भगवान् श्रीकृष्णके भक्तके लिये ऐसा करना कोई बहुत बड़ी बात नहीं है । उस समय देवताओंके समान तेजस्वी याजकोंने धर्मराज युधिष्ठिरसे विधिपूर्वक राजसूय यज्ञ कराया; ठीक वैसे ही, जैसे पूर्वकालमें देवताओंने वरुणसे करवाया था ॥ १६ ॥ सोमलतासे रस निकालनेके दिन महाराज युधिष्ठिरने अपने परम भाग्यवान् याजकों और यज्ञकर्मकी भूल-चूकका निरीक्षण करनेवाले सदसस्पतियोंका बड़ी सावधानीसे विधिपूर्वक पूजन किया ॥ १७ ॥

अब सभासद् लोग इस विषयपर विचार करने लगे कि सदस्योंमें सबसे पहले किसकी पूजा—अग्रपूजा होनी चाहिये । जितनी मति, उतने मत । इसलिये सर्वसम्मतिसे कोई निर्णय न हो सका । ऐसी स्थितिमें सहदेवने कहा—॥ १८ ॥ 'यदुवंशशिरोमणि भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण ही सदस्योंमे सर्वश्रेष्ठ और अग्रपूजाके पात्र हैं; क्योंकि यही समस्त देवताओंके रूपमें हैं; और देश, काल, धन आदि जितनी भी वस्तुएँ हैं, उन सबके रूपमें भी ये ही हैं ॥ १९ ॥ यह सारा विश्व श्रीकृष्णका ही रूप है । समस्त यज्ञ भी श्रीकृष्ण-स्वरूप ही हैं । भगवान् श्रीकृष्ण ही अग्नि, आहुति और मन्त्रोंके रूपमें हैं । ज्ञानमार्ग और कर्ममार्ग—ये दोनों भी श्रीकृष्णकी प्राप्तिके ही हेतु हैं ॥ २० ॥

समासदो! मैं कहाँतक वर्णन करूँ, भगवान् श्रीकृष्ण वह एकरस अद्वितीय ब्रह्म हैं, जिसमें सजातीय, विजातीय और स्वगत भेद नाममात्रका भी नहीं है। यह सम्पूर्ण जगत् उन्हींका स्वरूप है। वे अपने-आपमें ही स्थित और जन्म, अस्तित्व, वृद्धि आदि छः भाव-विकारोंसे रहित हैं। वे अपने आत्मस्वरूप सङ्कल्पसे ही जगत्‌की सृष्टि, पालन और संहार करते हैं ॥ २१ ॥ सारा जगत् श्रीकृष्णके ही अनुग्रहसे अनेकों प्रकारके कर्मका अनुष्ठान करता हुआ धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप पुरुषार्थोंका सम्पादन करता है ॥ २२ ॥ इसलिये सबसे महान् भगवान् श्रीकृष्णकी ही अग्रपूजा होनी चाहिये। इनकी पूजा करनेसे समस्त प्राणियोंकी तथा अपनी भी पूजा हो जाती है ॥ २३ ॥ जो अपने दान-धर्मको अनन्त भावसे युक्त करना चाहता हो, उसे चाहिये कि समस्त प्राणियों और पदार्थोंके अन्तरात्मा, भेदभावरहित, परम शान्त और परिपूर्ण भगवान् श्रीकृष्णको ही दान करे ॥ २४ ॥ परीक्षित्! सहदेव भगवान्‌की महिमा और उनके प्रभावको जानते थे। इतना कहकर वे चुप हो गये। उस समय धर्मराज युधिष्ठिरकी यज्ञसभामें जितने सत्पुरुष उपस्थित थे, सबने एक स्वरसे 'बहुत ठीक, बहुत ठीक' कहकर सहदेवकी बातका समर्थन किया ॥ २५ ॥ धर्मराज युधिष्ठिरने ब्राह्मणोंकी यह आज्ञा सुनकर तथा सभासदोंका अभिप्राय जानकर बड़े आनन्दसे प्रेमोद्रेकसे विह्वल होकर भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा की ॥ २६ ॥ अपनी पत्नी, भाई, मन्त्री और कुटुम्बियोंके साथ धर्मराज युधिष्ठिरने बड़े प्रेम और आनन्दसे भगवान्‌के पाँव पखारे तथा उनके चरणकमलोंका लोकपावन जल अपने सिरपर धारण किया ॥ २७ ॥ उन्होंने भगवान्‌को पीले-पीले रेशमी वस्त्र और बहुमूल्य आभूषण समर्पित किये। उस समय उनके नेत्र प्रेम और आनन्दके आँसुओंसे इस प्रकार भर गये कि वे भगवान्‌को भलीभाँति देख भी नहीं सकते थे ॥ २८ ॥ यज्ञसभामें उपस्थित सभी लोग भगवान् श्रीकृष्णको इस प्रकार पूजित, सत्कृत देखकर हाथ जोड़े हुए 'नमो नमः! जय-जय!' इस प्रकारके नारे लगाकर उन्हें नमस्कार करने लगे। उस समय आकाशसे स्वयं ही पुष्पोंकी वर्षा होने लगी ॥ २९ ॥

परीक्षित्! अपने आसनपर बैठा हुआ शिशुपाल यह सब देख-सुन रहा था। भगवान् श्रीकृष्णके गुण सुनकर उसे क्रोध हो आया और वह उठकर खड़ा हो गया। वह भरी सभामें हाथ उठाकर बड़ी असहिष्णुता किन्तु निर्भयताके साथ भगवान्‌को सुना-सुनाकर अत्यन्त कठोर बातें कहने लगा—॥ ३० ॥ 'सभासदो! श्रुतियोंका यह कहना सर्वथा सत्य है कि काल ही ईश्वर है। लाख चेष्टा करनेपर भी वह अपना काम करा ही लेता है—इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हमने देख लिया कि यहाँ बच्चों और मूर्खोंकी बातसे बड़े-बड़े वयोवृद्ध और ज्ञानवृद्धोंकी बुद्धि भी चकरा गयी है ॥ ३१ ॥ पर मैं मानता हूँ कि आपलोग अग्रपूजाके योग्य पात्रका निर्णय करनेमें सर्वथा समर्थ हैं। इसलिये सदसस्पतियो! आपलोग बालक सहदेवकी यह बात ठीक न मानें कि 'कृष्ण ही अग्रपूजाके योग्य है' ॥ ३२ ॥ यहाँ बड़े-बड़े तपस्वी विद्वान्, व्रतधारी, ज्ञानके द्वारा अपने समस्त पाप-तापोंको शान्त करनेवाले, परम ज्ञानी, परमर्षि, ब्रह्मनिष्ठ आदि उपस्थित हैं—जिनकी पूजा बड़े-बड़े लोकपाल भी करते हैं ॥ ३३ ॥ यज्ञकी भूल-चूक बतलानेवाले उन सदस्सस्पतियोंको छोड़कर यह कुलकलङ्क ग्वाला भला, अग्रपूजाका अधिकारी कैसे हो सकता है? क्या कौआ कभी यज्ञके पुरोडाशका अधिकारी हो सकता है? ॥ ३४ ॥ न इसका कोई वर्ण है और न तो आश्रम। कुल भी इसका ऊँचा नहीं है। सारे धर्मोंसे यह बाहर है। वेद और लोकमर्यादाओंका उल्लङ्घन करके मनमाना आचरण करता है। इसमें कोई गुण भी नहीं है। ऐसी स्थितिमें यह अग्रपूजाका पात्र कैसे हो सकता है? ॥ ३५ ॥ आपलोग जानते हैं कि राजा ययातिने इसके वंशको शाप दे रक्खा है। इसलिये सत्पुरुषोंने इस वंशका ही बहिष्कार कर दिया है। ये सब सर्वदा व्यर्थ मधुपानमें आसक्त रहते हैं। फिर ये अग्रपूजाके योग्य कैसे हो सकते हैं? ॥ ३६ ॥ इन सबने ब्रह्मर्षियोंके द्वारा सेवित मथुरा आदि देशोंका परित्याग कर दिया और ब्रह्मवर्चसके विरोधी (वेदचर्चारहित) समुद्रमें किला बनाकर रहने लगे। वहाँसे जब ये बाहर निकलते हैं, तो

डाकुओंकी तरह सारी प्रजाको सताते हैं' ॥ ३७ ॥ परीक्षित्! सच पूछो तो शिशुपालका सारा शुभ नष्ट हो चुका था। इसीसे उसने और भी बहुत-सी कड़ी-कड़ी बातें भगवान् श्रीकृष्णको सुनायीं। परन्तु जैसे सिंह कभी सियारकी 'हुआँ-हुआँ' पर ध्यान नहीं देता, वैसे ही भगवान् श्रीकृष्ण चुप रहे, उन्होंने उसकी बातोंका कुछ भी उत्तर न दिया ॥ ३८ ॥ परन्तु सभासदोंके लिये भगवान्‌की निन्दा सुनना असह्य था। उनमेंसे कई अपने-अपने कान बन्द करके क्रोधसे शिशुपालको गाली देते हुए बाहर चले गये ॥ ३९ ॥ परीक्षित्! जो भगवान्‌की या भगवत्परायण भक्तोंकी निन्दा सुनकर वहाँसे हट नहीं जाता, वह अपने शुभकर्मोंसे च्युत हो जाता है और उसकी अधोगति होती है ॥ ४० ॥

परीक्षित्! अब शिशुपालको मार डालनेके लिये पाण्डव, मत्स्य, केकय और सृञ्जयवंशी नरपति क्रोधित होकर हाथोंमें हथियार ले उठ खड़े हुए ॥ ४१ ॥ परन्तु शिशुपालको इससे कोई घबड़ाहट न हुई। उसने बिना किसी प्रकारका आगा-पीछा सोचे अपनी ढाल-तलवार उठा ली और वह भरी सभामें श्रीकृष्णके पक्षपाती राजाओंको ललकारने लगा ॥ ४२ ॥ उन लोगोंको लड़ते-झगड़ते देख भगवान् श्रीकृष्ण उठ खड़े हुए। उन्होंने अपने पक्षपाती राजाओंको शान्त किया और स्वयं क्रोध करके अपने ऊपर झपटते हुए शिशुपालका सिर छुरेके समान तीखी धारवाले चक्रसे काट लिया ॥ ४३ ॥ शिशुपालके मारे जानेपर वहाँ बड़ा कोलाहल मच गया। उसके अनुयायी नरपति अपने-अपने प्राण बचानेके लिये वहाँसे भाग खड़े हुए ॥ ४४ ॥ जैसे आकाशसे गिरा हुआ लूक धरतीमें समा जाता है, वैसे ही सब प्राणियोंके देखते-देखते शिशुपालके शरीरसे एक ज्योति निकलकर भगवान् श्रीकृष्णमे समा गयी ॥४५॥ परीक्षित! शिशुपालके अन्त.करणमे लगातार तीन जन्मसे वैरभावकी अभिवृद्धि हो रही थी। और इस प्रकार, वैरभावसे ही सही, ध्यान करते-करते वह तन्मय हो गया—पार्षद हो गया। सच है—मृत्युके बाद होनेवाली गतिमें भाव ही कारण है ॥ ४६ ॥ शिशुपालकी सद्गति होनेके बाद चक्रवर्ती धर्मराज युधिष्ठिरने सदस्य और ऋत्विजोंको पुष्कल दक्षिणा दी तथा सबका सत्कार करके विधिपूर्वक यज्ञान्त-स्नान—अवभृथ-स्नान किया ॥ ४७ ॥

परीक्षित्! इस प्रकार योगेश्वरेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने धर्मराज युधिष्ठिरका राजसूय यज्ञ पूर्ण किया और अपने सगे-सम्बन्धी और सुहृदोंकी प्रार्थनासे कुछ महीनोंतक वहीं रहे ॥ ४८ ॥ इसके बाद राजा युधिष्ठिरकी इच्छा न होनेपर भी सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्णने उनसे अनुमति ले ली और अपनी रानियों तथा मन्त्रियोंके साथ इन्द्रप्रस्थसे द्वारकापुरीकी यात्रा की ॥ ४९ ॥ परीक्षित्! मैं यह उपाख्यान तुम्हें बहुत विस्तारसे (सातवें स्कन्धमें) सुना चुका हूँ कि वैकुण्ठवासी जय और विजयको सनकादि ऋषियोंके शापसे बार-बार जन्म लेना पड़ा था ॥ ५० ॥ महाराज युधिष्ठिर राजसूयका यज्ञान्त-स्नान करके ब्राह्मण और क्षत्रियोंकी सभामें देवराज इन्द्रके समान शोभायमान होने लगे ॥ ५१ ॥ राजा युधिष्ठिरने देवता, मनुष्य और आकाशचारियोंका यथायोग्य सत्कार किया तथा वे भगवान् श्रीकृष्ण एवं राजसूय यज्ञकी प्रशंसा करते हुए बड़े आनन्दसे अपने-अपने लोकको चले गये ॥ ५२ ॥ परीक्षित्! सब तो सुखी हुए, परन्तु दुर्योधनसे पाण्डवोंकी यह उज्ज्वल राज्यलक्ष्मीका उत्कर्ष सहन न हुआ; क्योंकि वह स्वभावसे ही पापी, कलह-प्रेमी और कुरुकुलका नाश करनेके लिये एक महान् रोग था ॥ ५३ ॥

परीक्षित्! जो पुरुष भगवान् श्रीकृष्णकी इस लीलाका—शिशुपालवध, जरासन्धवध, बंदी राजाओंकी मुक्ति और यज्ञानुष्ठानका कीर्तन करेगा, वह समस्त पापोंसे छूट जायगा ॥ ५४ ॥

पचहत्तरवाँ अध्याय

राजसूय यज्ञकी पूर्ति और दुर्योधनका अपमान

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन्! अजातशत्रु धर्मराज युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमहोत्सवको देखकर, जितने मनुष्य, नरपति, ऋषि, मुनि और देवता आदि आये थे, वे सब आनन्दित हुए। परन्तु दुर्योधनको

बड़ा दुःख, बड़ी पीड़ा हुई, यह बात मैंने आपके मुखसे सुनी है। भगवन्! आप कृपा करके इसका कारण बतलाइये ॥ १-२ ॥

श्रीशुकदेवजी महाराजने कहा—परीक्षित्! तुम्हारे दादा युधिष्ठिर बड़े महात्मा थे। उनके प्रेमबन्धनसे बँधकर सभी बन्धु-बान्धवोंने राजसूय यज्ञमें विभिन्न सेवाकार्य स्वीकार किया था ॥ ३ ॥ भीमसेन भोजनालयकी देख-रेख करते थे। दुर्योधन कोषाध्यक्ष थे। सहदेव अभ्यागतोंके स्वागत-सत्कारमें नियुक्त थे और नकुल विविध प्रकारकी सामग्री एकत्र करनेका काम देखते थे ॥ ४ ॥ अर्जुन गुरुजनोंकी सेवा-शुश्रूषा करते थे और स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण आये हुए अतिथियोंके पाँव पखारनेका काम करते थे। देवी द्रौपदी भोजन परसनेका काम करतीं और उदारशिरोमणि कर्ण खुले हाथों दान दिया करते थे ॥ ५ ॥ परीक्षित्! इसी प्रकार सात्यकि, विकर्ण, हार्दिक्य, विदुर, भूरिश्रवा आदि बाह्लीकके पुत्र और सन्तर्दन आदि राजसूय यज्ञमें विभिन्न कर्मोंमें नियुक्त थे। वे सब-के-सब वैसा ही काम करते थे, जिससे महाराज युधिष्ठिरका प्रिय और हित हो ॥६-७॥

परीक्षित्! जब ऋत्विज, सदस्य और बहुज्ञ पुरुषोंका तथा अपने इष्ट मित्र एवं बन्धु-बान्धवोंका सुमधुर वाणी, विविध प्रकारकी पूजा-सामग्री और दक्षिणा आदिसे भलीभाँति सत्कार हो चुका तथा शिशुपाल भक्तवत्सल भगवान्के चरणोंमें समा गया, तब धर्मराज युधिष्ठिर गङ्गाजीमें यज्ञान्त-स्नान करने गये ॥ ८ ॥ उस समय जब वे अवभृथ-स्नान करने लगे, तब मृदङ्ग, शङ्ख, ढोल, नौबत, नगारे और नरसिंगे आदि तरह-तरहके बाजे बजने लगे ॥ ९ ॥ नर्तकियाँ आनन्दसे झूम-झूमकर नाचने लगीं। झुंड-के-झुंड गवैये गाने लगे और वीणा, बाँसुरी तथा झाँझ-मँजीरे बजने लगे। इनकी तुमुल ध्वनि सारे आकाशमें गूँज गयी ॥ १० ॥ सोनेके हार पहने हुए यदु, सृञ्जय, कम्बोज, कुरु, केकय और कोसल देशके नरपति रंग-बिरंगी ध्वजा-पताकाओंसे युक्त और खूब सजे-धजे गजराजों, रथों, घोड़ों तथा सुसज्जित वीर सैनिकोंके साथ महाराज युधिष्ठिरको आगे करके पृथ्वीको कँपाते हुए चल रहे थे ॥ ११-१२ ॥ यज्ञके सदस्य, ऋत्विज और बहुत-से श्रेष्ठ ब्राह्मण वेद-मन्त्रोंका ऊँचे स्वरसे उच्चारण करते हुए चले। देवता, ऋषि, पितर, गन्धर्व आकाशसे पुष्पोंकी वर्षा करते हुए उनकी स्तुति करने लगे ॥ १३ ॥ इन्द्रप्रस्थके नर-नारी इत्र-फुलेल, पुष्पोंके हार, रंग-बिरंगे वस्त्र और बहुमूल्य आभूषणोंसे सज-धजकर एक दूसरेपर जल, तेल, दूध, मक्खन आदि रस डालकर भिगो देते, एक-दूसरेके शरीरमें लगा देते और इस प्रकार क्रीडा करते हुए चलने लगे ॥ १४ ॥ वाराङ्गनाएँ पुरुषोंको तेल, गोरस, सुगन्धित जल, हल्दी और गाढ़ी केसर मल देतीं और पुरुष भी उन्हें उन्हीं वस्तुओंसे सराबोर कर देते ॥ १५ ॥

उस समय इस उत्सवको देखनेके लिये जैसे उत्तम-उत्तम विमानोंपर चढ़कर आकाशमें बहुत-सी देवियाँ आयी थीं, वैसे ही सैनिकोंके द्वारा सुरक्षित इन्द्रप्रस्थकी बहुत-सी राजमहिलाएँ भी सुन्दर-सुन्दर पालकियोंपर सवार होकर आयी थीं। पाण्डवोंके ममेरे भाई श्रीकृष्ण और उनके सखा उन रानियोंके ऊपर तरह-तरहके रंग आदि डाल रहे थे। इससे रानियोंके मुख लजीली मुसकराहटसे खिल उठते थे और उनकी बड़ी शोभा होती थी ॥ १६ ॥ उन लोगोंके रंग आदि डालनेसे रानियोंके वस्त्र भीग गये थे। इससे उनके शरीरके अङ्ग-प्रत्यङ्ग—वक्षःस्थल, जंघा और कटिभाग कुछ-कुछ दीख-से रहे थे। वे भी पिचकारी और पात्रोंमें रंग भर-भरकर अपने देवरों और उनके सखाओंपर उड़ेल रही थीं। प्रेमभरी उत्सुकताके कारण उनकी चोटियों और जूड़ोंके बन्धन ढीले पड़ गये थे तथा उनमें गुँथे हुए फूल गिरते जा रहे थे। परीक्षित्! उनका यह रुचिर और पवित्र विहार देखकर मलिन अन्तःकरणवाले पुरुषोंका चित्त चञ्चल हो उठता था, काम-मोहित हो जाता था ॥ १७ ॥

चक्रवर्ती राजा युधिष्ठिर द्रौपदी आदि रानियोंके साथ सुन्दर घोड़ोंसे युक्त एवं सोनेके हारोंसे सुसज्जित रथपर सवार होकर ऐसे शोभायमान हो रहे थे, मानो स्वयं राजसूय यज्ञ प्रयाज आदि क्रियाओंके साथ मूर्तिमान् होकर प्रकट हो गया हो ॥ १८ ॥ ऋत्विजोंने पत्नी-संयाज (एक प्रकारका यज्ञकर्म) तथा यज्ञान्त-स्नान-

सम्बन्धी कर्म करवाकर द्रौपदीके साथ सम्राट् युधिष्ठिर-को आचमन करवाया और इसके बाद गङ्गास्नान ॥ १९ ॥ उस समय मनुष्योंकी दुन्दुभियोंके साथ ही देवताओंकी दुन्दुभियाँ भी बजने लगीं। बड़े-बड़े देवता, ऋषि-मुनि, पितर और मनुष्य पुष्पोंकी वर्षा करने लगे ॥ २० ॥ महाराज युधिष्ठिरके स्नान कर लेनेके बाद सभी वर्णों एवं आश्रमोंके लोगोंने गङ्गाजीमें स्नान किया; क्योंकि इस स्नानसे बड़े-से-बड़ा महापापी भी अपनी पाप-राशिसे तत्काल मुक्त हो जाता है ॥ २१ ॥ तदनन्तर धर्मराज युधिष्ठिरने नयी रेशमी धोती और दुपट्टा धारण किया तथा विविध प्रकारके आभूषणोंसे अपनेको सजा लिया। फिर ऋत्विज, सदस्य, ब्राह्मण आदिको वस्त्राभूषण दे-देकर उनकी पूजा की ॥ २२ ॥ महाराज युधिष्ठिर भगवत्परायण थे, उन्हें सबमे भगवान्के ही दर्शन होते। इसलिये वे भाई-बन्धु, कुटुम्बी, नरपति, इष्ट-मित्र, हितैषी और सभी लोगोंकी बार-बार पूजा करते ॥ २३ ॥ उस समय सभी लोग जड़ाऊ कुण्डल, पुष्पोंके हार, पगड़ी, लंबी अँगरखी, दुपट्टा तथा मणियोंके बहुमूल्य हार पहनकर देवताओंके समान शोभायमान हो रहे थे। स्त्रियोंके मुखोंकी भी दोनों कानोंके कर्णफूल और घुँघराली अलकोंसे बड़ी शोभा हो रही थी तथा उनके कटिभागमें सोनेकी करधनियाँ तो बहुत ही भली मालूम हो रही थीं ॥ २४ ॥

परीक्षित्! राजसूय यज्ञमे जितने लोग आये थे—परम शीलवान् ऋत्विज, ब्रह्मवादी सदस्य, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, राजा, देवता, ऋषि, मुनि, पितर तथा अन्य प्राणी और अपने अनुयायियोंके साथ लोकपाल—इन सबकी पूजा महाराज युधिष्ठिरने की। इसके बाद वे लोग धर्मराजसे अनुमति लेकर अपने-अपने निवासस्थान-को चले गये ॥ २५-२६ ॥ परीक्षित्! जैसे मनुष्य अमृत-पान करते-करते कभी तृप्त नहीं हो सकता, वैसे ही सब लोग भगवद्भक्त राजर्षि युधिष्ठिरके राजसूय महायज्ञ-की प्रशंसा करते-करते तृप्त न होते थे ॥ २७ ॥ इसके बाद धर्मराज युधिष्ठिरने बड़े प्रेमसे अपने हितैषी सुहृद्-सम्बन्धियों, भाई-बन्धुओं और भगवान् श्रीकृष्णको भी रोक लिया, क्योंकि उन्हें उनके बिछोहकी कल्पनासे ही बड़ा दुःख होता था ॥ २८ ॥ परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णने यदुवंशी वीर साम्ब आदिको द्वारकापुरी भेज दिया और स्वयं राजा युधिष्ठिरकी अभिलाषा पूर्ण करनेके लिये, उन्हें आनन्द देनेके लिये वहीं रह गये ॥ २९ ॥ इस प्रकार धर्मनन्दन महाराज युधिष्ठिर मनोरथोंके महान् समुद्रको, जिसे पार करना अत्यन्त कठिन है, भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे अनायास ही पार कर गये और उनकी सारी चिन्ता मिट गयी ॥ ३० ॥

एक दिनकी बात है, भगवान्के परमप्रेमी महाराज युधिष्ठिरके अन्तःपुरकी सौन्दर्य-सम्पत्ति और राजसूय यज्ञद्वारा प्राप्त महत्त्वको देखकर दुर्योधनका मन डाहसे जलने लगा ॥ ३१ ॥ परीक्षित्! पाण्डवोंके लिये मय दानवने जो महल बना दिये थे, उनमें नरपति, दैत्य-पति और सुरपतियोंकी विविध विभूतियाँ तथा श्रेष्ठ सौन्दर्य स्थान-स्थानपर शोभायमान था। उनके द्वारा राजरानी द्रौपदी अपने पतियोंकी सेवा करती थीं। उस राजभवनमें उन दिनों भगवान् श्रीकृष्णकी सहस्रों रानियाँ निवास करती थीं। नितम्बके भारी भारके कारण जब वे उस राजभवनमें धीरे-धीरे चलने लगती थीं, तब उनके पायजेबोंकी झनकार चारों ओर फैल जाती थी। उनका कटिभाग बहुत ही सुन्दर था तथा उनके वक्षःस्थलपर लगी हुई केसरकी लालिमासे मोतियोंके सुन्दर श्वेत हार भी लाल-लाल जान पड़ते थे। कुण्डलोंकी और घुँघराली अलकोंकी चञ्चलतासे उनके मुखकी शोभा और भी बढ़ जाती थी। यह सब देखकर दुर्योधनके हृदयमें बड़ी जलन होती। परीक्षित्! सच पूछो तो दुर्योधन-का चित्त द्रौपदीमें आसक्त था और यही उसकी जलन-का मुख्य कारण भी था ॥ ३२-३३ ॥

एक दिन राजाधिराज महाराज युधिष्ठिर अपने भाइयों, सम्बन्धियों एवं अपने नयनोंके तारे परम हितैषी भगवान् श्रीकृष्णके साथ मयदानवकी बनायी सभामें स्वर्णसिंहा-सनपर देवराज इन्द्रके समान विराजमान थे। उनकी भोग-सामग्री, उनकी राज्यलक्ष्मी ब्रह्माजीके ऐश्वर्यके समान थी। वंदीजन उनकी स्तुति कर रहे थे ॥ ३४-३५ ॥ उसी समय अभिमानी दुर्योधन अपने दुःशासन आदि भाइयोंके साथ वहाँ आया। उसके सिरपर मुकुट, गलेमें माला और हाथमें तलवार थी। परीक्षित्! वह क्रोधवश द्वारपालों और सेवकोंको झिड़क रहा था ॥ ३६ ॥ उस सभामें मयदानवने ऐसी माया फैला रक्खी थी कि

दुर्योधनने उससे मोहित हो स्थलको जल समझकर अपने वस्त्र समेट लिये और जलको स्थल समझकर वह उसमें गिर पड़ा ॥ ३७ ॥ उसको गिरते देखकर भीमसेन, राजरानियाँ तथा दूसरे नरपति हँसने लगे। यद्यपि युधिष्ठिर उन्हें ऐसा करनेसे रोक रहे थे, परन्तु प्यारे परीक्षित्! उन्हें इशारेसे श्रीकृष्णका अनुमोदन प्राप्त हो चुका था ॥ ३८ ॥ इससे दुर्योधन लज्जित हो गया, उसका रोम-रोम क्रोधसे जलने लगा। अब वह अपना मुँह लटकाकर चुपचाप सभाभवनसे निकलकर हस्तिनापुर चला गया। इस घटनाको देखकर सत्पुरुषोंमें हाहाकार मच गया और धर्मराज युधिष्ठिरका मन भी कुछ खिन्न-सा हो गया। परीक्षित्! यह सब होनेपर भी भगवान् श्रीकृष्ण चुप थे। उनकी इच्छा थी कि किसी प्रकार पृथ्वीका भार उतर जाय; और सच पूछो, तो उन्हींकी दृष्टिसे दुर्योधनको वह भ्रम हुआ था ॥ ३९ ॥ परीक्षित्! तुमने मुझसे यह पूछा था कि उस महान् राजसूय-यज्ञमें दुर्योधनको डाह क्यों हुआ? जलन क्यों हुई? सो वह सब मैंने तुम्हें बतला दिया ॥ ४० ॥

छिहत्तरवाँ अध्याय

शाल्वके साथ यादवोंका युद्ध

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! अब मनुष्य-की-सी लीला करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णका एक और भी अद्भुत चरित्र सुनो। इसमें यह बताया जायगा कि सौभनामक विमानका अधिपति शाल्व किस प्रकार भगवान्‌के हाथसे मारा गया ॥ १ ॥ शाल्व शिशुपालका सखा था और रुक्मिणीके विवाहके अवसरपर बारातमें शिशुपालकी ओरसे आया हुआ था। उस समय यदुवंशियोंने युद्धमें जरासन्ध आदिके साथ-साथ शाल्वको भी जीत लिया था ॥ २ ॥ उस दिन सब राजाओंके सामने शाल्वने यह प्रतिज्ञा की थी कि 'मैं पृथ्वीसे यदुवंशियोंको मिटाकर छोड़ूँगा, सब लोग मेरा बल-पौरुष देखना' ॥ ३ ॥ परीक्षित्! मूढ शाल्वने इस प्रकार प्रतिज्ञा करके देवाधिदेव भगवान् पशुपतिकी आराधना प्रारम्भ की। वह उन दिनों दिनमें केवल एक बार मुट्ठीभर राख फाँक लिया करता था ॥ ४ ॥ यों तो पार्वतीपति भगवान् शङ्कर आशुतोष हैं, औढरदानी हैं, फिर भी वे शाल्वका घोर सङ्कल्प जानकर एक वर्षके बाद प्रसन्न हुए। उन्होंने अपने शरणागत शाल्वसे वर माँगनेके लिये कहा ॥ ५ ॥ उस समय शाल्वने यह वर माँगा कि 'मुझे आप एक ऐसा विमान दीजिये जो देवता, असुर, मनुष्य, गन्धर्व, नाग और राक्षसोंसे तोड़ा न जा सके, जहाँ इच्छा हो, वहीं चला जाय और यदुवंशियोंके लिये अत्यन्त भयङ्कर हो' ॥ ६ ॥ भगवान् शङ्करने कह दिया 'तथास्तु!' इसके बाद उनकी आज्ञासे विपक्षियोंके नगर जीतनेवाले मय दानवने लोहेका सौभनामक विमान बनाया और शाल्वको दे दिया ॥ ७ ॥ वह विमान क्या था एक नगर ही था। वह इतना अन्धकारमय था कि उसे देखना या पकड़ना अत्यन्त कठिन था। चलानेवाला उसे जहाँ ले जाना चाहता, वहीं वह उसके इच्छा करते ही चला जाता था। शाल्वने वह विमान प्राप्त करके द्वारकापर चढ़ाई कर दी, क्योंकि वह वृष्णिवंशी यादवोंद्वारा किये हुए वैरको सदा स्मरण रखता था ॥ ८ ॥

परीक्षित्! शाल्वने अपनी बहुत बड़ी सेनासे द्वारकाको चारों ओरसे घेर लिया और फिर उसके फल-फूलसे लदे हुए उपवन और उद्यानोंको उजाड़ने और नगरद्वारों, फाटकों, राजमहलों, अटारियों, दीवारों और नागरिकोंके मनोविनोदके स्थानोंको नष्ट-भ्रष्ट करने लगा। उस श्रेष्ठ विमानसे शस्त्रोंकी झड़ी लग गयी ॥९-१०॥ बड़ी-बड़ी चट्टानें, वृक्ष, वज्र, सर्प और ओले बरसने लगे। बड़े जोरका बवंडर उठ खड़ा हुआ। चारों ओर धूल-ही-धूल छा गयी ॥ ११ ॥ परीक्षित्! प्राचीन कालमें जैसे त्रिपुरासुरने सारी पृथ्वीको पीड़ित कर रक्खा था, वैसे ही शाल्वके विमानने द्वारकापुरीको अत्यन्त पीडित कर दिया। वहाँके नर-नारियोंको कहीं एक क्षणके लिये भी शान्ति न मिलती थी ॥ १२ ॥

परमयशस्वी वीर भगवान् प्रद्युम्नने देखा—हमारी प्रजाको बड़ा कष्ट हो रहा है, तब उन्होंने रथपर सवार होकर सबको ढाढ़स बँधाया और कहा कि 'डरो मत' ॥१३॥ उनके पीछे-पीछे सात्यकि, चारुदेष्ण, साम्ब, भाइयोंके साथ अक्रूर, कृतवर्मा, भानुविन्द, गद, शुक, सारण आदि बहुत-से वीर बड़े-बड़े धनुष धारण करके निकले। ये सब-के-सब महारथी थे। सबने कवच पहन रक्खे थे और सबकी रक्षाके लिये बहुत-से रथ, हाथी, घोड़े तथा पैदल सेना साथ-साथ चल रही थी ॥ १४-१५॥ इसके बाद प्राचीन कालमें जैसे देवताओंके साथ असुरोंका घमासान युद्ध हुआ था, वैसे ही शाल्वके सैनिकों और यदुवंशियोंका युद्ध होने लगा। उसे देखकर लोगोंके रोंगटे खड़े हो जाते थे ॥ १६ ॥ प्रद्युम्नजीने अपने दिव्य अस्त्रोंसे क्षणभरमें ही सौभपति शाल्वकी सारी माया काट डाली; ठीक वैसे ही, जैसे सूर्य अपनी प्रखर किरणोंसे रात्रिका अन्धकार मिटा देते हैं ॥ १७ ॥ प्रद्युम्नजीके बाणोंमें सोनेके पंख एवं लोहेके फल लगे हुए थे। उनकी गाँठें जान नहीं पड़ती थीं। उन्होंने ऐसे ही पचीस बाणोंसे शाल्वके सेनापतिको घायल कर दिया ॥ १८ ॥ परममनस्वी प्रद्युम्नजीने सेनापतिके साथ ही शाल्वको भी सौ बाण मारे, फिर प्रत्येक सैनिकको एक-एक और सारथियोंको दस-दस तथा वाहनोंको तीन-तीन बाणोंसे घायल किया ॥ १९ ॥ महामना प्रद्युम्नजीके इस अद्भुत और महान् कर्मको देखकर अपने एवं पराये—सभी सैनिक उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ २० ॥ परीक्षित्! मय दानवका बनाया हुआ शाल्वका वह विमान अत्यन्त मायामय था। वह इतना विचित्र था कि कभी अनेक रूपोंमे दीखता तो कभी एक रूपमें, कभी दीखता तो कभी न भी दीखता। यदुवंशियोंको इस बातका पता ही न चलता कि वह इस समय कहाँ है ॥ २१ ॥ वह कभी पृथ्वीपर आ जाता तो कभी आकाशमें उड़ने लगता। कभी पहाड़की चोटीपर चढ़ जाता, तो कभी जलमें तैरने लगता। वह अलात-चक्रके समान—मानो कोई दुमुँही लुकारियोंकी बनेठी भाँज रहा हो—घूमता रहता था, एक क्षणके लिये भी कहीं ठहरता न था ॥ २२ ॥ शाल्व अपने विमान और सैनिकोंके साथ जहाँ-जहाँ दिखायी पड़ता, वहीं-वहीं यदुवंशी सेनापति बाणोंकी झड़ी लगा देते थे ॥ २३ ॥ उनके बाण सूर्य और अग्निके समान जलते हुए तथा विषैले साँपकी तरह असह्य होते थे। उनसे शाल्वका नगराकार विमान और सेना अत्यन्त पीड़ित हो गयी, यहाँतक कि यदुवंशियोंके बाणोंसे शाल्व स्वयं मूर्छित हो गया ॥ २४ ॥

परीक्षित्! शाल्वके सेनापतियोंने भी यदुवंशियोंपर खूब शस्त्रोंकी वर्षा कर रक्खी थी, इससे वे अत्यन्त पीड़ित थे; परन्तु उन्होंने अपना-अपना मोर्चा छोड़ा नहीं। वे सोचते थे कि मरेंगे तो परलोक बनेगा और जीतेंगे तो विजयकी प्राप्ति होगी ॥ २५ ॥ परीक्षित्! शाल्वके मन्त्रीका नाम था धुमान्, जिसे पहले प्रद्युम्नजीने पचीस बाण मारे थे। वह बहुत बली था। उसने झपटकर प्रद्युम्नजीपर अपनी फौलादी गदासे बड़े जोरसे प्रहार किया और 'मार लिया, मार लिया' कहकर गरजने लगा ॥ २६ ॥ परीक्षित्! गदाकी चोटसे शत्रुदमन प्रद्युम्नजीका वक्षःस्थल फट-सा गया। दारुकका पुत्र उनका रथ हाँक रहा था। वह सारथिधर्मके अनुसार उन्हें रणभूमिसे हटा ले गया ॥ २७ ॥ दो घड़ीमे प्रद्युम्नजीकी मूर्छा टूटी। तब उन्होंने सारथीसे कहा—'सारथे! तूने यह बहुत बुरा किया। हाय, हाय! तू मुझे रणभूमिसे हटा लाया? ॥ २८ ॥ सूत! हमने ऐसा कभी नहीं सुना कि हमारे वंशका कोई भी वीर कभी रणभूमि छोड़कर अलग हट गया हो! यह कलङ्कका टीका तो केवल मेरे ही सिर लगा। सचमुच सूत! तू कायर है, नपुंसक है ॥ २९ ॥ बतला तो सही, अब मैं अपने ताऊ बलरामजी और पिता श्रीकृष्णके सामने जाकर क्या कहूँगा? अब तो सब लोग यही कहेंगे न, कि मैं युद्धसे भग गया? उनके पूछनेपर मैं अपने अनुरूप क्या उत्तर दे सकूँगा ॥३०॥ मेरी भाभियाँ हँसती हुई मुझसे साफ-साफ पूछेंगी कि 'कहो, वीर! तुम नपुंसक कैसे हो गये? दूसरोंने युद्धमें तुम्हें नीचा कैसे दिखा दिया?' सूत! अवश्य ही तुमने मुझे रणभूमिसे भगाकर अक्षम्य अपराध किया है!' ॥३१॥

सारथीने कहा—आयुष्मन्! मैंने जो कुछ किया

है, सारथीका धर्म समझकर ही किया है। मेरे समर्थ स्वामी! युद्धका ऐसा धर्म है कि सङ्कट पड़नेपर सारथी रथीकी रक्षा कर ले और रथी सारथीकी ॥ ३२ ॥ इस धर्मको समझते हुए ही मैंने आपको रणभूमिसे हटाया है। शत्रुने आपपर गदाका प्रहार किया था, जिससे आप मूर्च्छित हो गये थे, बड़े सङ्कटमें थे; इसीसे मुझे ऐसा करना पड़ा ॥ ३३ ॥

सतहत्तरवाँ अध्याय

शाल्व-उद्धार

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! अब प्रद्युम्नजीने हाथ-मुँह धोकर, कवच पहन धनुष धारण किया और सारथीसे कहा कि 'मुझे वीर द्युमान्‌के पास फिरसे ले चलो' ॥१॥ उस समय द्युमान् यादवसेनाको तहस-नहस कर रहा था। प्रद्युम्नजीने उसके पास पहुँचकर उसे ऐसा करनेसे रोक दिया और मुसकराकर आठ बाण मारे ॥२॥ चार बाणोंसे उसके चार घोड़े और एक-एक बाणसे सारथी, धनुष, ध्वजा और उसका सिर काट डाला ॥ ३ ॥ इधर गद, सात्यकि, साम्ब आदि यदुवंशी वीर भी शाल्वकी सेनाका संहार करने लगे। सौभ विमानपर चढ़े हुए सैनिकोंकी गरदनें कट जातीं और वे समुद्रमें गिर पड़ते ॥ ४ ॥ इस प्रकार यदुवंशी और शाल्वके सैनिक एक-दूसरेपर प्रहार करते रहे। बड़ा ही घमासान और भयङ्कर युद्ध हुआ और वह लगातार सत्ताईस दिनोंतक चलता रहा ॥ ५ ॥

उन दिनों भगवान् श्रीकृष्ण धर्मराज युधिष्ठिरके बुलानेसे इन्द्रप्रस्थ गये हुए थे। राजसूय यज्ञ हो चुका था और शिशुपालकी भी मृत्यु हो गयी थी ॥६॥ वहाँ भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि बड़े भयङ्कर अपशकुन हो रहे हैं। तब उन्होंने कुरुवंशके बड़े-बूढ़ों, ऋषि-मुनियों, कुन्ती और पाण्डवोंसे अनुमति लेकर द्वारकाके लिये प्रस्थान किया ॥ ७ ॥ वे मन-ही-मन कहने लगे कि 'मैं पूज्य भाई बलरामजीके साथ यहाँ चला आया। अब शिशुपालके पक्षपाती क्षत्रिय अवश्य ही द्वारकापर आक्रमण कर रहे होंगे' ॥ ८ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने द्वारकामें पहुँचकर देखा कि सचमुच यादवोंपर बड़ी विपत्ति आयी है। तब उन्होंने बलरामजीको नगरकी रक्षाके लिये नियुक्त कर दिया और सौभपति शाल्वको देखकर अपने सारथी दारुकसे कहा— ॥ ९ ॥ 'दारुक! तुम शीघ्र-से-शीघ्र मेरा रथ शाल्वके पास ले चलो। देखो, यह शाल्व बड़ा मायावी है, तो भी तुम तनिक भी भय न करना' ॥ १० ॥ भगवान्‌की ऐसी आज्ञा पाकर दारुक रथपर चढ़ गया और उसे शाल्वकी ओर ले चला। भगवान्‌के रथकी ध्वजा गरुड-चिह्नसे चिह्नित थी। उसे देखकर यदुवंशियों तथा शाल्वकी सेनाके लोगोंने युद्धभूमिमें प्रवेश करते ही भगवान्‌को पहचान लिया ॥ ११ ॥ परीक्षित्! अवतक शाल्वकी सारी सेना प्रायः नष्ट हो चुकी थी। भगवान् श्रीकृष्णको देखते ही उसने उनके सारथीपर एक बहुत बड़ी शक्ति चलायी। वह शक्ति बड़ा भयङ्कर शब्द करती हुई आकाशमें बड़े वेगसे चल रही थी और बहुत बड़े लूकके समान जान पड़ती थी। उसके प्रकाशसे दिशाएँ चमक उठी थीं। उसे सारथीकी ओर आते देख भगवान् श्रीकृष्णने अपने बाणोंसे उसके सैकड़ों टुकड़े कर दिये ॥१२-१३॥ इसके बाद उन्होंने शाल्वको सोलह बाण मारे और उसके विमानको भी, जो आकाशमें घूम रहा था, असंख्य बाणोंसे चलनी कर दिया—ठीक वैसे ही जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे आकाशको भर देता है ॥ १४ ॥ शाल्वने भगवान् श्रीकृष्णकी बायीं भुजामें, जिसमें शार्ङ्गधनुष शोभायमान था, बाण मारा, इससे शार्ङ्गधनुष भगवान्‌के हाथसे छूटकर गिर पड़ा। यह एक अद्भुत घटना घट गयी ॥ १५ ॥ जो लोग आकाश या पृथ्वीसे यह युद्ध देख रहे थे, वे बड़े जोरसे 'हाय-हाय' पुकार उठे। तब शाल्वने गरजकर भगवान् श्रीकृष्णसे यों कहा— ॥ १६ ॥ 'मूढ़! तूने हमलोगोंके देखते-देखते हमारे भाई और सखा शिशुपालकी पत्नीको हर लिया तथा भरी सभामें, जब कि हमारा मित्र शिशुपाल असावधान था, तूने उसे मार डाला ॥१७॥

मैं जानता हूँ कि तू अपनेको अजेय मानता है। यदि मेरे सामने ठहर गया तो मैं आज तुझे अपने तीखे बाणोंसे वहाँ पहुँचा दूँगा, जहाँसे फिर कोई लौटकर नहीं आता' ॥ १८ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'रे मन्द ! तू वृथा ही बहक रहा है। तुझे पता नहीं कि तेरे सिरपर मौत सवार है। शूरवीर व्यर्थकी बकवाद नहीं करते, वे अपनी वीरता ही दिखलाया करते हैं' ॥ १९ ॥ इस प्रकार कहकर भगवान् श्रीकृष्णने क्रोधित हो अपनी अत्यन्त वेगवती और भयङ्कर गदासे शाल्वके जत्रुस्थान (हँसली) पर प्रहार किया। इससे वह खून उगलता हुआ काँपने लगा ॥ २० ॥ इधर जब गदा भगवान्के पास लौट आयी, तब शाल्व अन्तर्धान हो गया। इसके बाद दो घड़ी बीतते-बीतते एक मनुष्यने भगवान्के पास पहुँचकर उनको सिर झुकाकर प्रणाम किया और वह रोता हुआ बोला—'मुझे आपकी माता देवकीजीने भेजा है ॥ २१ ॥ उन्होंने कहा है कि अपने पिताके प्रति अत्यन्त प्रेम रखनेवाले महाबाहु श्रीकृष्ण ! शाल्व तुम्हारे पिताको उसी प्रकार बाँधकर ले गया है, जैसे कोई कसाई पशुको बाँधकर ले जाय !' ॥२२॥ यह अप्रिय समाचार सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण मनुष्य-से बन गये। उनके मुँहपर कुछ उदासी छा गयी। वे साधारण पुरुषके समान अत्यन्त करुणा और स्नेहसे कहने लगे—॥ २३ ॥ 'अहो ! मेरे भाई बलरामजीको तो देवता अथवा असुर कोई नहीं जीत सकता। वे सदा-सर्वदा सावधान रहते हैं। शाल्वका बल-पौरुष तो अत्यन्त अल्प है। फिर भी इसने उन्हें कैसे जीत लिया और कैसे मेरे पिताजीको बाँधकर ले गया ? सचमुच, प्रारब्ध बहुत बलवान् है' ॥ २४ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण इस प्रकार कह ही रहे थे कि शाल्व वसुदेवजीके समान एक मायारचित मनुष्य लेकर वहाँ आ पहुँचा और श्रीकृष्णसे कहने लगा—॥ २५ ॥ 'मूर्ख ! देख; यही तुझे पैदा करनेवाला तेरा बाप है, जिसके लिये तू जी रहा है। तेरे देखते-देखते मैं इसका काम तमाम करता हूँ। कुछ बल-पौरुष हो, तो इसे बचा' ॥२६॥ मायावी शाल्वने इस प्रकार भगवान्को फटकार कर मायारचित वसुदेवका सिर तलवारसे काट लिया और उसे लेकर अपने आकाशस्थ विमानपर जा बैठा ॥ २७ ॥ परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्ण स्वयंसिद्ध ज्ञानस्वरूप और महानुभाव हैं। वे यह घटना देखकर दो घड़ीके लिये अपने स्वजन वसुदेवजीके प्रति अत्यन्त प्रेम होनेके कारण साधारण पुरुषोंके समान शोकमें डूब गये। परन्तु फिर वे जान गये कि यह तो शाल्वकी फैलायी हुई आसुरी माया ही है, जो उसे मय दानवने बतलायी थी ॥ २८ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने युद्धभूमिमें सचेत होकर देखा—न वहाँ दूत है और न पिताका वह शरीर; जैसे स्वप्नमें एक दृश्य दीखकर लुप्त हो गया हो। उधर देखा तो शाल्व विमानपर चढ़कर आकाशमें विचर रहा है। तब वे उसका वध करनेके लिये उद्यत हो गये ॥ २९ ॥

प्रिय परीक्षित् ! इस प्रकारकी बात पूर्वापरका विचार न करनेवाले कोई-कोई ऋषि कहते हैं। अवश्य ही वे इस बातको भूल जाते हैं कि श्रीकृष्णके सम्बन्धमें ऐसा कहना उन्हींके वचनोंके विपरीत है ॥ ३० ॥ कहाँ अज्ञानियोंमें रहनेवाले शोक, मोह, स्नेह और भय तथा कहाँ वे परिपूर्ण भगवान् श्रीकृष्ण—जिनका ज्ञान, विज्ञान और ऐश्वर्य अखण्डित है, एकरस है। (भला, उनमें वैसे भावोंकी सम्भावना ही कहाँ है ?) ॥ ३१ ॥ बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी सेवा करके आत्मविद्याका भलीभाँति सम्पादन करते हैं और उसके द्वारा शरीर आदिमें आत्मबुद्धिरूप अनादि अज्ञानको मिटा डालते हैं तथा आत्मसम्बन्धी अनन्त ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं। उन संतोंके परम गतिस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णमें भला, मोह कैसे हो सकता है ? ॥ ३२ ॥

अब शाल्व भगवान् श्रीकृष्णपर बड़े उत्साह और वेगसे शस्त्रोंकी वर्षा करने लगा था। अमोघशक्ति भगवान् श्रीकृष्णने भी अपने बाणोंसे शाल्वको घायल कर दिया और उसके कवच, धनुष तथा सिरकी मणिको छिन्न-भिन्न कर दिया। साथ ही गदाकी चोटसे उसके विमानको भी जर्जर कर दिया ॥ ३३ ॥ परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णके हाथोंसे चलायी हुई गदासे वह विमान चूर-चूर होकर समुद्रमें गिर पड़ा। गिरनेके

पहले ही शाल्व हाथमें गदा लेकर धरतीपर कूद पड़ा और सावधान होकर बड़े वेगसे भगवान् श्रीकृष्णकी ओर झपटा ॥ ३४ ॥ शाल्वको आक्रमण करते देख उन्होंने भालेसे गदाके साथ उसका हाथ काट गिराया। फिर उसे मार डालनेके लिये उन्होंने प्रलयकालीन सूर्यके समान तेजस्वी और अत्यन्त अद्भुत सुदर्शन चक्र धारण कर लिया। उस समय उनकी ऐसी शोभा हो रही थी, मानो सूर्यके साथ उदयाचल शोभायमान हो ॥ ३५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने उस चक्रसे परम मायावी शाल्वका कुण्डल-किरीटसहित सिर धड़से अलग कर दिया; ठीक वैसे ही, जैसे इन्द्रने वज्रसे वृत्रासुरका सिर काट डाला था। उस समय शाल्वके सैनिक अत्यन्त दुःखसे 'हाय-हाय' चिल्ला उठे ॥ ३६ ॥ परीक्षित्! जब पापी शाल्व मर गया और उसका विमान भी गदाके प्रहारसे चूर-चूर हो गया, तब देवतालोग आकाशमें दुन्दुभियाँ बजाने लगे। ठीक इसी समय दन्तवक्त्र अपने मित्र शिशुपाल आदिका बदला लेनेके लिये अत्यन्त क्रोधित होकर आ पहुँचा ॥ ३७ ॥

अठहत्तरवाँ अध्याय

दन्तवक्त्र और विदूरथका उद्धार तथा तीर्थयात्रामें बलरामजीके हाथसे सूतजीका वध

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! शिशुपाल, शाल्व और पौण्ड्रकके मारे जानेपर उनकी मित्रताका ऋण चुकानेके लिये मूर्ख दन्तवक्त्र अकेला ही पैदल युद्धभूमिमें आ धमका। वह क्रोधके मारे आग-बबूला हो रहा था। शस्त्रके नामपर उसके हाथमें एकमात्र गदा थी। परन्तु परीक्षित्! लोगोंने देखा, वह इतना शक्तिशाली है कि उसके पैरोंकी धमकसे पृथ्वी हिल रही है ॥ १-२ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने जब उसे इस प्रकार आते देखा, तब झटपट हाथमें गदा लेकर वे रथसे कूद पड़े। फिर जैसे समुद्रके तटकी भूमि उसके ज्वार-भाटेको आगे बढ़नेसे रोक देती है, वैसे ही उन्होंने उसे रोक दिया ॥ ३ ॥ घमंडके नशेमें चूर करूषनरेश दन्तवक्त्रने गदा तानकर भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—'बड़े सौभाग्य और आनन्दकी बात है कि आज तुम मेरी आँखोंके सामने पड़ गये ॥ ४ ॥ कृष्ण! तुम मेरे मामाके लड़के हो, इसलिये तुम्हें मारना तो नहीं चाहिये; परन्तु एक तो तुमने मेरे मित्रोंको मार डाला है और दूसरे मुझे भी मारना चाहते हो। इसलिये मतिमन्द! आज मैं तुम्हें अपनी वज्र-कर्कश गदासे चूर-चूर कर डालूँगा ॥ ५ ॥ मूर्ख! वैसे तो तुम मेरे सम्बन्धी हो, फिर भी हो शत्रु ही, जैसे अपने ही शरीरमें रहनेवाला कोई रोग हो। मैं अपने मित्रोंसे बड़ा प्रेम करता हूँ, उनका मुझपर ऋण है। अब तुम्हें मारकर ही मैं उनके ऋणसे उऋण हो सकता हूँ ॥ ६ ॥ जैसे महावत अङ्कुशसे हाथीको घायल करता है, वैसे ही दन्तवक्त्रने अपनी कड़वी बातोंसे श्रीकृष्णको चोट पहुँचानेकी चेष्टा की और फिर वह उनके सिरपर बड़े वेगसे गदा मारकर सिंहके समान गरज उठा ॥ ७ ॥ रणभूमिमें गदाकी चोट खाकर भी भगवान् श्रीकृष्ण टस-से-मस न हुए। उन्होंने अपनी बहुत बड़ी कौमोदकी गदा सम्हालकर उससे दन्तवक्त्रके वक्षःस्थलपर प्रहार किया ॥ ८ ॥ गदाकी चोटसे दन्तवक्त्रका कलेजा फट गया। वह मुँहसे खून उगलने लगा। उसके बाल बिखर गये, भुजाएँ और पैर फैल गये। निदान निष्प्राण होकर वह धरतीपर गिर पड़ा ॥ ९ ॥ परीक्षित्! जैसा कि शिशुपालकी मृत्युके समय हुआ था, सब प्राणियोंके सामने ही दन्तवक्त्रके मृत शरीरसे एक अत्यन्त सूक्ष्म ज्योति निकली और वह बड़ी विचित्र रीतिसे भगवान् श्रीकृष्णमें समा गयी ॥ १० ॥

दन्तवक्त्रके भाईका नाम था विदूरथ। वह अपने भाईकी मृत्युसे अत्यन्त शोकाकुल हो गया। अब वह क्रोधके मारे लंबी-लंबी साँस लेता हुआ हाथमें ढाल-तलवार लेकर भगवान् श्रीकृष्णको मार डालनेकी इच्छासे आया ॥ ११ ॥ राजेन्द्र! जब भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि अब वह प्रहार करना ही चाहता है, तब

उन्होंने अपने छुरेके समान तीखी धारवाले चक्रसे किरीट और कुण्डलके साथ उसका सिर धड़से अलग कर दिया ॥ १२ ॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णने शाल्व, उसके विमान सौभ, दन्तवक्त्र और विदूरथको, जिन्हें मारना दूसरोंके लिये अशक्य था, मारकर द्वारकापुरीमें प्रवेश किया। उस समय देवता और मनुष्य उनकी स्तुति कर रहे थे। बड़े-बड़े ऋषि-मुनि, सिद्ध-गन्धर्व, विद्याधर और वासुकि आदि महानाग, अप्सराएँ, पितर, यक्ष, किन्नर तथा चारण उनके ऊपर पुष्पोंकी वर्षा करते हुए उनकी विजयके गीत गा रहे थे। भगवान्के प्रवेशके अवसरपर पुरी खूब सजा दी गयी थी और बड़े-बड़े वृष्णिवंशी यादव वीर उनके पीछे-पीछे चल रहे थे ॥ १३—१५ ॥ योगेश्वर एवं जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्ण इसी प्रकार अनेकों खेल खेलते रहते हैं। जो पशुओंके समान अविवेकी हैं, वे उन्हें कभी हारते भी देखते हैं। परन्तु वास्तवमें तो वे सदा-सर्वदा विजयी ही हैं ॥ १६ ॥

एक बार बलरामजीने सुना कि दुर्योधनादि कौरव पाण्डवोंके साथ युद्ध करनेकी तैयारी कर रहे हैं। वे मध्यस्थ थे, उन्हें किसीका पक्ष लेकर लड़ना पसंद नहीं था। इसलिये वे तीर्थोंमें स्नान करनेके बहाने द्वारकासे चले गये ॥ १७ ॥ वहाँसे चलकर उन्होंने प्रभासक्षेत्रमें स्नान किया; और तर्पण तथा ब्राह्मण-भोजनके द्वारा देवता, ऋषि, पितर और मनुष्योंको तृप्त किया। इसके बाद वे कुछ ब्राह्मणोंके साथ जिधरसे सरस्वती नदी आ रही थी, उधर ही चल पड़े ॥ १८ ॥ वे क्रमशः पृथूदक, बिन्दुसर, त्रितकूप, सुदर्शनतीर्थ, विशालतीर्थ, ब्रह्मतीर्थ, चक्रतीर्थ और पूर्ववाहिनी सरस्वती आदि तीर्थोंमें गये ॥ १९ ॥ परीक्षित्! तदनन्तर यमुनातट और गङ्गातटके प्रधान-प्रधान तीर्थोंमें होते हुए वे नैमिषारण्य क्षेत्रमें गये। उन दिनों नैमिषारण्य क्षेत्रमें बड़े-बड़े ऋषि सत्सङ्गरूप महान् सत्र कर रहे थे ॥ २० ॥ दीर्घकालतक सत्सङ्ग-सत्रका नियम लेकर बैठे हुए ऋषियोंने बलरामजीको आया देख अपने-अपने आसनोंसे उठकर उनका स्वागत-सत्कार किया और यथायोग्य प्रणाम-आशीर्वाद करके उनकी पूजा की ॥ २१ ॥ वे अपने साथियोंके साथ आसन ग्रहण करके बैठ गये और उनकी अर्चा-पूजा हो चुकी, तब उन्होंने देखा कि भगवान् व्यासके शिष्य रोमहर्षण व्यासगद्दीपर बैठे हुए हैं ॥ २२ ॥ बलरामजीने देखा कि रोमहर्षणजी सूत-जातिमें उत्पन्न होनेपर भी उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंसे ऊँचे आसनपर बैठे हुए हैं और उनके आनेपर न तो उठकर स्वागत करते हैं और न हाथ जोड़कर प्रणाम ही। इसपर बलरामजीको क्रोध आ गया ॥ २३ ॥ वे कहने लगे कि 'यह रोमहर्षण प्रतिलोम जातिका होनेपर भी इन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंसे तथा धर्मके रक्षक हमलोगोंसे ऊपर बैठा हुआ है, इसलिये यह दुर्बुद्धि मृत्युदण्डका पात्र है ॥२४॥ भगवान् व्यासदेवका शिष्य होकर इसने इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्र आदि बहुत-से शास्त्रोंका अध्ययन भी किया है; परन्तु अभी इसका अपने मनपर संयम नहीं है। यह विनयी नहीं, उद्दण्ड है। इस अजितात्माने झूठमूठ अपनेको बहुत बड़ा पण्डित मान रक्खा है। जैसे नटकी सारी चेष्टाएँ अभिनयमात्र होती हैं, वैसे ही इसका सारा अध्ययन स्वाँगके लिये है। उससे न इसका लाभ है और न किसी दूसरेका ॥ २५-२६ ॥ जो लोग धर्मका चिह्न धारण करते हैं, परन्तु धर्मका पालन नहीं करते, वे अधिक पापी हैं और वे मेरे लिये वध करने योग्य हैं। इस जगत्में इसीलिये मैंने अवतार धारण किया है' ॥ २७ ॥ भगवान् बलराम यद्यपि तीर्थयात्राके कारण दुष्टोंके वधसे भी अलग हो गये थे, फिर भी इतना कहकर उन्होंने अपने हाथमें स्थित कुशकी नोकसे उनपर प्रहार कर दिया और वे तुरंत मर गये। होनहार ही ऐसी थी ॥ २८ ॥ सूतजीके मरते ही सब ऋषि-मुनि हाय-हाय करने लगे, सबके चित्त खिन्न हो गये। उन्होंने देवाधि-देव भगवान् बलरामजीसे कहा—'प्रभो! आपने यह बहुत बड़ा अधर्म किया ॥ २९ ॥ यदुवंशशिरोमणे! सूतजीको हमीं लोगोंने ब्राह्मणोचित आसनपर बैठाया था और जबतक हमारा यह सत्र समाप्त न हो, तबतकके लिये उन्हें शारीरिक कष्टसे रहित आयु भी दे दी थी ॥ ३० ॥ आपने अनजानमें यह ऐसा काम कर दिया, जो ब्रह्म-हत्याके समान है। हमलोग यह मानते हैं कि आप

योगेश्वर हैं, वेद भी आपपर शासन नहीं कर सकता। फिर भी आपसे यह प्रार्थना है कि आपका अवतार लोगोंको पवित्र करनेके लिये हुआ है; यदि आप किसीकी प्रेरणाके बिना स्वयं अपनी इच्छासे ही इस ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त कर लेंगे तो इससे लोगोंको बहुत शिक्षा मिलेगी' ॥ ३१-३२ ॥

भगवान् बलरामने कहा—मैं लोगोंको शिक्षा देनेके लिये, लोगोंपर अनुग्रह करनेके लिये इस ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त अवश्य करूँगा, अतः इसके लिये प्रथम श्रेणीका जो प्रायश्चित्त हो, आपलोग उसीका विधान कीजिये ॥ ३३ ॥ आपलोग इस सूतको लंबी आयु, बल, इन्द्रिय-शक्ति आदि जो कुछ भी देना चाहते हों, मुझे बतला दीजिये, मैं अपने योगबलसे सब कुछ सम्पन्न किये देता हूँ ॥ ३४ ॥

ऋषियोंने कहा—बलरामजी! आप ऐसा कोई उपाय कीजिये जिससे आपका शस्त्र, पराक्रम और इनकी मृत्यु भी व्यर्थ न हो और हमलोगोंने इन्हें जो वरदान दिया था, वह भी सत्य हो जाय ॥ ३५ ॥

भगवान् बलरामने कहा—ऋषियो! वेदोंका ऐसा कहना है कि आत्मा ही पुत्रके रूपमें उत्पन्न होता है। इसलिये रोमहर्षणके स्थानपर उनका पुत्र आपलोगोंको पुराणोंकी कथा सुनायेगा। उसे मैं अपनी शक्तिसे दीर्घायु, इन्द्रियशक्ति और बल दिये देता हूँ ॥ ३६ ॥ ऋषियो! इसके अतिरिक्त आपलोग और जो कुछ भी चाहते हों, मुझसे कहिये। मैं आपलोगोंकी इच्छा पूर्ण करूँगा। अनजानमें मुझसे जो अपराध हो गया है, उसका प्रायश्चित्त भी आपलोग सोच-विचारकर बतलाइये। क्योंकि आपलोग इस विषयके विद्वान् हैं ॥ ३७ ॥

ऋषियोंने कहा—बलरामजी! इल्वलका पुत्र बल्वल नामका एक भयङ्कर दानव है। वह प्रत्येक पर्व-पर यहाँ आ पहुँचता है और हमारे इस सत्रको दूषित कर देता है ॥ ३८ ॥ यदुनन्दन! वह यहाँ आकर पीब, खून, विष्ठा, मूत्र, शराब और मांसकी वर्षा करने लगता है। आप उस पापीको मार डालिये। हमलोगोंकी यह बहुत बड़ी सेवा होगी ॥ ३९ ॥ इसके बाद आप एकाग्रचित्तसे तीर्थोंमें स्नान करते हुए बारह महीनों-तक भारतवर्षकी परिक्रमा करते हुए विचरण कीजिये। इससे आपकी शुद्धि हो जायगी ॥ ४० ॥

उन्नासीवाँ अध्याय

बल्वलका उद्धार और बलरामजीकी तीर्थयात्रा

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! पर्वका दिन आनेपर बड़ा भयङ्कर अंधड़ चलने लगा। धूलकी वर्षा होने लगी और चारों ओरसे पीबकी दुर्गन्ध आने लगी ॥ १ ॥ इसके बाद यज्ञशालामें बल्वल दानवने मल-मूत्र आदि अपवित्र वस्तुओंकी वर्षा की। तदनन्तर हाथमें त्रिशूल लिये वह स्वयं दिखायी पड़ा ॥ २ ॥ उसका डील-डौल बहुत बड़ा था, ऐसा जान पड़ता मानो ढेर-का-ढेर कालिख इकट्ठा कर दिया गया हो। उसकी चोटी और दाढ़ी-मूँछ तपे हुए ताँबेके समान लाल-लाल थीं। बड़ी-बड़ी दाढ़ों और भौंहोंके कारण उसका मुँह बड़ा भयावना लगता था। उसे देखकर भगवान् बलरामजीने शत्रु-सेनाकी कुंदी करनेवाले मूसल और दैत्योंको चीर-फाड़ डालनेवाले हलका स्मरण किया। उनके स्मरण करते ही वे दोनों शस्त्र तुरंत वहाँ आ पहुँचे ॥ ३-४ ॥ बलरामजीने आकाशमें विचरनेवाले बल्वल दैत्यको अपने हलके अगले भागसे खींचकर उस ब्रह्मद्रोहीके सिरपर बड़े क्रोधसे एक मूसल कसकर जमाया, जिससे उसका ललाट फट गया और वह खून उगलता तथा आर्तस्वरसे चिल्लाता हुआ धरतीपर गिर पड़ा, ठीक वैसे ही जैसे वज्रकी चोट खाकर गेरू आदिसे लाल हुआ कोई पहाड़ गिर पड़ा हो ॥ ५-६ ॥ नैमिषारण्यवासी महाभाग्यवान् मुनियोंने बलरामजीकी स्तुति की, उन्हें कभी न व्यर्थ होनेवाले आशीर्वाद दिये, और जैसे देवतालोग देवराज इन्द्रका अभिषेक करते हैं, वैसे ही उनका अभिषेक किया ॥ ७ ॥ इसके बाद ऋषियोंने बलरामजीको दिव्य वस्त्र और दिव्य आभूषण

दिये तथा एक ऐसी वैजयन्ती माला भी दी, जो सौन्दर्यका आश्रय एवं कभी न मुरझानेवाले कमलके पुष्पोंसे युक्त है ॥ ८ ॥

तदनन्तर नैमिषारण्यवासी ऋषियोंसे विदा होकर उनके आज्ञानुसार बलरामजी ब्राह्मणोंके साथ कौशिकी नदीके तटपर आये । वहाँ स्नान करके वे उस सरोवरपर गये, जहाँसे सरयू नदी निकली है ॥ ९ ॥ वहाँसे सरयूके किनारे-किनारे चलने लगे, फिर उसे छोड़कर प्रयाग आये; और वहाँ स्नान तथा देवता, ऋषि एवं पितरोंका तर्पण करके वहाँसे पुलहाश्रम गये ॥ १० ॥ वहाँसे गण्डकी, गोमती तथा विपाशा नदियोंमें स्नान करके वे सोननदके तटपर गये और वहाँ स्नान किया । इसके बाद गयामे जाकर पितरोंका वसुदेवजीके आज्ञानुसार पूजन-यजन किया । फिर गङ्गा-सागर-संगमपर गये; वहाँ भी स्नान आदि तीर्थ-कृत्योंसे निवृत्त होकर महेन्द्र पर्वतपर गये । वहाँ परशुरामजीका दर्शन और अभिवादन किया । तदनन्तर सप्त गोदावरी, वेणा, पम्पा और भीमरथी आदिमें स्नान करते हुए स्वामिकार्तिकका दर्शन करने गये तथा वहाँसे महादेवजीके निवासस्थान श्रीशैलपर पहुँचे । इसके बाद भगवान् बलरामने द्रविड देशके परम पुण्यमय स्थान वेङ्कटाचल (बालाजी) का दर्शन किया और वहाँसे वे कामाक्षी—शिवकाञ्ची, विष्णुकाञ्ची होते हुए तथा श्रेष्ठ नदी कावेरीमें स्नान करते हुए पुण्यमय श्रीरङ्गक्षेत्रमें पहुँचे । श्रीरङ्गक्षेत्रमे भगवान् विष्णु सदा विराजमान रहते हैं ॥ ११—१४ ॥ वहाँसे उन्होंने विष्णुभगवान्के क्षेत्र ऋषभ पर्वत, दक्षिण मथुरा तथा बड़े-बड़े महापापोंको नष्ट करनेवाले सेतुबन्धकी यात्रा की ॥ १५ ॥ वहाँ बलरामजीने ब्राह्मणोंको दस हजार गौएँ दान कीं । फिर वहाँसे कृतमाला और ताम्रपर्णी नदियोंमें स्नान करते हुए वे मलयपर्वतपर गये । वह पर्वत सात कुलपर्वतोंमेंसे एक है ॥ १६ ॥ वहाँपर विराजमान अगस्त्य मुनिको उन्होंने नमस्कार और अभिवादन किया । अगस्त्यजीसे आशीर्वाद और अनुमति प्राप्त करके बलरामजीने दक्षिण समुद्रकी यात्रा की । वहाँ उन्होंने दुर्गादेवीका कन्याकुमारीके रूपमें दर्शन किया ॥ १७ ॥ इसके बाद वे फाल्गुन तीर्थ—अनन्तशयन क्षेत्रमें गये और वहाँके सर्वश्रेष्ठ पञ्चाप्सरस तीर्थमें स्नान किया । उस तीर्थमे सर्वदा विष्णुभगवान्का सान्निध्य रहता है । वहाँ बलरामजीने दस हजार गौएँ दान कीं ॥ १८ ॥

अब भगवान् बलराम वहाँसे चलकर केरल और त्रिगर्त देशोंमें होकर भगवान् शङ्करके क्षेत्र गोकर्णतीर्थमें आये । वहाँ सदा-सर्वदा भगवान् शङ्कर विराजमान रहते हैं ॥ १९ ॥ वहाँसे जलसे घिरे द्वीपमें निवास करनेवाली आर्यादेवीका दर्शन करने गये और फिर उस द्वीपसे चलकर शूर्पारक-क्षेत्रकी यात्रा की, इसके बाद तापी, पयोष्णी और निर्विन्ध्या नदियोंमे स्नान करके वे दण्डकारण्यमें आये ॥ २० ॥ वहाँ होकर वे नर्मदाजीके तटपर गये । परीक्षित् ! इस पवित्र नदीके तटपर ही माहिष्मतीपुरी है । वहाँ मनुतीर्थमे स्नान करके वे फिर प्रभासक्षेत्रमें चले आये ॥ २१ ॥ वहीं उन्होंने ब्राह्मणोंसे सुना कि कौरव और पाण्डवोंके युद्धमें अधिकाश क्षत्रियोंका संहार हो गया । उन्होंने ऐसा अनुभव किया कि अब पृथ्वीका बहुत-सा भार उतर गया ॥ २२ ॥ जिस दिन रणभूमिमें भीमसेन और दुर्योधन गदायुद्ध कर रहे थे, उसी दिन बलरामजी उन्हें रोकनेके लिये कुरुक्षेत्र जा पहुँचे ॥ २३ ॥

महाराज युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव, भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनने बलरामजीको देखकर प्रणाम किया तथा चुप हो रहे । वे डरते हुए मन-ही-मन सोचने लगे कि ये न जाने क्या कहनेके लिये यहाँ पधारे हैं ? ॥ २४ ॥ उस समय भीमसेन और दुर्योधन दोनों ही हाथमें गदा लेकर एक-दूसरेको जीतनेके लिये क्रोधसे भरकर भाँति-भाँतिके पैंतरे बदल रहे थे । उन्हें देखकर बलरामजीने कहा—॥ २५ ॥ 'राजा दुर्योधन और भीमसेन ! तुम दोनों वीर हो । तुम दोनोंमे बल-पौरुष भी समान है । मैं ऐसा समझता हूँ कि भीमसेनमें बल अधिक है और दुर्योधनने गदायुद्धमे शिक्षा अधिक पायी है ॥ २६ ॥ इसलिये तुमलोगों-जैसे समान बलशालियोंमे किसी एककी जय या पराजय नहीं होती दीखती । अतः तुमलोग व्यर्थका युद्ध मत करो, अब इसे बंद कर दो' ॥ २७ ॥ परीक्षित् ! बलरामजीकी बात दोनोंके लिये हितकर थी । परन्तु उन दोनोंका वैरभाव इतना दृढमूल हो गया था

कि उन्होंने बलरामजीकी बात न मानी। वे एक-दूसरेकी कटुवाणी और दुर्व्यवहारोंका स्मरण करके उन्मत्त-से हो रहे थे ॥ २८ ॥ भगवान् बलरामजीने निश्चय किया कि इनका प्रारब्ध ऐसा ही है; इसलिये उसके सम्बन्धमें विशेष आग्रह न करके वे द्वारका लौट गये। द्वारकामें उग्रसेन आदि गुरुजनों तथा अन्य सम्बन्धियोंने बड़े प्रेमसे आगे आकर उनका स्वागत किया ॥ २९ ॥ वहाँसे बलरामजी फिर नैमिषारण्य क्षेत्रमें गये। वहाँ ऋषियोंने विरोधभावसे—युद्धादिसे निवृत्त बलरामजीके द्वारा बड़े प्रेमसे सब प्रकारके यज्ञ कराये। परीक्षित्! सच पूछो तो जितने भी यज्ञ हैं, वे बलरामजीके अंग ही हैं। इसलिये उनका यह यज्ञानुष्ठान लोक-संग्रहके लिये ही था ॥ ३० ॥ सर्वसमर्थ भगवान् बलरामने उन ऋषियोंको विशुद्ध तत्त्वज्ञानका उपदेश किया, जिससे वे लोग इस सम्पूर्ण विश्वको अपने-आपमें और अपने-आपको सारे विश्वमें अनुभव करने लगे ॥ ३१ ॥ इसके बाद बलरामजीने अपनी पत्नी रेवतीके साथ यज्ञान्त-स्नान किया और सुन्दर-सुन्दर वस्त्र तथा आभूषण पहनकर अपने भाई-बन्धु तथा स्वजन-सम्बन्धियोंके साथ इस प्रकार शोभायमान हुए, जैसे अपनी चन्द्रिका एवं नक्षत्रोंके साथ चन्द्रदेव होते हैं ॥ ३२ ॥ परीक्षित्! भगवान् बलराम स्वयं अनन्त हैं। उनका स्वरूप मन और वाणीके परे है। उन्होंने लीलाके लिये ही यह मनुष्योंका-सा शरीर ग्रहण किया है। उन बलशाली बलरामजीके ऐसे-ऐसे चरित्रोंकी गिनती भी नहीं की जा सकती ।३३। जो पुरुष अनन्त, सर्वव्यापक, अद्भुतकर्मा भगवान् बलरामजीके चरित्रोंका सायं-प्रातः स्मरण करता है, वह भगवान्‌का अत्यन्त प्रिय हो जाता है ॥ ३४ ॥

अस्सीवाँ अध्याय

श्रीकृष्णके द्वारा सुदामाजीका स्वागत

राजा परीक्षित्‌ने कहा—भगवन्! प्रेम और मुक्तिके दाता परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णकी शक्ति अनन्त है। इसलिये उनकी माधुर्य और ऐश्वर्यसे भरी लीलाएँ भी अनन्त हैं। अब हम उनकी दूसरी लीलाएँ, जिनका वर्णन आपने अबतक नहीं किया है, सुनना चाहते हैं ॥ १ ॥ ब्रह्मन्! यह जीव विषय-सुखको खोजते-खोजते अत्यन्त दुखी हो गया है। वे बाणकी तरह इसके चित्तमें चुभते रहते हैं। ऐसी स्थितिमें ऐसा कौन-सा रसिक—रसका विशेषज्ञ पुरुष होगा, जो बार-बार पवित्रकीर्ति भगवान् श्रीकृष्णकी मङ्गलमयी लीलाओंका श्रवण करके भी उनसे विमुख होना चाहेगा ॥ २ ॥ जो वाणी भगवान्‌के गुणोंका गान करती है, वही सच्ची वाणी है। वे ही हाथ सच्चे हाथ हैं, जो भगवान्‌की सेवाके लिये काम करते हैं। वही मन सच्चा मन है, जो चराचर प्राणियोंमें निवास करनेवाले भगवान्‌का स्मरण करता है; और वे ही कान वास्तवमें कान कहने योग्य हैं,जो भगवान्‌की पुण्यमयी कथाओंका श्रवण करते हैं ॥ ३ ॥ वही सिर सिर है, जो चराचर जगत्‌को भगवान्‌की चल-अचल प्रतिमा समझकर नमस्कार करता है, और जो सर्वत्र भगवद्विग्रहका दर्शन करते हैं, वे ही नेत्र वास्तवमें नेत्र हैं। शरीरके जो अङ्ग भगवान् और उनके भक्तोंके चरणोदकका सेवन करते हैं, वे ही अङ्ग वास्तवमें अङ्ग हैं, सच पूछिये तो उन्हींका होना सफल है ॥ ४ ॥

सूतजी कहते हैं—शौनकादि ऋषियो! जब राजा परीक्षित्‌ने इस प्रकार प्रश्न किया, तब भगवान् श्रीशुकदेवजीका हृदय भगवान् श्रीकृष्णमें ही तल्लीन हो गया। उन्होंने परीक्षित्‌से इस प्रकार कहा ॥ ५ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित्! एक ब्राह्मण भगवान् श्रीकृष्णके परम मित्र थे। वे बड़े ब्रह्मज्ञानी, विषयोंसे विरक्त, शान्तचित्त और जितेन्द्रिय थे ॥ ६ ॥ वे गृहस्थ होनेपर भी किसी प्रकारका संग्रह-परिग्रह न रखकर प्रारब्धके अनुसार जो कुछ मिल जाता, उसीमें सन्तुष्ट रहते थे। उनके वस्त्र तो फटे-पुराने थे ही, उनकी पत्नीके भी वैसे ही थे। वह भी अपने पतिके समान ही भूखसे दुबली हो रही थी ॥ ७ ॥ एक दिन दरिद्रताकी प्रतिमूर्ति दुःखिनी पतिव्रता भूखके मारे काँपती हुई अपने पतिदेवके पास गयी और मुरझाये हुए मुँहसे बोली—॥ ८ ॥ 'भगवन्! साक्षात् लक्ष्मीपति

भगवान् श्रीकृष्ण आपके सखा हैं। वे भक्तवाञ्छाकल्पतरु, शरणागतवत्सल और ब्राह्मणोंके परम भक्त हैं ॥ ९ ॥ परम भाग्यवान् आर्यपुत्र ! वे साधु-संतोंके, सत्पुरुषोंके एकमात्र आश्रय हैं। आप उनके पास जाइये। जब वे जानेंगे कि आप कुटुम्बी हैं और अन्नके बिना दुखी हो रहे हैं, तो वे आपको बहुत-सा धन देंगे ॥ १० ॥ आजकल वे भोज, वृष्णि और अन्धकवंशी यादवोंके स्वामीके रूपमे द्वारकामें ही निवास कर रहे हैं। और इतने उदार हैं कि जो उनके चरणकमलोंका स्मरण करते हैं, उन प्रेमी भक्तोंको वे अपने-आपतकका दान कर डालते हैं। ऐसी स्थितिमें जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्ण अपने भक्तोंको यदि धन और विषय-सुख, जो अत्यन्त वाञ्छनीय नहीं है, दे दे, तो इसमे आश्चर्यकी कौन-सी बात है ?' ॥११॥ इस प्रकार जब उन ब्राह्मणदेवताकी पत्नीने अपने पतिदेवसे कई बार बड़ी नम्रतासे प्रार्थना की, तब उन्होंने सोचा कि 'धनकी तो कोई बात नहीं है; परन्तु भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन हो जायगा, यह तो जीवनका बहुत बड़ा लाभ है' ॥१२॥ यही विचार करके उन्होंने जानेका निश्चय किया और अपनी पत्नीसे बोले—'कल्याणी ! घरमें कुछ भेंट देनेयोग्य वस्तु भी है क्या ? यदि हो तो दे दो' ॥ १३ ॥ तब उस ब्राह्मणीने पास-पड़ोसके ब्राह्मणोंके घरसे चार मुट्ठी चिउड़े माँगकर एक कपड़ेमें बाँध दिये और भगवान्‌को भेंट देनेके लिये अपने पतिदेवको दे दिये ॥ १४ ॥ इसके बाद वे ब्राह्मणदेवता उन चिउड़ोंको लेकर द्वारका-के लिये चल पड़े। वे मार्गमें यह सोचते जाते थे कि 'मुझे भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन कैसे प्राप्त होंगे ?' ।१५।

परीक्षित् ! द्वारकामें पहुँचनेपर वे ब्राह्मणदेवता दूसरे ब्राह्मणोंके साथ सैनिकोंकी तीन छावनियाँ और तीन ड्योढ़ियाँ पार करके भगवद्धर्मका पालन करनेवाले अन्धक और वृष्णिवंशी यादवोंके महलोंमे, जहाँ पहुँचना अत्यन्त कठिन है, जा पहुँचे ॥ १६ ॥ उनके बीच भगवान् श्रीकृष्णकी सोलह हजार रानियोंके महल थे। उनमेंसे एकमे उन ब्राह्मणदेवताने प्रवेश किया। वह महल खूब सजा-सजाया—अत्यन्त शोभायुक्त था। उसमें प्रवेश करते समय उन्हें ऐसा मालूम हुआ, मानो वे ब्रह्मानन्दके समुद्रमें डूब-उतरा रहे हों ! ॥ १७ ॥ उस समय भगवान् श्रीकृष्ण अपनी प्राणप्रिया रुक्मिणी-जीके पलंगपर विराजे हुए थे। ब्राह्मणदेवताको दूरसे ही देखकर वे सहसा उठ खड़े हुए और उनके पास आकर बड़े आनन्दसे उन्हें अपने भुजपाशमें बाँध लिया ॥१८॥ परीक्षित् ! परमानन्दस्वरूप भगवान् अपने प्यारे सखा ब्राह्मणदेवताके अङ्ग-स्पर्शसे अत्यन्त आनन्दित हुए। उनके कमलके समान कोमल नेत्रोंसे प्रेमके आँसू बरसने लगे ॥ १९ ॥ परीक्षित् ! कुछ समयके बाद भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें ले जाकर अपने पलंगपर बैठा दिया और स्वयं पूजनकी सामग्री लाकर उनकी पूजा की। प्रिय परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्ण सभीको पवित्र करनेवाले हैं; फिर भी उन्होंने अपने हाथों ब्राह्मणदेवताके पाँव पखारकर उनका चरणोदक अपने सिरपर धारण किया और उनके शरीरमे चन्दन, अरगजा, केसर आदि दिव्य गन्धोंका लेपन किया ॥ २०-२१ ॥ फिर उन्होंने बड़े आनन्दसे सुगन्धित धूप और दीपावलीसे अपने मित्रकी आरती उतारी। इस प्रकार पूजा करके पान एवं गाय देकर मधुर वचनोंसे 'भले पधारे' ऐसा कहकर उनका स्वागत किया ॥ २२ ॥ ब्राह्मणदेवता फटे-पुराने वस्त्र पहने हुए थे। शरीर अत्यन्त मलिन और दुर्बल था। देहकी सारी नसें दिखायी पड़ती थीं। स्वयं भगवती रुक्मिणीजी चँवर डुलाकर उनकी सेवा करने लगीं ॥२३॥ अन्तःपुरकी स्त्रियाँ यह देखकर अत्यन्त विस्मित हो गयीं कि पवित्रकीर्ति भगवान् श्रीकृष्ण अतिशय प्रेमसे इस मैले-कुचैले अवधूत ब्राह्मणकी पूजा कर रहे हैं ॥ २४ ॥ वे आपसमें कहने लगीं—'इस नंगधड़ंग, निर्धन, निन्दनीय और निकृष्ट भिखमंगेने ऐसा कौन-सा पुण्य किया है, जिससे त्रिलोकी-गुरु श्रीनिवास श्रीकृष्ण स्वयं इसका आदर-सत्कार कर रहे हैं। देखो तो सही, इन्होंने अपने पलंगपर सेवा करती हुई स्वयं लक्ष्मी-रूपिणी रुक्मिणीजीको छोड़कर इस ब्राह्मणको अपने बड़े भाई बलरामजीके समान हृदयसे लगाया है' ।२५-२६। प्रिय परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्ण और वे ब्राह्मण दोनों एक-दूसरेका हाथ पकड़कर अपने पूर्वजीवनकी उन आनन्ददायक घटनाओंका स्मरण और वर्णन करने लगे, जो गुरुकुलमें रहते समय घटित हुई थीं ॥ २७ ॥

सुदामा-सत्कार

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—धर्मके मर्मज्ञ ब्राह्मण-देव! गुरुदक्षिणा देकर जब आप गुरुकुलसे लौट आये, तब आपने अपने अनुरूप स्त्रीसे विवाह किया या नहीं? ॥ २८॥ मैं जानता हूँ कि आपका चित्त गृहस्थीमें रहनेपर भी प्रायः विषय-भोगोंमें आसक्त नहीं है। विद्वन्! यह भी मुझे मालूम है कि धन आदिमें भी आपकी कोई प्रीति नहीं है ॥ २९ ॥ जगत्में बिरले ही लोग ऐसे होते हैं, जो भगवान्की मायासे निर्मित विषयसम्बन्धी वासनाओंका त्याग कर देते हैं और चित्तमें विषयोंकी तनिक भी वासना न रहनेपर भी मेरे समान केवल लोकशिक्षाके लिये कर्म करते रहते हैं ॥ ३० ॥ ब्राह्मणशिरोमणे! क्या आपको उस समयकी बात याद है, जब हम दोनों एक साथ गुरुकुलमें निवास करते थे। सचमुच गुरुकुलमें ही द्विजातियोंको अपने ज्ञातव्य वस्तुका ज्ञान होता है, जिसके द्वारा वे अज्ञानान्धकारसे पार हो जाते हैं॥३१॥ मित्र! इस संसारमें शरीरका कारण—जन्मदाता पिता प्रथम गुरु है। इसके बाद उपनयन-संस्कार करके सत्कर्मोंकी शिक्षा देनेवाला दूसरा गुरु है। वह मेरे ही समान पूज्य है। तदनन्तर ज्ञानोपदेश करके परमात्माको प्राप्त करानेवाला गुरु तो मेरा स्वरूप ही है। वर्णाश्रमियोंके ये तीन गुरु होते हैं ॥ ३२ ॥ मेरे प्यारे मित्र! गुरुके स्वरूपमें स्वयं मैं हूँ। इस जगत्में वर्णाश्रमियोंमें जो लोग अपने गुरुदेवके उपदेशानुसार अनायास ही भवसागर पार कर लेते हैं, वे अपने स्वार्थ और परमार्थके सच्चे जानकार हैं ॥ ३३ ॥ प्रिय मित्र! मैं सबका आत्मा हूँ, सबके हृदयमें अन्तर्यामीरूपसे विराजमान हूँ। मैं गृहस्थके धर्म पञ्चमहायज्ञ आदिसे, ब्रह्मचारीके धर्म उपनयन-वेदाध्ययन आदिसे, वानप्रस्थीके धर्म तपस्यासे और सब ओरसे उपरत हो जाना—इस संन्यासीके धर्मसे भी उतना सन्तुष्ट नहीं होता, जितना गुरुदेवकी सेवा-शुश्रूषासे सन्तुष्ट होता हूँ ॥ ३४ ॥

ब्रह्मन्! जिस समय हमलोग गुरुकुलमें निवास कर रहे थे, उस समयकी वह बात आपको याद है क्या, जब हम दोनोंको एक दिन हमारी गुरुपत्नीने ईंधन लानेके लिये जंगलमें भेजा था ॥ ३५ ॥ उस समय हमलोग एक घोर जंगलमें गये हुए थे और बिना ऋतुके ही बड़ा भयङ्कर आँधी-पानी आ गया था। आकाशमें बिजली कड़कने लगी थी ॥ ३६ ॥ अब सूर्यास्त हो गया; चारों ओर अँधेरा-ही-अँधेरा फैल गया। धरतीपर इस प्रकार पानी-ही-पानी हो गया कि कहाँ गड्ढा है, कहाँ किनारा, इसका पता ही न चलता था ॥ ३७ ॥ वह वर्षा क्या थी, एक छोटा-मोटा प्रलय ही था। आँधीके झटकों और वर्षाकी बौछारोंसे हमलोगोंको बड़ी पीड़ा हुई, दिशाका ज्ञान न रहा। हमलोग अत्यन्त आतुर हो गये और एक-दूसरेका हाथ पकड़कर जंगलमें इधर-उधर भटकते रहे ॥ ३८ ॥ जब हमारे गुरुदेव सान्दीपनि मुनिको इस बातका पता चला, तब वे सूर्योदय होनेपर अपने शिष्य हमलोगोंको ढूँढ़ते हुए जंगलमें पहुँचे और उन्होंने देखा कि हम अत्यन्त आतुर हो रहे हैं ॥ ३९ ॥ वे कहने लगे—'आश्चर्य है, आश्चर्य है! पुत्रो! तुमलोगोंने हमारे लिये अत्यन्त कष्ट उठाया। सभी प्राणियोंको अपना शरीर सबसे अधिक प्रिय होता है; परन्तु तुम दोनों उसकी भी परवा न करके हमारी सेवामें ही संलग्न रहे॥४०॥ गुरुके ऋणसे मुक्त होनेके लिये सत्-शिष्योंका इतना ही कर्तव्य है कि वे विशुद्ध-भावसे अपना सब कुछ और शरीर भी गुरुदेवकी सेवामें समर्पित कर दें ॥ ४१ ॥ द्विजशिरोमणियो! मैं तुम-लोगोंसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुम्हारे सारे मनोरथ, सारी अभिलाषाएँ पूर्ण हों और तुमलोगोंने हमसे जो वेदाध्ययन किया है, वह तुम्हें सर्वदा कण्ठस्थ रहे तथा इस लोक एवं परलोकमें कहीं भी निष्फल न हो ॥ ४२ ॥ प्रिय मित्र! जिस समय हमलोग गुरुकुलमें निवास कर रहे थे, हमारे जीवनमें ऐसी-ऐसी अनेकों घटनाएँ घटित हुई थीं। इसमें सन्देह नहीं कि गुरुदेवकी कृपासे ही मनुष्य शान्तिका अधिकारी होता और पूर्णताको प्राप्त करता है ॥ ४३ ॥

ब्राह्मणदेवताने कहा—देवताओंके आराध्यदेव जगद्-गुरु श्रीकृष्ण! भला अब हमे क्या करना बाकी है? क्योंकि आपके साथ, जो सत्यसङ्कल्प परमात्मा हैं, हमें गुरुकुलमे रहनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था ॥ ४४ ॥

प्रभो ! छन्दोमय वेद धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चतुर्विध पुरुषार्थके मूल स्रोत हैं; और वे हैं आपके शरीर । वही आप वेदाध्ययनके लिये गुरुकुलमें निवास करें, यह मनुष्य-लीलाका अभिनय नहीं तो और क्या है ? ॥४५॥

इक्यासीवाँ अध्याय

सुदामाजीको ऐश्वर्यकी प्राप्ति

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—प्रिय परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्ण सबके मनकी बात जानते हैं । वे ब्राह्मणोंके परम भक्त, उनके क्लेशोंके नाशक तथा संतोंके एकमात्र आश्रय हैं । वे पूर्वोक्त प्रकारसे उन ब्राह्मणदेवताके साथ बहुत देरतक बातचीत करते रहे । अब वे अपने प्यारे सखा उन ब्राह्मणसे तनिक मुसकराकर विनोद करते हुए बोले । उस समय भगवान् श्रीकृष्ण उन ब्राह्मणदेवताकी ओर प्रेमभरी दृष्टिसे देख रहे थे ॥ १-२ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'ब्रह्मन् ! आप अपने घरसे मेरे लिये क्या उपहार लाये हैं ? मेरे प्रेमी भक्त जब प्रेमसे थोड़ी-सी वस्तु भी मुझे अर्पण करते हैं, तो वह मेरे लिये बहुत हो जाती है । परन्तु मेरे अभक्त यदि बहुत-सी सामग्री भी मुझे भेंट करते हैं, तो उससे मैं सन्तुष्ट नहीं होता ॥ ३ ॥ जो पुरुष प्रेम-भक्तिसे फल-फूल अथवा पत्ता-पानीमेंसे कोई भी वस्तु मुझे समर्पित करता है, तो मैं उस शुद्धचित्त भक्तका वह प्रेमोपहार केवल स्वीकार ही नहीं करता, बल्कि तुरंत भोग लगा लेता हूँ' ॥ ४ ॥ परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर भी उन ब्राह्मणदेवताने लज्जावश उन लक्ष्मीपतिको वे चार मुट्ठी चिउड़े नहीं दिये । उन्होंने संकोचसे अपना मुँह नीचे कर लिया था । परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्ण समस्त प्राणियोंके हृदयका एक-एक सङ्कल्प और उनका अभाव भी जानते हैं । उन्होंने ब्राह्मणके आनेका कारण, उनके हृदयकी बात जान ली । अब वे विचार करने लगे कि 'एक तो यह मेरा प्यारा सखा है, दूसरे इसने पहले कभी लक्ष्मीकी कामनासे मेरा भजन नहीं किया है । इस समय यह अपनी पतिव्रता पत्नीको प्रसन्न करनेके लिये उसीके आग्रहसे यहाँ आया है । अब मैं इसे ऐसी सम्पत्ति दूँगा, जो देवताओंके लिये भी अत्यन्त दुर्लभ है ॥ ५—७ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने ऐसा विचार करके उनके वस्त्रमेंसे चिथड़ेकी एक पोटलीमें बँधा हुआ चिउड़ा 'यह क्या है'—ऐसा कहकर स्वयं ही छीन लिया ॥ ८ ॥ और बड़े आदरसे कहने लगे—'प्यारे मित्र ! यह तो तुम मेरे लिये अत्यन्त प्रिय भेंट ले आये हो । ये चिउड़े न केवल मुझे, बल्कि सारे संसारको तृप्त करनेके लिये पर्याप्त हैं' ॥ ९ ॥ ऐसा कहकर वे उसमेंसे एक मुट्ठी चिउड़ा खा गये और दूसरी मुट्ठी ज्यों ही भरी, त्यों ही रुक्मिणीके रूपमें स्वयं भगवती लक्ष्मीजीने भगवान् श्रीकृष्णका हाथ पकड़ लिया ! क्योंकि वे तो एकमात्र भगवान्‌के परायण हैं, उन्हें छोड़कर और कहीं जा नहीं सकतीं ॥ १० ॥ **रुक्मिणीजीने कहा**—'विश्वात्मन् ! बस, बस ! मनुष्यको इस लोकमें तथा मरनेके बाद परलोकमें भी समस्त सम्पत्तियोंकी समृद्धि प्राप्त करनेके लिये यह एक मुट्ठी चिउड़ा ही बहुत है; क्योंकि आपके लिये इतना ही प्रसन्नताका हेतु बन जाता है ॥ ११ ॥

परीक्षित् ! ब्राह्मणदेवता उस रातको भगवान् श्रीकृष्णके महलमें ही रहे । उन्होंने बड़े आरामसे वहाँ खाया-पिया और ऐसा अनुभव किया, मानो मैं वैकुण्ठमें ही पहुँच गया हूँ ॥ १२ ॥ परीक्षित् ! श्रीकृष्णसे ब्राह्मणको प्रत्यक्षरूपमें कुछ भी न मिला । फिर भी उन्होंने उनसे कुछ माँगा नहीं ! वे अपने चित्तकी करतूतपर कुछ लज्जित-से होकर भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनजनित आनन्दमें डूबते-उतराते अपने घरकी ओर चल पड़े ॥ १३-१४ ॥ वे मन-ही-मन सोचने लगे—'अहो, कितने आनन्द और आश्चर्यकी बात है ! ब्राह्मणोंको अपना इष्टदेव माननेवाले भगवान् श्रीकृष्णकी ब्राह्मणभक्ति आज मैंने अपनी आँखों देख ली । धन्य है ! जिनके वक्षःस्थलपर स्वयं लक्ष्मीजी सदा विराजमान रहती हैं, उन्होंने मुझ अत्यन्त दरिद्रको अपने हृदयसे लगा लिया ॥ १५ ॥

कहाँ तो मैं अत्यन्त पापी और दरिद्र, और कहाँ लक्ष्मी-के एकमात्र आश्रय भगवान् श्रीकृष्ण ! परन्तु उन्होंने 'यह ब्राह्मण है'—ऐसा समझकर मुझे अपनी भुजाओंमें भरकर हृदयसे लगा लिया ॥ १६ ॥ इतना ही नहीं, उन्होंने मुझे उस पलंगपर सुलाया, जिसपर उनकी प्राणप्रिया रुक्मिणीजी शयन करती हैं। मानो मैं उनका सगा भाई हूँ ! कहाँतक कहूँ ? मैं थका हुआ था, इस-लिये स्वयं उनकी पटरानी रुक्मिणीजीने अपने हाथों चँवर डुलाकर मेरी सेवा की ॥ १७ ॥ ओह, देवताओं-के आराध्यदेव होकर भी ब्राह्मणोंको अपना इष्टदेव माननेवाले प्रभुने पाँव दबाकर, अपने हाथों खिला-पिला-कर मेरी अत्यन्त सेवा-शुश्रूषा की और देवताके समान मेरी पूजा की ॥ १८ ॥ स्वर्ग, मोक्ष, पृथ्वी और रसा-तलकी सम्पत्ति तथा समस्त योगसिद्धियोंकी प्राप्तिका मूल उनके चरणोंकी पूजा ही है ॥ १९ ॥ फिर भी परम-दयालु श्रीकृष्णने यह सोचकर मुझे थोड़ा-सा भी धन नहीं दिया कि कहीं यह दरिद्र धन पाकर बिलकुल मतवाला न हो जाय और मुझे न भूल बैठे ॥ २० ॥

इस प्रकार मन-ही-मन विचार करते-करते ब्राह्मण-देवता अपने घरके पास पहुँच गये । वे वहाँ क्या देखते हैं कि सब-का-सब स्थान सूर्य, अग्नि और चन्द्रमाके समान तेजस्वी रत्ननिर्मित महलोंसे घिरा हुआ है । ठौर-ठौर चित्र-विचित्र उपवन और उद्यान बने हुए हैं तथा उनमें झुंड-के-झुंड रंग-बिरंगे पक्षी कलरव कर रहे हैं। सरोवरोंमें कुमुदिनी तथा श्वेत, नील और सौगन्धिक—भाँति-भाँतिके कमल खिले हुए हैं; सुन्दर-सुन्दर स्त्री-पुरुष बन-ठनकर इधर-उधर विचर रहे हैं। उस स्थान-को देखकर ब्राह्मणदेवता सोचने लगे—'मैं यह क्या देख रहा हूँ ? यह किसका स्थान है ? यदि यह वही स्थान है, जहाँ मैं रहता था, तो यह ऐसा कैसे हो गया ॥ २१—२३ ॥ इस प्रकार वे सोच ही रहे थे कि देवताओंके समान सुन्दर-सुन्दर स्त्री-पुरुष गाजे-बाजेके साथ मङ्गलगीत गाते हुए उस महाभाग्यवान् ब्राह्मणकी अगवानी करनेके लिये आये ॥ २४ ॥ पतिदेवका शुभा-गमन सुनकर ब्राह्मणीको अपार आनन्द हुआ और वह हड़बड़ाकर जल्दी-जल्दी घरसे निकल आयी, वह ऐसी मालूम होती थी मानो मूर्तिमती लक्ष्मीजी ही कमलवनसे पधारी हों ॥ २५ ॥ पतिदेवको देखते ही पतिव्रता पत्नीके नेत्रोंमें प्रेम और उत्कण्ठाके आवेगसे आँसू छलक आये। उसने अपने नेत्र बंद कर लिये। ब्राह्मणीने बड़े प्रेमभावसे उन्हें नमस्कार किया और मन-ही-मन आलिङ्गन भी ॥ २६ ॥

प्रिय परीक्षित् ! ब्राह्मणपत्नी सोनेका हार पहनी हुई दासियोंके बीचमें विमानस्थित देवाङ्गनाके समान अत्यन्त शोभायमान एवं देदीप्यमान हो रही थी। उसे इस रूपमें देखकर वे विस्मित हो गये ॥ २७ ॥ उन्होंने अपनी पत्नीके साथ बड़े प्रेमसे अपने महलमें प्रवेश किया। उनका महल क्या था, मानो देवराज इन्द्रका निवासस्थान। इसमें मणियोंके सैकड़ों खंभे खड़े थे ॥ २८ ॥ हाथीके दाँतके बने हुए और सोनेके पातसे मँढ़े हुए पलंगोंपर दूधके फेनकी तरह श्वेत और कोमल बिछौने बिछ रहे थे। बहुत-से चँवर वहाँ रक्खे हुए थे, जिनमें सोनेकी डंडियाँ लगी हुई थीं ॥ २९ ॥ सोनेके सिंहासन शोभायमान हो रहे थे, जिनपर बड़ी कोमल-कोमल गद्दियाँ लगी हुई थीं ! ऐसे चँदोवे भी झिलमिला रहे थे, जिनमें मोतियोंकी लड़ियाँ लटक रही थीं ॥ ३० ॥ स्फटिकमणिकी स्वच्छ भीतोंपर पन्नेकी पच्चीकारी की हुई थी। रत्ननिर्मित स्त्रीमूर्तियोंके हाथों-में रत्नोंके दीपक जगमगा रहे थे ॥ ३१ ॥ इस प्रकार समस्त सम्पत्तियोंकी समृद्धि देखकर और उसका कोई प्रत्यक्ष कारण न पाकर, बड़ी गम्भीरतासे ब्राह्मणदेवता विचार करने लगे कि मेरे पास इतनी सम्पत्ति कहाँसे आ गयी ॥ ३२ ॥ वे मन-ही-मन कहने लगे—'मैं जन्मसे ही भाग्यहीन और दरिद्र हूँ। फिर मेरी इस सम्पत्ति-समृद्धिका कारण क्या है ? अवश्य ही परमैश्वर्य-शाली यदुवंशशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्णके कृपाकटाक्षके अतिरिक्त और कोई कारण नहीं हो सकता ॥ ३३ ॥ यह सब कुछ उनकी करुणाकी ही देन है। स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण पूर्णकाम और लक्ष्मीपति होनेके कारण अनन्त भोगसामग्रियोंसे युक्त हैं। इसलिये वे याचक भक्तको उसके मनका भाव जानकर बहुत कुछ दे देते हैं, परन्तु उसे समझते हैं बहुत थोड़ा; इसलिये सामने कुछ कहते नहीं। मेरे यदुवंशशिरोमणि सखा श्याम-

सुन्दर सचमुच उस मेघसे भी बढ़कर उदार हैं, जो समुद्रको भर देनेकी शक्ति रखनेपर भी किसानके सामने न बरसकर उसके सो जानेपर रातमें बरसता है और बहुत बरसनेपर भी थोड़ा ही समझता है ॥ ३४ ॥ मेरे प्यारे सखा श्रीकृष्ण देते हैं बहुत, पर उसे मानते हैं बहुत थोड़ा ! और उनका प्रेमी भक्त यदि उनके लिये कुछ भी कर दे, तो वे उसको बहुत मान लेते हैं । देखो तो सही ! मैंने उन्हें केवल एक मुट्ठी चिउड़ा भेंट किया था, पर उदार-शिरोमणि श्रीकृष्णने उसे कितने प्रेमसे स्वीकार किया ॥ ३५ ॥ मुझे जन्म-जन्म उन्हींका प्रेम, उन्हींकी हितैषिता, उन्हींकी मित्रता और उन्हींकी सेवा प्राप्त हो । मुझे सम्पत्तिकी आवश्यकता नहीं, सदा-सर्वदा उन्हीं गुणोंके एकमात्र निवासस्थान महानुभाव भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें मेरा अनुराग बढ़ता जाय और उन्हींके प्रेमी भक्तोंका सत्सङ्ग प्राप्त हो ॥ ३६ ॥ अजन्मा भगवान् श्रीकृष्ण सम्पत्ति आदिके दोष जानते हैं । वे देखते हैं कि बड़े-बड़े धनियोंका धन और ऐश्वर्यके मदसे पतन हो जाता है । इसलिये वे अपने अदूरदर्शी भक्तको उसके माँगते रहनेपर भी तरह-तरहकी सम्पत्ति, राज्य और ऐश्वर्य आदि नहीं देते । यह उनकी बड़ी कृपा है ॥ ३७ ॥ परीक्षित् ! अपनी बुद्धिसे इस प्रकार निश्चय करके वे ब्राह्मणदेवता त्यागपूर्वक अनासक्तभावसे अपनी पत्नीके साथ भगवत्प्रसाद-स्वरूप विषयोंको ग्रहण करने लगे और दिनोंदिन उनकी प्रेम-भक्ति बढ़ने लगी ॥ ३८ ॥

प्रिय परीक्षित् ! देवताओंके भी आराध्यदेव भक्त-भयहारी यज्ञपति सर्वशक्तिमान् भगवान् स्वयं ब्राह्मणोंको अपना प्रभु, अपना इष्टदेव मानते हैं । इसलिये ब्राह्मणोंसे बढ़कर और कोई भी प्राणी जगत्में नहीं है ॥३९॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णके प्यारे सखा उस ब्राह्मणने देखा कि 'यद्यपि भगवान् अजित हैं, किसीके अधीन नहीं हैं; फिर भी वे अपने सेवकोंके अधीन हो जाते हैं, उनसे पराजित हो जाते हैं, अब वे उन्हींके ध्यानमें तन्मय हो गये । ध्यानके आवेगसे उनकी अविद्याकी गाँठ कट गयी और उन्होंने थोड़े ही समयमें भगवान्का धाम, जो कि संतोंका एकमात्र आश्रय है, प्राप्त किया ॥ ४० ॥ परीक्षित् ! ब्राह्मणोंको अपना इष्टदेव माननेवाले भगवान् श्रीकृष्णकी इस ब्राह्मणभक्तिको जो सुनता है, उसे भगवान्के चरणोंमें प्रेमभाव प्राप्त हो जाता है और वह कर्मबन्धनसे मुक्त हो जाता है ॥ ४१ ॥

बयासीवाँ अध्याय

भगवान् श्रीकृष्ण-बलरामसे गोप-गोपियोंकी भेंट

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी द्वारकामें निवास कर रहे थे । एक बार सर्वग्रास सूर्यग्रहण लगा, जैसा कि प्रलयके समय लगा करता है ॥ १ ॥ परीक्षित् ! मनुष्योंको ज्योतिषियोंके द्वारा उस ग्रहणका पता पहलेसे ही चल गया था, इसलिये सब लोग अपने-अपने कल्याणके उद्देश्यसे पुण्य आदि उपार्जन करनेके लिये समन्तपञ्चक-तीर्थ कुरुक्षेत्रमें आये ॥ २ ॥ समन्तपञ्चक क्षेत्र वह है, जहाँ शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ परशुरामजीने सारी पृथ्वीको क्षत्रियहीन करके राजाओंकी रुधिरधारासे पाँच बड़े-बड़े कुण्ड बना दिये थे ॥ ३ ॥ जैसे कोई साधारण मनुष्य अपने पापकी निवृत्तिके लिये प्रायश्चित्त करता है, वैसे ही सर्वशक्तिमान् भगवान् परशुरामने अपने साथ कर्मका कुछ सम्बन्ध न होनेपर भी लोकमर्यादाकी रक्षाके लिये वहींपर यज्ञ किया था ॥ ४ ॥

परीक्षित् ! इस महान् तीर्थयात्राके अवसरपर भारतवर्षके सभी प्रान्तोंकी जनता कुरुक्षेत्र आयी थी । उनमें अक्रूर, वसुदेव, उग्रसेन आदि बड़े-बूढ़े तथा गद, प्रद्युम्न, साम्ब आदि अन्य यदुवंशी भी अपने-अपने पापोंका नाश करनेके लिये कुरुक्षेत्र आये थे । प्रद्युम्ननन्दन अनिरुद्ध और यदुवंशी सेनापति कृतवर्मा—ये दोनों सुचन्द्र, शुक, सारण आदिके साथ नगरकी रक्षाके लिये द्वारकामें रह गये थे । यदुवंशी एक तो

स्वभावसे ही परम तेजस्वी थे; दूसरे गलेमें सोनेकी माला, दिव्य पुष्पोंके हार, बहुमूल्य वस्त्र और कवचोंसे सुसज्जित होनेके कारण उनकी शोभा और भी बढ़ गयी थी। वे तीर्थयात्राके पथमें देवताओंके विमानके समान रथों, समुद्रकी तरङ्गके समान चलनेवाले घोड़ों, बादलोंके समान विशालकाय एवं गर्जना करते हुए हाथियों तथा विद्याधरोंके समान मनुष्योंके द्वारा ढोयी जानेवाली पालकियोंपर अपनी पत्नियोंके साथ इस प्रकार शोभायमान हो रहे थे, मानो स्वर्गके देवता ही यात्रा कर रहे हों। महाभाग्यवान् यदुवंशियोंने कुरुक्षेत्रमें पहुँचकर एकाग्रचित्तसे संयमपूर्वक स्नान किया और ग्रहणके उपलक्ष्यमें निश्चित कालतक उपवास किया ॥ ५–९ ॥ उन्होंने ब्राह्मणोंको गोदान किया। ऐसी गौओंका दान किया जिन्हें वस्त्रोंकी सुन्दर-सुन्दर झूलें, पुष्पमालाएँ एवं सोनेकी जंजीरें पहना दी गयी थीं। इसके बाद ग्रहणका मोक्ष हो जानेपर परशुरामजीके बनाये हुए कुण्डोंमें यदुवंशियोंने विधिपूर्वक स्नान किया और सत्पात्र ब्राह्मणोंको सुन्दर-सुन्दर पकवानोंका भोजन कराया। उन्होंने अपने मनमें यह सङ्कल्प किया था कि भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें हमारी प्रेमभक्ति बनी रहे। भगवान् श्रीकृष्णको ही अपना आदर्श और इष्टदेव माननेवाले यदुवंशियोंने ब्राह्मणोंसे अनुमति लेकर तब स्वयं भोजन किया और फिर घनी एवं ठंडी छायावाले वृक्षोंके नीचे अपनी-अपनी इच्छाके अनुसार डेरा डालकर ठहर गये। परीक्षित्! विश्राम कर लेनेके बाद यदुवंशियोंने अपने सुहृद् और सम्बन्धी राजाओंसे मिलना-भेंटना शुरू किया ॥ १०–१२ ॥ वहाँ मत्स्य, उशीनर, कोसल, विदर्भ, कुरु, सृञ्जय, काम्बोज, कैकय, मद्र, कुन्ति, आनर्त, केरल एवं दूसरे अनेकों देशोंके—अपने पक्षके तथा शत्रुपक्षके—सैकड़ों नरपति आये हुए थे। परीक्षित्! इनके अतिरिक्त यदुवंशियोंके परम हितैषी बन्धु नन्द आदि गोप तथा भगवान्के दर्शनके लिये चिरकालसे उत्कण्ठित गोपियाँ भी वहाँ आयी हुई थीं। यादवोंने इन सबको देखा ॥ १३-१४ ॥ परीक्षित्! एक-दूसरेके दर्शन, मिलन और वार्तालापसे सभीको बड़ा आनन्द हुआ। सभीके हृदय-कमल एवं मुख-कमल खिल उठे। सब एक-दूसरेको भुजाओंमें भरकर हृदयसे लगाते, उनके नेत्रोंसे आँसुओंकी झड़ी लग जाती, रोम-रोम खिल उठता, प्रेमके आवेगसे बोली बंद हो जाती और सब-के-सब आनन्द-समुद्रमें डूबने-उतराने लगते ॥ १५ ॥ पुरुषोंकी भाँति स्त्रियाँ भी एक-दूसरेको देखकर प्रेम और आनन्दसे भर गयीं। वे अत्यन्त सौहार्द, मन्द-मन्द मुसकान, परम पवित्र तिरछी चितवनसे देख-देखकर परस्पर भेंट-अँकवार भरने लगीं। वे अपनी भुजाओंमें भरकर केसर लगे हुए वक्षःस्थलोंको दूसरी स्त्रियोंके वक्षःस्थलोंसे दबातीं और अत्यन्त आनन्दका अनुभव करतीं। उस समय उनके नेत्रोंसे प्रेमके आँसू छलकने लगते ॥ १६ ॥ अवस्था आदिमें छोटोंने बड़े-बूढ़ोंको प्रणाम किया और उन्होंने अपनेसे छोटोंका प्रणाम स्वीकार किया। वे एक-दूसरेका स्वागत करके तथा कुशल-मङ्गल आदि पूछकर फिर श्रीकृष्णकी मधुर लीलाएँ आपसमें कहने-सुनने लगे ॥ १७ ॥

परीक्षित्! कुन्ती वसुदेव आदि अपने भाइयों, बहिनों, उनके पुत्रों, माता-पिता, भाभियों और भगवान् श्रीकृष्णको देखकर तथा उनसे बातचीत करके अपना सारा दुःख भूल गयीं ॥ १८ ॥

कुन्तीने वसुदेवजीसे कहा—भैया! मैं सचमुच बड़ी अभागिन हूँ। मेरी एक भी साध पूरी न हुई। आप-जैसे साधु-स्वभाव सज्जन भाई आपत्तिके समय मेरी सुधि भी न लें, इससे बढ़कर दुःखकी बात क्या होगी? ॥ १९ ॥ भैया! विधाता जिसके बाँयें हो जाता है, उसे स्वजन-सम्बन्धी, पुत्र और माता-पिता भी भूल जाते हैं। इसमें आपलोगोंका कोई दोष नहीं ॥ २० ॥

वसुदेवजीने कहा—बहिन! उलाहना मत दो। हमसे विलग न मानो। सभी मनुष्य दैवके खिलौने हैं। यह सम्पूर्ण लोक ईश्वरके वशमें रहकर कर्म करता है, और उसका फल भोगता है ॥ २१ ॥ बहिन! कंससे सताये जाकर हमलोग इधर-उधर अनेक दिशाओंमें भगे हुए थे। अभी कुछ ही दिन हुए,

ईश्वरकृपासे हम सब पुनः अपना स्थान प्राप्त कर सके हैं ॥ २२ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! वहाँ जितने भी नरपति आये थे—वसुदेव, उग्रसेन आदि यदुवंशियोंने उनका खूब सम्मान-सत्कार किया । वे सब भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन पाकर परमानन्द और शान्तिका अनुभव करने लगे ॥ २३ ॥ परीक्षित् ! भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य, धृतराष्ट्र, दुर्योधनादि पुत्रोंके साथ गान्धारी, पत्नियोंके सहित युधिष्ठिर आदि पाण्डव, कुन्ती, सृञ्जय, विदुर, कृपाचार्य, कुन्तिभोज, विराट, भीष्मक, महाराज नग्नजित्, पुरुजित्, द्रुपद, शल्य, धृष्टकेतु, काशीनरेश, दमघोष, विशालाक्ष,मिथिलानरेश, मद्रनरेश, केकयनरेश, युधामन्यु, सुशर्मा, अपने पुत्रोंके साथ बाह्लीक और दूसरे भी युधिष्ठिरके अनुयायी नृपति भगवान् श्रीकृष्णका परम सुन्दर श्रीनिकेतन विग्रह और उनकी रानियोंको देखकर अत्यन्त विस्मित हो गये ॥२४–२७॥ अब वे बलरामजी तथा भगवान् श्रीकृष्णसे भलीभाँति सम्मान प्राप्त करके बड़े आनन्दसे श्रीकृष्णके स्वजनों—यदुवंशियोंकी प्रशंसा करने लगे ॥ २८ ॥ उन लोगोंने मुख्यतया उग्रसेनजीको सम्बोधित कर कहा—'भोजराज उग्रसेनजी ! सच पूछिये तो इस जगत्के मनुष्योंमें आपलोगोंका जीवन ही सफल है, धन्य है ! धन्य है ! क्योंकि जिन श्रीकृष्णका दर्शन बड़े-बड़े योगियोंके लिये भी दुर्लभ है, उन्हींको आपलोग नित्य-निरन्तर देखते रहते हैं ॥ २९ ॥ वेदोंने बड़े आदरके साथ भगवान् श्रीकृष्णकी कीर्तिका गान किया है । उनके चरणधोवनका जल—गङ्गाजल, उनकी वाणी—शास्त्र और उनकी कीर्ति इस जगत्को अत्यन्त पवित्र कर रही है । अभी हमलोगोंके जीवनकी ही बात है, समयके फेरसे पृथ्वीका सारा सौभाग्य नष्ट हो चुका था; परन्तु उनके चरणकमलोंके स्पर्शसे पृथ्वीमें फिर समस्त शक्तियोंका सञ्चार हो गया और अब वह फिर हमारी समस्त अभिलाषाओं—मनोरथोंको पूर्ण करने लगी ॥ ३० ॥ उग्रसेनजी ! आपलोगोंका श्रीकृष्णके साथ वैवाहिक एवं गोत्रसम्बन्ध है । यही नहीं, आप हर समय उनका दर्शन और स्पर्श प्राप्त करते रहते हैं । उनके साथ चलते हैं, बोलते हैं, सोते हैं, बैठते हैं और खाते-पीते हैं । यों तो आपलोग गृहस्थीकी झंझटोंमें फँसे रहते हैं—जो नरकका मार्ग है, परन्तु आपलोगोंके घर वे सर्वव्यापक विष्णु-भगवान् मूर्तिमान् रूपसे निवास करते हैं, जिनके दर्शनमात्रसे स्वर्ग और मोक्षतककी अभिलाषा मिट जाती है ॥ ३१ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जब नन्दबाबाको यह बात मालूम हुई कि श्रीकृष्ण आदि यदुवंशी कुरुक्षेत्रमें आये हुए हैं, तब वे गोपोंके साथ अपनी सारी सामग्री गाड़ियोंपर लादकर अपने प्रिय पुत्र श्रीकृष्ण-बलराम आदिको देखनेके लिये वहाँ आये ॥ ३२ ॥ नन्द आदि गोपोंको देखकर सब-के-सब यदुवंशी आनन्दसे भर गये । वे इस प्रकार उठ खड़े हुए, मानो मृत शरीरमें प्राणोंका सञ्चार हो गया हो । वे लोग एक-दूसरेसे मिलनेके लिये बहुत दिनोंसे आतुर हो रहे थे । इसलिये एक-दूसरेको बहुत देरतक अत्यन्त गाढ़भावसे आलिङ्गन करते रहे ॥ ३३ ॥ वसुदेवजीने अत्यन्त प्रेम और आनन्दसे विह्वल होकर नन्दजीको हृदयसे लगा लिया । उन्हें एक-एक करके सारी बातें याद हो आयीं—कंस किस प्रकार उन्हें सताता था और किस प्रकार उन्होंने अपने पुत्रको गोकुलमें ले जाकर नन्दजीके घर रख दिया था ॥ ३४ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीने माता यशोदा और पिता नन्दजीके हृदयसे लगकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया । परीक्षित् ! उस समय प्रेमके उद्रेकसे दोनों भाइयोंका गला रुँध गया, वे कुछ भी बोल न सके ॥ ३५ ॥ महाभाग्यवती यशोदाजी और नन्दबाबाने दोनों पुत्रोंको अपनी गोदमें बैठा लिया और भुजाओंसे उनका गाढ़ आलिङ्गन किया । उनके हृदयमें चिरकालतक न मिलनेका जो दुःख था, वह सब मिट गया ॥ ३६ ॥ रोहिणी और देवकीजीने व्रजेश्वरी यशोदाको अपनी अँकवारमें भर लिया । यशोदाजीने उन लोगोंके साथ मित्रताका जो व्यवहार किया था, उसका स्मरण करके दोनोंका गला भर आया । वे यशोदाजीसे कहने लगीं—॥ ३७॥ 'यशोदारानी ! आपने और व्रजेश्वर नन्दजीने हमलोगोंके साथ जो मित्रताका व्यवहार किया है, वह कभी मिटने-

गला नहीं है, उसका बदला इन्द्रका ऐश्वर्य पाकर भी हम किसी प्रकार नहीं चुका सकतीं । नन्दरानीजी! भला ऐसा कौन कृतघ्न है, जो आपके उस उपकारको भूल सके ? ॥ ३८ ॥ देवि! जिस समय बलराम और श्रीकृष्णने अपने मा-बापको देखातक न था और इनके पिताने धरोहरके रूपमें इन्हें आप दोनोंके पास रख छोड़ा था, उस समय आपने इन दोनोंकी इस प्रकार रक्षा की, जैसे पलकें पुतलियोंकी रक्षा करती हैं। तथा आपलोगोंने ही इन्हें खिलाया-पिलाया, दुलार किया और रिझाया, इनके मङ्गलके लिये अनेकों प्रकारके उत्सव मनाये। सच पूछिये तो इनके मा-बाप आप ही लोग है। आपलोगोंकी देख-रेखमें इन्हें किसीकी आँचतक न लगी, ये सर्वथा निर्भय रहे, ऐसा करना आपलोगोंके अनुरूप ही था। क्योंकि सत्पुरुषोंकी दृष्टिमें अपने-परायेका भेद-भाव नहीं रहता। नन्दरानीजी! सचमुच आपलोग परम संत हैं' ॥ ३९ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! मैं कह चुका हूँ कि गोपियोंके परम प्रियतम, जीवनसर्वस्व श्रीकृष्ण ही थे। जब उनके दर्शनके समय नेत्रोंकी पलकें गिर पड़तीं, तब वे पलकोंको बनानेवालेको ही कोसने लगतीं। उन्हीं प्रेमकी मूर्ति गोपियोंको आज बहुत दिनोंके बाद भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन हुआ। उनके मनमें इसके लिये कितनी लालसा थी, इसका अनुमान भी नहीं किया जा सकता। उन्होंने नेत्रोंके रास्ते अपने प्रियतम श्रीकृष्णको हृदयमें ले जाकर गाढ़ आलिङ्गन किया और मन-ही मन आलिङ्गन करते-करते तन्मय हो गयीं। परीक्षित्! कहाँतक कहूँ, वे उस भावको प्राप्त हो गयीं, जो नित्य-निरन्तर अभ्यास करनेवाले योगियोंके लिये भी अत्यन्त दुर्लभ है ॥ ४० ॥ जब भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि गोपियाँ मुझमे तादात्म्यको प्राप्त—एक हो रही हैं, तब वे एकान्तमें उनके पास गये, उनको हृदयसे लगाया, कुशल-मङ्गल पूछा और हँसते हुए यों बोले—॥ ४१॥ 'सखियो! हमलोग अपने स्वजन-सम्बन्धियोंका काम करनेके लिये व्रजसे बाहर चले आये और इस प्रकार तुम्हारी-जैसी प्रेयसियोंको छोड़कर हम शत्रुओंका विनाश करनेमे उलझ गये। बहुत दिन बीत गये, क्या कभी तुमलोग हमारा स्मरण भी करती हो ? ॥ ४२ ॥ मेरी प्यारी गोपियो! कहीं तुमलोगोंके मनमें यह आशङ्का तो नहीं हो गयी है कि मैं अकृतज्ञ हूँ और ऐसा समझकर तुमलोग हमसे बुरा तो नहीं मानने लगी हो ? निस्सन्देह भगवान् ही प्राणियोंके संयोग और वियोगके कारण हैं ॥ ४३ ॥ जैसे वायु बादलों, तिनकों, रूई और धूलके कणोंको एक दूसरेसे मिला देती है, और फिर स्वच्छन्दरूपसे उन्हें अलग-अलग कर देती है, वैसे ही समस्त पदार्थोंके निर्माता भगवान् भी सबका संयोग-वियोग अपने इच्छानुसार करते रहते हैं ॥ ४४ ॥ सखियो! यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि तुम सब लोगोंको मेरा वह प्रेम प्राप्त हो चुका है, जो मेरी ही प्राप्ति करानेवाला है। क्योंकि मेरे प्रति की हुई प्रेम-भक्ति प्राणियोंको अमृतत्व (परमानन्द-धाम) प्रदान करनेमे समर्थ है ॥ ४५ ॥ प्यारी गोपियो! जैसे घट, पट आदि जितने भी भौतिक पदार्थ हैं, उनके आदि, अन्त और मध्यमें, बाहर और भीतर, उनके मूल कारण पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि तथा आकाश ही ओतप्रोत हो रहे हैं, वैसे ही जितने भी पदार्थ हैं, उनके पहले, पीछे, बीचमें, बाहर और भीतर केवल मैं-ही-मैं हूँ ॥४६॥ इसी प्रकार सभी प्राणियोंके शरीरमे यही पाँचों भूत कारणरूपसे स्थित हैं और आत्मा भोक्ताके रूपसे अथवा जीवके रूपसे स्थित है। परन्तु मैं इन दोनोंसे परे अविनाशी सत्य हूँ। ये दोनों मेरे ही अंदर प्रतीत हो रहे हैं, तुमलोग ऐसा अनुभव करो॥४७॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार गोपियोंको अध्यात्मज्ञानकी शिक्षासे शिक्षित किया। उसी उपदेशके बार बार स्मरणसे गोपियोंका जीवकोश—लिङ्गशरीर नष्ट हो गया और वे भगवान्से एक हो गयीं, भगवान्को ही सदा-सर्वदाके लिये प्राप्त हो गयीं ॥४८॥ उन्होंने कहा—'हे कमल-नाभ! अगाधबोधसम्पन्न बड़े-बड़े योगेश्वर अपने हृदय-कमलमें आपके चरणकमलोंका चिन्तन करते रहते है। जो लोग संसारके कूएँमें गिरे हुए हैं, उन्हें उससे निकलनेके लिये आपके चरणकमल ही एकमात्र अव-लम्बन हैं। प्रभो! आप ऐसी कृपा कीजिये कि आपका वह चरणकमल, घर-गृहस्थके काम करते रहनेपर भी सदा-सर्वदा हमारे हृदयमें विराजमान रहे, हम एक क्षणके लिये भी उसे न भूलें ॥ ४९ ॥

तिरासीवाँ अध्याय

भगवान्‌की पटरानियोंके साथ द्रौपदीकी बातचीत

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्‌ ! भगवान् श्रीकृष्ण ही गोपियोंको शिक्षा देनेवाले हैं और वही उस शिक्षाके द्वारा प्राप्त होनेवाली वस्तु हैं। इसके पहले, जैसा कि वर्णन किया गया है, भगवान् श्रीकृष्णने उनपर महान् अनुग्रह किया। अब उन्होंने धर्मराज युधिष्ठिर तथा अन्य समस्त सम्बन्धियोंसे कुशल-मङ्गल पूछा ॥ १ ॥ भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंका दर्शन करनेसे ही उनके सारे अशुभ नष्ट हो चुके थे। अब जब भगवान् श्रीकृष्णने उनका सत्कार किया, कुशल-मङ्गल पूछा, तब वे अत्यन्त आनन्दित होकर उनसे कहने लगे—॥ २ ॥ 'भगवन् ! बड़े-बड़े महापुरुष मन-ही-मन आपके चरणारविन्दका मकरन्दरस पान करते रहते हैं। कभी-कभी उनके मुखकमलसे लीला-कथाके रूपमें वह रस छलक पड़ता है। प्रभो ! वह इतना अद्भुत दिव्य रस है कि कोई भी प्राणी उसको पी ले तो वह जन्म-मृत्युके चक्करमें डालनेवाली विस्मृति अथवा अविद्याको नष्ट कर देता है। उसी रसको जो लोग अपने कानोंके दोनोंमें भर-भरकर जीभर पीते हैं, उनके अमङ्गलकी आशङ्का ही क्या है ? ॥ ३ ॥ भगवन् ! आप एकरस ज्ञानस्वरूप और अखण्ड आनन्दके समुद्र हैं। बुद्धि-वृत्तियोंके कारण होनेवाली जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति—ये तीनों अवस्थाएँ आपके स्वयंप्रकाश स्वरूपतक पहुँच ही नहीं पातीं, दूरसे ही नष्ट हो जाती हैं। आप परमहंसोंकी एकमात्र गति हैं। समयके फेरसे वेदोंका ह्रास होते देखकर उनकी रक्षाके लिये आपने अपनी अचिन्त्य योगमायाके द्वारा मनुष्यका-सा शरीर ग्रहण किया है। हम आपके चरणोंमें बार-बार नमस्कार करते हैं' ॥ ४ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्‌ ! जिस समय दूसरे लोग इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति कर रहे थे, उसी समय यादव और कौरव-कुलकी स्त्रियाँ एकत्र होकर आपसमें भगवान्‌की त्रिभुवन-विख्यात लीलाओंका वर्णन कर रही थीं। अब मैं तुम्हें उन्हींकी बातें सुनाता हूँ ॥ ५ ॥

द्रौपदीने कहा—हे रुक्मिणी, भद्रे, हे जाम्बवती, सत्ये, हे सत्यभामे, कालिन्दी, शैब्ये, लक्ष्मणे, रोहिणी और अन्यान्य श्रीकृष्णपत्नियो ! तुमलोग हमें यह तो बताओ कि स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने अपनी मायासे लोगोंका अनुकरण करते हुए तुमलोगोंका किस प्रकार पाणिग्रहण किया ? ॥ ६-७ ॥

रुक्मिणीजीने कहा—द्रौपदीजी ! जरासन्ध आदि सभी राजा चाहते थे कि मेरा विवाह शिशुपालके साथ हो; इसके लिये सभी शस्त्रास्त्रसे सुसज्जित होकर युद्धके लिये तैयार थे। परन्तु भगवान् मुझे वैसे ही हर लाये, जैसे सिंह बकरी और भेड़ोंके झुंडमेंसे अपना भाग छीन ले जाय। क्यों न हो—जगत्‌में जितने भी अजेय वीर हैं, उनके मुकुटोंपर इन्हींकी चरणधूलि शोभायमान होती है। द्रौपदीजी ! मेरी तो यही अभिलाषा है कि भगवान्‌के वे ही समस्त सम्पत्ति और सौन्दर्यके आश्रय चरणकमल जन्म-जन्म मुझे आराधना करनेके लिये प्राप्त होते रहें, मैं उन्हींकी सेवामें लगी रहूँ ॥ ८ ॥

सत्यभामाने कहा—द्रौपदीजी ! मेरे पिताजी अपने भाई प्रसेनकी मृत्युसे बहुत दुखी हो रहे थे, अतः उन्होंने उनके वधका कलङ्क भगवान्‌पर ही लगाया। उस कलङ्कको दूर करनेके लिये भगवान्‌ने ऋक्षराज जाम्बवान्‌पर विजय प्राप्त की और वह रत्न लाकर मेरे पिताको दे दिया। अब तो मेरे पिताजी मिथ्या कलङ्क लगानेके कारण डर गये। अतः यद्यपि वे दूसरेको मेरा वाग्दान कर चुके थे, फिर भी उन्होंने मुझे स्यमन्तक मणिके साथ भगवान्‌के चरणोंमें ही समर्पित कर दिया ॥ ९ ॥

जाम्बवतीने कहा—द्रौपदीजी ! मेरे पिता ऋक्षराज जाम्बवान्‌को इस बातका पता न था कि यही मेरे स्वामी भगवान् सीतापति हैं। इसलिये वे इनसे सत्ताईस दिनतक लड़ते रहे। परन्तु जब परीक्षा पूरी हुई, उन्होंने जान लिया कि ये भगवान् राम ही हैं, तब इनके चरणकमल पकड़कर स्यमन्तकमणिके साथ उपहारके रूपमें मुझे समर्पित कर दिया। मैं यही चाहती हूँ कि जन्म-जन्म इन्हींकी दासी बनी रहूँ ॥ १० ॥

कालिन्दीने कहा—द्रौपदीजी ! जब भगवान्‌को यह मालूम हुआ कि मैं उनके चरणोंका स्पर्श करनेकी आशा-अभिलाषासे तपस्या कर रही हूँ, तब वे अपने सखा अर्जुनके साथ यमुना-तटपर आये और मुझे स्वीकार कर लिया। मैं उनका घर बुहारनेवाली उनकी दासी हूँ ॥ ११ ॥

मित्रविन्दाने कहा—द्रौपदीजी ! मेरा स्वयंवर हो रहा था। वहाँ आकर भगवान्‌ने सब राजाओंको जीत लिया और जैसे सिंह झुंड-के-झुंड कुत्तोंमेंसे अपना भाग ले जाय, वैसे ही मुझे अपनी शोभामयी द्वारकापुरीमें ले आये। मेरे भाइयोंने भी मुझे भगवान्‌से छुड़ाकर मेरा अपकार करना चाहा, परन्तु उन्होंने उन्हें भी नीचा दिखा दिया। मैं ऐसा चाहती हूँ कि मुझे जन्म-जन्म उनके पाँव पखारनेका सौभाग्य प्राप्त होता रहे ॥ १२ ॥

सत्याने कहा—द्रौपदीजी ! मेरे पिताजीने मेरे स्वयंवरमें आये हुए राजाओंके बल-पौरुषकी परीक्षाके लिये बड़े बलवान् और पराक्रमी, तीखे सींगवाले सात बैल रख छोड़े थे। उन बैलोंने बड़े-बड़े वीरोंका घमंड चूर-चूर कर दिया था। उन्हें भगवान्‌ने खेल-खेलमें ही झपटकर पकड़ लिया, नाथ लिया और बाँध दिया; ठीक वैसे ही, जैसे छोटे-छोटे बच्चे बकरीके बच्चोंको पकड़ लेते हैं ॥ १३ ॥ इस प्रकार भगवान् बल-पौरुषके द्वारा मुझे प्राप्त कर चतुरङ्गिणी सेना और दासियोंके साथ द्वारका ले आये। मार्गमें जिन क्षत्रियोंने विघ्न डाला, उन्हें जीत भी लिया। मेरी यही अभिलाषा है कि मुझे इनकी सेवाका अवसर सदा-सर्वदा प्राप्त होता रहे ॥ १४ ॥

भद्राने कहा—द्रौपदीजी ! भगवान् मेरे मामाके पुत्र हैं। मेरा चित्त इन्हींके चरणोंमें अनुरक्त हो गया था। जब मेरे पिताजीको यह बात मालूम हुई, तब उन्होंने स्वयं ही भगवान्‌को बुलाकर अक्षौहिणी सेना और बहुत-सी दासियोंके साथ मुझे इन्हींके चरणोंमें समर्पित कर दिया ॥ १५ ॥ मैं अपना परम कल्याण इसीमें समझती हूँ कि कर्मके अनुसार मुझे जहाँ-जहाँ जन्म लेना पड़े, सर्वत्र इन्हींके चरणकमलोंका संस्पर्श प्राप्त होता रहे ॥ १६ ॥

लक्ष्मणाने कहा—रानीजी ! देवर्षि नारद बार-बार भगवान्‌के अवतार और लीलाओंका गान करते रहते थे। उसे सुनकर और यह सोचकर कि लक्ष्मीजीने समस्त लोकपालोंका त्याग करके भगवान्‌का ही वरण किया, मेरा चित्त भगवान्‌के चरणोंमें आसक्त हो गया ॥ १७ ॥ साध्वी ! मेरे पिता बृहत्सेन मुझपर बहुत प्रेम रखते थे। जब उन्हें मेरा अभिप्राय मालूम हुआ, तब उन्होंने मेरी इच्छाकी पूर्तिके लिये यह उपाय किया ॥ १८ ॥ महारानी ! जिस प्रकार पाण्डववीर अर्जुनकी प्राप्तिके लिये आपके पिताने स्वयंवरमें मत्स्य-वेधका आयोजन किया था, उसी प्रकार मेरे पिताने भी किया। आपके स्वयंवरकी अपेक्षा हमारे यहाँ यह विशेषता थी कि मत्स्य बाहरसे ढका हुआ था, केवल जलमें ही उसकी परछाईं दीख पड़ती थी ॥ १९ ॥ जब यह समाचार राजाओंको मिला, तब सब ओरसे समस्त अस्त्र-शस्त्रोंके तत्त्वज्ञ हजारों राजा अपने-अपने गुरुओंके साथ मेरे पिताजीकी राजधानीमें आने लगे ॥ २० ॥ मेरे पिताजीने आये हुए सभी राजाओंका बल-पौरुष और अवस्थाके अनुसार भलीभाँति स्वागत-सत्कार किया। उन लोगोंने मुझे प्राप्त करनेकी इच्छासे स्वयंवर-सभामें रक्खे हुए धनुष और बाण उठाये ॥ २१ ॥ उनमेंसे कितने ही राजा तो धनुषपर ताँत भी न चढ़ा सके। उन्होंने धनुषको ज्यों-का-त्यों रख दिया। कइयोंने धनुषकी डोरीको एक सिरेसे बाँधकर दूसरे सिरेतक खींच तो लिया, परन्तु वे उसे दूसरे सिरेसे बाँध न सके, उसका झटका लगनेसे गिर पड़े ॥ २२ ॥ रानीजी ! बड़े-बड़े प्रसिद्ध वीर—जैसे जरासन्ध, अम्बष्ठ-नरेश, शिशुपाल, भीमसेन, दुर्योधन और कर्ण—इन लोगोंने धनुषपर डोरी तो चढ़ा ली; परन्तु उन्हें मछलीकी स्थितिका पता न चला ॥ २३ ॥ पाण्डववीर अर्जुनने जलमें उस मछलीकी परछाईं देख ली और यह भी जान लिया कि वह कहाँ है। बड़ी सावधानीसे उन्होंने बाण छोड़ा भी, परन्तु उससे लक्ष्यवेध न हुआ, उनके बाणने केवल उसका स्पर्शमात्र किया ॥ २४ ॥

रानीजी ! इस प्रकार बड़े-बड़े अभिमानियोंका मान मर्दन हो गया। अधिकांश नरपतियोंने मुझे पानेकी लालसा एवं साथ-ही-साथ लक्ष्यवेधकी चेष्टा भी छोड़

दी। तब भगवान्‌ने धनुष उठाकर खेल-खेलमें—अनायास ही उसपर डोरी चढ़ा दी, बाण साधा और जलमें केवल एक बार मछलीकी परछाईं देखकर बाण मारा तथा उसे नीचे गिरा दिया। उस समय ठीक दोपहर हो रहा था, सर्वार्थसाधक 'अभिजित्' नामक मुहूर्त बीत रहा था ॥ २५-२६ ॥ देवीजी! उस समय पृथ्वीमें जय-जयकार होने लगा और आकाशमें दुन्दुभियाँ बजने लगीं। बड़े-बड़े देवता आनन्द-विह्वल होकर पुष्पोंकी वर्षा करने लगे ॥ २७ ॥ रानीजी! उसी समय मैंने रंगशालामें प्रवेश किया। मेरे पैरोंके पायजेब रुनझुन-रुनझुन बोल रहे थे। मैंने नये-नये उत्तम रेशमी वस्त्र धारण कर रक्खे थे। मेरी चोटियोंमें मालाएँ गुँथी हुई थीं और मुँहपर लज्जामिश्रित मुसकराहट थी। मैं अपने हाथोंमें रत्नोंका हार लिये हुए थी, जो बीच-बीचमें लगे हुए सोनेके कारण और भी दमक रहा था। रानीजी! उस समय मेरा मुखमण्डल घनी घुँघराली अलकोंसे सुशोभित हो रहा था तथा कपोलोंपर कुण्डलोंकी आभा पड़नेसे वह और भी दमक उठा था। मैंने एक बार अपना मुख उठाकर चन्द्रमाकी किरणोंके समान सुशीतल हास्यरेखा और तिरछी चितवनसे चारों ओर बैठे हुए राजाओंकी ओर देखा, फिर धीरेसे अपनी वरमाला भगवान्‌के गलेमें डाल दी। यह तो कह ही चुकी हूँ कि मेरा हृदय पहलेसे ही भगवान्‌के प्रति अनुरक्त था ॥ २८-२९ ॥ मैंने ज्यों ही वरमाला पहनायी त्यों ही मृदङ्ग, पखावज, शङ्ख, ढोल, नगारे आदि बाजे बजने लगे। नट और नर्तकियाँ नाचने लगीं। गवैये गाने लगे ॥ ३० ॥

द्रौपदीजी! जब मैंने इस प्रकार अपने स्वामी प्रियतम भगवान्‌को वरमाला पहना दी, उन्हें वरण कर लिया, तब कामातुर राजाओंको बड़ा डाह हुआ। वे बहुत ही चिढ़ गये ॥ ३१ ॥ चतुर्भुज भगवान्‌ने अपने श्रेष्ठ चार घोड़ोंवाले रथपर मुझे चढ़ा लिया और हाथमें शार्ङ्गधनुष लेकर तथा कवच पहनकर युद्ध करनेके लिये वे रथपर खड़े हो गये ॥ ३२ ॥ पर रानीजी! दारुकने सोनेके साज-सामानसे लदे हुए रथको सब राजाओंके सामने ही द्वारकाके लिये हाँक दिया, जैसे कोई सिंह हरिनोंके बीचसे अपना भाग ले जाय ॥ ३३ ॥ उनमेंसे कुछ राजाओंने धनुष लेकर युद्धके लिये सज-धजकर इस उद्देश्यसे रास्तेमें पीछा किया कि हम भगवान्‌को रोक लें; परन्तु रानीजी! उनकी चेष्टा ठीक वैसी ही थी, जैसे कुत्ते सिंहको रोकना चाहें ॥ ३४ ॥ शार्ङ्ग-धनुषके छूटे हुए तीरोंसे किसीकी बाँह कट गयी तो किसीके पैर कटे और किसीकी गर्दन ही उतर गयी। बहुत-से लोग तो उस रणभूमिमें ही सदाके लिये सो गये और बहुत-से युद्धभूमि छोड़कर भाग खड़े हुए ॥ ३५ ॥

तदनन्तर यदुवंशशिरोमणि भगवान्‌ने सूर्यकी भाँति अपने निवासस्थान स्वर्ग और पृथ्वीमें सर्वत्र प्रशंसित द्वारका-नगरीमें प्रवेश किया। उस दिन वह विशेषरूपसे सजायी गयी थी। इतनी झंडियाँ, पताकाएँ और तोरण लगाये गये थे कि उनके कारण सूर्यका प्रकाश धरती-तक नहीं आ पाता था ॥ ३६ ॥ मेरी अभिलाषा पूर्ण हो जानेसे पिताजीको बहुत प्रसन्नता हुई। उन्होंने अपने हितैषी-सुहृदों, सगे-सम्बन्धियों और भाई-बन्धुओंको बहुमूल्य वस्त्र, आभूषण, शय्या, आसन और विविध प्रकारकी सामग्रियाँ देकर सम्मानित किया ॥ ३७ ॥ भगवान् परिपूर्ण हैं—तथापि मेरे पिताजीने प्रेमवश उन्हें बहुत-सी दासियाँ, सब प्रकारकी सम्पत्तियाँ, सैनिक, हाथी, रथ, घोड़े एवं बहुत-से बहुमूल्य अस्त्र-शस्त्र समर्पित किये ॥ ३८ ॥ रानीजी! हमने पूर्वजन्ममें सबकी आसक्ति छोड़कर कोई बहुत बड़ी तपस्या की होगी। तभी तो हम इस जन्ममें आत्माराम भगवान्‌की गृह-दासियाँ हुई हैं ॥ ३९ ॥

सोलह हजार पत्नियोंकी ओरसे रोहिणीजीने कहा—भौमासुरने दिग्विजयके समय बहुत-से राजाओंको जीतकर उनकी कन्या हमलोगोंको अपने महलमें बंदी बना रक्खा था। भगवान्‌ने यह जानकर युद्धमें भौमासुर और उसकी सेनाका संहार कर डाला और स्वयं पूर्णकाम होनेपर भी उन्होंने हमलोगोंको वहाँसे छुड़ाया तथा पाणिग्रहण करके अपनी दासी बना लिया। रानीजी! हम सदा-सर्वदा उनके उन्हीं चरणकमलोंका चिन्तन करती रहती थीं, जो जन्म-मृत्युरूप संसारसे मुक्त करनेवाले हैं ॥ ४० ॥ साध्वी द्रौपदीजी! हम साम्राज्य, इन्द्रपद अथवा इन दोनोंके भोग, अणिमा

आदि ऐश्वर्य, ब्रह्माका पद, मोक्ष अथवा सालोक्य, सारूप्य आदि मुक्तियाँ—कुछ भी नहीं चाहतीं। हम केवल इतना ही चाहती हैं कि अपने प्रियतम प्रभुके सुकोमल चरणकमलोंकी वह श्रीरज सर्वदा अपने सिरपर वहन किया करें, जो लक्ष्मीजीके वक्षःस्थलपर लगी हुई केशरकी सुगन्धसे युक्त है ॥ ४१-४२ ॥ उदारशिरोमणि भगवान्‌के जिन चरणकमलोंका स्पर्श उनके गौ चराते समय गोप, गोपियाँ, भीलिनें, तिनके और घास-लताएँतक करना चाहती थीं, उन्हींकी हमें भी चाह है ॥ ४३ ॥

चौरासीवाँ अध्याय

वसुदेवजीका यज्ञोत्सव

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! सर्वात्मा भक्त-भयहारी भगवान् श्रीकृष्णके प्रति उनकी पत्नियोंका कितना प्रेम है—यह बात कुन्ती, गान्धारी, द्रौपदी, सुभद्रा, दूसरी राजपत्नियों और भगवान्‌की प्रियतमा गोपियोंने भी सुनी। सब-की-सब उनका यह अलौकिक प्रेम देखकर अत्यन्त मुग्ध, अत्यन्त विस्मित हो गयीं। सबके नेत्रोंमें प्रेमके आँसू छलक आये ॥ १ ॥ इस प्रकार जिस समय स्त्रियोंसे स्त्रियाँ और पुरुषोंसे पुरुष बातचीत कर रहे थे, उसी समय बहुत-से ऋषि-मुनि भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीका दर्शन करनेके लिये वहाँ आये ॥२॥ उनमें प्रधान ये थे—श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास, देवर्षि नारद, च्यवन, देवल, असित, विश्वामित्र, शतानन्द, भरद्वाज, गौतम, अपने शिष्योंके सहित भगवान् परशुराम, वसिष्ठ, गालव, भृगु, पुलस्त्य, कश्यप, अत्रि, मार्कण्डेय, बृहस्पति, द्वित, त्रित, एकत, सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, अङ्गिरा, अगस्त्य, याज्ञवल्क्य और वामदेव इत्यादि ॥३—५॥ ऋषियोंको देखकर पहलेसे बैठे हुए नरपतिगण, युधिष्ठिर आदि पाण्डव, भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी सहसा उठकर खड़े हो गये और सबने उन विश्ववन्दित ऋषियोंको प्रणाम किया।६। इसके बाद स्वागत, आसन, पाद्य, अर्घ्य, पुष्पमाला, धूप और चन्दन आदिसे सब राजाओंने तथा बलरामजीके साथ स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने उन सब ऋषियोंकी विधिपूर्वक पूजा की ॥७॥ जब सब ऋषि-मुनि आरामसे बैठ गये, तब धर्मरक्षाके लिये अवतीर्ण भगवान् श्रीकृष्णने उनसे कहा। उस समय वह बहुत बड़ी सभा चुपचाप भगवान्‌का भाषण सुन रही थी ॥ ८ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—धन्य है! हमलोगोंका जीवन सफल हो गया, आज जन्म लेनेका हमें पूरा-पूरा फल मिल गया; क्योंकि जिन योगेश्वरोंका दर्शन बड़े-बड़े देवताओंके लिये भी अत्यन्त दुर्लभ है, उन्हींका दर्शन हमें प्राप्त हुआ है ॥ ९ ॥ जिन्होंने बहुत थोड़ी तपस्या की है और जो लोग अपने इष्टदेवको समस्त प्राणियोंके हृदयमें न देखकर केवल मूर्तिविशेषमें ही उनका दर्शन करते हैं, उन्हें आपलोगोंके दर्शन, स्पर्श, कुशल-प्रश्न, प्रणाम और पादपूजन आदिका सुअवसर भला कब मिल सकता है! ॥ १० ॥ केवल जलमय तीर्थ ही तीर्थ नहीं कहलाते और केवल मिट्टी या पत्थरकी प्रतिमाएँ ही देवता नहीं होतीं, संत पुरुष ही वास्तवमें तीर्थ और देवता हैं, क्योंकि उनका बहुत समयतक सेवन किया जाय, तब वे पवित्र करते हैं, परन्तु संत पुरुष तो दर्शनमात्रसे ही कृतार्थ कर देते हैं ॥ ११ ॥ अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, तारे, पृथ्वी, जल, आकाश, वायु, वाणी और मनके अधिष्ठातृ देवता उपासना करनेपर भी पापका पूरा-पूरा नाश नहीं कर सकते, क्योंकि उनकी उपासनासे भेद-बुद्धिका नाश नहीं होता, वह और भी बढ़ती है। परन्तु यदि घड़ी-दो-घड़ी भी ज्ञानी महापुरुषोंकी सेवा की जाय तो वे सारे पाप-ताप मिटा देते हैं, क्योंकि वे भेद-बुद्धिके विनाशक हैं॥ १२ ॥ महात्माओ और सभासदो! जो मनुष्य वात, पित्त और कफ—इन तीन धातुओंसे बने हुए शवतुल्य शरीरको ही आत्मा—अपना 'मैं', स्त्री-पुत्र आदिको ही अपना और मिट्टी, पत्थर, काष्ठ आदि पार्थिव विकारोंको ही इष्टदेव मानता है तथा जो केवल जलको ही तीर्थ समझता है—ज्ञानी महापुरुषोंको नहीं, वह मनुष्य होनेपर भी पशुओंमें भी नीच गधा ही है ॥ १३ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्ण अखण्ड ज्ञानसम्पन्न हैं। उनका यह गूढ भाषण सुनकर सब-के-सब ऋषि-मुनि चुप रह गये। उनकी बुद्धि चक्करमें पड़ गयी, वे समझ न सके कि भगवान् यह क्या कह रहे हैं॥ १४॥ उन्होंने बहुत देरतक विचार करनेके बाद यह निश्चय किया कि भगवान् सर्वेश्वर होनेपर भी जो इस प्रकार सामान्य, कर्म-परतन्त्र जीवकी भाँति व्यवहार कर रहे हैं—यह केवल लोक-संग्रहके लिये ही है। ऐसा समझकर वे मुसकराते हुए जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्णसे कहने लगे॥१५॥

मुनियोंने कहा—भगवन् ! आपकी मायासे प्रजापतियोंके अधीश्वर मरीचि आदि तथा बड़े-बड़े तत्त्वज्ञानी हमलोग मोहित हो रहे हैं। आप स्वयं ईश्वर होते हुए भी मनुष्यकी-सी चेष्टाओंसे अपनेको छिपाये रखकर जीवकी भाँति आचरण करते हैं। भगवन् ! सचमुच आपकी लीला अत्यन्त विचित्र है। परम आश्चर्यमयी है॥१६॥ जैसे पृथ्वी अपने विकारों—वृक्ष, पत्थर, घट आदिके द्वारा बहुत-से नाम और रूप ग्रहण कर लेती है, वास्तवमें वह एक ही है, वैसे ही आप एक और चेष्टाहीन होनेपर भी अनेक रूप धारण कर लेते हैं और अपने आपसे ही इस जगत्‌की रचना, रक्षा और संहार करते हैं। पर यह सब करते हुए भी इन कर्मोंसे लिप्त नहीं होते। जो सजातीय, विजातीय और स्वगत भेदशून्य एकरस अनन्त है, उसका यह चरित्र लीलामात्र नहीं तो और क्या है ? धन्य है आपकी यह लीला ! ॥ १७॥ भगवन् ! यद्यपि आप प्रकृतिसे परे, स्वयं परब्रह्म परमात्मा हैं; तथापि समय-समयपर भक्तजनोंकी रक्षा और दुष्टोंका दमन करनेके लिये विशुद्ध सत्त्वमय श्रीविग्रह प्रकट करते हैं और अपनी लीलाके द्वारा सनातन वैदिक मार्गकी रक्षा करते हैं; क्योंकि सभी वर्णों और आश्रमोंके रूपमें आप स्वयं ही प्रकट हैं॥ १८॥ भगवन् ! वेद आपका विशुद्ध हृदय है; तपस्या, स्वाध्याय, धारणा, ध्यान और समाधिके द्वारा उसीमें आपके साकार-निराकार रूप और दोनोंके अधिष्ठानस्वरूप परब्रह्म परमात्माका साक्षात्कार होता है॥ १९॥ परमात्मन् ! ब्राह्मण ही वेदोंके आधारभूत आपके स्वरूपकी उपलब्धिके स्थान हैं; इसीसे आप ब्राह्मणोंका सम्मान करते हैं और इसीसे आप ब्राह्मण-भक्तोंमें अग्रगण्य भी हैं॥ २०॥ आप सर्वविध कल्याण-साधनोंकी चरम सीमा हैं और संत पुरुषोंकी एकमात्र गति हैं। आपसे मिलकर आज हमारे जन्म, विद्या, तप और ज्ञान सफल हो गये। वास्तवमें सबके परम फल आप ही हैं॥ २१॥ प्रभो ! आपका ज्ञान अनन्त है, आप स्वयं सच्चिदानन्दस्वरूप परब्रह्म परमात्मा भगवान् हैं। आपने अपनी अचिन्त्य शक्ति योगमायाके द्वारा अपनी महिमा छिपा रक्खी है; हम आपको नमस्कार करते हैं॥२२॥ ये सभामें बैठे हुए राजालोग और दूसरोंकी तो बात ही क्या, स्वयं आपके साथ आहार-विहार करनेवाले यदुवंशी लोग भी आपको वास्तवमें नहीं जानते; क्योंकि आपने अपने स्वरूपको—जो सबका आत्मा, जगत्‌का आदिकारण और नियन्ता है—मायाके परदेसे ढक रक्खा है॥ २३॥ जब मनुष्य स्वप्न देखने लगता है, उस समय स्वप्नके मिथ्या पदार्थोंको ही सत्य समझ लेता है और नाममात्रकी इन्द्रियोंसे प्रतीत होनेवाले अपने स्वप्नशरीरको ही वास्तविक शरीर मान बैठता है। उसे उतनी देरके लिये इस बातका बिल्कुल ही पता नहीं रहता कि स्वप्नशरीरके अतिरिक्त एक जाग्रत्-अवस्थाका शरीर भी है॥२४॥ ठीक इसी प्रकार, जाग्रत्-अवस्थामें भी इन्द्रियोंकी प्रवृत्तिरूप मायासे चित्त मोहित होकर नाममात्रके विषयोंमें भटकने लगता है। उस समय भी चित्तके चक्करसे विवेकशक्ति ढक जाती है और जीव यह नहीं जान पाता कि आप इस जाग्रत् संसारसे परे हैं॥ २५॥ प्रभो ! बड़े-बड़े ऋषि-मुनि अत्यन्त परिपक्व योग-साधनाके द्वारा आपके उन चरणकमलोंको हृदयमें धारण करते हैं, जो समस्त पाप-राशिको नष्ट करनेवाले गङ्गाजलके भी आश्रयस्थान हैं। यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि आज हमें उन्हींका दर्शन हुआ है। प्रभो ! हम आपके भक्त हैं, आप हमपर अनुग्रह कीजिये; क्योंकि आपके परम पदकी प्राप्ति उन्हीं लोगोंको होती है, जिनका लिङ्गशरीररूप जीव-कोश आपकी उत्कृष्ट भक्तिके द्वारा नष्ट हो जाता है॥ २६॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजर्षे ! भगवान्‌की इस

प्रकार स्तुति करके और उनसे, राजा धृतराष्ट्रसे तथा धर्मराज युधिष्ठिरजीसे अनुमति लेकर उन लोगोंने अपने-अपने आश्रमपर जानेका विचार किया ॥ २७ ॥ परम यशस्वी वसुदेवजी उनका जानेका विचार देखकर उनके पास आये और उन्हें प्रणाम किया और उनके चरण पकड़कर बड़ी नम्रतासे निवेदन करने लगे ॥ २८ ॥

वसुदेवजीने कहा—ऋषियो ! आपलोग सर्वदेवस्वरूप हैं। मैं आपलोगोंको नमस्कार करता हूँ। आपलोग कृपा करके मेरी एक प्रार्थना सुन लीजिये। वह यह कि जिन कर्मोंके अनुष्ठानसे कर्मों और कर्मवासनाओंका आत्यन्तिक नाश—मोक्ष हो जाय, उनका आप मुझे उपदेश कीजिये ॥ २९ ॥

नारदजीने कहा—ऋषियो ! यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है कि वसुदेवजी श्रीकृष्णको अपना बालक समझकर शुद्ध जिज्ञासाके भावसे अपने कल्याणका साधन हमलोगोंसे पूछ रहे हैं ॥ ३० ॥ संसारमें बहुत पास रहना मनुष्योंके अनादरका कारण हुआ करता है। देखते हैं, गङ्गातटपर रहनेवाला पुरुष गङ्गाजल छोड़कर अपनी शुद्धिके लिये दूसरे तीर्थमें जाता है ॥ ३१ ॥ श्रीकृष्णकी अनुभूति समयके फेरसे होनेवाली जगत्‌की सृष्टि, स्थिति और प्रलयसे मिटनेवाली नहीं है। वह स्वतः किसी दूसरे निमित्तसे, गुणोंसे और किसीसे भी क्षीण नहीं होती ॥ ३२ ॥ उनका ज्ञानमय स्वरूप अविद्या, राग-द्वेष आदि क्लेश, पुण्य-पापमय कर्म, सुख-दुःखादि कर्मफल तथा सत्त्व आदि गुणोंके प्रवाहसे खण्डित नहीं है। वे स्वयं अद्वितीय परमात्मा हैं। जब वे अपनेको अपनी ही शक्तियों—प्राण आदिसे ढक लेते है, तब मूर्खलोग ऐसा समझते हैं कि वे ढक गये; जैसे बादल, कुहरा या ग्रहणके द्वारा अपने नेत्रोंके ढक जानेपर सूर्यको ढका हुआ मान लेते हैं ॥ ३३ ॥

परीक्षित् ! इसके बाद ऋषियोंने भगवान् श्रीकृष्ण, बलरामजी और अन्यान्य राजाओंके सामने ही वसुदेवजीको सम्बोधित करके कहा—॥३४॥ 'कर्मोंके द्वारा कर्मवासनाओं और कर्मफलोंका आत्यन्तिक नाश करनेका सबसे अच्छा उपाय यह है कि यज्ञ आदिके द्वारा समस्त यज्ञोंके अधिपति भगवान् विष्णुकी श्रद्धापूर्वक आराधना करे ॥ ३५ ॥ त्रिकालदर्शी ज्ञानियोंने शास्त्रदृष्टिसे यही चित्तकी शान्तिका उपाय सुगम मोक्षसाधन और चित्तमें आनन्दका उल्लास करनेवाला धर्म बतलाया है ॥ ३६ ॥ अपने न्यायार्जित धनसे श्रद्धापूर्वक पुरुषोत्तम भगवान्‌की आराधना करना ही द्विजाति—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य गृहस्थके लिये परम कल्याणका मार्ग है ॥३७॥ वसुदेवजी ! विचारवान् पुरुषको चाहिये कि यज्ञ, दान आदिके द्वारा धनकी इच्छाको, गृहस्थोचित भोगोंद्वारा स्त्री-पुत्रकी इच्छाको और कालक्रमसे स्वर्गादि भोग भी नष्ट हो जाते हैं—इस विचारसे लोकैषणाको त्याग दे। इस प्रकार धीर पुरुष घरमें रहते हुए ही तीनों प्रकारकी एषणाओं—इच्छाओंका परित्याग करके तपोवनका रास्ता लिया करते थे ॥ ३८ ॥ समर्थ वसुदेवजी ! ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—ये तीनों देवता, ऋषि और पितरोंका ऋण लेकर ही पैदा होते हैं। इनके ऋणोंसे छुटकारा मिलता है यज्ञ, अध्ययन और सन्तानोत्पत्तिसे। इनसे उऋण हुए बिना ही जो संसारका त्याग करता है, उसका पतन हो जाता है ॥ ३९ ॥ परम बुद्धिमान् वसुदेवजी ! आप अबतक ऋषि और पितरोंके ऋणसे तो मुक्त हो चुके हैं। अब यज्ञोंके द्वारा देवताओंका ऋण चुका दीजिये; और इस प्रकार सबसे उऋण होकर गृहत्याग कीजिये, भगवान्‌की शरण हो जाइये ॥४०॥ वसुदेवजी ! आपने अवश्य ही परम भक्तिसे जगदीश्वर भगवान्‌की आराधना की है, तभी तो वे आप दोनोंके पुत्र हुए हैं ॥ ४१ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! परम मनस्वी वसुदेवजीने ऋषियोंकी यह बात सुनकर, उनके चरणोंमें सिर रखकर प्रणाम किया, उन्हें प्रसन्न किया और यज्ञके लिये ऋत्विजोंके रूपमें उनका वरण कर लिया ॥ ४२ ॥ राजन् ! जब इस प्रकार वसुदेवजीने धर्मपूर्वक ऋषियोंको वरण कर लिया, तब उन्होंने पुण्यक्षेत्र कुरुक्षेत्रमें परम धार्मिक वसुदेवजीके द्वारा उत्तमोत्तम सामग्रीसे युक्त यज्ञ करवाये ॥ ४३ ॥ परीक्षित् ! जब वसुदेवजीने यज्ञकी दीक्षा ले ली, तब यदुवंशियोंने स्नान

करके सुन्दर वस्त्र और कमलोंकी मालाएँ धारण कर लीं; राजालोग वस्त्राभूषणोंसे खूब सुसज्जित हो गये ॥४४॥ वसुदेवजीकी पत्नियोंने सुन्दर वस्त्र, अङ्गराग और सोनेके हारोंसे अपनेको सजा लिया और फिर वे सब बड़े आनन्दसे अपने-अपने हाथोंमें माङ्गलिक सामग्री लेकर यज्ञशालामें आयीं ॥ ४५ ॥ उस समय मृदङ्ग, पखावज, शङ्ख, ढोल और नगारे आदि बाजे बजने लगे। नट और नर्तकियाँ नाचने लगीं। सूत और मागध स्तुति-गान करने लगे। गन्धर्वोंके साथ सुरीले गलेवाली गन्धर्व-पत्नियाँ गान करने लगीं ॥ ४६ ॥ वसुदेवजीने पहले नेत्रोंमें अंजन और शरीरमें मक्खन लगा लिया; फिर उनकी देवकी आदि अठारह पत्नियोंके साथ उन्हें ऋत्विजोंने महाभिषेककी विधिसे वैसे ही अभिषेक कराया, जिस प्रकार प्राचीन कालमे नक्षत्रोंके साथ चन्द्रमाका अभिषेक हुआ था ॥ ४७ ॥ उस समय यज्ञमे दीक्षित होनेके कारण वसुदेवजी तो मृगचर्म धारण किये हुए थे; परन्तु उनकी पत्नियाँ सुन्दर-सुन्दर साड़ी, कगन, हार, पायजेब और कर्णफूल आदि आभूषणोंसे खूब सजी हुई थीं। वे अपनी पत्नियोंके साथ भली-भाँति शोभायमान हुए ॥ ४८ ॥ महाराज ! वसुदेवजीके ऋत्विज और सदस्य रत्नजटित आभूषण तथा रेशमी वस्त्र धारण करके वैसे ही सुशोभित हुए, जैसे पहले इन्द्रके यज्ञमें हुए थे ॥ ४९ ॥ उस समय भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी अपने अपने भाई-बन्धु और स्त्री-पुत्रोंके साथ इस प्रकार शोभायमान हुए, जैसे अपनी शक्तियोंके साथ समस्त जीवोंके ईश्वर स्वयं भगवान् समष्टि जीवोंके अभिमानी श्रीसङ्कर्षण तथा अपने विशुद्ध नारायणस्वरूपमे शोभायमान होते हैं ॥ ५० ॥

वसुदेवजीने प्रत्येक यज्ञमे ज्योतिष्टोम, दर्श, पूर्णमास आदि प्राकृत यज्ञों, सौरसत्रादि वैकृत यज्ञों और अग्नि-होत्र आदि अन्यान्य यज्ञोंके द्वारा द्रव्य, क्रिया और उनके ज्ञानके—मन्त्रोंके स्वामी विष्णुभगवान्‌की आराधना की ॥ ५१ ॥ इसके बाद उन्होंने उचित समयपर ऋत्विजोंको वस्त्रालङ्कारोंसे सुसज्जित किया और शास्त्रके अनुसार बहुत-सी दक्षिणा तथा प्रचुर धनके साथ अलङ्कृत गौएँ, पृथ्वी और सुन्दरी कन्याएँ दीं ॥ ॥ ५२ ॥ इसके बाद महर्षियोंने पत्नीसंयाज नामक यज्ञाङ्ग और अवभृथस्नान अर्थात् यज्ञान्त-स्नानसम्बन्धी अवशेष कर्म कराकर वसुदेवजीको आगे करके परशुरामजीके बनाये ह्रदमें—रामह्रदमें स्नान किया ॥ ५३ ॥ स्नान करनेके बाद वसुदेवजी और उनकी पत्नियोंने वंदीजनोंको अपने सारे वस्त्राभूषण दे दिये तथा स्वयं नये वस्त्राभूषणसे सुसज्जित होकर उन्होंने ब्राह्मणोंसे लेकर कुत्तोंतकको भोजन कराया ॥ ५४ ॥ तदनन्तर अपने भाई-बन्धुओं, उनके स्त्री-पुत्रों तथा विदर्भ, कोसल, कुरु, काशी, केकय और सृञ्जय आदि देशोंके राजाओं, सदस्यों, ऋत्विजों, देवताओं, मनुष्यों, भूतों, पितरों और चारणोंको विदाईके रूपमें बहुत-सी भेंट देकर सम्मानित किया। वे लोग लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्णकी अनुमति लेकर यज्ञकी प्रशंसा करते हुए अपने-अपने घर चले गये ॥ ५५-५६ ॥ परीक्षित् ! उस समय राजा धृतराष्ट्र, विदुर, युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य, कुन्ती, नकुल, सहदेव, नारद, भगवान् व्यासदेव तथा दूसरे स्वजन, सम्बन्धी और बान्धव अपने हितैषी बन्धु यादवोंको छोड़कर जानेमें अत्यन्त विरह-व्यथाका अनुभव करने लगे। उन्होंने अत्यन्त स्नेहार्द्र चित्तसे यदुवंशियोंका आलिङ्गन किया और बड़ी कठिनाईसे किसी प्रकार अपने-अपने देशको गये। दूसरे लोग भी इनके साथ ही वहाँसे रवाना हो गये ॥ ५७-५८ ॥ परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्ण, बल-रामजी तथा उग्रसेन आदिने नन्दबाबा एवं अन्य सब गोपोंकी बहुत बड़ी-बड़ी सामग्रियोंसे अर्चा-पूजा की; उनका सत्कार किया, और वे प्रेम-परवश होकर बहुत दिनोंतक वहीं रहे ॥ ५९ ॥ वसुदेवजी अनायास ही अपने बहुत बड़े मनोरथका महासागर पार कर गये थे। उनके आनन्दकी सीमा न थी। सभी आत्मीय स्वजन उनके साथ थे। उन्होंने नन्दबाबाका हाथ पकड़कर कहा ॥ ६० ॥

वसुदेवजीने कहा—भाईजी ! भगवान्‌ने मनुष्योंके लिये एक बहुत बड़ा बन्धन बना दिया है। उस बन्धन-का नाम है स्नेह, प्रेमपाश। मैं तो ऐसा समझता हूँ कि बड़े-बड़े शूरवीर और योगी-यति भी उसे तोड़नेमें

असमर्थ हैं ॥ ६१ ॥ आपने हम अकृतज्ञोंके प्रति अनुपम मित्रताका व्यवहार किया है। क्यों न हो, आप-सरीखे संत-शिरोमणियोंका तो ऐसा स्वभाव ही होता है। हम इसका कभी बदला नहीं चुका सकते, आपको इसका कोई फल नहीं दे सकते। फिर भी हमारा यह मैत्री-सम्बन्ध कभी टूटनेवाला नहीं है। आप इसको सदा निभाते रहेंगे ॥ ६२ ॥ भाईजी! पहले तो बंदी-गृहमें बद होनेके कारण हम आपका कुछ भी प्रिय और हित न कर सके। अब हमारी यह दशा हो रही है कि हम धन-सम्पत्तिके नशेसे—श्रीमदसे अंधे हो रहे हैं; आप हमारे सामने है तो भी हम आपकी ओर नहीं देख पाते ॥ ६३ ॥ दूसरोंको सम्मान देकर स्वयं सम्मान न चाहनेवाले भाईजी! जो कल्याणकामी है उसे राज्यलक्ष्मी न मिले—इसीमें उसका भला है; क्योंकि मनुष्य राज्यलक्ष्मीसे अंधा हो जाता है और अपने भाई-बन्धु, स्वजनोंतकको नहीं देख पाता ॥ ६४ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! इस प्रकार कहते-कहते वसुदेवजीका हृदय प्रेमसे गद्गद हो गया। उन्हें नन्दबाबाकी मित्रता और उपकार स्मरण हो आये। उनके नेत्रोंमें प्रेमाश्रु उमड़ आये, वे रोने लगे ॥ ६५ ॥ नन्दजी अपने सखा वसुदेवजीको प्रसन्न करनेके लिये एवं भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीके प्रेमपाशमें बँधकर आज-कल करते-करते तीन महीनेतक वहीं रह गये। यदुवंशियोंने जीभर उनका सम्मान किया ॥ ६६ ॥ इसके बाद बहुमूल्य आभूषण, रेशमी वस्त्र, नाना प्रकारकी उत्तमोत्तम सामग्रियों और भोगोंसे नन्दबाबाको, उनके व्रजवासी साथियोंको और बन्धु-बान्धवोंको खूब तृप्त किया ॥ ६७ ॥ वसुदेवजी, उग्रसेन, श्रीकृष्ण, बलराम, उद्धव आदि यदुवंशियोंने अलग-अलग उन्हें अनेकों प्रकारकी भेटें दीं। उनके बिदा करनेपर उन सब सामग्रियोंको लेकर नन्दबाबा अपने व्रजके लिये रवाना हुए ॥ ६८ ॥ नन्दबाबा, गोपों और गोपियोंका चित्त भगवान् श्रीकृष्णके चरण-कमलोंमें इस प्रकार लग गया कि वे फिर प्रयत्न करनेपर भी उसे वहाँसे लौटा न सके। सुतरां बिना ही मनके उन्होंने मथुराकी यात्रा की ॥ ६९ ॥

जब सब बन्धु-बान्धव वहाँसे बिदा हो चुके, तब भगवान् श्रीकृष्णको ही एकमात्र इष्टदेव माननेवाले यदुवंशियोंने यह देखकर कि अब वर्षा ऋतु आ पहुँची है, द्वारकाके लिये प्रस्थान किया ॥ ७० ॥ वहाँ जाकर उन्होंने सब लोगोंसे वसुदेवजीके यज्ञ-महोत्सव, स्वजन-सम्बन्धियोंके दर्शन-मिलन आदि तीर्थयात्राके प्रसङ्गोंको कह सुनाया ॥ ७१ ॥

पचासीवाँ अध्याय

श्रीभगवान्‌के द्वारा वसुदेवजीको ब्रह्मज्ञानका उपदेश तथा देवकीजीके छः पुत्रोंको लौटा लाना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! इसके बाद एक दिन भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी प्रातःकालीन प्रणाम करनेके लिये माता-पिताके पास गये। प्रणाम कर लेनेपर वसुदेवजी बड़े प्रेमसे दोनों भाइयोंका अभिनन्दन करके कहने लगे ॥ १ ॥ वसुदेवजीने बड़े-बड़े ऋषियोंके मुँहसे भगवान्‌की महिमा सुनी थी तथा उनके ऐश्वर्यपूर्ण चरित्र भी देखे थे। इससे उन्हे इस बातका दृढ़ विश्वास हो गया था कि ये साधारण पुरुष नहीं, स्वयं भगवान् हैं। इसलिये उन्होंने अपने पुत्रोंको प्रेमपूर्वक सम्बोधित करके यों कहा—॥ २ ॥ 'सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण! महायोगीश्वर सङ्कर्षण! तुम दोनों सनातन हो। मैं जानता हूँ कि तुम दोनों सारे जगत्‌के साक्षात् कारणस्वरूप प्रधान और पुरुषके भी नियामक परमेश्वर हो ॥ ३ ॥ इस जगत्‌के आधार, निर्माता और निर्माणसामग्री भी तुम्हीं हो। इस सारे जगत्‌के स्वामी तुम दोनों हो और तुम्हारी ही क्रीडाके लिये इसका निर्माण हुआ है। यह जिस समय, जिस रूपमें जो कुछ रहता है, होता है—वह सब तुम्हीं हो। इस जगत्‌में प्रकृति-रूपसे भोग्य और पुरुषरूपसे भोक्ता तथा दोनोंसे परे

दोनोंके नियामक साक्षात् भगवान् भी तुम्हीं हो ॥४॥ इन्द्रियातीत ! जन्म, अस्तित्व आदि भावविकारोंसे रहित परमात्मन् ! इस चित्र-विचित्र जगत्का तुम्हींने निर्माण किया है और इसमें स्वयं तुमने ही आत्मारूपसे प्रवेश भी किया है। तुम प्राण (क्रियाशक्ति) और जीव (ज्ञानशक्ति) के रूपमे इसका पालन-पोषण कर रहे हो ॥ ५ ॥ क्रियाशक्तिप्रधान प्राण आदिमें जो जगत्की वस्तुओंकी सृष्टि करनेकी सामर्थ्य है, वह उनकी अपनी सामर्थ्य नहीं, तुम्हारी ही है । क्योंकि वे तुम्हारे समान चेतन नहीं, अचेतन हैं; स्वतन्त्र नहीं, परतन्त्र हैं । अतः उन चेष्टाशील प्राण आदिमें केवल चेष्टामात्र होती है, शक्ति नहीं । शक्ति तो तुम्हारी ही है ॥ ६ ॥ प्रभो ! चन्द्रमाकी कान्ति, अग्निका तेज, सूर्यकी प्रभा, नक्षत्र और विद्युत् आदिकी स्फुरणरूपसे सत्ता, पर्वतोंकी स्थिरता, पृथ्वीकी साधारण-शक्तिरूप वृत्ति और गन्धरूप गुण—ये सब वास्तवमें तुम्हीं हो ॥ ७ ॥ परमेश्वर ! जलमें तृप्त करने, जीवन देने और शुद्ध करनेकी जो शक्तियाँ हैं, वे तुम्हारा ही स्वरूप है। जल और उसका रस भी तुम्हीं हो । प्रभो ! इन्द्रियशक्ति, अन्तःकरणकी शक्ति, शरीरकी शक्ति, उसका हिलना-डोलना, चलना-फिरना—ये सब वायुकी शक्तियाँ तुम्हारी ही हैं ॥ ८ ॥ दिशाएँ और उनके अवकाश भी तुम्हीं हो । आकाश और उसका आश्रयभूत स्फोट—शब्दतन्मात्रा या परा वाणी, नाद—पश्यन्ती, ओंकार—मध्यमा तथा वर्ण (अक्षर) एवं पदार्थोंका अलग-अलग निर्देश करनेवाले पद, रूप, वैखरी वाणी भी तुम्हीं हो ॥ ९ ॥ इन्द्रियाँ, उनकी विषयप्रकाशिनी शक्ति और अधिष्ठातृ-देवता तुम्हीं हो । बुद्धिकी निश्चयात्मिका शक्ति और जीवकी विशुद्ध स्मृति भी तुम्हीं हो ॥ १० ॥ भूतोंमें उनका कारण तामस अहङ्कार, इन्द्रियोंमे उनका कारण तैजस अहङ्कार और इन्द्रियोंके अधिष्ठातृ-देवताओंमें उनका कारण सात्त्विक अहङ्कार तथा जीवोंके आवा-गमनका कारण माया भी तुम्हीं हो ॥ ११ ॥ भगवन् ! जैसे मिट्टी आदि वस्तुओंके विकार घड़ा, वृक्ष आदिमें मिट्टी निरन्तर वर्तमान है और वास्तवमें वे कारण (मृत्तिका) रूप ही हैं—उसी प्रकार जितने भी विनाशवान् पदार्थ हैं, उनमें तुम कारणरूपसे अविनाशी तत्त्व हो । वास्तवमें वे सब तुम्हारे ही स्वरूप हैं ॥ १२ ॥ प्रभो ! सत्त्व, रज, तम—ये तीनों गुण और उनकी वृत्तियाँ (परिणाम)—महत्तत्त्वादि परब्रह्म परमात्मामें, तुममें योगमायाके द्वारा कल्पित हैं ॥१३॥ इसलिये ये जितने भी जन्म, अस्ति, वृद्धि, परिणाम आदि भाव-विकार हैं, वे तुममें सर्वथा नहीं हैं। जब तुममें इनकी कल्पना कर ली जाती है, तब तुम इन विकारोंमें अनुगत जान पड़ते हो । कल्पनाकी निवृत्ति हो जानेपर तो निर्विकल्प परमार्थस्वरूप तुम्हीं तुम रह जाते हो ॥ १४ ॥ यह जगत् सत्त्व, रज, तम—इन तीनों गुणोंका प्रवाह है; देह, इन्द्रिय, अन्तःकरण, सुख, दुःख और राग-लोभादि उन्हींके कार्य हैं । इनमें जो अज्ञानी तुम्हारा, सर्वात्माका सूक्ष्मस्वरूप नहीं जानते, वे अपने देहाभिमानरूप अज्ञानके कारण ही कर्मोंके फंदेमें फँसकर बार-बार जन्म-मृत्युके चक्करमें भटकते रहते हैं ॥ १५ ॥ परमेश्वर ! मुझे शुभ प्रारब्धके अनुसार इन्द्रियादिकी सामर्थ्यसे युक्त अत्यन्त दुर्लभ मनुष्य-शरीर प्राप्त हुआ । किन्तु तुम्हारी मायाके वश होकर मैं अपने सच्चे स्वार्थ-परमार्थसे ही असावधान हो गया और मेरी सारी आयु यों ही बीत गयी ॥१६॥ प्रभो ! यह शरीर मैं हूँ और इस शरीरके सम्बन्धी मेरे अपने हैं, इस अहंता एवं ममतारूप स्नेहकी फाँसीसे तुमने इस सारे जगत्को बाँध रक्खा है ॥ १७ ॥ मैं जानता हूँ कि तुम दोनों मेरे पुत्र नहीं हो, सम्पूर्ण प्रकृति और जीवोंके स्वामी हो । पृथ्वीके भारभूत राजाओंके नाशके लिये ही तुमने अवतार ग्रहण किया है । यह बात तुमने मुझसे कही भी थी ॥ १८ ॥ इसलिये दीनजनोंके हितैषी, शरणागतवत्सल ! मैं अब तुम्हारे चरणकमलोंकी शरणमें हूँ; क्योंकि वे ही शरणागतोंके संसारभयको मिटानेवाले हैं । अब इन्द्रियोंकी लोलुपतासे भर पाया ! इसीके कारण मैंने मृत्युके ग्रास इस शरीरमें आत्मबुद्धि कर ली और तुममें, जो कि परमात्मा हो, पुत्रबुद्धि ॥ १९ ॥ प्रभो ! तुमने प्रसव-गृहमें ही हमसे कहा था कि 'यद्यपि मैं अजन्मा हूँ, फिर भी मैं अपनी ही बनायी हुई धर्म-मर्यादाकी रक्षा करनेके लिये प्रत्येक युगमें तुम दोनोंके द्वारा

अवतार ग्रहण करता रहा हूँ ।' भगवन्! तुम आकाशके समान अनेकों शरीर ग्रहण करते और छोड़ते रहते हो। वास्तवमें तुम अनन्त, एकरस सत्ता हो। तुम्हारी आश्चर्यमयी शक्ति योगमायाका रहस्य भला, कौन जान सकता है? सब लोग तुम्हारी कीर्तिका ही गान करते रहते हैं ॥ २० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! वसुदेवजीके ये वचन सुनकर यदुवंशशिरोमणि भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण मुसकराने लगे। उन्होंने विनयसे झुककर मधुर वाणीसे कहा ॥ २१ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—पिताजी! हम तो आपके पुत्र ही हैं। हमें लक्ष्य करके आपने यह ब्रह्मज्ञानका उपदेश किया है। हम आपकी एक-एक बात युक्तियुक्त मानते हैं ॥ २२ ॥ पिताजी! आपलोग, मैं, भैया बलरामजी, सारे द्वारकावासी, सम्पूर्ण चराचर जगत्—सब-के-सब आपने जैसा कहा, वैसे ही हैं, सबको ब्रह्मरूप ही समझना चाहिये ॥ २३ ॥ पिताजी! आत्मा तो एक ही है। परन्तु वह अपनेमें ही गुणोंकी सृष्टि कर लेता है और गुणोंके द्वारा बनाये हुए पञ्चभूतोंमें एक होनेपर भी अनेक, स्वयंप्रकाश होनेपर भी दृश्य, अपना स्वरूप होनेपर भी अपनेसे भिन्न, नित्य होनेपर भी अनित्य और निर्गुण होनेपर भी सगुणके रूपमें प्रतीत होता है ॥ २४ ॥ जैसे आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी—ये पञ्चमहाभूत अपने कार्य घट, कुण्डल आदिमें प्रकट-अप्रकट, बड़े-छोटे, अधिक-थोड़े, एक और अनेक-से प्रतीत होते हैं—परन्तु वास्तवमें सत्तारूपसे वे एक ही रहते हैं; वैसे ही आत्मामें भी उपाधियोंके भेदसे ही नानात्वकी प्रतीति होती है। इसलिये जो मैं हूँ, वही सब हैं—इस दृष्टिसे आपका कहना ठीक ही है ॥ २५ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णके इन वचनोंको सुनकर वसुदेवजीने नानात्व-बुद्धि छोड़ दी, वे आनन्दमें मग्न होकर वाणीसे मौन और मनसे निस्सङ्कल्प हो गये ॥ २६ ॥ कुरुश्रेष्ठ! उस समय वहाँ सर्वदेवमयी देवकीजी भी बैठी हुई थीं। वे बहुत पहलेसे ही यह सुनकर अत्यन्त विस्मित थीं कि श्रीकृष्ण और बलरामजीने अपने मरे हुए गुरुपुत्रको यमलोकसे वापस ला दिया ॥ २७ ॥ अब उन्हें अपने उन पुत्रोंकी याद आ गयी, जिन्हें कंसने मार डाला था। उनके स्मरणसे देवकीजीका हृदय आतुर हो गया, नेत्रोंसे आँसू बहने लगे। उन्होंने बड़े ही करुण-स्वरसे श्रीकृष्ण और बलरामजीको सम्बोधित करके कहा ॥ २८ ॥

देवकीजीने कहा—लोकाभिराम राम! तुम्हारी शक्ति मन और वाणीके परे है। श्रीकृष्ण! तुम योगेश्वरोंके भी ईश्वर हो। मैं जानती हूँ कि तुम दोनों प्रजापतियोंके भी ईश्वर, आदिपुरुष नारायण हो ॥ २९ ॥ यह भी मुझे निश्चित रूपसे मालूम है कि जिन लोगोंने कालक्रमसे अपना धैर्य, संयम और सत्त्वगुण खो दिया है तथा शास्त्रकी आज्ञाओंका उल्लङ्घन करके जो स्वेच्छाचारपरायण हो रहे हैं, भूमिके भारभूत उन राजाओंका नाश करनेके लिये ही तुम दोनों मेरे गर्भसे अवतीर्ण हुए हो ॥ ३० ॥ विश्वात्मन्! तुम्हारे पुरुषरूप अंशसे उत्पन्न हुई मायासे गुणोंकी उत्पत्ति होती है और उनके लेशमात्रसे जगत्की उत्पत्ति, विकास तथा प्रलय होता है। आज मैं सर्वान्तःकरणसे तुम्हारी शरण हो रही हूँ ॥ ३१ ॥ मैंने सुना है कि तुम्हारे गुरु सान्दीपनिजीके पुत्रको मरे बहुत दिन हो गये थे। उनको गुरुदक्षिणा देनेके लिये उनकी आज्ञा तथा कालकी प्रेरणासे तुम दोनोंने उनके पुत्रको यमपुरीसे वापस ला दिया ॥ ३२ ॥ तुम दोनों योगीश्वरोंके भी ईश्वर हो। इसलिये आज मेरी भी अभिलाषा पूर्ण करो। मैं चाहती हूँ कि तुम दोनों मेरे उन पुत्रोंको, जिन्हें कंसने मार डाला था, ला दो और उन्हें मैं भर आँख देख लूँ ॥ ३३ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—प्रिय परीक्षित्! माता देवकीजीकी यह बात सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम दोनोंने योगमायाका आश्रय लेकर सुतल लोकमें प्रवेश किया ॥ ३४ ॥ जब दैत्यराज बलिने देखा कि जगत्के आत्मा और इष्टदेव तथा मेरे परम स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी सुतल लोकमें पधारे

हैं, तब उनका हृदय उनके दर्शनके आनन्दमें निमग्न हो गया। उन्होंने झटपट अपने कुटुम्बके साथ आसनसे उठकर भगवान्‌के चरणोंमें प्रणाम किया॥ ३५॥ अत्यन्त आनन्दसे भरकर दैत्यराज बलिने भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीको श्रेष्ठ आसन दिया और जब वे दोनों महापुरुष उसपर विराज गये, तब उन्होंने उनके पाँव पखारकर उनका चरणोदक परिवारसहित अपने सिरपर धारण किया। परीक्षित्! भगवान्‌के चरणोंका जल ब्रह्मापर्यन्त सारे जगत्‌को पवित्र कर देता है॥ ३६॥ इसके बाद दैत्यराज बलिने बहुमूल्य वस्त्र-आभूषण, चन्दन, ताम्बूल, दीपक, अमृतके समान भोजन एवं अन्य विविध सामग्रियोंसे उनकी पूजा की और अपने समस्त परिवार, धन तथा शरीर आदिको उनके चरणोंमें समर्पित कर दिया॥ ३७॥ परीक्षित्! दैत्यराज बलि बार-बार भगवान्‌के चरणकमलोंको अपने वक्षःस्थल और सिरपर रखने लगे, उनका हृदय प्रेमसे विह्वल हो गया। नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहने लगे। रोम-रोम खिल उठा। अब वे गद्गद स्वरसे भगवान्‌की स्तुति करने लगे॥ ३८॥

दैत्यराज बलिने कहा—बलरामजी! आप अनन्त हैं। आप इतने महान् हैं कि शेष आदि सभी विग्रह आपके अन्तर्भूत हैं। सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण! आप सकल जगत्‌के निर्माता हैं। ज्ञानयोग और भक्तियोग दोनोंके प्रवर्तक आप ही हैं। आप स्वयं ही परब्रह्म परमात्मा हैं। हम आप दोनोंको बार-बार नमस्कार करते हैं॥ ३९॥ भगवन्! आप दोनोंका दर्शन प्राणियोंके लिये अत्यन्त दुर्लभ है। फिर भी आपकी कृपासे वह सुलभ हो जाता है। क्योंकि आज आपने कृपा करके हम रजोगुणी एवं तमोगुणी स्वभाववाले दैत्योंको भी दर्शन दिया है॥ ४०॥ प्रभो! हम और हमारे ही समान दूसरे दैत्य, दानव, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर, चारण, यक्ष, राक्षस, पिशाच, भूत और प्रमथनायक आदि आपका प्रेमसे भजन करना तो दूर रहा, आपसे सर्वदा दृढ वैरभाव रखते हैं; परन्तु आपका श्रीविग्रह साक्षात् वेदमय और विशुद्ध सत्त्वस्वरूप है। इसलिये हमलोगोंमेंसे बहुतोंने दृढ वैरभावसे, कुछने भक्तिसे और कुछने कामनासे आपका स्मरण करके उस पदको प्राप्त किया है, जिसे आपके समीप रहनेवाले सत्त्वप्रधान देवता आदि भी नहीं प्राप्त कर सकते॥ ४१—४३॥ योगेश्वरोंके अधीश्वर! बड़े-बड़े योगेश्वर भी प्रायः यह बात नहीं जानते कि आपकी योगमाया यह है और ऐसी है; फिर हमारी तो बात ही क्या है?॥ ४४॥ इसलिये स्वामी! मुझपर ऐसी कृपा कीजिये कि मेरी चित्त-वृत्ति आपके उन चरणकमलोंमें लग जाय, जिसे किसीकी अपेक्षा न रखनेवाले परमहंसलोग ढूँढ़ा करते हैं; और उनका आश्रय लेकर मैं उससे भिन्न इस घर-गृहस्थीके अँधेरे कूएँसे निकल जाऊँ। प्रभो! इस प्रकार आपके उन चरणकमलोंकी, जो सारे जगत्‌के एकमात्र आश्रय हैं, शरण लेकर शान्त हो जाऊँ और अकेला ही विचरण करूँ। यदि कभी किसीका सङ्ग करना ही पड़े तो सबके परम हितैषी संतोंका ही॥ ४५॥ प्रभो! आप समस्त चराचर जगत्‌के नियन्ता और स्वामी हैं। आप हमें आज्ञा देकर निष्पाप बनाइये, हमारे पापोंका नाश कर दीजिये; क्योंकि जो पुरुष श्रद्धाके साथ आपकी आज्ञाका पालन करता है, वह विधि-निषेधके बन्धनसे मुक्त हो जाता है॥ ४६॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'दैत्यराज! स्वायम्भुव मन्वन्तरमें प्रजापति मरीचिकी पत्नी ऊर्णाके गर्भसे छः पुत्र उत्पन्न हुए थे। वे सभी देवता थे। वे यह देखकर कि ब्रह्माजी अपनी पुत्रीसे समागम करनेके लिये उद्यत हैं, हँसने लगे॥ ४७॥ इस परिहासरूप अपराधके कारण उन्हें ब्रह्माजीने शाप दे दिया और वे असुर-योनिमें हिरण्यकशिपुके पुत्ररूपसे उत्पन्न हुए। अब योगमायाने उन्हें वहाँसे लाकर देवकीके गर्भमें रख दिया और उनको उत्पन्न होते ही कंसने मार डाला। दैत्यराज! अपने माता देवकीजी उन पुत्रोंके लिये अत्यन्त शोकातुर हो रही हैं और वे तुम्हारे पास हैं॥ ४८-४९॥ अतः हम अपनी माताका शोक दूर करनेके लिये इन्हें यहाँसे ले जायँगे। इसके बाद ये शापसे मुक्त हो जायँगे और आनन्दपूर्वक अपने लोकमें चले जायँगे॥ ५०॥ इनके छः नाम हैं—स्मर, उद्गीथ, परिष्वङ्ग, पतङ्ग, क्षुद्रभृत् और घृणि। इन्हें मेरी कृपासे पुनः सद्गति

प्राप्त होगी' ॥५१॥ परीक्षित्! इतना कहकर भगवान् श्रीकृष्ण चुप हो गये। दैत्यराज बलिने उनकी पूजा की; इसके बाद श्रीकृष्ण और बलरामजी बालकोंको लेकर फिर द्वारका लौट आये तथा माता देवकीको उनके पुत्र सौंप दिये ॥ ५२ ॥ उन बालकोंको देखकर देवी देवकीके हृदयमें वात्सल्य-स्नेहकी बाढ़ आ गयी। उनके स्तनोंसे दूध बहने लगा। वे बार-बार उन्हें गोदमें लेकर छातीसे लगातीं और उनका सिर सूँघतीं ॥ ५३ ॥ पुत्रोंके स्पर्शके आनन्दसे सराबोर एवं आनन्दित देवकीने उनको स्नान-पान कराया। वे विष्णुभगवान्‌की उस मायासे मोहित हो रही थीं, जिससे यह सृष्टि-चक्र चलता है ॥ ५४ ॥ परीक्षित्! देवकीजीके स्तनोंका दूध साक्षात् अमृत था; क्यों न हो, भगवान् श्रीकृष्ण जो उसे पी चुके थे। उन बालकोंने वही अमृतमय दूध पिया। उस दूधके पीनेसे और भगवान् श्रीकृष्णके अङ्गोंका संस्पर्श होनेसे उन्हें आत्मसाक्षात्कार हो गया ॥ ५५ ॥ इसके बाद उन लोगोंने भगवान् श्रीकृष्ण, माता देवकी, पिता वसुदेव और बलरामजीको नमस्कार किया। तदनन्तर सबके सामने ही वे देवलोकमें चले गये ॥ ५६ ॥ परीक्षित्! देवी देवकी यह देखकर अत्यन्त विस्मित हो गयीं कि मरे हुए बालक लौट आये और फिर चले भी गये। उन्होंने ऐसा निश्चय किया कि यह श्रीकृष्णका ही कोई लीला-कौशल है ॥ ५७ ॥ परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं परमात्मा हैं, उनकी शक्ति अनन्त है। उनके ऐसे-ऐसे अद्भुत चरित्र इतने हैं कि किसी प्रकार उनका पार नहीं पाया जा सकता ॥ ५८ ॥

सूतजी कहते हैं—शौनकादि ऋषियो! भगवान् श्रीकृष्णकी कीर्ति अमर है, अमृतमयी है। उनका चरित्र जगत्‌के समस्त पाप-तापोंको मिटानेवाला तथा भक्तजनोंके कर्णकुहरोंमें आनन्दसुधा प्रवाहित करनेवाला है। इसका वर्णन स्वयं व्यासनन्दन भगवान् श्रीशुकदेवजीने किया है। जो इसका श्रवण करता है अथवा दूसरेको सुनाता है, उसकी सम्पूर्ण चित्तवृत्ति भगवान्‌में लग जाती है और वह उन्हींके परम कल्याणस्वरूप धामको प्राप्त होता है ॥ ५९ ॥

छियासीवाँ अध्याय

सुभद्राहरण और भगवान्‌का मिथिलापुरीमें राजा जनक और श्रुतदेव ब्राह्मणके घर एक ही साथ जाना

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन्! मेरे दादा अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीकी बहिन सुभद्राजीसे, जो मेरी दादी थीं, किस प्रकार विवाह किया? मैं यह जाननेके लिये बहुत उत्सुक हूँ ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित्! एक बार अत्यन्त शक्तिशाली अर्जुन तीर्थयात्राके लिये पृथ्वीपर विचरण करते हुए प्रभासक्षेत्र पहुँचे। वहाँ उन्होंने यह सुना कि बलरामजी मेरे मामाकी पुत्री सुभद्राका विवाह दुर्योधनके साथ करना चाहते हैं और वसुदेव, श्रीकृष्ण आदि उनसे इस विषयमें सहमत नहीं हैं। अब अर्जुनके मनमें सुभद्राको पानेकी लालसा जग आयी। वे त्रिदण्डी वैष्णवका वेष धारण करके द्वारका पहुँचे ॥ २-३ ॥ अर्जुन सुभद्राको प्राप्त करनेके लिये वहाँ वर्षाकालमें चार महीनेतक रहे। वहाँ पुरवासियों और बलरामजीने उनका खूब सम्मान किया। उन्हें यह पता न चला कि ये अर्जुन हैं ॥ ४ ॥

एक दिन बलरामजीने आतिथ्यके लिये उन्हें निमन्त्रित किया और उनको वे अपने घर ले आये। त्रिदण्डी-वेषधारी अर्जुनको बलरामजीने अत्यन्त श्रद्धाके साथ भोजन-सामग्री निवेदित की और उन्होंने बड़े प्रेमसे भोजन किया ॥ ५ ॥ अर्जुनने भोजनके समय वहाँ विवाहयोग्य परम सुन्दरी सुभद्राको देखा। उसका सौन्दर्य बड़े-बड़े वीरोंका मन हरनेवाला था। अर्जुनके नेत्र प्रेमसे प्रफुल्लित हो गये। उनका मन उसे पानेकी आकाङ्क्षासे क्षुब्ध हो गया और उन्होंने उसे पत्नी बनानेका दृढ़ निश्चय कर लिया ॥ ६ ॥ परीक्षित्! तुम्हारे दादा अर्जुन भी बड़े ही सुन्दर थे। उनके शरीरकी गठन, भाव-भङ्गी स्त्रियोंका हृदय स्पर्श कर लेती थी। उन्हें

देखकर सुभद्राने भी मनमें उन्हींको पति बनानेका निश्चय किया। वह तनिक मुसकराकर लजीली चितवनसे उनकी ओर देखने लगी। उसने अपना हृदय उन्हें समर्पित कर दिया ॥ ७ ॥ अब अर्जुन केवल उसीका चिन्तन करने लगे और इस बातका अवसर ढूँढ़ने लगे कि इसे कब हर ले जाऊँ। सुभद्राको प्राप्त करनेकी उत्कट कामनासे उनका चित्त चक्कर काटने लगा, उन्हें तनिक भी शान्ति नहीं मिलती थी ॥ ८ ॥

एक बार सुभद्राजी देव-दर्शनके लिये रथपर सवार होकर द्वारका-दुर्गसे बाहर निकलीं। उसी समय महारथी अर्जुनने देवकी-वसुदेव और श्रीकृष्णकी अनुमतिसे सुभद्राका हरण कर लिया ॥ ९ ॥ रथपर सवार होकर वीर अर्जुनने धनुष उठा लिया और जो सैनिक उन्हें रोकनेके लिये आये, उन्हें मार-पीटकर भगा दिया। सुभद्राके निज-जन रोते-चिल्लाते रह गये और अर्जुन जिस प्रकार सिंह अपना भाग लेकर चल देता है, वैसे ही सुभद्राको लेकर चल पड़े ॥ १० ॥ यह समाचार सुनकर बलरामजी बहुत बिगड़े। वे वैसे ही क्षुब्ध हो उठे, जैसे पूर्णिमाके दिन समुद्र। परन्तु भगवान् श्रीकृष्ण तथा अन्य सुहृद्-सम्बन्धियोंने उनके पैर पकड़कर उन्हें बहुत-कुछ समझाया-बुझाया, तब वे शान्त हुए ॥ ११ ॥ इसके बाद बलरामजीने प्रसन्न होकर वर-वधूके लिये बहुत-सा धन, सामग्री, हाथी, रथ, घोड़े और दासी-दास दहेजमें भेजे ॥ १२ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! विदेहकी राजधानी मिथिलामें एक गृहस्थ ब्राह्मण थे। उनका नाम था श्रुतदेव। वे भगवान् श्रीकृष्णके परम भक्त थे। वे एकमात्र भगवद्भक्तिसे ही पूर्णमनोरथ, परम शान्त, ज्ञानी और विरक्त थे ॥१३॥ वे गृहस्थाश्रममें रहते हुए भी किसी प्रकारका उद्योग नहीं करते थे; जो कुछ मिल जाता, उसीसे अपना निर्वाह कर लेते थे ॥ १४ ॥ प्रारब्धवश प्रतिदिन उन्हें जीवन-निर्वाहभरके लिये सामग्री मिल जाया करती थी, अधिक नहीं। वे उतनेसे ही सन्तुष्ट भी थे, और अपने वर्णाश्रमके अनुसार धर्मपालनमें तत्पर रहते थे ॥ १५ ॥ प्रिय परीक्षित्! उस देशके राजा भी ब्राह्मणके समान ही भक्तिमान् थे। मैथिलवंशके उन प्रतिष्ठित नरपतिका नाम था बहुलाश्व। उनमें अहङ्कारका लेश भी न था। श्रुतदेव और बहुलाश्व दोनों ही भगवान् श्रीकृष्णके प्यारे भक्त थे ॥ १६ ॥

एक बार भगवान् श्रीकृष्णने उन दोनोंपर प्रसन्न होकर दारुकसे रथ मँगवाया और उसपर सवार होकर द्वारकासे विदेह देशकी ओर प्रस्थान किया ॥ १७ ॥ भगवान्‌के साथ नारद, वामदेव, अत्रि, वेदव्यास, परशुराम, असित, आरुणि, मैं (शुकदेव), बृहस्पति, कण्व, मैत्रेय, च्यवन आदि ऋषि भी थे ॥ १८ ॥ परीक्षित्! वे जहाँ-जहाँ पहुँचते, वहाँ-वहाँकी नागरिक और ग्रामवासी प्रजा पूजाकी सामग्री लेकर उपस्थित होती। पूजा करनेवालोंको भगवान् ऐसे जान पड़ते, मानो ग्रहोंके साथ साक्षात् सूर्यनारायण उदय हो रहे हों ॥ १९ ॥ परीक्षित्! उस यात्रामें आनर्त, धन्व, कुरु-जांगल, कङ्क, मत्स्य, पाञ्चाल, कुन्ति, मधु, केकय, कोसल, अर्ण आदि अनेक देशोंके नर-नारियोंने अपने नेत्ररूपी दोनोंसे भगवान् श्रीकृष्णके उन्मुक्त हास्य और प्रेमभरी चितवनसे युक्त मुखारविन्दके मकरन्द-रसका पान किया ॥ २० ॥ त्रिलोकगुरु भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनसे उन लोगोंकी अज्ञानदृष्टि नष्ट हो गयी। प्रभु दर्शन करनेवाले नर-नारियोंको अपनी दृष्टिसे परम कल्याण और तत्त्वज्ञानका दान करते चल रहे थे। स्थान-स्थानपर मनुष्य और देवता भगवान्‌की उस कीर्तिका गान करके सुनाते, जो समस्त दिशाओंको उज्ज्वल बनानेवाली एवं समस्त अशुभोंका विनाश करनेवाली है। इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण धीरे-धीरे विदेह देशमें पहुँचे ॥ २१ ॥

परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णके शुभागमनका समाचार सुनकर नागरिक और ग्रामवासियोंके आनन्दकी सीमा न रही। वे अपने हाथोंमें पूजाकी विविध सामग्रियाँ लेकर उनकी अगवानी करने आये ॥ २२ ॥ भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन करके उनके हृदय और मुखकमल प्रेम और आनन्दसे खिल उठे। उन्होंने भगवान्‌को तथा उन मुनियोंको, जिनका नाम केवल सुन रक्खा था, देखा न था—हाथ जोड़ मस्तक झुकाकर प्रणाम किया ॥ २३ ॥ मिथिलानरेश बहुलाश्व और श्रुतदेवने, यह समझकर कि जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्ण हमलोगों-

पर अनुग्रह करनेके लिये ही पधारे हैं, उनके चरणोंपर गिरकर प्रणाम किया ॥ २४ ॥ बहुलाश्व और श्रुतदेव दोनोंने ही एक साथ हाथ जोडकर मुनि-मण्डलीके सहित भगवान् श्रीकृष्णको आतिथ्य ग्रहण करनेके लिये निमन्त्रित किया ॥ २५ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण दोनोंकी प्रार्थना स्वीकार करके दोनोंको ही प्रसन्न करनेके लिये एक ही समय पृथक्-पृथक्रूपसे दोनोंके घर पधारे और यह बात एक-दूसरेको मालूम न हुई कि भगवान् श्रीकृष्ण मेरे घरके अतिरिक्त और कहीं भी जा रहे हैं ॥२६॥ विदेहराज बहुलाश्व बड़े मनस्वी थे; उन्होंने यह देखकर कि दुष्ट-दुराचारी पुरुष जिनका नाम भी नहीं सुन सकते, वे ही भगवान् श्रीकृष्ण और ऋषि-मुनि मेरे घर पधारे हैं, सुन्दर-सुन्दर आसन मँगाये और भगवान् श्रीकृष्ण तथा ऋषि-मुनि आरामसे उनपर बैठ गये। उस समय बहुलाश्वकी विचित्र दशा थी। प्रेम-भक्तिके उद्रेकसे उनका हृदय भर आया था। नेत्रोंमें आँसू उमड़ रहे थे। उन्होंने अपने पूज्यतम अतिथियोंके चरणोंमें नमस्कार करके पाँव पखारे और अपने कुटुम्बके साथ उनके चरणोंका लोकपावन जल सिरपर धारण किया और फिर भगवान् एवं भगवत्स्वरूप ऋषियोंको गन्ध, माला, वस्त्र, अलङ्कार, धूप दीप, अर्घ्य, गौ, बैल आदि समर्पित करके उनकी पूजा की ॥ २७—२९॥ जब सब लोग भोजन करके तृप्त हो गये, तब राजा बहुलाश्व भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंको अपने गोदमें लेकर बैठ गये। और बड़े आनन्दसे धीरे-धीरे उन्हें सहलाते हुए बडी मधुर वाणीसे भगवान्की स्तुति करने लगे ॥ ३० ॥

राजा बहुलाश्वने कहा—'प्रभो! आप समस्त प्राणियोंके आत्मा, साक्षी एवं स्वयंप्रकाश हैं। हम सदा-सर्वदा आपके चरणकमलोंका स्मरण करते रहते हैं। इसीसे आपने हमलोगोंको दर्शन देकर कृतार्थ किया है ॥ ३१ ॥ भगवन्! आपके वचन हैं कि मेरा अनन्यप्रेमी भक्त मुझे अपने स्वरूप बलरामजी, अर्द्धाङ्गिनी लक्ष्मी और पुत्र ब्रह्मासे भी बढ़कर प्रिय है। अपने उन वचनोंको सत्य करनेके लिये ही आपने हमलोगोंको दर्शन दिया है ॥ ३२ ॥ भला, ऐसा कौन पुरुष है, जो आपकी इस परम दयालुता और प्रेम-परवशताको जानकर भी आपके चरणकमलोंका परित्याग कर सके? प्रभो! जिन्होंने जगत्की समस्त वस्तुओंका एवं शरीर आदिका भी मनसे परित्याग कर दिया है उन परम शान्त मुनियोंको आप अपने-तकको भी दे डालते हैं ॥ ३३ ॥ आपने यदुवंशमें अवतार लेकर जन्म-मृत्युके चक्करमें पड़े हुए मनुष्योंको उससे मुक्त करनेके लिये जगत्में ऐसे विशुद्ध यशका विस्तार किया है, जो त्रिलोकीके पाप-तापको शान्त करनेवाला है ॥ ३४ ॥ प्रभो! आप अचिन्त्य, अनन्त ऐश्वर्य और माधुर्यकी निधि हैं; सबके चित्तको अपनी ओर आकर्षित करनेके लिये आप सच्चिदानन्द-स्वरूप श्यामब्रह्म हैं। आपका ज्ञान अनन्त है। परम शान्तिका विस्तार करनेके लिये आप ही नारायण ऋषिके रूपमें तपस्या कर रहे हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ ३५ ॥ एकरस अनन्त! आप कुछ दिनोंतक मुनिमण्डलीके साथ हमारे यहाँ निवास कीजिये और अपने चरणोंकी धूलसे इस निमिवंशको पवित्र कीजिये' ॥ ३६ ॥ परीक्षित्! सबके जीवनदाता भगवान् श्रीकृष्ण राजा बहुलाश्वकी यह प्रार्थना स्वीकार करके मिथिलावासी नर-नारियोंका कल्याण करते हुए कुछ दिनोंतक वहीं रहे ॥ ३७ ॥

प्रिय परीक्षित्! जैसे राजा बहुलाश्व भगवान् श्रीकृष्ण और मुनि-मण्डलीके पधारनेपर आनन्दमग्न हो गये थे; वैसे ही श्रुतदेव ब्राह्मण भी भगवान् श्रीकृष्ण और मुनियोंको अपने घर आया देखकर आनन्दविह्वल हो गये; वे उन्हें नमस्कार करके अपने वस्त्र उछाल-उछालकर नाचने लगे ॥ ३८ ॥ श्रुतदेवने चटाई, पीढे और कुशासन बिछाकर उनपर भगवान् श्रीकृष्ण और मुनियोंको बैठाया, स्वागत-भाषण आदिके द्वारा उनका अभिनन्दन किया तथा अपनी पत्नीके साथ बड़े आनन्दसे सबके पाँव पखारे ॥ ३९ ॥ परीक्षित्! महान् सौभाग्यशाली श्रुतदेवने भगवान् और ऋषियोंके चरणोदकसे अपने घर और कुटुम्बियोंको सींच दिया। इस समय उनके सारे मनोरथ पूर्ण हो गये थे। वे हर्षातिरेकसे मतवाले हो रहे थे ॥ ४० ॥ तदनन्तर उन्होंने फल, गन्ध, खससे सुवासित निर्मल एवं मधुर जल, सुगन्धित मिट्टी, तुलसी, कुश, कमल आदि अनायास-प्राप्त पूजा-सामग्री और सत्त्वगुण बढ़ानेवाले

अन्नसे सबकी आराधना की ॥ ४१ ॥ उस समय श्रुतदेवजी मन-ही-मन तर्कना करने लगे कि 'मैं तो घर-गृहस्थीके अँधेरे कूएँमें गिरा हुआ हूँ, अभागा हूँ; मुझे भगवान् श्रीकृष्ण और उनके निवासस्थान ऋषि-मुनियोंका, जिनके चरणोंकी धूल ही समस्त तीर्थोंको तीर्थ बनानेवाली है, समागम कैसे प्राप्त हो गया ?' ॥ ४२ ॥ जब सब लोग आतिथ्य स्वीकार करके आरामसे बैठ गये, तब श्रुतदेव अपने स्त्री-पुत्र तथा अन्य सम्बन्धियोंके साथ उनकी सेवामें उपस्थित हुए। वे भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंका स्पर्श करते हुए कहने लगे ॥ ४३ ॥

श्रुतदेवने कहा—प्रभो ! आप व्यक्त-अव्यक्तरूप प्रकृति और जीवोंसे परे पुरुषोत्तम हैं। मुझे आपने आज ही दर्शन दिया हो, ऐसी बात नहीं है। आप तो तभीसे सब लोगोंसे मिले हुए हैं, जबसे आपने अपनी शक्तियोंके द्वारा इस जगत्‌की रचना करके आत्मसत्ताके रूपसे इसमें प्रवेश किया है ॥ ४४ ॥ जैसे सोया हुआ पुरुष स्वप्नावस्थामें अविद्यावश मन-ही-मन स्वप्न-जगत्‌की सृष्टि कर लेता है और उसमें स्वयं उपस्थित होकर अनेक रूपोंमें अनेक कर्म करता हुआ प्रतीत होता है, वैसे ही आपने अपनेमें ही अपनी मायासे जगत्‌की रचना कर ली है और अब इसमें प्रवेश करके अनेकों रूपोंसे प्रकाशित हो रहे हैं ॥ ४५ ॥ जो लोग सर्वदा आपकी लीलाकथाका श्रवण-कीर्तन तथा आपकी प्रतिमाओंका अर्चन-वन्दन करते हैं और आपसमें आपकी ही चर्चा करते हैं, उनका हृदय शुद्ध हो जाता है और आप उसमें प्रकाशित हो जाते हैं ॥ ४६ ॥ जिन लोगोंका चित्त लौकिक-वैदिक आदि कर्मोंकी वासनासे बहिर्मुख हो रहा है, उनके हृदयमें रहनेपर भी आप उनसे बहुत दूर हैं। किन्तु जिन लोगोंने आपके गुणगानसे अपने अन्तःकरणको सद्गुणसम्पन्न बना लिया है, उनके लिये चित्तवृत्तियोंसे अग्राह्य होनेपर भी आप अत्यन्त निकट हैं ॥ ४७ ॥ प्रभो ! जो लोग आत्मतत्त्वको जाननेवाले हैं, उनके आत्माके रूपमें ही आप स्थित हैं और जो शरीर आदिको ही अपना आत्मा मान बैठे हैं, उनके लिये आप अनात्माको प्राप्त होनेवाली मृत्युके रूपमें हैं। आप महत्तत्त्व आदि कार्यद्रव्य और प्रकृतिरूप कारणके नियामक हैं—शासक हैं। आपकी माया आपकी अपनी दृष्टिपर पर्दा नहीं डाल सकती, किन्तु उसने दूसरोंकी दृष्टिको ढक रक्खा है। आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ४८ ॥ स्वयंप्रकाश प्रभो ! हम आपके सेवक हैं। हमें आज्ञा दीजिये कि हम आपकी क्या सेवा करें ? नेत्रोंके द्वारा आपका दर्शन होनेतक ही जीवोंके क्लेश रहते हैं। आपके दर्शनमें ही समस्त क्लेशोंकी परिसमाप्ति है ॥ ४९ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! शरणागत-भयहारी भगवान् श्रीकृष्णने श्रुतदेवकी प्रार्थना सुनकर अपने हाथसे उनका हाथ पकड़ लिया और मुसकराते हुए कहा ॥ ५० ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—प्रिय श्रुतदेव ! ये बड़े-बड़े ऋषि-मुनि तुमपर अनुग्रह करनेके लिये ही यहाँ पधारे हैं। ये अपने चरणकमलोंकी धूलसे लोगों और लोकोंको पवित्र करते हुए मेरे साथ विचरण कर रहे हैं ॥ ५१ ॥ देवता, पुण्यक्षेत्र और तीर्थ आदि तो दर्शन, स्पर्श, अर्चन आदिके द्वारा धीरे-धीरे बहुत दिनोंमें पवित्र करते हैं; परन्तु संत पुरुष अपनी दृष्टिसे ही सबको पवित्र कर देते हैं। यही नहीं; देवता आदिमें जो पवित्र करनेकी शक्ति है, वह भी उन्हें संतोंकी दृष्टिसे ही प्राप्त होती है ॥ ५२ ॥ श्रुतदेव ! जगत्‌में ब्राह्मण जन्मसे ही सब प्राणियोंसे श्रेष्ठ हैं। यदि वह तपस्या, विद्या, सन्तोष और मेरी उपासना—मेरी भक्तिसे युक्त हो तब तो कहना ही क्या है ॥५३॥ मुझे अपना यह चतुर्भुजरूप भी ब्राह्मणोंकी अपेक्षा अधिक प्रिय नहीं है। क्योंकि ब्राह्मण सर्ववेदमय है और मैं सर्वदेवमय हूँ ॥ ५४ ॥ दुर्बुद्धि मनुष्य इस बातको न जानकर केवल मूर्ति आदिमें ही पूज्यबुद्धि रखते हैं और गुणोंमें दोष निकालकर मेरे स्वरूप जगद्‌गुरु ब्राह्मणका, जो कि उनका आत्मा ही है, तिरस्कार करते हैं ॥ ५५ ॥ ब्राह्मण मेरा साक्षात्कार करके अपने चित्तमें यह निश्चय कर लेता है कि यह चराचर जगत्, इसके सम्बन्धकी सारी भावनाएँ और इसके कारण प्रकृति-महत्तत्त्वादि सब-के-सब आत्मस्वरूप ...

भगवान्‌के ही रूप हैं ॥ ५६ ॥ इसलिये श्रुतदेव ! तुम इन ब्रह्मर्षियोंको मेरा ही स्वरूप समझकर पूरी श्रद्धासे इनकी पूजा करो । यदि तुम ऐसा करोगे, तब तो तुमने साक्षात् अनायास ही मेरा पूजन कर लिया, नहीं तो बड़ी-बड़ी बहुमूल्य सामग्रियोंसे भी मेरी पूजा नहीं हो सकती ॥ ५७ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णका यह आदेश प्राप्त करके श्रुतदेवने भगवान् श्रीकृष्ण और उन ब्रह्मर्षियोंकी एकात्मभावसे आराधना की तथा उनकी कृपासे वे भगवत्स्वरूपको प्राप्त हो गये । राजा बहुलाश्वने भी वही गति प्राप्त की ॥ ५८ ॥ प्रिय परीक्षित् ! जैसे भक्त भगवान्‌की भक्ति करते हैं, वैसे ही भगवान् भी भक्तोंकी भक्ति करते हैं । वे अपने दोनों भक्तोंको प्रसन्न करनेके लिये कुछ दिनोंतक मिथिलापुरीमें रहे और उन्हें साधु पुरुषोंके मार्गका उपदेश करके वे द्वारका लौट आये ॥ ५९ ॥

सत्तासीवाँ अध्याय

वेदस्तुति

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन् ! ब्रह्म कार्य और कारणसे सर्वथा परे है । सत्त्व, रज और तम—ये तीनों गुण उसमें हैं ही नहीं । मन और वाणीसे सङ्केतरूपमें भी उसका निर्देश नहीं किया जा सकता । दूसरी ओर समस्त श्रुतियोंका विषय गुण ही है । (वे जिस विषयका वर्णन करती हैं उसके गुण, जाति, क्रिया अथवा रूढिका ही निर्देश करती हैं) ऐसी स्थितिमें श्रुतियाँ निर्गुण ब्रह्मका प्रतिपादन किस प्रकार करती हैं ! क्योंकि निर्गुण वस्तुका स्वरूप तो उनकी पहुँचके परे है ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! (भगवान् सर्वशक्तिमान् और गुणोंके निधान हैं । श्रुतियाँ स्पष्टतः सगुणका ही निरूपण करती हैं, परन्तु विचार करनेपर उनका तात्पर्य निर्गुण ही निकलता है । विचार करनेके लिये ही) भगवान्‌ने जीवोंके लिये बुद्धि, इन्द्रिय, मन और प्राणोंकी सृष्टि की है । इनके द्वारा वे स्वेच्छासे अर्थ, धर्म, काम अथवा मोक्षका अर्जन कर सकते हैं । (प्राणोंके द्वारा जीवन-धारण, श्रवणादि इन्द्रियोंके द्वारा महावाक्य आदिका श्रवण, मनके द्वारा मनन और बुद्धिके द्वारा निश्चय करनेपर श्रुतियोंके तात्पर्य निर्गुण स्वरूपका साक्षात्कार हो सकता है । इसलिये श्रुतियाँ सगुणका प्रतिपादन करनेपर भी वस्तुतः निर्गुण-परक हैं) ॥ २ ॥ ब्रह्मका प्रतिपादन करनेवाली उपनिषद्‌का यही स्वरूप है । इसे पूर्वजोंके भी पूर्वज सनकादि ऋषियोंने आत्मनिश्चयके द्वारा धारण किया है । जो भी मनुष्य इसे श्रद्धापूर्वक धारण करता है, वह बन्धनके कारण समस्त उपाधियों—अनात्मभावोंसे मुक्त होकर अपने परम कल्याणस्वरूप परमात्माको प्राप्त हो जाता है ॥ ३ ॥ इस विषयमें मैं तुम्हें एक गाथा सुनाता हूँ । उस गाथाके साथ स्वयं भगवान् नारायणका सम्बन्ध है । वह गाथा देवर्षि नारद और ऋषिश्रेष्ठ नारायणका संवाद है ॥ ४ ॥

एक समयकी बात है, भगवान्‌के प्यारे भक्त देवर्षि नारदजी विभिन्न लोकोंमें विचरण करते हुए सनातन-ऋषि भगवान् नारायणका दर्शन करनेके लिये बदरिकाश्रम गये ॥५॥ भगवान् नारायण मनुष्योंके अभ्युदय (लौकिक कल्याण) और परम निःश्रेयस (भगवत्स्वरूप अथवा मोक्षकी प्राप्ति) के लिये इस भारतवर्षमें कल्पके प्रारम्भसे ही धर्म, ज्ञान और संयमके साथ महान् तपस्या कर रहे हैं ॥ ६ ॥ परीक्षित् ! एक दिन वे कलापग्रामवासी सिद्ध ऋषियोंके बीचमें बैठे हुए थे । उस समय नारदजीने उन्हें प्रणाम करके बड़ी नम्रतासे यही प्रश्न पूछा, जो तुम मुझसे पूछ रहे हो ॥ ७ ॥ भगवान् नारायणने ऋषियोंकी उस भरी सभामें नारदजीको उनके प्रश्नका उत्तर दिया और वह कथा सुनायी, जो पूर्वकालीन जनलोकनिवासियोंमें परस्पर वेदोंके तात्पर्य और ब्रह्मके स्वरूपके सम्बन्धमें विचार करते समय कही गयी थी ॥ ८ ॥

भगवान् नारायणने कहा—नारदजी ! प्राचीन कालकी बात है। एक बार जनलोकमें वहाँ रहनेवाले ब्रह्माके मानस पुत्र नैष्ठिक ब्रह्मचारी सनक, सनन्दन, सनातन आदि परमर्षियोंका ब्रह्मसत्र (ब्रह्मविषयक विचार या प्रवचन) हुआ था ॥ ९ ॥ उस समय तुम मेरी श्वेतद्वीपाधिपति अनिरुद्ध मूर्तिका दर्शन करनेके लिये श्वेतद्वीप चले गये थे। उस समय वहाँ उस ब्रह्मके सम्बन्धमें बड़ी ही सुन्दर चर्चा हुई थी, जिसके विषयमें श्रुतियाँ भी मौन धारण कर लेती हैं, स्पष्ट वर्णन न करके तात्पर्यरूपसे लक्षित कराती हुई उसीमें सो जाती हैं। उस ब्रह्मसत्रमें यही प्रश्न उपस्थित किया गया था, जो तुम मुझसे पूछ रहे हो ॥ १० ॥ सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार—ये चारों भाई शास्त्रीय ज्ञान, तपस्या और शील-स्वभावमें समान हैं। उन लोगोंकी दृष्टिमें शत्रु, मित्र और उदासीन एक-से हैं। फिर भी उन्होंने अपनेमेंसे सनन्दनको तो वक्ता बना लिया और शेष भाई सुननेके इच्छुक बनकर बैठ गये ॥ ११ ॥

सनन्दनजीने कहा—जिस प्रकार प्रातःकाल होनेपर सोते हुए सम्राट्को जगानेके लिये अनुजीवी वंदीजन उसके पास आते हैं और सम्राट्के पराक्रम तथा सुयशका गान करके उसे जगाते हैं, वैसे ही जब परमात्मा अपने बनाये हुए सम्पूर्ण जगत्को अपनेमें लीन करके अपनी शक्तियोंके सहित सोये रहते हैं; तब प्रलयके अन्तमें श्रुतियाँ उनका प्रतिपादन करनेवाले वचनोंसे उन्हें इस प्रकार जगाती हैं ॥ १२-१३ ॥

श्रुतियाँ कहती हैं—अजित ! आप ही सर्वश्रेष्ठ हैं, आपपर कोई विजय नहीं प्राप्त कर सकता। आपकी जय हो, जय हो ! प्रभो ! आप स्वभावसे ही समस्त ऐश्वर्योंसे पूर्ण हैं, इसलिये चराचर प्राणियोंको फँसानेवाली मायाका नाश कर दीजिये। प्रभो ! इस गुणमयी मायाने दोषके लिये—जीवोंके आनन्दादिमय सहज स्वरूपका आच्छादन करके उन्हें बन्धनमें डालनेके लिये ही सत्त्वादि गुणोंको ग्रहण किया है। जगत्में जितनी भी साधना, ज्ञान, क्रिया आदि शक्तियाँ हैं, उन सबको जगानेवाले आप ही हैं। इसलिये आपके मिटाये बिना यह माया मिट नहीं सकती। (इस विषयमें यदि प्रमाण पूछा जाय, तो आपकी श्वासभूता श्रुतियाँ ही—हम ही प्रमाण हैं।) यद्यपि हम आपका स्वरूपतः वर्णन करनेमें असमर्थ हैं, परन्तु जब कभी आप मायाके द्वारा जगत्की सृष्टि करके सगुण हो जाते हैं या उसको निषेध करके स्वरूपस्थितिकी लीला करते है अथवा अपना सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीविग्रह प्रकट करके क्रीडा करते हैं, तभी हम यत्किञ्चित् आपका वर्णन करनेमें समर्थ होती हैं ॥ १४ ॥*इसमें सन्देह नहीं कि हमारे द्वारा इन्द्र, वरुण आदि देवताओंका भी वर्णन किया जाता है, परन्तु हमारे (श्रुतियोंके) सारे मन्त्र अथवा सभी मन्त्रद्रष्टा ऋषि प्रतीत होनेवाले इस सम्पूर्ण जगत्को ब्रह्मस्वरूप ही अनुभव करते हैं। क्योंकि जिस समय यह सारा जगत् नहीं रहता, उस समय भी आप बच रहते हैं। जैसे घट, शराव (मिट्टीका प्याला—कसोरा) आदि सभी विकार मिट्टीसे ही उत्पन्न और उसीमें लीन होते हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्ति और प्रलय आपमें ही होती है। तब क्या आप पृथ्वीके समान विकारी हैं ? नहीं-नहीं, आप तो एकरस-निर्विकार हैं। इसीसे तो यह जगत् आपमें उत्पन्न नहीं, प्रतीत है। इसलिये जैसे घट, शराव आदिका वर्णन भी मिट्टीका ही वर्णन है, वैसे ही इन्द्र, वरुण आदि देवताओंका वर्णन भी आपका ही वर्णन है। यही कारण है कि विचारशील ऋषि, मनसे जो कुछ सोचा जाता है और वाणीसे जो कुछ कहा जाता है, उसे आपमें ही स्थित, आपका ही स्वरूप देखते हैं।

* इन श्लोकोंपर श्रीश्रीधरस्वामीने बहुत सुन्दर श्लोक लिखे हैं, वे अर्थसहित यहाँ दिये जाते हैं—

जयजयाजित जह्यगजङ्गमावृतिमजामुपनीतमृषागुणाम् ।
न हि भवन्तमृते प्रभवन्त्यमी निगमगीतगुणार्णवता तव ॥ १ ॥

अजित ! आपकी जय हो, जय हो ! झूठे गुण धारण करके चराचर जीवको आच्छादित करनेवाली इस मायाको नष्ट कर दीजिये। आपके बिना बेचारे जीव इसको नहीं मार सकेंगे—नहीं पार कर सकेंगे। वेद इस बातका गान करते रहते हैं कि आप सकल सद्गुणोंके समुद्र हैं।

मनुष्य अपना पैर चाहे कहीं भी रक्खे—ईंट, पत्थर या काठपर—होगा वह पृथ्वीपर ही; क्योंकि वे सब पृथ्वीस्वरूप ही हैं। इसलिये हम चाहे जिस नाम या जिस रूपका वर्णन करें, वह आपका ही नाम, आपका ही रूप है *॥ १५ ॥

भगवन्! लोग सत्त्व, रज, तम—इन तीन गुणोंकी मायासे बने हुए अच्छे बुरे भावों या अच्छी-बुरी क्रियाओंमें उलझ जाया करते हैं, परन्तु आप तो उस माया-नटीके स्वामी, उसको नचानेवाले हैं। इसीलिये विचार-शील पुरुष आपकी लीलाकथाके अमृतसागरमे गोते लगाते रहते हैं और इस प्रकार अपने सारे पाप-तापको धो-बहा देते हैं। क्यों न हो, आपकी लीला-कथा सभी जीवोंके मायामलको नष्ट करनेवाली जो है। पुरुषोत्तम! जिन महापुरुषोंने आत्मज्ञानके द्वारा अन्तःकरणके रागद्वेष आदि और शरीरके कालकृत जरा-मरण आदि दोष मिटा दिये है और निरन्तर आपके उस स्वरूपकी अनुभूतिमे मग्न रहते है, जो अखण्ड आनन्दस्वरूप है, उन्होंने अपने पाप-तापोंको सदाके लिये शान्त, भस्म कर दिया है—इसके विषयमे तो कहना ही क्या है † ॥ १६ ॥ भगवन्! प्राणधारियोंके जीवनकी सफलता इसीमें है कि वे आपका भजन-सेवन करें, आपकी आज्ञाका पालन करें; यदि वे ऐसा नही करते तो उनका जीवन व्यर्थ है और उनके शरीरमे श्वासका चलना ठीक वैसा ही है, जैसा लुहारकी धौंकनीमे हवाका आना-जाना। महत्तत्त्व, अहङ्कार आदिने आपके अनुग्रहसे—आपके उनमें प्रवेश करनेपर ही इस ब्रह्माण्डकी सृष्टि की है। अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय—इन पाँचों कोशोंमें पुरुष-रूपसे रहनेवाले, उनमें 'मैं-मैं' की स्फूर्ति करनेवाले भी आप ही हैं! आपके ही अस्तित्वसे उन कोशोंके अस्तित्वका अनुभव होता है और उनके न रहनेपर भी अन्तिम अवधिरूपसे आप विराजमान रहते हैं। इस प्रकार सबमें अन्वित और सबकी अवधि होनेपर भी आप असग ही हैं। क्योंकि वास्तवमें जो कुछ वृत्तियोंके द्वारा अस्ति अथवा नास्तिके रूपमें अनुभव होता है, उन समस्त कार्य-कारणोंसे आप परे हैं। 'नेति-नेति' के द्वारा इन सबका निषेध हो जानेपर भी आप ही शेष रहते हैं, क्योंकि आप उस निषेधके भी साक्षी हैं और वास्तवमें आप ही एकमात्र सत्य हैं। (इसलिये आपके भजनके बिना जीवका जीवन व्यर्थ ही है, क्योंकि वह इस महान् सत्यसे वञ्चित है) ‡ ॥ १७ ॥

ऋषियोंने आपकी प्राप्तिके लिये अनेकों मार्ग माने हैं। उनमें जो स्थूल दृष्टिवाले हैं, वे मणिपूरक चक्रमें अग्निरूपसे आपकी उपासना करते हैं। अरुणवंशके ऋषि समस्त नाड़ियोंके निकलनेके स्थान हृदयमें आपके परम सूक्ष्मस्वरूप दहर ब्रह्मकी उपासना करते हैं। प्रभो! हृदयसे ही आपको प्राप्त करनेका श्रेष्ठ मार्ग सुषुम्ना नाड़ी ब्रह्मरन्ध्रतक गयी हुई है। जो पुरुष उस

---

* द्रुहिणवह्निरवीन्द्रमुखामरा जगदिदं न भवेत्पृथगुत्थितम्।
बहुमुखैरपि मन्त्रगणैरजस्त्वमुरुमूर्तिरतो विनिगद्यसे ॥ २ ॥

ब्रह्मा, अग्नि, सूर्य, इन्द्र आदि देवता तथा यह सम्पूर्ण जगत् प्रतीत होनेपर भी आपसे पृथक् नहीं है। इसलिये अनेक देवताओंका प्रतिपादन करनेवाले वेद-मन्त्र उन देवताओंके नामसे पृथक्-पृथक् आपकी ही विभिन्न मूर्तियोंका वर्णन करते हैं। वस्तुतः आप अजन्मा है, उन मूर्तियोंके रूपमे भी आपका जन्म नहीं होता।

† सकलवेदगणेरितसद्गुणस्त्वमिति सर्वमनीषिजना रताः।
त्वयि सुभद्रगुणश्रवणादिभिस्तव पदस्मरणेन गतक्लमाः ॥ ३ ॥

सारे वेद आपके सद्गुणोंका वर्णन करते हैं। इसलिये संसारके सभी विद्वान् आपके मङ्गलमय कल्याणकारी गुणोंके श्रवण, स्मरण आदिके द्वारा आपसे ही प्रेम करते हैं और आपके चरणोंका स्मरण करके सम्पूर्ण क्लेशोंसे मुक्त हो जाते हैं।

‡ नरवपुः प्रतिपद्य यदि त्वयि श्रवणवर्णनसंस्मरणादिभिः।
नरहरे! न भजन्ति नृणामिदं दृतिवदुच्छ्वसितं विफलं ततः ॥ ४ ॥

नरहरे! मनुष्य-शरीर प्राप्त करके यदि जीव आपके श्रवण, वर्णन और संस्मरण आदिके द्वारा आपका भजन नहीं करते तो जीवोंका श्वास लेना धौंकनीके समान ही सर्वथा व्यर्थ है।

ज्योतिर्मय मार्गको प्राप्त कर लेता है और उससे ऊपरकी ओर बढ़ता है, वह फिर जन्म-मृत्युके चक्करमें नहीं पड़ता * ॥ १८ ॥ भगवन्! आपने ही देवता, मनुष्य और पशु-पक्षी आदि योनियाँ बनायी हैं। सदा-सर्वत्र सब रूपोंमें आप हैं ही, इसलिये कारणरूपसे प्रवेश न करनेपर भी आप ऐसे जान पड़ते हैं, मानो उसमें प्रविष्ट हुए हों। साथ ही विभिन्न आकृतियोंका अनुकरण करके कहीं उत्तम, तो कहीं अधमरूपसे प्रतीत होते हैं, जैसे आग छोटी-बड़ी लकड़ियों और कर्मोंके अनुसार प्रचुर अथवा अल्प परिमाणमें या उत्तम-अधम-रूपमें प्रतीत होती है। इसलिये संत पुरुष लौकिक-पारलौकिक कर्मोंकी दूकानदारीसे, उनके फलोंसे विरक्त हो जाते हैं और अपनी निर्मल बुद्धिसे सत्य-असत्य, आत्मा-अनात्माको पहचानकर जगत्के झूठे रूपोंमें नहीं फँसते; आपके सर्वत्र एकरस, समभावसे स्थित सत्य-स्वरूपका साक्षात्कार करते हैं † ॥ १९ ॥

प्रभो! जीव जिन शरीरोंमें रहता है, वे उसके कर्मके द्वारा निर्मित होते हैं और वास्तवमें उन शरीरोंके कार्य-कारणरूप आवरणोंसे वह रहित है, क्योंकि वस्तुतः उन आवरणोंकी सत्ता ही नहीं है। तत्त्वज्ञानी पुरुष ऐसा कहते हैं कि समस्त शक्तियोंको धारण करनेवाले आपका ही वह स्वरूप है। स्वरूप होनेके कारण अंश न होनेपर भी उसे अंश कहते हैं और निर्मित न होनेपर भी निर्मित कहते हैं। इसीसे बुद्धिमान् पुरुष जीवके वास्तविक स्वरूपपर विचार करके परम विश्वासके साथ आपके चरणकमलोंकी उपासना करते हैं। क्योंकि आपके चरण ही समस्त वैदिक कर्मोंके समर्पणस्थान और मोक्षस्वरूप हैं‡ ॥ २० ॥ भगवन्! परमात्म-तत्त्वका ज्ञान प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। उसीका ज्ञान करानेके लिये आप विविध प्रकारके अवतार ग्रहण करते हैं और उनके द्वारा ऐसी लीला करते हैं, जो अमृतके महासागरसे भी मधुर और मादक होती है। जो लोग उसका सेवन करते हैं, उनकी सारी थकावट दूर हो जाती है, वे परमानन्दमें मग्न हो जाते हैं। कुछ प्रेमी भक्त तो ऐसे होते हैं, जो आपकी लीला-कथाओंको छोड़कर मोक्षकी भी अभिलाषा नहीं करते—स्वर्ग आदिकी तो बात ही क्या है। वे आपके चरण-कमलोंके प्रेमी परमहंसोंके सत्संगमें, जहाँ आपकी कथा होती है, इतना सुख मानते हैं कि उसके लिये इस जीवनमें प्राप्त अपनी घर-गृहस्थीका भी परित्याग कर देते हैं § ॥ २१ ॥

प्रभो! यह शरीर आपकी सेवाका साधन होकर जब आपके पथका अनुरागी हो जाता है, तब आत्मा, हितैषी, सुहृद् और प्रिय व्यक्तिके समान आचरण करता

---

* उदरादिषु यः पुंसां चिन्तितो मुनिवर्त्मभिः।
हन्ति मृत्युभयं देवो हृद्गतं तमुपास्महे ॥ ५ ॥

मनुष्य ऋषि-मुनियोंके द्वारा बतलायी हुई पद्धतियोंसे उदर आदि स्थानोंमें जिनका चिन्तन करते हैं और जो प्रभु उनके चिन्तन करनेपर मृत्यु-भयका नाश कर देते हैं, उन हृदयदेशमें विराजमान प्रभुकी हम उपासना करते हैं।

† स्वनिर्मितेषु कार्येषु तारतम्यविवर्जितम्।
सर्वानुस्यूतसन्मात्रं भगवन्तं भजामहे ॥ ६ ॥

अपनेद्वारा निर्मित सम्पूर्ण कार्योंमें जो न्यूनाधिक श्रेष्ठ-कनिष्ठके भावसे रहित एवं सबमें भरपूर हैं, इस रूपमें अनुभवमें आनेवाली निर्विशेष सत्ताके रूपमें स्थित हैं, उन भगवान्का हम भजन करते हैं।

‡ त्वदंशस्य ममेशान त्वन्मायाकृतबन्धनम्।
त्वदङ्घ्रिसेवामादिश्य परानन्द निवर्तय ॥ ७ ॥

मेरे परमानन्दस्वरूप स्वामी! मैं आपका अंश हूँ। अपने चरणोंकी सेवाका आदेश देकर अपनी मायाके द्वारा निर्मित मेरे बन्धनको निवृत्त कर दो।

§ त्वत्कथामृतपाथोधौ विहरन्तो महामुदः।
कुर्वन्ति कृतिनः केचिच्चतुर्वर्गं तृणोपमम् ॥ ८ ॥

कोई-कोई विरले शुद्धान्तःकरण महापुरुष आपके अमृतमय कथा-समुद्रमें विहार करते हुए परमानन्दमें मग्न रहते हैं और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंको तृणके समान तुच्छ बना देते हैं।

है। आप जीवके सच्चे हितैषी, प्रियतम और आत्मा ही हैं और सदा-सर्वदा जीवको अपनानेके लिये तैयार भी रहते हैं। इतनी सुगमता होनेपर तथा अनुकूल मानव-शरीरको पाकर भी लोग सख्यभाव आदिके द्वारा आपकी उपासना नहीं करते, आपमें नहीं रमते, बल्कि इस विनाशी और असत् शरीर तथा उसके सम्बन्धियोंमें ही रम जाते हैं, उन्हींकी उपासना करने लगते हैं और इस प्रकार अपने आत्माका हनन करते हैं, उसे अधोगतिमें पहुँचाते है। भला, यह कितने कष्टकी बात है! इसका फल यह होता है कि उनकी सारी वृत्तियाँ, सारी वासनाएँ शरीर आदिमें ही लग जाती हैं और फिर उनके अनुसार उनको पशु-पक्षी आदिके न जाने कितने बुरे-बुरे शरीर ग्रहण करने पड़ते हैं और इस प्रकार अत्यन्त भयावह जन्म-मृत्युरूप संसारमें भटकना पड़ता है *॥ २२॥ प्रभो! बड़े-बड़े विचारशील योगी यति अपने प्राण, मन और इन्द्रियोंको वशमें करके दृढ़ योगाभ्यासके द्वारा हृदयमें आपकी उपासना करते है। परन्तु आश्चर्यकी बात तो यह है कि उन्हें जिस पदकी प्राप्ति होती है, उसीकी प्राप्ति उन शत्रुओंको भी हो जाती है, जो आपसे वैर-भाव रखते हैं। क्योंकि स्मरण तो वे भी करते ही हैं। कहाँतक कहें, भगवन्! वे स्त्रियाँ, जो अज्ञानवश आपको परिच्छिन्न मानती हैं और आपकी शेषनागके समान मोटी, लंबी तथा सुकुमार भुजाओंके प्रति कामभावसे आसक्त रहती हैं, जिस परम पदको प्राप्त करती हैं, वही पद हम श्रुतियोंको भी प्राप्त होता है—यद्यपि हम आपको सदा-सर्वदा एकरस अनुभव करती हैं और आपके चरणारविन्दका मकरन्द-रस पान करती रहती हैं। क्यों न हो, आप समदर्शी जो हैं। आपकी दृष्टिमें उपासकके परिच्छिन्न या अपरिच्छिन्न भावमें कोई अन्तर नहीं है†॥ २३॥

भगवन्! आप अनादि और अनन्त हैं। जिसका जन्म और मृत्यु कालसे सीमित है, वह भला, आपको कैसे जान सकता है। स्वयं ब्रह्माजी, निवृत्तिपरायण सनकादि तथा प्रवृत्तिपरायण मरीचि आदि भी बहुत पीछे आपसे ही उत्पन्न हुए हैं। जिस समय आप सबको समेटकर सो जाते हैं, उस समय ऐसा कोई साधन नहीं रह जाता, जिससे उनके साथ ही सोया हुआ जीव आपको जान सके। क्योंकि उस समय न तो आकाशादि स्थूल जगत् रहता है और न तो महत्तत्त्वादि सूक्ष्म जगत्। इन दोनोंसे बने हुए शरीर और उनके निमित्त क्षण-मुहूर्त आदि कालके अंग भी नहीं रहते। उस समय कुछ भी नहीं रहता। यहाँतक कि शास्त्र भी आपमें ही समा जाते हैं (ऐसी अवस्थामें आपको जाननेकी चेष्टा न करके आपका भजन करना ही सर्वोत्तम मार्ग है।) ‡॥ २४॥ प्रभो! कुछ लोग मानते हैं कि असत् जगत्की उत्पत्ति होती है और कुछ लोग कहते हैं कि सत्-रूप दु:खोंका नाश होनेपर मुक्ति मिलती है। दूसरे लोग आत्माको अनेक मानते हैं, तो कई लोग कर्मके द्वारा प्राप्त होनेवाले लोक और परलोक-रूप व्यवहारको सत्य मानते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि ये सभी बातें भ्रममूलक हैं और वे आरोप करके ही ऐसा उपदेश करते हैं। पुरुष त्रिगुणमय है—इस

---

* त्वय्यात्मनि जगन्नाथे मन्मनो रमतामिह।
कदा ममेदृशं जन्म मानुषं सम्भविष्यति॥ ९॥

आप जगत्के स्वामी हैं और अपनी आत्मा ही हैं। इस जीवनमें ही मेरा मन आपमें रम जाय। मेरे स्वामी! मेरा ऐसा सौभाग्य कब होगा जब मुझे इस प्रकारका मनुष्य-जन्म प्राप्त होगा?

† चरणस्मरणं प्रेम्णा तव देव सुदुर्लभम्।
यथाकथञ्चिन्नृहरे मम भूयादहर्निशम्॥ १०॥

देव! आपके चरणोंका प्रेमपूर्वक स्मरण अत्यन्त दुर्लभ है। चाहे जैसे-कैसे भी हो, नृसिंह! मुझे तो आपके चरणोंका स्मरण दिन-रात बना रहे।

‡ क्वाहं बुद्ध्यादिसंरुद्धः क्व च भूमन्महस्तव।
दीनबन्धो दयासिन्धो भक्तिं मे नृहरे दिश॥ ११॥

अनन्त! कहाँ बुद्धि आदि परिच्छिन्न उपाधियोंमें घिरा हुआ मैं और कहाँ आपका मन वाणी आदिके अगोचर-स्वरूप! (आपका ज्ञान तो बहुत ही कठिन है) इसलिये दीनबन्धु, दयासिन्धु! नरहरि देव! मुझे तो अपनी भक्ति ही दीजिये।

प्रकारका भेदभाव केवल अज्ञानसे ही होता है और आप अज्ञानसे सर्वथा परे हैं। इसलिये ज्ञानस्वरूप आपमें किसी प्रकारका भेदभाव नहीं है* ॥ २५ ॥

यह त्रिगुणात्मक जगत् मनकी कल्पनामात्र है। केवल यही नहीं, परमात्मा और जगत्‌से पृथक् प्रतीत होनेवाला पुरुष भी कल्पनामात्र ही है। इस प्रकार वास्तवमें असत् होनेपर भी अपने सत्य अधिष्ठान आपकी सत्ताके कारण यह सत्य-सा प्रतीत हो रहा है। इसलिये भोक्ता, भोग्य और दोनोंके सम्बन्धको सिद्ध करनेवाली इन्द्रियाँ आदि जितना भी जगत् है, सबको आत्मज्ञानी पुरुष आत्मरूपसे सत्य ही मानते हैं। सोनेसे बने हुए कड़े, कुण्डल आदि स्वर्णरूप ही तो हैं; इसलिये उनको इस रूपमे जाननेवाला पुरुष उन्हें छोड़ता नहीं, वह समझता है कि यह भी सोना है। इसी प्रकार यह जगत् आत्मामे ही कल्पित, आत्मासे ही व्याप्त है; इसलिये आत्मज्ञानी पुरुष इसे आत्मरूप ही मानते हैं †॥ २६ ॥ भगवन्! जो लोग यह समझते है कि आप समस्त प्राणियों और पदार्थोंके अधिष्ठान है, सबके आधार हैं और सर्वात्मभावसे आपका भजन-सेवन करते हैं, वे मृत्युको तुच्छ समझकर उसके सिरपर लात मारते हैं अर्थात् उसपर विजय प्राप्त कर लेते हैं। जो लोग आपसे विमुख हैं, वे चाहे जितने बड़े विद्वान् हों, उन्हें आप कर्मोंका प्रतिपादन करनेवाली श्रुतियोंसे पशुओंके समान बाँध लेते हैं। इसके विपरीत जिन्होंने आपके साथ प्रेमका सम्बन्ध जोड़ रक्खा है, वे न केवल अपनेको बल्कि दूसरोंको भी पवित्र कर देते हैं—जगत्‌के बन्धनसे छुड़ा देते हैं। ऐसा सौभाग्य भला, आपसे विमुख लोगोंको कैसे प्राप्त हो सकता है ‡ ॥ २७ ॥

प्रभो! आप मन, बुद्धि और इन्द्रिय आदि करणों-से—चिन्तन, कर्म आदिके साधनोंसे सर्वथा रहित हैं। फिर भी आप समस्त अन्तःकरण और बाह्य करणोंकी शक्तियोंसे सदा-सर्वदा सम्पन्न हैं। आप स्वतःसिद्ध ज्ञान-वान्, स्वयंप्रकाश हैं; अतः कोई काम करनेके लिये आपको इन्द्रियोंकी आवश्यकता नहीं है। जैसे छोटे-छोटे राजा अपनी-अपनी प्रजासे कर लेकर स्वयं अपने सम्राट्‌को कर देते हैं, वैसे ही मनुष्योंके पूज्य देवता और देवताओंके पूज्य ब्रह्मा आदि भी अपने अधिकृत प्राणियोंसे पूजा स्वीकार करते हैं और मायाके अधीन होकर आपकी पूजा करते रहते हैं। वे इस प्रकार आपकी पूजा करते हैं कि आपने जहाँ जो कर्म करनेके लिये उन्हें नियुक्त कर दिया है, वे आपसे भयभीत

---

* मिथ्यातर्कसुकर्कशेरितमहावादान्धकारान्तर-
भ्राम्यन्मन्दमतेरमन्दमहिमस्त्वज्ज्ञानवर्त्मास्फुटम्।
श्रीमन्माधव वामन त्रिनयन श्रीशङ्कर श्रीपते
गोविन्देति मुदा वदन् मधुपते मुक्तः कदा स्यामहम् ॥ १२ ॥

अनन्त महिमाशाली प्रभो! जो मन्दमति पुरुष झूठे तर्कोंके द्वारा प्रेरित अत्यन्त कर्कश वाद-विवादके घोर अन्ध-कारमें भटक रहे हैं, उनके लिये आपके ज्ञानका मार्ग स्पष्ट सूझना सम्भव नहीं है। इसलिये मेरे जीवनमें ऐसी सौभाग्यकी घड़ी कब आवेगी कि मैं श्रीमन्माधव, वामन, त्रिलोचन, श्रीशङ्कर, श्रीपते, गोविन्द, मधुपते—इस प्रकार आपको आनन्दमें भरकर पुकारता हुआ मुक्त हो जाऊँगा।

† यत्सत्त्वतः सदाभाति जगदेतदसत् स्वतः।
सदाभासमसत्यस्मिन् भगवन्तं भजाम तम् ॥ १३ ॥

यह जगत् अपने स्वरूप, नाम और आकृतिके रूपमें असत् है, फिर भी जिस अधिष्ठान-सत्ताकी सत्यतासे यह सत्य जान पड़ता है तथा जो इस असत्य प्रपञ्चमें सत्यके रूपसे सदा प्रकाशमान रहता है, उस भगवान्‌का हम भजन करते हैं।

‡ तपन्तु तापैः प्रपतन्तु पर्वतादटन्तु तीर्थानि पठन्तु चागमान्।
यजन्तु यागैर्विवदन्तु वादैर्हरिं विना नैव मृतिं तरन्ति ॥ १४ ॥

लोक पञ्चाग्नि आदि तापोंसे तप्त हों, पर्वतसे गिरकर आत्मघात कर लें, तीर्थोंका पर्यटन करें, वेदोंका पाठ करें, यज्ञोंके द्वारा यजन करें अथवा भिन्न-भिन्न मतवादोंके द्वारा आपसमें विवाद करें, परन्तु भगवान्‌के बिना इस मृत्युमय संसार-सागरसे पार नहीं जाते।

रहकर वहीं वह काम करते रहते हैं* ॥ २८ ॥ नित्यमुक्त ! आप मायातीत हैं; फिर भी जब अपने ईक्षणमात्रसे—सङ्कल्पमात्रसे मायाके साथ क्रीडा करते हैं, तब आपका संकेत पाते ही जीवोंके सूक्ष्म शरीर और उनके सुप्त कर्म-संस्कार जग जाते हैं और चराचर प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है। प्रभो! आप परम दयालु हैं। आकाशके समान सबमे सम होनेके कारण न तो कोई आपका अपना है और न तो पराया। वास्तवमे तो आपके स्वरूपमें मन और वाणीकी गति ही नहीं है। आपमें कार्य-कारणरूप प्रपञ्चका अभाव होनेसे बाह्य दृष्टिसे आप शून्यके समान ही जान पड़ते हैं, परन्तु उस दृष्टिके भी अधिष्ठान होनेके कारण आप परम सत्य हैं † ॥ २९ ॥

भगवन्! आप नित्य एकरस हैं। यदि जीव असंख्य हों और सब-के-सब नित्य एवं सर्वव्यापक हों, तब तो वे आपके समान ही हो जायँगे; उस हालतमें वे शासित हैं और आप शासक—यह बात बन ही नहीं सकती, और तब आप उनका नियन्त्रण कर ही नहीं सकते। उनका नियन्त्रण आप तभी कर सकते हैं, जब वे आपसे उत्पन्न एवं आपकी अपेक्षा न्यून हों। इसमें सन्देह नहीं कि ये सब-के-सब जीव तथा इनकी एकता या विभिन्नता आपसे ही उत्पन्न हुई है। इसलिये आप उनमें कारणरूपसे रहते हुए भी उनके नियामक हैं। वास्तवमें आप उनमें समरूपसे स्थित हैं। परन्तु यह जाना नहीं जा सकता कि आपका वह स्वरूप कैसा है, क्योंकि जो लोग ऐसा समझते हैं कि हमने जान लिया, उन्होंने वास्तवमें आपको नहीं जाना, उन्होंने तो केवल अपनी बुद्धिके विषयको जाना है, जिससे आप परे हैं; और साथ ही मतिके द्वारा जितनी वस्तुएँ जानी जाती हैं, वे मतियोंकी भिन्नताके कारण भिन्न-भिन्न होती हैं; इसलिये उनकी दुष्टता, एक मतके साथ दूसरे मतका विरोध प्रत्यक्ष ही है। अतएव आपका स्वरूप समस्त मतोंके परे है‡ ॥ ३० ॥ स्वामिन्! जीव आपसे उत्पन्न होता है, यह कहनेका ऐसा अर्थ नहीं है कि आप परिणामके द्वारा जीव बनते हैं। सिद्धान्त तो यह है कि प्रकृति और पुरुष दोनों ही अजन्मा हैं। अर्थात् उनका वास्तविक स्वरूप—जो आप हैं—कभी वृत्तियोंके अदर उतरता नहीं, जन्म नहीं लेता। तब प्राणियोंका जन्म कैसे होता है? अज्ञानके कारण प्रकृतिको पुरुष और पुरुषको प्रकृति समझ लेनेसे, एकका दूसरेके साथ संयोग हो जानेसे जैसे 'बुलबुला' नामकी कोई स्वतन्त्र वस्तु नहीं है, परन्तु उपादान-कारण जल और निमित्त-कारण वायुके सयोगसे उसकी सृष्टि हो जाती है। प्रकृतिमें पुरुष और पुरुषमे प्रकृतिका अध्यास (एकमें दूसरेकी कल्पना) हो जानेके कारण ही जीवोंके विविध नाम और गुण रख लिये जाते हैं। अन्तमें जैसे समुद्रमें नदियाँ और मधुमें समस्त पुष्पोंके रस समा जाते हैं, वैसे ही वे सब-के-सब उपाधिरहित आपमें समा जाते हैं, (इसलिये जीवोंकी भिन्नता और उनका पृथक् अस्तित्व आपके

* अनिन्द्रियोऽपि यो देवः सर्वकारकशक्तिधृक्।
सर्वज्ञः सर्वकर्ता च सर्वसेव्य नमामि तम् ॥ १५ ॥

जो प्रभु इन्द्रियरहित होनेपर भी समस्त बाह्य और आन्तरिक इन्द्रियकी शक्तिको धारण करता है और सर्वज्ञ एवं सर्वकर्ता है, उस सबके सेवनीय प्रभुको मैं नमस्कार करता हूँ।

† त्वदीक्षणवशक्षोभमायाबोधितकर्मभिः।
जातान् संसरतः खिन्नान्नृहरे पाहि नः पितः ॥ १६ ॥

नृसिंह! आपके सृष्टि-सङ्कल्पसे क्षुब्ध होकर मायाने कर्मोंको जाग्रत् कर दिया है। उन्हींके कारण हमलोगोंका जन्म हुआ और अब आवागमनके चक्करमें भटककर हम दुखी हो रहे है। पिताजी! आप हमारी रक्षा कीजिये।

‡ अन्तर्यन्ता सर्वलोकस्य गीतः श्रुत्या युक्त्या चैवमेवावसेयः।
यः सर्वज्ञः सर्वशक्तिर्नृसिंहः श्रीमन्तं तं चेतसैवावलम्बे ॥ १७ ॥

श्रुतिने समस्त दृश्यप्रपञ्चके अन्तर्यामीके रूपमे जिनका गान किया है, और युक्तिसे भी वैसा ही निश्चय होता है। जो सर्वज्ञ, सर्वशक्ति और नृसिंह—पुरुषोत्तम हैं, उन्हीं सर्वसौन्दर्य-माधुर्यनिधि प्रभुका मै मन-ही-मन आश्रय ग्रहण करता हूँ।

द्वारा नियन्त्रित है। उनकी पृथक् स्वतन्त्रता और सर्वव्यापकता आदि वास्तविक सत्यको न जाननेके कारण ही मानी जाती है)* ॥ ३१ ॥

भगवन्! सभी जीव आपकी मायासे भ्रममें भटक रहे हैं, अपनेको आपसे पृथक् मानकर जन्म-मृत्युका चक्कर काट रहे हैं। परन्तु बुद्धिमान् पुरुष इस भ्रमको समझ लेते हैं और सम्पूर्ण भक्तिभावसे आपकी शरण ग्रहण करते हैं, क्योंकि आप जन्म-मृत्युके चक्करसे छुड़ानेवाले हैं। यद्यपि शीत, ग्रीष्म और वर्षा—इन तीन मार्गोंवाला कालचक्र आपका भ्रूविलासमात्र है, वह सभीको भयभीत करता है, परन्तु वह उन्हींको बार-बार भयभीत करता है, जो आपकी शरण नहीं लेते। जो आपके शरणागत भक्त हैं, उन्हें भला, जन्म-मृत्युरूप संसारका भय कैसे हो सकता है ?† ॥३२॥ अजन्मा प्रभो! जिन योगियोंने अपनी इन्द्रियों और प्राणोंको वशमें कर लिया है, वे भी, जब गुरुदेवके चरणोंकी शरण न लेकर उच्छृङ्खल एवं अत्यन्त चञ्चल मन-तुरंगको अपने वशमें करनेका यत्न करते हैं, तब अपने साधनोंमें सफल नहीं होते। उन्हें बार-बार खेद और सैकड़ों विपत्तियोंका सामना करना पड़ता है, केवल श्रम और दुःख ही उनके हाथ लगता है। उनकी ठीक वही दशा होती है, जैसी समुद्रमे बिना कर्णधारकी नावपर यात्रा करनेवाले व्यापारियोंकी होती है। (तात्पर्य यह कि जो मनको वशमे करना चाहते हैं, उनके लिये कर्णधार—गुरुकी अनिवार्य आवश्यकता है) ‡ ॥ ३३ ॥

भगवन्! आप अखण्ड-आनन्दस्वरूप और शरणागतोंके आत्मा हैं। आपके रहते स्वजन, पुत्र, देह, स्त्री, धन, महल, पृथ्वी, प्राण और रथ आदिसे क्या प्रयोजन है ? जो लोग इस सत्य सिद्धान्तको न जानकर स्त्री-पुरुषके सम्बन्धसे होनेवाले सुखोंमें ही रम रहे हैं, उन्हें संसारमें भला, ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो सुखी कर सके। क्योंकि संसारकी सभी वस्तुएँ स्वभावसे ही विनाशी हैं, एक-न-एक दिन मटियामेट हो जानेवाली हैं। और तो क्या, वे स्वरूपसे ही सारहीन और सत्ताहीन हैं; वे भला, क्या सुख दे सकती हैं§ ॥३४॥ भगवन्! जो ऐश्वर्य, लक्ष्मी, विद्या, जाति, तपस्या आदिके घमंडसे रहित हैं, वे संतपुरुष इस पृथ्वीतलपर परम पवित्र और सबको पवित्र करनेवाले पुण्यमय सच्चे तीर्थस्थान हैं। क्योंकि उनके हृदयमें आपके चरणारविन्द सर्वदा विराजमान रहते हैं और यही कारण है कि उन

---

* यस्मिन्नुद्यद् विलयमपि यद् भाति विश्वं लयादौ
जीवोपेतं गुरुकरुणया केवलात्मावबोधे ।
अत्यन्तान्तं व्रजति सहसा सिन्धुवत्सिन्धुमध्ये
मध्येचित्तं त्रिभुवनगुरुं भावये तं नृसिंहम् ॥ १८ ॥

जीवोंके सहित यह सम्पूर्ण विश्व जिनमें उदय होता है और सुषुप्ति आदि अवस्थाओंमें विलयको प्राप्त होता है तथा भान होता है, गुरुदेवकी करुणा प्राप्त होनेपर जब शुद्ध आत्माका ज्ञान होता है, तब समुद्रमे नदीके समान सहसा यह जिनमें आत्यन्तिक प्रलयको प्राप्त हो जाता है, उन्हीं त्रिभुवनगुरु नृसिंह भगवान्‌की मैं अपने हृदयमे भावना करता हूँ।

† संसारचक्रक्रकचैर्विदीर्णमुदीर्णनानाभवतापतप्तम् ।
कथञ्चिदापन्नमिह प्रपन्नं त्वमुद्धर श्रीनृहरे नृलोकम् ॥ १९ ॥

नृसिंह! यह जीव संसारचक्रके आरेसे टुकड़े-टुकड़े हो रहा है और नाना प्रकारके सांसारिक पापोंकी धधकती हुई लपटोंसे झुलस रहा है। यह आपत्तिग्रस्त जीव किसी प्रकार आपकी कृपासे आपकी शरणमें आया है। आप इसका उद्धार कीजिये।

‡ यदा परानन्दगुरो भवत्पदे पदं मनो मे भगवँल्लभेत ।
तदा निरस्ताखिलसाधनश्रमः श्रयेय सौख्यं भवतः कृपातः ॥ २० ॥

परमानन्दमय गुरुदेव! भगवन्! जब मेरा मन आपके चरणोंमे स्थान प्राप्त कर लेगा, तब मैं आपकी कृपासे समस्त साधनोंके परिश्रमसे छुटकारा पाकर परमानन्द प्राप्त करूँगा।

§ भजतां हि भवान् साक्षात्परमानन्दचिद्घनः ।
आत्मैव किमतः कृत्यं तुच्छदारसुतादिभिः ॥ २१ ॥

जो आपका भजन करते हैं, उनके लिये आप स्वयं साक्षात् परमानन्दचिद्घन आत्मा ही हैं। इसलिये उन्हें तुच्छ स्त्री, पुत्र, धन आदिसे क्या प्रयोजन है ?

संत पुरुषोंका चरणामृत समस्त पापों और तापोंको सदाके लिये नष्ट कर देनेवाला है । भगवन् ! आप नित्य-आनन्दस्वरूप आत्मा ही हैं । जो एक बार भी आपको अपना मन समर्पित कर देते है—आपमें मन लगा देते हैं—वे उन देह-गेहोंमें कभी नहीं फँसते जो जीवके विवेक, वैराग्य, धैर्य, क्षमा और शान्ति आदि गुणोंका नाश करनेवाले हैं । वे तो बस, आपमें ही रम जाते हैं * ॥ ३५ ॥

भगवन् ! जैसे मिट्टीसे बना हुआ घड़ा मिट्टीरूप ही होता है, वैसे ही सत्से बना हुआ जगत् भी सत् ही है—यह बात युक्तिसङ्गत नहीं है । क्योंकि कारण और कार्यका निर्देश ही उनके भेदका द्योतक है । यदि केवल भेदका निषेध करनेके लिये ही ऐसा कहा जा रहा हो तो पिता और पुत्रमे, दण्ड और घटनाशमें कार्य-कारण-भाव होनेपर भी वे एक दूसरेसे भिन्न हैं । इस प्रकार कार्य-कारणकी एकता सर्वत्र एक-सी नहीं देखी जाती । यदि कारण-शब्दसे निमित्त-कारण न लेकर केवल उपादान-कारण लिया जाय—जैसे कुण्डलका सोना—तो भी कहीं-कहीं कार्यकी असत्यता प्रमाणित होती है; जैसे रस्सीमें साँप । यहाँ उपादान-कारणके सत्य होनेपर भी उसका कार्य सर्प सर्वथा असत्य है । यदि यह कहा जाय कि प्रतीत होनेवाले सर्पका उपादान-कारण केवल रस्सी नहीं है, उसके साथ अविद्याका—भ्रमका मेल भी है, तो यह समझना चाहिये कि अविद्या और सत् वस्तुके संयोगसे ही इस जगत्की उत्पत्ति हुई है । इसलिये जैसे रस्सीमे प्रतीत होनेवाला सर्प मिथ्या है, वैसे ही सत् वस्तुमें अविद्याके संयोगसे प्रतीत होने-वाला नाम-रूपात्मक जगत् भी मिथ्या है । यदि केवल व्यवहारकी सिद्धिके लिये ही जगत्की सत्ता अभीष्ट हो, तो उसमें कोई आपत्ति नहीं, क्योंकि वह पारमार्थिक सत्य न होकर केवल व्यावहारिक सत्य है । यह भ्रम व्यावहारिक जगत्में माने हुए कालकी दृष्टिसे अनादि है; और अज्ञानीजन बिना विचार किये पूर्व-पूर्वके भ्रमसे प्रेरित होकर अन्धपरम्परासे इसे मानते चले आ रहे हैं । ऐसी स्थितिमें कर्मफलको सत्य बतलानेवाली श्रुतियाँ केवल उन्हीं लोगोंको भ्रममें डालती हैं, जो कर्ममें जड हो रहे हैं और यह नहीं समझते कि इनका तात्पर्य कर्मफलकी नित्यता बतलानेमें नहीं, बल्कि उनकी प्रशंसा करके उन कर्मोंमें लगानेमें है †॥ ३६ ॥ भगवन् ! वास्तविक बात तो यह है कि यह जगत् उत्पत्तिके पहले नहीं था और प्रलयके बाद नहीं रहेगा, इससे यह सिद्ध होता है कि यह बीचमें भी एकरस परमात्मामें मिथ्या ही प्रतीत हो रहा है । इसीसे हम श्रुतियाँ इस जगत्का वर्णन ऐसी उपमा देकर करती हैं कि जैसे मिट्टीमें घड़ा, लोहेमें शस्त्र और सोनेमें कुण्डल आदि नाममात्र हैं, वास्तवमें

---

* मुञ्चन्नङ्गतदङ्गसङ्गमनिशं त्वामेव सञ्चिन्तयन्
सन्तः सन्ति यतो यतो गतमदास्तानाश्रमानावसन् ।
नित्यं तन्मुखपङ्कजाद्विगलितत्वत्पुण्यगाथामृत-
स्रोतःसम्प्लवसम्प्लुतो नरहरे न स्यामहं देहभृत् ॥ २२ ॥

मैं शरीर और उसके सम्बन्धियोंकी आसक्ति छोडकर रात-दिन आपका ही चिन्तन करूँगा और जहाँ-जहाँ निरभिमान सन्त निवास करते हैं, उन्हीं-उन्हीं आश्रमोंमें रहूँगा । उन सत्पुरुषोंके मुख-कमलसे निःसृत आपकी पुण्यमयी कथा-सुधाकी नदियोंकी धारामें प्रतिदिन स्नान करूँगा और नृसिंह ! फिर मैं कभी देहके बन्धनमें नहीं पड़ूँगा ।

† उद्भूतं भवतः सतोऽपि भुवनं सन्नैव सर्पः स्रजः
कुर्वत् कार्यमपीह कूटकनकं वेदोऽपि नैवपरः ।
अद्वैतं तव सत्परं तु परमानन्दं पदं तन्मुदा
वन्दे सुन्दरमिन्दिरानुत हरे मा मुञ्च मामानतम् ॥ २३ ॥

मालामें प्रतीयमान सर्पके समान सत्यस्वरूप आपके उदय होनेपर भी यह त्रिभुवन सत्य नहीं है । झूठा सोना बाजारमें चल जानेपर भी सत्य नहीं हो जाता । वेदोंका तात्पर्य भी जगत्की सत्यतामें नहीं है । इसलिये आपका जो परम सत्य परमानन्दस्वरूप अद्वैत सुन्दर पद है, हे इन्दिरावन्दित श्रीहरे ! मैं उसीकी वन्दना करता हूँ । मुझ शरणागतको मत छोड़िये ।

मिट्टी, लोहा और सोना ही हैं। वैसे ही परमात्मामें वर्णित जगत् नाममात्र है, सर्वथा मिथ्या और मनकी कल्पना है। इसे नासमझ मूर्ख ही सत्य मानते हैं *॥ ३७॥

भगवन्! जब जीव मायासे मोहित होकर अविद्या-को अपना लेता है, उस समय उसके स्वरूपभूत आनन्दादि गुण ढक जाते हैं, वह गुणजन्य वृत्तियों, इन्द्रियों और देहोंमें फँस जाता है तथा उन्हींको अपना आपा मानकर उनकी सेवा करने लगता है। अब उनकी जन्म-मृत्युमें अपनी जन्म-मृत्यु मानकर उनके चक्करमें पड़ जाता है। परन्तु प्रभो! जैसे साँप अपने केंचुलसे कोई सम्बन्ध नहीं रखता, उसे छोड़ देता है—वैसे ही आप माया—अविद्यासे कोई सम्बन्ध नहीं रखते, उसे सदा-सर्वदा छोड़े रहते हैं। इसीसे आपके सम्पूर्ण ऐश्वर्य, सदा-सर्वदा आपके साथ रहते हैं। अणिमा आदि अष्टसिद्धियोंसे युक्त परमैश्वर्यमें आपकी स्थिति है। इसीसे आपका ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य अपरिमित है, अनन्त है; वह देश, काल और वस्तुओं-की सीमासे आबद्ध नहीं है† ॥ ३८॥ भगवन्! यदि मनुष्य योगी-यति होकर भी अपने हृदयकी विषय-वासनाओंको उखाड़ नहीं फेंकते तो उन असाधकोंके लिये आप हृदयमें रहनेपर भी वैसे ही दुर्लभ हैं, जैसे कोई अपने गलेमें मणि पहने हुए हो, परन्तु उसकी याद न रहनेपर उसे ढूँढ़ता फिरे इधर-उधर। जो साधक अपनी इन्द्रियोंको तृप्त करनेमें ही लगे रहते हैं, विषयोंसे विरक्त नहीं होते, उन्हें जीवनभर और जीवनके बाद भी दुःख-ही-दुःख भोगना पड़ता है। क्योंकि वे साधक नहीं, दम्भी हैं। एक तो अभी उन्हें मृत्युसे छुटकारा नहीं मिला है, लोगोंको रिझाने, धन कमाने आदिके क्लेश उठाने पड़ रहे हैं, और दूसरे आपका स्वरूप न जाननेके कारण अपने धर्म-कर्मका उल्लङ्घन करनेसे परलोकमें नरक आदि प्राप्त होनेका भय भी बना ही रहता है‡ ॥ ३९॥

भगवन्! आपके वास्तविक स्वरूपको जाननेवाला पुरुष आपके दिये हुए पुण्य और पाप-कर्मोंके फल सुख एवं दुःखोंको नहीं जानता, नहीं भोगता; वह भोग्य और भोक्तापनके भावसे ऊपर उठ जाता है। उस समय विधिनिषेधके प्रतिपादक शास्त्र भी उससे निवृत्त हो जाते हैं; क्योंकि वे देहाभिमानियोंके लिये हैं। उनकी ओर तो उसका ध्यान ही नहीं जाता। जिसे आपके स्वरूपका ज्ञान नहीं हुआ है, वह भी यदि प्रतिदिन

---

* मुकुटकुण्डलकङ्कणकिङ्किणीपरिणतं कनकं परमार्थतः।
महदहङ्कृतिखप्रमुखं तथा नरहरे न परं परमार्थतः॥ २४॥

सोना मुकुट, कुण्डल, कङ्कण और किङ्किणीके रूपमें परिणत होनेपर भी वस्तुतः सोना ही है। इसी प्रकार नृसिंह! महत्तत्त्व, अहङ्कार और आकाश, वायु आदिके रूपमें उपलब्ध होनेवाला यह सम्पूर्ण जगत् वस्तुतः आपसे भिन्न नहीं है।

† नृत्यन्ती तव वीक्षणाङ्गणगता कालस्वभावादिभि-
र्भावान् सत्त्वरजस्तमोगुणमयानुन्मीलयन्ती बहून्।
मामाक्रम्य पदा शिरस्यतिभरं सम्मर्दयन्त्यातुरं
माया ते शरणं गतोऽस्मि नृहरे त्वामेव तां वारय॥ २५॥

प्रभो! आपकी यह माया आपकी दृष्टिके आँगनमें आकर नाच रही है और काल, स्वभाव आदिके द्वारा सत्त्वगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी अनेकानेक भावोंका प्रदर्शन कर रही है। साथ ही यह मेरे सिरपर सवार होकर मुझ आतुरको बल-पूर्वक रौंद रही है। नृसिंह! मैं आपकी शरणमें आया हूँ, आप ही इसे रोक दीजिये।

‡ दम्भन्यासमिषेण वञ्चितजनं भोगैकचिन्तातुरं
सम्मुह्यन्तमहर्निशं विरचितोद्योगक्लमैराकुलम्।
आज्ञालङ्घिनमज्ञमज्ञजनतासम्माननासन्मदं
दीनानाथ दयानिधान परमानन्द प्रभो पाहि माम्॥ २६॥

प्रभो! मैं दम्भपूर्ण संन्यासके बहाने लोगोंको ठग रहा हूँ। एकमात्र भोगकी चिन्तासे ही आतुर हूँ तथा रात-दिन नाना प्रकारके उद्योगोंकी रचनाकी थकावटसे व्याकुल तथा बे-सुध हो रहा हूँ। मैं आपकी आज्ञाका उल्लङ्घन करता हूँ, अज्ञानी हूँ और अज्ञानी लोगोंके द्वारा प्राप्त सम्मानसे 'मैं सन्त हूँ' ऐसा घमण्ड कर बैठा हूँ। दीनानाथ, दयानिधान, परमानन्द! मेरी रक्षा कीजिये।

आपकी प्रत्येक युगमें की हुई लीलाओं, गुणोंका गान सुन-सुनकर उनके द्वारा आपको अपने हृदयमें बैठा लेता है तो अनन्त, अचिन्त्य, दिव्य गुणगणोंके निवासस्थान प्रभो! आपका वह प्रेमी भक्त भी पाप-पुण्योंके फल सुख-दुःखों और विधि-निषेधोंसे अतीत हो जाता है। क्योंकि आप ही उनकी मोक्षस्वरूप गति हैं। (परन्तु इन ज्ञानी और प्रेमियोंको छोड़कर और सभी शास्त्रबन्धनमें हैं तथा वे उसका उल्लङ्घन करनेपर दुर्गतिको प्राप्त होते हैं) * ॥४०॥ भगवन्! स्वर्गादि लोकोंके अधिपति इन्द्र, ब्रह्मा प्रभृति भी आपकी थाह—आपका पार न पा सके; और आश्चर्यकी बात तो यह है कि आप भी उसे नहीं जानते। क्योंकि जब अन्त है ही नहीं, तब कोई जानेगा कैसे? प्रभो! जैसे आकाशमें हवासे धूलके नन्हे-नन्हे कण उड़ते रहते हैं, वैसे ही आपमें कालके वेगसे अपनेसे उत्तरोत्तर दसगुने सात आवरणोंके सहित असंख्य ब्रह्माण्ड एक साथ ही घूमते रहते हैं। तब भला, आपकी सीमा कैसे मिले। हम श्रुतियाँ भी आपके स्वरूपका साक्षात् वर्णन नहीं कर सकतीं, आपके अतिरिक्त वस्तुओंका निषेध करते-करते अन्तमें अपना भी निषेध कर देती हैं और आपमें ही अपनी सत्ता खोकर सफल हो जाती हैं† ॥ ४१ ॥

भगवान् नारायणने कहा—देवर्षे! इस प्रकार सनकादि ऋषियोंने आत्मा और ब्रह्मकी एकता बतलानेवाला उपदेश सुनकर आत्मस्वरूपको जाना और नित्य सिद्ध होनेपर भी इस उपदेशसे कृतकृत्य-से होकर उन लोगोंने सनन्दनकी पूजा की ॥४२॥ नारद! सनकादि ऋषि सृष्टिके आरम्भमें उत्पन्न हुए थे, अतएव वे सबके पूर्वज हैं। उन आकाशगामी महात्माओंने इस प्रकार समस्त वेद, पुराण और उपनिषदोंका रस निचोड़ लिया है, यह सबका सार-सर्वस्व है ॥ ४३ ॥ देवर्षे! तुम भी उन्हींके समान ब्रह्माके मानस-पुत्र हो—उनकी ज्ञान-सम्पत्तिके उत्तराधिकारी हो। तुम भी श्रद्धाके साथ इस ब्रह्मात्मविद्याको धारण करो और स्वच्छन्दभावसे पृथ्वीमें विचरण करो। यह विद्या मनुष्योंकी समस्त वासनाओंको भस्म कर देनेवाली है ॥ ४४ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! देवर्षि नारद बड़े संयमी, ज्ञानी, पूर्णकाम और नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं। वे जो कुछ सुनते हैं, उन्हें उसकी धारणा हो जाती है। भगवान् नारायणने उन्हें जब इस प्रकार उपदेश किया, तब उन्होंने बड़ी श्रद्धासे उसे ग्रहण किया और उनसे यह कहा ॥ ४५ ॥

देवर्षि नारदने कहा—भगवन्! आप सच्चिदानन्द-स्वरूप श्रीकृष्ण हैं। आपकी कीर्ति परम पवित्र है। आप समस्त प्राणियोंके परम कल्याण—मोक्षके लिये कमनीय कलावतार धारण किया करते हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ ४६ ॥

परीक्षित्! इस प्रकार महात्मा देवर्षि नारद आदि-ऋषि भगवान् नारायणको और उनके शिष्योंको नमस्कार करके स्वयं मेरे पिता श्रीकृष्णद्वैपायनके आश्रमपर गये ॥ ४७ ॥ भगवान् वेदव्यासने उनका यथोचित सत्कार किया। वे आसन स्वीकार करके बैठ गये, इसके बाद देवर्षि नारदने जो कुछ भगवान् नारायणके मुँहसे सुना था, वह सब कुछ मेरे पिताजीको सुना दिया ॥ ४८ ॥ राजन्! इस प्रकार मैंने तुम्हें बतलाया

---

* अवगमं तव मे दिशि माधव स्फुरति यत्र सुखासुखसङ्गमः।
श्रवणवर्णनभावमथापि वा न हि भवामि यथा विधिकिङ्करः ॥ २७ ॥

माधव! आप मुझे अपने स्वरूपका अनुभव कराइये, जिससे फिर सुख-दुःखके संयोगकी स्फूर्ति नहीं होती। अथवा मुझे अपने गुणोंके श्रवण और वर्णनका प्रेम ही दीजिये, जिससे कि मैं विधि-निषेधका किङ्कर न होऊँ।

† द्युपतयो विदुरन्तमनन्त ते
न च भवान्न गिरः श्रुतिमौलयः।
त्वयि फलन्ति यतो नम इत्यतो
जय जयेति भजे तव तत्पदम् ॥ २८ ॥

हे अनन्त! ब्रह्मा आदि देवता आपका अन्त नहीं जानते, न आप ही जानते और न तो वेदोंकी मुकुटमणि उपनिषदें ही जानती हैं; क्योंकि आप अनन्त है। उपनिषदें 'नमो नम.!', 'जय हो, जय हो' यह कहकर आपमें चरितार्थ होती हैं। इसलिये मैं भी 'नमो नमः' 'जय हो, जय हो' यही कहकर आपके चरण-कमलकी उपासना करता हूँ।

कि मन-वाणीसे अगोचर और समस्त प्राकृत गुणोंसे रहित परब्रह्म परमात्माका वर्णन श्रुतियाँ किस प्रकार करती हैं और उसमें मनका कैसे प्रवेश होता है ? यही तो तुम्हारा प्रश्न था ॥ ४९ ॥ परीक्षित् ! भगवान् ही इस विश्वका सङ्कल्प करते हैं तथा उसके आदि, मध्य तथा अन्तमें स्थित रहते हैं । वे प्रकृति और जीव दोनोंके स्वामी हैं । उन्होंने ही इसकी सृष्टि करके जीवके साथ इसमें प्रवेश किया है और शरीरोंका निर्माण करके वे ही उनका नियन्त्रण करते हैं । जैसे गाढ़ निद्रा—सुषुप्तिमें मग्न पुरुष अपने शरीरका अनुसन्धान छोड़ देता है, वैसे ही भगवान्‌को पाकर यह जीव मायासे मुक्त हो जाता है । भगवान् ऐसे विशुद्ध, केवल चिन्मात्र तत्त्व हैं कि उनमें जगत्‌के कारण माया अथवा प्रकृतिका रत्तीभर भी अस्तित्व नहीं है । वे ही वास्तवमें अभय-स्थान हैं । उनका चिन्तन निरन्तर करते रहना चाहिये ॥ ५० ॥

अट्ठासीवाँ अध्याय

शिवजीका सङ्कटमोचन

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन् ! भगवान् शङ्करने समस्त भोगोंका परित्याग कर रक्खा है; परन्तु देखा यह जाता है कि जो देवता, असुर अथवा मनुष्य उनकी उपासना करते हैं, वे प्रायः धनी और भोगसम्पन्न हो जाते हैं । और भगवान् विष्णु लक्ष्मीपति हैं, परन्तु उनकी उपासना करनेवाले प्रायः धनी और भोगसम्पन्न नहीं होते ॥ १ ॥ दोनों प्रभु त्याग और भोगकी दृष्टिसे एक-दूसरेसे विरुद्ध स्वभाववाले हैं, परन्तु उनके उपासकोंको उनके स्वरूपके विपरीत फल मिलता है । मुझे इस विषयमें बड़ा सन्देह है कि त्यागीकी उपासनासे भोग और लक्ष्मीपतिकी उपासनासे त्याग कैसे मिलता है ? मैं आपसे यह जानना चाहता हूँ ॥ २ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! शिवजी सदा अपनी शक्तिसे युक्त रहते हैं । वे सत्त्व आदि गुणोंसे युक्त तथा अहङ्कारके अधिष्ठाता हैं । अहङ्कारके तीन भेद हैं—वैकारिक, तैजस और तामस ॥ ३ ॥ त्रिविध अहङ्कारसे सोलह विकार हुए—दस इन्द्रियाँ, पाँच महाभूत और एक मन । अतः इन सबके अधिष्ठातृ-देवताओंमेंसे किसी एककी उपासना करनेपर समस्त ऐश्वर्योंकी प्राप्ति हो जाती है ॥ ४ ॥ परन्तु परीक्षित् ! भगवान् श्रीहरि तो प्रकृतिसे परे स्वयं पुरुषोत्तम एवं प्राकृत गुणरहित हैं । वे सर्वज्ञ तथा सबके अन्तःकरणोंके साक्षी हैं । जो उनका भजन करता है, वह स्वयं भी गुणातीत हो जाता है ॥ ५ ॥ परीक्षित् ! जब तुम्हारे दादा धर्मराज युधिष्ठिर अश्वमेध यज्ञ कर चुके, तब भगवान्‌से विविध प्रकारके धर्मोंका वर्णन सुनते समय उन्होंने भी यही प्रश्न किया था ॥ ६ ॥ परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्ण सर्वशक्तिमान् परमेश्वर हैं । मनुष्योंके कल्याणके लिये ही उन्होंने यदुवंशमें अवतार धारण किया था । राजा युधिष्ठिरका प्रश्न सुनकर और उनकी सुननेकी इच्छा देखकर उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक इस प्रकार उत्तर दिया था ॥ ७ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—राजन् ! जिसपर मैं कृपा करता हूँ, उसका सब धन धीरे-धीरे छीन लेता हूँ । जब वह निर्धन हो जाता है, तब उसके सगे-सम्बन्धी उसके दुःखाकुल चित्तकी परवा न करके उसे छोड़ देते हैं ॥ ८ ॥ फिर वह धनके लिये उद्योग करने लगता है, तब मैं उसका वह प्रयत्न भी निष्फल कर देता हूँ । इस प्रकार बार-बार असफल होनेके कारण जब धन कमानेसे उसका मन विरक्त हो जाता है, उसे दुःख समझकर वह उधरसे अपना मुँह मोड़ लेता है और मेरे प्रेमी भक्तोंका आश्रय लेकर उनसे मेल-जोल करता है, तब मैं उसपर अपनी अहैतुक कृपाकी वर्षा करता हूँ ॥ ९ ॥ मेरी कृपासे उसे परम सूक्ष्म अनन्त सच्चिदानन्दस्वरूप परब्रह्मकी प्राप्ति हो जाती है । इस प्रकार मेरी प्रसन्नता, मेरी आराधना बहुत कठिन है । इसीसे साधारण लोग मुझे छोड़कर मेरे ही दूसरे रूप अन्यान्य देवताओंकी आराधना करते हैं ॥ १० ॥ दूसरे देवता आशुतोष हैं । वे झटपट पिघल पड़ते हैं और अपने भक्तोंको साम्राज्य-लक्ष्मी दे देते हैं । उसे

पाकर वे उच्छृङ्खल, प्रमादी और उन्मत्त हो उठते हैं और अपने वरदाता देवताओंको भी भूल जाते हैं तथा उनका तिरस्कार कर बैठते हैं ॥ ११ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! ब्रह्मा, विष्णु और महादेव—ये तीनों शाप और वरदान देनेमें समर्थ हैं; परन्तु इनमें महादेव और ब्रह्मा शीघ्र ही प्रसन्न या रुष्ट होकर वरदान अथवा शाप दे देते हैं। परन्तु विष्णु-भगवान् वैसे नहीं हैं ॥ १२ ॥ इस विषयमें महात्मा-लोग एक प्राचीन इतिहास कहा करते हैं। भगवान् शङ्कर एक बार वृकासुरको वर देकर सङ्कटमें पड़ गये थे ॥ १३ ॥ परीक्षित् ! वृकासुर शकुनिका पुत्र था। उसकी बुद्धि बहुत बिगड़ी हुई थी। एक दिन कहीं जाते समय उसने देवर्षि नारदको देख लिया और उनसे पूछा कि 'तीनों देवताओंमें झटपट प्रसन्न होनेवाला कौन है ?' ॥ १४ ॥ परीक्षित् ! देवर्षि नारदने कहा—'तुम भगवान् शङ्करकी आराधना करो। इससे तुम्हारा मनोरथ बहुत जल्दी पूरा हो जायगा। वे थोड़े ही गुणोंसे शीघ्र-से-शीघ्र प्रसन्न और थोड़े ही अपराधसे तुरंत क्रोध कर बैठते हैं ॥ १५ ॥ रावण और बाणासुरने केवल बंदीजनोंके समान शङ्करजीकी कुछ स्तुतियाँ की थीं। इसीसे वे उनपर प्रसन्न हो गये और उन्हें अतुलनीय ऐश्वर्य दे दिया। बादमें रावणके कैलास उठाने और बाणासुरके नगरकी रक्षाका भार लेनेसे वे उनके लिये सङ्कटमें भी पड़ गये थे' ॥ १६ ॥

नारदजीका उपदेश पाकर वृकासुर केदारक्षेत्रमें गया और अग्निको भगवान् शङ्करका मुख मानकर अपने शरीरका मांस काट-काटकर उसमें हवन करने लगा ॥१७॥ इस प्रकार छः दिनतक उपासना करनेपर भी जब उसे भगवान् शङ्करके दर्शन न हुए, तब उसे बड़ा दुःख हुआ। सातवें दिन केदारतीर्थमें स्नान करके उसने अपने भीगे बालवाले मस्तकको कुल्हाड़ेसे काटकर हवन करना चाहा ॥ १८ ॥ परीक्षित् ! जैसे जगत्में कोई दुःखवश आत्महत्या करने जाता है तो हमलोग करुणावश उसे बचा लेते हैं, वैसे ही परम दयालु भगवान् शङ्करने वृकासुरके आत्मघातके पहले ही अग्निकुण्डसे अग्निदेवके समान प्रकट होकर अपने दोनों हाथोंसे उसके दोनों हाथ पकड़ लिये और गला काटनेसे रोक दिया। उनका स्पर्श होते ही वृकासुरके अङ्ग ज्यों-के-त्यों पूर्ण हो गये ॥ १९ ॥ भगवान् शङ्करने वृकासुरसे कहा—"प्यारे वृकासुर ! बस करो, बस करो, बहुत हो गया। मैं तुम्हें वर देना चाहता हूँ। तुम मुँहमाँगा वर माँग लो। अरे भाई ! मैं तो अपने शरणागत भक्तोंपर केवल जल चढ़ानेसे ही सन्तुष्ट हो जाया करता हूँ। भला, तुम झूठमूठ अपने शरीरको क्यों पीड़ा दे रहे हो?" ॥२०॥ परीक्षित् ! अत्यन्त पापी वृकासुरने समस्त प्राणियोंको भयभीत करनेवाला यह वर माँगा कि 'मैं जिसके सिरपर हाथ रख दूँ, वही मर जाय' ॥ २१ ॥ परीक्षित् ! उसकी यह याचना सुनकर भगवान् रुद्र पहले तो कुछ अनमने-से हो गये फिर हँसकर कह दिया—'अच्छा, ऐसा ही हो।' ऐसा वर देकर उन्होंने मानो साँपको अमृत पिला दिया ॥ २२ ॥

भगवान् शङ्करके इस प्रकार कह देनेपर वृकासुरके मनमें यह लालसा हो आयी कि 'मैं पार्वतीजीको ही हर लूँ।' वह असुर शङ्करजीके वरकी परीक्षाके लिये उन्हींके सिरपर हाथ रखनेका उद्योग करने लगा। अब तो शङ्करजी अपने दिये हुए वरदानसे ही भयभीत हो गये ॥ २३ ॥ वह उनका पीछा करने लगा और वे उससे डरकर काँपते हुए भागने लगे। वे पृथ्वी, स्वर्ग और दिशाओंके अन्ततक दौड़ते गये; परन्तु फिर भी उसे पीछा करते देखकर उत्तरकी ओर बढ़े ॥ २४ ॥ बड़े-बड़े देवता इस सङ्कटको टालनेका कोई उपाय न देखकर चुप रह गये। अन्तमें वे प्राकृतिक अन्धकारसे परे परम प्रकाशमय वैकुण्ठलोकमें गये ॥ २५ ॥ वैकुण्ठमें स्वयं भगवान् नारायण निवास करते हैं। एकमात्र वे ही उन संन्यासियोंकी परम गति हैं, जो सारे जगत्को अभय दान करके शान्तभावमें स्थित हो गये हैं। वैकुण्ठमें जाकर जीवको फिर लौटना नहीं पड़ता ॥ २६ ॥ भक्तभयहारी भगवान्ने देखा कि शङ्करजी तो बड़े सङ्कटमें पड़े हुए हैं। तब वे अपनी योगमायासे ब्रह्मचारी बनकर दूरसे ही धीरे-धीरे वृकासुरकी ओर आने लगे ॥२७॥ भगवान्ने मूँजकी मेखला, काला मृगचर्म, दण्ड और रुद्राक्षकी माला धारण कर रक्खी थी। उनके एक-एक अंगसे ऐसी ज्योति निकल रही थी, मानो आग धधक रही हो। वे हाथमें कुश लिये हुए थे। वृकासुरको

देखकर उन्होंने बड़ी नम्रतासे झुककर प्रणाम किया ॥ २८ ॥

ब्रह्मचारी-वेषधारी भगवान्ने कहा—शकुनि-नन्दन वृकासुरजी ! आप स्पष्ट ही बहुत थके-से जान पड़ते हैं । आज आप बहुत दूरसे आ रहे हैं क्या ? तनिक विश्राम तो कर लीजिये । देखिये, यह शरीर ही सारे सुखोंकी जड़ है । इसीसे सारी कामनाएँ पूरी होती हैं । इसे अधिक कष्ट न देना चाहिये ॥ २९ ॥ आप तो सब प्रकारसे समर्थ हैं । इस समय आप क्या करना चाहते हैं ? यदि मेरे सुनने योग्य कोई बात हो तो बतलाइये । क्योंकि संसारमे देखा जाता है कि लोग सहायकोंके द्वारा बहुत-से काम बना लिया करते हैं ॥ ३० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! भगवान्के एक-एक शब्दसे अमृत बरस रहा था । उनके इस प्रकार पूछनेपर पहले तो उसने तनिक ठहरकर अपनी थकावट दूर की; उसके बाद क्रमशः अपनी तपस्या, वरदान-प्राप्ति तथा भगवान् शङ्करके पीछे दौड़नेकी बात शुरूसे कह सुनायी ॥ ३१ ॥

श्रीभगवान्ने कहा—'अच्छा, ऐसी बात है ! तब तो भाई ! हम उसकी बातपर विश्वास नहीं करते । आप नहीं जानते हैं क्या ? वह तो दक्ष प्रजापतिके शापसे पिशाचभावको प्राप्त हो गया है । आजकल वही प्रेतों और पिशाचोंका सम्राट् है ॥ ३२ ॥ दानवराज ! आप इतने बड़े होकर ऐसी छोटी-छोटी बातोंपर विश्वास कर लेते हैं ? आप यदि अब भी उसे जगद्गुरु मानते हों और उसकी बातपर विश्वास करते हों, तो झटपट अपने सिरपर हाथ रखकर परीक्षा कर लीजिये ॥ ३३ ॥ दानवशिरोमणे ! यदि किसी प्रकार शङ्करकी बात असत्य निकले तो उस असत्यवादीको मार डालिये, जिससे फिर कभी वह झूठ न बोल सके' ॥ ३४ ॥ परीक्षित् ! भगवान्ने ऐसी मोहित करनेवाली अद्भुत और मीठी बात कही कि उसकी विवेक-बुद्धि जाती रही । उस दुर्बुद्धिने भूलकर अपने ही सिरपर हाथ रख लिया ॥ ३५ ॥ बस, उसी क्षण उसका सिर फट गया और वह वहीं धरतीपर गिर पड़ा, मानो उसपर बिजली गिर पड़ी हो । उस समय आकाशमें देवतालोग 'जय-जय, नमो नमः, साधु-साधु!' के नारे लगाने लगे ॥ ३६ ॥ पापी वृकासुरकी मृत्युसे देवता, ऋषि, पितर और गन्धर्व अत्यन्त प्रसन्न होकर पुष्पोंकी वर्षा करने लगे और भगवान् शङ्कर उस विकट सङ्कटसे मुक्त हो गये ॥ ३७ ॥ अब भगवान् पुरुषोत्तमने भयमुक्त शङ्करजीसे कहा कि 'देवाधिदेव ! बड़े हर्षकी बात है कि इस दुष्टको इसके पापोंने ही नष्ट कर दिया । परमेश्वर ! भला, ऐसा कौन प्राणी है जो महापुरुषोंका अपराध करके कुशलसे रह सके ! फिर स्वयं जगद्गुरु विश्वेश्वर ! आपका अपराध करके तो कोई सकुशल रह ही कैसे सकता है ?' ॥ ३८-३९ ॥

भगवान् अनन्त शक्तियोंके समुद्र हैं । उनकी एक-एक शक्ति मन और वाणीकी सीमाके परे है । वे प्रकृतिसे अतीत स्वयं परमात्मा हैं । उनकी शङ्करजीको सङ्कटसे छुड़ानेकी यह लीला जो कोई कहता या सुनता है, वह संसारके बन्धनों और शत्रुओंके भयसे मुक्त हो जाता है ॥ ४० ॥

नवासीवाँ अध्याय

भृगुजीके द्वारा त्रिदेवोंकी परीक्षा तथा भगवान्का मरे हुए ब्राह्मण-बालकोंको वापस लाना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! एक बार सरस्वती नदीके पावन तटपर यज्ञ प्रारम्भ करनेके लिये बड़े-बड़े ऋषि-मुनि एकत्र होकर बैठे । उन लोगोंमें इस विषयपर वाद-विवाद चला कि ब्रह्मा, शिव और विष्णुमें सबसे बड़ा कौन है ? ॥ १ ॥ परीक्षित् ! उन लोगोंने यह बात जाननेके लिये ब्रह्मा, विष्णु और शिवकी परीक्षा लेनेके उद्देश्यसे ब्रह्माके पुत्र भृगुजीको उनके पास भेजा । महर्षि भृगु सबसे पहले ब्रह्माजीकी सभामें गये ॥ २ ॥ उन्होंने ब्रह्माजीके धैर्य आदिकी परीक्षा करनेके लिये न उन्हें नमस्कार किया और न तो उनकी स्तुति ही की । इसपर ऐसा मालूम हुआ कि ब्रह्माजी अपने तेजसे दहक रहे हैं । उन्हें क्रोध आ गया ॥ ३ ॥ परन्तु जब समर्थ ब्रह्माजीने देखा

कि यह तो मेरा पुत्र ही है, तब अपने मनमें उठे हुए क्रोधको भीतर-ही-भीतर विवेकबुद्धिसे दबा लिया; ठीक वैसे ही, जैसे कोई अरणिमन्थनसे उत्पन्न अग्निको जलसे बुझा दे ॥ ४ ॥

वहाँसे महर्षि भृगु कैलासमें गये। देवाधिदेव भगवान् शङ्करने जब देखा कि मेरे भाई भृगुजी आये हैं, तब उन्होंने बड़े आनन्दसे खड़े होकर उनका आलिङ्गन करनेके लिये भुजाएँ फैला दीं ॥ ५ ॥ परन्तु महर्षि भृगुने उनसे आलिङ्गन करना स्वीकार न किया और कहा—'तुम लोक और वेदकी मर्यादाका उल्लङ्घन करते हो, इसलिये मैं तुमसे नहीं मिलता।' भृगुजीकी यह बात सुनकर भगवान् शङ्कर क्रोधके मारे तिलमिला उठे। उनकी आँखें चढ़ गयीं। उन्होंने त्रिशूल उठाकर महर्षि भृगुको मारना चाहा ॥ ६ ॥ परन्तु उसी समय भगवती सतीने उनके चरणोंपर गिरकर बहुत अनुनय-विनय की और किसी प्रकार उनका क्रोध शान्त किया। अब महर्षि भृगुजी भगवान् विष्णुके निवासस्थान वैकुण्ठमें गये ॥७॥ उस समय भगवान् विष्णु लक्ष्मीजीकी गोदमें अपना सिर रखकर लेटे हुए थे। भृगुजीने जाकर उनके वक्षःस्थलपर एक लात कसकर जमा दी। भक्तवत्सल भगवान् विष्णु लक्ष्मीजीके साथ उठ बैठे और झटपट अपनी शय्यासे नीचे उतरकर मुनिको सिर झुकाया, प्रणाम किया। भगवान्‌ने कहा—'ब्रह्मन्! आपका स्वागत है, आप भले पधारे। इस आसनपर बैठकर कुछ क्षण विश्राम कीजिये। प्रभो! मुझे आपके शुभागमनका पता न था। इसीसे मैं आपकी अगवानी न कर सका। मेरा अपराध क्षमा कीजिये ॥ ८-९ ॥ महामुने! आपके चरणकमल अत्यन्त कोमल हैं।' यों कहकर भृगुजीके चरणोंको भगवान् अपने हाथोंसे सहलाने लगे ॥१०॥ और बोले—'महर्षे! आपके चरणोंका जल तीर्थोंको भी तीर्थ बनानेवाला है। आप उससे वैकुण्ठलोक, मुझे और मेरे अंदर रहनेवाले लोकपालोंको पवित्र कीजिये ॥११॥ भगवन्! आपके चरणकमलोंके स्पर्शसे मेरे सारे पाप धुल गये। आज मैं लक्ष्मीका एकमात्र आश्रय हो गया। अब आपके चरणोंसे चिह्नित मेरे वक्षःस्थलपर लक्ष्मी सदा-सर्वदा निवास करेंगी' ॥ १२ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—जब भगवान्‌ने अत्यन्त गम्भीर वाणीसे इस प्रकार कहा, तब भृगुजी परम सुखी और तृप्त हो गये। भक्तिके उद्रेकसे उनका गला भर आया, आँखोंमें आँसू छलक आये और वे चुप हो गये ॥ १३ ॥ परीक्षित्! भृगुजी वहाँसे लौटकर ब्रह्मवादी मुनियोंके सत्सङ्गमें आये और उन्हें ब्रह्मा, शिव और विष्णुभगवान्‌के यहाँ जो कुछ अनुभव हुआ था, वह सब कह सुनाया ॥ १४ ॥ भृगुजीका अनुभव सुनकर सभी ऋषि-मुनियोंको बड़ा विस्मय हुआ, उनका सन्देह दूर हो गया। तबसे वे भगवान् विष्णुको ही सर्वश्रेष्ठ मानने लगे; क्योंकि वे ही शान्ति और अभयके उद्‌गमस्थान हैं ॥ १५ ॥ भगवान् विष्णुसे ही साक्षात् धर्म, ज्ञान, वैराग्य, आठ प्रकारके ऐश्वर्य और चित्तको शुद्ध करनेवाला यश प्राप्त होता है ॥ १६ ॥ शान्त, समचित्त, अकिञ्चन और सबको अभय देनेवाले साधु-मुनियोंकी वे ही एकमात्र परम गति हैं। ऐसा सारे शास्त्र कहते हैं ॥ १७ ॥ उनकी प्रिय मूर्ति है सत्त्व और इष्टदेव हैं ब्राह्मण। निष्काम, शान्त और निपुणबुद्धि (विवेकसम्पन्न) पुरुष उनका भजन करते हैं ॥ १८ ॥ भगवान्‌की गुणमयी मायाने राक्षस, असुर और देवता—उनकी ये तीन मूर्तियाँ बना दी हैं। इनमें सत्त्वमयी देवमूर्ति ही उनकी प्राप्तिका साधन है। वे स्वयं ही समस्त पुरुषार्थस्वरूप हैं ॥ १९ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! सरस्वतीतटके ऋषियोंने अपने लिये नहीं, मनुष्योंका संशय मिटानेके लिये ही ऐसी युक्ति रची थी। पुरुषोत्तम भगवान्‌के चरणकमलोंकी सेवा करके उन्होंने उनका परमपद प्राप्त किया ॥ २० ॥

सूतजी कहते हैं—शौनकादि ऋषियो! भगवान् पुरुषोत्तमकी यह कमनीय कीर्ति-कथा जन्म-मृत्युरूप संसारके भयको मिटानेवाली है। यह व्यासनन्दन भगवान् श्रीशुकदेवजीके मुखारविन्दसे निकली हुई सुरभिमयी मधुमयी सुधाधारा है। इस संसारके लंबे पथका जो बटोही अपने कानोंके दोनोंसे इसका निरन्तर पान करता रहता है, उसकी सारी थकावट, जो जगत्‌में इधर-उधर भटकनेसे होती है, दूर हो जाती है ॥ २१ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! एक दिनकी बात है, द्वारकापुरीमें किसी ब्राह्मणीके गर्भसे एक पुत्र पैदा हुआ, परन्तु वह उसी समय पृथ्वीका स्पर्श होते ही मर गया ॥ २२ ॥ ब्राह्मण अपने बालकका मृत शरीर लेकर राजमहलके द्वारपर गया और वहाँ उसे रखकर अत्यन्त आतुरता और दुखी मनसे विलाप करता हुआ यह कहने लगा—॥ २३ ॥ 'इसमें सन्देह नहीं कि ब्राह्मणद्रोही, धूर्त, कृपण और विषयी राजाके कर्मदोषसे ही मेरे बालककी मृत्यु हुई है ॥ २४ ॥ जो राजा हिंसापरायण, दुःशील और अजितेन्द्रिय होता है, उसे राजा मानकर सेवा करनेवाली प्रजा दरिद्र होकर दुःख-पर-दुःख भोगती रहती है और उसके सामने सङ्कट-पर-सङ्कट आते रहते हैं' ॥ २५ ॥ परीक्षित् ! इसी प्रकार अपने दूसरे और तीसरे बालकके भी पैदा होते ही मर जानेपर वह ब्राह्मण लड़केकी लाश राजमहलके दरवाजेपर डाल गया और वही बात कह गया ॥ २६ ॥ नवें बालकके मरनेपर जब वह वहाँ आया, तब उस समय भगवान् श्रीकृष्णके पास अर्जुन भी बैठे हुए थे। उन्होंने ब्राह्मणकी बात सुनकर उससे कहा—॥ २७ ॥ 'ब्रह्मन् ! आपके निवासस्थान द्वारकामें कोई धनुषधारी क्षत्रिय नहीं है क्या ? मालूम होता है कि ये यदुवंशी ब्राह्मण हैं और प्रजापालनका परित्याग करके किसी यज्ञमे बैठे हुए हैं ! ॥ २८ ॥ जिनके राज्यमें धन, स्त्री अथवा पुत्रोंसे वियुक्त होकर ब्राह्मण दुखी होते हैं, वे क्षत्रिय नहीं हैं, क्षत्रियके वेषमें पेट पालनेवाले नट हैं। उनका जीवन व्यर्थ है ॥ २९ ॥ भगवन् ! मैं समझता हूँ कि आप स्त्री-पुरुष अपने पुत्रोंकी मृत्युसे दीन हो रहे हैं। मैं आपकी सन्तानकी रक्षा करूँगा। यदि मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी न कर सका, तो आगमें कूदकर जल मरूँगा और इस प्रकार मेरे पापका प्रायश्चित्त हो जायगा' ॥ ३० ॥

ब्राह्मणने कहा—अर्जुन ! यहाँ बलरामजी, भगवान् श्रीकृष्ण, धनुर्धरशिरोमणि प्रद्युम्न, अद्वितीय योद्धा अनिरुद्ध भी जब मेरे बालकोंकी रक्षा करनेमे समर्थ नहीं हैं; इन जगदीश्वरोंके लिये भी यह काम कठिन हो रहा है; तब तुम इसे कैसे करना चाहते हो ? सचमुच यह तुम्हारी मूर्खता है। हम तुम्हारी इस बातपर बिल्कुल विश्वास नहीं करते ॥ ३१-३२ ॥

अर्जुनने कहा—ब्रह्मन् ! मैं बलराम, श्रीकृष्ण अथवा प्रद्युम्न नहीं हूँ। मैं हूँ अर्जुन, जिसका गाण्डीव नामक धनुष विश्वविख्यात है ॥ ३३ ॥ ब्राह्मणदेवता ! आप मेरे बल-पौरुषका तिरस्कार मत कीजिये। आप जानते नहीं, मैं अपने पराक्रमसे भगवान् शङ्करको सन्तुष्ट कर चुका हूँ। भगवन् ! मैं आपसे अधिक क्या कहूँ, मैं युद्धमें साक्षात् मृत्युको भी जीतकर आपकी सन्तान ला दूँगा ॥ ३४ ॥

परीक्षित् ! जब अर्जुनने उस ब्राह्मणको इस प्रकार विश्वास दिलाया, तब वह लोगोंसे उनके बल-पौरुषका बखान करता हुआ बड़ी प्रसन्नतासे अपने घर लौट गया ॥ ३५ ॥ प्रसवका समय निकट आनेपर ब्राह्मण आतुर होकर अर्जुनके पास आया और कहने लगा—'इस बार तुम मेरे बच्चेको मृत्युसे बचा लो' ॥ ३६ ॥ यह सुनकर अर्जुनने शुद्ध जलसे आचमन किया, तथा भगवान् शङ्करको नमस्कार किया। फिर दिव्य अस्त्रोंका स्मरण किया और गाण्डीव धनुषपर डोरी चढ़ाकर उसे हाथमें ले लिया ॥ ३७ ॥ अर्जुनने बाणोंको अनेक प्रकारके अस्त्र-मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित करके प्रसवगृहको चारों ओरसे घेर दिया। इस प्रकार उन्होंने सूतिकागृहके ऊपर-नीचे, अगल-बगल बाणोंका एक पिंजड़ा-सा बना दिया ॥ ३८ ॥ इसके बाद ब्राह्मणीके गर्भसे एक शिशु पैदा हुआ, जो बार-बार रो रहा था। परन्तु देखते-ही-देखते वह सशरीर आकाशमें अन्तर्धान हो गया ॥ ३९ ॥ अब वह ब्राह्मण भगवान् श्रीकृष्णके सामने ही अर्जुनकी निन्दा करने लगा। वह बोला—मेरी मूर्खता तो देखो, मैंने इस नपुंसककी डींगभरी बातोंपर विश्वास कर लिया ॥ ४० ॥ भला जिसे प्रद्युम्न, अनिरुद्ध यहाँतक कि बलराम और भगवान् श्रीकृष्ण भी न बचा सके, उसकी रक्षा करनेमें और कौन समर्थ है ? ॥ ४१ ॥ मिथ्यावादी अर्जुनको धिक्कार है ! अपने मुँह अपनी बड़ाई करनेवाले अर्जुनके धनुषको धिक्कार है ! ! इसकी दुर्बुद्धि तो देखो ! यह मूढ़तावश उस बालकको लौटा लाना चाहता है, जिसे प्रारब्धने हमसे अलग कर दिया है' ॥ ४२ ॥

जब वह ब्राह्मण इस प्रकार उन्हें भला-बुरा कहने

लगा, तब अर्जुन योगबलसे तत्काल संयमनीपुरीमें गये, जहाँ भगवान् यमराज निवास करते हैं ॥ ४३ ॥ वहाँ उन्हें ब्राह्मणका बालक नहीं मिला । फिर वे शस्त्र लेकर क्रमशः इन्द्र, अग्नि, निर्ऋति, सोम, वायु और वरुण आदिकी पुरियोंमें, अतलादि नीचेके लोकोंमें, स्वर्गसे ऊपरके महर्लोकादिमें एवं अन्यान्य स्थानोंमें गये ॥४४॥ परन्तु कहीं भी उन्हें ब्राह्मणका बालक न मिला । उनकी प्रतिज्ञा पूरी न हो सकी । अब उन्होंने अग्निमें प्रवेश करनेका विचार किया । परन्तु भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें ऐसा करनेसे रोकते हुए कहा—॥ ४५ ॥ 'भाई अर्जुन ! तुम अपने आप अपना तिरस्कार मत करो । मैं तुम्हें ब्राह्मणके सब बालक अभी दिखाये देता हूँ । आज जो लोग तुम्हारी निन्दा कर रहे हैं, वे ही फिर हम-लोगोंकी निर्मल कीर्तिकी स्थापना करेंगे' ॥ ४६ ॥

सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्ण इस प्रकार समझा-बुझाकर अर्जुनके साथ अपने दिव्य रथपर सवार हुए और पश्चिम दिशाको प्रस्थान किया ॥ ४७ ॥ उन्होंने सात-सात पर्वतोंवाले सात द्वीप, सात समुद्र और लोका-लोकपर्वतको लाँघकर घोर अन्धकारमें प्रवेश किया॥४८॥ परीक्षित् ! वह अन्धकार इतना घोर था कि उसमें शैब्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और बलाहक नामके चारों घोड़े अपना मार्ग भूलकर इधर-उधर भटकने लगे । उन्हें कुछ सूझता ही न था ॥ ४९ ॥ योगेश्वरोंके भी परमेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने घोड़ोंकी यह दशा देखकर अपने सहस्र-सहस्र सूर्योंके समान तेजस्वी चक्रको आगे चलनेकी आज्ञा दी ॥ ५० ॥ सुदर्शन चक्र अपने ज्योतिर्मय तेजसे स्वयं भगवान्‌के द्वारा उत्पन्न उस घने एवं महान् अन्धकारको चीरता हुआ मनके समान तीव्र गतिसे आगे-आगे चला । उस समय वह ऐसा जान पड़ता था, मानो भगवान् रामका बाण धनुषसे छूटकर राक्षसोंकी सेनामें प्रवेश कर रहा हो ॥५१॥ इस प्रकार सुदर्शन चक्रके द्वारा बतलाये हुए मार्गमें चलकर रथ अन्धकारकी अन्तिम सीमापर पहुँचा । उस अन्धकारके पार सर्वश्रेष्ठ पारावाररहित व्यापक परम ज्योति जगमगा रही थी । उसे देखकर अर्जुनकी आँखें चौंधिया गयीं और उन्होंने विवश होकर अपने नेत्र बंद कर लिये ॥ ५२ ॥

इसके बाद भगवान्‌के रथने दिव्य जलराशिमें प्रवेश किया । बड़ी तेज आँधी चलनेके कारण उस जलमें बड़ी-बड़ी तरङ्गें उठ रही थीं, जो बहुत ही भली मालूम होती थीं । वहाँ एक बड़ा सुन्दर महल था । उसमें मणियोंके सहस्र-सहस्र खंभे चमक-चमककर उसकी शोभा बढ़ा रहे थे और उसके चारों ओर बड़ी उज्ज्वल ज्योति फैल रही थी ॥ ५३ ॥ उसी महलमें भगवान् शेषजी विराजमान थे । उनका शरीर अत्यन्त भयानक और अद्भुत था । उनके सहस्र सिर थे और प्रत्येक फणपर सुन्दर-सुन्दर मणियाँ जगमगा रही थीं । प्रत्येक सिरमें दो-दो नेत्र थे और वे बड़े ही भयङ्कर थे । उनका सम्पूर्ण शरीर कैलासके समान श्वेतवर्णका था, और गला तथा जीभ नीले रंगकी थी ॥ ५४ ॥ परीक्षित् ! अर्जुनने देखा कि शेषभगवान्‌की सुखमयी शय्यापर सर्वव्यापक महान् प्रभावशाली परम पुरुषोत्तम भगवान् विराजमान हैं । उनके शरीरकी कान्ति वर्षा-कालीन मेघके समान श्यामल है । अत्यन्त सुन्दर पीला वस्त्र धारण किये हुए हैं । मुखपर प्रसन्नता खेल रही है और बड़े-बड़े नेत्र बहुत ही सुहावने लगते हैं ॥५५॥ बहुमूल्य मणियोंसे जटित मुकुट और कुण्डलोंकी कान्तिसे सहस्रों घुँघराली अलकें चमक रही हैं । लंबी-लंबी, सुन्दर आठ भुजाएँ हैं; गलेमें कौस्तुभमणि है; वक्षः-स्थलपर श्रीवत्सका चिह्न है और घुटनोंतक वनमाला लटक रही है ॥ ५६ ॥ अर्जुनने देखा कि उनके नन्द-सुनन्द आदि अपने पार्षद, चक्र-सुदर्शन आदि अपने मूर्तिमान् आयुध तथा पुष्टि, श्री, कीर्ति और अजा—ये चारों शक्तियाँ एवं सम्पूर्ण ऋद्धियाँ ब्रह्मादि लोकपालोंके अधीश्वर भगवान्‌की सेवा कर रही हैं ॥ ५७ ॥ परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णने अपने ही स्वरूप श्रीअनन्त भगवान्‌को प्रणाम किया । अर्जुन उनके दर्शनसे कुछ भयभीत हो गये थे, श्रीकृष्णके बाद उन्होंने भी उनको प्रणाम किया और वे दोनों हाथ जोड़कर खड़े हो गये । अब ब्रह्मादि लोकपालोंके स्वामी भूमा पुरुषने मुसकराते हुए मधुर एवं गम्भीर वाणीसे कहा—॥ ५८ ॥ 'श्रीकृष्ण ! और अर्जुन ! मैंने तुम दोनोंको देखनेके लिये ही ब्राह्मणके बालक अपने पास मँगा लिये थे । तुम दोनोंने धर्मकी रक्षाके लिये मेरी कलाओंके साथ पृथ्वीपर अवतार ग्रहण

किया है; पृथ्वीके भाररूप दैत्योंका संहार करके शीघ्र-से-शीघ्र तुमलोग फिर मेरे पास लौट आओ ॥ ५९ ॥ तुम दोनों ऋषिवर नर और नारायण हो। यद्यपि तुम पूर्णकाम और सर्वश्रेष्ठ हो, फिर भी जगत्की स्थिति और लोकसंग्रहके लिये धर्मका आचरण करो' ॥६०॥

जब भगवान् भूमा पुरुषने श्रीकृष्ण और अर्जुनको इस प्रकार आदेश दिया, तब उन लोगोंने उसे स्वीकार करके उन्हें नमस्कार किया और बड़े आनन्दके साथ ब्राह्मण-बालकोंको लेकर जिस रास्तेसे, जिस प्रकार आये थे, उसीसे वैसे ही द्वारकामें लौट आये। ब्राह्मणके बालक अपनी आयुके अनुसार बड़े-बड़े हो गये थे। उनका रूप और आकृति वैसी ही थी, जैसी उनके जन्मके समय थी। उन्हें भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनने उनके पिताको सौंप दिया ॥ ६१-६२ ॥ भगवान् विष्णुके उस परमधामको देखकर अर्जुनके आश्चर्यकी सीमा न रही। उन्होंने ऐसा अनुभव किया कि जीवोंमें जो कुछ बल-पौरुष है, वह सब भगवान् श्रीकृष्णकी ही कृपाका फल है ॥ ६३ ॥ परीक्षित्! भगवान्ने और भी ऐसी अनेकों ऐश्वर्य और वीरतासे परिपूर्ण लीलाएँ कीं। लोकदृष्टिमें साधारण लोगोंके समान सांसारिक विषयोंका भोग किया और बड़े-बड़े महाराजाओंके समान श्रेष्ठ-श्रेष्ठ यज्ञ किये ॥ ६४ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने आदर्श महापुरुषोंका-सा आचरण करते हुए ब्राह्मण आदि समस्त प्रजावर्गोंके सारे मनोरथ पूर्ण किये, ठीक वैसे ही, जैसे इन्द्र प्रजाके लिये समयानुसार वर्षा करते हैं ॥ ६५ ॥ उन्होंने बहुत-से अधर्मी राजाओंको स्वयं मार डाला और बहुतों-को अर्जुन आदिके द्वारा मरवा डाला। इस प्रकार धर्मराज युधिष्ठिर आदि धार्मिक राजाओंसे उन्होंने अनायास ही सारी पृथ्वीमें धर्ममर्यादाकी स्थापना करा दी ॥ ६६ ॥

नब्बेवाँ अध्याय

भगवान् कृष्णके लीला-विहारका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! द्वारकानगरीकी छटा अलौकिक थी। उसकी सड़कें मद चूते हुए मत-वाले हाथियों, सुसज्जित योद्धाओं, घोड़ों और स्वर्णमय रथोंकी भीड़से सदा-सर्वदा भरी रहती थीं। जिधर देखिये, उधर ही हरे-भरे उपवन और उद्यान लहरा रहे हैं। पाँत-के-पाँत वृक्ष फूलोंसे लदे हुए हैं। उनपर बैठकर भौंरे गुनगुना रहे हैं और तरह-तरहके पक्षी कलरव कर रहे हैं। वह नगरी सब प्रकारकी सम्पत्तियोंसे भरपूर थी। जगत्के श्रेष्ठ वीर यदुवंशी उसका सेवन करनेमें अपना सौभाग्य मानते थे। वहाँकी स्त्रियाँ सुन्दर वेष-भूषासे विभूषित थीं और उनके अङ्ग-अङ्गसे जवानीकी छटा छिटकती रहती थी। वे जब अपने महलोंमें गेंद आदिके खेल खेलतीं और उनका कोई अङ्ग कभी दीख जाता तो ऐसा जान पड़ता, मानो बिजली चमक रही है। लक्ष्मीपति भगवान्की यही अपनी नगरी द्वारका थी। इसीमें वे निवास करते थे। भगवान् श्रीकृष्ण सोलह हजारसे अधिक पत्नियोंके एकमात्र प्राणवल्लभ थे। उन पत्नियोंके अलग-अलग महल भी परम ऐश्वर्यसे सम्पन्न थे। जितनी पत्नियाँ थीं, उतने ही अद्भुत रूप धारण करके वे उनके साथ विहार करते थे ॥ १—५ ॥ सभी पत्नियोंके महलोंमें सुन्दर-सुन्दर सरोवर थे। उनका निर्मल जल खिले हुए नीले, पीले, श्वेत, लाल आदि भाँति-भाँतिके कमलोंके परागसे महँकता रहता था। उनमें झुंड-के-झुंड हंस, सारस आदि सुन्दर-सुन्दर पक्षी चहकते रहते थे। भगवान् श्रीकृष्ण उन जलाशयोंमें तथा कभी-कभी नदियोंके जलमें भी प्रवेश कर अपनी पत्नियोंके साथ जलविहार करते थे। भगवान्के साथ विहार करनेवाली पत्नियाँ जब उन्हें अपने भुज-पाशमें बाँध लेतीं, आलिङ्गन करतीं, तब भगवान्के श्रीअङ्गोंमें उनके वक्षःस्थलकी केसर लग जाती थी ॥ ६-७ ॥ उस समय गन्धर्व उनके यशका गान करने लगते और सूत, मागध एवं वन्दीजन बड़े आनन्दसे मृदङ्ग, ढोल, नगारे और वीणा आदि बाजे बजाने लगते ॥ ८ ॥

भगवान्की पत्नियाँ कभी-कभी हँसते-हँसते पिच-

कारियोंसे उन्हें भिगो देती थीं। वे भी उनको तर कर देते। इस प्रकार भगवान् अपनी पत्नियोंके साथ क्रीडा करते, मानो यक्षराज कुबेर यक्षिणियोंके साथ विहार कर रहे हों ॥ ९ ॥ उस समय भगवान्‌की पत्नियोंके वक्षःस्थल और जंघा आदि अङ्ग वस्त्रोंके भीग जानेके कारण उनमेंसे झलकने लगते। उनकी बड़ी-बड़ी चोटियों और जूड़ोंमेंसे गुँथे हुए फूल गिरने लगते, वे उन्हें भिगोते-भिगोते पिचकारी छीन लेनेके लिये उनके पास पहुँच जातीं और इसी बहाने अपने प्रियतमका आलिङ्गन कर लेतीं। उनके स्पर्शसे पत्नियोंके हृदयमें प्रेम-भावकी अभिवृद्धि हो जाती, जिससे उनका मुखकमल खिल उठता। ऐसे अवसरोंपर उनकी शोभा और भी बढ़ जाया करती ॥ १० ॥ उस समय भगवान् श्रीकृष्णकी वन-माला उन रानियोंके वक्षःस्थलपर लगी हुई केसरके रंगसे रँग जाती। विहारमें अत्यन्त मग्न हो जानेके कारण घुँघराली अलकें उन्मुक्त भावसे लहराने लगतीं। वे अपनी रानियोंको बार-बार भिगो देते और रानियाँ भी उन्हें सराबोर कर देतीं। भगवान् श्रीकृष्ण उनके साथ इस प्रकार विहार करते, मानो कोई गजराज हथिनियोंसे घिरकर उनके साथ क्रीडा कर रहा हो ॥ ११ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी पत्नियाँ क्रीडा करनेके बाद अपने-अपने वस्त्राभूषण उतारकर उन नटों और नर्तकियोंको दे देते, जिनकी जीविका केवल गाना-बजाना ही है ॥ १२ ॥ परीक्षित्! भगवान् इसी प्रकार उनके साथ विहार करते रहते। उनकी चाल-ढाल, बातचीत, चितवन-मुसकान, हास-विलास और आलिङ्गन आदिसे रानियोंकी चित्तवृत्ति उन्हींकी ओर खिंची रहती। उन्हें और किसी बातका स्मरण ही न होता ॥ १३ ॥ परीक्षित्! रानियोंके जीवन-सर्वस्व, उनके एकमात्र हृदयेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण ही थे। वे कमलनयन श्यामसुन्दरके चिन्तनमें ही इतनी मग्न हो जातीं कि कई देरतक तो चुप ही रहतीं और फिर उन्मत्तके समान असम्बद्ध बातें कहने लगतीं। कभी-कभी तो भगवान् श्रीकृष्णकी उपस्थितिमें ही प्रेमोन्मादके कारण उनके विरहका अनुभव करने लगतीं। और न जाने क्या-क्या कहने लगतीं। मैं उनकी बात तुम्हें सुनाता हूँ ॥ १४ ॥

रानियाँ कहतीं—अरी कुररी! अब तो बड़ी रात हो गयी है। संसारमें सब ओर सन्नाटा छा गया है। देख, इस समय स्वयं भगवान् अपना अखण्ड बोध छिपाकर सो रहे हैं और तुझे नींद ही नहीं आती? तू इस तरह रात-रातभर जगकर विलाप क्यों कर रही है? सखी! कहीं कमलनयन भगवान्‌के मधुर हास्य और लीलाभरी उदार (स्वीकृतिसूचक) चितवनसे तेरा हृदय भी हमारी ही तरह बिंध तो नहीं गया है? ॥ १५ ॥

अरी चकवी! तूने रातके समय अपने नेत्र क्यों बंद कर लिये हैं? क्या तेरे पतिदेव कहीं विदेश चले गये हैं कि तू इस प्रकार करुण स्वरसे पुकार रही है? हाय-हाय! तब तो तू बड़ी दुःखिनी है। परन्तु हो-न-हो तेरे हृदयमें भी हमारे ही समान भगवान्‌की दासी होनेका भाव जग गया है। क्या अब तू उनके चरणोंपर चढ़ायी हुई पुष्पोंकी माला अपनी चोटियोंमें धारण करना चाहती है? ॥ १६ ॥

अहो समुद्र! तुम निरन्तर गरजते ही रहते हो। तुम्हें नींद नहीं आती क्या? जान पड़ता है तुम्हें सदा जागते रहनेका रोग लग गया है। परन्तु नहीं-नहीं, हम समझ गयीं, हमारे प्यारे श्यामसुन्दरने तुम्हारे धैर्य, गाम्भीर्य आदि स्वाभाविक गुण छीन लिये हैं। क्या इसीसे तुम हमारे ही समान ऐसी व्याधिके शिकार हो गये हो, जिसकी कोई दवा नहीं है? ॥ १७ ॥

चन्द्रदेव! तुम्हें बहुत बड़ा रोग राजयक्ष्मा हो गया है। इसीसे तुम इतने क्षीण हो रहे हो। अरे राम-राम, अब तुम अपनी किरणोंसे अँधेरा भी नहीं हटा सकते! क्या हमारी ही भाँति हमारे प्यारे श्यामसुन्दरकी मीठी-मीठी रहस्यकी बातें भूल जानेके कारण तुम्हारी बोलती बंद हो गयी है? क्या उसीकी चिन्तासे तुम मौन हो रहे हो? ॥ १८ ॥

मलयानिल! हमने तेरा क्या बिगाड़ा है, जो तू हमारे हृदयमें कामका सञ्चार कर रहा है? अरे तू नहीं जानता क्या? भगवान्‌की तिरछी चितवनसे हमारा हृदय तो पहलेसे ही घायल हो गया है ॥ १९ ॥

श्रीमन् मेघ! तुम्हारे शरीरका सौन्दर्य तो हमारे प्रियतम-जैसा ही है। अवश्य ही तुम यदुवंशशिरोमणि भगवान्‌के परम प्यारे हो। तभी तो तुम हमारी ही

भाँति प्रेमपाशमें बँधकर उनका ध्यान कर रहे हो! देखो-देखो! तुम्हारा हृदय चिन्तासे भर रहा है, तुम उनके लिये अत्यन्त उत्कण्ठित हो रहे हो! तभी तो बार-बार उनकी याद करके हमारी ही भाँति आँसूकी धारा बहा रहे हो। श्यामघन! सचमुच घनश्यामसे नाता जोड़ना घर बैठे पीड़ा मोल लेना है ॥ २० ॥

री कोयल! तेरा गला बड़ा ही सुरीला है, मीठी बोली बोलनेवाले हमारे प्राणप्यारेके समान ही मधुर स्वरसे तू बोलती है। सचमुच तेरी बोलीमें सुधा घोली हुई है, जो प्यारेके विरहसे मरे हुए प्रेमियोंको जिलानेवाली है। तू ही बता, इस समय हम तेरा क्या प्रिय करें? ॥ २१ ॥

प्रिय पर्वत! तुम तो बड़े उदार विचारके हो। तुमने ही पृथ्वीको भी धारण कर रक्खा है। न तुम हिलते-डोलते हो और न कुछ कहते-सुनते हो। जान पड़ता है कि किसी बड़ी बातकी चिन्तामें मग्न हो रहे हो। ठीक है, ठीक है; हम समझ गयीं। तुम हमारी ही भाँति चाहते हो कि अपने स्तनोंके समान बहुत-से शिखरोंपर मैं भी भगवान् श्यामसुन्दरके चरणकमल धारण करूँ ॥ २२ ॥

समुद्रपत्नी नदियो! यह ग्रीष्म ऋतु है। तुम्हारे कुण्ड सूख गये हैं। अब तुम्हारे अंदर खिले हुए कमलोंका सौन्दर्य नहीं दीखता। तुम बहुत दुबली-पतली हो गयी हो। जान पड़ता है, जैसे हम अपने प्रियतम श्यामसुन्दरकी प्रेमभरी चितवन न पाकर अपना हृदय खो बैठी हैं और अत्यन्त दुबली-पतली हो गयी हैं, वैसे ही तुम भी मेघोंके द्वारा अपने प्रियतम समुद्रका जल न पाकर ऐसी दीन-हीन हो गयी हो ॥ २३ ॥

हंस! आओ, आओ! भले आये, स्वागत है। आसनपर बैठो; लो, दूध पियो। प्रिय हंस! श्यामसुन्दरकी कोई बात तो सुनाओ। हम समझती हैं कि तुम उनके दूत हो। किसीके वशमें न होनेवाले श्यामसुन्दर सकुशल तो हैं न? अरे भाई! उनकी मित्रता तो बड़ी अस्थिर है, क्षणभङ्गुर है। एक बात तो बतलाओ, उन्होंने हमसे कहा था कि तुम्हीं हमारी परम प्रियतमा हो। क्या अब उन्हें यह बात याद है? जाओ, जाओ; हम तुम्हारी अनुनय-विनय नहीं सुनतीं। जब वे हमारी परवा नहीं करते, तो हम उनके पीछे क्यों मरें? क्षुद्रके दूत! हम उनके पास नहीं जातीं। क्या कहा? वे हमारी इच्छा पूर्ण करनेके लिये ही आना चाहते हैं, अच्छा! तब उन्हें तो यहाँ बुला लाना, हमसे बातें कराना; परन्तु कहीं लक्ष्मीको साथ न ले आना। तब क्या वे लक्ष्मीको छोड़कर यहाँ नहीं आना चाहते? यह कैसी बात है? क्या स्त्रियोंमें लक्ष्मी ही एक ऐसी हैं, जिनका भगवान्से अनन्य प्रेम है? क्या हममेंसे कोई एक भी वैसी नहीं है? ॥ २४ ॥

परीक्षित्! श्रीकृष्ण-पत्नियाँ योगेश्वरेश्वर भगवान् श्रीकृष्णमें ऐसा ही अनन्य प्रेम-भाव रखती थीं। इसीसे उन्होंने परमपद प्राप्त किया ॥ २५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाएँ अनेकों प्रकारसे अनेकों गीतोंद्वारा गान की गयी हैं। वे इतनी मधुर, इतनी मनोहर हैं कि उनके सुननेमात्रसे स्त्रियोंका मन बलात् उनकी ओर खिंच जाता है। फिर जो स्त्रियाँ उन्हें अपने नेत्रोंसे देखती थीं, उनके सम्बन्धमें तो कहना ही क्या है ॥ २६ ॥ जिन बड़भागिनी स्त्रियोंने जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्णको अपना पति मानकर परम प्रेमसे उनके चरणकमलोंको सहलाया, उन्हें नहलाया-धुलाया, खिलाया-पिलाया, तरह-तरहसे उनकी सेवा की, उनकी तपस्याका वर्णन तो भला, किया ही कैसे जा सकता है ॥ २७ ॥

परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण सत्पुरुषोंके एकमात्र आश्रय हैं। उन्होंने वेदोक्त धर्मका बार-बार आचरण करके लोगोंको यह बात दिखला दी कि घर ही धर्म, अर्थ और काम—साधनका स्थान है ॥ २८ ॥ इसीलिये वे गृहस्थोचित श्रेष्ठ धर्मका आश्रय लेकर व्यवहार कर रहे थे। परीक्षित्! मैं तुमसे कह ही चुका हूँ कि उनकी रानियोंकी संख्या थी सोलह हजार एक सौ आठ ॥ २९ ॥ उन श्रेष्ठ स्त्रियोंमेंसे रुक्मिणी आदि आठ पटरानियों और उनके पुत्रोंका तो मैं पहले ही क्रमसे वर्णन कर चुका हूँ ॥ ३० ॥ उनके अतिरिक्त भगवान् श्रीकृष्णकी और जितनी पत्नियाँ थीं, उनसे भी प्रत्येकके दस-दस पुत्र उत्पन्न किये। यह कोई आश्चर्यकी बात

नहीं है। क्योंकि भगवान् सर्वशक्तिमान् और सत्यसङ्कल्प हैं ॥ ३१ ॥ भगवान्‌के परम पराक्रमी पुत्रोंमें अठारह तो महारथी थे, जिनका यश सारे जगत्‌में फैला हुआ था। उनके नाम मुझसे सुनो ॥ ३२ ॥ प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, दीप्तिमान्, भानु, साम्ब, मधु, बृहद्भानु, चित्रभानु, वृक, अरुण, पुष्कर, वेदबाहु, श्रुतदेव, सुनन्दन, चित्रबाहु, विरूप, कवि और न्यग्रोध ॥३३-३४॥ राजेन्द्र! भगवान् श्रीकृष्णके इन पुत्रोंमें भी सबसे श्रेष्ठ रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्नजी थे। वे सभी गुणोंमें अपने पिताके समान ही थे ॥ ३५ ॥ महारथी प्रद्युम्नने रुक्मीकी कन्यासे अपना विवाह किया था। उसीके गर्भसे अनिरुद्धजीका जन्म हुआ। उनमें दस हजार हाथियोंका बल था ॥ ३६ ॥ रुक्मीके दौहित्र अनिरुद्धजीने अपने नानाकी पोतीसे विवाह किया। उसके गर्भसे वज्रका जन्म हुआ। ब्राह्मणोंके शापसे पैदा हुए मूसलके द्वारा यदुवंशका नाश हो जानेपर एकमात्र वे ही बच रहे थे ॥ ३७ ॥ वज्रके पुत्र हैं प्रतिबाहु, प्रतिबाहुके सुबाहु, सुबाहुके शान्तसेन और शान्तसेनके शतसेन।३८। परीक्षित्! इस वंशमें कोई भी पुरुष ऐसा न हुआ जो बहुत-सी सतानवाला न हो तथा जो निर्धन, अल्पायु और अल्पशक्ति हो। वे सभी ब्राह्मणोंके भक्त थे ॥३९॥ परीक्षित्! यदुवंशमें ऐसे-ऐसे यशस्वी और पराक्रमी पुरुष हुए हैं, जिनकी गिनती भी हजारों वर्षोंमें पूरी नहीं हो सकती ॥४०॥ मैंने ऐसा सुना है कि यदुवंशके बालकोंको शिक्षा देनेके लिये तीन करोड़ अट्ठासी लाख आचार्य थे ॥४१॥ ऐसी स्थितिमें महात्मा यदुवंशियोंकी संख्या तो बतायी ही कैसे जा सकती है! स्वयं महाराज उग्रसेनके साथ एक नील (१०००००००००००००) के लगभग सैनिक रहते थे ॥ ४२ ॥

परीक्षित्! प्राचीन कालमें देवासुरसंग्राममें समय बहुत-से भयङ्कर असुर मारे गये थे। वे ही मनुष्योंमें उत्पन्न हुए और बड़े घमंडसे जनताको सताने लगे।४३। उनका दमन करनेके लिये भगवान्‌की आज्ञासे देवताओंने ही यदुवंशमें अवतार लिया था। परीक्षित्! उनके कुलोंकी संख्या एक सौ एक थी ॥४४॥ वे सब भगवान् श्रीकृष्णको ही अपना स्वामी एवं आदर्श मानते थे। जो यदुवंशी उनके अनुयायी थे, उनकी सब प्रकारसे उन्नति हुई ॥ ४५ ॥ यदुवंशियोंका चित्त इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णमें लगा रहता था कि उन्हें सोने-बैठने, घूमने-फिरने, बोलने-खेलने और नहाने-धोने आदि कामोंमें अपने शरीरकी भी सुधि न रहती थी। वे जानते ही न थे कि हमारा शरीर क्या कर रहा है। उनकी समस्त शारीरिक क्रियाएँ यन्त्रकी भाँति अपने-आप होती रहती थीं ॥ ४६ ॥

परीक्षित्! भगवान्‌का चरणधोवन गङ्गाजी अवश्य ही समस्त तीर्थोंमें महान् एवं पवित्र हैं। परन्तु जब स्वयं परमतीर्थस्वरूप भगवान्‌ने ही यदुवंशमें अवतार ग्रहण किया, तब तो गङ्गाजलकी महिमा अपने-आप ही उनके सुयशतीर्थकी अपेक्षा कम हो गयी। भगवान्‌के स्वरूपकी यह कितनी बड़ी महिमा है कि उनसे प्रेम करनेवाले भक्त और द्वेष करनेवाले शत्रु दोनों ही उनके स्वरूपको प्राप्त हुए। जिस लक्ष्मीको प्राप्त करनेके लिये बड़े बड़े देवता यत्न करते रहते हैं, वे ही भगवान्‌की सेवामें नित्य-निरन्तर लगी रहती हैं। भगवान्‌का नाम एक बार सुनने अथवा उच्चारण करनेसे ही सारे अमङ्गलोंको नष्ट कर देता है। ऋषियोंके वंशजोंमें जितने भी धर्म प्रचलित हैं, सबके संस्थापक भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं। वे अपने हाथमें कालस्वरूप चक्र लिये रहते हैं। परीक्षित्! ऐसी स्थितिमें वे पृथ्वीका भार उतार देते हैं, यह कौन बड़ी बात है ॥ ४७ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण ही समस्त जीवोंके आश्रयस्थान हैं। यद्यपि वे सदा-सर्वदा सर्वत्र उपस्थित ही रहते हैं, फिर भी कहनेके लिये उन्होंने देवकीजीके गर्भसे जन्म लिया है। यदुवंशी वीर पार्षदोंके रूपमें उनकी सेवा करते रहते हैं। उन्होंने अपने भुजबलसे अधर्मका अन्त कर दिया है। परीक्षित्! भगवान् स्वभावसे ही चराचर जगत्‌का दुःख मिटाते रहते हैं। उनका मन्द-मन्द मुसकानसे युक्त सुन्दर मुखारविन्द व्रजस्त्रियों और पुरस्त्रियोंके हृदयमें प्रेम-भावका सञ्चार करता रहता है। वास्तवमें सारे जगत्‌पर वही विजयी हैं। उन्हींकी जय हो! जय हो!! ॥ ४८ ॥

परीक्षित्! प्रकृतिसे अतीत परमात्माने अपनेद्वारा स्थापित धर्म-मर्यादाकी रक्षाके लिये दिव्य लीला-शरीर ग्रहण किया और उसके अनुरूप अनेकों अद्भुत चरित्रोंका अभिनय किया। उनका एक एक कर्म स्मरण करनेवालोंके कर्मबन्धनोंको काट डालनेवाला है। जो यदुवंशशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी सेवाका अधिकार प्राप्त करना चाहे, उसे उनकी लीलाओं-का ही श्रवण करना चाहिये ॥ ४९ ॥ परीक्षित्! जब मनुष्य प्रतिक्षण भगवान् श्रीकृष्णकी मनोहारिणी लीला-कथाओंका अधिकाधिक श्रवण, कीर्तन और चिन्तन करने लगता है, तब उसकी यही भक्ति उसे भगवान्‌के परमधाममें पहुँचा देती है। यद्यपि कालकी गतिके परे पहुँच जाना बहुत ही कठिन है, परन्तु भगवान्‌के धाममें कालकी दाल नहीं गलती। वह वहाँतक पहुँच ही नहीं पाता। उसी धामकी प्राप्तिके लिये अनेक सम्राटोंने अपना राजपाट छोड़कर तपस्या करनेके उद्देश्यसे जंगलकी यात्रा की है। इसलिये मनुष्यको उनकी लीला-कथाका ही श्रवण करना चाहिये ॥ ५० ॥

इति दशम स्कन्ध उत्तरार्ध समाप्त

हरिः ॐ तत्सत्